स्वर्गीय भागीरथ कानोड़िया
स्मृति-ग्रंथ

सम्पादक

भंवरमल सिंघी

प्रकाशक : श्री भागीरथ कानोडिया स्मारक समिति, ११, लार्ड सिन्हा रोड, कलकत्ता-७०००७१, प्रकाशन तिथि : २५ जुलाई, १९८१, प्रतिया : १०००, मुद्रक : एसकेज, ८, शोभाराम वैसाख स्ट्रीट, कलकत्ता-७०००७०, आवरण और सज्जा : इंडिगो आर्ट्स, २१ ए, हिन्दुस्तान रोड, कलकत्ता-२९, सम्पादक : भंवरमल सिंघी।

प्राक्कथन

इस ग्रन्थ को पाठको को सौपते हुए मन मे कई प्रकार के भाव आते हैं। कही एक विनम्र व्यक्ति के प्रति, जिसने प्रचार और आत्म-प्रदर्शन से दूर रह कर सारे जीवन पीडितजनो की सेवा करने की भरसक चेष्टा की, आदर और श्रद्धा व्यक्त कर पाने का थोडा-वहुत सन्तोप भी होता है।

इस ग्रन्थ मे प्रकाशित १४१ लेखो से यह प्रकट है कि स्वर्गीय श्री भागीरथजी के जीवन का अर्थ ही मनुष्य मात्र की सेवा था। जहा कही भी पीडा होती, दुख होता, वे उसे दूर करने मे लग जाते—यह पीडा या दुख, चाहे मनुष्य पर मनुष्य के अत्याचार के कारण हो, चाहे राजनीति द्वारा थोपे गये अन्याय के कारण हो, चाहे समाज द्वारा किये गये पाप के कारण हो, चाहे प्राकृतिक विपत्तियो के कारण हो, भागीरथजी जितना हो सके उतना उस पीडा को कम करने या मिटाने मे दत्तचित्त होकर लग जाते थे। सच्ची बात तो यह है कि वे असली अर्थो मे वैष्णव जन थे। नरसी मेहता का वह भजन, जो गाधीजी को वहुत प्रिय था, "वैष्णव जन तो तेने कहिये, जे पीर पराई जाने रे", भागीरथजी खूब जानते थे और उसे अपने जीवन मे भरसक उतारने की कोशिश करते थे। वे सचमुच ' वैष्णवजन" थे।

भागीरथजी आत्मश्लाघा और परनिन्दा से वहुत दूर रहते थे। इन पक्तियो के लेखक और भागीरथजी के कई मित्रो के आग्रह से भी यह सम्भव नही हो सका कि उनके जीवन-काल मे उनका अभिनन्दन किया जा सके और उनके अभिनन्दन ग्रन्थ की कोई योजना वने। इस विषय मे भागीरथजी ने प० वनारसीदासजी चतुर्वेदी और श्री गोविन्दप्रसाद केजडीवाल को जो पत्र लिखे, वे यह वताते हैं कि किस हद तक वे सम्मान से वचना चाहते थे। दोनो को ही लिखे उनके वे पत्र इस ग्रन्थ मे पाठको को पत्र-खण्ड के प्रारम्भ मे ही पढने को मिलेंगे।

भागीरथजी की मृत्यु के वाद यह तय किया गया कि अभिनन्दन ग्रन्थ तो निकाला नही जा सका लेकिन उनका स्मृति-ग्रन्थ जरूर निकाला जाय। इस काम को करने के लिए आज से सवा साल पहले भागीरथजी के परम मित्र श्री सीतारामजी

सेकसरिया की अध्यक्षता मे 'श्री भागीरथ कानोडिया स्मारक समिति' गठित की गयी। समिति का मन्त्री मुझे बनाया गया और अन्य सदस्य हैं सर्वश्री गगाशरण सिंह, बनारसीदास चतुर्वेदी, सिद्धराज ढढ्ढा, भगवतीप्रसाद खेतान, यशपाल जैन, कृष्णचन्द्र अग्रवाल, कल्याणमल लोढा, कन्हैयालाल सेठिया, बदरीनारायण सोढाणी, विष्णुकान्त शास्त्री और श्री रतनशाह (उप-मन्त्री)। यह तय किया गया था कि स्मृति-ग्रन्थ भागीरथजी की ८७वी वर्षगाठ, २५ जनवरी, १९८१ को प्रकाशित किया जाय पर यह न हो सका। कलकत्ता मे बैठ कर समय के बारे मे निश्चित नही हुआ जा सकता। बिजली की कठिनाई तो है ही फिर सम्पादक की बीमारी भी बडा कारण रही। देश भर मे भागीरथजी के परिचितो और मित्रो से पत्र-व्यवहार कर लेख मगाने और उनका चयन करने के बाद वह अचानक बीमार पड गया। बीमारी के बाद देख-रेख करने के सिवाय ज्यादा कुछ नही कर पाया। इससे काम मे देर तो हुई ही और मुद्रण का काम तो वह बिलकुल ही देख न सका।

यद्यपि भागीरथजी का कर्मस्थल अधिकाशत कलकत्ता और राजस्थान ही रहा है लेकिन उन्हे इन दो भौगोलिक सीमाओ मे बाधा नही जा सकता। जैसाकि ऊपर लिखा है, जहा कही भी पीडा होती वे दौडकर वहा जाने को कोशिश करते थे। बगाल का १९४३ का दुर्भिक्ष हो, राजस्थान का सूखा और अकाल हो या १९३४ का बिहार का भूकम्प हो, भागीरथजी सच्चे मन से इनकी विभीषिका को कम करने मे जुटे। पीडित की सेवा करने मे ही उन्हे अपने जीवन की सार्थकता महसूस होती थी। उनके बारे मे सभी जगहो के और सभी तरह के कार्यकर्ताओ ने इस ग्रन्थ मे लिखा है। हमे ऐसा नही लगा कि जितने भी लेख आये, उनमे से किसी को भी बाद दे। इसमे पाठको के साथ थोडा अन्याय यह हुआ है कि उन्हे जगह-जगह दुहरावट मिलेगी लेकिन हम लेखको की बातो को जस का तस ही देना चाहते थे। फिर भी कुछ लेखो मे हमे बहुत मामूली सम्पादन करना पडा है। हम चाहते तो और भी लेख मगा सकते थे लेकिन कही तो सीमा माननी ही पडती है।

लेख कुल मिला कर भागीरथजी के जीवन के लगभग सभी पहलुओ को समेट लेते हैं। परदुखकातर भागीरथजी बहुत विनोदी स्वभाव के भी थे। छोटा से छोटा हो या बडा से बडा, विनोद करके वे सबको हसाने मे माहिर थे। उनके विनोद की भी झलक इस ग्रन्थ मे जहा-तहा दिखायी पडती है।

हा, भागीरथजी के कहावतो सम्बन्धी कार्य पर चाह कर भी ग्रन्थ मे कोई लेख हम नही दे पाये। इस विषय मे हमने बाहर के कई अधिकारी विद्वानो से अनुरोध किया और लेख भेजने का वचन भी हमे मिला पर अन्तत कोई लेख आया पार नही पडा। अन्त मे हमने कलकत्ता के श्री रेवतीलाल शाह से इस विषय मे कुछ लिखने को कहा। उनका लेख एकदम अन्तिम समय मे मागा गया था और तब तक लेखो का खण्ड छप चुका था, इसलिए उसे परिशिष्ट मे दिया जा रहा है।

१४१ संस्मरणो मे स्वातन्त्र्य-सग्राम के सेनानियो, सामाजिक कार्यकर्ताओ, साहित्यिको और महिला कार्यकर्ताओ के अलावा भागीरथजी के मित्रो, सहयोगियो और परिवार के सदस्यो के लेख है। उनके सहयोगियो के लेख उनकी परदुखकातरता, सौजन्य, विनम्रता के उदाहरण पेश करते है। ऐसे कई लेख तो अत्यन्त मार्मिक है। परिवार के सदस्यो के लेख भागीरथजी के पारिवारिक जीवन की बहुत ही सरस झाकी प्रस्तुत करते है।

इस ग्रन्थ मे उनकी जीवनी प्रस्तुत करना काफी कठिन था क्योकि भागीरथजी ने अपने बारे मे या अपने काम के बारे मे कही नही लिखा। उनके पास कोई 'रेकार्ड' नही थे। ऐसी हालत मे भागीरथजी के मित्रो, स्वजनो से मिलकर और खासकर उनके घनिष्ठतम मित्र श्री सीतारामजी सेकसरिया की डायरिया पढकर जीवन-वृत्त लिखा गया। १९४३ के बगाल के अकाल मे भागीरथजी ने बहुत बडा काम किया था। उस वक्त इन पक्तियो का लेखक जेल मे था। जेल से छूटने पर उसे पता लगा कि कितना बडा काम भागीरथजी ने किया। इस काम के बारे मे भी भागीरथजी ने एक भी कागज अपने पास नही रखा था। इत्तफाक से बगाल रिलीफ कमेटी मे भागीरथजी के सहयोगी श्री कृष्णचन्द्र महापात्र ने उस समय के सारे कागजात अपने पास सुरक्षित रखे। उनके सौजन्य से ही हम इस ग्रन्थ मे बगाल रिलीफ कमेटी के नाम आये दो ऐतिहासिक तार और १९४७ के अपने 'चमत्कारपूर्ण' कलकत्ता-अनशन के बाद गाधीजी द्वारा दगा-पीडितो के पुनर्वास के लिए एक कमेटी गठित करने का निर्देश देने वाला पत्र परिशिष्ट मे छाप रहे हैं। निर्देश-पत्र भागीरथजी ने गाधीजी के डिक्टेशन पर लिखा था और उस पर गाधीजी के हस्ताक्षर हैं। जीवन-वृत्त श्री अशोक सेकसरिया ने लिखा है। हमारा विश्वास है कि यह भागीरथजी को समझने मे सहायक होगा।

ग्रथ के पत्र-खण्ड मे भागीरथजी के कुछ पत्र दिये गये हैं। उनके पत्रो की बात तो विचित्र हैं। न मालूम कितने हजार पत्र उन्होने लिखे होगे। पत्रो मे गम्भीर से गम्भीर समस्या को सरल भाषा मे मनोविनोद के साथ प्रस्तुत करना उनका स्वभाव था। दुर्भाग्य से बहुत कम लोगो के पास उनके लिखे हुए पत्र मिले। वे स्वय तो कोई पत्र रखते ही न थे। आये हुए हर पत्र का जवाब देना, उनका सहज स्वभाव था और आये हुए पत्र को फाड देना भी। अगर बहुत सारे पत्र मिल जाते तो उनका एक अलग सकलन बहुत काम का बन सकता था। फिर भी जो थोडे मे पत्र मिले उनमे से कुछ को इस ग्रन्थ मे दिया जा रहा है।

भागीरथजी ने बहुत ऊची शिक्षा प्राप्त नही की थी लेकिन साहित्य मे उनकी सहज रुचि थी और भक्ति-साहित्य तो उन्हे अत्यन्त प्रिय था। अग्रेजी के भी वे अच्छे जानकार थे। उन्होने जो कुछ लिखा वह हमारी दृष्टि मे बहुत अच्छे स्तर का है। उनके बहुत थोडे लेख मिले और जो मिले वे हम अपनी याददाश्त के सहारे ही इकट्ठा कर पाये। उनकी कहावतो की कहानियो के लोकप्रिय सग्रह 'बहता पानी निर्मला'

से चुनकर चार कहानिया इस ग्रन्थ मे दी गयी है। ये कहानिया भागीरथजी की भाषा और उनकी लेखन शैली की सहजता का अच्छा परिचय देती है।

इस ग्रन्थ के काम मे बहुत लोगो ने सहयोग दिया। श्री राजेन्द्र कुमार बागडोदिया और श्री जयप्रकाश शर्मा ने राजस्थान की सस्थाओ और कार्यकर्ताओ से लगातार पत्र-व्यवहार कर सामग्री भिजवायी। भागीरथजी को तस्वीर खिचवाने से बडी विरक्ति थी। उनकी तस्वीरे प्राप्त करना भी बडा कठिन था। वनस्थली से श्री प्रह्लादनारायण पुरोहित ने हमे भागीरथजी के वनस्थली मे खीचे गये ११ चित्र भेजे जिनमे तीन इस ग्रन्थ मे दिये जा रहे है। भागीरथजी की ज्येष्ठ पुत्री सावित्री खेमका से भागीरथजी के अग्रज गगाबक्सजी का दुर्लभ चित्र और अन्य कुछ चित्र प्राप्त हुए।

भाई यशपाल जैन का आभार प्रकट करना तो महज शिष्टाचार होगा। इस ग्रन्थ की कल्पना मे और उसको मूर्त्त रूप देने मे वे सब समय हमारे ही साथ थे। एक समय तो ऐसा भी आया था कि यह तय हुआ कि ग्रन्थ का मुद्रण दिल्ली से ही हो और वे ही उसका काम देखे, बाद मे किसी तरह कलकत्ता मे ही व्यवस्था बैठ गयी।

यह थोडे दुख की बात है कि बहुत सतर्कता बरतने की कोशिश के बावजूद मुद्रण मे भूले रह गयी है और वर्तनी मे भी समरूपता नही रखी जा सकी है। ग्रन्थ का कलेवर भी उतना सुन्दर नही बन पाया है जितना हमने चाहा था पर जो चाहा वह कब हुआ है ?

जो हो भागीरथजी का जीवन ऐसा है, उसकी हर घटना ऐसी है जिसको जानने और समझने से प्रेरणा मिले। इस ग्रन्थ का महत्व इसी बात मे है कि यह उस प्रेरणा को विस्तार देने का एक माध्यम है।

५३३ लेक गार्डेन्स
कलकत्ता-७०००४५

भंवरमल सिंघी

-

अनुक्रम

जीवन-वृत्त—३ से ११४

सस्मरण—११७ से ४१६

पत्र—४१९ से ४५०

लेखन—४५३ से ४८८

चित्रो की तालिका

भागीरथ कानोडिया

जन्म मुकुन्दगढ, २५ जनवरी, १८९५ मृत्यु . कलकत्ता, २९ अक्टूबर, १९७९

जीवन-वृत्त

१
प्रवेश

एक ऐसे व्यक्ति की, जिसने चुपचाप स्वधर्म का निर्वाह किया हो, जीवनी लिखना उतना ही कठिन है जितना कि किसी गुप्त दानी के दान का पता लगाना। स्व० भागीरथ कानोडिया के बारे मे ये दोनो ही बाते लागू होती हैं, सो उनकी जीवनी लिखना सहज नही। जीवनी लिखने के लिए उनके परिवार के लोगो और सहकर्मियो से मुलाकात करके, कलकत्ता के मारवाडी समाज सम्बन्धी साहित्य तथा उनके परम मित्र श्री सीताराम सेकसरिया की पचास वर्षों की डायरिया पढ कर हमने उनके बारे मे काफी-कुछ जाना है, लेकिन हमे शक है कि सूचनाए और जानकारिया सग्रह करने के बावजूद हम भागीरथजी को ठीक तरह से पकड पाये हैं। वह हमारी मुट्ठी से बार-बार फिसल जाते हैं। यह शायद ठीक भी है, क्योकि अपने ८५ वर्ष के जीवन मे उन्होने कही भी और कभी भी अपने को सिद्ध करने का कोई प्रयत्न नही किया, जो किया वह सब सहज भाव से और अपने सस्कारी स्वभाव के चलते किया। ऐसे व्यक्ति को हम कुछ सिद्ध करे, यह उसकी स्मृति के प्रति अन्याय ही होगा।

यह छिपाना नही है कि हमारे मन मे उनके प्रति श्रद्धा और कृतज्ञता का ऐसा भाव है, जो हमसे अतिशयोक्तिया करवा सकता है, लेकिन एक बचत भी है और वह है भागीरथजी की अपनी प्रशसा के प्रति विरक्ति। एक प्रसग याद आता है—एक व्यक्ति भागीरथजी के सामने उनकी अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशसा कर रहा था तो उन्होने उससे कहा . "आप इतनी हलकी बाते क्यो करते है ?" उनकी स्मृति का तकाजा है कि हम हलकी बाते न लिखें, लेकिन यह सामर्थ्य हममे है या नही है, इसका निर्णय तो वही करेंगे जो इस वृत्तात के पाठक है।

हमारे देश मे आज से पैसठ-सत्तर वर्ष पहले समाप्त हुई शताब्दी मे (१८१०-१९१०) दो प्रवृत्तिया स्पष्ट दिखायी देती थी। एक, अपने धार्मिक और सामाजिक सस्कारो को ही मानवीय और न्यायपूर्ण ढग से विकसित करने की और दूसरी, पाश्चात्य प्रभाव से अपने को रग डालने की। पहली प्रवृत्ति आत्म-निरीक्षण और आत्म-परिष्कार पर बल देती थी, तो दूसरी प्रवृत्ति आत्म-निरीक्षण और आत्म-परिष्कार की जहमत मोल लेने के बजाय पश्चिम के अधानुकरण को ही सारी समस्याओ का हल मानती थी। हमने पाया है कि जिन लोगो मे पहली प्रवृत्ति का उत्कर्ष देखा गया, उन्ही लोगो ने समाज को कही बदला, दूसरी प्रवृत्ति के लोगो ने तो सिर्फ एक ऐसा ऊपरी ढाचा बनाने मे ही मदद की जिसके कारण, देश की आजादी के बाद से हम एक ही साथ उपभोक्ता-सस्कृति और मार्क्सवादी विचारधारा के प्रभाव मे आकर आज एक ऐसी स्थिति मे पहुच गये है, जिसमे सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक जीवन मे कोई मूल्य ही नही रह गये हैं और वैषम्य व अन्याय दिनोदिन बढते ही जा रहे हैं। ऐसी

मूल्यहीन दशा मे जब अश्रद्धा और अनुदारता का प्रचण्ड वातावरण हो, तब भागीरथजी जैसे सस्कारी व्यक्ति को, जिसने अपनी सीमाओ के दायरे मे अपने धार्मिक और सामाजिक सस्कारो को रूपातरित किया, समझना और समझाना अत्यन्त कठिन है।

'सस्कार' शब्द की शायद दुनिया की किसी अभारतीय भाषा मे पर्यायवाची सज्ञा नही है, क्योकि 'सस्कार' विशुद्ध रूप से एक भारतीय अवधारणा है, जिसमे पूर्व-जन्म और पुनर्जन्म की कल्पना निहित है, और जो व्यक्ति के मन मे पाप और पुण्य की भावना को भी जन्म देती है। गाधीजी जैसा व्यक्ति जब विहार के १९३४ के भयानक भूकम्प को हरिजनो पर सदियो से किये जा रहे अत्याचारो का परिणाम बताता है या सामान्य आदमी किसी अत्याचारी की आकस्मिक या दुर्घटना मे मृत्यु को उसकी करनी का फल कहता है, तो यही 'सस्कार' काम करता होता है, भले ही वह कर्म के सिद्धात को बौद्धिक रूप से न मानता हो।

परम्परा और सस्कार एक जैसी चीजे जरूर लगती है, लेकिन उनमे निश्चय ही भेद है। हमारे देश मे गाधीजी जैसा व्यक्ति पैदा हुआ, जो कही भी परम्परावादी न था, लेकिन पूर्ण रूप से सस्कारी था। गाधीजी को परम्परावादी न मानने के बावजूद बहुत से लोग उन्हे क्रातिकारी नही मान पाते है तो उसकी वजह यह है कि वे परम्परा और सस्कार के बीच के सूक्ष्म भेद को नही समझ पाते। गाधीजी का सस्कारी होना उन्हे क्रान्ति-विरोधी मालूम पडने लगता है। सत्य, अहिसा, अस्तेय और अपरिग्रह के विचार, गाधीजी ने परम्परा के वजाय अपने सस्कारो से ही ज्यादा प्राप्त किये थे। गाधीजी जैसा व्यक्ति रूढियो को निरन्तर तोडता है, लेकिन अपने सस्कारो को कभी नही मिटाता, वह उन्हे निरन्तर रूपातरित करता चलता है—जीवन उसके लिए अनवरत 'सत्य की खोज' बना रहता है और खोज के अनुरूप वह अपने को ढालता और परिष्कृत करता रहता है।

ऊपर गाधीजी का उदाहरण देकर जो लिखा गया है उसका उद्देश्य भागीरथजी के जीवन को समझने के लिए एक परिप्रेक्ष्य प्राप्त करना है, क्योकि गाधीजी के परिप्रेक्ष्य के विना हम गाधी-युग के भागीरथजी के जैसे लोगो को समझने मे भारी भूल कर सकते है।

२

जन्म और पूर्वज

भागीरथजी का जन्म आज से ८६ वर्ष पहले सवत् १९५१ के माघ मास की मौनी अमावस, तदनुसार २५ जनवरी सन् १८९५ को राजस्थान के शेखावाटी इलाके के मुकुन्दगढ कसवे मे हुआ। उस समय शेखावाटी का इलाका, उन्ही के शब्दो मे "तिहरी गुलामी का शिकार था, तिहरी गुलामी—जागीरदारो और ठाकुरो की गुलामी, जयपुर के राजा की गुलामी और इनके ऊपर अग्रेजी राज्य की गुलामी। गुलामी ही गुलामी चारो तरफ से जन-जीवन को घेरे हुई थी। न थी सामाजिक चेतना, न थी

जागृति, न थे शिक्षा के साधन, न थे आर्थिक प्रगति के उपादान। गरीबी और गर्दिश में से निकलने के लिए शेखावाटी के वैश्य लोग व्यापार-व्यवसाय के लिए अन्यान्य प्रदेशो मे गये, जाकर अपने कठोर परिश्रम और विशेष व्यवसाय-बुद्धि से सफलता प्राप्त की, ये सभी लोग 'मारवाडी' नाम से अभिहित हुए।"

भागीरथजी के पूर्वज हरियाणा के महेन्द्रगढ जिले के एक गाव कानोड के रहने वाले थे। कानोड से ही कानोडिया शब्द की उत्पत्ति हुई। मारवाडी वनियो की उपाधिया उनके मूल स्थान या उनके किसी आदरणीय पुरखे के नाम से ही उत्पन्न हुई है, जैसे पाटोद के रहनेवाले पाटोदिया, झुझनू के रहनेवाले झुनझुनवाला, जालीरामजी से जालान, खेमचन्दजी से खेमका आदि। आज से लगभग ४०० साल पहले भागीरथजी के पूर्वज कानोड छोड कर कई स्थानो में रहने के वाद राजस्थान के एक कसवे नवलगढ मे आकर वस गये। शेखावाटी के प्रसिद्ध ठाकुर शार्दूलसिहजी के दूसरे वेटे नवलसिहजी ने नवलगढ वसाया था। नवलसिहजी के वश मे आगे जाकर मुकुन्दसिहजी पैदा हुए। वह नवलगढ के चौथे हिस्से के मालिक थे, लेकिन वह अपनी अलग हैसियत अर्थात् अपने नाम का गढ वसाना चाहते थे। उन्होने नवलगढ से चार कोस दूर सावसर मे 'गढ' वसाने का निर्णय किया। कानोड़िया परिवार नवलगढ के सम्पन्न परिवारो मे गिना जाता था। मुकुन्दसिहजी चाहते थे कि नयी वस्ती मे यह सम्पन्न परिवार वसे। उन्होने भागीरथजी के परदादा जोखीरामजी को सावसर मे वसने के लिए राजी कर लिया। जोखीरामजी ने नवलगढ मे एक कुआं और शिव-मन्दिर वनाया था। कुआं आज भी "जोखीरामजी का कुआ" के नाम से प्रसिद्ध है और कानोडिया परिवार ही अभी भी उसकी देख-रेख करता है। सवत् १९१६ मे सावसर की नई वस्ती का मुकुन्दसिहजी ने अपने नाम पर नाम रखा मुकुन्दगढ। कानोडिया परिवार की मुकुन्दगढ को वसाने मे प्रमुख भूमिका रही थी सो प्रारम्भ से ही उसकी वहा धाक थी।

मुकुन्दगढ के सस्थापक मुकुन्दसिहजी के वारे मे कई किस्से प्रचलित हैं। एक किस्सा यहा लिखा जा रहा है। इससे उस जमाने के ठाकुरो की अकड और प्रदर्शन-प्रियता का थोडा-बहुत पता लगता है। उन दिनो शेखावाटी मे प्राय: सभी जरायम पेशा जातियो को मीणा कहा जाता था। जो चोरिया होती उनके लिए मीणा ही जिम्मेदार ठहराये जाते। मुकुन्दसिहजी के समय उदयराम नाम का एक मीणा अपनी फुर्ती, तेजी और होशियारी के लिए मशहूर था। राजस्थान के शेखावाटी इलाके मे सत्यनारायण सतिया हो जाता हैं, सीताराम सीतिया हो जाता है, भागीरथ भागीरथा हो जाता है, सो मीणा उदयराम "उदिया" के नाम से ही जाना जाता था। कहते है कि उदिया सीधी दीवार पर चढ जाता था। वह चोरी करते हुए कभी नही पकडा गया, लेकिन ठाकुर मुकुन्दसिहजी ने उसे एक वार पकड लिया और उसका सिर काट कर नवलगढ के चार फाटको मे से एक अगुना दरवाजे (पूर्वी दरवाजे) पर टाग दिया। अगुना दरवाजा नवलगढ का सवसे ऊंचा फाटक है। कहते हैं उदिया का कटा हुआ मुण्ड अगुना दरवाजे पर महीनो लटका रहा और लोगो मे दहशत फैलाता रहा। लेकिन मुकुन्दगढ वसाने मे इन्ही मुकुन्दसिहजी ने काफी विनम्रता और उदारता वरती और लोगो को वहा मुफ्त जमीन दे-दे कर वसाया।

जब मुकुन्दगढ बसा तो जोखीरामजी काफी बूढे हो चले थे। ठाकुर मुकुन्दसिंहजी ने उन्हे नये गढ के प्रधान पच का पद सभालने को कहा, पर वृद्धावस्था के कारण वह राजी नही हुए। इस पर उनके बेटे और भागीरथजी के दादा जयनारायणजी को प्रधान पच बनाया गया।

जयनारायणजी शेखावाटी के मारवाडी बनियो की उस पीढी मे आते है जिसने देश के विभिन्न भागो मे जाकर व्यापार करना शुरू किया। जयनारायणजी रुई और अफीम के व्यापार के सिलसिले मे इन्दौर, उज्जैन और बम्बई तक गये थे। उन्होने इतना कमाया कि कानोडिया परिवार शेखावाटी के सम्पन्न परिवारो मे गिना जाने लगा। उस समय देश के मारवाडी बनिया परिवारो मे सबसे पहले सम्पन्न और धनी होनेवाला फर्म था—रामगढ के पोद्दारो का ताराचन्द-घनश्यामदास फर्म। इस फर्म के भाई जोहरीमल-रामलाल पोद्दार के यहा जयनारायणजी के पुत्र और भागीरथजी के पिता रामदत्तजी का विवाह हुआ। यह विवाह निश्चय ही कानोडियो की समृद्धि और प्रतिष्ठा का सूचक था। कहते है कि पोद्दारो को यह लगा कि कानोडियो की बारात बहुत छोटी आयेगी, सो उन्होने जयनारायणजी को कहलाया कि ऐसी बारात न आये कि हमारी जगहसाई हो। ठाकुर मुकुन्दसिंहजी को जब इस बात का पता चला तो उन्होने इसे मुकुन्दगढ की प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लिया, जयनारायणजी को कहा: "आप बिल्कुल चिन्ता न करे। ऐसी बारात जायेगी जैसी आज तक किसीकी नही गयी।" और सचमुच ही मुकुन्दसिंहजी ने बारात को सेना जैसा रूप दे दिया—२०० घोडो और हाथियो तथा नवलगढ, मडावा, बिसाऊ और आसपास के इलाको के सात-आठ जागीरदारो समेत जब बारात का लश्कर रामगढ पहुचा तो पोद्दारो को समझ नही आया कि 'इत्ती' छोटी बारात' का कैसे स्वागत करे।

जयनारायणजी के बारे मे एक किस्सा मशहूर है कि वह अपने मातहत लोगो के खिलाफ चुगली सुनना पसन्द नही करते थे और किसी को भी अपमानित किया जाना उन्हे बरदाश्त नही होता था। उन्होने काफी कमाया था सो घर मे सभी चीजो की इफरात रहती थी। घी के कनस्तर भरे रहते थे और नौकर-चाकर भी काफी थे। एक नौकर रोज शाम को घर जाते समय अपने लोटे मे घी भर कर ले जाता था। किसी ने जयनारायणजी से इसकी शिकायत की तो उन्होने कहा. "ठीक है, तुम कल उसे रगे हाथो पकडवाना।" दूसरे दिन सुबह-सुबह ही उन्होने नौकर को बुलाया और कहा "आज जब तुम घर जाओ तब अपने लोटे मे बालू भर कर ले जाना। देखो, इसमे कोई चूक न हो, यह मेरा हुक्म है।" शाम को वह व्यक्ति रगे हाथो पकडवाने को हाजिर हुआ। नौकर घर जाने लगा तो उसने जयनारायणजी को कहा: "अब आप इसका लोटा देखिये।" जयनारायणजी ने नौकर को बुलाया और कहा. "लोटा उलटो।" घी के बदले बालू देख कर चुगलखोर के पास आगे कुछ कहने को नही रहा।'

एक किस्सा जयनारायणजी की पत्नी यानी भागीरथजी की दादी के बारे मे भी है। कहते है कि वह बडी नेक, न्यायप्रिय और दयालु थी। एक बार जयनारायणजी को मडावा मे किसी सौदे मे बहुत रुपये आये। जिन लोगो ने खोये

उनमे से कुछ ने तो रुपये लाकर दे दिये लेकिन अधिकाश ने रुपयो के एवज में घर के गहने दिये। रुपये और गहने लेकर वह घर पहुचे। पत्नी ने जब पति के पास गहने देखे तो पूछा, "यह गहने कैसे ?" तो बताया गया कि जो लोग रुपये नही दे सके, उन्होने गहने दिये हैं। इस पर वह बोली . "जिनके घर से गहना आया है उनके घरो मे आज चूल्हा नही जलेगा, दूसरो के आसुओ से भीगा धन जब तक हमारे घर मे रहेगा तब तक मैं अन्न-जल ग्रहण नही करूगी।" जयनारायणजी को पत्नी की बात माननी पडी और उन्होने तुरन्त मुनीम को मंडावा भेज कर गहने लौटा दिये। भागीरथजी के भतीजे प्रसिद्ध उद्योगपति राधाकिशनजी कानोड़िया का कहना है कि कानोडिया परिवार की उन्नति के पीछे परिवार की महिलाओ का बहुत बडा योगदान है; उनके धार्मिक और सत्स्वभाव के कारण मुसीबत के दिनो मे भी परिवार की इज्जत बनी रही।

जयनारायणजी के चार पुत्र हुए—जानकीदासजी, हरदेवदासजी, हरिरामजी और भागीरथजी के पिता रामदत्तजी। इन चार भाइयो मे जानकीदासजी ने तो अपना सारा समय पूजा-पाठ और ईश्वर-भजन मे ही बिताया। चारो पुत्रो के जन्म के साथ-साथ तीस साल की अवधि मे परिवार की समृद्धि बढती ही गयी, लेकिन इसके बाद अफीम के व्यवसाय मे मन्दी आने पर जयनारायणजी ने रुई के व्यापार से स्थिति को सम्भालने की कोशिश जरूर की, पर वह सम्भल न सकी और घर के गहने बेचने तक की नौबत आ गयी। धीरे-धीरे कानोडिया परिवार इतना विपन्न हो गया कि उसे घर की बहली (दो पहियो का छोटा रथ) तक को बेचना पडा और यह बहली बिकी ग्यारह रुपयो मे और पौने चार रुपये प्रत्येक भाई को मिले। राधाकिशनजी कानोड़िया ने बताया "सवत् १९३० (सन् १८७३-७४) तक कानोडिया आसामी बड़ी थी, पर इसके बाद हालत कमजोर होती गयी और यह उतार भी लगभग तीस वर्षो तक चला जब भागीरथजी का जन्म सवत् १९५१ (सन् १८९५) में हुआ तब कानोडिया परिवार की आर्थिक हालत कतई अच्छी नहीं थी, यद्यपि मुकुन्दगढ मे उसकी प्रतिष्ठा मे किसी भी प्रकार की कमी नही आयी थी।

भागीरथजी के पिता रामदत्तजी ने परिवार की हालत सम्भालने के लिए कलकत्ता की यात्रा की और वहा दलाली का काम करने लगे और उनके प्रयत्नों से परिवार की हालत थोडी सुधरी भी। एक सम्पन्न फर्म मे ब्याहे जाने के बावजूद रामदत्तजी ने अपने ससुरालवालो से कभी किसी प्रकार की आर्थिक मदद नही चाही, अपने बूते पर ही खडे होने की कोशिश की। उनके बारे मे ज्यादा पता नही, शायद वह भी अपने पुत्र भागीरथजी की तरह ही संकोची और अपने को प्रकट करने से कतरानेवाले व्यक्ति रहे होंगे। बहरहाल, उनके बारे मे दो किस्से सुनने को मिले, जो उनकी उदारता और कर्त्तव्यपरायणता को दरशाते हैं। पहला, उनके कलकत्ता-प्रवास का है। रामदत्तजी भी अपने बडे भाई जानकीदासजी की तरह ही धार्मिक व्यक्ति थे। कलकत्ता रहते तो रोज गगा-स्नान को जाते। एक दिन वह गंगा-स्नान करके लौट रहे थे तो रास्ते मे एक बगाली जमींदार के घर का दरबान अपनी बन्दूक साफ कर रहा था। बन्दूक मे कोई छर्रा रह गया था जो निकल कर रामदत्तजी के घुटने मे आ लगा। उन्होने दरबान को कुछ नही कहा और गद्दी (काम करने और रहने दोनो का स्थान)

चले आये। लोगो ने पुलिस मे रपट लिखाने को कहा तो उन्होने कहा : "डाक्टर बुलवा कर छर्रा निकलवा दीजिये, मुझे किसी गरीब की नौकरी नही छुडानी है।"

दूसरा किस्सा मुकुन्दगढ का है। लडको का एक टोला तालाब मे नहा रहा था। एक लडका नहाते-नहाते डूब गया। चीख-पुकार मची तो शोर सुन कर रामदत्तजी पहुचे और तालाब मे कूद पडे। उन्होने लडके को किसी तरह बाहर निकाला, दूसरे लडको को दौडा कर तुरन्त वैद्य को भी बुलाया पर लडका बच नही सका।

रामदत्तजी के तीन पुत्र और दो पुत्रिया हुई—गगाबक्स, प्रह्लाद और भागीरथ तथा नर्मदा और कृष्णा। तीनो भाइयो मे बडे होने के कारण गगाबक्सजी के मन मे परिवार की हालत सुधारने की इच्छा सबसे ज्यादा बलवती थी। परिवार की उन्नति और समृद्धि के लिए उन्होने अपने को बचपन से ही झोक दिया। १३-१४ वर्ष की उम्र मे एक बार बम्बई मे भाग्य आजमाने के बाद वह कलकत्ता चले आये और बिडलो की गद्दी "बलदेवदास-जुगलकिशोर" मे मुनीमी करने लगे। भागीरथजी के निर्माण मे उनके बडे भाई गगाबक्सजी की क्या भूमिका रही, इसका अन्दाज लगा पाना मुश्किल है। यहा हम इतना ही कह कर सतोष करते है कि भागीरथजी का जो चरित्र और व्यक्तित्व बना, वह गगाबक्सजी के बिना शायद बन नही पाता। उन्होने भाई से भी ज्यादा पिता की तरह भागीरथजी को बनाने मे योग दिया।

३
प्रारम्भिक जीवन

भागीरथजी के बचपन के बारे मे हम कोई जानकारी इकट्ठा नही कर पाये क्योकि उनके समवयस्क लोग अब नही के बराबर है। उनके परम मित्र सीतारामजी ने, जो उनसे ढाई वर्ष बडे है, बताया कि तेरह वर्ष की उम्र मे उनका भागीरथजी से पहली बार परिचय हुआ था, "सवत् १९६२ मे नवलगढ (सीतारामजी का जन्म-स्थान) मे प्लेग की बीमारी फैली तो मैं मेरे पिताजी के मामा के परिवार के साथ मुकुन्दगढ चला आया। उस समय मेरी उम्र १३ वर्ष की थी। मुझे मुकुन्दगढ की पाठशाला मे दाखिल किया गया। इसी पाठशाला मे भाई भागीरथजी भी पढा करते थे। तब उनकी उम्र साढे दस बरस की थी। यह मेरा उनका पहला परिचय था। मैं ढाई-तीन महीने मुकुन्दगढ रहने के बाद नवलगढ लौट आया। इसके ७-८ वर्ष बाद जब मैं कलकत्ता आया, तब पहले परिचय के आधार पर फिर परिचय हुआ पर घनिष्ठता नही हुई, घनिष्ठता तो लगभग बीस वर्ष बाद जाकर हुई।" भागीरथजी के बचपन के बारे मे सीतारामजी भी पाठशाला मे तीन महीने के अपने साथ के सिवाय कुछ न बता सके।

भागीरथजी की मृत्यु के दो-एक साल पहले उनकी जीवनी लिखने के मकसद से यह सोचा गया था कि उनके बचपन के बारे मे उनसे कुछ मोटी-मोटी जानकारी हासिल की जाय। वह अपने बारे मे कुछ भी लिखे जाने के विरुद्ध थे। जीवन-काल मे उनके

अभिनन्दन की कई योजनाए वनी लेकिन उनका उन्होने इतनी कडाई से विरोध किया कि वे उनके प्रशसको और भक्तो के मन मे ही रह गयी। दो-एक साल पहले 'धोखा' देकर उनके वचपन के वारे मे जानने की वात भी सोची गयी—भागीरथजी को राजस्थान और खासकर शेखावाटी के जन-जीवन और वहा की कहावतो, लोक-कथाओ और रीति-रिवाजो के वारे मे वताने मे वहुत रस आता था, सो यह कह कर कि "हम आपके वचपन के समय की शेखावाटी के वारे मे जानना चाहते हैं," प्रकारातर से उनके वचपन के वारे मे जानकारी प्राप्त की जाय, किन्तु यह भी सम्भव नही हुआ।

सो भागीरथजी के वचपन के वारे मे मोटी मोटी जानकारी भी नही है। दो-एक वाते अलवत्ता अनुमान से लिखी जा सकती है। मारवाडी वोली मे आर्थिक स्थिति के अच्छी न होने को प्रकट करने के लिए वहुत ही व्यजनात्मक रूप मे 'फीका' शब्द का प्रयोग किया जाता है, जैसे आजकल फला परिवार 'फीका' है। तो जव भागीरथजी का जन्म हुआ तव मुकुन्दगढ के कानोडिया फीके थे। किसी भी परिवार मे और खासकर मारवाडी वनिया परिवार मे आर्थिक स्थिति के अच्छे न होने का प्रभाव सर्वव्यापी और सर्वनाशी होता है। ऐसे मे भागीरथजी का वचपन निश्चय ही उन्मुक्तता और हसी-खुशी के वातावरण मे नही वीता होगा। माता-पिता की छोटी सन्तान होने के कारण हो सकता है कि उन्हे ज्यादा ही स्नेह मिला हो, पर इस विपय मे हमे कुछ पता नही। यह जानने की जरूर इच्छा होती है कि वचपन मे मित्रो के साथ उनके झगडे होते थे या नही, क्योकि उनके साथ कभी किसी मित्र के झगडा होने की वात सुनने मे नही आयी।

भागीरथजी के जन्म (सवत् १९५१) के पाच साल वाद राजस्थान मे भीपण अकाल पडा था, जिसे छपनिया (सवत् १९५६ का) अकाल कहा जाता है। इस अकाल की कहानिया वहुत दिनो तक चलती रही। सवत् १९५६ के दस-पन्द्रह साल वाद तक जनमे लोग भी उन्हे सुनाते है। उस अकाल की विभीषिका का वर्णन करने-वाले कितने ही गीत उस जमाने मे चल पडे थे। भागीरथजी वहुत आर्द्र होकर छपनिया अकाल के मशहूर गीत "छपन्या रै छपन्या वैरी, ओजू मत आज्ये म्हारे देस वैरी" का उल्लेख किया करते थे। इस अकाल की उनके शिशु-मन पर कही न कही वहुत गहरी छाया पडी होगी, क्योकि कही भी अकाल पडने पर उन्हे इस अकाल की हमेशा याद आती। १९७२-७३ के राजस्थान के अकाल के वारे मे अपने एक लेख (चौरङ्गी वार्ता, ५ फरवरी १९७३) मे उन्होने लिखा भी था "यो तो राजस्थान मे अकाल की शिकायत आये दिन ही रहती है लेकिन किसी-किसी वर्ष का अकाल इतना भयकर होता कि उसकी कथा अनेक वर्षो तक चलती है। इस तरह का अकाल एक तो विक्रम सवत् १९०० मे पडा था और दूसरा विक्रम सवत् १९५६ मे . । छपनिये अकाल को देखनेवाले अनेक लोग आज मौजूद भी हैं जो आखो-देखी घटनाओ का हृदय-विदारक वर्णन करते हैं। सन् १९४३ मे वगाल मे जो अकाल की स्थिति लोगो ने देखी, करीव-करीव वैसी ही स्थिति सवत् १९५६ मे राजस्थान की थी। लोगो की जानकारी के लिए मैं यह लिखना चाहता हू कि राजस्थान की सवत् १९५६ की दयनीय स्थिति से द्रवित होकर स्वामी विवेकानन्द ने किशनगढ (अजमेर

जिला) मे रह कर राहत कार्य किया था। एक बार उनके पास राहत कार्य के लिए धन की कमी हुई तो उन्होंने बेलूर स्थित अपने मठ की जमीन भी बेचनी चाही। शिष्यों ने इसका जब हल्का मीठा विरोध किया तो स्वामीजी ने कहा· "मठ से मनुष्य बडा होता है। जमीन को बचाने से मनुष्य को बचाना अधिक आवश्यक है।" जमीन का बैनामा सही करने को जब स्वामीजी कलकत्ता आये तो मैसूर महाराजा को, जो उन दिनो कलकत्ता आये हुए थे, इस बात का पता लगा और उन्होंने स्वामीजी को चालीस हजार रुपये दिये तथा जमीन बेचने से रोक दिया।"

सवत् १९५६ के इस अकाल का श्री घनश्यामदास बिड़ला ने भी बडा मार्मिक वर्णन किया है "मेरी याद मे और शायद सारे हिन्दुस्तान मे १९५६ सवत् जैसा अकाल नही पडा। .. . छप्पन मे यो कहना चाहिए कि बरसात हुई ही नही...भूख के मारे लोग बच्चे बेचने लगे पर लेनेवाले कहा? लोगो की कमर मे रुपये पडे रहे और वे भूख के मारे मरते गये। मैंने अपनी आखो बीसो मुर्दे हमारे गाव के आस-पास सडते देखे और सैकडो खोपडिया बिखरी हुई देखी ..लाखो आदमी राजस्थान मे मरे . किसी-किसी घर मे तो मुर्दा जलानेवाला भी नही बचा।"

जब भी कही अकाल पडता तो भागीरथजी स्वस्थ हो या अस्वस्थ, दौड कर वहा पहुचते। सन् १९४३ मे जब वह जेल से रिहा किये गये तो बगाल मे 'छपनिया' जैसा ही अकाल पडा हुआ था। वह तुरन्त कोई सोच-विचार किये बिना राहत कार्यों मे जुट पडे। अकाल, भूकम्प, बाढ और दगो जैसी प्राकृतिक या मानवीय विभीषिकाओ से पीडित जनो के प्रति उनकी तीव्र सवेदना के बीज निश्चय ही बहुत बचपन मे पडे होगे।

दो-एक बाते और अनुमान के आधार पर कही जा सकती है। बचपन मे कहानिया सुनने और लोगो की बाते सुनने और उन्हे गुनने का उनमे जबरदस्त चाव रहा होगा। १६ वर्ष की उम्र मे वह कलकत्ता चले आये और तब से कलकत्ता के ही स्थायी बाशिदा बन गये हालाकि तब से मृत्यु तक शायद एक भी साल ऐसा न बीता होगा जब वह राजस्थान न गये हो, लेकिन उन्हे शेखावाटी की असख्य मारवाडी कहावतो, लोक-कथाओ और मारवाडी शब्दो की व्युत्पत्ति का जैसा ज्ञान था, उसे देखते हुए यह लगता है कि बहुत बचपन मे ही यह ज्ञान-भण्डार बनने लगा होगा।

बचपन मे वह बहुत धार्मिक भी रहे होगे। सीतारामजी ने बताया. "१९४२ के आन्दोलन मे जब मैं और भागीरथजी एक साथ प्रेसीडेंसी जेल मे थे तो हमने एक साथ रोज रामायण का पाठ करने का नियम बनाया। मुझे यह देखकर अचरज हुआ कि मेरी अपेक्षा उन्हे रामायण की चौपाइया ही नही, गीता के श्लोक भी कही ज्यादा याद थे, जब कि मैं रामायण और गीता का पाठ नित्य-कर्म की भाति रोज करता हू।" रामायण और गीता, भागीरथजी ने निश्चय ही सात-आठ वर्ष की उम्र से पढनी शुरू की होगी। आज से साठ-सत्तर वर्ष पहले तक शेखावाटी के मारवाडी परिवारो मे दान, धर्म-ग्रन्थो के पारायण और साधु-सन्तो के सत्सग की परम्परा बनी हुई थी। शेखावाटी के कसबो मे दूर-दराज से कोई न कोई साधु या 'सिद्ध-पुरुष' या 'महात्मा' पहुचा ही रहता था और उसकी बडी स्थानीय ख्याति रहती थी। भागीरथजी

के पिता रामदत्तजी धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे और ताऊ जानकीदासजी ने तो अपना सारा समय पूजा-पाठ मे ही बिताया। सो बचपन मे भागीरथजी के आसपास का वातावरण धार्मिक रहा होगा और उससे उनमें निश्चय ही धार्मिक सस्कारो की जडे गहरी जमी होगी।

भागीरथजी पाच या छह साल की उम्र मे मुकुन्दगढ मे गनेडीवालो की पाठशाला मे दाखिल हुए। उन दिनो शेखावाटी मे शिक्षा की हालत के बारे में भागीरथजी ने खुद लिखा है "शिक्षा का प्रचार बहुत ही कम था। या तो थोडी-बहुत गुरु-चटशालाए थी अथवा उर्दू-फारसी पढाने के लिए मकतब। मकतबो मे मुसलमान लडको को कोई मौलवी या पीर पढाया करता था। इतनी सी लिखाई-पढाई भी कसबो तक ही सीमित थी। छोटे गावो मे तो शिक्षा का नाम ही नही था। गुरु-चटशालाओ मे छात्रो को अक्षर-ज्ञान करा दिया जाता था, तथा साधारण हिसाब-किताब करने और बही-खाता लिखने की विधि सिखा दी जाती थी। अक्षर-ज्ञान मे ह्रस्व-दीर्घ मात्राओ की जानकारी बहुत कम लोगो को ही होती थी। शुद्ध हिन्दी लिखना तो न छात्र को आता था, न छात्र के अभिभावक को और न स्वय अध्यापक महोदय को ही।" शेखावाटी के "अध्यापक महोदयो" के बारे मे भागीरथजी ने जो लिखा है वह उनके गुरु कल्याणबक्सजी जोशी पर अलबत्ता लागू नही होता। सीतारामजी ने बताया: "मुकुन्दगढ पाठशाला के गुरु कल्याणबक्सजी जोशी मिड्ल या उससे कम पढे थे, लेकिन हिन्दी, सस्कृत और उर्दू का उन्हे बहुत अच्छा ज्ञान था। उन्हे बहुत अच्छा शिक्षक भी माना जाता था। उस समय के गुरु लोग लडको को बहुत मारा करते थे। कई गुरु तो लडको को नीम के पेड और दीवार की खूटी पर लटका देते थे और ऐसे गुरुओ को बहुत अच्छा माना जाता था। कल्याणबक्सजी बहुत अच्छा और मन लगा कर पढाते थे, पर उस जमाने के "अच्छे" गुरुओ की तरह उन्हे भी लडको को मारने की आदत थी। वह डडूकली (डडे) से मारते थे। मैं मुकुन्दगढ की पाठशाला मे ढाई-तीन महीने ही पढा। इस बीच मुझे मार नही पडी। ढाई-तीन महीने मे पडती भी क्या? भाई भागीरथजी को मेरे रहते कभी नही पडी और शायद ऐसे भी कभी नही पडी होगी। वह पढने मे बहुत तेज माने जाते थे।"

भागीरथजी के निकट सम्बन्धी ८१ वर्षीय केशरदेवजी कानोडिया ने कल्याणबक्सजो जोशी के बारे मे एक बहुत ही सुन्दर कहानी सुनायी. "मैं भी कल्याणबक्सजी से पढा। वह मारते जरूर थे, पर हमलोगो को बडी निष्ठा से पढाया करते थे। सच्चरित्र और साधु स्वभाव के तो इतने थे कि एक बार उनका नौजवान बेटा एक महात्मा के पास मन की शाति प्राप्त करने गया तो उस महात्मा ने उससे कहा "तेरे घर मे तेरा बाप महात्मा है। उसके रहते तुझे मेरे पास आने की जरूरत नही।"

भागीरथजी ने मुकुन्दगढ की पाठशाला मे छह-सात वर्ष तक शिक्षा प्राप्त की। अग्रेजी, हिन्दी और उर्दू तथा हिसाब को महाजनी पद्धति का साधारण ज्ञान प्राप्त किया। इसी पाठशाला मे कलकत्ता के प्रसिद्ध मारवाडी सामाजिक-राजनीतिक नेता बसन्तलालजी मुरारका भी कुछ दिनो उनके सहपाठी रहे। इस प्रकार उनका बचपन

की या स्कूली शिक्षा तो बहुत ही अपर्याप्त रही। भागीरथजी अक्सर कहा करते . "मेरी समूची पढाई पर किताब, स्लेट, वर्त्ता, स्कूल की फीस आदि पर सब मिला कर एक रुपया या बहुत ज्यादा हो तो कुल मिला कर दो रुपया खर्च हुआ होगा।"

राजस्थान से कलकत्ता आने के बाद भागीरथजी ने अपनी कुशाग्र बुद्धि के चलते बहुत कम ही समय मे अच्छी अंग्रेजी लिखना-पढना सीख लिया। उनके साथ काम किये हुए सभी लोगो की राय है कि उनका अंग्रेजी मे लिखा ड्राफ्ट (मसौदा) बहुत सटीक और अच्छा होता था। भतीजे राधाकिशनजी कानोडिया ने, जिन्होंने अंग्रेजो के जमाने मे भागीरथजी को व्यापारिक चिट्ठिया लिखते हुए देखा है, बताया "चाचाजी की लिखी चिट्ठिया अंग्रेज व्यापारियो को स्पष्टता के कारण बहुत पसन्द आती थी।" कलकत्ता मे १९१६ से युवा मारवाडी सामाजिक-राजनीतिक कार्यकर्ताओ की जो मित्र-मण्डली सक्रिय हुई, उसमें प्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका और बैजनाथजी देवडा को छोड कर किसी को भी स्कूल-कॉलेज की शिक्षा प्राप्त नही हुई थी। इस मण्डली में भागीरथजी, प्रभुदयालजी और बैजनाथजी ही अंग्रेजी के अच्छे जानकार माने जाते थे।

उनका हिन्दी का ज्ञान तो स्वाध्याय के कारण बढता ही गया। बचपन मे जो उर्दू पढी, वह भूली नही। सीतारामजी ने बताया "गाधीजी के कहने पर हिन्दुस्तानी के प्रचार के लिए जब गाधीवादी कार्यकर्ताओ ने उर्दू सीखना शुरू किया तो भाई भागीरथजी को सीखने की जरूरत नही पडी, वह पहले से ही उर्दू जानते थे।" श्रीमती शन्नो देवी ने, जिनकी पजाब मे स्वतन्त्रता-सग्राम मे विशिष्ट भूमिका रही है, हाल में भागीरथजी की राजस्थानी कहावतो की कहानियो की पुस्तक 'बहता पानी निर्मला' पढने के बाद एक पत्र मे लिखा "मुझे पता ही नही था कि भागीरथजी को उर्दू-फारसी का इतना ज्ञान था। मैं तो यही समझती थी कि वह सिर्फ हिन्दी जानते थे। पुस्तक पढने से पहली बार यह पता चला कि उनको उर्दू-फारसी मे भी कमाल हासिल था।" सस्कृत और उर्दू के ज्ञान तथा मारवाडी बोली के प्रति अगाध प्रेम के कारण भागीरथजी का लिखा हिन्दी गद्य बाबू बालमुकुन्द गुप्त के गद्य जैसा आनन्द देता है। आज जब हिन्दी का क्रमश अंग्रेजीकरण होता जा रहा है और अपनी प्रकृति के विपरीत उसका वाक्य-विन्यास हो रहा है तब भागीरथजी के हिन्दी गद्य की स्पष्टता और उसमे मारवाडीपन की हल्की आच हिन्दी-गद्य की अमित सम्भावनाओ को प्रकट करती है।

४
व्यावसायिक जीवन

व्यवसायी और उद्योगपति के रूप मे सफल होने के लिए व्यक्ति मे तीव्र व्यक्तिगत महत्वाकाक्षा और अपने उद्देश्य से इतर कारणो द्वारा प्रभावित न होने की एक प्रकार की निर्ममता आवश्यक है। भागीरथजी मे ये दोनो ही 'गुण" या "अवगुण" न थे। वह किसी भी परिभाषा से कडे व्यक्ति नही थे। हमने तो यहा तक सुना है कि

उनके मातहत काम किये हुए लोगो को दूसरे लोग, अपने यहा रखने से इसलिए हिचकते थे कि भागीरथजी ने अपने उदार स्वभाव के कारण उनकी आदतें विगाड़ दी होंगी।

हमारे इस युग की शायद सबसे वडी ट्रैजेडी यह है कि हम किसी भी प्रकार अर्जित सफलता को ही सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण मान बैठे हैं। ऐसे मे समाज मे महत्वकाक्षाओ को अराजकता फैलती है और मानवीय मूल्य समाप्त होते जाते है। भागीरथजी जैसे व्यक्ति व्यवसाय के क्षेत्र मे अत्यधिक कुशल न होने के बावजूद जीवन के व्यापक क्षेत्र मे कही मानवीय मूल्यो के क्षय को रोकते है। हमारी दृष्टि मे यह बहुत वडी बात है। भागीरथजी के जीवन मे यदि कोई विडम्बना थी तो यह कि सेठ होना नही चाह कर भी वह सेठ माने जाते रहे। वैश्य परिवार मे जन्म लेने और आज से सत्तर-अस्सी वर्ष के पहले के राजस्थान मे अन्य किसी पेशे का विकल्प न रहने के कारण वह व्यवसाय के क्षेत्र मे उतरे और आगे जाकर व्यवसायी से उद्योगपति भी बने।

भागीरथजी के वडे भाई गगाबक्सजी सन् १९०१ मे कलकत्ता आये और विडलो की गद्दी वलदेवदास-जुगलकिशोर मे मुनीमी करने लगे। वह वलदेवदासजी के कृपा-पात्र वने और समवयस्क होने के कारण जुगलकिशोरजी के साथी। अपनी व्यावसायिक प्रतिभा, कठिन परिश्रम और साधु-स्वभाव के कारण उन्होने जल्द ही गद्दी में सबका मन जीत लिया। दस वर्ष बाद सन् १९११ मे जब उन्होने भागीरथजी को कलकत्ता बुलाया, तब वह गद्दी मे 'स्थापित' हो चुके थे। १६ वर्ष की उम्र मे भागीरथजी भी विडलो की इस गद्दी मे काम करने लगे। यह गद्दी बड़ाबाजार के अफीम चौरस्ते के पास १८ मल्लिक स्ट्रीट पर 'काली गोदाम' नाम से मशहूर एक इमारत मे थी। काली गोदाम मे और भी वहुत सारी गद्दिया थी। आजकल वहुमजिला इमारतो मे जिस तरह वडी-वडी कम्पनियो के एयरकडीशन दफ्तर होने हैं कुछ उसी प्रकार काली गोदाम मे गद्दिया थी। उस वक्त एयरकडीशन का तो सवाल ही नही था, गद्दियो मे टेवुल-कुरसी तक नही होती थी। एक वडे मे गद्दे पर सफेद चाननी (चादर) विछी रहती थी, जो हफ्ते मे शायद एक बार वदली जाती थी। वावू लोग और उनके मुनीम सुवह सात वजे से रात वारह वजे तक काम करने के बाद इसी गद्दे पर पसर जाते थे। स्त्रिया देस (राजस्थान) मे रहती थी। गद्दी मे ही निपटना, खाना, सोना आदि सब होता था। निपटने के लिए क्यू (कतार) लगता था। आज जिनके कमरो से सटा पश्चिमी ढग का नाना प्रकार की सुविधाओवाला स्नान व शौच-गृह होता है, वे ही लोग तब नहाने-निपटने के लिए क्यू मे खडे रहते थे। श्री घनश्यामदास विडला ने अपनी पुस्तक 'कुछ देखा, कुछ सुना' मे गद्दियो की उन दिनो की दशा का वहुत अच्छा वर्णन किया है। कई मुनीम और कर्मचारी तो पाच-पाच सात-सात दिन गद्दी के बाहर ही नही निकल पाते थे। उन दिनो की ये मारवाडी गद्दिया ही आज के मारवाडी उद्योगपतियो के आलीशान एयरकडीशन दफ्तरो और चेम्वरो की जननी थी।

गद्दियो के जीवन मे मितव्ययिता का आदर्श कृपणता की हद तक पहुचा हुआ था। अपनी और अपने मातहतो की सुविधा और आराम की मारवाडी सेठ को उन दिनो तनिक भी फिक्र नही थी, वह तो अहर्निश एक ही धुन मे लगा रहता—किस तरह कम से कम खर्च किया जाय—चमडी जाय पर दमडी नही और ज्यादा से ज्यादा कमाया जाय।

विडलो की गद्दी मे अन्य गद्दियो की अपेक्षा शायद कुछ ज्यादा सफाई और सुविधा रही हो, पर उसकी जीवन-पद्धति भी वही थी जो अन्य गद्दियो की थी। सुबह उठने से लेकर रात सोने तक हिसाव, रोकड, लेवा-वेची और तेजी-मदी की इस दुनिया मे पठन-पाठन और मनन असम्भव चीज थी। ऐसी दुनिया मे भागीरथजी वरसो रहे और इसीमे रह कर पठन-पाठन तथा अपनी सवेदना का विस्तार कर सके, यह कोई मामूली वात नही, क्योकि गद्दी-सस्कृति, व्यक्ति को अत्यन्त सीमित व मकीर्ण कर देती थी। उसमे पला हुआ व्यक्ति हर चीज को रुपयो तथा नफे-नुकसान के मानदण्ड से ही देख पाता था, उसके लिए जीवन मे रुपयो के मूल्य के सिवाय अन्य कोई मूल्य नही रहता था।

मारवाडी सेठो मे यह परम्परा रही है कि वे अपने विश्वासपात्र और मुख्य रूप से काम सम्भालनेवाले मुनीमो की किसी-किसी व्यापार मे कुछ न कुछ पाती (हिस्सेदारी) रख देते थे और उन्हे स्वतत्र रूप से व्यापार करने की भी छूट दे देते थे। उस जमाने के कई धनी मारवाडी सेठ मुनीम से लखपति वने थे और आज के कई मारवाडी करोडपति उद्योगपति परिवारो के एक पीढी पहलेवाले मुखिया पचास-पचपन वर्ष पहले तक मुनीम थे। गगावक्सजी को वलदेवदास-जुगलकिशोर मे काम करते हुए कुछ वर्ष ही वीते होगे कि जुगलकिशोरजी ने कुछ कामो मे उनकी पाती रख दी। इस तरह भागीरथजी ने जव विडलो की गद्दी मे काम करना शुरू किया तव उनकी स्थिति विशुद्ध कर्मचारी के बजाय कर्मचारी-मालिक जैसी कुछ थी। गद्दी मे गगावक्सजी, जुगलकिशोरजी के साथ काम करते थे तो भागीरथजी, घनश्यामदासजी के साथ।

जिस साल (सन् १९११) भागीरथजी ने काम करना शुरू किया शायद उसी साल विडलो ने जापानी कपडा आयात करने का काम शुरू किया था। सन् १९१० से लेकर सन् १९१८ तक का समय विडलो के उत्कर्ष का समय था, इसी समय एक तरह से उनके भावी औद्योगिक साम्राज्य की नीव पडी और इसी दौरान पहला विश्व युद्ध भी हुआ। कहते है कि सन् १९१४ और १९१८ के बीच विडला २० लाख से वढ कर ८० लाख के आसामी हो गये, लगभग करोडपति वन गये। विडलो का काम वढता ही जा रहा था। वलदेवदास-जुगलकिशोर की गद्दी नये कामो के लिए छोटी और नाकाफी महसूस होने लगी। अव कलकत्ता के अगरेज सौदागरो के इलाके (डलहौजी स्क्वायर) मे विडला व्रदर्स की स्थापना हुई। भागीरथजी ने सन् १९३९ तक विडला व्रदर्स मे काम किया। इसके वाद गगावक्स जी के कुशल निर्देशन मे कानोडिया परिवार ने स्वतत्र रूप से काम करना शुरू कर दिया। १९३९ मे कानोडियो का विडलो से चालीस वर्ष का व्यापारिक सम्बन्ध तो समाप्त हुआ, पर पारिवारिक सम्बन्ध बना रहा। कानोडिया, विडला-समूह के ही अग माने जाते रहे। स्वतत्र व्यापार की नीव वैसे तो सन् १९२७-२८ मे ही पड गयी थी, जव गगावक्सजी ने कानोडिया कम्पनी की स्थापना की थी। इसके कुछ ही दिनो वाद उन्होने पूर्वी वगाल मे एक जूट वेलिंग प्रेस भी लगाया। सन् १९३९ मे जव विडलो से अलग हुए तव विडलो की ही मदद से जनरल प्रोड्यूस कम्पनी का काम शुरू किया। यह कम्पनी हेसियन वोरो तथा पाट का निर्यात करती थी।

ऐसा लगता है कि २५-३० वर्ष की जवान उम्र मे ही व्यापारिक क्षेत्रो में भागीरथजी आदरणीय हो गये थे, क्योकि उन्हें 'पचायतिया' सौपी जाने लगी थी। आज से लगभग ५५-६० वर्ष पहले भागीरथजी द्वारा की गयी पचायती का यह किस्सा हमारे सुनने मे आया है जुगलकिशोरजी के परिचित दो व्यापारियो मे किसी सौदे को लेकर झगडा पड गया। एक व्यापारी ने जुगलकिशोरजी से अनुरोध किया कि वह झगड़े का निपटारा कर दे। जुगलकिशोरजी राजी नही हुए। उन्होने व्यापारी को कहा कि तुम किसी और का नाम सुझाओ तो उसने भागीरथजी का नाम सुझाया। दूसरे व्यापारी ने भी भागीरथजी का नाम मजूर कर लिया।

(राजस्थान से व्यापार के लिए कलकत्ता आये लोगो के बीच गावो मे पंचायत का जो रूप था, वह शहर आकर वदल गया था। पचायत के वदले दोनो पक्ष एक ऐसे प्रतिष्ठित व्यक्ति को चुन लेते जिस पर उनका भरोसा हो। ऐसे प्रतिष्ठित व्यक्ति को ज्यादातर व्यापारियो के सौदे सम्वन्धी और भाइयो के बीच हिस्सेदारी सम्वन्धी झगडो का निपटारा करना पडता था। सामान्यत. मारवाडी कोर्ट-कचहरी से वहुत घवराता है। कहते है कि आजादी के पहले कलकत्ता के मारवाडी फर्मो के बीच झगड़े के सिर्फ तीन ही मामले अदालत तक पहुचे थे। वहरहाल, दोनो पक्ष द्वारा मजूर व्यक्ति दोनो पक्षो की वात सुन कर तथा अन्य लोगो से तथ्यों का पता लगा कर निर्णय किया करता था।)

भागीरथजी ने दोनो पक्षो की वात सुन कर निर्णय दिया तो वह व्यापारी जिसने भागीरथजी का नाम सुझाया था, वहुत नाराज हुआ। उसने जुगलकिशोरजी से निर्णय के विरुद्ध शिकायत की और कहा "मैंने तो अपना आदमी सोच कर भागीरथजी का नाम सुझाया था लेकिन उन्होने तो सामनेवाले का पक्ष लिया।" इस पर जुगल-किशोरजी ने इस व्यापारी के सामने ही भागीरथजी से कहा "ये कहते है कि तुमने इनके साथ अन्याय किया है।" भागीरथजी ने जवाव दिया: "मैने अपनी जान मे अन्याय नही किया, जो उचित लगा वही निर्णय किया।" इस पर व्यापारी ने, जो उम्र मे भागीरथजी से दुगुना था, तैश मे आकर कहा, "वडो आयो युधिष्ठिर।"

भागीरथजी की युधिष्ठिर से तुलना एक और विपय मे भी सार्थक है—जिस तरह युधिष्ठिर को द्यूत की लत थी, उसी तरह भागीरथजी को भी फाटके की लत थी। शायद भागीरथजी का एक मात्र अवगुण फाटके के प्रति यह मोह ही था। भागीरथजी के समधी (पुत्री उषा के श्वसुर) नथमलजी भुवालका का, जो पिछले दस-वारह वर्षो से उनके वहुत निकट आ गये थे और उनके साथ गगोत्री और यमुनोत्री की यात्रा मे भी गये थे, कहना है कि भागीरथजी फाटका इसलिए खेला करते थे कि उन्हे हमेशा लोगो को रुपये देने की जरूरत रहती थी। वह यह सोचते थे कि फाटके से जो प्राप्त होगा, उसे लोगो को दे देंगे। फाटके से जव उन्हे लाभ होता तो किसी को पता नही चलता क्योकि ये रुपये वह चुप-चाप लोगो को देने मे खर्च कर देते थे। लेकिन जव घाटा होता तो फर्म के लोगों को पता चल जाता क्योंकि भुगतान का सवाल उठता। नथमलजी ने कहा कि भागीरथजी कमाई के लोभ मे फाटका नही खेलते थे। यह सुन कर मन मे सवाल उठा कि युधिष्ठिर के वारे मे वार-वार पढा है

कि उन्हे द्यूत की लत थी और इसमे वह हमेशा खोते ही खोते थे, लेकिन इस बात का कही पता नही चलता कि क्या पाने के लिए वह खेलते थे ।

भागीरथजी ने २५ — ३० वर्ष की उम्र से जीवन के अतिम दिनो तक बहुत सी 'पचायतिया' की और इधर पैसो के बाहुल्य और "स्टैंडर्ड" ऊचा उठाने के कारण मारवाडियो के बीच पिता-पुत्र के और पति-पत्नी के आधुनिक झगडे बढने लगे तो उनमे भी दोनो पक्ष उनकी शरण मे जाते ।

भागीरथजी के बिडलो की गद्दी मे काम करने के वक्त का एक वाकया केशरदेवजी कानोडिया ने सुनाया "भागीरथजी के दयालु स्वभाव का आसपास के लोगो और खासकर गद्दी मे काम करनेवाले लोगो को पता हो गया था। लोग अपने आर्थिक कष्ट के बारे मे उन्हे बताते तो वह कुछ न कुछ जरूर सहायता करते और एक बार कर देने के बाद यदि लम्बे अरसे तक सहायता न मागी जाती तो खुद पूछते। एक दिन गद्दी के खजाची गगाधरजी हरलालका ने मुझसे (केशरदेवजी भी बिडलो की ही गद्दी मे ही काम करते थे) कहा 'मेरा कभी न कभी भागीरथ बाबू से झगडा होगा, क्योकि वह बीसियो आदमियो को मुझसे रुपये लेने के लिए चिरकुट (परची) माड (लिख) देते हैं। हिसाब होने पर जब वह देखेंगे कि रुपये इतने ज्यादा हो गये हैं तो उन्हे विश्वास ही नही होगा और मुझ पर नाराज होगे और तब मैं भी कुछ कह दूगा।' इस पर मैंने (केशरदेवजी) गगाधरजी से कहा 'आप बिल्कुल निश्चिन्त रहे, मैं गारण्टी देता हू कि आपका उनसे कोई झगडा नही होगा, वह आपसे पूछेंगे भी नही कि इतने ज्यादा रुपये कैसे हो गये।' मेरी बात सच निकली। गगाधरजी की शका निर्मूल सिद्ध हुई। जोड बताने पर भागीरथजी ने जितने रुपये हुए उन्हे अपने नाम मडवा (लिखवा) लिया, परचियो को देखा तक नही।"

बिडला ब्रदर्स ने १९१८—२२ के दौरान कई नयी मिलें खरीदी । कलकत्ता मे केशोराम काटन मिल व जूट मिल और ग्वालियर तथा दिल्ली मे कपडा मिलें इसी दौरान की चीजे है। दफ्तर के काम को सुचारु रूप से चलाने और उसे अग्रेजो जैसा बनाने के लिए बिडला ब्रदर्स मे नये नियम बनाये जाते तो घनश्यामदासजी कहते "नियम बनाते वक्त यह ध्यान मे रखना होगा कि वे भागीरथजी पर लागू नही होगे। वह नियम पर नही चल सकेंगे। अगर उन्होने देखा कि उनसे मिलने तीन-चार आदमी आये हुए हैं तो वे सभी को एक साथ बुला लेगे।" भागीरथजी यह बरदाश्त नही कर सकते थे कि कोई उनकी प्रतीक्षा करे और अगर कोई उनसे मिलना चाहता है तो बिना मिले चला जाय। उनकी सत्तर-पचहत्तर वर्ष की उमर तक तो घरवालो ने उनकी इस आदत को स्वीकार कर लिया था पर बाद मे उनकी पत्नी, पुत्रियो और पुत्र-वधुओ ने कडाई बरतने की चेष्टा की, लेकिन व्यर्थ। सोने चले जाने के बाद भी जब कोई उनसे मिलने आ जाता तो वह बिस्तर छोड कर कमरे से बाहर मिलने आ जाते और बरजनेवालियो को कहते, "कितनी दूर से चल कर आया होगा ? पाच मिनट मिल लूगा तो मेरे क्या फर्क पड जायगा।"

भागीरथजी का एकदम प्रारम्भ का व्यावसायिक जीवन बडे भाई गगाबक्सजी की छाया मे बीता। जब तक गगाबक्सजी जीवित रहे एक प्रकार से भागीरथजी के अभिभावक बने रहे। लेकिन यह ऐसा अभिभावकत्व था जिसमे भागीरथजी को अपने

मानवीय गुणो का विकास करने का निर्बाध अवसर मिला। सयुक्त परिवार के आदर्श मुखिया की जो आदर्श छवि हमारे मन मे है वह गंगावक्सजी पर पूरी तरह चरितार्थ होती है। गगावक्सजी ने कभी भी भागीरथजी को किसी चीज के लिए टोका नही, उदारता मे अव्यावहारिकता के लिए भी नही। इसका एक कारण तो यह भी था कि वह स्वय उदार थे और उदारता को गुण मानते थे। उनके मन मे अपनी भूमिका निश्चित थी कि वह मुख्य रूप से व्यवसायी हैं और व्यवसाय की दिशा मे वढते रह-कर अपने परिवार को सभालते हुए ही उन्हे समाज का जितना भी कल्याण हो सके करना है। अपनी इस भूमिका का उन्होने पूरा निर्वाह किया—कानोडिया परिवार को फिर से सम्पन्नता दिलायी और अपनी सीमाओ के भीतर समाज के कल्याण और सुधार के लिए काम भी किये। १६२६ मे भागीरथजी ने खादी पहनना शुरू किया तो गगावक्सजी ने भी खादी अपना ली ताकि भागीरथजी को कही यह न लगे कि वह उनके साथ नही हैं।

चालीस की उमर के आसपास मे पत्नी के मरने के वाद गंगावक्सजी ने दूसरा विवाह नही किया। १९१८ मे तो तीन दिन के भीतर प्लेग मे उन्होने अपने पिता रामदत्तजी, अपने छोटे भाई प्रहलादरायजी और अपने ज्येष्ठ पुत्र गोवर्धन को खोया। यह प्लेग परिवार के लिए वडी घातक सिद्ध हुई। परिवार के आठ व्यक्तियो की मृत्यु हुई। तीन वर्ष वाद सवत् १९७८ (सन् १९२२-२३) मे भागीरथजी की मा आनी देवी की भी मृत्यु हो गयी। १९४८ मे जव गगावक्सजी की मृत्यु हुई तो भागीरथजी को ५३ वर्ष की उम्र मे शायद पहली वार पारिवारिक दायित्व की प्रतीति हुई होगी, क्योकि गगावक्सजी ने अपने जीवन-काल मे उन्हे पारिवारिक चिंता और दायित्व से सर्वथा मुक्त रखा था। गगावक्सजी की मृत्यु के वाद भागीरथजी ने दीवाली की पूजा कभी नही की, कहते, "भाईजी तो मेरे हाथ थे। जव हाथ ही नही है तो विना हाथ के पूजा कैसे करू ?"

गगावक्सजी की मृत्यु तक कानोडिया-परिवार का मुख्य व्यवसाय पाट था। लेकिन देश का विभाजन होने पर यह व्यवसाय घटने लगा तो उसने नये-नये क्षेत्रो मे प्रवेश किया। चायवागान और चीनी मिलें खरीदी—१९५० मे असम मे दो चाय वागीचे और विहार के वगहा मे चीनी मिल। १९५३ मे भागीरथजी ने गुजरात के वीरमगाम मे कपडे की मिल 'प्रभा मिल' खरीदी। १९५४ मे सयुक्त परिवार नये-नये दवावो और व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओ के कारण टूट गया। १९५६ मे भागीरथजी ने मध्यप्रदेश के वुरहानपुर मे कपडा मिल 'वुरहानपुर ताप्ती मिल' खरीदी और इसके वाद १९५८ मे उत्तर वगाल मे डिमडिमा चाय वागीचा और फिर असम मे वोरगिला चाय वागीचा। १९६३ मे उन्होने राजस्थान के किशनगढ मे सूता मिल 'आदित्य मिल' वैठायी। १९७० तक भागीरथजी व्यवसाय मे सक्रिय रहे। इसके वाद उन्होने व्यवसायिक जीवन से लगभग सन्यास सा ले लिया। १९११ मे शुरू हुआ व्यावसायिक जीवन इस तरह लगभग ६० वर्ष चला। इसमे कई मौके तो ऐसे आये जव भागीरथजी को अत्यत मानसिक कष्ट और तनाव से गुजरना पडा।

५

पारिवारिक जीवन

पद्रह वर्ष की आयु मे भागीरथजी का चूडी के केजडीवाल परिवार मे श्रीमती भगवानी देवी से विवाह हुआ। इसके कुछ महीनो वाद ही वह जीविकोपार्जन के लिए कलकत्ता चले आये और वही रहने लगे। भगवानी देवी मुकुन्दगढ ही रही। दस वर्ष बाद १९२० मे सारा कानोडिया परिवार जब कलकत्ता आकर रहने लगा तब भगवानी देवी भी कलकत्ता आ गयी। विवाह के छह वर्ष वाद उन्हे पहली सन्तान हुई—नन्दलाल और इसके साढे चार वर्ष बाद दूसरी—तुलसीदास। तुलसीदासजी के जन्म के बाद भगवानी देवी को तपेदिक हो गया और तीन वर्ष वाद वनारस मे उनकी मृत्यु हो गयी।

अपने १३ वर्ष के दाम्पत्य जीवन मे एक हिन्दू स्त्री के सस्कारो के अनुरूप भगवानी देवी ने पति की हर इच्छा को अपनी इच्छा माना। सयुक्त परिवार के हित मे अपनी निजी इच्छाओ का दमन किया। भागीरथजी के मझले भाई (लेकिन उनसे बडे) प्रह्लादजी का २५ वर्ष की आयु मे प्लेग मे देहान्त हो गया था। वह अपने पीछे दो पुत्रिया छोड गये थे। उनकी विधवा पत्नी वसन्ती देवी चाहती थी कि भागीरथजी के उस समय इकलौते पुत्र नन्दलालजी को दत्तक ले लें। भगवानी देवी अपने इकलौते पुत्र को अपनी जेठानी को देने को तैयार हो गयी। यह कोई कम वडा त्याग न था क्योकि उस जमाने मे दत्तक चले जाने का अर्थ यह होता था कि पुत्र को उसे जन्म देने वाली मा को मा कहने और मा के लिए पुत्र को पुत्र कहने तक का अधिकार नही रहता था।

भगवानीदेवी की मृत्यु के एक वर्ष बाद २९ वर्ष की आयु मे भागीरथजी का मुकुन्दगढ के बागडोदिया परिवार की श्रीमती गंगा देवी के साथ विवाह हुआ। गगा देवी से भागीरथजी को सात सन्तानें हुई—आत्माराम, सावित्री, सुशील, अश्विनी कुमार, ज्योतिप्रकाश, सन्तोष कुमार और उषा। तृतीय सन्तान सुशील की तीन वर्ष की अल्पायु मे ही मृत्यु हो गयी। कुछ ही वर्ष पहले भागीरथजी की सन्तानो ने अपने माता-पिता के दाम्पत्य जीवन की स्वर्ण जयन्ती मनायी थी।

आज तो भागीरथजी के वेटे तक दादा हो गये है। वेटे-बेटियो और पौत्रो का अपना-अपना परिवार हो गया है। १९४० तक भागीरथजी का पारिवारिक जीवन पूरी तरह सयुक्त परिवार के तहत ही बीता। इस समय बच्चो के बडे होने और उनके विवाह होने के साथ बडाबाजार के मकान मे जगह कम होने लगी और भागीरथजी बालीगज मे आकर रहने लगे, यद्यपि सयुक्त परिवार बना रहा। गगाबक्सजी की मृत्यु के बाद सयुक्त परिवार टूटता गया और भागीरथजी का अपना परिवार भी वेटो द्वारा स्वतत्र व्यवसाय शुरू करने के साथ विभाजित हो गया।

व्यावसायिक जीवन और उसके साथ सामाजिक सेवा कार्यो मे व्यस्तता के कारण भागीरथजी अपनी पत्नी और सतानो को उतना समय नही दे सके जितना कि आज का तथाकथित आधुनिक पिता देता है। भागीरथजी की पत्नी गगा देवी ने वताया कि दफ्तर के काम के वाद का सारा समय सार्वजनिक काम मे लगाने के कारण भागीरथजी घर के कामो मे विलकुल ही समय नही दे पाते थे। जव घर मे रहते तो सारे वक्त मुलाकाती आते ही रहते। सार्वजनिक कार्यकत्ताओ की पत्नियो और वच्चो की जैसी उपेक्षा होती है वैसी ही उनकी और वच्चो की हुई। सास-ससुर भी नही थे और गृहस्थी मे दैनन्दिन जीवन मे छोटी-वडी समस्याए आती रहती थी, शुरू-शुरू मे वह वहुत घवरा जाती थी और कभी कभी वहुत खीझ भी जाती थी। लेकिन आहिस्ते-आहिस्ते आदत पड गयी और उन्होने मान लिया कि ऐसे ही चलेगा।

एक विदेशी महिला ने एक वार गाधीजी से कहा कि आप वहुत उदार है तो उन्होने जवाव दिया कि आप इस वारे मे श्रीमती गाधी (माता कस्तूरबा) से दरियाफ्त करे तो आपको मालूम होगा कि मेरे जैसा अनुदार व्यक्ति दुनिया मे कोई नही है। भागीरथजी गगादेवी के प्रति निश्चय ही अनुदार नही थे, लेकिन अपने निस्पृह स्वभाव के कारण वह यह मानते थे कि अपनी इच्छा को गौण और दूसरो की इच्छा को प्रधान मानना चाहिए। गगा देवी के लिए यह मानना भागीरथजी जितना सहज और स्वाभाविक न था। गगा देवी ने कहा "मैं साधारण स्त्री हू। मैं घर गृहस्थी के धरातल पर ही रहती थी। कभी कोई शिकायत करती और अगर उसकी वह उपेक्षा करते तो वहुत दुखी हो जाती।"

गगा देवी आज से ४५-५० वर्ष पहले खादी की फेरी करने और पर्दा निवारण के लिए घर-घर गयी थी। इस वारे मे पूछने पर उन्होने वताया कि भागीरथजी चाहते थे कि वह ज्यादा से ज्यादा सार्वजनिक कार्यो मे भाग ले। जेठ गगावक्सजी वहुत ही उदार व्यक्ति थे लेकिन उन्हे घर की वहू-वेटियो का फेरी करने और काग्रेस के लिए चदा मागने घर घर जाना अति लगता था। उन्हे पसन्द न था कि वह घर-घर जाए। ऐसे मे वह वडे धर्म सकट मे पड जाती थी। क्या करें? पर्दा निर्वारण के लिए घरो मे घूमने के अपने अनुभव के वारे मे गगा देवी ने वताया कि सभी घरो मे सभी महिलाए पर्दे के खिलाफ थी लेकिन पुरुषो के डर के कारण मन की वात कहने से हिचकिचाती थी।

किसी भी परिवार मे उसके वडे होते जाने पर सदस्यो के वीच किसी न किसी प्रकार के द्वन्द्व पैदा होते ही है। भागीरथजी का परिवार भी कोई अपवाद नही था। सीतारामजी की डायरियो से पता चलता है कि भागीरथजी के साधु-स्वभाव और कही भी सख्ती न वरतने की मानसिकता के कारण परिवार के कई सदस्यो को उनके वारे मे गलतफहमी हो जाती थी और ऐसे मे भागीरथजी मन ही मन कष्ट पाते थे। सीतारामजी ने अपनी डायरियो मे कई जगह लिखा है कि "भाई भागीरथजी मन मे अपार कष्ट पाते रहते है पर मुह से कुछ कहते नही।"

परिवार के छोटे वच्चो से भागीरथजी का स्नेह इस प्रकार का था कि वे अपने माता-पिता और भाई-वहनो तक की शिकायत उनसे करते। वेटी उषा की वेटी ने उनसे शिकायत की कि मा उसे उसके भाई से कम प्यार करती है। अपनी दौहित्री को इस

शिकायत का उनको इतना ध्यान था कि मृत्यु के दिनो मे बेहोश अवस्था मे उन्होने उपाजी को कई बार कहा, "तुम उसे डाटा मत करो।" सबसे छोटी पुत्रवधू उमा कानोडिया ने, जिन्होने भागीरथजी की अथक सेवा कर उनके प्रशसको और प्रेमियो की कृतज्ञता अर्जित की है, बताया कि 'काकोजी' का स्वभाव ऐसा था कि वह उन्हे घर की हर बात कह सकती थी। ऐसी बाते जिन्हे वह 'मा' (सास) को भी नही कह पाती थी उन्हे वह 'काकोजी' को नि सकोच कह डालती।

शिक्षित मारवाडी घरो मे आजकल मारवाडी बोली प्राय लुप्त होती जा रही है। भागीरथजी ने ही एक बार बातो-बातो में बताया था कि मारवाडी घरो मे अग्रेजी का ऐसा चलन हो गया है कि बच्चे पूछते है—फ्राइडे को हिन्दी मे बृहस्पतिवार कहते हैं या शुक्रवार ? वह परिवार के सभी सदस्यो से मारवाडी मे ही बोलते। ऐसे भी हमारा खयाल है कि किसी मारवाडी से उन्होने कभी अग्रेजी या हिन्दी मे बातचीत नही की होगी।

सार्वजनिक कार्यो मे भाग लेने के कारण भागीरथजी के परिचित और मित्रो का दायरा बहुत बडा था। राजनीतिक नेता, सामाजिक कार्यकर्त्ता और लेखक इसी दायरे मे आते। कलकत्ता आने पर भागीरथजी के यहा कितने लोग ठहरे, इसकी कोई गणना नही है। राजेन्द्र बाबू और टण्डनजी तो और किसी के घर ठहरते ही नही थे। अपने आराम और सुख-सुविधा की तनिक भी परवाह न करनेवाले भागीरथजी अतिथियो की छोटी-छोटी आवश्यकताओ का भी पूरा ध्यान रखते थे। कई बार तो ऐसा होता कि गाडी के अतिथियो की हाजरी मे रहने के कारण उन्हे अपने कार्यक्रम स्थगित करने पडते।

नौकर-चाकरो से उनका सबध कभी मालिक-नौकर का नही रहा। नौकरो के घर परिवार की उन्हे पूरी जानकारी रहती। कलकत्ता मे आकर बसने के पहले मुकुन्दगढ मे कन्हैया की मा और सेवु नामकी बहुत पुरानी दो नौकरानिया थी। दोनो बूढी और अशक्त हो जाने के कारण अपने-अपने घर चली गयी। एक बार भागीरथजी मुकुन्दगढ गये तो उन्होने सबो की कुशल-क्षेम जाननी चाही। तब सेवु को भी याद करके बुलावा भेजा। पता चला कि वह अत्यन्त अशक्त और अन्धी भी हो गयी है। अकेले और पैदल चल कर नही आ सकती। उन दिनो गाव मे तो ऊट या रथ ही सवारी थी। भागीरथजी ने तुरन्त घर का रथ सेवु को लिवा लाने भेजा। वह गरीब अनपढ बूढी औरत आश्चर्य और अविश्वास से किंकर्त्तव्यविमूढ हो गयी। वह बेचारी इसकी स्वप्न मे भी कल्पना नही कर सकती थी कि उसे लाने के लिए रथ आयेगा।

अपने पारिवारिक जीवन मे भागीरथजी को सबसे बडा सदमा अप्रैल, १९६९ मे लगा। उनकी सबसे छोटी पुत्री उषा के पति राधेश्यामजी भुवालका का एक विमान दुर्घटना मे देहान्त हो गया। इस मृत्यु से वह अत्यन्त विचलित हो उठे। उनके कष्ट को देखकर सीतारामजी ने अपनी डायरी मे लिखा : "ईश्वर भागीरथजी जैसे सत्पुरुष को इतना कष्ट क्यो देता है ?" भागीरथ जी के राजस्थान के काम के बारे मे जानने की कोशिश मे हमने स्व० रामेश्वरजी टाटिया की डायरिया पढी तो पाया कि राधेश्यामजी की मृत्यु पर टाटियाजी ने अपनी डायरी मे हूबहू वही बात लिखी जो सीतारामजी ने लिखी थी—"ईश्वर भागीरथजी जैसे सत्पुरुष को इतना कष्ट क्यो देता है ?"

६

समाज-सुधार

सन् १६११ मे कलकत्ता आने से पहले भागीरथजी मुकुन्दगढ मे दो सामाजिक कार्यों मे भाग ले चुके थे। सन् १९०९ मे वसतलालजी मुरारका और उन्होंने मिलकर मुकुन्दगढ मे एक पुस्तकालय खोला था। इस पुस्तकालय के बारे मे वसतलाल मुरारका स्मृति-ग्रथ मे भागीरथजी ने लिखा है. "उस वक्त उस पुस्तकालय के लिए कुल चन्दा १५ रु० इकट्ठा हुआ था, जिससे ११ रु० की लागत से एक जाजम (दरी) बनवायी गयी थी और वेंकटेश्वर-समाचार नामका एक साप्ताहिक पत्र बम्बई से मगवाया गया था। कुछ फटी पुरानी पुस्तकें इधर-उधर से माग कर इकट्ठा की गयी थी, जिन्हे मरम्मत कर-कराके रखा गया था।" सन् १९११ मे मुकुन्दगढ मे 'सीठणों' के खिलाफ आदोलन हुआ था। विवाह पर स्त्रियो द्वारा गाये जानेवाले अश्लील गालियो भरे गीतो को 'सीठणा' कहा जाता है। एक प्रतिज्ञा-पत्र तैयार करके लोगो से सीठणो के खिलाफ हस्ताक्षर भी करवाये गये। इस आन्दोलन मे गगाबक्सजी की प्रमुख भूमिका थी और १६ वर्षीय भागीरथजी तथा १८ वर्षीय वसतलालजी उनके प्रमुख सहयोगी थे। इन दो कार्यों से यह तो पता चलता ही है कि बहुत कच्ची उम्र मे भागीरथजी के मन मे ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा और उसकी सामाजिक आवश्यकता की समझ पैदा हो गयी थी, दूसरे वह रूढियो को जस का तस मानने को तैयार न थे।

भागीरथजी जब कलकत्ता आये तब बगाल सारे देश मे स्वदेशी और राष्ट्रीयता का गढ था। सन् १९०५ के बग-भग विरोधी आदोलन में बगाल मे गजब की जागृति देखी गयी थी। आदोलन मे बगाली जनता के सभी वर्गों की हिस्सेदारी थी और वह गाव-गाव तक पहुच गया था। बाद मे गाधीजी ने जब असहयोग आदोलन शुरू किया तो बग-भग विरोधी आदोलन मे जो बातें स्वत स्फूर्त ढग से हुई थी, उन्हे असहयोग आदोलन की तकनीक के रूप मे अपना लिया। बग-भग विरोधी आदोलन इतना सफल रहा था कि सन् १९११ में सरकार को बगाल का विभाजन रद्द करना पडा। लेकिन यह आश्चर्य की बात लगती है कि कलकत्ता मे व्यापार में लगे हुए मारवाडियो पर इसका कोई बडा असर नही दिखाई पडा। प्रवासी मारवाडी व्यापारियो की दुनिया एक ऐसा द्वीप थी जिसमे केवल धन कमाने की हविस के सिवाय और किसी चीज का अस्तित्व नही था। इस दुनिया को जगाने के लिए कभी-कभी उसे कोई धिक्कारता भी था, जैसे, "जिस समय भारतवर्ष के सभी श्रेणी के मनुष्य अपनी-अपनी उन्नति अपनी-अपनी जाति का सुधार और अपने-अपने अधिकार के लिए तुमुल आदोलन चला रहे हैं, उस समय वह कौन सी जाति है जो अभी तक प्रगाढ निद्रा में सो रही है, जिसके कानो में अभी तक यह सुधार की चिल्लाहट नही पहुची है और जो इस उन्नतकर समय में भी अपनी निद्रा को भग न कर अपमानित और लाछित हुआ चाहती

है ? हमे बड़े दुख के साथ कहना पडता है, कहते भयानक लज्जा प्राप्त होती है कि यह 'मारवाडी समाज' है जो आखे रहते हुए भी आखे वन्द करके अन्धो के समान टटोलती (ता) हुई (आ) चलती (ता) है और जिसमे अभी तक उन्नति का वायु प्रवेश नही कर सका है" (मारवाडी कर्मचारियो की दुर्दशा— वालकृष्ण व्यास, १९१८)।

सन् १९११ मे जव भागीरथजी ने कालीगोदाम की विडलो की गद्दी मे काम करना शुरू किया तो उनके आसपास चहुओर वही वातावरण था जिसमे 'उन्नति का वायु' प्रवेश न कर सका था। उस समय मारवाडी समाज मे सनातनधर्मियो और सुधार-वादियो के दो गुट जरूर थे और उनमे परस्पर तनातनी चलती थी। यह एक प्रकार से पुरानी और नयी पीढी के बीच की खाई का प्रमाण भी था। इस समय वे सभी लोग, जो बाद मे मारवाडी समाज में सुधार के कार्यो मे भागीरथजी के सहयोगी वने, गद्दियो की दुनिया मे कैद थे। सुवह से रात तक काम में पिले रहने के कारण उन्हे आपस में मिलने का और देश-समाज की समस्याओ पर विचार करने का मौका तक नही मिलता था। इसके अलावा गद्दियो की दुनिया मे जो प्रतिष्ठित थे, वे सनातनी विचारो के थे और किसी भी प्रकार के सुधार के विरोधी थे। भागीरथजी जैसे नौजवानो को इस दुनिया मे ही अपना स्थान बनाना था, सो उसमे विना जमे हुए ही समाज के प्रतिष्ठित मुखिया लोगो से टक्कर लेने का साहस भी न था। एक वात और भी ध्यान मे रखने की है और वह यह कि प्रवासी की मानसिकता अपने प्रवास के स्थान मे मुसीवत मोल लेने की नही होती। वह अपने को बाहरी दुनिया से समेट कर अपने उद्देश्य की प्राप्ति मे ही लगा रहता है। सुगबुगाहट के बावजूद यह स्थिति गाधीजी के असहयोग आदोलन के समय तक बनी रही।

इस वक्त कलकत्ता मे मारवाडियो की तीन सामाजिक संस्थाए थी—पिंजरापोल सोसाइटी (१८९०)। मारवाडी एसोसिएशन (१८९८) और विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय (१९०१)। 'सुधारक' शब्द उतना नही चला था। समाज की रूढियो और रीति-रिवाजो को बदलने के पक्षधरो को मोटे तौर पर आर्यसमाजी कहा या माना जाता था। मारवाडी एसोसिएशन, मारवाडियो का मुख्य सगठन माना जाता था और इसके मुख्य कर्त्ता-धर्त्ता थे—जुहारमल खेमका, रामजीदास वाजोरिया, केशोराम पोद्दार, रामकुमार झुनझुनवाला, चिम्मनलाल गनेडीवाला, दौलतराम चोखानी आदि। दूसरी तरफ सुधार चाहनेवाले युवको मे प्रमुख थे—नागरमल मोदी, फूलचन्द चौधरी, रामकुमार जालान, रामकुमार गोयनका, बैजनाथ केडिया आदि, जो सभी भागीरथजी से उम्र मे सात-आठ साल बडे थे। ये युवक मारवाडी एसोसिएशन मे प्रतिनिधित्व चाहते थे, पर सनातनी नेता एसोसिएशन की "पवित्रता" बनाये रखने को कटिबद्ध थे। उन्होने इन युवको को एसोसिएशन में घुसने न देने के लिए यह नियम बना दिया था कि जो गीता की शपथ लेकर घोषणा करेंगे कि "हम सनातन-धर्मी है", उन्हे ही सदस्य बनाया जायेगा।

विशुद्धानान्द सरस्वती विद्यालय चल रहा था, लेकिन उसका अपना मकान न था। १९०६ मे उसे कलकत्ता विश्वविद्यालय ने हाई स्कूल तक शिक्षा प्रदान करने की अनुमति भी दे दी। विद्यालय चलता रहा, पर मकान की समस्या बनी हुई

थी। मार्च १९११ में प० मदनमोहन मालवीय कलकत्ता आये तो उन्होने मारवाड़ियो की एक सभा में जल्द से जल्द विद्यालय का मकान बनाने के लिए कोष इकट्ठा करने की अपील की। इस अपील का ऐसा प्रभाव पडा कि कुछ लोगो ने यह प्रतिज्ञा कर डाली कि जब तक मकान बनाने के कोष मे तीन लाख रुपया इकट्ठा नही होगा तब तक वे पगडी नही बाधेंगे। इकट्ठा करने का यह काम इतने जोरो से चला कि नौ महीने के भीतर ही तीन लाख तीन सौ दो रुपये हो गये। सुधारवादी युवको ने भी रुपये इकट्ठा करने में पूरा सहयोग दिया। इसके चलते उनकी इच्छा हुई कि विद्यालय की कार्यकारिणी में उनका भी प्रतिनिधित्व हो, पर सनातनी उन्हे यहा भी न घुसने देने के लिए कटिबद्ध थे। उन्होने वही शर्त दुहरायी कि गीता की शपथ लेकर घोषणा करनी पडेगी कि "हमारा सनातन धर्म मे पूरा विश्वास है।"

सनातनियो का दबदबा कितना ज्यादा था और सुधारवादी कितने विवश थे, इसका एक दिलचस्प किस्सा यहा दिया जाता है। इस समय सुधारवादी युवको के बीच दक्षिण के एक स्वामी शकरानन्दजी योगी का बहुत प्रभाव था। स्वामीजी राष्ट्रीयतावादी और समाज-सुधारक थे। युवको ने स्वामीजी को कहा: "हमने इतनी मेहनत से चदा इकट्ठा किया पर ये बडे-बूढे 'पोगे' हमे कहते है कि गीता की शपथ लेकर सनातनधर्मी होने की घोषणा करो तभी कार्यकारिणी का सदस्य बनाया जा सकता है।" इस पर स्वामीजी ने युवको से कहा · "तुम लोगो को कहना चाहिए था कि हम गीता की शपथ लेकर घोषणा कर देगे पर आप लोगो को भी ऐसी ही घोषणा करनी पडेगी। ऐसा कहने पर वे लोग गीतावाली बात पर जोर नही देते। खैर, अब जब चुनाव हो तब तुम सब लोग सभा-स्थल मे दो-दो तीन-तीन के गुट मे चार-पाच जगह बैठ जाना और नियोजित रूप से मत्री के लिए सनातनधर्मियो मे से ही किसी ऐसे व्यक्ति का नाम प्रस्तावित करना जो तुम लोगो से शत्रुता न रखता हो और जिसके नाम को अस्वीकार करना उनके लिए आसान न हो।"

तो विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय की कार्यकारिणी और पदाधिकारियो के लिए चुनाव की सभा मे सुधारवादी युवको ने 'षडयत्र' करके रूडमलजी गोयनका का नाम मत्री के पद के लिए प्रस्तावित किया। रूडमलजी कलकत्ता के प्रसिद्ध गोयनका परिवार (जिसमे दो-दो सर हुए—सर हरिराम और सर बदरीदास) के थे और सस्कृत के अच्छे विद्वान माने जाते थे। सनातनियो से रूडमलजी का नाम अस्वीकार करते न बना। रूडमलजी मत्री हुए और शायद एक दो सुधारवादी युवक कार्यकारिणी मे लिये भी गये।

प्रथम विश्वयुद्ध आरम्भ होने के बाद पजाब मे गदर पार्टी और बगाल मे युगातर और अनुशीलन समितियो से सम्बन्धित लोगो को सरकार अधाधुन्ध गिरफ्तार करने लगी। मारवाडी समाज व्यापारी समाज होने के कारण राजभक्त माना जाता था। विदेशी कपडे का व्यापार उसका मुख्य व्यापार था। कपडे का आयात अग्रेजी आफिसो द्वारा होता था। मारवाडी समाज के बडे नेता या पच इन आफिसो के दलाल या मुसद्दी थे। सुधारवादी युवको मे से कुछ ऐसे थे जो अगरेजी राज्य के खिलाफ उग्र विचार रखते थे और क्रान्तिकारियो के साथ भी उनका थोडा-बहुत सम्बन्ध था। सन् १९१६ मे ऐसे कुछ युवको ने रोडा कम्पनी के कुछ कारतूस लाकर बासतल्ला स्ट्रीट के

एक गोदाम मे रखे। पुलिस को इसका पता चल गया। उसने गोदाम पर छापा मार कर कारतूस बरामद किये और कुछ मारवाडी युवको—हनुमानप्रसाद पोद्दार, प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका, कन्हैयालाल चितलागिया, ओकारमल सराफ, ज्वालाप्रसाद कानोडिया और फूलचन्द चौधरी को गिरफ्तार किया। घनश्यामदासजी विडला पर भी वारट था और उनको गिरफ्तार करने के लिए पुलिस ने काली गोदाम पर भी छापा मारा था, लेकिन वह कलकत्ता से बाहर गये हुए थे।

मारवाडी युवको की गिरफ्तारी से कलकत्ता के मारवाडी व्यापार-जगत मे भयानक आतक छा गया। उन दिनो सर (डा०) कैलाशचन्द्र वोस का मारवाडी समाज के प्रतिष्ठित लोगो से बहुत अच्छा ताल्लुक था। प्रतिष्ठित का मतलब बडे व्यापारी, जो अग्रेज सरकार के भक्त होने के साथ रूढियो के भक्त भी थे। सर कैलाशचन्द्र ने पुलिस अधिकारियो को आश्वासन दिया कि घनश्यामदासजी विडला का क्रान्तिकारियो से कोई सम्बन्ध नही है, तो उनके नाम वारट रद्द हुआ। मारवाडी समाज के प्रतिष्ठित नेता अग्रेज सरकार को यह जताने के लिए कि मारवाडी समाज की क्रान्तिकारियो से किसी भी प्रकार की सहानुभूति नही है, 'सब कुछ' करने को तैयार थे, "वे सर कैलाश चन्द्र के मारफत सरकार के पास राज-भक्ति के सदेश भेजने लगे।" इस वक्त आज की मारवाडी रिलीफ सोसाइटी का नाम मारवाडी सहायक समिति था। सर कैलाशचन्द्र ने मारवाडी समाज के कर्णधारो को सुझाया कि 'समिति' नाम बहुत खतरनाक है, क्योकि बगाल के क्रान्तिकारी आदोलन के दो सगठनो के नाम मे 'समिति' है—युगान्तर समिति और अनुशीलन समिति। इसलिए मारवाडी सहायक समिति का नाम न बदला गया तो सरकार मारवाडी समाज को शका की दृष्टि से देखती रहेगी। यह सुझाव मान लिया गया और मारवाडी सहायक समिति का नाम बदल कर मारवाडी रिलीफ सोसाइटी रखा गया। इन सब बातो का नतीजा यह हुआ कि मारवाडी समाज मे सनातनधर्मियो और सुधारको के बीच जो तनातनी चल रही थी, उसमे सनातनधर्मियो का पलडा और भी भारी हो गया। लेकिन यह प्रकृति का एक प्रकार का अटल नियम-सा लगता है कि जब चरम निराशा हो, तब उसमे कुछ लोग ऐसे तत्व भी देखने लगते है जिससे उन्हे कही न कही बल मिलता है। सन् १९१६ मे कुछ मारवाडी युवको की गिरफ्तारी से जो आतक पैदा हुआ, उसमे यह तथ्य भी प्रकट हुआ कि दब्बू और सरकार-परस्त समाज मे भी कुछ ऐसे युवक भी थे जो अग्रेज सरकार से लडने के लिए जोखिम उठाने को कुछ हद तक तैयार थे। इस तथ्य से मारवाडी समाज के उन युवको ने, जिनकी अब तक सुधारवादियो के पक्ष का मन ही मन समर्थन करने के सिवाय कोई भूमिका नही थी, निश्चय ही प्रेरणा ग्रहण की। मारवाडी समाज, वैश्य समाज होने के कारण उग्र कदम उठा नही सकता। उसके ये युवक स्थिति का प्रतिकार जरूर करना चाहते थे, लेकिन साथ ही किसी प्रकार की मुठभेड से भी बचना चाहते थे। उनकी मानसिक स्थिति कुछ इस प्रकार की थी कि—"चाहे जो हो, हम चुप नही बैठ सकते, हमे कुछ न कुछ करना होगा और पहले कदम के रूप मे हमे आपस मे मिलना-जुलना शुरू करना चाहिए।"

ऐसे युवको ने 'मिलना-जुलना' शुरू कर 'ज्ञानवर्द्धिनी मित्र-मडली' स्थापित की। इस सस्था के उद्देश्यो मे यह लिखा गया कि राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक

कामो से संस्था का कोई सम्बन्ध नही रहेगा। यह ज्ञानवर्धन के कामो तक अपना कार्य सीमित रखेगी। भागीरथजी का इस सस्था से प्रारम्भ से ही सम्बन्ध रहा। कलकत्ता के सदासुख कटरे मे सस्था का कार्यालय खोला गया। इसमे शहर मे बाहर से आये प्रसिद्ध व्यक्तियो के व्याख्यान कराये जाते थे। सस्था मे २०-२५ से ३०-३५ वर्ष की उम्र तक के युवक थे। कलकत्ता मे आगे जाकर १९१७-१८ से १९४७ तक और उसके बाद भी सामाजिक, राजनीतिक कार्यों मे जो मारवाडी कार्यकर्त्ता नेता सक्रिय रहे, वे प्राय सभी 'ज्ञानवर्द्धिनी मित्र-मडली' के सदस्य थे—पद्मराज जैन, नागरमल केडिया, विलासराय मोदी, वैजनाथ केडिया, रगलाल जाजोदिया, (इन सब की १९४०-५० के आसपास मृत्यु हो गयी), बसन्तलाल मुरारका, गगाप्रसाद भोतिका, भागीरथ कानोडिया, रामकुमार भुवालका, मोतीलाल लाठ (इन सब की १९५६ से ८० के बीच मृत्यु हुई, अन्तिम तीन की तो १९७९-८० में छह महीनो के भीतर), प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका और सीताराम सेकसरिया।

कलकत्ता मे मारवाडी समाज मे सामाजिक सुधार और शिक्षा के क्षेत्र मे जो भी काम हुआ, उसकी इस मित्र-मडली के बिना कल्पना भी नही की जा सकती। इस मडली के लोगो ने अपने जीवन-काल मे बीसियो-तीसियो सस्थाओ को जन्म दिया। अपने भरसक सार्वजनिक कार्यों मे चन्दा दिया और काग्रेस तथा देश की अन्य सस्थाओ के लिए लाखो ही नही, करोडो रुपयो का चदा करवाया। समाज-सुधार के सभी आदोलनो—विधवा-विवाह, मृतकबिरादरीभोजबन्दी, दहेजबन्दी, परदा-निवारण आदि—मे जम कर भाग लिया। अपने परिवारो मे सामाजिक कुप्रथाए तोडी। हिन्दी के प्रचार-प्रसार मे योगदान किया। साप्ताहिक और मासिक पत्र (अग्रसर सुधारक, जागरण, नया समाज आदि) निकाले। देश के स्वाधीनता-आन्दोलन में भाग लिया और कइयो ने जेल-यात्राए भी कीं। इस मित्र-मडली के सब सदस्यो का सार्वजनिक जीवन एक दूसरे से इतना जुडा हुआ है, कि जब हम एक की बात लिखते हैं तब अनायास ही वह सब की बात हो जाती है। यह कहना शायद अतिशयोक्ति नही है कि मारवाडी समाज ही नही, किसी अन्य समाज में भी इस तरह की मित्र-मडली नही रही, जिसने बीस-तीस वर्ष तक अनवरत सामाजिक और राजनीतिक कार्य किया हो। सेठ जमनालाल बजाज के रूप में इस मित्र-मडली के सदस्यो ने एक 'बडा भाई' और रहनुमा प्राप्त किया तथा गाधीजी को तो लगभग पिता जैसा ही माना। बडा भाई और पिता मानने की बात आज के लोगो को कुछ अटपटी या अतिशयोक्तिपूर्ण लग सकती है, लेकिन राजस्थान के शेखावाटी से कलकत्ता आये इन व्यापारी, सामाजिक-राजनीतिक कार्यकर्त्ताओ में इतनी बौद्धिकता नही थी कि वे सिर्फ बुद्धि के आग्रह और उसके बल पर किसी को रहनुमा या नेता मान ले। उनके लिए रहनुमा या नेता को पारिवारिक हैसियत प्रदान करना जरूरी था। जमनालाल बजाज ने जब गाधीजी से कहा था कि वह उन्हे अपना पाचवा पुत्र मानें तो उसके पीछे यही सस्कार काम कर रहा था। मित्र-मडली में यह फैसला हुआ था कि आपस मे किसी बात का फैसला न होने पर उसे गाधीजी को सौपा जायेगा। मडली के 'गरम' सदस्यो के बारे मे 'नरम' सदस्य गाधीजी तक 'शिकायत पहुचाते थे और उसके बारे में गाधीजी का निर्णय न आने तक गरम-नरम दोनो ही सस्पेंस की (अनिश्चय की) स्थिति मे रहते थे।

'ज्ञानवर्द्धिनी मित्र मडली' की स्थापना भय के वातावरण मे हुई थी, लेकिन वह भय को भगाने का एक उपक्रम भी थी। धीरे-धीरे जब भय कम होने लगा तो मडली के सदस्य महसूस करने लगे कि वे जो काम करना चाहते हैं, उसके लिए इतने सीमित उद्देश्यो की सस्था मे काम नही चल सकता। मारवाडी एसोसिएशन उन दिनो मारवाडी समाज का मुख्य सगठन था लेकिन इसमे सनातनी ज्ञानवर्द्धनीवाले युवको को घास का एक तिनका भी डालने को तैयार न थे। काफी सोच-विचार के बाद एसोसिएशन के विरोध मे मारवाडी ट्रेडर्स एसोसिएशन नामका एक समानान्तर सगठन स्थापित करने का निर्णय किया गया। इस एसोसिएशन मे ज्ञानवर्द्धिनी मित्र-मडली अन्तर्भुक्त कर दी गयी। १९१८ में जमनालाल बजाज कलकत्ता आये तो उन्होंने मारवाडी एसोसिएशन के सनातनी नेताओ तथा सुधारवादी युवक कार्यकर्ताओ के बीच झगडे को मिटाने की कोशिश की, लेकिन सनातनी नेता अपनी अकड मे कोई समझौता करने को तैयार न थे। जमनालालजी ने सनातनियो का प्रभाव समाप्त करने के लिए अखिल भारतीय मारवाडी अग्रवाल महासभा की स्थापना की, जिसके भागीरथजी एक सक्रिय सदस्य बने।

देश मे राजनीतिक सरगर्मी बढ रही थी। १९१९ मे रोलट ऐक्ट को लेकर अग्रेजो के विरुद्ध प्रचड वातावरण बन रहा था। गाधीजी ने इस काले कानून के विरुद्ध सत्याग्रह की घोषणा कर दी थी और इसी बीच आग मे घी के समान ६ अप्रैल को अमृतसर मे जलियानवाला बाग मे नृशस हत्याकाड हुआ। ऐसे मे मारवाडी अग्रवाल महासभा का काम बहुत तेजी से बढा। जमनालालजी बजाज इस महासभा के प्राण थे। असहयोग आदोलन के सिलसिले मे काग्रेस मे उनकी जो भूमिका रही थी, उसके कारण वह देश के मुख्य नेताओ मे गिने जाने लगे थे। देश भर के मारवाडी युवक जमनालालजी के नेतृत्व मे सामाजिक सुधार का आदोलन करने के साथ देश के स्वाधीनता सग्राम मे भी भाग लेना चाहते थे। यह समय समाज-सुधार और राजनीति के बीच अटूट सम्बध का था—सनातनी, समाज सुधार के विरुद्ध और अग्रेज सरकार के पक्ष मे थे, और सुधारक, समाज-सुधार के पक्ष मे और अग्रेज सरकार के विरुद्ध थे।

मारवाडी अग्रवाल महासभा का पहला अधिवेशन वर्धा मे और दूसरा बम्बई मे हुआ। बम्बई अधिवेशन मे गाधीजी भी आये। इस वक्त बाल-विवाह के विरोध पर ही जोर था, सुधारवादी युवक भी विधवा-विवाह का समर्थन करने से हिचकते थे। बम्बई अधिवेशन मे 'बाल-विवाह' के प्रस्ताव पर काफी वाद-विवाद के बाद तय हुआ कि बारह वर्ष से पहले लडकी और १६ वर्ष से पहले लडके का विवाह न किया जाय। इसके साथ ही सशोधन के रूप मे यह छूट दी गयी कि विशेष अनुमति से कन्या का विवाह १२ वर्ष के पहले भी किया जा सकता है। इस सशोधन को नवयुवको को स्वीकार करना पडा। अप्रैल १९२१ मे महासभा का तीसरा अधिवेशन कलकत्ता मे हुआ। सनातनियो ने इस अधिवेशन का बहुत विरोध किया। उनके विरोध के कारण अधिवेशन शायद और भी ज्यादा सफल रहा। इस अधिवेशन के बाद महासभा का कार्यालय कलकत्ता मे ही रखने का निश्चय हुआ और बसंतलालजी मुरारका महासभा

के प्रधानमन्त्री चुने गये। १९२६ मे मारवाडी अग्रवाल महासभा के ८ वर्ष के कार्य-काल के सम्वन्ध मे वसन्तलालजी ने एक पुस्तिका प्रकाशित करवायी। इस पुस्तिका से पता चलता है कि देश भर मे तव तक महासभा की ३०० से भी अधिक शाखाए स्थापित हो गयी थी। भागीरथजी महासभा मे इस वक्त निश्चय ही काफी सक्रिय थे क्योकि असम और वगाल मे महासभा की कार्य-सचालन समिति के वह सदस्य थे। अन्य सदस्य थे—रगलाल जाजोदिया, वैजनाथ केडिया, तुलसीराम सरावगी, पद्मराज जैन, प्रभुदयाल हिम्मतसिहका, रामचन्द्र पोद्दार, रामेश्वर सिहानिया (जलपाईगुडी) और मुरलीधर चोखानी (माकुम जक्शन, असम)।

देश मे गाधीजी की महत्ता स्थापित हो गयी थी। भागीरथजी तथा मित्र-मण्डली के सभी युवक गाधीजी के प्रभाव मे आ चुके थे। गाधीजी की विचारधारा उन्हे अपने अनुकूल तो लगती ही थी, इसके अलावा वह उन्हें एक ऐसे धार्मिक महापुरुष भी लगते थे, जो सनातनियो के चगुल से धर्म की रक्षा कर 'सत्य-धर्म' स्थापित कर सकते थे। १९२१-२२ तक मण्डली के प्राय. सभी युवक नौकरियां छोड कर स्वतत्र रूप से व्यापार करने लगे थे। भागीरथजी, यद्यपि विडलो के यहा ही काम कर रहे थे लेकिन १० वर्षो के भीतर उनकी स्वतन्त्र हैसियत वन गयी थी। स्वाभाविक था कि इससे सारी मित्र मण्डली मे ऐसा आत्म-विश्वास पैदा हुआ कि अव सनातनियो से टक्कर ली जा सकती है। मण्डली कोई ऐसा काम करने को व्यग्र थी, जो अव तक न हुआ था। उसके सदस्य मारवाडी अग्रवाल महासभा के वाल-विवाह सम्वन्धी प्रस्ताव को वहुत कमजोर मानते थे। केन्द्रीय धारा सभा (सेंट्रल एसेम्वली) मे लडकियो के विवाह की उम्र वढाने के लिए जव शारदा विल पेश किया गया और गाधीजी को इसका समर्थन करने का अनुरोध किया गया तो उन्होने लिखा - "मैं यह स्वीकार करता हू कि विल के वारे मे मुझे ज्यादा जानकारी नही, लेकिन मैं लडकियो के विवाह की उम्र वढाकर १४ (शारदा विल मे १४ की तजवीज थी) नही, १६ करने के पक्ष मे हू। विवाह की रस्म-अदाई से १४ वर्ष की लडकी का विवाह, जो अनैतिक और अमानवीय कार्य है, कानूनी नही वन जाता। जो कार्य अपने आप मे अनैतिक है, उसे सदिग्ध सस्कृत श्लोको से पवित्र नही वनाया जा सकता। मैंने वहुत सी वाल-माताओ की तन्दुरुस्ती चौपट होती देखी है और जव वाल-विवाह के साथ वाल-वैधव्य की विभीषिका भी मिल जाती है, तव तो यह ट्रैजेडी पूरी हो जाती है" (यग इडिया, २७ अगस्त, १९२५)।

अभी तक मण्डली के युवक वाल-विवाहो और वृद्ध विवाहो (अनमेल-विवाह) को रोकने के आन्दोलन ही करते थे और इनमे भी उन्हे पूरी सफलता नही मिलती थी। आन्दोलन का एक नतीजा यह जरूर हुआ था कि वृद्ध-विवाह छिप कर होने लगे और उनकी सामाजिक स्वीकृति को भी एक प्रकार का धक्का लगा। सीतारामजी ने वाल-विवाह और अनमेल विवाह-विरोधी आदोलनो के वारे मे वताया : "इन आन्दोलनो मे भागीरथजी पूरी तरह सक्रिय थे। अनमेल विवाह-विरोधी आदोलनो मे हम दोनो पक्षो को समझाने की चेष्टा करते। सफल न होने पर हम लोग विवाहो मे वाधा डालते, प्रदर्शन करते। यहा तक कि मौका लगाकर लडकियो को उठा लेते थे और फिर वाद मे उनके अभिभावको को समझा कर उनकी उम्र के अनुकूल लडको से

उनका विवाह करवा देते। मुझे यह याद तो नही है कि यह कव की वात है, एक लडकी को हमलोग उठा लाये। उसकी उम्र १० वर्ष थी। उसका विवाह हम नही कर सकते थे। उसे ४-५ वर्ष रखना पडा। यह लडकी भागीरथजी के जूट प्रेम मे रही। उसके रहने का सारा खर्च और वाद मे उसके विवाह का सारा खर्च भागीरथजी ने दिया। खर्च उठाने से भी वहुत वडी वात उस जमाने मे किसी परायी लडकी को अपने सरक्षण मे इस प्रकार रखने और सामाजिक वदनामी से न डरने की थी। 'लडकिया उठाने' की इस उग्र कार्रवाई को लेकर हमारी मित्र-मण्डली मे भारी मतभेद हुआ। हमारे दो मित्रो ने 'लडकी उठाने' के वारे में गाधीजी को पत्र लिखा तो उनका उत्तर आया कि लडकियो को जवरदस्ती उठा कर लाना अनुचित है। इसके वाद लडकियो को उठाने की वात समाप्त हो गयी।"

तो मण्डली यह सोचने लगी थी कि "हमें समाज सुधार का कोई क्रातिकारी कदम उठाना चाहिए, जिससे समाज मे क्राति की भूमिका तैयार हो सके।" इसी समय (१९२६) मे मण्डली के लोगो ने सुना कि हावडा में एक मारवाडी वाल-विधवा जानकी देवी शाह वैधव्य से तग आ गयी है और पुनर्विवाह करना चाहती है। झरिया के नागरमलजी लील्हा की पत्नी का देहान्त हो गया तो उन्होने निश्चय किया कि "मैं मारवाडी अग्रवाल विधवा से ही विवाह करूगा ताकि मारवाडी समाज में विधवा-विवाह के प्रचलन को वल मिल सके।" जानकी देवी और नागरमलजी को एक दूसरे को दिखाया गया। जानकी देवी २२ वर्ष की थी और नागरमलजी ३६ वर्ष के। नागरमलजी आर्य समाजी विचारो के थे और विवाह के लिए आर्य समाज मन्दिर उपलब्ध भी था, लेकिन मण्डली के युवक सनातनियो के मुहल्ले वडावाजार में ही सवकी आखो के सामने उसे करना चाहते थे ताकि समाज पर ज्यादा प्रभाव पडे और सनातनियो की छाती पर मूग दला जाय। छाजूरामजी चौधरी का मकान वहुत वडा और वडावाजार के वीचोवीच था। युवको ने विवाह के लिए इस मकान को चुना। छाजूरामजी मकान देने को सहर्ष राजी हो गये। विवाह वडे जोश और उत्तेजना के वातावरण मे सम्पन्न हुआ।

सनातनियो मे इस विवाह की प्रचण्ड प्रतिक्रिया हुई। वाल-विवाह और वृद्ध-विवाह का विरोध तो वे कुछ हद तक समझ सकते थे पर विधवा-विवाह तो उनकी निगाह में सरासर अधर्म था। उन्होने कलकत्ता विश्वविद्यालय के सस्कृत प्राध्यापक महामहोपाध्याय प० लक्ष्मण शास्त्री की अध्यक्षता मे वडावाजार में विधवा-विवाह के विरोध में सार्वजनिक सभा का आयोजन किया। सभा-स्थल के चारो ओर सनातनियो ने लठैत गुण्डो को तैनात किया। सभा में विधवा-विवाह विरोधी भाषणो के वाद आयोजको की ओर से शास्त्रार्थ की परम्परा की रक्षा करने के लिए ऐलान किया गया, 'विधवा-विवाह के पक्ष मे कोई वोलना चाहे तो उसे १० मिनट का समय दिया जायेगा।' इस पर प० दीनानाथ सिद्धातालकार उठे और उन्होने विधवा-विवाह के पक्ष में शास्त्रीय प्रमाण देने शुरू किये ही थे कि उन पर और विधवा-विवाह के समर्थको पर तडातड़ लाठियो की वर्षा होने लगी। 'इगलिश मैन' (अग्रेजी मे कलकत्ते से निकलनेवाला दैनिक) ने इस सभा को लेकर कलकत्ता-पुलिस और वगाल सरकार को फटकारते हुए

लिखा कि वे नगर के समाज-सुधारक कार्यकर्ताओ को कुछ अनुदार धनिको के गुण्डो द्वारा पिटवाकर ब्रिटेन की सुधार-पोषक परम्पराओ को कलकित करना चाहती हैं। 'इगलिशमैन' के इस मन्तव्य से सनातनियो को यह लगा कि राज-भक्ति के पुरस्कार-स्वरूप उन्हे सुधारवादियो के खिलाफ गुण्डई करने में शायद सरकार का सहयोग न मिले। इससे उनमे निराशा पैदा हुई, फिर भी धर्म की रक्षा करने क लिए विधवा-विवाह जैसे "अधर्म करनेवालो को कोई न कोई सजा देना जरूरी है वरना समाज मे अधर्म का ही बोलवाला हो जायेगा" सो उन्होने विधवा-विवाह कराने मे जिन १२ युवको की सबसे अधिक सक्रिय भूमिका थी, उन्हे जाति-बहिष्कृत कर दिया। तो भागीरथ कानोडिया, पद्मराज जैन, प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका, बसन्तलाल मुरारका, सीताराम सेकसरिया, ओकारमल सराफ, जगन्नाथ गुप्त, रामगोपाल सराफ, फूलचन्द चौधरी, रामकुमार भुवालका, नागरमल मोदी और धर्मचन्द रानीवाला जाति-बहिष्कृत कर दिये गये।

कलकत्ता के सुधारवादी युवको द्वारा आयोजित नागरमल लोल्हा और जानकी देवी का यह विवाह कितना क्रांतिकारी था, यह इस बात से प्रकट है कि मारवाडी अग्रवाल महासभा को भी इसका समर्थन करते नही बना। महासभा के ११वें अधिवेशन मे विधवा-विवाह की निन्दा करते हुए प्रस्ताव पास हुआ। इस पर नवयुवको मे बहुत क्षोभ देखा गया तो अप्रैल १९३० मे उज्जैन के अपने १२वें अधिवेशन में महासभा ने एक प्रस्ताव पास कर कहा: "विधवा-विवाह का प्रश्न विवादग्रस्त है (इसलिए) अनेक कारणो से महासभा इस प्रश्न पर विचार करना उचित नही समझती।" बहरहाल, विधवा-विवाह आयोजित करने के बाद मित्र-मण्डली का उत्साह बढता ही गया। मण्डली के सदस्य मृतक बिरादरी भोजो में पिकेटिंग करते रहे। पिकेटिंग के दौरान उन पर ऊपर से मैला फेंका जाता, गदी-गदी गालियो की बौछार की जाती और कभी-कभी भोज मे जानेवाले लोग उनके शरीर को रौद कर भी जाते। विधवा-विवाह का कोई अवसर मिलने पर मित्र-मण्डली उसका आयोजन करती। मण्डली के एक सदस्य रामकुमारजी भुवालका ने अपनी पत्नी के मरने पर १९३५ मे विधवा-विवाह किया और १०-१५ वर्ष बाद मण्डली के एक और सदस्य बसन्तलालजी मुरारका ने अपने कुवारे पुत्र का विधवा से ही विवाह किया; बसन्तलालजी की मृत्यु के बाद उनके सबसे छोटे कुवारे पुत्र का भी विधवा से ही विवाह हुआ। मृतक बिरादरी भोजो, बाल-विवाहो, अनमेल-विवाहो के विरोध और विधवा-विवाहो के आयोजन के साथ मण्डली के सदस्य मारवाडी समाज मे प्रचलित पर्दा-प्रथा के खिलाफ भी लगातार आन्दोलन करते रहे। इन सभी आदोलनो मे भागीरथजी आगे रहे।

कलकत्ता मे कई वर्षो तक हर साल पर्दा-निवारण दिवस मनाया जाता था। मण्डली के सदस्य उन विवाहो मे भाग नही लेते थे, जिनमे पर्दा-प्रथा का पालन होता था और वर-कन्या की उम्र १८-१४ से कम होती थी। बिडला-परिवार मे एक विवाह मे पर्दा-प्रथा के पालन का अन्देशा था तो मित्र-मण्डली ने उसमे भाग नही लेने का निर्णय किया। अन्तत. इस विवाह मे पर्दा-प्रथा का पालन नही हुआ और तब जाकर मण्डली के सदस्य बारातियो के स्वागत और सम्मान मे दिये जाने वाले भोज "सज्जन

गोठ" मे शामिल हुए। अप्रैल १९४६ मे स्वय भागीरथजी के वडे भाई गगावक्सजी की पौत्री का विवाह था। इस विवाह मे पर्दा-प्रथा का पालन हो रहा था सो भागीरथजी ने उस विवाह मे भाग नही लिया। इस विवाह के दिन ही इस ग्रन्थ के सम्पादक का भी विवाह था। भागीरथजी के मकान पर ही यह विवाह हुआ। लोगो ने कहा कि जिस दिन घर मे 'शुभ विवाह' हो रहा हो, उसी दिन भागीरथजी का अपने मकान मे 'विधवा-विवाह' होने देना अमागलिक है। इस तरह की वातो का भागीरथजी के लिए अर्थ नही था, पर ये उस वक्त की परिस्थितियो की सूचक तो है ही। एक तरह से १९४६ तक कलकत्ता मे मारवाडी समाज के भीतर समाज सुधार का आन्दोलन जारी रहा। इसके वाद वह मद पडता गया और अव तो विलकुल समाप्त ही हो गया है। हाल मे विवाहो मे अत्यधिक शान-शौकत के खिलाफ छिटपुट आदोलन जरूर हुए है, पर यह कहना होगा कि उनमे पहले जैसी आच नही है।

भागीरथजी निश्चय ही एक धार्मिक व्यक्ति थे, लेकिन वह परम्परावादी और रूढिवादी न थे। ऐसी सामाजिक और धार्मिक परम्पराओ और रूढियो को जो मनुष्य के बीच भेद करती हो और स्त्री को हेय और वस्तु मानती हो, वह स्वीकार नही कर सकते थे। अग्रेजीदा लोग जव रूढियो का विरोध करते हैं तो उसके पीछे यह भाव ज्यादा रहता है कि इनके रहते "हम आधुनिक युग मे पिछडे कहलायेगे," लेकिन भागीरथजी ने रूढियो का विरोध किया और समाज सुधार के आदोलन में भाग लिया तो उसके पीछे सामाजिक अन्याय के विरुद्ध उनकी जाग्रत सवेदना ही थी।

७

शिक्षा-प्रसार और हिन्दी-प्रचार

भागीरथजी जव वीस वर्ष के थे तव एक वार वीमार पडे। गद्दी मे बीमार की तीमारदारी नही हो सकती थी सो उन्हे मुकुन्दगढ जाना पडा। वीमारी मे उन्हे सारे समय लेटे रहना पडता। एक दिन उन्होने अपनी छोटी वहन कृष्णा वाई को, जो उस समय १२-१४ वर्ष की रही होगी, कहा "वाई, आ तन (तुम्हे) लिखनो-पढनो सिखा दू।" कृष्णा वाई को अक्षर-ज्ञान न था। उन्होने कहा कि अभी आप वीमार है, ठीक हो जाने पर सिखाइएगा, लेकिन भागीरथजी ने कहा कि उनका समय नही वीतता है, पढाने से वह वीतने लगेगा। वीमार रहते हुए भागीरथजी ने कृष्णा वाई को लिखना-पढना सिखा दिया और गीता भी पढा दी। इसी पढाई के वल पर वह आजीवन गीता पाठ करती रही।

ऊपर की घटना हमने इसलिए लिखी कि इससे भागीरथजी की पढाने की ललक का पता चलता है। हमने देखा है कि पुरानी पीढी के ऐसे लोगो मे, जो समाज-सेवा के कार्यो मे भाग लेते थे, निरक्षरो को साक्षर वनाने और खासकर स्त्रियो मे शिक्षा का प्रसार करने की विशेष लगन होती थी। कलकत्ता मे सामाजिक और

राजनीतिक कार्य करनेवाले मारवाडी युवको की मित्र-मण्डली ने स्त्री-शिक्षा के क्षेत्र मे महत्वपूर्ण कार्य किया है। जब यह मित्र-मडली आगे बढ कर समाज-सुधार के काम करने लगी तो उसका ध्यान शिक्षा की ओर भी गया। वह जमाना ही ऐसा था जब समाज-सुधार की दिशा सर्वतोमुखी होती थी—रूढियो का विरोध करनेवाला सामाजिक कार्यकर्त्ता अपने-आप शिक्षा के प्रसार मे भी लग जाता था।

आज से साठ-सत्तर वर्ष पहले मारवाडी समाज शिक्षा के क्षेत्र मे भयकर रूप से पिछडा हुआ था। सारे समाज मे दो-तीन व्यक्ति भी ग्रेजुएट न थे और स्त्रियो मे तो लगभग सभी निरक्षर थी। कलकत्ता के समाज-सुधारवादी मारवाडी युवको की मित्र-मण्डली को अपने समाज का यह पिछडापन बगाली समाज की शिक्षा के क्षेत्र मे उन्नति को देखते हुए और भी ज्यादा अखरता था। एक बात और, तब मारवाडी होने का अर्थ ही पिछड़ा होना और शिक्षा और सस्कृति के मामलो मे कोरा होना होता था। इस पिछडेपन के एहसास के कारण मारवाडी सामाजिक कार्यकर्ताओ मे बगाली के मुकाबले एक प्रकार की 'हीन-भावना' थी। लेकिन यह हीन-भावना, ग्रन्थिवाली हीन-भावना नही थी, सो उसमे हीनता को दूर करने की भावना ही ज्यादा प्रबल थी। सनातनियो की ओर से इस वक्त लड़कों के लिए विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय और लडकियो के लिए सावित्री पाठशाला चल रही थी। सनातनी, लडकियो को उच्च शिक्षा देने की कल्पना भी नही कर सकते थे, सो सावित्री पाठशाला मे लड़कियो को अक्षर-ज्ञान करा कर तथा विष्णु सहस्रनाम, हनुमान-चालीसा, गीता और देव-स्तुतियां रटा-पढा कर स्त्री-शिक्षा का कर्तव्य पूरा किया जाता था। १९२० मे जुगलकिशोरजी बिडला और घनश्यामदासजी बिडला के प्रयत्न से और उनके ही द्वारा दिये गये मकान मे मारवाडी बालिका विद्यालय खोला गया। विद्यालय मे किसी भी प्रकार की फीस नही थी, लेकिन माता-पिता लडकियो को स्कूल भेजने को तैयार नही होते थे। सो विद्यालय मे बहुत कम लडकिया थी और चौथी से आगे की कक्षा तो थी ही नही। १९२९-३० में भागीरथजी, सीतारामजी और स्व० गगाप्रसादजी भोतिका ने विद्यालय का काम सम्भाला, तो चौथी कक्षा के बाद पाचवी कक्षा तो चालू हुई, लेकिन छठी कक्षा खोलने के लिए कोई लडकी ही न थी तब पाचवी कक्षा की एक पजाबी लडकी—कौशल्या कालरा—को डबल प्रमोशन देकर छठी कक्षा शुरू की गयी। आगे जाकर एक-एक, दो-दो लडकियो को लेकर सातवी-आठवी कक्षाए खोली गयी।

१९३५ मे पहली बार विद्यालय से दो लडकियो को मैट्रिक की परीक्षा देने के लिए भेजा गया। मारवाडी बालिका विद्यालय का काम आगे बढाने मे भागीरथजी का बहुत बडा हाथ रहा। कलकत्ता मे आजादी के पहले तक हिन्दी भाषा-भाषी लडकियो का एक तरह से यही एकमात्र विद्यालय था। विद्यालय के भूतपूर्व कार्यालय अधिकारी द्वारका प्रसादजी ने हमे बताया कि भागीरथजी विद्यालय का काम अपार लगन और निष्ठा के साथ करते थे। वह कितनी ही गरीब लडकियो की पढाई का खर्च स्वय देते थे। उनके प्रयत्न से विवाहित और स्कूल आने मे असमर्थ स्त्रियो के लिए विद्यालय द्वारा प्रयाग महिला विद्यापीठ और हिन्दी साहित्य सम्मेलन की परीक्षाओ मे बैठने की भी व्यवस्था की गयी।

मारवाडी बालिका विद्यालय धीरे-धीरे इतना बढता गया कि बडाबाजार का मकान बहुत छोटा पडने लगा और नयी इमारत बनाने की बात सोचनी पडी। इस तरह १९५४ मे विद्यालय के तहत किन्तु उससे अलग श्री शिक्षायतन की स्थापना की गयी। दो-एक वर्ष बाद इसमे कालेज भी खोल दिया गया। कलकत्ता मे आज हिन्दी माध्यम से लडकियो को शिक्षा देनेवाली सबसे बडी सस्था श्री शिक्षायतन ही है। भागीरथजी इसके मृत्यु पर्यन्त अध्यक्ष रहे। श्री शिक्षायतन की विशाल इमारत के लिए भागीरथजी ने लाखो रुपयो का चन्दा किया। भागीरथजी और उनके मित्र सीतारामजी सुबह-सुबह चन्दा इकट्ठा करने निकलते और रोज ही पाच-दस-पन्द्रह हजार लाते। लगातार दो तीन महीनो तक दोनो मित्रो ने चन्दा इकट्ठा कर इस विशाल सस्था का निर्माण किया।

१९३२ मे गाधीजी के अनशन के बाद जब हरिजनोत्थान का काम जोरो से शुरू हुआ तो भागीरथजी के प्रयत्न से कलकत्ता की हरिजन बस्तियो मे बच्चो और प्रौढो के लिए २२ स्कूल खोले गये, जिनमे रात्रिकालीन स्कूलो की सख्या काफी थी।

देश मे आजादी के पहले तक हिन्दी के प्रचार और प्रसार मे मारवाडी समाज का बहुत बडा योगदान रहा है। कलकत्ता अगर एक समय हिन्दी का बडा केन्द्र रहा तो उसका एक बडा कारण मारवाडी समाज की हिन्दी-भक्ति भी था। किसी भी धनी होते हुए समाज मे, अगर वह सास्कृतिक रूप से बहुत पिछडा हुआ हो तो सस्कृति की भूख अत्यन्त प्रबल होती है। मारवाडी समाज की यह भूख हिन्दी से जुड कर, हिन्दी के साहित्यकारो का सम्मान करके, उन्हे आर्थिक सहायता देकर, हिन्दी मे पत्र-पत्रिकाओ के निकालने मे मदद देकर और हिन्दी का प्रचार करनेवाली संस्थाओ का काम करके कही शात होती थी और उसे लगता था कि इससे वह सास्कृतिक रूप से सम्पन्न हो रहा है। आजादी के बाद तो यह स्थिति एकदम बदल गयी है, जब सम्पन्न मारवाडियो ने अफसर-वर्ग के लोगो की तरह अंगरेजी को अपना लिया है और हिन्दी को सास्कृतिक विपन्नता की अभिव्यक्ति मान लिया है। सम्पन्न मारवाडी घरो मे अब कोई भी बच्चा हिन्दी माध्यम से नही पढता और लडकिया तो अगरेजी मे ही गिटिर-पिटिर करती हैं। भागीरथजी को मारवाडी समाज के इस पतन से व्यथित होते हमने कई बार देखा है। हिन्दी के प्रति उनका अनुराग राजस्थानी के प्रति ममता के कारण भी हमेशा बढता ही गया—वह यह मानते थे कि राजस्थानी हिन्दी की समृद्धि मे सहायक है और बोलियो का जीवित रहना जरूरी है, क्योकि वे हिन्दी की समृद्धि का निरन्तर स्रोत बनी रह सकती हैं।

हिन्दी का प्रचार और प्रसार, भागीरथजी के मन का काम था। गाधीजी के आशीर्वाद से जब पूर्व भारत राष्ट्रभाषा प्रचार सभा का गठन हुआ तो उसके वह सचालको मे एक थे। इस सस्था ने बगाल, असम और ओडिशा मे अहिन्दी भाषियो को हिन्दी सिखाने और उनके लिए हिन्दी की परीक्षाए चलाने का काम किया। हिन्दी-प्रेम के कारण हिन्दी के कई बडे लेखको से भागीरथजी का घनिष्ठ सम्बन्ध बना। हजारी प्रसादजी द्विवेदी, जैनेन्द्र कुमार, बनारसीदास चतुर्वेदी और महादेवी वर्मा से तो एक प्रकार का घर का सा सम्बन्ध हो गया। टडनजी को तो भागीरथजी से विशेष स्नेह था, कलकत्ता

आने पर उनके पास ही ठहरते। विशाल भारत के सम्पादन के लिए बनारसीदासजी कलकत्ता रहते थे तो भागीरथजी ने उनसे कलकत्ता मे हिन्दी का एक अच्छा पुस्तकालय खोलने के बारे मे बातचीत की। बनारसीदासजी ने अपनी पुस्तको का सग्रह पुस्तकालय को दे दिया। इस तरह कलकत्ता के जकरिया स्ट्रीट में भागीरथजी के मकान के ठीक सामने के मकान मे 'तुलसी पुस्तकालय' की स्थापना हुई। उस जमाने मे पुस्तकालय की बडी ख्याति थी। उसकी ओर से साहित्य, समाजशास्त्र, राजनीति, कला, विज्ञान आदि विषयो पर गोष्ठिया और व्याख्यान भी आयोजित किये जाते। भागीरथजी इस बात के लिए हमेशा प्रयत्नशील रहे कि हिन्दी मे अच्छी किताबो का प्रकाशन हो और वे सस्ती कीमतो पर उपलब्ध हो। सस्ता साहित्य मडल की अध्यक्षता स्वीकार करने के पीछे उनके मन में यही बात थी कि मंडल के मारफत वह अच्छी किताबें सस्ती कीमतो पर प्रकाशित करवा सकेंगे। अपनी पुस्तक 'बहता पानी निर्मला' के छपने के वक्त उन्होने कई लोगो से पूछा कि पुस्तक की कीमत कितनी होनी चाहिए और उन्होने पुस्तक की कीमत कम से कम रखवायी।

शातिनिकेतन मे हिन्दी भवन और कलकत्ता विश्वविद्यालय में हिन्दी चेयर की स्थापना भागीरथजी के ही प्रयत्नो से हुई।

८

स्वाधीनता-आन्दोलन

कलकत्ता मे १९१८ और १९२६ मे हिन्दू-मुस्लिम दगे हुए थे। ये दगे गैर-बगाली मुहल्लो मे ही सीमित रहे। १९२६ के दगे मे भागीरथजी ने उपद्रवी मुहल्लो से लोगो को निकालने का काम किया। १९२६ के दगे के बाद की एक घटना के बारे मे सीतारामजी ने बताया "१९२६ मे प्रथम विधवा-विवाह के बाद हम (भागीरथजी और मैं) साथ-साथ जाति-बाहर हुए। इसके कुछ दिनो बाद हिन्दू-मुस्लिम दंगा हुआ तो उसमे भी हमने साथ-साथ काम किया। लेकिन साथ-साथ काम करने के बावजूद भागीरथजी से मेरी मैत्री प्रगाढ नही हुई थी। मैं उनकी अपेक्षा अन्य मित्रो के ज्यादा निकट था। कलकत्ता मे उन दिनो सूते के व्यापारियो की ओर से एक जुलूस, जो राजराजेश्वरी का जुलूस कहलाता था, निकला करता था। दगा हो जाने के कारण इस जुलूस के बारे मे नाना तरह की आशकाए थी और इसमे शामिल होना खतरनाक माना जा रहा था। भाई भागीरथजी, मैं और हमारे साथी इस जुलूस में शामिल हुए। जुलूस मे शामिल होते हुए मन मे चिंता थी—न मालूम क्या हो जाय। जुलूस मे शामिल होने के पहले मैंने अपनी स्त्री के नाम एक नोट लिखा था। उस नोट मे अनेक चीजों के बारे मे लिखते हुए मैंने भागीरथजी के बारे में लिखा था कि उनसे अच्छा आदमी आज तक मुझे नही मिला है। उनका और मेरा साथ तो पूर्व-जन्म का है। यह नोट मैंने बाद में, पचीस-तीस वर्ष बाद पढा तो चकित रह गया कि साधारण से सम्बन्ध और

परिचय से भागीरथजी के प्रति मेरे मन में इस तरह के विचार कैसे आये और खासकर मृत्यु की आशका के वक्त ? भागीरथजी से मेरी मैत्री तो १९३० के आदोलन के बाद ही बढी। १९३० के आदोलन मे मैं जेल गया। जेल से लौटने पर भागीरथजी ने इतना आदर और स्नेह दिया कि हम सारे कामो मे साथ रहने लगे। १९३० से जो घनिष्टता कायम हुई, वह पचास वर्ष तक बढती ही गयी और हमारे बीच कोई फर्क नही रह गया। हम दो देह एक प्राण हो गये थे। अत्यन्त परदुखकातर होने के कारण वह हमेशा तात्कालिक राहत के कामो में जुट पडते थे और मैं इन कामो को ज्यादा महत्व नही देता था सो इनमें बहुत कम सहयोग देता था। लेकिन इसका उन्होने कभी बुरा नही माना और मैं जो काम करता था उनमे पूरा सहयोग दिया।"

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है कि १९२० के बाद कलकत्ता के सुधारवादी मारवाडी युवको की मित्र-मण्डली पर गाधीजी का प्रभाव दिनोंदिन बढता ही गया और गाधीजी के हरेक कार्यक्रम मे हिस्सा लेना मण्डली का कर्त्तव्य बनता गया। भागीरथजी ने १९२६ में ही खादी पहनना शुरू कर दिया था और कलकत्ता मे गाधीजी द्वारा १९२९ मे शुद्ध खादी भण्डार के उद्घाटन के बाद वह खादी के प्रचार मे भी लग गये। कलकत्ता मे खादी की फेरिया निकलवाने और घर-घर जाकर खादी बेचने के कामो में वह रहे। भागीरथजी, सीतारामजी और बसतलालजी (मुरारका) की पत्नियो ने भी कुछ अन्य स्त्रियो के साथ घर-घर खादी बेची। अपने जन्म-स्थान मुकुन्दगढ में भागीरथजी ने खादी-उत्पादन केन्द्र खोला। शुद्ध खादी भण्डार, मित्र-मण्डली का केन्द्र बन गया। शाम को सारे मित्र वहा आ जाया करते और गाधीजी के कामो—हरिजन सेवा, हिन्दी-प्रचार, विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार आदि—को किस प्रकार आगे बढाया जाए, इस पर विचार करते। भण्डार से श्री महावीर प्रसाद पोद्दार की देख-रेख में गाधीजी की पुस्तको के प्रकाशन का काम भी शुरू हुआ और भण्डार द्वारा प्रकाशित कुछ पुस्तकें सरकार द्वारा जब्त भी की गयी। १९३३ मे प्रवासी प्रेस से गाधीजी की पुस्तकें "अच्छे कागज पर अच्छे ढग से और सफाई से निकलें," इसके लिए भागीरथजी ने सारे रुपये खुद दिये।

मण्डली के अन्य सदस्य राजनीति मे और कागरेस के कामो मे बढ कर भाग लेने लगे। यद्यपि भागीरथजी राजनीतिक कामो मे अपने अन्य मित्रो की तरह सक्रिय नही हुए लेकिन उनमे पूरा सहयोग देते रहे। वह कागरेस के चवन्निया सदस्य भी नही बने। सभा-सोसाइटियो मे जाने, नाम छपवाने और व्याख्यान देने से उन्हे सहज-स्वाभाविक अरुचि थी। वह तो ऐसे काम करने के आदी थे जिनमे नाम दूसरो का हो। १९३० के आदोलन मे वह सक्रिय नही रहे, पर जब गाधीजी ने हरिजन-उत्थान का काम उठाया तो वह उसमे अत्यधिक उत्साह के साथ जुट गये। १९३२ मे गाधीजी ने यरवदा जेल मे नये सविधान मे दलित वर्गों की पृथक चुनाव-व्यवस्था के खिलाफ २० सितम्बर से आमरण अनशन शुरू किया तो देश भर मे जगह-जगह दलित वर्गों (हरिजनो) को कुओ पर पानी भरने देने और मन्दिरो मे प्रवेश करने देने की घटनाए हुई। सैकडो सभाए हुई जिनमे गाधीजी की दीर्घायु की कामना करने के साथ हिन्दू-धर्म के कलक अस्पृश्यता को मिटाने और दलितो को समाज मे न्यायोचित स्थान दिलवाने का

सकल्प लिया गया। शातिनिकेतन मे विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने काले वस्त्र धारण कर 'उपवास और प्रार्थना' के दिन की सभा का सचालन किया। पूना पैक्ट होने पर गाधीजी ने अनशन तोडा, लेकिन उन्होने यह भी घोषणा की कि यदि अस्पृश्यता दूर करने के लिए तेजी से कुछ नही किया गया तो वह फिर अनशन करेंगे। १९३२ मे गाधीजी ने पहली बार दलितो को 'हरिजन' कहना शुरू किया। 'हरिजन' नाम से पत्र निकाला। हरिजन-कोष खोला। हरिजन सेवक सघ की स्थापना की। आज सरकार की ओर से कहा जाता है कि समाचार-पत्र हरिजनो की दुर्दशा के समाचार छाप कर सनसनी पैदा करते है। लेकिन हरिजनो की दुर्दशा के लम्बे विवरण छापने की शुरुआत राष्ट्रपिता ने ही की थी। 'हरिजन' मे उन्होने हरिजनो की दुर्दशा के लगातार विवरण छापे। हरिजनो की समस्या उठा कर गाधीजी ने एक तरह से हिन्दू धर्म की रूढियो के खिलाफ जिहाद ही छेड दिया। अग्रेजी पढे-लिखे लोग गाधीजी को ऐसा व्यक्ति मानते है जो हमे प्राचीन युग मे वापस ले जाना चाहता था। इसकी वजह यह है कि उन्होने गाधीजी को समझने की चेष्टा ही नही की। उनकी अपेक्षा सनातनियो ने गाधीजी को ज्यादा ठीक समझा, उन्होने हरिजनोद्धार को लेकर गाधीजी को गालिया निकालना और उनके प्रति घृणा जताना शुरू किया। इसका कारण यह था कि वे इस बात को देख रहे थे—जो अग्रेजी पढे-लिखे आधुनिक व्यक्ति देखने मे असमर्थ थे—कि गाधीजी क्या करने जा रहे है। वे यह देख पा रहे थे कि गाधीजी हिन्दू धर्म को इस तरह परिष्कृत करना चाहते है कि वह एक परम उदारवादी और लोकतान्त्रिक धर्म बन जाय। तो सनातनियो ने गाधीजी के हरिजन-आन्दोलन का जोरो से विरोध किया। १९ जून, १९३४ को पूना मे उन पर बम भी फेका गया।

देश मे हरिजनो के बारे मे एक नयी चेतना पैदा होनी शुरू हुई। चूकि उस वक्त आजादी नही मिली थी और लूट मे हिस्सा मारने की बात न थी, इसलिए मदिर-प्रवेश और अस्पृश्यता-निवारण सम्बन्धी आदोलन के साथ-साथ हरिजन बस्तियो की सफाई, हरिजन स्कूलो की स्थापना आदि के रचनात्मक काम भी हुए। यहा तक हुआ कि फिल्म-निर्माताओ ने अस्पृश्यता के विरोध मे फिल्मे बनायी—"अछूत-कन्या' और 'महात्मा' जैसी फिल्मे बनी। कलकत्ता मे विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने "अछूत-कन्या' के प्रदर्शन का उद्घाटन किया। भागीरथजी ने इस अवसर पर सिनेमा-मालिक से विश्वकवि को एक थैली भी भेट करवायी।

२० सितम्बर, १९३२ के अनशन के सात महीने बाद गाधीजी ने ८ मई, १९३३ को यरवदा जेल मे फिर २१ दिनो का उपवास किया। यह उपवास आरम्भ करते हुए उन्होने कहा "अगर ईश्वर को मेरी देह से सेवा लेनी है तो उपवास से (भी) वह विलीन नही हो जायेगी। यदि वह (ईश्वर) हरिजनो का पक्षधर है तो इस सत्कार्य को जारी रखने के लिए नये-नये लोगो को सामने लायेगा।" हरिजन-उद्धार या हरिजन-सेवा और सवर्णों के मन मे हरिजनो के साथ सदियो से होनेवाले अत्याचार के प्रति पश्चाताप का उदय करवाना, गाधीजी का मिशन हो गया। नवम्बर, १९३३ को हरिजनो के बारे मे 'प्रोपगंडा' करने और हरिजन-कोष के लिए चन्दा इकट्ठा करने गाधीजी देश के दौरे पर निकल पडे। ९ महीने वह देश भर का दौरा करते रहे।

१२५०० मील की दूरी उन्होने ९ महीनो मे नापी। देश के सुदूरवर्ती कोनो तक पहुचे। कुछ हिस्सो मे तो पैदल-यात्रा भी की। ८ लाख रुपये इकट्ठा किये।

इस देश-व्यापी दौरे के सिलसिले मे अप्रैल-मई, १९३४ मे गाधीजी ओडिशा आये और यहा उन्होने पद-यात्रा शुरू की। भागीरथजी भी कलकत्ता से ओडिशा गये। इस अवसर पर एक बहुत सुन्दर घटना घटी। गाधीजी ने एक विशाल जनसभा मे भाषण देने के बाद हरिजन-कोष के लिए सहायता मागी। स्त्रियो से गहने मागे। अनेक लोगो ने अनेक प्रकार की चीजे दी—छोटी-बडी। जो चीजे आयी, उनमे कृष्ण की एक मूर्त्ति भी थी। गाधीजी ने सभी चीजो को नीलाम करना शुरू किया। कृष्ण की मूर्ति भी नीलाम चढा दी। भागीरथजी ने गाधीजी से मजाक मे कहा "बापू! आपने तो भगवान को भी नीलाम कर दिया।" इस पर गाधीजी ने हसते हुए कहा "भाई, मैने गोविन्द लीनो मोल। यह (भगवान) तो सदा ही विकता और नीलाम होता रहा है, भक्तो के लिए।" ३१ जुलाई, १९३४ में गाधीजी इसी हरिजन-यात्रा के सिलसिले मे कलकत्ता पहुचे तो ठक्करबापा के साथ भागीरथजी के घर भी पधारे। भागीरथजी की पत्नी गगा देवी ने उनका पूजन किया और अपनी ओर से हरिजन-कोष के लिए भेट दी। गाधीजी वहा उपस्थित महिलाओ से भी रुपये वसूलने से नही चूके। सात मिनट के भीतर उन्होने २१०० रु० वसूल कर डाले। ठक्करबापा ने इस दिन की अपनी डायरी मे लिखा है: "चार बजे कानोडियाजी के घर गये। उनके पुत्र (सुशील, उम्र तीन वर्ष) की हाल मे मृत्यु हुई है इसलिए उनकी पत्नी बाहर नही निकलती, सो गाधीजी को उनके मकान पर बुलाया गया था। बापू को सिक्को का ढेर सा उपहार दिया गया, टोटल दो हजार से भी ज्यादा।"

कलकत्ता मे हरिजनो की उन्नति के लिए जो भी काम शुरू किये गये, उनमे भागीरथजी का प्रमुख हिस्सा था। मित्र-मण्डली की ओर से हरिजन-उत्थान समिति की स्थापना की गयी। समिति ने कलकत्ता की हरिजन बस्तियो मे बच्चो के स्कूल और प्रौढो के नाइट-स्कूल खोले। समिति के कार्यकर्त्ता हरिजन बस्तियो मे जाकर वहा सफाई का काम करते, लैनटर्न लेक्चर आयोजित करते। उन दिनो के भागीरथजी के काम के बारे मे सीतारामजी ने बताया: "हरिजन-सेवा के काम मे तो उन्होने बहुत ही दिलचस्पी ली। हमलोग हरिजन बस्तियो में जाते। भागीरथजी हरिजनो के गन्दे घरो मे बैठकर उनसे बहुत देर बहुत तरह की बातें करते जो उनके साथ होते हुए भी मैं नही कर पाता था। उनकी तरह गदी जगहो मे मैं उठ-बैठ नही सकता था। उन दिनो की एक घटना याद है। एक हरिजन बस्ती में सुदर्शन नाम का एक हरिजन रहता था। भागीरथजी उससे बहुत बात करते। सुदर्शन का बेटा बीमार पडा तो उन्हे उतनी ही चिंता हुई जितनी कि घर के किसी बच्चे के बीमार पडने पर होती। पहले दिन बच्चे को देखने के बाद दूसरे दिन वह पहुचे कि बच्चे को डाक्टर से दिखाने के लिए सुदर्शन को राजी किया जाय, पर वह राजी ही नही हुआ, यही कहता रहा—झाड-फूक से ठीक होगा, झाड-फूक से विपत्ति का निवारण होगा और हमारी जाति के लोगो को खिलाना पडेगा। भागीरथजी निराश लौट आये।"

द्वारकाप्रसादजी ने, जो १९३२-३३ मे हरिजन-उत्थान समिति के कार्यालय-अधिकारी रहे, बताया "बस्तियो मे जो स्कूल चलाये जाते थे उनके निरीक्षण के लिए भागीरथजी अक्सर जाया करते थे और हर वक्त मुझ से काम की रपट लेते रहते थे।" भागीरथजी को हरिजन-सेवा बहुत बडा कार्य लगता था। उनका हिन्दू सस्कार यह था कि हरिजनो के साथ सदियो से अन्याय होता आया है, इसलिए उनके लिए हम जो कुछ भी कर पाये, वह कम है। बगाल मे हरिजनो की उन्नति के लिए जो कुछ भी काम हुआ उसमे वह रहे। राजस्थान हरिजन सेवक सघ के तो वह बीस वर्ष तक अध्यक्ष रहे। ठक्करबापा से उनका बहुत नजदीकी सम्बध बना। अपने जन्म-स्थान मुकुन्दगढ मे कृष्णदासजी जाजू के हाथो से १९३७ मे उन्होने कानोडिया परिवार द्वारा खोले गये स्कूल-शारदा विद्यालय-मे हरिजन बच्चो का प्रवेश करवाया। इसका काफी विरोध हुआ और सवर्णो के बच्चो ने स्कूल जाना बद कर दिया। मुकुन्दगढ के सरदारो ने बहुत दबाव डाला कि हरिजन बच्चो का प्रवेश रोक दिया जाय। कलकत्ता मे १९२६ मे जाति-बहिष्कृत होने के बाद १९३७ मे मुकुन्दगढ मे अब भागीरथजी एक बार फिर जाति-बहिष्कृत हुए अपने हरिजन-प्रेम के कारण। लेकिन वह "अडे रहे" कि हरिजन बच्चे स्कूल मे पढेगे ही। धीरे-धीरे सवर्णो का विरोध मद पडता गया।

'अडे रहे' लिखना गलत है, क्योकि भागीरथजी अडनेवाले व्यक्ति नही थे। हरिजनो को स्कूल में भरती न होने देना उनकी निगाह मे पाप था और यह पाप वह नही कर सकते थे। उनके जीवन मे ऐसे मौके बहुत कम आये है जब उन्होने अपनी बात मनवाने के लिए आग्रह किया हो, लेकिन अन्याय को उन्होने स्वीकार नही किया और इस अस्वीकार को वह दृढता के रूप में नही लेते थे, महज मानवीय कर्त्तव्य और स्वधर्म मानते थे।

१९३४ मे बिहार मे जबरदस्त भूकम्प आया। गाधीजी ने इसे हरिजनो के साथ सदियो से किये जानेवाले अत्याचार का परिणाम बताया। भागीरथजी मारवाडी रिलीफ सोसाइटी की ओर से राहत का काम करने तुरत बिहार पहुचे और लगभग हर भूकम्प-पीडित स्थान पर उन्होने जाने की कोशिश की। यहा सीतारामजी की 'एक कार्यकर्त्ता की डायरी' मे से १९ जनवरी, १९३४ की डायरी का एक अश उद्धृत किया जाता है, जो भूकम्प के वक्त भागीरथजी के कार्य की झाकी देता है "मोकामा मे स्टीमर मिला, सीमरिया घाट उतरे, वहा गाडी मिली, शाम साढे चार बजे समस्तीपुर पहुचे। दरभगा की गाडी तो बद थी ही रास्ते के पुल टूट गये थे। मोटर का जोगाड करने निकले, पर पेट्रोल पर सरकारी नियन्त्रण रहने के कारण मोटर का मिलना भी सहज नही था। बिहार के प्रधान नेता ब्रजकिशोर बाबू के डेरे गये। वहा भागीरथजी के परिचित और गाव के लोग मिल गये। सबडिवीजनल अफसर के यहा गये। वह खूब मजे मे टेनिस का बल्ला दोस्तो और मेम साहब के साथ घुमा रहा था। भागीरथजी ने उससे अग्रेजी मे बात कर पेट्रोल का आर्डर लिया। रास्ता जगह-जगह से टूटा हुआ था। ब्रजकिशोर बाबू तथा दूसरे लोगो ने रात मे जाने को मना किया पर भागीरथजी की इच्छा जाने की थी और अपने भी राजी थे पर बच्चू बाबू, जिनकी मोटर थी, वह राजी नही हुए। इसलिए रात वही पर रहे।"

भूकम्पग्रस्त क्षेत्रो मे ५-६ दिन रहने के बाद सीतारामजी कलकत्ता लौट आये लेकिन भागीरथजी वही रहे। २२ जनवरी, १९३४ की डायरी मे सीतारामजी लिखते है "भागीरथजी का दयालु स्वभाव है। यहा के गरीबो से बात करने पर उनको चावल तथा एक स्त्री को दो रुपये दिये।" १ फरवरी १९३४ को सीतारामजी अपनी डायरी मे लिखते है • "भागीरथजी का तार आया, मुजफ्फरपुर आदि के गावो की हालत खराब है। आ सकते हो तो आ जाओ।" २ फरवरी की डायरी मे वह लिखते है • "मुजफ्फरपुर पहुचे। मालूम हुआ कि भागीरथजी मोतिहारी गये है शायद शाम तक लौट आयेगे। बिहार सेन्ट्रल रिलीफ कमेटी के कार्यकर्त्ताओ से मिले। उनके और मारवाडी रिलीफ सोसाइटी के बीच थोडा मतभेद चल रहा है। भागीरथजी यहा दो दिन रहे इसलिए इस मतभेद को कुछ अशो मे मिटा दिया पर फिर नही उठेगा, ऐसा नही कहा जा सकता।"

भूकम्प, बाढ, अकाल, इन सबमे भागीरथजी अपने को भूलकर सहायता कार्य मे जुट जाते थे। ऐसे अवसरो पर वह अपने को किसी सस्था से जोड लेते थे और उसीके मारफत काम करते। भागीरथजी के स्वभाव का चरम गुण पर-दुखकातरता था। ऐसे मे वह अन्य कार्यो की अपेक्षा राहत और चिकित्सा के कार्यो से ज्यादा आकृष्ट होते थे। कलकत्ता के बडाबाजार मे कोई प्रसूति गृह नही था और हिन्दी-भाषी समाज अस्पताल मे जाने से हिचकता भी था इसलिए १९३७ मे भागीरथजी और सीतारामजी ने बडाबाजार मे एक प्रसूति गृह खोलने का निश्चय किया। जुलाई १९३७ को जानकी देवी बजाज के हाथो इस प्रसूति गृह—मातृ सेवा सदन—का उद्घाटन हुआ। खुलने के डेढ महीने के भीतर ही यह स्थिति आ गयी कि जगह की कमी महसूस होने लगी और अतिरिक्त चारपाइया डालनी पडी। मातृ सेवा सदन ने १२-१३ साल तक बडाबाजार मे मातृ जाति की बडी सेवा की। सेठ कन्हैयालाल लोहिया ने मातृ सेवा सदन के पास ही मल्लिको की विशाल इमारत खरीदी थी। उन्होने प्रस्ताव रखा कि यदि अस्पताल उनके नाम पर कर दिया जाय तो वह इमारत दे देगे। इस प्रस्ताव को भागीरथजी और सीतारामजी ने स्वीकार कर लिया क्योकि मातृ सेवा सदन का मकान बहुत छोटा पड रहा था जिससे बहुत सी महिलाओ को लौटाना पडता था। इस प्रकार मातृ सेवा सदन, लोहिया मातृ सेवा सदन हो गया। लेकिन बाद मे भागीरथजी और सीतारामजी, कन्हैयालालजी से मतभेद के कारण इस सस्था से हट गये। मतभेद का एक कारण यह भी था कि कन्हैयालालजी सेवा सदन में मुसलमान और हरिजन महिलाओ के भरती किये जाने तथा रोगियो के आराम के लिए नयी सुविधाए बढाने और व्यवस्था को सुधारने के लिए अधिक खर्च करने के एकदम विरुद्ध थे।

जनवरी, १९३९ म जयपुर राज्य (रियासत) ने प्रजामण्डल को, जो उत्तर-दायी शासन की माग कर रहा था, गैरकानूनी घोषित कर दिया और जमनालालजी बजाज के जयपुर राज्य मे प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगा दिया। कलकत्ता की मित्र-मण्डली के लगभग सभी सदस्य जयपुर राज्य की 'प्रजा' थे। उन्होने प्रजामण्डल के आदोलन का समर्थन करने के लिए कलकत्ता में एक कमेटी बनायी। कलकत्ता से प्रजामण्डल

के आन्दोलन को सहयोग मिले, इसके लिए जमनालालजी वजाज भी कलकत्ता आये। यह तय हुआ कि कलकत्ता की कमेटी के पदाधिकारियो को जरूरत पडने पर सत्याग्रह करने के लिए जयपुर जाना पडेगा। इसका मतलब यह था कि उनको जेल जाना पड सकता था। सीतारामजी कमेटी के मन्त्री नियुक्त किये गये पर अध्यक्ष का चुनाव नही हो सका क्योकि कोई बनने को तैयार न था। सीतारामजी २६ जनवरी, १९३९ की अपनी डायरी में लिखते है "भागीरथजी ने खुद का नाम (अध्यक्ष पद के लिए) दिया। वह जेल मे साथ रहेगे तो विशेष सुविधा होगी पर पता नही साथ रह सकेगे या नही।"

कलकत्ता की कमेटी ने वगाल, विहार, ओडिशा और असम मे मारवाडियो के बीच प्रजामण्डल के आन्दोलन के बारे में प्रचार करने के लिए लोग भेजे। इन प्रातो मे भी कई जगह प्रजामण्डल के आन्दोलन का समर्थन करने के लिए कमेटिया भी बनी। ११ फरवरी को जमनालालजी वजाज और हीरालालजी शास्त्री गिरफ्तार कर लिये गये। इसके बाद जयपुर में आन्दोलन ने खूब जोर पकड लिया, "जव सत्याग्रह करने के लिए जत्था निकलता तो बाजारो, रास्तो और मकानो पर मनुष्यो के सिवाय कुछ नही दिखता। दस-बीस हजार आदमियो का इकट्ठा होना तो मामूली बात थी। ऊपर मे तो पचास हजार तक लोग इकट्ठा हो जाते थे। साधारण दिन जयपुर मे आधा मन आटे की पूडिया बिक्ती थी तो सत्याग्रह के दिन ६ मन। आसपास के स्थानो से बहुत बडी तादाद में लोग आते।" भागीरथजी के जन्म-स्थान मुकुन्दगढ मे प्रजामण्डल के आन्दोलन के सिलसिले में 'किसान दिवस' मनाया गया। इस अवसर पर जो जुलूस निकला उसमे शामिल लोगो को मुकुन्दगढ के ठाकुर बाघसिहजी के निर्देश पर पीटा गया। जो किसान युवक जुलूस का नेतृत्व कर रहा था, वह भीषण रूप से घायल हुआ। भागीरथजी ने इस युवक की चिकित्सा की व्यवस्था करने के साथ ठाकुरो के खिलाफ उसे संरक्षण भी दिया। मुकुन्दगढ के ही पास पचपाना (पाच गाव) के क्षेत्र में आन्दोलन के सिलसिले में भागीरथजी अपने साथियो—नरोत्तमजी जोशी, महादेवजी और चिरजीलालजी ढाचोलिया के साथ सभा करने चिराणा गाव गये। पचपाना गावो के सरदारो "भौम्याओ" ने अपने क्षेत्र मे निषेधाज्ञा लगा दी। उनके लठैतो ने सभा के लिए आये लोगो को पीटना शुरू किया। भागीरथजी और उनके साथियो को काफी चोट आयी। लेकिन गाधीजी ने १९ मार्च को यह आन्दोलन स्थगित करवा दिया। हीरालालजी शास्त्री और जमनालालजी जेल मे थे। हीरालालजी ने अपनी आत्मकथा 'प्रत्यक्ष जीवन शास्त्र" मे लिखा है "सत्याग्रहियो की कमी नही हुई थी। गाधीजी ने अपने किसी तरीके के अनुसार उस समय सत्याग्रह को स्थगित करवाया था, जब वह जोरो पर था।" गाधीजी के इस निर्णय का प्रजामण्डल के कार्यकर्त्ताओ ने दबा-दबा विरोध भी किया। गाधीजी द्वारा निर्णय करने के वक्त हीरालालजी की पत्नी श्रीमती रतन शास्त्री कमरे के बाहर थी। वह आवेश मे आकर गाधीजी के पास गयी और उन्होने कहा कि जो लोग जेल मे है उन्हे विश्वास ही नही होगा कि आपने सत्याग्रह स्थगित करने का निर्णय किया है। तब गाधीजी ने उसी समय अपने हाथ से सत्याग्रह स्थगित करने का आदेश लिखा ताकि जेल के साथियो को समाधान हो। इस आदेश का ब्लाक बनवाकर छपवाया गया। सत्याग्रह स्थगित होने पर भी जयपुर शासन

ने सत्याग्रहियो को नही छोडा। हीरालालजी साढे पांच महीने की जेल के बाद छोड गये और जमनालालजी उसके भी बाद। आन्दोलन स्थगित होने के बाद जेल मे बन्द सत्याग्रहियो को भागीरथजी नही भूले। उनकी हालत देखने वह जयपुर गये और कैम्प जेलो मे प्रत्येक सत्याग्रही से जाकर मिले।

दूसरे विश्व-युद्ध मे रगून पर बमबारी होने के बाद सारा बगाल खतरनाक क्षत्र घोपित कर दिया गया। १९४१ के अन्त तक पाच-सात लाख आदमी कलकत्ता छोड कर बाहर चले गये शहर का जीवन एकदम असामान्य हो गया। बमबारी के डर से रात को ब्लैक-आउट रहता यानी बिजलिया बन्द रखी जाती। किसी भी समय बमबारी हो सकती है, यह आशका सब समय व्याप्त रहती। भागीरथजी और उनकी मित्र-मण्डली ने बमबारी होने पर लोगो को प्राथमिक चिकित्सा की जा सके, इसकी व्यवस्था की। उनके ही मकान पर प्राथमिक चिकित्सा केन्द्र खोला गया। स्वय भागीरथजी और उनके मित्र शाम को इकट्ठा होते और बमबारी की हालत मे तुरन्त सहायता करने के लिए तैयार रहते थे। रगून से भारतीय शरणार्थी भाग कर कलकत्ता आने लगे तो भागीरथजी ने उनके रहने और खाने-पीने आदि की व्यवस्था करने मे बडी तत्परता के साथ काम किया।

अग्रेजो ने देश को इस द्वितीय विश्व-युद्ध मे उसकी मरजी के खिलाफ झोक दिया था। सरकार की सारी शक्ति युद्ध-प्रयत्नो मे लग गयी और इसका बोझ देश-वासियो पर तरह-तरह से पडने लगा। ऐसे मे गाधीजी ने निर्णय किया कि देश को जबरदस्ती, उसकी मरजी के बिना युद्ध-प्रयत्नो मे शामिल करने के खिलाफ कुछ चुनिन्दा लोग देश भर मे व्यक्तिगत सत्याग्रह करे। गाधीजी की दलील थी कि अग्रेज अगर भारत को युद्ध-प्रयत्नो मे शामिल करना चाहते है तो उन्हे भारत को पहले स्वाधीनता प्रदान करनी होगी। लेकिन फासिज्म के खिलाफ लडने का दावा करनेवाली ब्रिटिश सरकार 'दुनिया की स्वाधीनता की लडाई' तो लड रही थी पर भारत को स्वाधीनता देने को तैयार नही थी; उसने भारत रक्षा कानून के तहत काग्रेसी और गाधीवादी कार्य-कर्त्ताओ को गिरफ्तार करना शुरू किया। सरकार और काग्रेस के बीच मुठभेड की स्थिति पैदा होती गयी। ८ अगस्त, १९४२ को बम्बई मे काग्रेस महासमिति ने "भारत-छोडो" प्रस्ताव पास किया। प्रस्ताव पास होने के बाद गाधीजी ने अपने भाषण मे कहा "इस प्रस्ताव को पास करने के बाद हम स्वाधीन हो गये है। अब हमे महसूस करना चाहिए कि हम आजाद हैं और हम पर कोई गैर लोग हुकूमत नही कर सकते। अब हम अपनी हुकूमत कायम करेगे।"

९ अगस्त की सुबह गाधीजी और काग्रेस वर्किंग कमेटी के सभी सदस्यो की गिरफ्तारी के बाद देश मे राष्ट्रीयता की जो चेतना फैली और उसे कुचलने के लिए गोरी सरकार ने जिस नृशस दमन नीति का आश्रय लिया, वह स्वतन्त्रता सग्राम के गौरवमय इतिहास की वस्तु है। बगाल मे भी सभी नेता और कार्यकर्त्ता गिरफ्तार कर लिये गये। ऐसे मे भागीरथजी, जो राजनीति मे बहुत सक्रिय नही थे, चुप नही बैठे रह सकते थे। कार्यकर्त्ताओ के अभाव मे आन्दोलन को जीवित रखने के प्रयत्न मे वह लगे। खुफिया विभाग को उनकी गतिविधियो का पता लगा और उन्हे २२ अगस्त,

१९४२ को गिरफ्तार कर लिया गया। जेल में उनकी गिरफ्तारी का समाचार पाने पर २५ अगस्त को सीतारामजी ने अपनी डायरी मे लिखा . "उनकी गिरफ्तारी कई कारणो से चिंता की वात है। नन्दू (भागीरथजी के ज्येष्ठ पुत्र नन्दलाल) ज्यादा बीमार है। भागीरथजी की स्त्री भी बीमार और भोली है। भागीरथजी बाहर रहते तो आन्दोलन की हर तरह से मदद मिल सकती थी, यह बडा नुकसान है। इसके वाद एक वात और है यदि वह बाहर रहते तो अपने घर के लोगो की तरफ से अपने को कोई चिन्ता नही थी।"

२८ अगस्त को भागीरथजी सेन्ट्रल जेल से प्रेसीडेंसी जेल भेज दिये गये। यही उनके साथी सीतारामजी और वसन्तलालजी मुरारका भी थे। ९ अक्टूबर को अपनी डायरी मे सीतारामजी लिखते हैं "भाई भागीरथजी को आज कन्फर्म कर दिया गया यानी वह अनिश्चितकाल के लिए जेल मे रख दिये गये।" जेल में भागीरथजी की तवीयत विगडने लगी। २४ दिसम्बर की डायरी मे सीतारामजी लिखते है . "अचानक भाई भागीरथजी चक्कर आने से गिर पडे ..उन्हे अस्पताल भेजना पडा। रात मे अकेले कोठरी मे रहना उचित न था, जेल के नियमो के अनुसार पास कोई नही रह सकता था।" अप्रैल १९४३ से भागीरथजी की तवीयत ज्यादा खराव हो गयी, लगातार बुखार रहने लगा। ४ मई की डायरी मे सीतारामजी लिखते है "अधिकारियो के पास एक चिट्ठी आयी कि वे भागीरथजी से वात करके यह समझ लें कि वह बाहर जाकर कोई राजनीतिक काम मे भाग नही लेंगे। भाई भागीरथजी बाहर जाकर किसी काम मे भाग लें या न लें पर यह कह कर छूटना तो अपमान है और सरकार हमलोगो से ऐसा पूछे या ऐसी उम्मीद करे यह उसकी हिमाकत है। भागीरथजी ने उचित उत्तर दिया। इस पर सरकारी आदमी ने कहा ऐसा करने से आप तभी छूट सकेंगे जब सब लोग छूटेंगे। भाई भागीरथजी ने कहा कि मैं सब जानता हू और सोच-समझ कर उत्तर दे रहा हू।" ८ मई की डायरी मे सीतारामजी लिखते है "भाई भागीरथजी की तवीयत गिरती ही जा रही है।" भागीरथजी की तवीयत मे सुधार नही हुआ। २५ जून, १९४३ को उन्हे रिहा कर दिया गया।

जयप्रकाशजी की फरारी की अवस्था मे उनके कलकत्ता के आतिथेय श्रीसोहनलाल पचीसिया ने हाल मे वनारसीदासजी चतुर्वेदी को वात-वात मे वताया कि जेल से छूटने के वाद भागीरथजी आन्दोलन को पूरी मदद करते रहे। जब जयप्रकाशजी जेल से भाग कर कलकत्ता आये तो भागीरथजी ने उनसे सम्पर्क स्थापित किया। जेल मे वन्दी कार्यकर्त्ताओ के परिवारो की तो उन्होने ढूढ-ढूढ कर मदद की।

९
बंगाल का अकाल

भागीरथजी जब रिहा हुए तब बगाल मे १९४३ के अकाल की काली छाया फैलने लगी थी। चावल के दाम बेतहाशा बढते जा रहे थे। अन्न की तलाश में लोगो का गावो से कलकत्ता आना और मारे-मारे फिरना शुरू हो गया था। एक महीने बाद तो कलकत्ता मे सडक पर चलते हुए किसी भी समय भूख से मरनेवाले लोगो की लाश पर पैर पडने की हमेशा आशका रहती। अगस्त, सितम्बर, अक्टूबर और नवम्बर के चार महीनो मे तो अकाल ने अपना विकरालतम रूप दिखाया। ऐसा लगता था कि किसी महामारी ने बगाल को जकड लिया है और वह रोज दुगुने-तिगुने और चौगुने वेग से हजारो-लाखो लोगो को मौत के मुह मे झोक रही है। कोई-कोई गाव तो श्मशान बन गया था, जहा इक्के दुक्के लोग अकाल की विभीषिका की कहानी कहने के लिए बच रह गये थे।

अकाल के चपेट मे वैसे तो मध्य वर्ग तक के लोग भी आये लेकिन भूमिहीन-मजदूरो, मछुवारो और गावो मे कारीगरी के तरह-तरह के छोटे-छोटे धन्धे करनेवाले लोगो पर इसकी सबसे भयकर मार पडी। अकाल ने सारा आर्थिक और सामाजिक ढाचा ही तोड दिया। अन्न जुटाने की कोशिश मे मछुवारो को अपने जाल और अपनी नौकाए तक बेचनी पडी तथा कारीगरो को अपने औजार। लोगो ने, वे जो कुछ भी बेच सकते थे, बेचा। गरीब औरतो के पास बेचने को कुछ न था तो वे अपनी इज्जत बेचने को बाध्य हुई। आदमी भूख से लाचार होकर वह सब कुछ करने को बाध्य हुआ जिसकी आदमी के रूप मे वह कल्पना भी नही कर सकता था—माता-पिता ने अपनी सन्तान को, पति ने पत्नी को और पत्नी ने पति को, सन्तान ने बूढे माता-पिता को निराश्रित छोड दिया। कलकत्ता मे तो आदमी और जानवर के बीच भोजन के लिए लडाई लडने के दृश्य सामान्य हो गये थे—डस्टबिन से कुछ प्राप्त करने की कोशिश मे भूखा आदमी आवारा कुत्ते का सबसे बडा दुश्मन बन गया था और भूख की इस लडाई मे आदमी और कुत्ते के बीच कुत्ता ज्यादा ताकतवर साबित हो रहा था। शहरो मे गावो से आये लोगो की भूखी और नगी भीड सब जगह दिखायी पडने लगी। गृहस्थो के यहा "मा, एक टू फेन दाओ" (थोडा सा चावल का माड ही दे दो) की पुकार करते हुए ग्रामीणो को अक्सर देखा जा सकता था। अकाल का सबसे बडा लक्षण यही होता है कि ग्रामीण गावो को छोड कर शहरो की ओर भागने लगते है।

इस अकाल मे बगाल रिलीफ कमेटी के सेक्रेटरी के रूप मे भागीरथजी ने राहत का जो कार्य किया, वह आज भी ३७ वर्ष बाद लोग याद करते है। इस ग्रन्थ के अनेक

सस्मरणात्मक लेखो मे भी अकाल के दौरान किये गये उनके काम का जिक्र आया है। इसमे कोई शक नही कि भागीरथजी ने राहत के जो अनेक कार्य किये, उनमे बगाल के अकाल मे किया गया उनका काम विशेष महत्व रखता है।

यह अकाल अनावृष्टि या किसी अन्य प्राकृतिक विपत्ति के कारण नही पडा था। यह तो पूरी तरह मनुष्य की ही करतूत था। इसमे कितने लोग मरे? तत्कालीन भारत मन्त्री एमरी ने अकाल मे मरे लोगो की सख्या ६९८००० बतायी। ब्रिटिश सरकार द्वारा नियुक्त उडहेड कमीशन ने अप्रैल १९४५ मे अपनी रपट मे कहा : "बगाल के अकाल मे मारे गये १५ लाख गरीब ऐसी परिस्थितियो के शिकार हुए जिनके लिए वे जिम्मेवार नही थे।" कमीशन का यह अनुमान विवादास्पद है। बगाल रिलीफ कमेटी ने उडहेड कमीशन को अपने प्रतिवेदन मे अकाल मे मरे लोगो की सख्या ३५ लाख कूती। कलकत्ता विश्वविद्यालय के एक सर्वेक्षण मे भी ३५ लाख लोगो के मरने का अनुमान प्रकट किया गया। आम धारणा तो चालीस लाख से भी ज्यादा लोगो के मरने की है।

अकाल का मुख्य कारण सरकार की नृशसता और लापरवाही थी। उसने ऐसी परिस्थितिया पैदा कर दी थी जिनमे बाजार से चावल एकदम गायब हो गया और जमाखोरी और मुनाफाखोरी को पूरा प्रोत्साहन मिला। दूसरा विश्व-युद्ध शुरू होते ही सरकार ने अपनी सारी शक्ति युद्ध मे लगा दी और नागरिको की आवश्यकताओ को एकदम भुला दिया। नागरिक रसद विभाग मे सारे बडे अधिकारी यूरोपियन थे और जो भारतीय थे उनका भी तबादला किया जाने लगा। १९४१ के आसपास जब युद्ध मे जापान की भारी जीत होने लगी तो अग्रेज सरकार को यह लगा कि बर्मा जीतने के बाद जापान बगाल पर चढाई करेगा सो उसने एक प्रकार की 'स्कार्च्ड अर्थ' (अपने स्थान को ही नष्ट कर देना जिससे शत्रु उसका उपयोग न कर सके; घर-फूक या सर्वक्षार) नीति अपनायी; तटवर्ती इलाको मे नौकाओ को डुबो दिया गया तथा वहा चावल भी नही रहने दिया गया। सरकार की ओर से कहा जाने लगा कि भारत रक्षा कानून के तहत चावल ले लिया जायेगा। १९४०-४२ मे तो नागरिको से यह भी अपील की गयी कि वे अपने पास २-३ महीने का अनाज का स्टाक रखें; व्यापारियो को भी गावो से चावल खरीदने को प्रोत्साहित किया गया। यही नही, सरकार ने युद्ध के लिए बाजार मे सामान खरीदने के लिए अन्धाधुन्ध नोट छापे जिससे भयकर मुद्रास्फीति पैदा हुई। गावो में रोज कमा कर खानेवाले लोग कीमतो मे भारी वृद्धि के कारण अनाज खरीदने में असमर्थ होते गये। अनाज की बढती हुई कीमत का उनकी कमाई से कोई मेल नही रहा। ऐसे लोग १९४३ मे बहुत बडी सख्या मे मरे। बगाली मध्य वर्ग तक चावल की बढती कीमतो के कारण भुखमरी की हालत मे पहुच गया।

सरकार ने सेना के लिए हमेशा १० लाख टन अनाज स्टाक मे रखना तय किया था। बर्मा-सीमा पर इस स्टाक का बहुत अनाज नष्ट हुआ पर उसमे से अकाल-पीडितो को कुछ भी नही दिया गया। इस स्टाक के लिए सरकार ने गावो से बडे पैमाने पर चावल खरीदा। युद्ध में कारखाना-मालिको की कमाई बहुत ज्यादा हो रही थी सो उन्होंने भी कारखानो को पूरे दम मे चलाने के लिए अनाज का सग्रह किया और

सरकार ने इसमे उन्हे पूरा सहयोग दिया; उन्हे प्रोत्साहित किया कि वे ज्यादा से ज्यादा अनाज खरीदकर रखे। ब्रिटिश सरकार को इस बात की तनिक भी चिन्ता नही थी कि बगाल के लोगो का क्या होता है। उसे तो बस युद्ध प्रयत्नो को सफल करने की पडी थी फजलुल हक-मन्त्रिमण्डल यह कह रहा था कि बगाल मे चावल का सकट पैदा हो रहा है, लेकिन ब्रिटिश सरकार यह दिखाना चाह रही थी कि कोई संकट नही है। बगाल एसेम्बली के युरोपियन सदस्यो की मदद से फजलुल हक-मन्त्रिमण्डल को गिराया गया और उसकी जगह सर ख्वाजा निजामुद्दीन के नेतृत्व मे मुस्लिम लीग का मन्त्रिमण्डल सत्तारूढ हुआ। ब्रिटिश सरकार को लगा कि यह मन्त्रिमण्डल युद्ध-प्रयत्नो मे पूरा सहयोग देगा। हुसन शहीद सुहरावर्दी (बाद मे बगाल के मुख्यमन्त्री और पाकिस्तान के प्रधानमन्त्री) इस मन्त्रिमण्डल मे नागरिक रसद मन्त्री बने। उन्होने तो कई बार ऐलान किया कि बगाल मे किसी प्रकार का अनाज सकट नही है (सुहरावर्दी ने तो अक्टूबर, १९४३ मे, जब लाखो आदमी मर चुके तब जाकर यह स्वीकार किया कि बगाल मे अकाल चल रहा है)। इस मन्त्रिमण्डल ने एक भयानक कार्य यह किया कि इस्पहानी एण्ड कम्पनी नामकी एक प्राइवेट कम्पनी को सरकार की ओर से चावल खरीदने का भार दे दिया। उसे सोल एजेन्ट बना दिया। इस्पहानी कम्पनी ने एक अन्य फर्म—हनुमानबक्स-विश्वनाथ—को अपना सब-एजेन्ट नियुक्त किया। दोनो ने बगाल के गावो से जो चावल खरीदा उसे बहुत मुनाफे पर सरकार को बेचा। १९४३ मे बगाल सरकार ने जो चावल खरीदा उसमे से १४१,००० टन शहरो को दिया गया और सिर्फ ६५००० टन गावो को।

बर्मा से चावल का निर्यात तो बन्द हो गया पर सरकार ने बगाल से चावल का निर्यात जारी रखा। जब कलकत्ता के 'स्टेट्समैन' ने नगर की सडको पर अकाल से मरनेवालो की फोटू छापी तो दिल्ली मे केन्द्रीय सरकार के अधिकारियो ने उस पर आपत्ति की और कहा कि स्टेट्समैन अतिरजित फोटुए छाप रहा है (फोटुए भी अतिरजित होती है ?)। ब्रिटिश सरकार और निजामुद्दीन मत्रिमडल की सारे समय चेष्टा अकाल की स्थिति को छिपाने की थी। चूकि सडको पर रोज लाशें दिखाई पडती थी सो कलकत्ता मे गावो से आये लोगो को भगाने और निकालने के लिए सरकार द्वारा अभियान छेडे गये। ब्रिटिश पार्लियामेन्ट मे भारत-मत्री एमरी ने बार-बार कहा कि बगाल मे कोई सकट नही है। सरकार की चेष्टा चूकि अकाल को छिपाने की थी, इसलिए उसने शहरो की तरफ तो थोडा-बहुत ध्यान भी दिया लेकिन गावो की भयकर उपेक्षा की।

इस तरह की स्थिति मे सिर्फ सरकार की ही ओर ताकते नही रहा जा सकता था वरन अपने से अकाल पीडितो के लिए जो कुछ भी हो सके करना चाहिए, यह बात बहुतो के मन मे घुमड रही थी इस घुमडन के कारण अकाल-पीडितो को सीधे राहत पहुचाने और राहत कार्य करनेवाले सगठनो के काम मे तालमेल बैठाने के उद्देश्य से २९ जुलाई, १९४३ को बगाल रिलीफ कमेटी की स्थापना हुई। सर बदरीदास गोयनका इसके अध्यक्ष और भागीरथजी मत्री-कोषाध्यक्ष बनाये गये। इस कमेटी ने बगाल के अकाल मे राहत कार्य करनेवाले सबसे बडे गैरसरकारी सगठन का

रूप ले लिया। कमेटी के निर्माण मे डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी की अत्यत सक्रिय भूमिका रही थी इसलिए बहुत लोगो को यह गलतफहमी हो गयी थी कि डा० मुखर्जी इसके अध्यक्ष है जबकि वह इसके उपाध्यक्ष थे। डा० मुखर्जी की कमेटी के रूप मे मशहूर होने के कारण कमेटी को अपने काम मे एकाध बार दिक्कत भी आयी।

कमेटी की स्थापना के बाद भागीरथजी अकाल सहायता के काम जो जुटे, एक वर्ष तक लगातार रात-दिन जुटे रहे। इस एक वर्ष मे उन्होने कोई दूसरा काम नही किया। रात-दिन अकाल पीडितो की सहायता मे लगे रहे। सीतारामजी का कहना है कि जब वह जेल से छूट कर आये तो लोगो ने उन्हे बताया कि जिस तरह राजेन्द्र बाबू ने १९३४ के बिहार के भूकम्प मे अपने को भूल कर काम किया था उसी तरह १९४३ मे भागीरथजी ने बगाल के अकाल मे काम किया।

सरकार की ओर से यही कहा जाता रहा है कि सकट मामूली है और उसके लिए पिछला मत्रिमडल दोषी है (डा० मुखर्जी पिछले मत्रिमडल के सदस्य रह चुके थे)। एक बार तो यूरोपियन सदस्यो ने एसेम्बली मे डा० मुखर्जी से कहा, "आप जापान के प्रधान मत्री से क्यो नही अनाज मागते ?" ऐसे मे बगाल रिलीफ कमेटी ने सारे देश और दुनिया का ध्यान बंगाल के अकाल की तरफ खीचने की कोशिश की। उसने देश-विदेश के अखबारो को अकाल के बारे मे जानकारी दी। परिणामस्वरूप उसके पास देश से ही नही विदेश से भी चन्दा और सामान आने लगा। कमेटी के दफ्तर मे इतने मनीआर्डर आने लगे कि उन्हे लेने के लिए विशेष व्यवस्था करनी पडी। उसे २७५४५०२ रुपये नगद चन्दे के रूप मे और लगभग १० लाख रुपये का अनाज, कपडा आदि अन्य चीजें दान मे प्राप्त हुई। दक्षिण अफ्रीका के प्रमुख नगरो—जोहानीजवर्ग, डरबन, नटाल और ट्रासवाल तथा रोडेशिया, जजीबार, नैरोबी, और कोलम्बो आदि के प्रवासी भारतीयो के सगठनो से भी उसे काफी चन्दा प्राप्त हुआ।

इस अकाल मे पीडितो की सहाता के लिए देश के कुछ अखबारो ने जो काम किया, वह भारतीय पत्रकारिता का एक गौरवपूर्ण अध्याय है। अखबारो ने अकाल पीडितो के लिए बगाल रिलीफ कमेटी को चन्दा भेजने की अपीलें तो निकाली ही खुद भी अपनी ओर से सहायता-कोष खोले। दिल्ली के 'हिन्दुस्तान टाइम्स' ने बगाल रिलीफ कमेटी को २५००० रुपये और ११६९६ मन गेहू और चावल भेजा। इसी तरह अहमदाबाद के दैनिक 'जन्मभूमि' ने भी कमेटी को १४ हजार मन बाजरा भेजा। बगाल के लोग बाजरा नही खाते इसलिए कमेटी ने 'जन्मभूमि' की अनुमति से इस बाजरे को बाहर बेचा और उससे प्राप्त रकम से चावल खरीदा। इनके अलावा इलाहाबाद के 'लीडर,' मद्रास के 'इंडियन एक्सप्रेस', पटना के 'इडियन नेशन', हुबली के 'सयुक्त कर्नाटक', दिल्ली के 'तेज' और कराची के 'ससार समाचार' तथा हिन्दी अखबारो मे बनारस के दो दैनिको 'आज' और 'ससार' तथा इलाहाबाद से श्रीनाथ सिंह के सम्पादन मे प्रकाशित होनेवाली स्त्रियो की मासिक पत्रिका 'दीदी' ने कमेटी को सहायता भेजी। देश के कई शहरो, बम्बई, नागपुर, धमतरी, रावलपिण्डी, गुजरानवाला, मडाला, गोरखपुर, कराची, लखनऊ, शिमला और भटिण्डा मे भी बगाल सहायता कोष या समिति की स्थापना की गयी। श्रीमती महादेवी वर्मा ने अकाल पर हिन्दी कविताओ का एक सकलन

'बग-दर्शन' प्रकाशित किया जिसकी बिक्री की सारी आय अकाल-पीडितो को दी गयी।

बगाल रिलीफ कमेटी का मुख्य काम अनाज प्राप्त करना और उसे अकाल-पीडितो के पास पहुचाना था। भागीरथजी दफ्तर मे रह कर अनाज खरीदने की व्यवस्था करने के साथ-साथ बगाल के गावो मे भी अनाज की रसद लेकर पहुचते। कमेटी ने देश की तमाम मडियो से अनाज खरीदा। इस अनाज को सरकारी प्रतिबन्ध के कारण मगाना भी आसान न था। सरकारी अधिकारियो से निरन्तर बातचीत और पत्र-व्यवहार करना पडता। भागीरथजी को खुद चक्कर लगाने पडते। एक बार तो बगाल के नागरिक रसद मन्त्री हुसन शहीद सुहरावर्दी के यहा ५-६ बार चक्कर लगाना पडा। इन चक्करो के बाद भागीरथजी ने ५ अक्टूबर, १९४३ को सुहरावर्दी को जो पत्र लिखा, वह नीचे दिया जा रहा है -

माननीय हुसन शहीद सुहरावर्दी
नागरिक रसद मन्त्री,

प्रिय महोदय,

२ अक्टूबर को आपको पत्र लिखने के बाद अगले दिन मैंने यह पता लगाने के लिए आपको फोन किया कि हमारी कमेटी को कब तक कलकत्ता मे अनाज की डिलीवरी प्राप्त करने का आर्डर मिलेगा। आपने हमे वचन दिया था कि कमेटी को अनाज दिया जायेगा। लेकिन आपसे यह जानकर मुझे आश्चर्य हुआ कि इस बीच आप कुछ नही कर सके क्योकि इधर *आपका अनाज का स्टाक कम हो गया है।*

यह बहुत ही दुख की बात है कि आपने मुझे अपने निवास-स्थान पर ५-६ बार बुलाया और आज-कल-परसो करते रहे। इसके बाद आपने फिर वचन दिया और फिर अगले दिन कुछ करने मे असमर्थता प्रकट कर दी।

दरअसल हमारी कमेटी पीडित लोगो की सहायता करके सरकार का ही काम कर रही है इसलिए यह स्वाभाविक है कि हम सरकार से हर प्रकार की सहायता और सहयोग की आशा करें, खासकर जबकि विभिन्न जिलो मे हम सहायता का सारा काम स्थानीय अधिकारियो के सलाह-मशविरे से कर रहे है। मैं आपको यह आश्वासन देना चाहता हू कि हमारी कमेटी से सरकार जो भी सम्भव सहायता व सहयोग चाहेगी, वह हम देने को हमेशा प्रस्तुत है। इसके साथ मैं आपसे एक बार फिर जानना चाहता हू कि बगाल के विभिन्न जिलो मे हमारी कमेटी को जितने अनाज की जरूरत है, उसे आप देने की स्थिति मे हैं या नही, आपकी देने की इच्छा है या नही। अगर है तो क्या आप मुझे कृपया यह सूचित करेंगे कि तत्काल आप कितना अनाज हमे कलकत्ता मे सप्लाई कर सकेंगे ताकि हम उसे ढाका, फरीदपुर, त्रिपुरा और मेदिनीपुर आदि जिलो मे पहुचाने के लिए व्यवस्था कर सके।

आशा है आपसे पत्र का तुरन्त जवाब मिलेगा।

आपका,
भागीरथ कानोडिया
(मन्त्री बगाल रिलीफ कमेटी)

राहत कार्य करना कितना कठिन था इसका अन्दाज कमेटी की ३१ मई, १९४४ को प्रकाशित रपट से मिलता है। इसमें कहा गया है : "कमेटी के गठन के बाद हमारा पहला काम अकाल-पीडितो के लिए अनाज प्राप्त करना था। लेकिन इन समय सरकार से और उसके माध्यम के बिना (अनाज के लाये-ले जाने पर रोक होने के कारण) किसी भी प्रकार की सप्लाई प्राप्त करना असम्भव था इसलिए हमने सरकार से बातचीत की। शुरू में हमारा अनुभव बहुत ही दुखद रहा। लाख कोशिशों के बावजूद हम कई सप्ताह तक सरकार से एक औंस भी अनाज प्राप्त नही कर सके, वचन अलबत्ता दिये जाते रहे। पास में अनाज खरीदने के लिए पर्याप्त पैसे रहने के बावजूद हम यह सोचने की स्थिति मे आ गये कि जब हम कुछ नही कर पा रहे तो दाताओ को उनके पैसे क्यो न लौटा दें। .. . .हमे बडे दुख के साथ कहना पडता है कि अकाल-पीडितों को राहत पहुचाने का काम करनेवाली सस्थाओ को सरकार ने पूरा सहयोग नही दिया। बहुत से स्थानो पर तो बिलकुल ही सहयोग नही मिला और कई स्थानो पर दिक्कते भी पैदा की गयी। कही-कही तो स्थानीय अफसरो ने नियम-कायदे दिखा कर राहत-कार्य होने ही नही दिया। उन्होने राहत-कार्य के लिए कलकत्ता से भेजा गया सामान (अनाज, कपडे, दवाए) तक जब्त कर लिया। कमेटी को परिवहन-व्यवस्था की दिक्कत के कारण भी बडी अडचनें आयी। सरकार द्वारा नौकाएं जब्त कर लेने के कारण जिलो मे नौकाओ से अनाज भेजना सम्भव नही रहा। रेलवे वैगन समय पर उपलब्ध नही होते थे और होते तो उन्हे पहुचने मे बडी देर लगती। हमारे दाताओ द्वारा कलकत्ता भेजा गया अनाज और हमारे द्वारा जिलो को भेजा गया सामान (अनाज, कपड़े, दवाएं) महीनो तक नही पहुचता था। अन्त में सैनिक अधिकारियों ने हमारी मदद की। यह मदद बहुत देर से मिली अगर यह नही मिलती तो स्थिति और बदतर होती।"

अनाज प्राप्त करने के लिए किस प्रकार की दौड-धूप करनी पडती थी, इसका एक उदाहरण दिया जा रहा है। उन दिनो कलकत्ता मे सिंधिया स्टीम नेवीगेशन कम्पनी का काम स्व० गगनविहारी मेहता (अमरीका में भारत के भूतपूर्व राजदूत) सम्भालते थे। वह भागीरथजी के मित्र थे। उन्होने भागीरथजी को कहा कि उनकी कम्पनी कराची से गेहू लाने के लिए कमेटी को अपना जहाज मुफ्त दे सकती है। इस पर भागीरथजी ने श्री विद्याभूषण चितामणि को, जो कराची में कई वर्ष तक रह चुके थे, सिंध सरकार से बातचीत कर अनाज खरीदने कराची भेजा। चितामणिजी ने बताया कि कराची पहुचने पर उन्होने नगर के अत्यन्त प्रतिष्ठित व्यक्ति जमशेदजी नौशरवान जी मेहता (जो कराची के मेयर भी रहे) के माध्यम से सिंध सरकार के मन्त्रियो मे सम्पर्क किया। मन्त्रिगण उन्हे बार-बार आश्वासन देते रहे कि कराची मे कलकत्ता अनाज ले जाने की अनुमति दे दी जायेगी। इस तरह ७-८ दिन बीत जाने के बाद अन्त मे सिंध के नागरिक रसद मन्त्री ने चितामणिजी को कहा कि चूकि डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी आपकी कमेटी से सम्बद्ध है इसलिए हम आपको कराची से अनाज ले जाने की अनुमति नही देगे। चितामणिजी निराश होकर कलकत्ता वापस रवाना होने की सोच रहे थे कि उन्हे भागीरथजी का पत्र मिला कि वह पजाब जांय और वहा से अनाज खरीद

कर भेजे । चितामणिजी पजाव गये और वहा उन्होने सरकार से अनाज खरीदने की अनुमति प्राप्त की और लायलपुर की मडी से कलकत्ता गेहू भेजा ।

कमेटी से डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी के जुडे रहने के कारण दक्षिण अफ्रीका के प्रवासी भारतीय मुसलमानो के बीच मुस्लिम लीग की तरफ से प्रचार किया गया कि वगाल रिलीफ कमेटी, हिन्दू महासभा की कमेटी है (हिन्दू महासभा की अलग सहायता कमेटी थी और वगाल रिलीफ कमेटी मे हिन्दू और मुसलमान दोनो ही थे । भागीरथजी स्वय एक साम्प्रदायिक कमेटी के मत्री होने की कल्पना भी नही कर सकते थे) और उसका उद्देश्य वगाल के मुस्लिम लीग मत्रिमडल को बदनाम करना है । वगाल रिलीफ कमेटी के कागजात देखने पर हमने पाया कि भागीरथजी ने फजलुल हक और सर अब्दुल हलीम गजनवी तथा ऐसे कुछ व्यक्तियो के नाम से जिनकी निर्विवाद प्रतिष्ठा थी, दक्षिण अफ्रीका के भारतीयो के नाम वक्तव्य निकलवाया। इस वक्तव्य मे लीग के प्रचार का जोरदार खडन किया गया । भागीरथजी ने भारतीय सगठनो के प्रतिनिधियो को कमेटी के कार्य-कलाप के वारे मे वताते हुए पत्र लिखे । जोहानीजबर्ग के भारत सहायता कोष के सेक्रेटरी को १० फरवरी, १९४४ को भेजे गये तार मे भागीरथजी ने लिखा "राहत कार्य करते हुए हमारे मन मे केवल एक ही इच्छा है कि किसी भी प्रकार पीडित लोगो की सहायता की जाय । "

उस वक्त वगाल अविभाजित था । २८ जिलो मे से लगभग सभी की भागीरथजी ने यात्रा की । ये यात्राए सारी परिवहन-व्यवस्था के अस्त-व्यस्त रहने के कारण अत्यत कष्टमय थी । इन यात्राओ के दौरान कई गावो मे भागीरथजी को ग्रामीणो को यह भी वताना पडा कि आटा किस प्रकार खाया जाता है । वगाल के सुदूरवर्ती गावो के लोगो को यह भी पता नही था कि आटा क्या चीज है । कही-कही तो लोगो ने उनसे पूछा कि क्या हम इसे घोल कर पिये ।

वगाल रिलीफ कमेटी ने सभी जिलो मे कुछ न कुछ काम किया । कमेटी की रपट से पता चलता है कि (१) उसने लगर खोले (२) मुफ्त अनाज बाटा (३) बच्चो के लिए मुफ्त दूध वाटने के केन्द्र, निराश्रितो के लिए कैम्प, और निराश्रित बच्चो की देख-भाल के लिए शिशु-गृह खोले (४) अकाल मे पढाई छूट जानेवाले छात्रो की पढाई की व्यवस्था की (५) एक अलग चिकित्सा विभाग की स्थापना की जिसके तहत बहुत से स्थानो पर चिकित्सा केन्द्र खोले गये, दवाए बाटी गयी (६) राहत-कार्य करने वाले अन्य सगठनो को अनुदान दिया गया (७) अकाल पीडितो के पुनर्वास से लिए कताई, बुनाई, धान-कुटाई, तालाबो की फिर से खुदाई, झोपडिया वनाने, मछुवारो को जाल बनाने का सामान देने, कारीगरो को औजार देने, तट-बन्ध बनाने और किसानो मे बीज वाटने आदि के काम किये ।

कमेटी ने २५ जिलो मे ९२ लगर और ४७५ मुफ्त अनाज वाटने के केन्द्र खोले । लगरो से रोज ३७८५० व्यक्तियो को खाना और अनाज-केन्द्रो से ७९,७९६ व्यक्तियो को अनाज दिया जाता रहा । इसके अलावा ३९८ सस्ते अनाज की दुकाने खोली गयी जिनसे ३०७६९९ व्यक्तियो को रोज सस्ते दामो पर अनाज दिया जाता रहा । इस तरह कमेटी ने ४२५,२४५ व्यक्तियो को रोज सीधे राहत पहुचायी ।

कमेटी ने अपनी जिला कमेटियो के माध्यम से स्थानीय बाजारो से बहुत बडी मात्रा मे अनाज खरीदा। इसके अलावा कलकत्ता और बगाल के बाहर से भी उसने अनाज खरीदा और काफी अनाज उसे दान मे भी मिला। यह सारा अनाज कुल मिलाकर १४४०६३ मन था। यह मुफ्त बाटने और सस्ती दर पर बेचने के काम मे लगाया गया। कमेटी ने कपडे, दूध, गुड, बिस्कुट और कम्बल आदि भी बडी मात्रा मे दान मे प्राप्त किये या खरीदे और उनका वितरण किया।

भागीरथजी ने मध्यवर्ग के परिवारो के लिए, जो लोक-लज्जा के कारण सहायता केन्द्रो मे आने से हिचकते थे, १० रुपये मन चावल सप्लाई करने की एक योजना चलायी। इस योजना में उन्होने अपने उन तमाम सम्पन्न परिचितो को अकाल-राहत के काम मे लगाने की चेष्टा की, जो गावो मे जाकर काम नही कर सकते थे। ऐसी ही एक मारवाडी महिला ने हमें बताया "मध्य-वित्त परिवार सहायता लेने मे शर्म महसूस करते थे इसलिए कमेटी के स्वयसेवको ने घर-घर जाकर उनको राशन-कार्ड की तरह के कमेटी के कार्ड दिये जिनको दिखा कर वे कमेटी द्वारा चलायी जानेवाली अनाज की दुकानो से अनाज प्राप्त कर सकते थे। कमेटी के कार्यकर्त्ता किस मुस्तैदी से काम करते थे, इसका एक उदाहरण देते हुए इस महिला ने अपने साथ हुई एक घटना बतायी "एक दिन सस्ते अनाज की दूकान मे मैं आटा बेच रही थी। बिक्री के पैसो मे से आठ आने पैसे मैने एक बीमार औरत को दे दिये कि बाद मे अपने पास से दे दूगी। लेकिन मैं बिक्री के पैसो मे अपने आठ आने पैसे रखना भूल गयी और घर चली आयी। रात ग्यारह बजे दूकान के एक कार्यकर्त्ता का फोन आया कि बिक्री के पैसो मे आठ आने घट रहे हैं, आपको कुछ पता है क्या ?"

कमेटी ने दिसम्बर १९४३ मे अपने तहत एक रोग-निरोधक विभाग खोला। श्रीमती कल्याणी भट्टाचार्य को इस विभाग का जिम्मा सौपा गया। इस विभाग के द्वारा बगाल के २२ जिलो मे १२२ चिकित्सा-केन्द्र खोले गये जिनमे ६४ डाक्टरो और २९४ स्वयसेवको ने काम किया। इन केन्द्रो मे दवाओ के अलावा रोगियो के पथ्य की भी व्यवस्था की गयी। केन्द्रो मे दवाओ के साथ शल्य-चिकित्सा के उपकरण, परीक्षण यत्र आदि रखने की भी व्यवस्था की गयी। स्वयसेवको के लिए दूर-दूर के गावो मे जाने के वास्ते साइकिलो का भी इन्तजाम किया गया।

कमेटी ने बगाल सरकार से १५०० पौण्ड कुनैन प्राप्त किया। इस कुनैन से कमेटी के एक सदस्य डा० विधानचन्द्र राय (बाद मे पश्चिम बगाल के मुख्यमन्त्री) ने एक विशेष प्रकार की एक करोड से भी अधिक गोलिया बनायी—ए० बी० एन०—६१। ये गोलिया, पूरी मात्रा मे (डोज) लेने पर तीन लाख लोगो को मलेरिया से मुक्त करने की क्षमता रखती थी। किन्तु डा० राय की यह गोली अपनी क्षमता से अधिक शक्ति-शाली निकली। काफी लोग पूरी मात्रा लिए बिना ही मलेरिया से मुक्त हो गये। इस प्रकार इन गोलियो से तीन लाख से कही ज्यादा लोगो को लाभ मिला।

बगाल के इस अकाल की तात्कालिक समस्या अवश्य अनाज मुहैया करने की थी, लेकिन असली समस्या लोगो की क्रय-शक्ति बढाने की थी। इस सम्बन्ध मे बगाल रिलीफ कमेटी की रपट मे कहा गया "इस अकाल ने सार्वजनिक कार्यकर्ताओ

के सामने एक महत कार्य छोडा है। समस्या सिर्फ भुखमरी या महामारी से लडने या अनाज की पर्याप्त सप्लाई प्राप्त करने या कीमतो पर नियत्रण रखने की नही है। इस अकाल ने बगाल मे एक ऐसा वर्ग पैदा किया है—अर्थशास्त्री इसे जो चाहे नाम दे—जिसके पास प्रान्त मे अनाज का कितना ही अधिक स्टाक क्यो न हो और उसकी कीमत कितनी ही कम क्यो न हो, उसे खरीदने की तनिक भी सामर्थ्य नही है। इस वर्ग की क्रय-शक्ति को वापस लौटाने की समस्या सबसे बडी है। क्रय-शक्ति के लौटे बिना कोई सहायता सार्थक नही हो सकती। हम इस दिशा मे हमसे जो कुछ हो सकता है, करने की चेष्टा कर रहे है पर कोई भी गैरसरकारी सगठन, भले ही कितना ही बडा क्यो न हो, इस विषय मे बहुत ज्यादा नही कर सकता। इस बारे मे तो सरकार ही कुछ कर सकती है, जिससे समस्या का हल हो। फिर भी हमने सभी केन्द्रो और कमेटियो को एक प्रश्नावली भेजी है ताकि उससे प्राप्त जानकारी के आधार पर इस सम्बन्ध मे योजना बना सके। कई जगहो से कुटीर-उद्योग की योजनाए आयी है, जिन पर काम शुरू कर दिया गया है। हम जानते है कि यह कार्य बहुत बडा है। इसके लिए बहुत रुपये और बहुत कार्यकर्त्ताओ की आवश्यकता है। फिर भी हमसे जो कुछ हो सकता है, वह हमे करना ही चाहिए।"

कमेटी ने अकाल पीडितो के पुनर्वास और उनको क्रय-शक्ति को पुनर्जीवित करने के लिए कई काम शुरू किये। भागीरथजी ने इस सम्बन्ध मे ७ फरवरी, १९४४ को बगाल के मुख्यमन्त्री ख्वाजा निजामुद्दीन को जो पत्र लिखा, उसे नीचे दिया जा रहा है·

प्रिय महोदय,

.... अन्य प्रादेशिक सरकारो की तरह आपकी सरकार भी चाहती है कि प्रदेश मे खाद्य का ज्यादा से ज्यादा उत्पादन हो।

मुझे यह लगता है कि ज्यादा खाद्य उत्पादन के साथ रोजगार उपलब्ध कर बगाल के निराश्रित और असहाय लोगो की क्रय-शक्ति को पुनर्जीवित करने की जरूरत है। इसके लिए प्रदेश की खेती करने लायक परती जमीन, जो जून १९४२ तक के सरकारी आकडो के अनुसार ८६२, ७८८ एकड है, भूमिहीन किसानो को दी जाय तो काफी लाभ हो सकता है। हा, पहले कुछ सालो मे इस जमीन को लगान-मुक्त रखना होगा क्योकि अभी लगान की जो दर है उसे देखते हुए शायद कोई भी किसान जमीन लेने को तैयार न हो।

अगर आपकी सरकार को यह सुझाव आकर्षित करता है तो इसको लागू करना कठिन नही है और इसके व्यावहारिक पहलुओ पर तफसील से बातचीत की जा सकती है। मुझे इस बात मे कोई सन्देह नही कि अगर आप इस तरह की कोई योजना चलाये तो विभिन्न सहायता समितिया और सगठन उसमे पूर्ण सहयोग देगे।

आपका,
भागीरथ कानोडिया
(मन्त्री बगाल रिलीफ कमेटी)

१०

शांति और पुनर्वास के प्रयत्न

सोलह अगस्त, १९४६ का कलकत्ते का हिन्दू-मुस्लिम दगा शायद देश का सबसे बडा साम्प्रदायिक दगा था। चार दिनो तक भीषण रूप से चलने के बाद छिट-पुट घटनाओ के रूप मे तो यह एक बरस से भी ज्यादा चलता रहा। चार दिन के ताडव मे ५००० लोग मारे गये और २५००० घायल हुए। करोडो की सम्पत्ति नेस्तनाबूद हुई। सबसे ज्यादा लज्जाजनक बात तो यह थी कि हिन्दू और मुसलमान आमने-सामने भी नही लडे, हिन्दू-इलाको मे सख्या-बल मे कम लाचार मुसलमानो की और मुसलमान-इलाको मे हिन्दुओ की निर्ममतापूर्वक हत्या की गयी।

इस दगे से देश भर मे मार-काट का सिलसिला चल पडा। बम्बई, क्वेटा, इलाहाबाद और दिल्ली मे दगे हुए और फिर नोआखाली, बिहार और अन्त मे पजाब मे ऐसे हत्याकाण्ड हुए, जिनकी दुनिया के जघन्यतम हत्याकाण्डो से सहज ही तुलना की जा सकती है। देश भर मे साम्प्रदायिकता का ऐसा जहर फैला कि गाधीजी को छोड कर सभी बडे नेताओ को यह लगने लगा कि हिन्दू और मुसलमान एक साथ एक देश मे नही रह सकते सो देश को विभाजित करना ही होगा। कलकत्ता के दगे के एक वर्ष बाद १५ अगस्त, १९४७ को देश का विभाजन हुआ और उसकी हो कडी मे साढे पाच महीने बाद ३० जनवरी, १९४८ को एक हिन्दू सम्प्रदायवादी के हाथो गाधीजी की हत्या हुई।

कलकत्ता के दगे मे भागीरथजी ने बहुसख्यको के इलाको मे घिरे अल्पसख्यको को निकालने और शान्ति स्थापित करने के काम किये। एक भी मुसलमान, हिन्दू-इलाके मे और एक भी हिन्दू, मुसलमान-इलाके मे सुरक्षित नही रह गया था। बगाल मे मुस्लिम लीग का मन्त्रिमण्डल था और मुख्यमन्त्री हसन शहीद सुहरावर्दी पर तो यह आरोप भी था कि उनकी शह से ही दगे हुए। सरकार की सारी प्रशासनिक मशीनरी का रवैया साम्प्रदायिक था जिससे जनसख्या मे ज्यादा होने के बावजूद कलकत्ता मे हिन्दुओ मे भयानक आतक छा गया था। भागीरथजी सेना और पुलिस के दस्तो के साथ मुहल्लो मे पहुचते और लोगो को लारियो मे भर-भर के बाहर निकालते। स्थिति यह हो गयी थी कि लोग इतना ही चाहते थे कि किसी तरह ऐसे इलाके मे पहुच जाय, जहा उनके धर्मावलम्बी हो। ऐसे मे भागीरथजी लालबाजार (कलकत्ता का पुलिस मुख्यालय) से तनावग्रस्त इलाको मे पुलिस की कुमक भिजवाने की कोशिश भी करते ताकि घिरे लोगो को थोडा ढारस रहे।

दगे मे भागीरथजी द्वारा जकरिया स्ट्रीट मे खोला गया 'तुलसी पुस्तकालय' भी गुण्डो द्वारा जला दिया गया। यह ऐसा पुस्तकालय था जिसमे मुसलमान पढने आया करते थे। इसमे उनकी रुचि की किताबें तथा अखबार मगाये जाते थे। भागीरथजी जब जकरिया स्ट्रीट मे रहते थे तभी उन्होने यह पुस्तकालय खोला था।

मुहल्ले के मुसलमानो ने गुण्डो को पुस्तकालय जलाने से रोकने की बहुतेरी कोशिश की, कहा "यह तो हमारे काम आता है", लेकिन व्यर्थ।

अक्टूबर, १९४६ में नोआखाली मे भीपण नर-सहार और स्त्रियो पर अत्याचार शुरू हुआ। काग्रेस-अध्यक्ष आचार्य कृपलानी के साथ भागीरथजी अक्टूबर महीने मे ही दो बार नोआखाली गये और वहा जाकर उन्होने देखा कि क्या राहत कार्य किया जा सकता है। ३० अक्टूबर को कलकत्ता मे श्री शरतचन्द्र वसु की अध्यक्षता मे बगाल सेन्ट्रल रिलीफ कमेटी की स्थापना हुई। प्रभुदयालजी हिम्मतसिहका इस कमेटी के सेक्रेटरी और भागीरथजी कोपाध्यक्ष वनाये गये। इस कमेटी ने पूर्व वगाल मे राहत पहुचाने का बहुत बडा काम किया। गाधीजी ने ६ नवम्बर, १९४६ से नोआखाली जिले मे रहना शुरू किया। उन्होने अपने लिए एक गाव चुन लिया और अपने सब साथियो को अलग-अलग गाव मे जा कर बैठने और वहा से काम करने का आदेश दिया। बगाल सेन्ट्रल रिलीफ कमेटी का नोआखाली के गावो के 'गाधी-कैम्पो' से तो सम्बन्ध बना ही, उसने पूर्व बगाल के गाधीवादी रचनात्मक कार्यकर्ताओ के माध्यम से भी बडे पैमाने पर राहत-कार्य किया। कमेटी का अधिकाश काम भागीरथजी ही करते थे। १९४३ के अकाल मे वह पूर्व बगाल और नोआखाली की यात्रा कर चुके थे सो वह स्थानीय परिस्थितियो से बहुत अच्छी तरह परिचित थे। इस अनुभव के कारण कमेटी को वहा अपने काम मे काफी मदद मिली।

बगाल सेंट्रल रिलीफ कमेटी के उस वक्त के कागजात देखने से पता चलता है कि नोआखाली के हत्याकाड के बाद पूर्व बगाल मे 'नोआखाली रेस्क्यू, रिलीफ एण्ड रिहैबिलिटेशन कमेटी' और 'त्रिपुरा डिस्ट्रिक्ट रेस्क्यू एण्ड रिलीफ कमेटी' नामकी दो कमेटिया राहत और उद्धार-कार्य मे सबसे अधिक सक्रिय थी। सेन्ट्रल रिलीफ कमेटी का दोनो से अनवरत सम्पर्क बना हुआ था और इनके माध्यम से उसने बडा काम किया। उसके पास पूर्व बगाल के रचनात्मक, सामाजिक और राजनीतिक कार्यकर्ताओ के पत्र आते और उनके आधार पर वह पैसे और सहायता भिजवाती। ठक्करबापा ने नोआखाली मे हरिजनो की बस्तियो मे कैम्प खोले थे। इन कैम्पो से भी सेन्ट्रल रिलीफ कमेटी का सबध बना हुआ था। ऐसे कैम्पो मे हेमचर का कैम्प स्व० शचीन्द्रनाथ मित्र सम्भालते थे। कमेटी के कागजात मे शचीन्द्रनाथ मित्र के, जिन्हे बगाल का गणेश-शकर विद्यार्थी कहा जाना चाहिए, कई पत्र देखने को मिले। शचीन्द्रनाथ मित्र की १ सितम्बर, १९४७ को कलकत्ता मे हिन्दू और मुसलमानो के बीच प्रेम और सद्भाव कायम करने की कोशिश करते वक्त गुण्डो ने हत्या कर दी। सेन्ट्रल रिलीफ कमेटी का पूर्व बगाल के अभय आश्रम, कपसरिया पल्ली गठन केन्द्र, बगीय पल्ली सगठन समिति जैसी रचनात्मक सस्थाओ से विभाजन के दो-तीन वर्ष बाद तक सम्बन्ध बना रहा। बगाल के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी त्रैलोक्य महाराज के कमेटी के नाम खुद के हाथ के लिखे बीसियो पत्र हमे देखने को मिले। इन पत्रो मे महाराज ने कमेटी के काम की मुक्त कण्ठ से प्रशसा की थी।

कागजात मे एक पत्र बीबी अमतुस सलाम का भी मिला। नोआखाली मे हत्या, लूट-पाट और आगजनी तो हुई ही थी लेकिन सबसे ज्यादा लज्जाजनक बात तो यह

हुई थी कि स्त्रियो पर जघन्य अत्याचार हुए थे। बगाली हिन्दू स्त्रियो ने डर के कारण सौभाग्य के चिन्ह धारण करने बन्द कर दिये थे—शख की चूडिया पहनना और माग मे सिन्दूर भरना वन्द कर दिया था। वीवी अमतुस सलाम गाधीजी के साथ नोआखाली आयी तो उनके आदेश पर सिरन्दी गाव मे जाकर काम करने लगी। गाव मे भय का यह वातावरण देख कर उन्होने अनशन प्रारम्भ किया। उनके अनशन से महिलाओ मे साहस का सचार हुआ तो उन्होने (अमतुस सलाम) भागीरथजी को खत लिखा कि वह किसी विश्वस्त आदमी के हाथो से पूरी सावधानी रख कर सिन्दूर और शख की चूडिया भिजवायें। इस पर भागीरथजी ने सेन्ट्रल रिलीफ कमेटी के कार्यालय-अधिकारी श्री कृष्णचन्द्र महापात्र के हाथ नदी-मार्ग से बीवी अमतुस सलाम के पास शख की चूडिया और सिन्दूर पहुचाया। श्री कातिलाल शाह द्वारा लिखी गयी ठक्करबापा की जीवनी से पता चलता है कि ठक्करवापा ने भी डरी हुई स्त्रियो के वीच बनारस से शख की चूडिया और सिन्दूर मगा कर बाटा था।

कमेटी ने पीडित लोगों के वीच लगभग साढे आठ लाख रुपये खर्च किये।

इधर कलकत्ता मे १६ अगस्त के दगे के बाद स्थिति सामान्य नही हो रही थी। चार महीने वाद १२ दिसम्बर को पहली वार करफ्यू उठाया गया लेकिन छिटपुट वार-दातें होते रहने के कारण वह वापस उपद्रवग्रस्त इलाको मे लगने लगा। हिन्दू-इलाको मे मुसलमानो का खात्मा हो चुका था और मुसलमान-इलाको मे हिन्दुओ का। लेकिन इलाके सटे हुए थे और इस तरह वने हुए थे कि किसी हिन्दू या मुसलमान को अपने इलाके मे आने-जाने के लिए दूसरे के इलाके से होकर जाना पडता था। इस तरह वाहर निकलना और घर वापस पहुचना जोखिम और खतरे का काम हो गया था। कलकत्ता, हिन्दू और मुसलमान इलाको मे इस तरह बट गया था कि जगह-जगह सीमाए और मध्यवर्ती (वफर) इलाके भी कायम हो गये थे। यात्री-वसें अपने निर्धारित रास्तो को छोड कर घूम कर यात्रा करती ताकि वीच मे उपद्रवी इलाके न पडे। हिन्दू और मुसलमान इलाको मे दूसरे सम्प्रदाय की अधिकाश दुकानें जला दी गयी थी लेकिन दफ्तर तो थे सो इनमे काम करनेवाले दूसरे सम्प्रदाय के लोग अपने को हमेशा सकटापन्न मानते थे। ऐसे मे आतक के कारण नागरिको को होनेवाली असुविधाओ को दूर करने की बात कलकत्ता के मारवाडी कार्यकर्ताओ के मन मे आयी। ३० मार्च, १९४७ को हिन्द सेवा सघ नामकी एक सस्था वनायी गयी। हम पहले ही यह लिख चुके है कि सकट के समय जो कोई भी सस्था काम कर रही होती, भागीरथजी उसके माध्यम से काम करने लगते थे, वह हिन्द सेवा सघ के माध्यम से काम करने लगे।

हिन्द सेवा सघ ने उपद्रवग्रस्त इलाको मे खाली किये गये मकानो की हिफाजत करने, उपद्रवग्रस्त इलाको से लोगो को सुरक्षित स्थानो पर पहुचाने और सियालदह से हावडा के बीच पहरे के साथ मुफ्त परिवहन-सेवा (यह इसलिए कि लोग बीच के रास्ते से होकर गुजरने मे डरते थे और इस मार्ग पर वसें नही चलती थी) चलाने के कार्य किये। सघ की ओर से हिन्द सेवा दल के नाम से सहायता और उद्धार कार्य करने के लिए स्वयसेवको और कार्यकर्ताओ का एक दल भी गठित किया गया। आतक दूर करने और शाति स्थापित करने के लिए सघ के तत्वावधान मे मुहल्ला-कमेटिया भी

गठित की गयी। संघ का दफ्तर चौवीसो घण्टे खुला रहता था। उसके पास ६ जीपे, २ स्टेशन वैगन, ३ हथियारवन्द गाडिया और २ एम्बुलेंस थी। खाली मकानो की रखवाली करने के लिए १५० दरवानो की एक टीम थी। उसका एक दरवान गुण्डो के हाथो मारा भी गया।

९ मई, १६४७ को गाधीजी कलकत्ता आये। शहर की स्थिति अशात थी। करफ्यू लगा हुआ था। सीतारामजी की डायरी से पता चलता है कि ११ मई को वह भागीरथजी के साथ गाधीजी से मिलने गये तो, "भाई भागीरथजी ने वातो के सिलसिले मे कह दिया कि लोग ऐसा मानते है कि विहार मे जो कुछ हुआ उसकी वजह से मुसलमान रुके, नही तो ज्यादा जवरदस्ती करते। इसका गाधीजी पर वहुत बुरा असर पडा और वे तमक गये। भागीरथजी के कहने का अर्थ उन्होंने (गाधीजी ने) गलत लगाया। इसके वाद भी थोडी वाते हुई पर जमी नही। अपने को भी अच्छा नही लगा। समय भी ज्यादा नही था इसलिए जल्दी आ गये।"

यह वक्त ही ऐसा था कि देश के वडे से वडे लोग, जन्म-भर हिन्दू-मुसलमान सद्भाव के लिए काम करनेवाले लोग तक साम्प्रदायिकता के जहर से अछूते नही रह पाये। यह वक्त गाधीजी के लिए अपने दीर्घ राजनीतिक जीवन मे सवसे अधिक पीडा का भी था। उन्हे कही यह महसूस हो रहा था कि जिन लोगो के साथ उन्होंने वरसो काम किया था, वे अव उनका साथ देने को तैयार नही है, वे साम्प्रदायिकता के शिकार हो कर सारी स्थिति को हिन्दू-मुसलमान दृष्टिकोण से ही देख रहे है और उन्हे (गाधीजी को) 'फालतू' समझ रहे है। इस वक्त की गाधीजी की पीडा का प्रोफेसर निर्मलकुमार वसु, प्यारेलाल और कुमारी मनु गाधी की पुस्तको से कुछ पता लगता है।

तो भागीरथजी जो वता रहे थे उसे गाधीजी ने उनका निजी मत मान लिया। भागीरथजी ऐसे व्यक्तियो मे नही थे जो अपनी सफाई देते। वह यह मानते थे कि सामनेवाले व्यक्ति को अगर उनके वारे मे गलतफहमी हो गयी है तो वह सफाई देने से दूर नही होगी, वह तो समय के साथ सामनेवाले के समझने पर अपने-आप दूर हो जायगी।

गाधीजी को जाननेवाले प्राय. सभी व्यक्तियो का यह मत है कि वह तमकते नही थे। दूसरो की वातो को सुनने और समझने का अपार धैर्य उनमे था। लेकिन १९४६-४७ के साम्प्रदायिक वैमनस्य के आगे असहाय होने का वोध उनमे कही घर करने लगा था जिससे कभी-कभी वह उत्तेजित हो जाते थे। निर्मल वसु ने अपनी पुस्तक 'माई डेज विद गाधी' मे लिखा है कि नोआखाली मे किसी-किसी रात गाधीजी इतने उद्विग्न हो जाया करते थे कि अकेले मे वडवडाते . "क्या करू ? क्या करू ?"

११ मई के ही दिन, जिसकी ऊपर चर्चा की गई है, भागीरथजी से वातचीत के आगे या पीछे गाधीजी की सुहरावर्दी भी से मुलाकात हुई थी। इस मुलाकात मे निर्मल वसु भी गाधीजी के साथ थे। उन्होने अपनी पुस्तक मे लिखा है कि वह (निर्मल वावू) सुहरावर्दी से कलकत्ता के दगे की कुछ हत्याओ के वारे मे पुलिस-जाच की शिकायत कर रहे थे। प्रसिद्ध इतिहासकार सर यदुनाथ सरकार के वेटे की हत्या की जाच के वारे मे निर्मल वावू ने पुलिस की निष्क्रियता की शिकायत की तो सुहरावर्दी ने कहा कि इस

हत्या के बारे मे तरह-तरह की अफवाहें हैं तो गाधीजी ने, जो सारी बातचीत सुन रहे थे, एकाएक सुहरावर्दी को कहा कि कलकत्ता मे जितने हिन्दू और मुसलमानो की हत्याए हुई हैं उनके लिए आप जिम्मेवार हैं (सुहरावर्दी के मुख्यमन्त्रित्व के समय मे ही ये हत्याए हुई थी)। इस पर सुहरावर्दी ने गाधीजी को जवाब दिया कि देश भर मे मुसलमानो की जो हत्याए हुई हैं, उनके लिए आप (गाधीजी) जिम्मेवार है। इस पर गाधीजी एकदम तमक गये और उन्होने कहा "डोंट टाक राट (बकवास मत करो)"। निर्मल बाबू आगे लिखते हैं : "मैंने गाधीजी को इस तरह बिफरते कभी नही देखा था।"

तीन महीने बाद ९ अगस्त को गाधीजी जब देश का अपना व्यापक दौरा कर पुन कलकत्ता लौटे तो स्थिति मे बडा परिवर्तन हो चुका था। तब तक कांग्रेस और लीग द्वारा देश और पंजाब तथा बंगाल का विभाजन स्वीकार कर लेने के बाद ३ जुलाई, १९४७ को पश्चिम बंगाल मे डा० प्रफुल्लचन्द्र घोष के मुख्यमन्त्रित्व मे कांग्रेसी मन्त्रि-मंडल बन चुका था। यदि पहले मुसलमान-राज्य था तो अब एक प्रकार हिन्दू-राज्य कायम हो गया। पहले हिन्दू, मुसलमानो से डरते थे अब मुसलमान हिन्दुओ से डरने लगे। ७ जुलाई को एक मुसलमान पुलिस अफसर के जनाजे को लेकर दगा शुरू हुआ तो लगभग ५० लोग मारे गये। ५ जुलाई को इस अफसर की हत्या कर दी गई थी। इसी स्थिति मे गाधीजी नोआखाली जाने के लिए पटना से कलकत्ता आये थे, किन्तु कलकत्ते की स्थिति तनावपूर्ण होने और मुसलमानो के आग्रह के कारण उन्हे अपनी नोआखाली-यात्रा स्थगित कर देनी पडी।

१८ अगस्त को कलकत्ता से चौदह मील दूर बारकपुर मे हिन्दू और मुसलमानो के बीच मस्जिद के सामने बाजा बजाने को लेकर दगा हो गया। भागीरथजी और उनके मित्र शांति स्थापित करने की कोशिश मे बारकपुर पहुंचे। थोडी देर मे गांधीजी भी पहुच गये। उनके पहुचने के बाद हवा ही बदल गयी। हिन्दू कहते थे, "महात्माजी जैसा कहेगे, वैसा हम करेंगे" और मुसलमान कहते थे, "गाधीजी जो कहेगे हम वही करेंगे।" गाधीजी ने मौन दिवस होने के कारण लिख कर कहा कि नमाज के वक्त तो बाजा बजना ही नही चाहिए, बाद मे चाहे बजे या न बजे।

इस घटना के बारे मे सीतारामजी ने बताया · "मैंने और भागीरथजी ने कहा कि नमाज के वक्त का सब लोगो को पता नही रहता इसलिए अच्छा हो कि यह निर्णय किया जाय कि मस्जिद के सामने बाजा बजाना एकदम ही बन्द रखा जाये। इस पर गाधीजी ने पेंसिल से लिख कर उत्तर दिया कि इस विषय पर बहुत सोचना पडेगा। गाधीजी ने ऐसा क्यो कहा मेरी समझ मे नही आया तो भागीरथजी ने मुझे समझाया कि अगर साम्प्रदायिक हिन्दू इस बात को न मानें तो झगडे की एक और जड खडी हो जायेगी इसलिए बापू ने एक शब्द मे कह दिया कि इस सम्बन्ध मे और सोच-विचार करना होगा। भागीरथजी ने शायद बापू के दिमाग को सही पढा।"

३१ अगस्त को गाधीजी ने घोषणा की कि वह २ सितम्बर को नोआखाली जायेंगे लेकिन इसी दिन रात को कलकत्ता मे साम्प्रदायिक दगे फिर भड़क उठे और गाधीजी को १ सितम्बर से ४ सितम्बर तक अनशन करना पडा। अनशन तोडने के बाद गाधीजी ने दगो मे विस्थापित लोगो के पुनर्वास के लिए एक कमेटी बनाने का

निश्चय किया। दगो के बाद कलकत्ता के मेयर श्री सुधीरचन्द्र रायचौधरी की अध्यक्षता मे एक केन्द्रीय शाति कमेटी बनायी गयी थी। यह कमेटी शाति और सद्भाव स्थापना सम्बन्धी काम ही करती थी। गाधीजी ने कलकत्ता मे रह कर देखा था कि दगो से आबादी का बहुत बडा स्थानातरण हुआ था सो वह चाहते थे कि पुनर्वास के काम के लिए विशेष रूप से कुछ किया जाय। ६ सितम्बर को गाधीजी ने एक बैठक बुलायी। इसमे पुनर्वास के काम के लिए केन्द्रीय शान्ति कमेटी के तहत एक फिनान्स-सब कमेटी (वित्त उपसमिति) बनायी गयी। बैठक मे गाधीजी बोलते रहे कि कमेटी को क्या-क्या करना चाहिए और उन्होने भागीरथजी को कहा कि वह जो बोले उसे भागीरथजी लिखते रहे। बैठक के वक्त भागीरथजी ने गाधीजी से जो डिक्टेशन लिया था, उसका कागज कमेटी के कागजात मे मिला। इस कागज पर गाधीजी के हस्ताक्षर भी है (कागज की फोटो-लिपि परिशिष्ट मे दी गयी है)।

इस वित्त-उपसमिति के पश्चिम बगाल के मुख्यमन्त्री डा० प्रफुल्लचन्द्र घोष अध्यक्ष बनाये गये। समिति यद्यपि केन्द्रीय शान्ति कमेटी के तहत थी पर गाधीजी ने उसको पुनर्वास का काम स्वतन्त्र रूप से करने का निर्देश दिया। भागीरथजी उप-समिति के मन्त्री-कोषाध्यक्ष बनाये गये। उपसमिति को बडे पैमाने पर रुपये इकट्ठा कर पुनर्वास का काम करना था इसलिए उसमे हसन शहीद सुहरावर्दी और नलिनीरजन सरकार जैसे प्रसिद्ध व्यक्तियो के साथ सभी चेम्बर आफ कामर्स (वाणिज्य सस्थाए) के प्रतिनिधि शामिल किये गये। अन्य सदस्य थे एम० एच० इस्पहानी (कलकत्ता के सबसे बडे मुसलमान व्यापारी-उद्योगपति), डी० एन० सेन (बगाल नेशनल चेम्बर आफ कामर्स), के० डी० जालान (इण्डियन चेम्बर आफ कामर्स), बाबूलाल जालान (मारवाडी चेम्बर आफ कामर्स), कासिम इस्माइल (मुस्लिम चेम्बर आफ कामर्स), ए० पी० बेन्थल (बगाल चेम्बर आफ कामर्स, यह यूरोपियनो की वाणिज्य सस्था थी, बेथल के विलायत चले जाने पर नील ब्रोडी ने उनका स्थान लिया), आर० के० जैदका (प्रसिद्ध पजाबी बस-लारी मालिक), एम० एल० शाह (प्रसिद्ध गुजराती व्यापारी), देवेन्द्रनाथ सेन (प्रसिद्ध बगाली उद्योगपति), विश्वम्भरनाथ चतुर्वेदी (कलकत्ता स्टाक एक्सचेज के अध्यक्ष) और करमचन्द थापड (प्रसिद्ध पजाबी व्यापारी और उद्योगपति)।

उपसमिति की बैठक मुख्यमन्त्री के निवास-स्थान पर होती थी। कमेटी ने विस्थापितो के पुनर्वास के लिए नये घर बनाने और नष्ट हुए मकानो की मरम्मत करने का काम करने के अलावा विस्थापितो मे बर्त्तन बाटने, दैनिक मजदूरी कर रोजी-रोटी कमानेवालो को फिर से धन्धा शुरू करने के लिए पू जी देने और जिन छात्रो की पढाई छूट गयी थी उनकी शिक्षा की व्यवस्था करने के काम अपने हाथ मे लिए।

कमेटी ने नष्ट बस्तियो का पुन निर्माण करने के अपने कार्यक्रम मे दो माडल (आदर्श) बस्तिया बनाने का भी निश्चय किया। इन आदर्श बस्तियो मे पाखाने, स्नान-घर और पीने के पानी की समुचित व्यवस्था करने के साथ एक प्राइमरी स्कूल, एक औषधालय और बच्चो का पार्क बनाने का भी निर्णय किया गया। कमेटी ने नारकेल-डागा मेन रोड और दिलखुशा स्ट्रीट मे इस प्रकार की दो बस्तिया बनायी और उनको

कलकत्ता कारपोरेशन को सौप दिया। कलकत्ता मे इससे पहले इस तरह की आदर्श वस्तियो के निर्माण की वात सोची भी नही गयी थी।

कमेटी के पास पुनर्वास-सहायता के लिए जो आवेदन आते थे, उनकी स्थान पर जाकर जाच की जाती और फिर सहायता मजूर की जाती। इस काम के सिलसिले मे भागीरथजी रोज ही कलकत्ता की गन्दी वस्तियो मे जाते और आवेदनकर्ताओ से स्वरू मुलाकात करते। कमेटी के कागजात मे मुस्लिम रिलीफ कमेटी के भी कई आवेदन देखने को मिले। कमेटी ने मुस्लिम रिलीफ कमेटी के सहयोग से कई मुसलमान वस्तियो के पुन निर्माण का काम भी किया। कागजात मे नवम्वर, १९४८ का लिखा हुसन शहीद सुहरावर्दी का भी एक पत्र भागीरथजी के नाम मिला। इस पत्र मे सुहरावर्दी ने एक मुसलमान वस्ती के पुन निर्माण के वारे मे कमेटी को जल्दी निर्णय करने का अनुरोध किया था। इस पत्र को देख कर ५ साल पहले ५ अक्टूवर, १९४३ को भागीरथजी द्वारा सुहरावर्दी को लिखे गये उस पत्र की याद आयी, जिसमे उन्होने वगाल मे अकाल के वक्त अनाज की सप्लाई के वारे मे सुहरावर्दी को शीघ्र निर्णय करने को लिखा था। पाच वर्षों मे क्या से क्या हो गया।

११
भागीरथजी और बंगाल

आजादी के पहले हमारे समाज-जीवन मे घोल-मेल और एक समुदाय के लोगो के दूसरे से जुडने की प्रक्रिया चालू थी। वगालियो और मारवाडियो के वीच वैमनस्य तव भी था लेकिन मारवाडियो मे ऐसे लोग, जो समाज-सुधार और स्वाधीनता आंदोलन के क्षेत्र मे सक्रिय थे, वगाली-जनजीवन से हमेशा जुडने की कोशिश करते रहते थे और उनके प्रयत्नो से कही मारवाडी और वगाली के वीच आदान-प्रदान की मद प्रक्रिया भी चल रही थी, जो आजादी के वाद विकसित होने के वजाय मुरझा गयी है।

भागीरथजी की वगाली-जनजीवन से जुडने की हमेशा कोशिश रही। इसके चलते वह वहुत सारे वगाली राजनीतिक और रचनात्मक कार्यकर्ताओ तथा शिक्षाविदो के सम्पर्क मे आये और वहुत सारी वगाली सस्थाओ से उनका सम्वन्ध वना। वगाल मे अकाल और वाढ तथा साम्प्रदायिक दगो जैसी प्राकृतिक और मानवीय विभीषिकाओ के समय उन्होने अपने को भुला कर राहत कार्यों में भाग लिया। १९४३ के वगाल के अकाल के समय के उनके काम के वारे मे पाठक पिछले पृष्ठो मे पढ चुके है। १९५३ मे वगाल मे खासकर मेदिनीपुर जिले मे भयकर वाढ आयी तो मुख्यमत्री डा० विधान चन्द्र राय की अध्यक्षता मे पश्चिम वगाल प्रदेश वाढ सहायता समिति गठित की गयी। भागीरथजी इस समिति के मत्री वनाये गये। समिति के पास शुरू मे विलकुल ही रुपये नही थे तो भागीरथजी ने अपने दफ्तर से रुपये एडवास देकर समिति का काम प्रारम्भ किया।

एक सामाजिक कार्यकर्ता को, और फिर वह भागीरथजी जैसा व्यक्ति हो तो बहुत सारे ऐसे काम करने पडते है जो एकदम तात्कालिक होते है। ऐसे कामो के बारे मे पन्द्रह-बीस वर्ष बाद पता लगाना अत्यत कठिन होता है। भागीरथजी ने बगाल और कलकत्ता मे इस तरह के असख्य तात्कालिक काम किये। श्री कृष्णचन्द्र महापात्र ने ऐसे कुछ तात्कालिक कामो के बारे मे बताया। १९४५-४६ मे जब आजाद हिन्द फौज के सिपाही भारत आये और शाहनवाज, सहगल तथा ढिल्लो पर अग्रेज सरकार ने राज-द्रोह का मामला चलाया तो बगाल मे एक आई० एन० ए० जाच और सहायता कमेटी बनी। भागीरथजी इस कमेटी के कोषाध्यक्ष बनाये गये। १९४८ मे गाधीजी की मृत्यु के बाद गाधी नेशनल मेमोरियल फड की स्थापना हुई तो उसकी बगाल-शाखा का भागीरथजी को कोषाध्यक्ष बनाया गया। १९५२ मे ट्यूनीसिया के स्वातन्त्र्य-सग्राम मे सहायता करने के लिए कलकत्ता मे 'एड टू ट्यूनीसिया कमेटी' बनायी गयी। इसके भी भागीरथजी कोषाध्यक्ष थे। बगाली कार्यकर्ता जो भी सस्था और कमेटी बनाते उसमे भागीरथजी को कोषाध्यक्ष का पद देते क्योकि वे यह जानते थे कि भागीरथजी के हाथ मे कोष रहेगा तो उसका प्रबन्ध सुचारू रूप से होगा।

सीतारामजी की डायरियो से पता चलता है कि भागीरथजी ने बगाल के ऐसे महापुरुषो से, जिनके प्रति उनके मन मे अपार श्रद्धा थी, अपना सम्पर्क निरन्तर बढाया। सम्पर्क-सकोची होने के बावजूद वह इनसे सम्पर्क बढाने की कोशिश करते थे तो उसके पीछे उनका यह सस्कार काम करता था कि महापुरुषो की सगत व्यक्ति को व्यक्तिगत महत्वाकाक्षाओ और वासनाओ से मुक्त कर उसे सस्करित करती है। रूढियो और अधविश्वासो के प्रति गहरी वितृष्णा के बावजूद किसी साधु-सन्त की चर्चा सुनने पर वह उसके पास जाते और यह जानना चाहते कि वह सचमुच साधु है या नही। दीनबन्धु ऐण्ड्रूज जैसे व्यक्तियो को भागीरथजी साधु मानते थे और उनकी चर्चा करते हुए श्रद्धा-विभोर हो जाया करते थे। न जाने कितने लोगो से उन्होने दीनबन्धु की सरलता की चर्चा की होगी। ऐसी चर्चा मे वह यह जरूर बताते कि दीनबन्धु से किसी ने पूछा आपने (दीनबन्धु) विवाह क्यो नही किया तो उन्होने (दीनबन्धु ने) जवाब दिया कि कभी इतना समय ही नही मिला कि विवाह के बारे मे सोचू।

बगाल के तीन महापुरुषो—रवीन्द्रनाथ ठाकुर, आचार्य जगदीशचन्द्र बसु और आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय—के वह सम्पर्क मे आये। आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय ने अपनी आत्म-कथा मे मारवाडियो के खिलाफ कुछ बाते लिखी थी जिनसे मारवाडियो मे उनके प्रति काफी रोष था। भागीरथजी को यह रोष बहुत गलत मालूम हुआ क्योकि उनकी राय यह थी कि आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय जैसे साधु-पुरुष ने जो लिखा है, वह द्वेपवश लिखा हो ही नही सकता।

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के प्रति भी भागीरथजी की असीम श्रद्धा थी। रवीन्द्रनाथ की जन्म और मृत्यु-तिथि की सभाओ मे वह बहुत वर्षों तक नियमपूर्वक शामिल होते रहे। ८ मई, १९४६ की अपनी डायरी मे सीतारामजी लिखते हैं "शाम को स्वर्गीय पूज्य रवीन्द्रनाथ टैगोर का जन्म दिवस था, उसकी सभा मे गये। इस सभा मे गैरबगालियो मे भाई भागीरथजी और मैं शायद दो ही आदमी थे। हम

बंगालियो मे प्रान्तीयता बताते है पर रवीन्द्रनाथ जैसे आदमी के लिए सभा हो और उसमे मारवाडी या अन्य गैरबगालियो का न जाना क्या बताता है, क्या साबित करता है ? रवीन्द्र मेमोरियल मे अभी तक करीब तेरह लाख रुपये इकट्ठा हुए हैं जिसमे गैरबगालियो का शायद कुछ भी हिस्सा नही है या है तो बहुत नगण्य है।"

विश्वकवि से भागीरथजी का सम्पर्क भी काफी आया। विश्वकवि जब शान्ति-निकेतन से कलकत्ता आते तो अपने जोडासाकू स्थित भवन मे एक अन्तरग गोष्ठी आयोजित करते। इसमे वह अपनी नयी कविताओ का पाठ करते और फिर फरमाइश पर पुरानी कविताएं भी सुनाते। इस अन्तरग गोष्ठी मे विश्वकवि ने खुद भागीरथजी को कई बार निमन्त्रित किया। रवीन्द्रनाथ के बारे मे कोई भागीरथजी से कुछ जानना चाहता तो वह बडे उत्साह से बताते। १९७३ या १९७५ मे घोर अस्वस्थता के दौरान उन्होने अपने डाक्टर को रवीन्द्रनाथ के बारे मे यह किस्सा बडे प्रेम से सुनाया : "एक बार रवीन्द्रनाथ बहुत बीमार पडे। आपरेशन करने की जरूरत पडी। बगाल के प्रसिद्ध शल्य-चिकित्सक डा० नीलरतन सरकार ने उनका आपरेशन किया। आपरेशन के बाद जब विश्वकवि को होश आया तो डा० सरकार ने हाथ जोड कर विश्वकवि से कहा आप मुझे क्षमा करेगे। आपरेशन के लिए मुझे आपकी दाढी काटनी पडी तो विश्वकवि ने कहा 'समझा, यम मेरी दाढी पकड कर ले जा रहा था लेकिन तुम बडे चालाक निकले। तुमने तुरन्त मेरी दाढी काट दी। यम को मुझे छोड देना पडा।' भागीरथजी ने भाव विभोर होकर अपने डाक्टर को बताया कि विश्व-कवि के मुह से यह सुन कर डा० नीलरतन सरकार निहाल हो गये। उन्हे 'जीवन धन्य हुआ' की साक्षात प्रतीति हुई।"

आचार्य सर जगदीशचन्द्र बसु की पत्नी लेडी अबला बोस के प्रति भी भागीरथजी के मन मे बडा आदर था। लेडी अबला बोस का बगाल मे स्त्री-शिक्षा के क्षेत्र मे महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उनकी मृत्यु पर 'लेडी अबला बोस स्मृति कोष' का गठन हुआ तो भागीरथजी उसके कोषाध्यक्ष हुए।

राजस्थान के मुख्यमन्त्रियो की तरह पश्चिम बगाल के मुख्यमन्त्रियो मे भी भागीरथजी का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा। राजस्थान के प्रथम मुख्यमन्त्री शास्त्रीजी की तरह प० बगाल के प्रथम मुख्यमन्त्री डा० प्रफुल्लचन्द्र घोष उनके व्यक्तिगत मित्र थे। डा० विधानचन्द्र राय, प्रफुल्लचन्द्र सेन और अजय मुखर्जी से भी उनका गहरा सम्बन्ध था।

बगाल मे हरिजनोद्धार के कार्य मे भागीरथजी की रुचि के बारे मे पाठक पढ चुके है। बगाल हरिजन सेवक सघ के सस्थापको मे से वह एक थे। गाधीजी के जितने भी रचनात्मक कार्य बगाल मे हुए उनमे भागीरथजी का पूरा योगदान रहा। 'बगाल के गाधी' सतीशचन्द्र दासगुप्त से और उनकी सस्था खादी प्रतिष्ठान तथा बगाल के रचनात्मक कार्यकर्ताओ और उनकी विभिन्न सस्थाओ से भागीरथजी का प्रगाढ सम्बन्ध रहा। नवद्वीप की बगवाणी और अन्य कई गाधीवादी सस्थाओ से वह मृत्यु पर्यन्त जुडे रहे।

भागीरथजी की मृत्यु पर कलकत्ता मे सार्वजनिक सस्थाओ की ओर से जो शोक सभा हुई उसके निवेदको मे ७५ सस्थाए थी। इन सस्थाओ मे सामाजिक और शैक्ष-

णिक सस्थाओ के साथ जमायत-उल उलेमा हिन्द, रामकृष्ण मिशन, भारत सेवाश्रम सघ, गुजरात रिलीफ सोसाइटी और पजाब सेवा समिति जैसी सस्थाए भी थी। ७५ सस्थाओ मे से सभी का भागीरथजी से किसी न किसी प्रकार का सम्बन्ध रहा था। इससे यह पता चलता है कि भागीरथजी की सेवा का क्षेत्र कितना विस्तृत था।

राहत-कार्य भागीरथजी के मन का कार्य था इसलिए रामकृष्ण मिशन के काम मे उनकी बहुत रुचि थी। रामकृष्ण मिशन से उनका सम्बन्ध बढता ही गया। कलकत्ता के पास रामकृष्ण मिशन के नीमपीठ-आश्रम के तो वह वर्षो अध्यक्ष रहे। नीमपीठ-आश्रम आज रामकृष्ण मिशन की एक विशेष सस्था बन गया है। इसके विकास मे भागीरथजी का बहुत बडा योगदान रहा है।

भागीरथजी कलकत्ता के कई समाज कल्याण ट्रस्टो से जुडे थे। इनमे रघुमल चैरिटी ट्रस्ट और रायबहादुर विश्वेश्वरलाल हलवासिया ट्रस्ट प्रमुख है। हलवासिया ट्रस्ट के मारफत उन्होने इतना बडा काम किया कि उसके बारे मे अलग से लिखना आवश्यक प्रतीत होता है।

हलवासिया ट्रस्ट

इस ट्रस्ट से भागीरथजी ४२ वर्ष जुडे रहे। १९३४ मे कलकत्ता उच्च न्यायालय मे उन्हे इसका रिसीवर नियुक्त किया और १९४१ मे वह उसके एक ट्रस्टी बनाये गये और १५ जुलाई, १९७६ तक बने रहे, जब उन्होने कुछ विशेष परिस्थितियो के कारण ट्रस्टी के पद से इस्तीफा दे दिया।

ट्रस्ट का काम जब भागीरथजी ने रिसीवर के तौर पर सम्भाला तो आपसी झगडो के कारण उसकी हालत बहुत खराब थी। सारी सम्पति बदइन्तजामी के कारण बिखर कर नष्ट हुए जा रही थी और आज से लगभग पचास साल पहले रायबहादुर विश्वेश्वरलाल हलवासिया ने जिन 'शुभ कामो' मे लगाये जाने के लिए अपना 'इस्टेट, नगदी व मकानात वगैरह धर्मार्थ किये थे', वे फलित नही हो रहे थे। ट्रस्ट को ऐसे एक व्यक्ति की जरूरत थी जो उसके सचालक के रूप मे निस्वार्थ भाव से उसकी सम्पत्ति से होनेवाली आमदनी को 'धर्मार्थ' लगाये। भागीरथजी के रूप मे ट्रस्ट को ऐसा व्यक्ति मिल गया।

रायबहादुर विश्वेश्वरलाल हलवासिया ने अपनी वसीयत मे 'रोगियो की दवा, अनाथालय, स्कूल, मन्दिर के खर्च इत्यादि शुभ कर्म' मे सम्पत्ति की आमदनी लगाने का जो निर्देश दिया था उसका पालन करते हुए भागीरथजी ने ट्रस्ट के सेवा-क्षेत्र को व्यापक बनाया। स्कूल, मन्दिर, अनाथालय और औषधालय खोलने और उनको सहायता देने के अलावा भागीरथजी ने ट्रस्ट की ओर से जरूरतमन्द छात्रो को व्याज-मुक्त ऋण देने, सार्वजनिक अस्पतालो मे रोगियो के लिए मुफ्त शैयाओ की व्यवस्था करने, अनुसधान कार्यो मे मदद देने और हिन्दी का प्रचार करने के काम चालू किये। व्याज-मुक्त ऋण देने की ट्रस्ट की योजना कितनी सफल रही इसका अन्दाज इसी बात से लगाया जा सकता है कि १९७९ के अन्त तक ट्रस्ट ने जरूरतमन्द छात्रो को जो १,५६,८०० रु० व्याज-मुक्त ऋण दिया था उसमे से १४०९२५ रु० उसके पास लौट कर आ भी गया था।

ट्रस्ट ने १९३९ मे भागीरथजी के ही कारण विश्वभारती, शान्तिनिकेतन मे हिन्दी भवन की स्थापना की। ३१ जनवरी, १९३९ मे विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की उपस्थिति मे जवाहरलाल नेहरू ने इसका उद्घाटन किया। दीनबन्धु सी० एफ० ऐण्ड्रूजने हिन्दी भवन के निर्माण मे भागीरथजी की भूमिका की चर्चा करते हुए 'विशाल भारत' (जनवरी, १९४०) मे लिखा "भवन की स्थापना मे भागीरथजी ने जो सहायता की है उसके लिए उन्हे पूरी तरह साधुवाद देना मेरे लिए असम्भव है। उनके बिना हम हिन्दी भवन की मौजूदा उन्नति करने मे समर्थ नही हो सकते थे।" ट्रस्ट ने हिन्दी भवन से एक त्रैमासिक पत्रिका 'विश्वभारती' का प्रकाशन करने मे भी मदद की। इसके आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी वर्षों सम्पादक रहे और इसकी हिन्दी की अत्यन्त प्रतिष्ठित पत्रिकाओ मे गिनती होती थी। हाल मे हिन्दी भवन मे अतिथि-निवास बनाने मे सहायता देने के अलावा ट्रस्ट ने भवन की ओर से एक व्याख्यानमाला—हलवासिया व्याख्यानमाला और एक अनुसन्धान-प्रकाशन—हलवासिया अनुसन्धान प्रकाशन की शुरुआत की है। ट्रस्ट अब तक विश्वभारती और हिन्दी भवन को २०६०५० रु० दे चुका है।

आज से ३० साल पहले कलकत्ता विश्वविद्यालय मे हिन्दी की पढाई की व्यवस्था बहुत ही अपर्याप्त थी। आधुनिक भारतीय भाषाओ के अन्तर्गत ही हिन्दी पढाई जाती थी और सिर्फ एक प्राध्यापक—आचार्य ललिताप्रसाद सुकुल—थे। सुकुलजी को कलकत्ता विश्वविद्यालय मे हिन्दी की इस उपेक्षा से बडी पीडा थी। तब शायद विश्वविद्यालयो मे हिन्दी पढानेवाले हिन्दी से लगाव महसूस करते थे। झूठ, तिकडम और चापलूसी का आज जैसा साम्राज्य स्थापित नही हुआ था। सुकुलजी ने अपने मित्रो से इस बात की चर्चा की कि हिन्दी राष्ट्रभाषा तो हो गयी पर कलकत्ता विश्व-विद्यालय मे उसका विभाग भी नही है। चर्चा भागीरथजी के कानो तक पहुची। उन्होने कलकत्ता विश्वविद्यालय मे हिन्दी विभाग खोलने के लिए हलवासिया ट्रस्ट की ओर से पूरी मदद देने की बात कही। विभाग तो नही खुल सका लेकिन विश्वविद्यालय मे हिन्दी की चेयर की स्थापना हो गयी। इस चेयर के लिए हलवासिया ट्रस्ट ने ५९ हजार रुपए दिये। यह चेयर अभी भी कायम है और इसके अन्तर्गत हिन्दी के स्नातकोत्तर अध्ययन की व्यवस्था चल रही है। भागीरथजी के बिना इस चेयर की स्थापना की कल्पना भी नही की जा सकती थी।

भागीरथजी ने ट्रस्ट के सेवा-क्षेत्र को हरियाणा और बगाल से बढा कर अखिल भारतीय भी बनाया। ट्रस्ट ने १९४३ से लेकर १९७९ तक १०२,६३,३०३ रु० (एक करोड से भी ज्यादा) की सहायता की है। इसमे हरियाणा, पश्चिम बगाल, राजस्थान, बिहार और मध्यप्रदेश मे उसकी सहायता सबसे ज्यादा रही, लेकिन महाराष्ट्र ओडिशा, दिल्ली, गुजरात, तमिलनाडु, असम, केरल, आध्र प्रदेश, पजाब तथा अण्डमान और मेघालय तक भी उसकी सहायता पहुची। १९७६ मे ट्रस्ट ने बदरीनाथ में ७ लाख रु० की लागत से एक धर्मशाला बनायी। यह उत्तराखण्ड की सर्वश्रेष्ठ धर्मशालाओ मे एक मानी जाती है।

ट्रस्ट के मैनेजर गणेशमलजी वैद ने बताया कि ट्रस्ट की हर महीने दो बैठकें होती थी—एक सचालन समिति की और एक ट्रस्टियो के बोर्ड की। भागीरथजी का

सहायता के लिए आये हुए आवेदनो पर विचार करते वक्त छोटे-छोटे आवेदनो पर बहुत ज्यादा ध्यान रहता। धीरे-धीरे बैठको मे यह होता गया कि बडे-बडे आवेदनो पर विचार करके ट्रस्टी लोग चले जाते और छोटे-छोटे आवेदनो पर विचार करने व फैसला करने का भार भागीरथजी पर छोड जाते। अन्य ट्रस्टियो के चले जाने के बाद काम सलटा कर ही भागीरथजी बैठक से उठते। मिदनापुर मे हलवासिया ट्रस्ट की बहुत बडी जमीदारी थी। इस जमीदारी के बारे मे भागीरथजी का शुरू से ही यह रुख रहा कि यह जमीन भूमिहीन किसानो को दी जानी चाहिए और सरकारी कानून बनने के पहले ट्रस्ट ने अपनी काफी जमीन एकदम सस्ती कीमतो पर भूमिहीनो को दी।

ट्रस्ट के माध्यम से भागीरथजी ने कितनी ही छोटी-छोटी सस्थाओ को ऐसी मदद की जिससे वे बाद मे जाकर अपने पैरो पर खडी हो सकी। उनकी ही प्रेरणा से बाढ और अकाल मे ट्रस्ट ने राहत-कार्य करनेवाली सस्थाओ की मदद करना भी शुरू किया। १९७६ मे भागीरथजी ने बडी ही दुखद परिस्थितियो मे ट्रस्टी के पद से इस्तीफा दिया। १९७५ के जून मे एमरजेन्सी लग गयी थी और ऐसे मे तत्कालीन रक्षामत्री चौधरी बसीलाल की ट्रस्ट के कामो मे अचानक 'दिलचस्पी' बढ गयी। रायबहादुर विश्वेश्वरलाल हलवासिया हरियाणा के निवासी थे सो चौधरी बसीलाल ने 'हरियाणा के हित के लिए' भागीरथजी जैसे गैरहरियाणवी को ट्रस्ट से निकालने का निर्णय किया। एमरजेन्सी-राज्य था। अपील, दलील और वकील की कोई गु जाइश नही थी। ट्रस्ट के अन्य ट्रस्टी चौधरी बसीलाल के खौफ से आतकित थे। भागीरथजी हलवासिया ट्रस्ट नही छोडना चाहते थे क्योकि उसके माध्यम से वह सहायता का बडा काम कर रहे थे लेकिन अपने सहकर्मियो के डर को देख कर उन्होने उनसे कहा मैं किसी के कारण इस्तीफा देना नही चाहता लेकिन अगर आप लोग यह समझते है कि मेरे बने रहने से ट्रस्ट को नुकसान होगा तो मैं इस्तीफा दे दू गा।` चूंकि सभी ट्रस्टी इस राय के थे कि परिस्थितियो को देखते हुए चौधरी बसीलाल से वैर मोल लेना उचित नही है, भागीरथजी ने इस्तीफा दे दिया। इस प्रकार हलवासिया ट्रस्ट से उनका ४२ वर्ष का सम्बन्ध औपचारिक रूप से समाप्त हुआ लेकिन इस्तीफा देने के बाद भी वह हलवासिया ट्रस्ट के काम मे रुचि लेते रहे और उसके माध्यम से जो कुछ भी सेवा और जन-कल्याण का काम करवा सकते थे, करवाते रहे।

१२

भागीरथजी और राजस्थान

मारवाडी सेठो ने जब कलकत्ता और बम्बई मे नये-नये रुपये कमाये तो राजस्थान के अपने गाव या कसबे मे हवेलिया बनायी और स्कूल, कालेज, अस्पताल तथा औषधालय खोले। लेकिन धीरे-धीरे ये सेठ इतने कलकतिया या बम्बइया बनते चले गये कि राजस्थान से उनका सम्पर्क नही के बराबर रह गया। आज उनकी बनायी गयी हवेलियो मे शायद उल्लू बोलते है और स्कूल, कालेज, अस्पताल आदि किसी प्रकार घिसटते-घिसटते चले आ रहे है। इसके विपरीत भागीरथजी का राजस्थान से सम्पर्क कलकत्ता या बम्बई के सेठो जैसा कभी नही रहा, वह निरन्तर बना रहा और यह सम्पर्क, विशुद्ध रूप से मातृभूमि की सेवा का सम्पर्क था।

राजस्थान की राजनीति और अन्य सार्वजनिक कार्यो मे भागीरथजी ने देश के आजाद होने के पहले भी भाग लिया था। प्रजामण्डल के आन्दोलन मे उनके भाग लेने के बारे मे पाठक पढ चुके हैं। आजादी के तुरन्त बाद के दिनो मे जब राजस्थान का नया राज्य एकदम शैशवावस्था मे था तब भागीरथजी ने राजस्थान काग्रेस की फूट को दूर करने की भी कोशिश की थी और इसमे वह एक-दो बार सफल भी हुए थे। २३ अगस्त, १९५० की अपनी डायरी मे सीतारामजी लिखते है . "भाई भागीरथजी आज जयपुर गये। (हीरालाल) शास्त्रीजी ने उन्हे बुलाया है। शास्त्रीजी के साथ राजस्थान की काग्रेस का जो विवाद या झगडा चल रहा है उसको सेट्ल (हल) कराने के उद्देश्य से गये हैं।" इसके तीन दिन बाद सीतारामजी ने लिखा · "शास्त्रीजी और (जयनारायण) व्यासजी का समझौता हो गया।" लेकिन धीरे-धीरे भागीरथजी ने राजस्थान की राजनीति से अपने हाथ खीच लिये और जो भी मुख्यमन्त्री हुआ उसे सहयोग दिया तथा उनसे राहत-कार्य करवाने की कोशिश की। शास्त्रीजी, पालीवालजी, व्यासजी, सुखाडियाजी, बरकतुल्लाजी, जोशीजी और भैरोसिंहजी शेखावत—सभी को उन्होने यह सोच कर सहयोग दिया कि राजस्थान जैसे पिछडे राज्य मे सरकार की मदद के बिना राहत का कार्य भी कर पाना असम्भव है।

भागीरथजी एक सस्कारी व्यक्ति थे। राजस्थान मे उन्होने जिस तरह काम किया उससे यह लगता है कही उनमे यह सस्कार निरन्तर काम करता रहा कि वह तो राजस्थान छोड कर कलकत्ता चले आये है और उन्हे भौतिक सुख-सुविधाए भी मिल गयी हैं, लेकिन राजस्थान मे वह जिनको छोड आये है, वे दुख-कष्ट मे रह रहे हैं। भागीरथजी को शायद कही बहुत गहरे ऐसा लगता था कि राजस्थान के लोगो का उन पर कोई स्थायी कर्ज है जिसे उन्हे निरन्तर चुकाते रहना है।

१९६० मे मुख्यमन्त्री सुखाडियाजी ने भागीरथजी को कहा कि वह राजस्थान मे कोई उद्योग खोले, "अब तक आपने राजस्थान को दिया ही दिया है अब अपनी जन्मभूमि को भी आप कुछ देने का मौका दीजिये", इस पर किशनगढ मे सूता मिल बिठाने की योजना बनी। १९६३ मे इस प्रकार आदित्य मिल की स्थापना हुई। किशनगढ मे बहुत पहले 'महाराजा मिल' के नाम से एक कपडा मिल चलती थी लेकिन वह बाद मे बन्द हो गयी जिससे बहुत सारे मजदूर बेकार हो गये थे। आज भागीरथजी द्वारा खोली गयी आदित्य मिल मे २००० से अधिक मजदूर काम कर रहे हैं और मिल के सहयोग से किशनगढ मे ७००० से भी अधिक पावरलूम चल रहे है जिनसे लगभग १५००० लोगो को काम मिला हुआ है।

राजस्थान मे भागीरथजी ने जो काम किये, वे ज्यादातर राहत के थे लेकिन इसके साथ ही शिक्षा-प्रसार, हरिजनोद्धार और जन-चिकित्सा सम्बन्धी काम भी उन्होने कम नही किये। राजस्थान की कितनी ही शिक्षा-सस्थाओ से वह मृत्यु पर्यन्त जुडे रहे। कुछ सस्थाओ के नाम याद आते है—वनस्थली विद्यापीठ, बाल मन्दिर, विद्या भवन, महिला मण्डल, राजस्थान विद्यापीठ आदि। इन सस्थाओ मे वनस्थली विद्यापीठ तो आज बहुत बडी और भारत-विख्यात सस्था हो गयी है, लेकिन प्रारम्भ मे उसका जीवन बहुत कठिनाइयो मे गुजरा। आर्थिक सकट हर समय ही उपस्थित रहता था। भागीरथजी इस सस्था से प्रारम्भ से लेकर मृत्यु पर्यन्त जुडे रहे। वनस्थली विद्यापीठ के सस्थापक हीरालालजी शास्त्री ने अपनी आत्मकथा "प्रत्यक्ष जीवन शास्त्र" मे लिखा है "कलकत्ते मे सीतारामजी, भागीरथजी जैसे मित्रो का वनस्थली को बडा सहारा रहा। वनस्थली के १९५१ के सकटकाल मे भागीरथजी कानोडिया ने घर बैठे जो आर्थिक सहायता पहुचायी उसे रतनजी (शास्त्रीजी की पत्नी) और मैं कभी भूल नही सकते। एक बार तो भागीरथजी ने बडे भारी खतरे से हमारी रक्षा की।"

जन्म-स्थान मुकुन्दगढ मे भागीरथजी ने अपने दादा जयनारायणजी द्वारा बनायी गयी पुरानी हवेली मे सन् १९२० मे ही कानोडिया स्कूल खोल दिया था जिसमे उस समय मिड्ल तक की पढाई की व्यवस्था थी। मुकुन्दगढ के आसपास के गावो मे भी उस जमाने मे उन्होने २०-२५ स्कूल खुलवाये थे। इन स्कूलो के बारे मे उन्होने इस बात का हमेशा ध्यान रखा कि ये धनाभाव के कारण कही बन्द न हो जाय। १९५० के दशक के प्रारम्भ मे उन्होने ग्राम-शिक्षा की एक योजना बनायी और उसके तहत गावो मे शिक्षा का प्रचार और प्रसार करने का प्रयत्न किया। १९६४-६५ मे राजस्थान के मुख्यमन्त्री सुखाडियाजी ने एक दिन भागीरथजी को बातो ही बातो मे कहा कि जयपुर मे अच्छा महिला कालेज नही है। इस पर भागीरथजी ने अपने ज्येष्ठ पुत्र नन्दलालजी को जयपुर मे महिला कालेज खोलने को कहा। इस तरह १९६७ मे जयपुर मे कानोडिया महिला कालेज की स्थापना हुई। यह कालेज आज राजस्थान का सर्वश्रेष्ठ महिला कालेज माना जाता है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने भी कालेज की बडी प्रशसा की है।

राजस्थान के शहरो कसबो और गावो मे भागीरथजी की प्रेरणा और सहायता से कितने स्कूल-कालेज खोले गये, इसका कोई हिसाब नही। हम इतना ही कह सकते

हैं कि राजस्थान के जो भी लोग उनके पास अपने इलाके मे स्कूल-कालेज आदि खोलने के बारे मे सलाह और सहायता के लिए आते, उन्हे वह उत्साहित करते और तन-मन-धन से उनका साथ देते। राजस्थान की छोटी-वडी सस्थाओ के कार्यकर्ता प्रवासी मारवाडी सेठो और उद्योगपतियो से चन्दा उगाहने प्राय कलकत्ता आते रहते। वडे सेठो के यहा पहुचना तक उनके लिए मुश्किल होता। ऐसे मे वे भागीरथजी को पकडते। भागीरथजी खुद तो देते ही, दूसरो से दिलवाते और वहुत वार इन कार्यकर्ताओ के साथ चन्दा-अभियान मे शामिल होकर खुद सेठो के घर-घर जाते। इस तरह उन्होने कितना चन्दा दिया और दिलवाया, इसका भी कोई हिसाव नही। भागीरथजी के साथ जाने से सस्थाओ के कार्यकर्ताओ को कुछ न कुछ प्राप्त होता ही था क्योकि उनके प्रति दाता के मन मे इतना सम्मान रहता कि उसके लिए 'नटना' (नाही करना) सम्भव नही होता। भागीरथजी के एक परिचित ने वताया कि भागीरथजी को किसी ने सुझाया कि वह गुरुदयाल जी वरेलिया के पास जाय तो उन्हे अच्छा चन्दा मिल सकता है, इस पर वह उनके निवास-स्थान पर पहुचे। वरेलियाजी ने कहा "आपने तकलीफ क्यो की, मुझे वुला लिया होता।" इस पर भागीरथजी ने कहा "दाता कन (पास) तो भिखारी न ही आनो पड।" इसी तरह न जाने कितने ही दाताओ ने वरेलियाजी की तरह भागीरथजी के प्रति सम्मान प्रकट किया होगा। लेकिन कभी-कभी कडुआ अनुभव भी होता। एक वार भागीरथजी, नन्दलालजी टाटिया के साथ एक बडे धनी के यहा श्री कल्याण-आरोग्य सदन के लिए चदा मागने गये। फाटक पर भागीरथजी ने दरवान से पूछा : "वावू घर पर है न ?" तो दरवान ने कहा 'हा'। भागीरथजी, नन्दलालजी के साथ भव्य और शानदार ड्राइ ग-रूम मे जाकर वैठ गये। धनी व्यक्ति के वेटे ने, उन्हे ड्राइ ग-रूम मे वैठा देख कर अपने पिता को सूचित किया। थोडी देर वाद वेटा भागीरथजी के पास आया और प्रणाम करके वैठ गया। भागीरथजी ने उससे कहा "तुम्हारे पिताजी से मिलना है" तो वह वोला "पिताजी तो घर पर नही है।" यह एकदम साफ जाहिर हो गया था कि 'पूज्य पिताजी' घर पर ही विराजमान थे लेकिन दर्शन देना नही चाहते थे। नन्दलालजी इस व्यवहार से एकदम हतप्रभ रह गये तो भागीरथजी ने उनसे कहा 'कोई वात नही भिखारियो के साथ ऐसा होता ही है।"

नथमलजी भुवालका ने वताया कि उनका भागीरथजी के साथ राजस्थान जाने का एक ही वार अवसर आया, "इस यात्रा मे देखा, जहा भी हम जाते उनकी जान पहचान-परिचय का कोई न कोई मिल जाता। कलकत्ता मे वैठ कर कोई भागीरथजी के राजस्थान से प्रगाढ सम्पर्क और उनके द्वारा उपकृत लोगो के वारे मे कुछ नही जान सकता।" यह सुन कर हमे १९५८ की उस जीप-दुर्घटना की याद आयी, जब भागीरथजी जल-वोर्ड द्वारा वनाये गये कुओ को देखने मुकुन्दगढ से सालासर जा रहे थे। दुर्घटना के स्थान के आसपास प्राथमिक चिकित्सा की भी कोई व्यवस्था नही थी। उन्हे जयपुर ले जाना तय किया गया। लेकिन अवस्था इतनी खराव थी कि साथ के लोगो ने सोचा कि कही रास्ते मे ही मृत्यु न हो जाय इसलिए कोई चिकित्सक तो रहना ही चाहिए। लोग खोज-खाज कर पास के गाव से एक वैद्य को साथ चलने के लिए ले आये। भागीरथजी लगभग वेहोश से थे। जयपुर पहुचने पर उन्होने अपने साथियो

से कहा : "आप जिस बेचारे वैद्य को साथ लाये है उसे रुपये देकर अब वापस घर जाने दीजिये।" वैद्य को इसका पता लगा तो उसने भागीरथजी से कहा : "मैं नही जाऊंगा और न ही रुपये लूगा। आज भगवान ने मुझे अपना थोडा ऋण चुकाने का मौका दिया है तो आप उससे मुझे वचित क्यो कर रहे है ?" 'वैद्य की बात पहेली सी जान पडी तो उसने भागीरथजी को अपना नाम बताते हुए कहा "आपने ही छात्रवृत्ति देकर मुझे पढाया है और आज आपके ही कारण रोटी कमा कर खाने लायक बन पाया हू। यह तो आपके उपकार का थोडा ऋण चुकाने का मुझे भगवान ने मौका दिया है।" भागीरथजी ने कहा · "मुझे तो याद नही कि मैने आपकी कभी मदद की थी।" ऐसे कितने ही लोग थे जिनकी भागीरथजी ने मदद की थी लेकिन जिनका पता दूसरो को तो क्या, भागीरथजी को खुद न था।

अकाल में राहत-कार्य

बचपन के प्रसग मे छपनिया अकाल तथा अन्य अकालो के बारे मे भागीरथजी की सवेदना की पिछले पृष्ठो मे चर्चा की जा चुकी है। राजस्थान मे भागीरथजी के जीवनकाल मे जब भी कोई अकाल पडा तो वह राहत-कार्य करने दौडे-दौडे वहा पहुचे। सन् १९३८-३९ मे राजस्थान मे जब अकाल पडा तो वह वहा पहुचे। इस अकाल मे उनके राहत-कार्य के बारे मे हमे केवल इस बात का पता लगा कि कलकत्ता मे उन्होने राजपूताना अकाल सहायक समिति गठित की थी और कई लाख रु० का चन्दा इकट्ठा किया था। सीतारामजी ने ५, नवम्बर १९३८ की अपनी डायरी मे लिखा है. "भागीरथजी राजपूताना अकाल सहायक समिति मे खूब लग गये है। उन पर भार अधिक है। ऐसा लगता है कि अपने से हो सके उतनी उनकी सहायता करना अपना कर्त्तव्य है।"

इसके बाद सवत् २००८ (१९५१-५२) मे राजस्थान मे अकाल पडा तो भागीरथजी मारवाडी रिलीफ सोसाइटी के अध्यक्ष थे। नवम्बर, १९५१ मे वह सोसाइटी के मत्री के साथ राजस्थान गये। राजस्थान मे भी राहत-कार्य का एक सगठन बना—राजस्थान सेवा समिति। भागीरथजी इस समिति के भी अध्यक्ष बनाये गये। उन्होने सारे अकाल-पीडित क्षेत्रो की यात्रा की और राहत-कार्य के आर्थिक पक्ष की पूरी जिम्मेवारी अपने ऊपर ली। सीकर, झुझनू, जयपुर, जोधपुर, उदयपुर कोटा और अजमेर आदि जिलो मे राहत का कार्य व्यापक रूप से किया। राहत-कार्यक्रम के अन्तर्गत अनाज, रजाई, दूध, और दवाओ आदि के वितरण के साथ लोगो को मजदूरी दिलाने तथा जलाभाव की समस्या का हल करने के लिए टैंक और तालाब खुदवाने का भी काम शुरू किया। अकाल के वक्त मवेशियो को सबसे ज्यादा कष्ट होता है। भागीरथजी ने मवेशियो के लिए चारे और दवाइयो की व्यवस्था करने पर विशेष ध्यान दिया। राजस्थान सेवा समिति ने एक लाख मन कडबी मध्यभारत, मध्य प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश से खरीदी। कई जगह सस्ती घास के डिपो भी खोले। राहत-कार्य डेढ वर्ष तक चला। इसमे करीब ७-८ लाख रुपये खर्च हुए।

१९५१-५२ के अकाल के बाद राजस्थान मे बडा अकाल १९७२-७३ मे पडा। इस समय भागीरथजी की अवस्था ७७-७८ वर्ष की थी। स्वास्थ्य भी काफी

विगड चुका था पर वह पहले की तरह ही अकाल-राहत के कार्यों मे जुट गये, राजस्थान भर मे घूमे। परिवार के लोगो तथा परिचितो ने उन्हे बार-बार कहा कि अब आपकी उम्र नही रही कि पहले की तरह घूमे तो उन्होने एक-दो वार खीझ कर कहा भी, "मेरे स्वास्थ्य की इतनी ज्यादा चिन्ता करने के बजाय अकाल-पीडितो की थोडी चिन्ता कीजिए।" राजस्थान के अकाल-पीडित क्षेत्रो की यात्राओ मे समय निकाल कर वह जब कभी पत्र लिखते तो उसमे अकाल का ही वर्णन होता। इस समय के उनके एक पत्र का एक अश यहा उद्धृत किया जा रहा है, जो उनकी हिन्दी और कहावतप्रियता का भी एक अच्छा उदाहरण है—"राजस्थान मे अकाल की विभीषिका का पता देखने से ही लगता है। अखबारो को पढने से तो कुछ पता लगता नही। बहुत ही भयकर हालत है और उससे भी बुरी बात यह है कि सरकार की ओर से राहत-कार्य बहुत अल्प मात्रा मे ही हो रहे हैं। स्थानीय सेठ लोगो की तरफ से भी इस वार कही कोई काम नही हो रहा है। सरकार बातें बहुत करती है, काम कुछ करती नही। चेजे-भाटे (सडक, मकान निर्माण आदि) का काम न तो कसबो मे है और न छोटे गावो मे क्योकि अकाल के कारण सब लोगो को अपना-अपना जी बचाने की लगी हुई है।

"गाय के खाने का सामान—चारा-दाना तो महगा हुआ है और दूध-घी कुछ सस्ता। सस्ता होने का कारण यह है कि गाव का जो आदमी आधा दूध अपने बच्चो को देता था और आधा कसबे मे आकर बेच जाता था वह पूरा का पूरा कसबे मे बेचना चाहता है जिससे वह अपने गोधन को जीवित रख सके तथा बच्चो को रोटी दे सके। गाय-सासरो को तो भूख आयी हुई है ही, मनुष्यो मे भी भूख है। जिस गाय के दाम गये साल ९ सौ रुपया था उसका दाम आज साढे चार सौ है। साढे चार सौ मे ८ किलो दूध देनेवाली दुजान-तिजान गाय मिल जाती है। अनाज के दाम, सभी चीजो के बहुत बढे हुए हैं, लेकिन साग-सब्जी सस्ती है। आलू ४० पैसे किलो तथा मूली दस पैसे किलो। जो मालिने दस पैसे किलो मूली वेचती है—वे वाडीवालो से चार पैसे किलो लाती हैं। गाय-सासर बाहर भी बहुत जा रहे हैं। सारा खाका देखे तो आदमी काप जाय, ऐसी हालत है।

" एक बात और लिखू। पूरे-पूरे कलियुग का दर्शन होता है। सुरभि के दाम, सुरभि की पूछ घट रही है जबकि गर्दभि के दाम और पूछ वढी हुई है। एक अच्छी गाय और एक अच्छी गधी की कीमत बिलकुल एक ही है। 'घोडा गधा एक भाव' यह कहावत तो सुनी हुई है, लेकिन गधा और गाय एक भाव की कहावत आखो के सामने चरितार्थ हो रही है।"

इस अकाल के बारे मे अपने एक लेख मे भागीरथजी ने लिखा. "इस साल विक्रम सम्वत् २०२९ में जो अकाल पडा है वह पिछले किसी अकाल से कम नही है। कई लोगो का तो कहना है कि राजस्थान के अमुक-अमुक स्थानो पर छपनिये से भी ज्यादा भयावह स्थिति है। २४ जिलो मे १८ जिले अभावग्रस्त घोषित हो चुके है। जोधपुर और बीकानेर के कुछ हिस्सो मे पानी का भी भयानक सकट है।"

इस अकाल मे राहत-कार्य के लिए भागीरथजी ने राजस्थान रवाना होने से पहले कलकत्ता मे रामेश्वरजी टाटिया, नथमलजी भुवालका तथा कुछ अन्य लोगो की मदद मे

चन्दा-अभियान चलाया। १०-१२ दिन यह अभियान चला। करीब १५ लाख रु० प्राप्त हुए। राजस्थान जाकर उन्होने पीपुल्स वेलफेयर सोसाइटी (जन-कल्याण समिति) के माध्यम से राहत-कार्य शुरू किया। इसके लिए उन्होने एक विशाल योजना वनायी। वह चाहते थे कि इस योजना के लिए जन-कल्याण समिति जितना खर्च करे, सरकार उससे दुगुना खर्च करे। इस बारे मे उन्होने राजस्थान के मुख्य-मन्त्री से वातचीत की तो मुख्यमन्त्री ने आना-कानी की। कारण था वदरीनारायणजी सोढाणी का समिति का मन्त्री होना। सोढाणीजी ने कभी काग्रेस पार्टी का विरोध किया था सो मुख्यमन्त्री ने भागीरथजी से कहा ' यदि आप सोढाणीजी के साथ काम करेंगे तो सरकार आपको सहायता नही देगी। भागीरथजी चाहते थे कि सरकार अधिक से अधिक सहयोग दे जिससे ज्यादा से ज्यादा लोगो की सहायता की जा सके, लेकिन वह सरकारी सहायता प्राप्त करने के लिए सोढाणी जैसे कर्मठ और सेवापरायण साथी को छोड देने को कतई तैयार न थे। उन्होने मुख्यमन्त्री और अन्य मन्त्रियो से कई वार मुलाकात की और अन्त मे उन्हे सरकारी सहायता देने के लिए राजी कर लिया।

कई कार्यक्रम सरकारी मदद से चलाये गये और कई कार्यक्रम जन-कल्याण समिति ने अकेले चलाये। इन कार्यक्रमो मे प्रमुख थे : —

(१) अकाल पीडितो को रोजगार मुहैया करने और अनाज देने के लिए निर्माण-कार्य शुरु करना, जैसे—तालाव और कुए खोदना, पुराने कुओ की मरम्मत करना, गावो मे स्कूलो के नए कमरे वनाना आदि। इन निर्माण-कार्यो मे मजदूरी के वदले मे अनाज देने की व्यवस्था की गयी।

(२) नित्योपयोगी वस्तुओ खासकर अनाज की सस्ती दुकानें खोलना।

(३) अपाहिज और असमर्थ लोगो को मुफ्त अनाज देने के साथ आर्थिक सहायता देना।

(४) अनुभवी डाक्टरो की देख-रेख मे दवा का वितरण करना।

(५) सीकर, झुंझनू और चुरू जिलो के लगभग १८०० गावो मे सार्वजनिक साडो को ६ महीने तक प्रति दिन २ किलो गु वार प्रति साड देने की व्यवस्था करना।

(६) पशु-पोषण केन्द्र और शिविर खोलना जिनमे गायो को सस्ती दर पर चारा उपलब्ध करने की व्यवस्था करना।

(७) कपडो, कम्वलो, चप्पलो और वच्चो के लिए पोषक आहार का वितरण करना।

(८) रोजगार के लिए चरखो का वितरण और कते सूत को खादी कमीशन द्वारा वेचने की व्यवस्था करना।

जाडे की वजह से अकाल मे स्थिति और भी कठिन हो गयी थी। भागीरथजी ने सोचा कि कपडे और कम्वल खरीदने पर अगर रुपये खर्च हो जायेंगे तो अनाज वाटने का आवश्यक काम कम करना पडेगा। इसलिए उन्होने अपने परिचितो को पुराने कपडे, कम्वल, जूते आदि भेजने को कहा और ये वडी सख्या मे जमा हुए। दवाओ की कई कम्पनियो से भागीरथजी ने दवाए मागी। इस तरह विना कोई खर्च किए अकाल-पीडितो की कई जरूरतें पूरी करने की चेष्टा को गयी।

१९७३ के मार्च मे भागीरथजी ने उदयपुर जिले के अकालग्रस्त आदिवासी इलाको की यात्रा की। भारत माता की तिरस्कृत और सदियो से उत्पीडित सतानो—हरिजनो और आदिवासियो—के प्रति उनका परदुखकातर मन हमेशा ही आर्द्र रहता था। राजस्थान के अकालो मे अपनी यात्राओ के दौरान उन्हे सबसे पहले यही नजर आता कि "सभी जगह हरिजनो की अवस्था अधिक शोचनीय है"। यह हमारे लिए लज्जा की बात है कि राजस्थान मे हरिजनो और आदिवासियो के लिए उन्होने जो काम किए उनकी विस्तृत जानकारी हम जुटा नही पाये। वह २० वर्षो तक राजस्थान हरिजन सेवक सघ के अध्यक्ष रहे और १९४७ मे ठक्करबापा द्वारा भारतीय आदिम जाति सेवक सघ की स्थापना के बाद उसके १५ वर्षो तक कोषाध्यक्ष। ठक्करबापा द्वारा ही स्थापित राजस्थान के रचनात्मक कार्यकर्ताओ की एक सस्था 'राजस्थान सेवक सघ' के भी वह सस्थापक सदस्यो मे एक थे। इन तीनो सस्थाओ के माध्यम से उन्होने जो काम किया उसकी हमे जानकारी नही मिल पायी। बहरहाल, उदयपुर जिले के दुर्गम पर्वताचलीय गावो की यात्रा करते हुए उनके मन में यह बात आयी कि अकाल के वक्त गावो के आदिवासियो को राहत पहुंचाने के लिए कोई गैरसरकारी व्यवस्था होनी ही चाहिए क्योकि आदिवासी मुखर नही हैं, इसलिए उनकी तरफ सरकार का ध्यान बिल्कुल ही नही जाता। उदयपुर के कार्यकर्ताओ को उन्होने आदिवासियो के बीच राहत-कार्य करने के लिए सस्था बनाने को कहा। इस तरह उनकी प्रेरणा से मार्च, १९७३ मे उदयपुर मे जन-कल्याण समिति की स्थापना हुई। यह समिति आज सात वर्षो से लगातार काम करती चली आ रही है।

१९७३ के अकाल मे समिति ने उदयपुर जिले के आदिवासी इलाको का सर्वेक्षण कर चार तहसीलो—सराडा, कोटडा, खेरवाडा और झाडोल—मे सेवा-केन्द्र खोले और प्रति दिन ५००० खाद्य-पैकेट (प्रति व्यक्ति १७५ ग्राम चना, मू गफली, गुड और जौ की धानी) बाटे। उसने कुल मिला कर एक लाख बीस हजार रुपये की लागत से एक लाख ६८ हजार २५५ खाद्य-पैकेटो का वितरण करने के साथ निर्माण-कार्य मे लगे अकाल-पीडित आदिवासी मजदूरो के पैरो को जलती धरती की आग से बचाने के लिए ३ हजार चप्पलें भी बाटी। इस सूखाजन्य अकाल के सिर्फ ८ महीने बाद अगस्त, १९७३ मे उदयपुर पर अतिवृष्टि का प्रकोप हुआ। ३७ दिन तक सूर्य के दर्शन ही नही हुए। गाव पानी मे डूब गये। अब समिति को अतिवृष्टि से पीडित लोगो के बीच राहत-कार्य शुरू करना पडा। वस्त्र और खाद्य-पैकेट बाटने के साथ समिति को छप्पर छाने का काम भी अपने हाथो मे लेना पडा। कलकत्ता से भागीरथजी ने आदिवासियो मे बाटने के लिए ५००० वस्त्र भिजवाए।

१९७३ के राजस्थान के अकाल मे भागीरथजी का मन राहत-कार्य को लेकर इतना 'आक्रात' रहता था कि वह अपने मित्रो, पुत्र-पुत्रियो तथा अन्य सम्बन्धियो को जो पत्र लिखते उनमे उन्हे कोचते रहते कि वे अकाल मे राहत के लिए कुछ न कुछ करें। इस 'कोच' का नतीजा भी निकला करता। मित्र रुपयो का जोगाड करने में और परिवार के लोग भी कुछ न कुछ करने को प्रवृत्त होते। समिति के विवरण से पता चलता है कि भागीरथजी के पुत्र अश्विनी कुमार ने बम्बई से उदयपुर के आदि-

वासियो मे बाटने के लिए ३५००० क्लोरोक्विन फास्फेट की गोलिया और आदित्य मिल से १५० विटामिन के टिन भिजवाये। पुत्रवधू भारती ने राजस्थानी महिला मण्डल, बम्बई से ५००० कपडो की गाठे तथा १५० कम्बल भिजवाये।

१९७२-७३ के अकाल मे राहत-कार्य लगभग डेढ वर्ष चला। इसमे करीब १६ लाख रु० खर्च हुए। ७७-७८ वर्ष की उम्र मे भागीरथजी राजस्थान के रेगिस्तान मे वैशाख और जेठ महीनो की भयकर गरमी और लू मे दिन-रात उवड-खाबड सडको पर जीप मे यात्रा करते। कभी-कभी तो एक दिन मे ३०० मील। भादो के महीने मे झुझनू मे राणीसती का मेला लगता है। इधर मारवाडी सेठ एक तरफ जितनी तेजी से आधुनिक हो रहे है, दूसरी तरफ उतनी ही तेजी से वहमी और अन्धविश्वासी भी हो रहे है सो राजस्थान मे नित नये देवी-देवताओ का भी जन्म हो रहा है। बहरहाल, भागीरथजी को किसी ने कह दिया कि राणीसती के मेले पर देश भर से धनी मारवाडी सेठ इकट्ठा होते हैं और यदि आप वहा जाय तो राहत-कार्य के लिए खासे रुपये मिल सकते है। इस जानकारी से भागीरथजी बहुत उत्साहित हुए और तुरन्त झूझनू पहुचे। वहा बारिश मे भीग गये। काम की धुन मे उन्होने यह नही सोचा कि उनकी उम्र ७८ वर्ष हो गयी है और उनका स्वास्थ्य जर्जर हो चुका है। उन्हे ठण्ड लग गयी जिसने निमोनिया का रूप ले लिया। वह बेहोश हो गये और उनकी हालत चिन्ताजनक हो गयी। काफी लम्बे इलाज के बाद वह स्वस्थ हुए और परिवार के लोगो के मना करने के बावजूद फिर राजस्थान पहुच गये।

१९७५-७६ मे राजस्थान के बीकानेर अचल मे अकाल पडा। इस अकाल मे भी भागीरथजी ने जन-कल्याण समिति के माध्यम से राहत-कार्य किया। अकाल के वक्त शुरू किये गये निर्माण कार्यों मे राजस्थान नहर के इलाके मे तीस-पैतीस हजार मजदूर काम कर रहे थे लेकिन उनके लिए अनाज तथा अन्य नित्योपयोगी वस्तुओ की दुकाने नही थी। भागीरथजी ने इस इलाके की यात्रा करने के बाद वहा "ना नफा ना नुकसान' के आधार पर दुकाने खुलवायी। दूकानें चालू करने के लिए पूजी नही थी तो उन्होने तुरत ऋण प्राप्त कर पूजी की व्यवस्था की। दुकानो ने ७२५००० रु० का अनाज और अन्य नित्यपयोगी वस्तुए बेची और उन्हे सिर्फ २८००० रु० का घाटा हुआ। इन दुकानो के खुल जाने पर स्थानीय मुनाफाखोर दुकानदारो को मजबूर हो कर अपनी कीमते घटानी पडी जिससे गरीब जनता को बहुत राहत मिली।

राजस्थान जल-बोर्ड

राजस्थान मे भागीरथजी ने जो काम किये उनमे 'राजस्थान जल-बोर्ड' का काम विशेष महत्व का है। उनके इस काम को निश्चय ही बहुत दिनो तक याद किया जायेगा। पीने के पानी का सकट जिस तरह राजस्थान मे है उस तरह देश के अन्य किसी राज्य मे नही। भागीरथजी इस सकट को स्थायी रूप से दूर करने की बात हमेशा सोचते रहते थे। उन्होने राजस्थान के मुख्यमन्त्री से इस सम्बन्ध मे बातचीत की। मुख्यमन्त्री उनको सहयोग तो देना चाहते थे पर किस तरह दें, यह समझ नही पा रहे थे—कुए खोदने का काम कैसे हो, किसके द्वारा हो, किसको यश मिले—ये सब प्रश्न

उनके सामने थे। एक वर्ष की माथापच्ची के बाद राजस्थान सरकार ने 'राजस्थान जल-बोर्ड' नाम से एक स्वायत्त बोर्ड की स्थापना की मजूरी दी। १९५५ मे यह बोर्ड विधिवत् गठित हुआ। मुख्यमन्त्री इसके अध्यक्ष, भागीरथजी मन्त्री और बदरीनारायणजी सोढाणी सयुक्त मन्त्री बनाये गये।

जल-बोर्ड के मन्त्री के रूप मे भागीरथजी ने राजस्थान के गांवो मे घूम कर यह देखा कि किस प्रकार काम किया जाय ताकि ज्यादा से ज्यादा लोगो को लाभ पहुचे। कुए खोदने का काम शुरू करने के पहले हजारो गावो मे सर्वेक्षण किया गया। जिलो की हर तहसील मे जल-बोर्ड की कमेटी बनायी गयी। बोर्ड की ओर से प्रत्येक जिला कमेटी को एक जीप दी गयी। सर्वेक्षण कर यह पता लगाया गया कि—(१) इलाको मे कितनी आबादी के पीछे पीने के पानी की व्यवस्था है (२) भू-वैज्ञानिक और भौगोलिक स्थिति के आधार पर कुआ, बोरिंग और बरसात का पानी इकट्ठा करने के लिए कुण्ड, इन तीनो मे किसका निर्माण अधिक फलदायक तथा कम खर्च मे हो सकेगा।

भागीरथजी ने अपनी बनिया-बुद्धि से यह हिसाब भी लगाया कि एक नया कुआ बनाने मे जितना खर्च, परिश्रम और समय लगेगा, उतने मे तीन से पाच पुराने व बेकार पडे हुए कुओ को मरम्मत कर उपयोगी बनाया जा सकता है। दूसरे, इन पुराने और बेकार कुओ की मरम्मत करने पर यह तो पता रहेगा ही पानी मिलेगा जब कि नये कुए खोदने के वक्त इस बात की कोई गारण्टी नही रहेगी कि पानी मिलेगा ही। इसलिए मरम्मत करने योग्य कुओ की मरम्मत करवायी गयी और जहा दूर-दूर तक पानी की कोई व्यवस्था नही थी, वहा नये कुए, तालाब, बोरिंग और बरसात का पानी इकट्ठा करने के लिए कुण्ड (इन्हे टाके कहा जाता है और इनमे बरसात का पानी पीने के लिए ६ महीने तक सुरक्षित रखा जा सकता है) बनाये गये।

कुए खोदने के काम मे स्थानीय लोगो की अधिक से अधिक हिस्सेदारी रहे, इसके लिए यह तजवीज की गयी कि कुआ खोदने का एक तिहाई खर्च कुए के स्थान से जुटाया जाय और दो-तिहाई खर्च जल-बोर्ड दे। कुए के स्थान पर एक तिहाई खर्च न जुटने पर भागीरथजी उसे चन्दे से प्राप्त रकम द्वारा पूरा करते। रामेश्वरजी टाटिया, नन्दलालजी भुवालका, गोवरधनदासजी बिन्नानी और मातादीनजी खेतान की मदद से इस काम के लिए उन्होने एक कोष भी बनाया।

जल-बोर्ड के काम से ३३००० गाव लाभान्वित हुए। एक वर्ष के भीतर (१९५५-५६) १०५०० नये कुए बनाये गये और २५०० पुराने कुओ व तालाबो की मरम्मत की गयी। कुण्ड (टाके) भी हजारो की सख्या मे बनाये गये।

इस वृहत् कार्य मे सीमेंट के साढे पाच लाख बोरे लगे और कुल खर्च लगभग दो करोड रु० आया। सवा करोड सरकार ने दिये, ५२ लाख स्थानीय लोगो ने श्रम-दान तथा चूना व ईंट आदि के रूप मे दिये और बाकी के रुपये प्रवासी राजस्थानियो मे चन्दे द्वारा एकत्र किये किये। ठीक दामो पर कुए बनाने का सामान जुटाने और खर्च का पूरा हिसाब-किताब रखने का पूरा काम स्वय भागीरथजी ने किया।

बोर्ड का ज्यादा काम बीकानेर, जोधपुर, कोटा, बून्दी और सीकर के ग्रामीण क्षेत्रो मे हुआ। जैसलमेर मे भी बोर्ड ने काम करने की बडी चेष्टा की लेकिन पानी के

बहुत नीचे होने के कारण वह वहा ज्यादा काम नही कर पाया। बीकानेर के एक गाव मे ५०० फुट नीचे पानी निकला तो कुए के स्थान पर एक महीना मेला लगा रहा। भाग्यवश वहा पानी भी खूब मीठा निकला।

मातादीनजी खेतान ने, जो जल-बोर्ड के काम मे भागीरथजी के साथ रहे थे, कहा : "भागीरथजी ने कितना बडा काम किया और उसके कितने दूरगामी नतीजे निकले, इसकी सहज ही कल्पना नही की जा सकती। १९५५-५६ मे जल-बोर्ड द्वारा कुए खोदने के साथ राजस्थान के झुझनू और सीकर जिलो मे तो 'कुआ क्रान्ति' ही हो गयी। लोग यह जान गये कि वे मिल कर थोडा प्रयत्न करने पर अपने गाव मे कुए बना सकते है। १९६८-७२ मे जल-बोर्ड के सयुक्त मत्री बदरीनारायणजी सोढाणी ने भागीरथजी की प्रेरणा से कुओ का क्षेत्र पीने के पानी से बढा कर कृषि तक ले जाने का काम किया। विदेशी सस्था 'कासा' की मदद से इस दौरान १००० नल-कूप बनाये गये। १९५५ मे जल-बोर्ड द्वारा कुए बनाना प्रारम्भ करने के बाद से आज तक यानी लगभग २५ वर्ष के भीतर सीकर और झुझनू जिलो मे ५३ हजार कुए और नल-कूप बने है जिनमे २९ हजार को तो बिजली भी मिल गयी है।"

जल-बोर्ड के काम के बारे मे लोगो का कहना है कि उसने राजस्थान मे पीने के पानी के सकट को दूर करने की जैसी ईमानदार और जोरदार कोशिश की, वैसी कोशिश पहले कभी नही हुई थी। इस मायने मे भागीरथजी ने अपने को राजस्थान का सच्चा भगीरथ प्रमाणित किया।

श्री कल्याण आरोग्य सदन

भागीरथजी अपने अतिम दिनो मे श्री कल्याण आरोग्य सदन को ले कर ही सबसे ज्यादा चिंतित रहते थे कि उनके चले जाने के बाद कही सस्था का काम ढीला न पड जाय। अपने जीवन मे उन्हे पहली बार यह एहसास हुआ कि जिस तरह उन्होने सस्था के लिए साधन जुटाये, शायद उस तरह आगे कोई नही जुटायेगा। इसलिए वह इस बात के लिए प्रयत्नशील थे कि उनके जीवन-काल मे ही सस्था के भविष्य मे सुचारू रूप से चलते रहने की कोई स्थायी व्यवस्था हो जाय। मृत्यु के बाद भी कम से कम सदन के माध्यम से वह एक सेवा-कार्य करते रहे, यह उनके मन की वासना जरूर थी।

श्री कल्याण आरोग्य सदन की कल्पना आज से ३१-३२ साल पहले की है। १९४९-५० मे बदरीनारायणजी सोढाणी शेखावटी मे क्षय-रोगियो के लिए एक अस्पताल खोलने की योजना लेकर कलकत्ता आये थे। उनके साथ शेखावाटी मे प्रजामडल-आदोलन के नेता लादूरामजी जोशी भी थे। इन दोनो ने भागीरथजी से बातचीत की। भागीरथजी को योजना पसद आयी। उन्होने तुरत लोगो से सम्पर्क किया और पाच-सात लाख रु० के आश्वासन भी प्राप्त कर लिये। लेकिन योजना आगे नही बढ पायी तो सोढाणीजी ने सीकर मे सरजिकल कैम्प लगाने शुरू कर दिये। इन कैम्पो मे बहुत रोगी आते थे, जिनमे क्षय-रोगियो की सख्या काफी होती थी। यह स्थिति क्षय-रोगियो का अस्पताल खोलने की योजना को उकसाती रहती थी। जल-बोर्ड ने स्व० जमनालालजी

बजाज के जन्म स्थान सांवली गांव में एक कुआ बनाया था। कुएं के पास ही सीकर के राव राजा कल्याणसिंह का ग्रीष्म-महल और बगीचा था। कल्याणसिंहजी ने अस्पताल खोलने के लिए अपना ग्रीष्म-महल और बगीचा दे दिया। इस प्रकार सन् १९६० मे इस बगीचे मे श्री कल्याण आरोग्य मदन की नींव रखी गयी और १५ नवम्बर, १९६४ को प्रधानमत्री श्री लालबहादुर शास्त्री ने इसका उद्घाटन किया। उस वक्त अस्पताल मे २० शय्याएं थी। १९६८ मे कुछ अमरीकी आरोग्य सदन को देखने आये और उसके काम से अत्यन्त प्रभावित हुए। इन अमरीकियों के प्रयत्न से 'कासा' ने सदन के आस-पास के इलाके मे कृषि-विकास के लिए 'फूड फार वर्क (श्रम के बदले अन्न)' योजना के अन्तर्गत गेहू और सोयाबीन तेल के रूप मे किस्तों में डेढ़ करोड़ रुपये की सहायता देना प्रारम्भ किया। इसके बाद इग्लैण्ड की एक संस्था ने भी १६ लाख रु० की सहायता दी

विदेशी मदद से अस्पताल के अहाते मे उबड़-खाबड़ जमीन को समतल करके बाग-बगीचे, सड़क, सिंचाई के लिए कुएं और कुओं पर पम्प आदि बनाये गये। धीरे-धीरे अस्पताल भी बढता गया और विदेशी सहायता से चारो ओर का निर्माण-कार्य भी। साथ ही जन-कल्याण के अन्य कार्य भी होने लगे। लेकिन १९७० के आस-पास आरोग्य सदन मे एक विषम समस्या पैदा हो गयी। कार्यकर्ताओं के बीच मतभेद लगातार बढने लगा, यहा तक बदरीनारायणजी सोढाणी सदन के काम से अलग होना चाहने लगे। इसके अलावा संस्था पर कर्ज भी बहुत चढ़ गया था। ऐसा लगने लगा कि अब यह अस्पताल आगे नही चल पायेगा। ऐसे में भागीरथजी से अनुरोध किया गया कि वह सस्था को संभालें। यह अक्सर देखा गया है कि जब कोई संस्था सकटापन्न हुई तो उसे बचाने के लिए लोग भागीरथजी की शरण में गये। सीतारामजी की डायरियो से पता चलता है कि कलकत्ता के मारवाड़ी सामाजिक-राजनीतिक कार्यकर्ताओ की मित्र-मण्डली मे किसी काम को लेकर विवाद या परेशानी पैदा होने पर भागीरथजी को बीच मे डाल दिया जाता था और यह सोचा जाता था कि उनके रहने मात्र से ही विवाद हल हो जायेंगे। इस विवाद में भागीरथजी ने इस शर्त पर काम सभालना स्वीकार किया कि सोढाणीजी कल्याण आरोग्य सदन के मत्री बने रहेंगे।

दिसम्बर, १९७१ में जब भागीरथजी कल्याण आरोग्य सदन के अध्यक्ष बने तब अस्पताल मे १०० रोगियो को रखने की व्यवस्था थी और ऊपर से उस पर ढेर सारा कर्ज था। आहिस्ते-आहिस्ते उन्होंने अस्पताल को इतना बढ़ाया कि उसमें आज लगभग चार सौ रोगी रखने की व्यवस्था है। एक-एक चारपाई (रोगी की व्यवस्था) के खर्च का उन्होने इन्तजाम किया। वह साल में तीन बार राजस्थान जाते और सीकर में रह कर अस्पताल का काम-काज देखते। ३-४ वर्ष के भीतर ही सदन का काम बहुत बढ़ गया और सालाना बजट २३ लाख रु० तक पहुंच गया। भागीरथजी ने इतने बड़े बजट की व्यवस्था बड़े परिश्रम और धैर्य के साथ की। १९७८ में रुपया इकट्ठा करने और डाक्टरो की व्यवस्था करने के लिए वह कुछ दिन बम्बई जाकर भी रहे। धनी-मानी लोगों से सम्पर्क कर उन्होंने बम्बई मे दस लाख रु० इकट्ठा किया। मातादीनजी खेतान ने बताया कि उन्होंने भागीरथजी को एक-एक चारपाई का खर्च जुटाने में अत्यधिक मेहनत करते हुए

देख कर एक बार उनसे कहा कि आप इतनी मेहनत करते है, यह अच्छा नही है तो वह बोले "मेर तो बडो आलम हो गयो, 'मेहनत करू हू कि नही करू' हू' पतो ही कोनी चाल।"

कलकत्ता मे रहते हुए भी भागीरथजी आरोग्य सदन के दैनन्दिन के कामकाज से नियमित पत्र-व्यवहार द्वारा बराबर सम्पर्क रखते। अस्पताल मे भरती के लिए रोगी भेजते, अस्पताल के कर्मचारियो की समस्याओ को हल करते और जरूरी निर्देश भेजते। उनकी देख-रेख मे श्री कल्याण आरोग्य सदन का कर्ज ही नही चुका, वह देश के क्षय रोग के सबसे अच्छे अस्पतालो मे भी गिना जाने लगा।

भागीरथजी ने श्री कल्याण आरोग्य सदन को एक कम्युनिटी सेंटर (समाज-कल्याण-केन्द्र) का रूप भी देने की कोशिश की। हमारे देश मे श्री क०आ० सदन को छोड कर कोई भी अस्पताल ऐसा नही है जिसमे एक ही साथ गोशाला, धर्मशाला, पुस्तकालय-वाचनालय, वाटर वर्क्स, प्राथमिक विद्यालय, मदिर, तरण-ताल, नहर और बगीचा हो। सदन की इन सुविधाओ से सिर्फ रोगी ही नही अन्य लोग भी फायदा उठाते है।

सदन की १९७८-७९ की परिचय-पुस्तिका मे भागीरथजी ने लिखा था· "अस्पताल मे रोगियो की सेवा के अलावा गो-संवर्धन का भी काम होता है। गायो को डाक्टर की सलाह से सतुलित आहार दिया जाता है। उनके पीने का पानी शुद्ध और स्वच्छ एव रहने का स्थान स्वच्छ, हवादार और प्रकाशवाला है। हमारे पास गायें अधिकतर राढी नस्ल की हैं। उनकी बछडिया किसानो के यहा ३५-३६ महीनो (की उम्र) मे गाभिन होती थी। हमारे यहा अनुकूल आहार और अच्छी सेवा मिलने से यह अवधि २५ महीने की रह गयी है। मुझे आशा है कि अगले तीन वर्षो मे हमारे यहा जो बाछिया है, वे १८ महीने की उम्र मे गाभिन होने लग जायेगी।"

सदन मे गो-सवर्धन के साथ खेती और बागवानी भी होती है। परिचय-पुस्तिका मे भागीरथजी आगे लिखते हैं "यहा खेती और बागवानी भी सुधरे तरीको से की जाती है। परिणामस्वरूप हमारी आवश्यकता के अन्न का एक अच्छा हिस्सा हम यहा उपजा लेते है। मौसम के दिनो मे फल यहा पर अच्छी तादाद मे और अच्छी जाति के होते है। पाठको को यह जान कर ताज्जुब होगा कि फलो मे अनार, अजीर, अगूर, आम, अमरूद, शहतूत आदि काफी चीजे होती है। अमरूद तो मौसम के दिनो मे ढाई-तीन मन रोज होते है। यहा के बगीचे के फूलो की गु थी हुई मालाए' बीकानेर तक के बाजार मे बिकने जाती हैं। मोगरा फूलने के दिनो मे यहा पर सदा दो मन फूल मोगरे के हर दिन उतरते हैं।"

सदन मे शैयाए तीन प्रकार की हैं (१) जिनका सरकार खर्च देती है (२) जिनका खर्च दाताओ से प्राप्त रकम पर चलता है (३) जिनका रोगी स्वय खर्च वहन करते हैं। न. १ और न. २ प्रकार की शैयाए नि. शुल्क है। राजस्थान सरकार के खर्च पर चलनेवाली शैयाए ५० और दाताओ के खर्च पर चलनेवाली २५० हैं।

सदन मे स्व० रामेश्वरजी टाटिया की स्मृति मे उनके पुत्र नन्दलालजी टाटिया के १० लाख रु० के अनुदान से आयुर्विज्ञान अनुसधान केन्द्र खोला गया है। इसके अलावा आउटडोर विभाग के लिए एक अलग भवन भी राधाकृष्णजी कानोडिया के तीन

लाख रु० के अनुदान से निर्मित किया गया है। सदन की ओर से दो होमियोपैथिक चिकित्सालय भी चल रहे है, एक सीकर मे और दूसरा कलकत्ता मे।

सदन मे क्षय की आधुनिकतम चिकित्सा की व्यवस्था है। सदन को छोडकर राजस्थान के किसी भी अन्य टी० वी० अस्पताल मे चेस्ट-सर्जरी की व्यवस्था नही है। क्षय की शल्य चिकित्सा के अलावा सदन मे अन्य रोगो की भी शल्य-चिकित्सा की जाती है। सामान्यत. क्षय के रोगी सदन मे चार महीना इलाज होने पर रोग-मुक्त हो जाते हैं। लेकिन क्षय के रोग का असली इलाज तो गरीबी को दूर करना है। सदन की १९७८-७९ की परिचय-पुस्तिका मे एक जगह भागीरथजी ने लिखा था · "टी० बी० के रोगियो की असली सेवा तो समाज मे फैली हुई गरीबी और बेरोजगारी को मिटाना हे लेकिन यह काम अपने वश का नही है। चिकित्सा और उपचार द्वारा जितनी सेवा बन सकती है, उतनी करने का प्रयत्न रहता है।"

यह कहा जा सकता है कि श्री कल्याण आरोग्य सदन देश के सर्वश्रेष्ठ सार्वजनिक क्षय चिकित्सालयो मे एक है। बाहर से जो भी लोग सदन को देखने आये, वे इतना आधुनिक और सर्वसुविधा-सम्पन्न अस्पताल देख कर चमत्कृत हुए। लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने १९७० मे सदन का निरीक्षण किया। इस वक्त उसकी हालत बहुत अच्छी नही थी और आज जैसी बहुत सी सुविधाए भी न थी। लेकिन जे० पी० उसके निर्माण के पीछे की भावना से बहुत प्रसन्न हुए। उन्होने सदन की अतिथि-पुस्तिका मे लिखा . "इस रेगिस्तानी इलाके मे ऐसा हरा-भरा और सुन्दर उद्यान और क्यारिया देख कर आश्चर्य हुआ। और इससे कम आश्चर्य इस बात पर नही हुआ कि सैकडो (अर्थात बहुत कम रुपयो से) रुपये से प्रारम्भ किया हुआ यह आरोग्य कल्याण (श्री कल्याण आरोग्य सदन) अब इतना बडा और साधन-सम्पन्न टी० बी० चिकित्सालय बन गया है। धन्य हैं इसके निर्माता श्री बदरीनारायणजी सोडाणी। सोढाणीजी ने सिद्ध कर दिया कि तप और त्याग से क्या नही सम्भव हो सकता।"

भूतपूर्व प्रधानमन्त्री मोरारजी देसाई ने सदन को देख कर लिखा : "यह सेनेटोरियम टी० बी० के मरीजो के लिए आशीर्वाद बन गया है। जिस उत्साह से कार्यकर्ता काम कर रहे है, उससे विश्वास होता है कि इस सस्था के लिए जितना धन चाहिए उतना मिल जायेगा और इसका पूरा विकास होता रहेगा।" हाल मे पश्चिम बगाल के मुख्यमन्त्री श्री ज्योति बसु ने भी सदन को देख कर लिखा "यहा आ कर ऐसा लगा कि मरुस्थल मुस्कुरा रहा है। सेनोटोरियम की व्यवस्था बहुत अच्छी है। हमने यहा पाया कि बहुत से स्थानो के मरीज आ कर अपना इलाज कराते हैं।"

जन-कल्याण समिति

राजस्थान मे राहत-कार्य करते हुए भागीरथजी को उसकी अपर्याप्तता का एहसास हमेशा रहता था। राजस्थान के १९५१-५२ के अकाल के वक्त 'नया समाज' मे उन्होने एक लेख (फरवरी, १९५२) मे लिखा था "राहत-कार्य करनेवाला केवल अपने मन मे सतोष कर लेता है, वरना आज की स्थिति मे जब तक कोई आमूल परिवर्तन नही होता तब तक छिटपुट सेवा के कार्यो से बहुत बडी सहायता क्या मिल सकती है?

दरअसल प्रयत्न तो यह होना चाहिए कि न अकाल पडे और न महामारी फैले, सारे लोगो को धधा-रोजगार मिल सके और परिश्रमपूर्वक हर व्यक्ति अपनी रोटी का अच्छी तरह उपार्जन कर सके। न किसी को मागने की जरूरत रहे, न देने की— सर्वे लोका सुखिनो भवन्तु सर्वे सन्तुष्टिमया।"

इसके बीस वर्ष बाद राजस्थान के १९७२-७३ के अकाल के वक्त उन्होने (चौरगी वार्ता ५ फरवरी, १९७३) लिखा 'राहत-कार्य अकाल का स्थायी उपचार नही। नारद ने युधिष्ठिर से पूछा था "हे युधिष्ठिर, तुम्हारे राज्य मे खेती वर्षा पर तो निर्भर नही ?' युधिष्ठिर ने जवाब दिया 'मेरे राज्य मे खेती वर्षा पर निर्भर नही। हमारे देश मे युधिष्ठिर के राज्य जैसी स्थिति आये तब अकाल नही पडेंगे लेकिन .. .. राजस्थान मे आज राहत की तात्कालिक आवश्यकता के साथ-साथ इस बात की भी जरूरत है कि अधिक से अधिक सिचाई के कुएं बनाये जाय। बिना विद्युत सिचाई के बैलो या ऊटो से यह काम पार पडनेवाला नही है।"

अकाल मे राहत-कार्य करते हुए भागीरथजी के मन मे विकास के ऐसे कार्य करने की इच्छा जोर पकडती रहती थी, जिनके द्वारा अकाल का "स्थायी उपचार' हो सके। इसके लिए वह एक ऐसे स्थायी सगठन की आवश्यकता महसूस कर रहे थे, जो सामान्य अवस्था मे कृषि-विकास और रोजगार-निर्माण का काम करता रहे और अकाल पडने पर तत्काल राहत के काम मे जुट जाय। श्री कल्याण आरोग्य सदन के नाम से टी० बी० अस्पताल १९६४ से ही चल रहा था। बाद के वर्षो मे सदन ने कृषि-विकास का कार्य भी हाथ मे ले लिया और अन्य बहुमुखी निर्माण-कार्य भी प्रारम्भ किये। १९७१ मे भागीरथजी द्वारा सदन का काम सम्भालने के बाद अस्पताल बहुत तेजी से बढने लगा। अस्पताल का काम, कृषि विकास तथा अन्य बहुमुखी निर्माण कार्य एक साथ एक ही सस्था के तहत करना कठिन मालूम होने लगा तो एक ऐसी अलग सस्था बनाने की बात सोची जाने लगी जो कृषि-विकास के साथ रोजगार-निर्माण के अन्य रचनात्मक काम भी करे। इस तरह १९७२ मे पीपुल्स वेलफेयर सोसाइटी या जन-कल्याण समिति की स्थापना हुई। समिति के भागीरथजी अध्यक्ष और बदरीनायणजी सोढाणी मत्री बनाये गये। समिति का मुख्य कार्यालय उदयपुर रोड, सीकर मे कायम किया गया। इस समिति के माध्यम से भागीरथजी ने बडे पैमाने पर अकाल के स्थायी उपचार करनेवाले काम करने का सपना देखा।

जन-कल्याण समिति की स्थापना करने मे भागीरथजी के मन मे शायद दो और बातें भी काम कर रही थी। जल-बोर्ड का काम करने के बाद उनको कही यह लगने लगा था कि अगर स्थानीय रूप से कोई कार्य (कूप-निर्माण, स्कूल-निर्माण, वृद्धो और असहाय लोगो के लिए पेंशन-व्यवस्था, खादी विकास आदि) शुरू किया जाय और उसके लिए पहले गैरसरकारी प्रयत्नो से कुछ पैसो का जोगाड कर लिया जाय तो सरकार को उस काम मे मदद करने के लिए बाध्य किया जा सकता है। दूसरे, विदेशी सस्थाओ से भी मदद प्राप्त की जा सकती है। लेकिन इसके लिए यह भी आवश्यक होगा कि स्थानीय लोग पहले उद्यम करें। अगर राजस्थान भर मे जन-कल्याण समिति की शाखाएं खुल जाय या स्थानीय सगठन उसकी एजेन्सियो के रूप मे काम करें तो

राजस्थान मे बहुत बडा काम किया जा सकता है। वह सोचते थे कि सरकारी और विदेशी सहायता प्राप्त करने के लिए पहले रुपयो का जो जोगाड आवश्यक होगा, वह जन-कल्याण समिति या उसकी एजेन्सिया कर पायेगी। शायद यह भी सोचते थे कि जिस तरह उन्होने पिछले चालीस-पचास वर्षों से राजस्थान मे राहत-कार्यों और जल-बोर्ड आदि के काम के लिए रुपयो का जोगाड किया था उसी तरह आगे भी करते रहेगे, कर लेगे। कहने का मतलब यह है कि भागीरथजी जैसे व्यक्तिगत महत्वाकाक्षा-शून्य व्यक्ति मे शायद जन-कल्याण समिति के माध्यम से बहुत बडे पैमाने पर राहत, विकास तथा कल्याण कार्य करने की बहुत बडी महत्वाकाक्षा जगी थी।

समिति की स्थापना के कुछ ही महीनो बाद राजस्थान मे भयकर अकाल पडा जिसके कारण उसे तत्काल राहत के कार्य मे जुट जाना पडा। इस अकाल मे समिति ने बहुत बडे पैमाने पर राहत-कार्य किया। दो वर्ष बाद १९७५-७६ मे बीकानेर मे अकाल पडा तो समिति ने वहा भी राहत-कार्य किया। समिति का मुख्य कार्य तो अकाल का 'स्थायी उपचार' अर्थात् कृषि-विकास और रोजगार-निर्माण करना है। कृषि-विकास और रोजगार-निर्माण के कार्यों के लिए भागीरथजी ने कई प्रकार के रचनात्मक कार्यक्रम बनाये।

जन-कल्याण समिति के काम मे यदि हम श्री कल्याण आरोग्य सदन द्वारा १६६६ मे शुरू किये गये कृषि-विकास के कार्य को भी जोड लें तो कहना होगा कि समिति ने १९७८ तक १२ वर्ष की अवधि मे राजस्थान के लगभग ८०० गावो मे १६०० से अधिक सिंचाई के कुए और ९०० पीने के पानी के कुए बनाये। इनके अलावा उसने पीने के पानी के ७५ सार्वजनिक टैंक बनाने के साथ ३०० पुराने और अधूरे कुओ को भी गहरा करवाया और उनकी मरम्मत करवायी। समिति के काम का राज्य सरकार पर यह दबाव पडा कि एक स्वयसेवी सस्था जब इतना काम कर रही है और वह कुछ नही कर रही तो उसे निकम्मी बतानेवालो की सख्या और भी बढ जायगी, सो उसने भी कुओ के निर्माण मे सहायता देनी शुरू की। इसका नतीजा यह हुआ कि सरकार की मदद से राजस्थान मे २५००० कुए बनाये गये।

समिति ने एक समग्र ग्राम-विकास योजना बनायी। इस योजना के तहत उसने किसानो को ७-८ किस्तो मे आसानी से चुकाये जानेवाले ब्याज-मुक्त ऋण दिलवाने का कार्यक्रम चलाया। इस कार्यक्रम मे सिंचाई के लिए कुए बनाने तथा पम्पिग सेट लगाने के वास्ते गरीब किसानो को कुल खर्च का एक तिहाई बैको से उधार दिलवाने का कार्य किया गया। बाकी खर्च के लिए समिति ने सामान तथा अनुदान की व्यवस्था की। समिति ने टाटा और किर्लोस्कर जैसे फर्मों के पम्पिग सेट लगवाये तो इन फर्मों से उनकी सरविसिग और मरम्मत का प्रबन्ध भी करवाया।

समग्र ग्राम विकास योजना के तहत समिति ने तरह तरह के कार्यक्रम चालू किये—कृत्रिम और प्राकृतिक खाद की व्यवस्था की, कम्पोस्ट-पिट, गोबर-गैस प्लाट बनाये, अच्छे किस्म के बीज सस्ती कीमतो पर उपलब्ध करवाये, पशु-नस्ल सुधार के लिए अच्छी नस्ल के साडो की व्यवस्था की तथा कुओ पर बाल बियरिंगवाले पहिये लगवाये ताकि पानी निकालने में बैलो और आदमियो को कम श्रम करना पडे।

हमारे देश का पुरुष तो स्त्री के प्रति इतना सम्वेदनहीन है कि उसे उसकी तकलीफो का खयाल भी नही आता। पाखाने की व्यवस्था न होने और चूल्हे के धुए मे स्त्रियो को कितनी तकलीफ होती है, यह दिल्ली की शानदार इमारतो मे बैठ कर योजनाए बनानेवाले लोग कभी नही सोचते। भागीरथजी को ग्राम विकास की योजना बनाते वक्त अपने सम्वेदनशील स्वभाव के कारण स्त्रियो की तकलीफो का हमेशा ध्यान आता रहता था। विकास-योजना के तहत उन्होने गावो मे ट्रेंच पाइपवाले शौचालय बनाये, घरो मे निर्धूम चूल्हे लगवाये और परिवार-नियोजन के कार्यक्रम शुरु किये। गावो मे स्त्रियो को घर बैठे रोजगार प्राप्त हो, इसके लिए उन्होने समिति की ओर से सिलाई की मशीनें भी बटवायी।

शहरो मे तो आधुनिकीकरण के चलते कुछ सार्वजनिक-सेवाए शुरु हुई है पर गावो मे ऐसी सेवाओ का एकदम अभाव है। गावो मे किसी प्रकार का उपभोक्ता-आन्दोलन भी नही है जिससे गावो की छोटी-छोटी दुकानो मे साबुन, तेल आदि जैसी चीजें यदि मिलती है तो शहरो की अपेक्षा ज्यादा महगी मिलती है। इसलिए समिति ने गावो मे—"ना नफा, ना नुकसान" आधार पर उचित मूल्य की दुकानें खुलवायी। इसके साथ ही समिति ने पशुओ के पीने के लिए गावो मे स्वच्छ पानी के हौज और चारे की व्यवस्था की और प्यासे लोगो के लिए गरमियो के दिनो मे प्याऊ लगवाये।

बेरोजगार व्यक्तियो को रोजगार उपलब्ध करने के लिए समिति ने कताई-बुनाई केन्द्र खोले। इनमें अम्बर चरखे और करघे बाटे गये। तैयार खादी की बिक्री की भी व्यवस्था की गयी। एक कताई-बुनाई केन्द्र मे करीब २५० लोगो को रोजगार उपलब्ध हो जाता है। पोकरण मे भागीरथजी ने ५००० रु० देकर ऊनी खादी का एक उत्पादन केन्द्र खुलवाया। इस केन्द्र मे आज १० लाख रुपये प्रति वर्ष की ऊनी खादी बन रही है और साढे चार सौ लोगो को पूर्ण और आशिक रोजगार प्राप्त हो रहा है।

समिति ने जन-कल्याण के और जो काम किये है, उनमे (१) छात्रावासो मे रहनेवाले हरिजन और आदिवासी छात्रो के लिए अतिरिक्त पोषक आहार की व्यवस्था करने (२) गावो मे स्कूलो के टूटे मकानो की मरम्मत करने (३) एकदम गरीब व्यक्तियो को कपडा और अनाज देने (४) भग्न मन्दिरो का जीर्णोद्धार करने (५) सर्जिकल कैम्प लगाने और (६) जाडो मे रजाइया वितरित करने आदि के काम विशेष उल्लेखयोग्य हैं।

समिति ने अपाहिज और निराश्रित वृद्ध लोगो को आजीवन पेंशन दिलवाने का बहुत बडा काम किया। १९७४ मे भागीरथजी ने इस काम को बडी मेहनत से किया। राजस्थान से अपने परिवार के लोगो और मित्रो को उन दिनो भागीरथजी पत्र लिखते तो उनमें इस काम की हमेशा चर्चा रहती थी। २१ फरवरी, १९७४ की डायरी मे सीतारामजी लिखते है —"भाई भागीरथजी का पत्र आया है। आर्त्त की सेवा और सहायता का काम उनको बहुत रुचता है और इस काम को वह जितना अच्छा और अधिक कर सकते हैं वैसा कोई दूसरा आदमी कर सके उसको मैं नही जानता। मेरी निगाह मे आर्त्त और अभावग्रस्त लोगो की सेवा-सहायता का काम भागीरथजी तन-मन-धन से अद्भुत लगन के साथ करते हैं। राजस्थान मे तीन हजार ऐसे आदमियो को जो वृद्ध, अपाहिज और जिनको देखने-सम्भालनेवाला कोई नही है, चालीस रुपये महीना

सरकार पेंशन देती है। भागीरथजी प्रयत्न कर रहे हैं कि और तीन हजार आदमियो को, उनकी फोटो, ठिकाना और हालत आदि लिख कर सरकार से सहायता दिलवाए। वह सरकार द्वारा सहायता कराने की कोशिश करके और लाखो रुपये चन्दा आदि करके इस काम को आगे वढा रहे हैं।"

जन-कल्याण समिति के मारफत वह किस तरह का काम करना चाहते थे और उनके काम करने का तरीका क्या था, इसकी एक झलक उदयपुर के राजेन्द्र कुमारजी वागडोदिया (भागीरथजी की पत्नी के भतीजे) को लिखे गये उनके नीचे दिये गये तीन पत्रो से मिलती है।

१२ मार्च, १९७३ के पत्र मे भागीरथजी लिखते हैं. "तुम्हारे साथ उदयपुर के कलक्टर से मिला था। उसने पत्र लिखने को कहा था लेकिन वह अभी तक नही आया। तुम यह पत्र पहुँचते ही नीचे लिखी वाते पूछ कर आना और मुझे तुरन्त उत्तर देना: (१) वह (कलक्टर) पीपल्स वेलफेयर सोसाइटी (जन-कल्याण समिति) की एजेन्सी को मान लेंगे क्या (२) कुओ की मरम्मत कराने, गहरा कराने और अधवने कुओ को पूरा कराने आदि का काम अपन लोग करे तो उसमे वह (कलक्टर) कितनी मदद कर देंगे? अपनी अपेक्षा तो यह है कि दो-तिहाई रुपया वह दे और एक तिहाई अपनी कमेटी दे। अगर मजूर हो तो पूछना प्रति कुआ अधिक से अधिक रकम कितनी होगी और कुल अधिकतम रकम कितनी होगी। (३) गावो मे प्राइमरी स्कूलो की विल्डिग हैं, उनकी मरम्मत कराने, अधवनी को पूरी कराने और एक कमरा जोडने मे उसकी कोई दिलचस्पी है? सीकर के कलक्टर ने प्रति स्कूल तीन हजार रुपये देने (मजूर) किये है, १० स्कूलो के लिए, वाकी रुपया लगे तो कमेटी लगाये (४) अपनी कमेटी (अन्य कार्यो के लिए रुपये) दे तो सरकार कितना औगमेट (वृद्धि) कर सकती है।"

२२ मार्च, ७३ के पत्र मे भागीरथजी लिखते हैं· "तुम्हारा पत्र मिल गया था। सरकारवाले (राजस्थान सरकार) पीपुलस वेलफेयर सोसाइटी की एजेन्सी को मान्यता नही दे रहे हैं इसलिए कलक्टर के मान्यता देने का कोई अर्थ नही निकलेगा। मैंने सरकार से मान्यता तथा एड (सहायता) की वात नक्की कर ली थी (तय कर ली थी) किन्तु वाद मे वे मुकर गये और इसलिए मुकर गये कि कमेटी के मन्त्री वदरीनारायणजी सोढाणी हैं जो किसी वक्त राजनीति मे उनके अपोजिट (विरोधी) कैम्प मे थे। फिर भी उदयपुर मे कुछ काम तो करना ही है।"

१४ जून, १९७४ के पत्र मे भागीरथजी लिखते है "तुम्हारा पत्र मिला। पशन मजूर करने का काम झझटभरा वहुत है, इसमे कोई शक नही, लेकिन है वहुत आवश्यक। थोडे से रुपये अपने खरच हो कर एक आदमी के आजीवन खरचे की व्यवस्था हो जाती है। इस काम को अगर तुम वडे पैमाने पर कर सको। ५००-१००० आदमियो को पेशन दिला सको तो एक वडा पुण्य का काम तुम्हारे हाथ से हो जायेगा। सिलाई की मशीनें तुम वाट चुके हो क्या?"

समिति ने इन सव कार्यो पर १९७९ तक एक करोड से भी अधिक रुपये खर्च किये। विदेशी और सरकारी सहायता अलग है। समिति ने विकास-कार्यो के साथ सामाजिक सुधार के काम को भी जोडने की कोशिश की। कृषि-विकास और

राहत के कार्यक्रमो के साथ उसने गावो मे शराबबदी, परिवार-नियोजन, मृतक भोज बदी के कार्यक्रम भी चलाये। समिति की यह कोशिश रही है कि गावो मे विकास का जो भी काम वह चलाये उसमे ग्रामीणो की पूरी साझेदारी रहे। इसका नतीजा भी सामने आया है। गावो मे समिति के चिकित्सा और स्वच्छ शौचालय कार्यक्रमो मे ग्रामीण स्वय आगे बढ कर भाग ले रहे है। समिति के कार्यकर्ता यह महसूस करते है कि जिन गावो को उन्होने अपनाया है या 'दत्तक' लिया है, वे जल्दी ही 'आदर्श-गाव' बन जायेगे।

समिति के काम मे भागीरथजी ने सरकार से जिस प्रकार के सहयोग की अपेक्षा की थी, वह नही मिला। राजनीति के सकीर्ण दायरे से आगे बढ कर सोचने मे राजस्थान सरकार की असमर्थता के कारण समिति के कामो मे कई प्रकार की अडचने आयी। समिति के काम को देखकर विदेशी सस्थाओ ने उसकी मदद करनी चाही तो वह मदद भी सरकार ने प्राप्त नही करने दी। शुरू मे समिति को विदेशी मदद मिली थी पर बाद मे सरकार की मजूरी न मिलने के कारण वह बन्द हो गयी।

समिति के काम के इस विवरण को हम सीतारामजी की २० मार्च, १९७४ (कलकत्ता) की डायरी के इस लम्बे नोट के साथ समाप्त करते है -

"शाम को भाई भागीरथजी की सस्था पीपुल्स वेलफेयर सोसाइटी की मीटिंग मे गया। इस सोसाइटी को स्थापित हुए ज्यादा दिन नही हुए पर इसने बहुत बडा और अच्छा काम किया है। पिछले दिनो राजस्थान मे भयानक अकाल पडा था उस समय सोसाइटी खासकर भागीरथजी ने बहुत उपयोगी सहायता की, लोगो की, वहा के पशुओ खासकर गायो और साडो की। इसके अलावा राजस्थान मे पानी की कमी तो बराबर रहती है इस विषय मे भी उपयोगी और अच्छा काम किया। सस्था को बाहर से यानी विदेश से भी बहुत सहायता मिली और उसका सुन्दर उपयोग वे कर सके। इन आठ-दस महीनो मे करीब १५ लाख रुपये से वहा के गरीब लोगो के लिए उपयोगी और स्थायी काम भी किये। कुए बनाने तथा पुराने कुओ को गहरा कर पानी अधिक आ सके इसकी व्यवस्था की।

"भागीरथजी मे काम करने की भावना बहुत अधिक है। उनका राजस्थान सरकार और जनता पर काफी प्रभाव है। साथ ही उनको वहा काम करनेवाले भी खूब मिलते है। वहा के कार्यकर्ता उनसे प्रभावित है तथा उपकृत हैं। वे लाखो रुपयो से वहा वर्षो से कार्यकर्ताओ की सहायता करते रहे है। राजस्थान का कोई भी छोटा-बडा कार्यकर्ता, नेता और सरकारी मत्री ऐसा नही है जो भागीरथजी को न जानता हो या जिसने मौके-मौके पर उनसे किसी प्रकार सहायता न ली हो। हर प्रकार के लोगो से उनका अच्छा सम्बन्ध है। मेरी निगाह मे भागीरथजी से अधिक सम्बन्ध शायद राजस्थान के लोगो और सस्थाओ का किसी का नही है। अब वे अस्सी वर्ष के हो रहे है साथ ही आखो से कम दिखने लगा है। स्वास्थ्य भी बहुत अच्छा नही कहा जा सकता। सिर मे बराबर दर्द रहता है जिसके लिए रोज ही चार-पाच गोली सैरीडोन या इसी प्रकार की दवा लेनी पडती है। इसलिए वे अब बहुत दौड-धूप का काम करे यह ठीक नही लगता पर उनकी बहुत इच्छा काम करने की तथा काम बढाने की है।

"राजस्थान सरकार के पास पानी की व्यवस्था करने के लिए एक-डेढ करोड़ रुपया पड़ा है, यदि वह व्यवस्था न कर सके तो यह रुपया भारत सरकार को लौटाना पडेगा। पर वह व्यवस्था नही कर पा रही है। न कर पाने का कारण परस्पर की राजनीति है। सब मन्त्री लोग अपने गांवो मे अपने इलाके में रुपया लगाना चाहते हैं। इस प्रतिस्पर्धा मे काम ही नही हो पाता। वे लोग यह अच्छी तरह जानते हैं कि उनके आदमी काम करेंगे तो चोरी होगी, काम अच्छा नही होगा। तब भी अपने ही आदमियो के द्वारा काम कराना पसन्द करते हैं। इस हालत मे काम करने में अनेक कठिनाइया हैं। पर भागीरथजी के प्रति सबका विश्वास है और काम की अच्छाई के कारण शायद कुछ हो जाय। यह सब हालत है हमारे देश में, कम-अधिक सारे देश की यही स्थिति है। इन राजनीतिक नेताओ ने सब भ्रष्ट कर दिया है।

"भागीरथजी बहुत बोझ लेकर काम करे ऐसा मेरा मन नही चाहता पर सोचता हू तो ऐसा भी लगता है कि यह शरीर तो जायेगा ही और इस उम्र में लोभ भी क्या ? जितना किया जा सके वह करना और इस शरीर को सेवा और भले कामों मे लगाते हुए खत्म करने से अच्छी बात क्या हो सकती है।"

पुनश्च : भागीरथजी की मृत्यु के बाद जन-कल्याण समिति ने राजस्थान के चुरू जिले के सुजानगढ के पास गोपालपुरा के हनुमान मन्दिर के नीचे (मन्दिर एक पहाड़ी पर है) भागीरथजी की स्मृति में ६०० निराश्रित वृद्धों का एक आश्रम खोलने का निश्चय किया है। कन्हैयालालजी सिखवाल ने, जो आश्रम की स्थापना के काम मे लगे हुए हैं, बताया · "आश्रम की योजना बहुत बडी है। इसके लिए हमे ३०० बीघा जमीन मिल गयी है। यह जमीन तीन तरफ पहाड से घिरी हुई है। कुछ इंजीनीयरों ने एक ऐसी योजना बनायी है जिसके द्वारा आश्रम की जमीन मे एक दीवार खड़ी कर के पहाड पर होनेवाली बारिश का पानी सग्रह किया जा सकेगा। इससे एक बहुत बड़ा जलाशय बनेगा और आश्रम व उसके आस-पास बडे पैमाने पर खेती का काम किया जा सकेगा।)"

× × × ×

जीवन के अन्तिम वर्षो मे तो भागीरथजी का राजस्थान से मोह अत्यधिक बढ गया था। किशनगढ मे आदित्य मिल की स्थापना के बाद वहां उनके आवास की व्यवस्था अच्छी थी। १९७० में व्यापार से सन्यास लेने के बाद वह किशनगढ को केन्द्र बना कर साल में ३-४ महीने राजस्थान मे रहते, कहते "कलकत्ता की अपेक्षा राजस्थान मे मेरा मन ज्यादा लगता है, तबीयत भी ज्यादा ठीक रहती है।" राजस्थानी कहावतो और लोक-कथाओ का सग्रह करने तथा राजस्थानी शब्दो की व्युत्पत्ति का पता लगाने मे उन्हे एक प्रकार का आत्मिक आनन्द आने लगा था जो शायद राजस्थान मे रहने पर और भी बढता था। जीवन के अन्तिम दस वर्षो मे तो उन्होंने राजस्थानी लोक-कथाओ और कहावतो को लेकर बडा काम कर डाला। 'मरु-भारती' के सम्पादक कन्हैयालालजी सहल ने अपनी पत्रिका के लोक-कथा विशेषाक के लिए कुछ कहानियां लिखने का अनुरोध किया तो उन्होंने १०-१५ लोक कथाए लिख कर भेज दी। इस पर सहलजी ने और कहानिया भेजने का अनुरोध किया तो कुछ और लिख कर भेज दी।

इन लोक-कथाओ को लिखने मे इतना आनन्द आया कि उन्होने कहानिया लिखना जारी रखा। कहानियो की सख्या वढती गयी और भागीरथजी ने परिवार के लोगो तथा परिचितो को उन्हे पढने दिया। उनसे लोगो ने आग्रह किया कि इन कहानियो की पुस्तक प्रकाशित होनी चाहिए। इस तरह उनकी राजस्थानी लोक-कथाओ की पुस्तक 'वहता पानी निर्मला' का जन्म हुआ। पुस्तक इतनी ज्यादा पसन्द की गयी कि उसके अत्यन्त अल्प ममय के भीतर तीन सस्करण हो गये। पुस्तक को जिसने पढा उमने दूसरो को भी पढवाया। हर सम्करण मे भागीरथजी ने नयी कहानिया जोडी।

राजस्थानी कहावतो पर काम वैसे तो भागीरथजी ने १९५२-५३ मे ही शुरू कर दिया था और याददाश्त से कुछ कहावते नोट की थी लेकिन कार्याधिक्य के कारण काम आगे वढ नही पाया। वीम वर्ष वाद उन्होने काम को फिर उठाया और गोविन्दजी अग्रवाल के साथ मिल कर उसे पूरा किया। उनकी मृत्यु के १०-१५ दिन पहले ही उनका 'राजस्थानी कहावत कोश' छप कर आया। इस कोश मे ३२०९ कहावते दी गयी है जिनके सरल अर्थ और भावार्थ भी साथ दिये गये है। ३५० कहावतो की तो सन्दर्भ कथा भी सक्षेप मे दी गयी है।

जीवन के अन्तिम वर्षो मे तो उनका जीवन इतना राजस्थानमय हो गया था कि ऐसा लगता था कि कलकत्ता उनके लिए परदेस होता जा रहा है। वार-वार राजस्थान जाने को उनका मन करता रहता और वह वार-वार जाते।

१३
यात्रांत

भागीरथजी लम्बे दुवले-पतले व्यक्ति थे। उनका स्वास्थ्य कभी भी वहुत अच्छा नही रहा लेकिन इसके वावजूद उनमे परिश्रम करने की असाधारण क्षमता थी। उन्हे काम करते देख कर बहुत से लोगो की यह धारणा एकदम सही मालूम पडने लगती थी कि दुवले-पतले आदमी, हृष्ट-पुष्ट आदमी की तुलना मे बहुत ज्यादा मेहनती हुआ करते है। स्वास्थ्य के प्रति वह बहुत सावधान न थे, खान-पान के वारे मे किसी प्रकार का परहेज नही वरतते थे। उनके मित्र सीतारामजी, जो खान-पान के मामले मे वहुत ज्यादा नियमो के पावद है, भागीरथजी के कुछ भी खा-पी लेने के वारे मे चिढ कर कहते, "भागीरथजी को कचौडी-पकौडी, समोसा-डोसा, कुछ भी दे दो खा लेंगे, उन्हे कोई ज्ञान ही नही है।" सुबह एक-डेढ घटा घूमने के अलावा भागीरथजी ने स्वास्थ्य सम्बन्धी किसी नियम का पालन नही किया।

मीग्रेन (सिर-दर्द) उन्हे तीस-पैंतीस साल से था। इधर वीस सालो मे तो यह और भी बढ गया था। दिन भर मे दो-चार से छह-सात सैरीडोन की गोलिया लेते रहते जिसका स्वास्थ्य पर बुरा असर पडना लाजिमी था। १९५८ की जीप-

दुर्घटना ने उनके स्वास्थ्य को एकदम झिझोड़ डाला, लगभग छह महीने बिस्तर पर रहना पडा और इसके ऊपर लोभी डाक्टर के गलत उपचार की सजा भुगतनी पड़ी, पैर में दोष रह गया। कुछ वर्ष बाद इस डाक्टर का कई मरीजो की शिकायत पर प्रैक्टिस करने का लाइसेंस रद्द कर दिया गया। लेकिन भागीरथजी ने इलाज के दौरान इस डाक्टर पर कभी शक नहीं किया और ना ही परिवार के लोगों व मित्रों की उसके सम्बन्ध मे की गयी शिकायत पर ध्यान दिया।

१९७३ मे भागीरथजी को बारिश मे भीग जाने के कारण निमोनिया हो गया और एक बार तो ऐसा लगा कि वह शायद बच नहीं पायेंगे। इस बीमारी से वह उबर तो आये लेकिन एकदम जर्जर हो कर। उन्हें कोई न कोई तकलीफ रहने लगी और सिर-दर्द तो ऐसा सगी था जो साथ छोड़ता ही नहीं था। आंखों की ज्योति भी मन्द पड़ने लगी। लेकिन यह थोडे अचरज की बात है कि शरीर की एकदम जर्जर अवस्था मे उन्होने कुछ एकदम नये काम हाथ में लिए। श्री कल्याण आरोग्य सदन और जन-कल्याण समिति के काम को बढाने मे पूरी तरह लगने के साथ राजस्थानी लोक-कथाओं की कहानियां लिखी तथा राजस्थानी कहावतों का कोश तैयार किया।

१९७४ में एक और नया काम हाथ में लिया। भारतीय भाषा परिषद नाम की एक नयी सस्था खोलने की कल्पना साकार रूप ग्रहण करने लगी। १ मार्च, १९७५ को इस सस्था का विधिवत् उद्घाटन हुआ। इसके बाद संस्था के मकान के लिए भागीरथजी चन्दा इकट्ठा करने के अभियान में जुटे। ८० वर्ष की उम्र में वह सीतारामजी के साथ सुबह-सुबह चन्दा इकट्ठा करने निकलते। एक-डेढ़ महीने में उन्होंने इतना चन्दा इकट्ठा कर डाला कि सस्था की एक विशाल और सुन्दर इमारत बनायी जा सके। १९७५ के अगस्त में उनकी तबीयत बिगड़नी शुरू हुई और उनके पित्ताशय का ऑपरेशन करना पडा। ठीक होते ही वह राजस्थान चले गये और श्री कल्याण आरोग्य सदन और जन-कल्याण समिति के कामों में पूरी तरह जुट गये।

१९७७ मे वह फिर बीमार पड़े। उनका स्वास्थ्य और भी तेजी से जर्जर होने लगा। १९७९ की जुलाई मे वह इतने अस्वस्थ हो गये कि उन्हें खाट पकड़नी पड़ी। परिवार के लोगो और परिचितो व मित्रो, सभी ने सोचा कि दुर्बलता की वजह से ही यह बीमारी है। डाक्टर बीमारी का कोई निदान नहीं कर पा रहे थे। इस अवस्था मे वह डाक्टरो से पूछते : "विल आई बी क्योर्ड, विल आई बी आल राइट (क्या मैं ठीक हो जाऊंगा, चगा हो जाऊंगा)।" ऐसा लगता था कि उनमें दो-चार वर्ष जीने की प्रबल इच्छा थी ताकि राजस्थान में शुरू किये गये कामों को अंजाम दे सकें। अपनी पुत्रवधुओं को उन्होंने कहा भी कि कई काम वह करना चाहते हैं। लेकिन वह धीरे-धीरे शिथिल पड़ते गये। कमजोरी के कारण थोडी सी भी बातचीत करने में थक जाते। खाने की इच्छा बिल्कुल खतम हो गयी। उनकी पुत्रवधू उमा उन्हें खिलाने के लिए तरह-तरह के उपाय करतीं, एक दिन उन्होंने उनसे कहा : "मैं क्या करूं, मुझ से खाया नही जाता।" इस वक्त उन्हे चिट्ठियो का जवाब न दे पाने का भी अफसोस बहुत रहता, कहते, "चिट्ठी को जवाब कोनी दियो।" शरीर में जब तक थोड़ी सी भी ताकत रही तब तक उन्होने बोल कर चिट्ठियों का जवाब लिखाने की कोशिश

की पर यह चल न सकी। अव उन्हें लगने लगा कि वह वच नही पायेंगे और उन्हे कल्याण आरोग्य सदन की चिंता सताने लगी कि उनके जाने के वाद उसका सालाना खर्च कैसे चलेगा।

८ अगस्त को राखी थी। महादेवीजी (वर्मा) उन्हे पैंतीस-चालीस साल से राखी भेजती थी, जिसे वह अपनी पुत्र-वधुओ या बेटियो मे वधवाते थे। पर्व के तीन-चार दिन पहले राखी डाक मे आ जाया करती थी। इस वार नही आयी तो उन्होने उमाजी से कई वार पूछा 'क्या वात है इस वार महादेवीजी की राखी नही आयी। ठीक पर्व के दिन डाक से जव राखी आयी तव जाकर उनको तसल्ली हुई। अगस्त के तीसरे सप्ताह मे डाक्टरो ने उनके शरीर पर नाना प्रकार के परीक्षण कर बीमारी का निदान ढूढने की चेष्टा की, उन्हे नरसिंग होम में दाखिल किया गया। परीक्षणो में कोई खास दोष नही निकला तो एक वार आशा बधी कि शायद पहले की तरह इस वार भी उवर आये, लेकिन वीमारी तो कोई थी नही, शरीर जवाव दे रहा था। पलग पर एक करवट उन्हे सोये हुए देख कर लगता था कि मानो वरसो का थका हुआ कोई मुसाफिर या दौड कर हाफा हुआ कोई शिशु सो रहा है। वीमारी की खवर सुन कर आनेवाले लोग उनके मुह से कम से कम एक-दो शब्द सुनने को आतुर रहते। ऐसे मे परिवार के लोगो को कुछ सख्ती वरतनी पडती और वहुतो का कोपभाजन भी होना पडता।

सितम्वर के दूसरे सप्ताह तक लगभग वेहोशी की हालत हो गयी। इसी वक्त वदरीनारायणजी सोढाणी उनसे मिलने सीकर से आये। सहसा उनकी चेतना पूरी तरह लौट आयी और उन्होने सोढाणीजी को कहा, "मैंने आपको चाकरी वजा दी है।" अपने पुत्र अश्विनी कुमार को वुलाया और कहा "श्री कल्याण आरोग्य सदन का खर्च कैसे चलेगा। तुम सालाना खर्च के लिए सालाना कुछ देते रहने का वायदा करो", तो अश्विनीजी ने कहा "मैं सालाना देना चाहता हू लेकिन किसी कारणवश नही दे पाने की जोखिम नही लेना चाहता, इसलिए अभी एक मुश्त पाच लाख रुपये दे देता हू।" यह सुन कर भागीरथजी को वडी तसल्ली हुई (अश्विनीजी ने भागीरथजी की मृत्यु के वाद एक मुश्त रकम को वढा कर १५ लाख कर दिया)।

ज्योतिमठ के शकराचार्य उनसे मिलने आये तो उनके कान मे जाकर कहा गया, "शकराचार्यजी आपसे मिलने आये है"। लेटे-लेटे उन्होने हाथ जोडे। शकराचार्यजी ने उनसे पूछा · "आपकी कोई इच्छा है ?" तो एकदम स्पष्ट कहा, "कोई इच्छा नही है।" सितम्वर समाप्त होने तक जीवन की कोई आशा नही रही। अक्टूवर के किसी दिन वेहोशी की हालत मे एक वार ज्ञान आया तो पुत्र अश्विनी, पुत्रवधुए भारती व उमा और पुत्री उषा उनके पास वैठे थे। उनसे पूछा, 'क्या आपको कोई पीडा है ?" तो उन्होने स्पष्ट कहा, "पीडा कुछ भी कोनी (कोई पीडा नही है।)"

पत्नी गगा देवी, पुत्र, पुत्रवधुओ और पुत्रियो की दिन-रात अथक सेवा और परिचितो व मित्रो की प्रार्थनाओ के वावजूद २९ अक्टूवर, १९७९ को उनका देहावसान हो गया।

१४

परदुखकातरता

गांधीजी ने एक वार कहा था कि हमारे देश की सवसे वडी समस्या यह है कि हमारे देश के पढे-लिखे और सम्पन्न व्यक्ति का हृदय अत्यन्त कठोर है।

आज तो यह लगता है कि उसका हृदय कठोर ही नही, उसमे गरीव की हालत को जानने और समझने तक की भी इच्छा नही है। वह गरीव को कही भी अपने जैसा आदमी नही मानता कि उसकी तकलीफ को तनिक भी महसूस करे। हममे से कितने लोग है जो कभी मई-जून की कडी धूप मे नगे पैर चलते आदमी की पीडा अनुभव करते हैं, और हममे से जो मोटरो मे बैठने के आदी है, उनमे से कितनो को इस वात का भी एहसास है कि पानी या कीचड से भरी सडक पर मोटर रास्ते चलते लोगो के लिए मुसीवत हो सकती है, उनके कपडे विगाड सकती है। हम तो एक ऐसे क्रूर और असम्वेदनशील समाज मे रह रहे हैं जिसमे खाते-पीते लोगो को गरीव और अधनगे आदमी की उपस्थिति का भी एहसास नही है। ऐसे मे भागीरथजी की परदुखकातरता, दरिद्र का कष्ट समझने की इच्छा व क्षमता और उसे दूर करने की आतुरता, हमारे मन मे उनके प्रति श्रद्धा को कई गुना वढा जाती है।

भागीरथजी एक वार स्वास्थ्य विगड जाने पर नैनीताल गये थे। अपनी इस यात्रा के वारे मे उन्होने 'नया समाज' के जनवरी, १९४९ के अक मे एक वहुत ही सुन्दर लेख लिखा (देखे परिशिष्ट)। इस लेख के मनोहारी वर्णन और मनोहारी गद्य को पढ कर हम मुग्ध हो रहे थे कि लेख के अन्त मे एक झटके से हम स्वर्ग से धरती पर उतर आये। भागीरथजी की वर्णन-क्षमता से कही ज्यादा उनकी सम्वेदना ने हमे अभिभूत कर डाला। लेख का वह अन्तिम अग यहा हम उद्धृत करते हैं क्योकि यह भागीरथजी की सम्वेदना का उन्ही के शब्दो मे हमे साक्षात दर्शन कराता है —

"नैनीताल की सफाई देख कर तवीयत खुश हो गयी, पर नगर को इतना साफ-सुथरा और स्वास्थ्यप्रद रखनेवालो की स्थिति जान कर खुशी नहीं हुई। यहा के मेहतरो को म्युनिसिपैलिटी से केवल तीस-इकतीस रुपये महीना मिलता है। इसके अलावा कुछ भी नहीं। सुवह ७ वजे से ड्यूटी पर आना पडता है इस कठिन शीत मे विना चाय-पानी पिये। शहर को साफ रखनेवाले तथा सारे लोगो को स्वास्थ्य वख्शनेवाले इन अभागे भाई-वहनो को किसे चिन्ता है कि ये इतनी कम आय मे किस तरह गुजर कर पाते हैं। और फिर इनके रहने का स्थान कितना तग और अन्धकार पूर्ण है। जिनके परिश्रम से सारे लोग स्वस्थ है, उनके स्वास्थ्य और खाने-पीने की चिन्ता से हमलोग कितने उदासीन हैं।

'दूसरा दर्जा कुलियो या मजदूरो का है, जो हमारा वोझ ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर पहाडो मे ढोते हैं, सडक वनाते हैं, मकान चिनते हैं और डाडी (डोली)

चलाते है। इन्हे 'डोटियाल' कहते है क्योकि इनमे से ज्यादातर लोग डोटी नामक स्थान से आते है, जो नेपाल और कुमायू की सरहद पर है। यहा के सारे मकान इन्होने बनाये, सडके इन्होने तैयार की, यही लोग गत एक सौ वर्षों से अपनी पीठ पर लाद कर दूर-दूर के स्थानो से अन्न तथा साग-सब्जी हमे खिलाते रहे है और आज भी खिलाते है। बीमार या कमजोर कोई हुआ अथवा वृद्ध हुआ, तो उसे डोली मे बिठा कर सिर पर लाद कर भी ले जाते है। यहा जितना सुख और वैभव है, उस सारे की सृष्टि करनेवाले यही है। फिर भी पेट मे पूरा अन्न नही, तन पर कपडा नही।

"सृजन करनेवाला परिश्रम करनेवाला भूखा और नगा है, अपनी सृजन की हुई सारी वस्तुओ के उपयोग से वचित है। गाय-भैस रखता है पर बच्चो को दूध नही, डोली रखता है तो सिर पर बोझा ढोने के लिए, मकान चिनता है लेकिन बिना आज्ञा उसमे प्रवेश भी नही कर पाता, सूत कातता और बिनता है लेकिन दूसरो के लिए। बिजली की रोशनी का सारा सरजाम इकट्ठा किया, बिजली पैदा की और उसकी जगमगाहट से सारा नैनीताल तथा दूसरे शहर जगमग कर रहे है, लेकिन इन लोगो के रहने के स्थानो मे तो आज भी वही किरासिन की डिबिया है और उसके लिए भी राशन की मेहरबानी से पूरा किरासन तेल कहा मिल पाता है? दूसरी तरफ थोडे से परोपजीवी लोग, जिन्होने अपना एक गुट बना कर सारी पृथ्वी पर अपना मायाजाल बिछा लिया है, सारे पदार्थो का उपभोग कर रहे है। हम लोग इसी श्रेणी के है जिन्हे शारीरिक परिश्रम बिलकुल नही करना पडता और फिर भी सारी सुख-सुविधाओ का उपभोग करते हैं।"

गाधीजी ने शारीरिक परिश्रम करने पर ही रोटी खाने का हकदार होने (ब्रेड लेबर) की बात कही थी। मध्य वर्ग और सम्पन्न वर्ग मे कुछ मुट्ठी भर लोगो मे ही शारीरिक परिश्रम न कर रोटी खाने के लिए मन मे अपराध-भाव रहता है। भागीरथजी मे यह अपराध-भाव निश्चय ही तीव्र था। अक्सर इस तरह के अपराध-भाववाले व्यक्ति अपनी अत्यधिक सम्वेदनशीलता के कारण कर्मठ नही होते, वे ऐसा कुछ नही कर पाते जिससे किसी का भी कष्ट दूर हो। ऐसे लोग अपने अत्यन्त सीमित दायरे मे भले और अच्छे रह कर समाप्त हो जाते है। लेकिन भागीरथजी मे कर्मठता थी और उन्होने अपनी सम्वेदना को वायवी नही रहने दिया उसे निरन्तर ठोस रूप देते रहने की कोशिश की।

१९७३ मे राजस्थान मे अकाल-पीडितो को काम देने के लिए शुरू किये गये निर्माण-कार्यो का निरीक्षण करते हुए उन्होने देखा कि मजदूर नगे पैर जलती धरती पर काम कर रहे हैं। इस दृश्य ने भागीरथजी को इतना सताया कि उन्होने इन लोगो के लिए हजारो जोडी चप्पले मगवाकर वितरित करवायी। इसी तरह जब उन्हे मालूम पडा कि मजदूरो को पीने को ठण्डा पानी नही मिलता तो तुरन्त मटो की व्यवस्था करवायी। यह देख कर कि विश्राम के समय भी मजदूरो को किसी प्रकार की प्राकृतिक छाह न रहने के कारण धूप मे ही बैठना पडता है, उन्होने बास के छप्पर डलवा कर जगह-जगह छाहदार विश्राम-स्थल बनवाये। मजदूरो के कुपोषण के शिकार दुबले-पतले बच्चो को देख कर उन्होने बदरीनारायणजी सोढाणी को कहा "आ मजूरा का टाबरा क खातर

भी कोई खावा की चीज को इन्तजाम करां तो ठीक रहव (इन मजदूरो के बच्चों के लिए भी खाने की किसी चीज का इन्तजाम करे तो ठीक रहेगा)।" इस पर सोढाणीजी ने सुझाव दिया कि यदि भुने हुए चनो, चिवडा, मूंगफली और गुड का १७५ ग्राम का पैकेट वना कर वच्चो को दिया जाय तो उन्हे पूरा आहार मिलेगा और वे खुश भी होगे। यह सुझाव अमल मे लाया गया। इन पैकेटो मे यह सुविधा थी कि इन्हें वनाना सरल था और कुछ दिन रखे जाने पर भी पौलिथिलीन की थैलियो के कारण धूल, मिट्टी आदि से इनके नष्ट और खराव होने का भी खतरा नही था। मजदूरो के वच्चो के वीच इस तरह के पैकेट वाटे गये। एक पैकेट भागीरथजी ने अपनी पुत्रवधू को दिया और कहा, "या वता, यो खा कर तेरो पेट भर कि नहीं?" पुत्रवधू ने खा कर उन्हे रपट दी कि इससे भूख शान्त हुई और खाने मे भी स्वाद आया तो उन्हे वेहद सतोप हुआ।

एक वार भागीरथजी श्री कल्याण आरोग्य सदन से नीरोग हुए एक रोगी को घर के लिए रवाना होते हुए देख रहे थे। जाडे के दिन थे। रोगी के पास ओढने को कम्वल नहीं था। भागीरथजी को लगा कि गरम कपडो के अभाव मे रोगी घर पहुचते-पहुचते वीमार हो जायेगा। उसी दिन उन्होने सदन में यह व्यवस्था करवायी कि नीरोग हो कर घर जानेवाले रोगियो को जाते समय सदन की ओर से एक तूस भी दी जाय।

सम्वेदना और जिज्ञासा के वीच एक प्रकार का लेन-देन का सम्वन्ध है। दोनो का व्यापार एक दूसरे से वढता है। जव आदमी किसी चीज के वारे मे सम्वेदनशील होता है तो उसके वारे मे वह अपनी सम्वेदना के अनुकूल ज्यादा से ज्यादा जानना चाहता है और उस जानकारी से अपनी सम्वेदना को पुष्ट करता है। पढे-लिखे सम्पन्न वर्ग के लोगो मे सम्वेदना न होने के कारण जिज्ञासा भी नही होती। वे यह जानना भी नही चाहते कि जो गरीव उन्हे हमेशा दिख पडते है, वे क्या खाते-पीते है, कैसे रहते हैं, आदि। भागीरथजी जव किसी से भी मिलते तो उसकी व्यक्तिगत आर्थिक स्थिति के वारे मे पूछते—कितना कमाते हो, कितने वच्चे हैं, क्या खाते हो आदि। कोई और इस तरह के प्रश्न पूछे तो आदमी इसे अस्वस्थ जिज्ञासा मान चिढ जाय लेकिन जव भागीरथजी पूछते थे तो उसमे उनकी सम्वेदना झलकती थी जिससे पूछे जानेवाले व्यक्ति को वुरा नही लगता था। अपनी राजस्थान-यात्राओ मे भागीरथजी सैकडो लोगो से मिलते तो उनसे इसी तरह के व्यक्तिगत सवाल पूछते। १९५१-५२ के राजस्थान के अकाल मे निर्माण-कार्य मे लगे मजदूरो से सवाल पूछने के वाद उन्होंने लिखा · "(मजदूर) कहते थे तरकारी तो अमीरो के खाने के चीज है। यहा तो रोटी के साथ किसी-किसी दिन नमक-मिर्च मिल जाता है तो वह दिन हम लोग भाग्य का दिन मानते हैं .स्वतन्त्र भारत मे यह स्थिति हम लोगो के लिए शर्म की वात है।" उसी यात्रा मे गावो मे वच्चो से उन्होने जानना चाहा कि क्या उन्होंने कभी मेवा खाया है, "वच्चों ने वादाम, किशमिश, काजू आदि का न तो कभी नाम सुना है और न उनका स्वाद ही जानते हैं। जव उन्हे ये चीजें दिखा कर पूछा गया तो वे नही वता सके कि ये क्या चीजें है और किस काम मे आती है।" हम इस तरह के सवाल यदि नही पूछते तो इसके दो ही कारण होते हैं—हम या तो गरीव को आदमी ही नही मानते कि वह तरकारी, वादाम, किशमिश और काजू खाने के योग्य है या फिर अपने स्वाद को [illegible]

नही चाहते । हमे भागीरथजी की छोटी पुत्रवधू उमा कानोडिया और छोटी बेटी उषा भुवालका ने बताया "काकोजी के सामने जो कुछ भी परस दिया जाता उसे वह खा लेते, अगर नमक ज्यादा या कम हुआ तो भी कुछ नही कहते, स्वाद-बेस्वाद की कभी उन्होने शिकायत नही की", परिचितो ने बताया "वह कभी होटल या रेस्तरा नही जाते थे ।" भागीरथजी गरीब नही थे, अतिसम्पन्न थे पर मजदूर के तरकारी न खाने और उसके बच्चो के बादाम, किशमिश न पहचानने का 'ज्ञान' उनके भीतर इतना धसा हुआ था कि उसकी प्रतीति हमेशा कही न कही रहती ।

'चोर' कहलाने या माने जानेवाले समाज के दरिद्र वर्ग के लोगो के प्रति भागीरथजी की सम्वेदना और समझ की जिन तीन घटनाओ का हमे पता लगा उन्हे यहा लिखा जा रहा है श्री कल्याण आरोग्य सदन अपने निरोग हुए रोगियो को घर जाते समय कुछ महीनो की दवा साथ मे देता है ताकि इलाज जारी रहे । ऐसा एक रोगी सीकर के किसी दवाखाने मे सदन से मिली दवाए बेचने आया । दूकानदार ने सदन के अधिकारियो को खबर दी तो सभी ने कहा "इस आदमी को पुलिस को दे देना चाहिए ।" लेकिन भागीरथजी ने कहा, 'ऐसा क्यो सोचते है कि यह आदमी चोर है । यह पता लगाइये कि वह दवा क्यो वेच रहा था ।" इस पर 'चोर' के घर आदमी भेजा गया कि वह अपना जीवन खतरे मे डाल कर क्यो दवा बेचने सीकर आया तो उसकी बूढी मा ने बताया कि चू कि बेटा कई महीनो अस्पताल रहा इसलिए घर मे कमानेवाला कोई नही था । घर मे जो कुछ था वह इतने दिनो मे बिक गया । बच्चे तीन दिन से भूख से बिलबिला रहे थे और घर मे दवा के सिवाय और कुछ बेचने को नही था । इस जानकारी के मिलने पर सदन की ओर से दवा बेचनेवाले आदमी के यहा बच्चो के खाने के लिए अनाज भिजवाया गया ।

दूसरी घटना बहुत पुरानी है । १९३६ मे भागीरथजी एक विवाह मे आमन्त्रित थे । वहा कुछ लोग एक व्यक्ति को चोर मान कर पीट रहे थे । ऐसे अवसरो पर सभी लोग अपनी बहादुरी दिखाने के लिए चोर को पीटने मे योग देने लगते है । भागीरथजी ने पीटनेवाले लोगो को रोकने की बहुतेरी कोशिश की लेकिन व्यर्थ । इस पर वह चोर के एकदम पास जाकर खडे हो गये और उन्होने कहा "अब इसे मारने से पहले आपको मुझे मारना होगा ।" इस प्रकार उन्होने समाज के भद्रजनो से उस व्यक्ति की रक्षा की ।

तीसरी घटना यह है कि एक दिन रात भागीरथजी की मुहल्ले मे शोर से नीद खुल गयी । वह सडक पर आये तो देखा कि लोग एक अधनगे व्यक्ति को, जो जाडे मे ठिठुर रहा था, किसी मकान मे चोरी करने के लिए पीट रहे थे । भागीरथजी को यह दृश्य असह्य लगा । उन्होने लोगो से कहा "आप इसे पीट तो रहे है लेकिन यह नही देख रहे है कि यह आदमी जाडे मे ठिठुर रहा है ।" उन्होने घर से कम्बल मगा कर इस व्यक्ति को उढाया ।

हमारे समाज मे जो भी व्यक्ति सम्वेदनशील है, वह स्त्री के प्रति अतिरिक्त सम्वेदनशील हुए बिना रह नही सकता क्योकि स्त्री उत्पीडन की सबसे ज्यादा शिकार है । भागीरथजी कभी-कभी परिवार के लोगो और मित्रो को अपनी यात्राओ के अनुभवो और ग्रामीणो से बातचीत के बारे मे बताया करते थे । बताये जानेवाले प्रसगो मे स्त्री के प्रति क्रूरता के प्रसग ही ज्यादा होते थे ।

भागीरथजी ने एक बार बताया कि वह कही जा रहे थे तो उनके सामने जो गाडी चल रही थी, वह सडक पर एक औरत को टक्कर देकर चली गयी। भागीरथजी ने अपनी गाडी रोकी तो देखा औरत को काफी चोट लगी है। इस औरत के साथ उसकी जेठानी भी थी लेकिन उसे बिलकुल ही चोट नही लगी थी। भागीरथजी ने घायल औरत को मोटर मे लिटाया और उसे अस्पताल ले जाने लगे तो उन्होने जेठानी को भी साथ चलने को कहा तो उसने कहा "म तो नुक्तो (मृतक-भोज) जीमण जाऊ हू म साग कोनी जाऊ" और चली गयी। भागीरथजी ने घायल औरत को अस्पताल पहुचाया और पूछताछ करके उस औरत के पति को बुलाया। पति खेत पर काम कर रहा था। वह भागीरथजी को देख कर थोडा अचरज मे तो पडा लेकिन उसने कहा कि इतनी सी बात के लिए उसे क्यो बुलवाया गया। यदि यह ठीक हो जायेगी तो अपने आप घर आ जायेगी और यदि मर जाय तो "थे (आप) फूक-फाक दियो" और चला गया (भागीरथजी ने चिकित्सा की सारी व्यवस्था की)।

इसी तरह की एक और घटना भागीरथजी ने बतायी। कल्याण आरोग्य सदन मे आनेवाले ९० प्रतिशत मरीज पुरुष ही होते है। यह बात नही कि स्त्रियो को क्षय रोग नही होता। वास्तविकता तो यह है कि क्षय रोग स्त्रियो को ही ज्यादा होता है। एक स्त्री जब क्षय के कारण मरणासन्न हो गयी और घर का कोई काम-काज करने लायक नही रही तो उसके घरवाले उसे सदन मे पहुचा कर चले गये और फिर उन्होने उसकी कोई खोज-खबर नही ली। इस स्त्री की आगे की कहानी यह है कि १४ महीने के इलाज के बाद वह ठीक हो गयी और बच्चो की ममता के कारण घर जाना चाहने लगी। भागीरथजी ने इस स्त्री के पति के बारे मे पूछताछ करवायी तो पता चला कि वह कलकत्ता रहता है। कलकत्ता पहुचने पर भागीरथजी ने पति को बुलवाया और उसे कहा कि वह अपनी पत्नी को अपने घर बुला ले। पति ने कहा कि वह टी० बी० की मरीज है उसे मैं घर नही रख सकता। इस पर भागीरथजी ने उसे बहुत प्रयत्न कर समझाया कि टी० बी० अब ठीक हो गयी है और उसकी पत्नी अब पूर्ण स्वस्थ है। इस पर पति ने कहा कि उसका वेतन बहुत कम है। तब भागीरथजी ने उसके लिए पार्ट-टाइम काम की व्यवस्था की और उस स्त्री को उसके घर भिजवाया।

भागीरथजी जब बडेबाजार मे रहते थे तब एक दिन बगल के मकान मे एक स्त्री की चीख सुन कर उनकी नीद टूट गयी। स्त्री को आधी रात को उसका पति पीट रहा था। भागीरथजी वहा पहुचे और उन्होने पति को कहा कि वह अपनी पत्नी को मार नही सकता। पति ने कहा कि पत्नी उसकी है, उससे वह जो चाहे कर सकता है। इस पर भागीरथजी ने कहा "मेरा भी यह धर्म है कि मैं किसी स्त्री को पिटने नही दे सकता। अगर आपने अपनी स्त्री को पीटा तो मुझे आपके खिलाफ कुछ करना पडेगा।" इतनी बात थोडी कडाई से कहने के बाद भागीरथजी ने पति को खूब धैर्य के साथ समझाया और पति ने उनके सामने शपथ ली कि वह भविष्य मे अपनी पत्नी को कभी नही पीटेगा।

१५
विनोदप्रियता

सूचनाए और जानकारी एक हद तक ही कुछ बताने मे समर्थ होती हैं। कभी-कभी तो वे इस अर्थ मे भ्रामक भी होती है कि उनसे व्यक्ति का हमारे मन मे ऐसा चित्र बन जाता है, जिसका असली व्यक्ति से कोई मेल ही नही होता। जीवनी लिखते हुए इस बात का हमेशा खतरा बना रहता है कि हम विष्णु शर्मा के शिष्यो की तरह सब लक्षण तो शायद गिना जाय लेकिन मुट्ठी मे क्या है, यह बता न पाये। भागीरथजी की जीवनी लिखते हुए इस खतरे का बार-बार आभास होने के कारण अपनी ओर से इसे दूर करने की कोशिश मे हम उनके स्वभाव के एक ऐसे पहलू को, जिसका अभी तक इस वृत्तात मे जिक्र नही आया है, यहा रखेंगे और आशा करेगे कि इससे उनका वह व्यक्तित्व भी प्रकाश मे आ सकेगा जो सूचनाओ और जानकारी के बोझ से दब गया है।

पाठको ने अब तक जो पढा है उसके आधार पर वे शायद यह सोच भी नही सकते कि भागीरथजी एक अत्यन्त विनोदी और विनोदप्रिय व्यक्ति थे। हम परदुखकातर व्यक्ति को कही ऐसा व्यक्ति मान बैठते हैं जो हमेशा दुखी या उदास या गभीर बना रहता है। लेकिन परदुखकातरता और विनोदप्रियता मे कही भी विरोध नही है। हमारे देश के दो सबसे बडे परदुखकातर महापुरुषो—बुद्ध और गाधी—मे दूसरे के बारे मे तो हमे पूरा पता है कि वह अत्यन्त विनोदप्रिय व्यक्ति थे। गाधीजी की विनोदप्रियता के यदि हजारो नही तो कम से कम सैकडो उदाहरण हमारे सामने हैं। भागीरथजी के बारे मे जानने की कोशिश मे हम जिन लोगो से मिले, उन सभी ने उनके विनोदी स्वभाव की चर्चा की, कहा, "वह बात-बात मे विनोद करते थे।" लेकिन जब विनोद के कुछ उदाहरण देने की बात कही गयी तो उत्तर मिला, "वह तो मौके पर किया गया विनोद होता था इसलिए उसका उदाहरण दे सके, ऐसी हमारी याददाश्त नही है।" कुछ लोगोने जरूर अपनी याददाश्त पर जोर दे कर उनके विनोद और उनकी प्रत्युत्पन्नमति के कुछ उदाहरण दिये, जो आगे दिये जायेंगे।

भागीरथजी का विनोद मारवाडी कहावतो और लोक-कथाओ से भरपूर रहता था। शब्दो के साथ खिलवाड कर और अग्रेजी तथा हिन्दी के शब्दो को मिला कर श्लेष और यमक पैदा करने की उनमे अद्भुत क्षमता थी। किसी-किसी व्यक्ति से उनका सम्बन्ध इस प्रकार का भी होता था कि सारी बातचीत ही विनोद के रूप मे होती। भागीरथजी का परिवार बहुत बडा था। बडे परिवारो मे बहुत दफा एक ही साथ दो प्रकार के रिश्ते बन जाया करते हैं। हिन्दू समाज मे वर-पक्ष को ऊचा और कन्या-पक्ष को नीचा दरजा दिये जाने के कारण एक ही व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के सन्दर्भ में रिश्ते के हिसाब से एक ही साथ ऊचा और नीचा दोनो हो सकता है। मसलन भागीरथजी बेटी की जेठानी उनकी पुत्रवधू की बहन हैं। ऐसे मे वर-पक्ष के रिश्ते के मुताबिक जेठानी ससुराल मे तो

उनकी बेटी से सम्मान प्राप्त करने की अधिकारिणी हुई लेकिन अपने पीहर मे वह उनकी बेटी को अपनी बहन की ननद के रूप मे सम्मान देने को बाध्य है। इस तरह के दुहरे रिश्तो को लेकर विनोद करने का कोई भी मौका भागीरथजी नही जाने देते थे।

विनोद के साथ उनमे प्रत्युत्पन्नमति भी समान रूप से थी, जिसके कारण दोनो के बीच भेद करना कठिन हो जाता है। उनके विनोद मे व्यग्य की मात्रा एकदम नही रहती। हम जब किसी को कोई सच्ची बात कहने से कतराते है लेकिन उसे कहने के लिए अकुलाते भी हैं तो व्यग्यरूपी विनोद का सहारा लेने लगते है। यह एक प्रकार का छिपा हुआ आक्रमण हो जाया करता है। भागीरथजी के विनोद मे इस तरह का व्यग्य नही होता था क्योकि अपने सम्वेदनशील स्वभाव के कारण वह जानते थे कि इससे व्यग्य के पात्र मे सत्य का एहसास जगने के बजाय प्रतिहिंसा का भाव ही ज्यादा जगता है। अच्छा विनोद तो वही विनोद है जिससे सभी आनन्दित हो। विनोद, भागीरथजी के लिए भेद मिटाने का भी एक प्रकार का 'उपाय' था। वह छोटे-बडे, अमीर-गरीब, अपने से ऊ चे-नीचे, सबसे विनोद करते थे, जिससे उम्र और गरीब-अमीर तथा ऊ च-नीच का भेद मिट जाया करता था।

नीचे भागीरथजी के विनोद और उनकी प्रत्युत्पन्नमति के कुछ उदाहरण, इस आशा से दिये जा रहे है कि पाठक उन्हे पढ कर आनन्दित होगे -

भागीरथजी एक सज्जन से बातचीत कर रहे थे। बात-बात मे लायन्स क्लबो की चर्चा चल पडी तो उन सज्जन ने कहा "लायन्स क्लब के सदस्य अपने को शेर (लायन) कहते हैं और उनकी पत्निया अपने को शेरनी (लायोनेस) कहती हैं," तो भागीरथजी ने कहा : 'आप ठीक कह रहे है, लेकिन मैं जितनी भी लायेनेसो को जानता हूं वे सभी चूहो और तिलचट्टो तक से डरती हैं।"

× × ×

जल-बोर्ड द्वारा बनाये गये एक कुए का निरीक्षण करने के लिए जाते हुए १९५८ मे भागीरथजी की जीप की एक ट्रक से टक्कर हो गयी। इस दुर्घटना मे उनके कूल्हे और टांग की हड्डी टूट गयी। वह बेहोश हो गये। उन्हें जयपुर लाया गया। अस्पताल मे बहुत से लोग उन्हे देखने आये। जयपुर मे भागीरथजी के मुनीम रामकृष्णजी पारीक 'धाडीजी' तो सारे समय मौजूद ही थे। जब भागीरथजी को होश आया तो उनकी सबसे पहले नजर पारीकजी पर पडी। उन्हे देखकर उन्होने देखने आये दूसरे लोगो को कहा - "आप इसे (पारीकजी को) जानते है न ? इसका नाम धाडी (डाकू) है। यह बहुत धाडे(डाके) डालता है।"

(पारीकजी का बचपन मे बहुत शरारती होने के कारण 'धाडी' नाम पड गया, जो उनके अत्यन्त मृदुल और प्रेमल स्वभाव के बावजूद आज तक बना हुआ है।)

भागीरथजी के यह कहने पर कि "यह बहुत धाडे (डाके) डालता है," धाडीजी ने उन्हे तपाक से मजाक मे ही जवाब दिया "मैं तो आपके ही साथ रहा हू। अगर अभी भी धाडी हू तो जिम्मेवारी आपकी है।" अब भागीरथजी ने कहा "मेरे साथ तो बहुत लोग रहे है। उन्हे तो कोई 'धाडी' नही कहता। तुम्हे ही कहते है सो मेरी जिम्मेवारी कहा से है ?"

× × ×

अस्पताल मे उनके दाहिने पाव के अगूठे से लेकर छाती तक प्लास्टर लगा दिया गया था। अत्यधिक कष्ट था। उन्हे बहुत सारी दवाइया देनी पडी। इससे जीभ का स्वाद कड़वा हो गया। डाक्टर जब इ जेक्शन देने लगा तो भागीरथजी ने उससे पूछा "किसलिए इ जेक्शन दे रहे हैं ?" डाक्टर ने कहा · "आपकी जीभ की कड़आहट दूर करने के लिए" इस पर भागीरथजी ने कहा "डाक्टर साहब, मैंने यदि आपको इसका मौका दिया हो तो माफी चाहता हू।" डाक्टर एक बार सकपका गया लेकिन जब उसकी समझ मे आया जीभ की कड़आहट से मतलब कड़वे बोल से है तो बहुत हंसा और चकित भी हुआ कि इतनी पीड़ा के वक्त भी कोई मजाक कर सकता है।

X X X

भागीरथजी को जयपुर से कलकत्ता लाया गया। कूल्हे और टाग की हड्डी टूट जाने के कारण उनकी एक टाग को लोहे के यत्र से खीच कर सीधा लटकाना पडा। इस क्रिया को 'ट्रैक्शन' कहा जाता है। भागीरथजी को इस अवस्था मे काफी दिन रहना पडा। यह बहुत ही कष्टदायक था। क्षण भर पीडा कम होती तो दूसरे ही क्षण फिर बढ जाती। उनसे एक ऐसे सज्जन मिलने गये जिनसे मिलते ही वह विनोद की कोई न कोई बात करते थे। उन्होने जब भागीरथजी से उनकी तबीयत के बारे मे पूछा तो वह बोले "क्वचित पेनम, क्वचित चैनम, पेनम-चैनम क्वचित-क्वचित।"

X X X

इस दुर्घटना के बाद भागीरथजी को लगभग छह महीने बिस्तर पर रहना पडा। उनकी पुत्रवधू की मा रोज उन्हे देखने आती। दो दिन वह नही आयी तो उन्होने अपनी पुत्रवधू से पूछा तुम्हारी मा क्यो नही आयी ? पुत्रवधू ने जवाब दिया कि मा को अनिद्रा रोग हो गया है तो उन्होने कहा "तुम्हारी मा तो बडी भयकर निकली। माए' तो बेटी के घर का पानी तक नही पीती और तुम्हारी मा तुम्हारे घर से इतनी बडी चीज (अनिद्रा का रोग, भागीरथजी को भी यही था) उठा ले गयी।"

X X X

दुर्घटना के बाद जब भागीरथजी बिस्तर से उठे तो लडखडा कर चलते। इन्ही दिनो उनके पुत्र ज्योतिप्रकाश का विवाह होनेवाला था। मारवाडी घरो मे विवाह के दो-तीन महीने पहले से गीत गाये जाने लगते है। एक दिन वह बिस्तर पर लेटे हुए थे कि उन्हे एक गीत के ये बोल सुन पडे "बन्नाजी (वर) थारी (आपकी) चाल मतवाली, थारी चितवन नखराली, थारी बोली लाग प्यारी-प्यारी" तो उन्होने कहा "बन्नाजी की चाल मतवाली है कि नही, यह तो पता नही, पर मेरी चाल जरूर मतवाली है।"

X X X

ज्योतिप्रकाश की पत्नी का नाम मैना है। एक दिन भागीरथजी के पास बैठी हुई घर की महिलाए आपस मे चर्चा कर रही थी कि "मैना" नाम अच्छा नही लगता। किसी ने कहा हम उसे सारिका कहेंगे। मैना का अर्थ भी रह जायेगा और बुरा भी नही लगेगा। भागीरथजी चुप-चाप सब सुन रहे थे। बीच मे ही वह बोले "इतना सब सोचने की क्या जरूरत है ? ज्योति का ही नाम तोता रख दो तो सारी समस्या अपने आप हल हो जायेगी।"

X X X

जीप-दुर्घटना के वाद उनकी टाग मे खोट रह गयी। उन्हें दोनो पैरो मे थोडी भिन्न प्रकार की चप्पले पहननी पडती थी। एक चप्पल की एडी थोडी ज्यादा ऊची होती। चलने मे वाद के दिनो मे थोडी कठिनाई भी होने लगी। एक बार चलने मे वह थोडा डगमगाये तो उनके साथ चल रही उनके एक मित्र की पुत्रवधू ने कहा 'थान पकड् के, काकोजी (मैं आपको पकड् क्या) ?' तो उन्होने तपाक से कहा · "म तेरो के अपराध कर्यो (मैंने तुम्हारा क्या अपराध किया है) कि तू मन पकडसी (कि तुम मुझे पकडोगी) ?"

X X X

भागीरथजी एक वार वीमार पडे तो उनका कार्डियोग्राम लिया गया। रिपोर्ट देख कर डाक्टर ने उनसे कहा "आपका हार्ट (हृदय) तो वहुत अच्छा है।" इस पर भागीरथजी ने कहा · "आज तक किसी ने मेरा हार्ट खराव नही वताया लेकिन आपको इस वात पर शक कैसे हो गया।"

X X X

एक वार भागीरथजी आखो के डाक्टर के पास अपनी आख की जाच करवाने गये। लौट कर घर आये तो एक मुलाकाती ने पूछा 'कहा गये थे ?" उन्होने कहा · "आख दिखाने गया था।" मुलाकाती ने कहा "आप किसी को आख दिखा सकते है, यकीन नही होता" इस पर भागीरथजी ने कहा · "दिखाता तो वहुत हू पर कोई डरता ही नही।"

X X X

१९७३ से भागीरथजी का स्वास्थ्य लगातार खराव ही होता जा रहा था। एक वार तो उन्हे निमोनिया हो गया और वचने की भी आशा नही रही। इस अवस्था मे एक महिला उनसे मिलने गयी तो उसने पूछा, "अव आपकी तवीयत कैसी है ?" तो उन्होने हस कर कहा · "कोई इलाज नही हो रहा है।" महिला चौको कि वह क्या कह रहे है। उसे कुछ भी समझ मे नही आया कि क्या कहे। तव वह वोले 'एक हिन्दू और एक मुसलमान एक ही नौका मे नदी पार कर रहे थे। वीच मे नौका डूवने लगी तो 'मुसलमान अल्लाह ! अल्लाह ! अल्लाह ! बचाओ ! वचाओ !' चिल्लाने लगा और हिन्दू कभी राम को, कभी शिव को, कभी हनुमानजी को, कभी दुर्गाजी, को रक्षा करने के लिए बुलाने लगा। मुसलमान तो वच गया क्योकि अल्लाह उसकी पुकार सुनकर तुरन्त दौडा चला आया लेकिन हिन्दू डूव गया क्योकि जैसे ही रामजी उसकी रक्षा करने के लिए रवाना होने को तैयार हुए उसने शिवजी को बुलाना शुरू किया। रामजी यह सोच कर कि जव शिवजी को वुलाया जा रहा है तव उनके जाने की जरूरत नही है, डूवनेवाले के पास नही गये। इस प्रकार कोई भी देवता हिन्दू की रक्षा के लिए ठीक समय पर न पहुच सका और वह डूव गया। मेरी हालत नौका वाले हिन्दू की तरह है। एक डाक्टर देख जाता है उसकी दवा चलते न चलते (परिवार के लोगो द्वारा) दूसरे डाक्टर को वुलाया जाता है और फिर तीसरे को। तुम समझ गयी न, इलाज क्यो नही हो रहा है।"

X X X

भागीरथजी जब मृत्यु-शय्या पर थे तब उनकी खुराक एकदम कम हो गयी। पुत्रवधुएं खाने का आग्रह करते हुए कहती कि खाना चाहिए, नही तो कमजोरी बढती जायेगी। एक दो बार उन्होने जबरदस्ती खाया भी। एक दिन पुत्रवधुओ के जोरदार आग्रह करने पर बोले "कृष्ण जब दुर्योधन क कण (पास) संधि को सदेश लेकर गया, तब विन धर्म और अधर्म के है, बतान लाग्या तो दुर्योधन बोल्यो, "जानामि अह धर्मो, न आजानामि अधर्मो। मेरी एक (धर्म) म वृत्ति कोनी और एक (अधर्म) स निवृत्ति कोनी। मेरी थे (पुत्रवधुए) धर्म मे वृत्ति कराओ या अधर्म से निवृत्ति दिलाओ तब तो कोई बात ह, उपदेश निरर्थक ह। थे लोग जो कहो हो म सब समझू हू। मेर खाण की रुचि कोनी। मेरी रुचि बढाओ जद तो बात बण। खाणो चाहिए बोलण म फायदो कोणी। क्यू ठीक ह न ?"

X X X

एक बार भागीरथजी की बडी पुत्री सावित्री (खेमका) उनके लिए बढिया विलायती ऊन का स्वेटर बुन रही थी। ऊन के डिब्बे पर 'मेड इन इंग्लैण्ड' लिखा था। उसे देख कर भागीरथजी बोले, "बहुत वर्ष पहले जब अश्विनी (भागीरथजी के पुत्र) बहुत छोटा था तब उसके सिर मे चोट लग गयी। लगातार खून बह रहा था। मैं उसे डाक्टर के पास ले गया। डाक्टर टिंचरआयडिन की शीशी खोलने लगा तो अश्विनी न समझे, इस खयाल से मैंने डाक्टर से अग्रेजी मे पूछा, विल इट पेन (क्या इससे पीडा होगी) ? इस पर अश्विनी तुरन्त बोला" पी-ए-आई-एन पेन माने दर्द होता है। मैं यह दवा नही लगाऊंगा। तुम्हारे डिब्बे पर लिखा "मेड इन इंग्लैण्ड" माने विलायती होता है सो मैं यह स्वेटर नही पहनूंगा।"

X X X

अगरेजी के संकेताक्षरो (ऐब्रिवियेशन) की भागीरथजी बडी सूझबूझवाली उलटबासिया किया करते थे। अपने एक पौत्र को उन्होने बी० एस० सी० (बैचेलर आफ साइंस) का मतलब 'ब्रेन सिवियरली क्रैक्ड' (मस्तिक गभीर रूप से क्षतिग्रस्त) और एम० एल० ए० (मेम्बर आफ लेजिस्लेटिव आफ एसेम्बली) का मतलब "मेम्बर आफ ल्यूनैटिक एसाइलम" (सदस्य-पागलखाना) बताया।

X X X

भागीरथजी की पुत्रवधू को पुत्री हुई तो वह उसे अस्पताल मे देखने गये। हालचाल पूछने के बाद कमरे के चारो ओर-नजर डाल कर बोले "तेरी सासु तन कमरो तो उन्नीस ही दिवाओ" (मारवाडी मे अपेक्षाकृत खराब के लिए 'उन्नीस' बहुत ज्यादा बरता जाता है। कोई भी चीज पहले की तुलना मे खराब होने पर उसे 'उन्नीस' और अच्छी होने पर 'इक्कीस' कहा जाता है)। पुत्रवधू की समझ मे नही आया कि भागीरथजी ऐसा कैसे कह रहे है, सहसा उसे याद आया कि उसके कमरे का नम्बर 'उन्नीस' है तो वह खिलखिला कर हस पडी।

X X X

भागीरथजी की पत्नी के भतीजे श्री राजेन्द्र बागडोदिया का घर का नाम 'मोती' है। मोतीजी उदयपुर मे रहते है और पीपुल्स वेलफेयर सोसाइटी का काफी

काम देखते हैं इसलिए भागीरथजी को उनसे विशेष स्नेह था। वह मोतीजी को अक्सर पूछते "तू साचो मोती है कि कल्चर ?"

X X X

मोतीजी ने एक बार भागीरथजी से उदयपुर आने का बहुत आग्रह किया तो उन्होने पूछा "वहा स्नेह है कि नही ?" मोतीजी ने कहा कि वह तो कलकत्ता गयी हुई हैं। इस पर भागीरथजी ने कहा "जब स्नेह ही नही है तब मैं आकर क्या करूगा।" मोतीजी को एकबारगी समझ मे नही आया कि भागीरथजी क्या कह रहे है फिर याद आया कि उनकी पत्नी का नाम स्नेह है और स्नेह का मतलब स्नेह ही होता है।

X X X

सीतारामजी के दौहित्र का नाम प्रसन्न कुमार है। एक दिन भागीरथजी ने प्रसन्नकुमारजी को फोन किया तो उन्होंने कहा "मैं प्रसन्न हू।" इस पर भागीरथजी ने फटाक से कहा "आप प्रसन्न है, यह तो मै समझ गया, लेकिन आप है कौन ?"

X X X

एक बार भागीरथजी बम्बई मे थे तो घण्टी बजी। उन्होने पूछा "कौन आया है ?" तो उनकी पत्नी ने कहा : "वही तीनो—ज्योति (उनका पुत्र), काति (ज्योतिप्रकाश के मित्र) और प्रकाश (भागीरथजी की पुत्रवधू के भाई)।" इस पर भागीरथजी ने कहा "ये तीन कहा से हुए, ये तो एक ही है।" ज्योति, काति और प्रकाश का अर्थ एक ही है।"

X X X

भागीरथजी अपने पुत्र के बम्बई के नये फ्लैट मे पहली बार आये। लिफ्ट मे चढे तो पुत्रवधू ने उनसे कहा 'जी' को दबाइये ('जी' का मतलब ग्राउण्ड फ्लोर का बटन)। इस पर उन्होने कहा "जद 'जी' दब जासी तो रहसी के ?"

X X X

एक बार भागीरथजी की सबसे छोटी पुत्रवधू उमा के ताऊ कलकत्ता आये तो अपनी भतीजी से मिलने गये तो वह पहले भागीरथजी से मिले। बात-बात मे उन्होने पूछा, उमा घर मे है न ? इस पर भागीरथजी ने कहा वह तो नही है, बाहर गयी है। सन्तोष (भागीरथजी के सबसे छोटे पुत्र) के साथ वकील के पास गयी है। ताऊ वकील के पास जाने की बात सुन कर चिन्तित हुए और उन्होने उद्विग्न होकर पूछा : क्या हुआ ? इस पर भागीरथजी ने कहा : "वह आप लोगो पर मुकदमा करने की सोच रही है इसलिए वकील से सलाह करने गयी है। ताऊ की समझ मे कुछ नही आया—क्या मुकदमा, तो भागीरथजी बोले "उमा इसलिए मुकदमा करने की सोच रही है कि आप लोगो ने उसके विवाह मे तो कम रुपये लगाये लेकिन उसकी दूसरी बहनो के विवाह मे ज्यादा।" यह सुन कर ताऊ और साथ मे बैठे सभी लोगो का हसी के मारे बुरा हाल हुआ।

X X X

भागीरथजी के घर के बगल मे मोहनलालजी टीबरेवाल रहते है। वह बडे ही धार्मिक वृत्ति के व्यक्ति है, साल मे छह महीने वृन्दावन रहते है। भागीरथजी को उनसे रोज मिले

बिना चैन नही पडता था। मोहनलालजी की पत्नी का नाम शान्ति है इसलिए भागीरथजी उन्हे रोज ही कहते "लोग शान्ति प्राप्ति करने के लिए इतने प्रयत्न करते रहते हैं और उन्हे वह मिलती नही। लेकिन एक तुम हो जो जब चाहे तब शान्ति को बुला सकते हो।"

x x x

भागीरथजी और मोहनलालजी के बीच सारी बातचीत विनोद मे ही होती। यह कहने की जरूरत नही होनी चाहिए यह मारवाडी मे ही होती थी। भागीरथजी की मृत्यु के दो महीने पहले मोहनलालजी एक बार उन्हे देखने गये तो उन्हे देख कर भागीरथजी ने कहा, "मोहन, ठाकुर जी मेर इस्तीफो मजूर कर लियो।' इस पर मोहनलालजी ने कहा "कोनी कर्यो (नही किया)।" "कया ?" भागीरथजी ने पूछा, इस पर मोहनलालजी कहा, "ठाकुर जी न अकेल न पावर नही ह। लक्ष्मीजी की मजूरी क बिना इस्तीफो मजूर कोनी हो सक।" भागीरथजी ने हसने लगे।

x x x

मोहनलालजी एक बार वृन्दावन से कलकत्ता लौटने पर घर मे दाखिल हुए ही थे कि भागीरथजी का फोन आया, "कन्हैये से तेरी बात होगी (हो गयी) ?" मोहनलालजी ने कहा, "होगी थान (आपको) बुलाया ह।" भागीरथजी कहा "मन (मुझे) ही बुलाया ह कि गगा (भागीरथजी की पत्नी) न भी बुलाया ह।" मोहनलालजी ने कहा "थारी कीमत गगा क गैल (पीछे) ही ह ?" भागीरथजी ने कहा, "गगा की भी कीमत मेरे गैल ही ह।"

x x x

श्री रामेश्वर जी टाटिया बहुत मोटे खद्दर का लम्बा कुरता पहना करते थे। एक बार वह भागीरथजी के साथ खादी खरीदने खादी भण्डार गये तो भागीरथजी ने भण्डार के प्रबन्धक से पूछा, "थार भण्डार मे बाबाजी क झोल को कपडो मिल ह के ?"

x x x

भागीरथजी की पौत्री (रश्मि) का विवाह था। रामेश्वरजी टाटिया ने, जो भागीरथजी के पडोस मे रहते थे उनसे कहा कि घर में विवाह है, कोई काम हो तो बताइये। भागीरथजी ने कहा कोई काम नही है। दो तीन दिन बाद रामेश्वरजी ने फिर आग्रह किया कि उन्हे कोई काम बताया ही जाय तो भागीरथजी बोले "म्हार गीत गाण क काम को इन्तजाम कोनी होयो। गीत गाण को काम थे करद्यो।"

x x x

भागीरथजी के पुत्र अश्विनी कुमार का विवाह हुआ था। अश्विनी कुमार उस वक्त वीरमगाव रहते थे। भागीरथजी की पत्नी गगा देवी पुत्रवधू की गृहस्थी जमाने के लिए वीरमगाव गयी तो वही जम गयी यानी जितने दिन के लिए गयी थी उससे ज्यादा रह गयी। इस पर भागीरथजी ने कलकत्ता से उन्हे फोन पर कहा: "बठइ मरण को विचार ह के ? काधो देणन ओर बेटा न भेजू के ?' यह सुनकर गगा देवी ने हसते-हसते नहले पर दहला जवाब दिया "बेटो तो उर ह, ओर बेटा न भेजन की जरूरत कोनी। थान आणो होव तो आ सको हो।"

x x x

भागीरथजी अपने पुत्र अश्विनीकुमार के पास बम्बई मे थे। एक दिन ताराचन्दजी साबू उनसे मिलने आये तो उन्होने अश्विनीकुमारजी से भी मिलने की इच्छा प्रकट की तो उन्हे बताया गया कि उनके शिक्षक आये हुए हैं और वह कसरत कर रहे है। इस पर साबूजी ने कहा कसरत के लिए शिक्षक की क्या जरूरत है तो किसी ने कहा शिक्षक आते हैं तो कसरत करते है नही तो नही करते। भागीरथजी ने इस पर साबूजी को कहा - "छोटो टावर (बच्चा) होव ना, मास्टर आव तो जद पढ ले नई तो कोनी पढ।"

X X X

सीतारामजी का अभिनन्दन समारोह था। श्रीमती महादेवी वर्मा सीतारामजी और भागीरथजी को अपना भाई मानती है। समारोह मे महादेवीजी ने सीतारामजी को दुशाला ओढाया तो भागीरथजी ने तुरन्त मजाक किया "यह तो अधेर हो रहा है। हमारे यहा तो रीति यह है कि भाई बहन को चूनडी ओढाता है लेकिन यहा तो इतने बडे लोगो के सामने उलटी बात हो रही है—बहन भाई को दुशाला उढा रही है और कोई कुछ नही कह रहा है।"

X X X

एक बार भागीरथजी ने अपने एक परिचित व्यक्ति को एक पुस्तक दी। इस व्यक्ति ने पूछा आपने यह पुस्तक मुझे ही क्यो दी तो भागीरथजी ने कहा : "जैसे पिता सुपात्र देख कर उसको अपनी बेटी सौंपता है उसी तरह आपको सुपात्र जान कर यह पुस्तक दे रहा हू।" यह परिचित व्यक्ति अपनी व्यस्तता के कारण पढ नही पाते थे, लेकिन अपने को सुपात्र सिद्ध करने के लिए उन्हे व्यस्तता के बावजूद किताब पढनी पड गयी।

X X X

राजस्थान के अकाल के समय गायो के चारे के लिए भागीरथजी चन्दा इकट्ठा कर रहे थे। एक धनी व्यक्ति बडी रकम देने मे सोच-विचार करने लगे तो भागीरथजी ने कहा "विचारो के हो, कलम लिख दो। जब वैतरणी पार करण को समय आसी तो थे सबसे पहली पार उतरोगा। म्हे लोग कोई थाको पल्लो नई पकड़ पावागा।" हसते हुए धनी व्यक्ति ने बडी रकम लिख दी।

१६
उपसंहार

भागीरथजी के धार्मिक सस्कार गहरे थे। उनके हर कार्य के पीछे ये सस्कार किसी न किसी रूप मे काम करते मालूम पडते है। ईश्वर मे उनकी आस्था के प्रमाण रूप मे हम यह भी लिख सकते हैं कि अपने द्वारा कोई अच्छा काम होने पर वह अक्सर कहा करते "सब कुछ वही (ईश्वर) करता है। मैं तो निमित्त मात्र हू।" यह उनका तकियाकलाम भी था। जब वह मृत्यु-शैय्या पर थे तब एक दिन सत्यनारायणजी टाटिया ने उनसे कहा "थे भोत काम कर्‌या हो, समाज थारो ऋणी ह", तो भागीरथजी ने कहा . "म करण वालो कुण, काम तो सब ईश्वर कर ह। म तो निमित्त मात्र हू।" लेकिन आत्म-निरीक्षण की प्रवृत्ति और "मो सम कौन कुटिल खल कामी" की भावना के चलते उन्हे यह लगता रहता था कि ईश्वर मे उनकी आस्था मे कमी है, वह वैसी नही, जैसी कि होनी चाहिए।

जीवन के अन्तिम वर्षों मे वृद्धावस्था और जर्जर स्वास्थ्य के बावजूद उन्होने पशुपतिनाथ, बद्रीनाथ, केदारनाथ, गगोत्री और यमुनोत्री की तीर्थ-यात्राए की। यमुनोत्री की यात्रा के बारे मे उन्होने स्वजनो को यह घटना सुनायी "मैं डाडी मे बैठा यमुनोत्री के दर्शन करने जा रहा था। रास्ते मे एक अधी बुढिया माई मिली। मैंने उससे पूछा माई कहा जा रही हो ?" तो उसने जवाब दिया यमुना माई के दर्शन करने। इतनी ही बात हुई कि मेरी डाडी आगे बढ गयी। कुछ दूर जा कर मैंने अपनी डाडी रुकवाई और बुढिया माई के आने की प्रतीक्षा करने लगा। थोडी देर बाद माई जब डाडी के पास पहुची तो मैंने उससे पूछा माई, तुम तो अन्धी हो। यमुना माई के दर्शन कैसे करोगी ? इस पर माई ने कहा : मैं अन्धी हू लेकिन यमुना माई तो अन्धी नही है, और आगे बढ गयी। मुझे धक्का सा लगा। डाडी मे बैठा, सोचता रहा कि बुढिया माई की आस्था और भक्ति के सामने मेरी आस्था और भक्ति कितनी तुच्छ है।"

तुच्छता का भाव व्यक्ति मे दो प्रकार के स्थायी मनोभाव पैदा कर सकता है— एक, तुच्छता की भावना और आत्म-शकाए व्यक्ति को इतनी आविष्ट कर डाले कि वह किसी भी कार्य को करने मे नितात असमर्थ हो जाय, दूसरे, तुच्छता की भावना विनम्रता का रूप ले ले और व्यक्ति अपने भरसक जो हो करे, भरसक करना उसका स्वधर्म बन जाय। भागीरथजी मे तुच्छता के भाव ने दूसरा मनोभाव ही पैदा किया। अपने भरसक जो हो उसे करना, उनके जीवन का मूलमत्र बना। भूकम्प, बाढ और अकाल मे राहत कार्य करते हुए, अपने पास आये लोगो की सहायता करते हुए, गुप्त दान देते हुए, सीकर के टी० बी० अस्पताल का सचालन करते हुए उन्हे दारुण कष्ट और भयानक गरीबी के आगे अपने प्रयत्नो की तुच्छता का हर समय एहसास रहता था, लेकिन इसके साथ ही यह दृढ भाव भी रहता कि जितना कर सके उतना करने मे

हिचकिचाना नही है। हिचकिचाये तो स्वधर्म से विमुख होगे—"स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि" और "स्वधर्म निधन श्रेय परधर्मो भयावह।"

धार्मिक सस्कारो के चलते ही भागीरथजी मे स्वधर्म की यह धारणा विकसित हुई। स्वधर्म की धारणा से व्यक्ति मे व्यक्तिगत महत्वाकाक्षाओ की लपटें बुझ जाया करती हैं और उसमे स्वाभाविक रूप से विनम्रता आती है। भागीरथजी की विनम्रता इसीलिए सहज और स्वाभाविक थी। हम जब व्यक्ति के किसी गुण को सहज और स्वाभाविक मान बैठते है तो यह सोचने की गलती भी करते हैं कि उसके पीछे कोई प्रयत्न नही होता, वह अनायास ही उसे प्राप्त हुआ होता है। लेकिन ऐसा होता नही, यह इतना आसान भी नही। जो गुण अत्यन्त सहज और स्वाभाविक लगता है, उसके पीछे सजग रहने और आत्म-शोधन की प्रक्रियाए निरन्तर चलती रहती है। भागीरथजी उन पत्रो को तुरन्त फाड दिया करते थे जिनमे उनकी प्रशसा होती। बातचीत मे प्रशसा किये जाने पर बातचीत को तुरन्त मोड देते या सीधे-सीधे कह देते कि हल्की बात न करें। हमे बहुत सारे लोगो ने बताया कि भागीरथजी अपनी तस्वीर लेने नही देते थे। १९७३ के राजस्थान के अकाल के समय राजस्थान के एक बडे नेता कलकत्ता आये हुए थे। उनकी तस्वीर लेने के लिए एक फोटोग्राफर पहुचा हुआ था। नेता ने अपने साथ फोटो खिचवाने के लिए कई लोगो को खडा किया, भागीरथजी को भी खडे होने को कहा तो वह बैठे रहे और बोले · "कुछ काम करू तब तो फोटो खिचवाऊ"। यह सुन कर जो लोग खडे हुए थे वे भी पीछे हट गये। यह सब सजग रहने और आत्म-शोधन की प्रक्रियाओ के निरन्तर चलते रहने का सकेत है—प्रशसा सुनना और फोटो खिचवाना कही न कही अभिमान और आत्म-मुग्धता को जन्म देता है, इसलिए उनसे हमेशा दूर रहने की चेष्टा करते रहना है। कोई आश्चर्य नही कि भागीरथजी से रोज मिलनेवाले किसी व्यक्ति को किसी ने उनका चापलूस कहा हो। भागीरथजी ने अपनी सजगता और आत्म-शोधन के 'सहज और स्वाभाविक गुण' के चलते चापलूस जनमने ही नही दिये। हमारे देश मे तो जो धनी-मानी या नेता हुआ, वह प्रशसा के सिवाय कुछ सुनना ही नही चाहता। यही नही, प्रशसा न करने पर वह सामनेवाले को दुश्मन तक मानने लगता है। इसके चलते हमारे देश मे चापलूसो की सख्या इतनी तेजी से बढ रही है कि कोई हिसाब लगाना ही मुश्किल हो गया है।

स्वधर्म की धारणा के कारण भागीरथजी ने कही यह स्वीकार कर लिया था कि बडे परिवर्तन और सारे ससार के दुख हरने का महत् कार्य उनकी क्षमता के परे है, उन्हे तो लोगो के तात्कालिक कष्ट दूर करने का तात्कालिक काम वह जितना कर सकते हैं, करना चाहिए। भागीरथजी कोई क्रातिकारी नही थे। गाधीवादी मूल्यो मे आस्था के सिवाय समाज-परिवर्तन का भी कोई नक्शा उनके दिमाग मे नही था। लेकिन राजनीति को वह साधु-सन्तो की तरह गन्दी वस्तु नही मानते थे। समाज और इतिहास के बारे मे अपनी सहज समझ से उन्होने जाना था कि आज के युग मे राजनीति सर्वव्यापी है और उससे बचने की चेष्टा करना गलत है, हर व्यक्ति का यह कर्त्तव्य है कि वह राजनीति को ज्यादा से ज्यादा पवित्र बनाने की चेष्टा करे। इस एहसास के साथ उन्होने यह भी देख लिया था कि राजनीति मे जिस कौशल की जरूरत होती है,

वह उनमे नही है और उनकी अन्त प्रेरणा उन्हे ऐसे कामो को करने की ही ओर प्रवृत्त करती है जिनसे लोगो का कष्ट तत्काल दूर होता दिख पडे, इसलिए राजनीति मे सक्रिय होने पर वह अपनी उस शक्ति का क्षय और अपव्यय ही करेंगे जो रचनात्मक कार्यों और राहत-कार्यों मे अच्छी तरह लगा सकते है।

इसलिए उन्होने सक्रिय राजनीति मे कभी भाग नही लिया और आजादी के बाद एम० पी० आदि होने के प्रलोभनो को अपने मन मे कही जगह ही न दी। यही नही, उन्होने अपने मित्रो को भी इस प्रकार के प्रलोभनो से बचाने की कोशिश की। सीतारामजी की डायरी से पता चलता है कि १९५२ मे उन्हे (सीतारामजी को) चुनाव मे खडे होने के लिए कई लोगो ने कहा और वह इस बारे मे सोचने भी लगे तो भागीरथजी ने उनको सलाह दी कि इस पचडे मे उन्हे नही पडना चाहिए। आजादी के पहले भी भागीरथजी ने सक्रिय राजनीति के बजाय रचनात्मक कार्यों के क्षेत्र को ही चुना था—खादी, हरिजनोद्धार, हिन्दी-प्रचार आदि। यहा हमे यह नही भूलना चाहिए कि ये सारे रचनात्मक कार्य स्वाधीनता आन्दोलन के अभिन्न अग थे। स्वाधीनता आदोलन मे सक्रिय भाग लेनेवाले कार्यकर्ताओ की उन्होने हर प्रकार से मदद की। उनके प्रति श्रद्धा का यह भाव रखा कि वे पहली पक्ति मे ब्रिटिश सरकार से सीधे जूझ रहे है और वह खुद स्वाधीनता आन्दोलन की दूसरी पक्ति मे है। ऐसे कार्यकर्ताओ को वह आजादी के २५-३० वर्ष बाद भी नही भूले। इसी ग्रन्थ मे स्वाधीनता-सग्राम मे भाग लेनेवाली एक महिला सेनानी के प्रति भागीरथजी की सम्वेदना का बहुत ही मार्मिक वर्णन श्री विजय ढाढनिया ने अपने सस्मरण मे किया है। श्री मेघराज सेवक ने, जिनका भागीरथजी से पचास वर्ष से सम्बन्ध रहा और जो भागीरथजी के अनेक कार्यों मे साथ रहे, हमे बताया कि भागीरथजी स्वाधीनता आन्दोलन के कार्यकर्ताओ से उनके घर की हालत के बारे मे खोद-खोद कर पूछा करते थे और उनकी इस तरह मदद किया करते थे कि किसी दूसरे को उसका पता भी नही लगता था। आजादी के बाद राजनीति के निरन्तर मूल्यहीन होते रहने के माहौल मे उनकी चेष्टा यही रही कि सत्ताधारियो से जो भी कल्याणकारी काम वह करवा सकें, करवाने की चेष्टा करे।

भागीरथजी के सारे जीवन पर विहगम दृष्टि डालने पर वह कभी-कभी एक मिशनरी के जीवन सरीखा मालूम पडता है। क्वेकर और ईसाई मिशनरियो के जीवन के बारे मे पढने पर मालूम पडता है कि आर्त्त की सेवा से अपने जीवन की शुरुआत कर वे आगे बढते हुए ऐसी सस्थाओ के निर्माण मे लगते है जिनसे कष्ट के स्थायी उपचार की व्यवस्था हो। भागीरथजी के जीवन मे मिशनरियो की यह प्रवृत्ति स्पष्ट दिखायी पडती है। अपने जीवन के अन्तिम दिनो मे राजस्थान मे वह इसी तरह की सस्थाओ के निर्माण मे लगे हुए थे।

(२)

इस जीवन-वृत्त के प्रारम्भ मे हमने लिखा है कि भागीरथजी जैसे गाधी-युग के व्यक्तियो को गाधीजी के परिप्रेक्ष्य के विना समझना कठिन है। यहा प्रारम्भ के उस सूत्र को पकड़ कर हम भागीरथजी के व्यक्तित्व पर विचार करेंगे।

एक प्राचीन देश मे कोई भी नयी सभ्यता आसानी से अपनी जड़ नही जमा सकती। अग्रेजो के आगमन से लेकर आज तक जो लोग हमारे देश को पश्चिमी नमूने का आधुनिक और औद्योगिक राष्ट्र बनाने की कल्पना करते आये है, वे इस सत्य को देख सकने मे एकदम असमर्थ रहे। ऐसे लोग माया मे पडे अन्धे है। इन्होने कभी यह सोचने तक की कोशिश नही की कि पश्चिम के ढाचे को अपनाने का क्या नतीजा होगा— एक तो हमारे जैसे देश के लिए यह अव्यावहारिक है, दूसरे इसको अपनाने से देश की अपनी जो भी अस्मिता और ऊर्जा है, वह भी नष्ट हो जायेगी। यह कोई आश्चर्य की बात नही कि गाधीजी की हत्या के बाद से देश मे एक 'नया भारत' या 'सपने का भारत' बनाने का आन्दोलन समाप्त हो गया और पश्चिम के अन्धानुकरण मे हम आज जैसी दारुण परिस्थिति मे पहुच गये हैं। एक गाधीवादी अर्थशास्त्री ने हाल मे लिखा भी है "जिस हिन्दुस्तानी दिमाग को अग्रेज २०० सालो मे भी खरीद नही पाये, उसे आजादी के बाद हमारे ही देसी पिशाचो ने कौड़ियो के भाव बेच डाला।"

आज की स्थिति मे पलट कर यह देखना जरूरी हो गया है कि गाधीजी देश के करोडो लोगो को, जिनमे भागीरथजी जैसे लोग भी थे, कैसे अनुप्राणित और प्रेरित कर पाये। गाधीजी पर यह आरोप लगाया जाता है कि उन्होने लोगो के धार्मिक सस्कारो और धार्मिकता को अपील कर देश के एक आधुनिक राष्ट्र बनने मे बाधा खड़ी की। ऐसा आरोप लगानेवालो के दिमाग मे आधुनिक राष्ट्र का मतलब आधुनिक राष्ट्र न हो कर पश्चिम के ढग का राष्ट्र होता है। लेकिन गाधीजी भारत को पश्चिमी नमूने का आधुनिक राष्ट्र नही बनाना चाहते थे। उन्होने तो परिग्रह और मनुष्य पर मशीन के आधिपत्य पर आधारित पश्चिमी सभ्यता को पापपूर्ण माना था। भारतीय राजनीति मे पदार्पण के ९ साल पहले, १९०८ मे ही गाधीजी ने 'हिन्द स्वराज्य' मे देश की सभ्यता और सस्कृति के अनुरूप एक सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक ढाचे की कल्पना प्रस्तुत की थी और जीवन भर उसे मज्जा प्रदान करने की कोशिश करते रहे। उन्होने इस बात पर बल दिया कि हमारा देश पश्चिमी सभ्यता के तथाकथित श्रेष्ठ होने के कारण नही, बल्कि अपनी देह और आत्मा के सडने के कारण गुलाम हुआ है। इसीलिए उन्होने आत्म-निरीक्षण और आत्म-शोधन की आवश्यकता बतायी और लोगो के धार्मिक सस्कारो को परिष्कृत कर सत्य और अहिसा के दो आधारभूत विश्वासो पर उन्हे एक नया और आधुनिक रूप देने की कोशिश की।

अगरेजी राज की प्रचण्ड शक्ति, देसी पश्चिम-भक्तो के व्यग्य व तिरस्कार, कट्टर और रूढिवादी हिन्दुओ के विरोध और सर्वव्यापी व सर्वनाशी रूप ग्रहण करने-वाली ताकतवर पश्चिमी औद्योगिक सभ्यता के बावजूद गाधीजी हमारे देश के लोगो को अनुप्राणित और प्रेरित कर सके तो उसका कारण वह आदर्श था जो उन्होने देश-वासियो के समक्ष रखा। इस प्रकार के आदर्श के बिना वह देशवासियो मे न आत्म-सम्मान की भावना पैदा कर सकते थे और ना ही उन्हे अन्याय के खिलाफ लडने को प्रेरित कर पाते।

आज हम गाधीजी के प्रभाव को एक किवदन्ती के रूप मे देखने के आदी हो गये है। लेकिन जब हम भागीरथजी जैसे व्यक्तियो के जीवन मे प्रवेश करते है तो

उस युग मे भी प्रवेश पा लेते है जब किंवदन्ती, किंवदन्ती न होकर वास्तविकता थी। 'हिन्द स्वराज्य' और 'अनासक्तियोग' का भागीरथजी जैसे लोगो के लिए वही स्थान रहा होगा जो चीन मे माओ की 'रेड बुक' का कभी था।

भागीरथजी जैसे धार्मिक सस्कारो के व्यक्ति के निकट गाधीजी की महत्ता सिर्फ इसलिए नही थी कि वह अगरेजो से भारतीय जनता को मुक्ति दिला सकते थे, इसलिए भी थी कि वह धर्म, सत्य और अहिंसा पर आधारित व्यवस्था कायम करना चाहते थे। गाधीजी ने व्यक्ति मे विदेशी हुकूमत और अन्याय के खिलाफ चेतना पैदा करने के साथ-साथ उसे इस बात के लिए भी प्रेरित किया कि वह अपने भरसक परमार्थ करे। इसके लिए उन्होने व्यक्ति के धार्मिक सस्कारो को कुरच-कुरच कर निष्कलुष और परिष्कृत करने की कोशिश की ताकि उनका सही मानवीय रूप निखर कर आये।

अपनी सम्वेदना के कारण हो सकता है कि भागीरथजी गाधीजी के बिना भी अपने धार्मिक सस्कारो को मानवीय रूप प्रदान कर सकते लेकिन तब उनका रूप निश्चय ही सीमित होता, इतना विकसित नही। गाधीजी ने भागीरथजी जैसे लोगो को अपने धार्मिक सस्कारो के उत्स तक पहुचने मे मदद की और यह दिखाया कि "मैं सारे शास्त्रो को अस्वीकार करूगा यदि वे सयत तर्क और अन्तरात्मा की आवाज के प्रतिकूल आदेश देते हो सत्ता की पूजा दिल और दिमाग की कमजोरी का सबूत है ..जो कुछ भी सत्य को कसौटी पर खरा नही उतरता, उसे अस्वीकार करना होगा, भले ही उसका स्रोत कुछ भी क्यो न हो" (गाधीजी)।

गाधीजी के कारण भागीरथजी जैसे व्यक्ति अपने धार्मिक सस्कारो के बावजूद यह देख सके कि शास्त्रो मे स्त्रियो और शूद्रो के बारे मे जो कहा गया है, वह क्रूर और अन्यायपूर्ण तथा धर्म की मूल भावना के विपरीत है। शास्त्रो को क्रूर और अन्यायपूर्ण कहनेवाले तो बहुतेरे थे पर उनकी बात भागीरथजी जैसे व्यक्तियो को अपील नही कर सकती थी क्योकि ऐसा कहनेवाले धर्म को ही बुराई की जड घोषित करते थे, जबकि गाधीजी का कहना था "मुझे तो धर्म प्यारा है इसलिए मुझे सबसे ज्यादा दुख इस बात का है कि हिन्दुस्तान धर्म-भ्रष्ट होता जा रहा है। धर्म का अर्थ मैं हिन्दू, मुस्लिम या पारसी धर्म नही करता। इन सब धर्मो के अन्दर जो धर्म है वह हिन्दुस्तान से जा रहा है, हम ईश्वर से विमुख हो रहे है" (हिन्द स्वराज्य)।

हमने देखा है कि गाधीजी के प्रभाव मे आये हिन्दुओ मे गाधी-युग के दिनो मे धार्मिक उदारवाद बढता ही गया। ऐसे एक उदार हिन्दू के रूप मे हम पाते हैं कि भागीरथजी मे हरिजन और स्त्री के प्रति विशेष सम्वेदना थी क्योकि ये तथाकथित शास्त्रो के कारण ही सबसे ज्यादा उत्पीडन के शिकार हुए है। भागीरथजी को मुसलमान कभी यवन या म्लेच्छ नही जान पडा। राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ की विचारधारावाले लोग जब मुसलमानो के प्रति विद्वेष की बात कहते तो भागीरथजी के चेहरे पर पीडा और विरक्ति के भाव स्पष्ट दिखायी देने लगते थे। गो-रक्षा मे भागीरथजी की सहज ही रुचि थी लेकिन इस सम्बन्ध मे भी उनके विचार एक उदार हिन्दू के थे, उन्होने लिखा था "केवल गो माता की जय बोलने से और गोपाष्टमी के दिन उसके माथे पर तिलक लगाने से ही इस युग मे गो-रक्षा होनी मुश्किल लगती है। हर हिन्दू, जिनमे मैं अपने

को भी शामिल करता हू, यह चाहेगा कि गाय की रक्षा हर हालत मे होनी चाहिए लेकिन चाह के साथ-साथ वैज्ञानिक रीति से प्रयत्न हो तभी यह हो सकेगा ।"

(३)

गाधीजी का भागीरथजी पर प्रभाव कार्यकारी हो सका तो उसका एक कारण यह भी था कि गाधीजी की बातें एक ही साथ उनके सस्कारो से मेल खाती थी तो बुद्धि से भी उचित जान पडती थी । यह सोने मे सुहागेवाली बात गाधीजी के सिवाय किसी भी अन्य महात्मा, विचारक, नेता और तत्वज्ञानी के साथ नही हुई । गांधीजी के प्रभाव ने भागीरथजी के व्यक्तित्व का विस्तार किया और उनके सहज स्वाभाविक गुणो को पुष्ट किया । इस प्रभाव के बिना भागीरथजी के व्यक्तित्व की कल्पना करना कठिन है ।

गाधीजी के प्रभाव में आये धार्मिक वृत्ति के लोगो ने अपने धार्मिक सस्कारों का इस तरह रूपातरण किया कि धर्म के बाह्याडम्बरो मे उनका कोई विश्वास नही रह गया । बाह्याडम्बर उन्हे व्यक्ति को वास्तविक धर्म से विमुख करनेवाले और अन्ध-विश्वास बढानेवाले प्रतीत होते थे । गाधीजी ने हमेशा धर्म के अनुसार आचरण करने की बात कही लेकिन यज्ञ, हवन और अन्य बाह्याचारो को तनिक भी प्रश्रय नही दिया वरन् इनके खिलाफ एक प्रकार का धर्म-युद्ध ही छेडा । 'अनासक्तियोग' मे तो उन्होने 'यज्ञ' को एक नयी ही परिभाषा दी : "यज्ञ का अर्थ है मुख्य रूप से परोपकार के लिए शरीर का उपयोग ।" गाधीजी के जीवन-काल मे उनके प्रभाव से हमारे देश मे अन्धविश्वासो और यज्ञ व हवनों का लोप हो रहा था लेकिन उनकी हत्या के बाद तो ऐसा लगता है कि अन्धानुकरण और अन्धविश्वास—उपभोक्ता सस्कृति और यज्ञ, हवन तथा ज्योतिष आदि—हमारे जीवन को ग्रसते ही चले जा रहे हैं, हमे हास्यास्पद बनाते जा रहे हैं।

भागीरथजी का धर्म के बाह्याडम्बरो मे तनिक भी विश्वास न था । उन्होंने खुद यज्ञ, हवन, पूजा-पाठ कभी नही किया । किसी ज्योतिषि को कभी हाथ नहीं दिखाया । बाह्याडम्बरो के प्रति उनकी अरुचि का तथाकथित आधुनिकता से कोई सम्बन्ध नही था । यह तो इसलिए थी कि बाह्याडम्बर व्यक्ति को सकीर्ण बनाते हैं और उसे नकली और झूठा आत्म-सन्तोष प्रदान करते है । इसीलिए उनमे बाह्याडम्बरो के प्रति अरुचि के साथ धर्म के आत्मिक आनन्दवाले भक्ति पक्ष के प्रति गहरी आसक्ति थी । भक्ति-साहित्य उनका सबसे प्रिय साहित्य था । भक्तो का जीवन उन्हे मोहता था क्योकि भक्ति का उनके निकट अर्थ था—अह का पूर्ण विसर्जन ।

हमारे देश मे पता नही किस तर्क से यह मान लिया गया है कि जिस व्यक्ति मे धर्म के बाह्याडम्बरो के प्रति अरुचि होगी, उसमे देश के इतिहास और परम्पराओ के प्रति भी अरुचि होगी । इस भ्रामक धारणा के कारण हमारे देश मे ऐसे लोगो की सख्या कम नही है जो लोक-सस्कृति, देश के इतिहास और परम्पराओ मे रुचि रखने वाले लोगो को पुनरोत्थानवादी मानते हैं । भागीरथजी की देश के इतिहास और परम्पराओ मे गहरी रुचि थी, और इस रुचि का पुनरोत्थानवाद से किसी प्रकार का सम्बन्ध न था । धार्मिक स्थानो की यात्रा मे भी उन्हें आनन्द आता था । रामेश्वरम्

को छोड कर वह प्राय सभी प्रमुख तीर्थ-स्थानो की यात्रा कर चुके थे। जब भी वह तीर्थ-यात्रा पर जाते, पडो की अश्लीलता को झेल कर भी उनसे पुरानी वहिया निकलवाते और उनमे अपने पूर्वजो के हस्ताक्षर और उनके द्वारा लिखे गये सन्देश बडे चाव से देखते। भागीरथजी के पुत्र अश्विनीकुमार जब काश्मीर मे मार्तण्ड और अन्य तीर्थ-स्थानो मे गये तो सब जगह उन्हे भागीरथजी के लिखे हुए सन्देश और हस्ताक्षर मिले।

किशनगढ मे एक बार सारा परिवार—पुत्रिया, सावित्री और ऊषा, पुत्रवधुए पौत्र और दौहित्र—जुटा तो भागीरथजी ने पुष्कर के पण्डे को बुलवाया और सबको १५० वर्ष पहले के अपने परदादा आदि के हस्ताक्षर बडे चाव से दिखाये और पण्डे की वही मे प्रत्येक बच्चे से हस्ताक्षर करवाये। उन्होने खुद पण्डे की वही मे लिखा "यह पुरोहितो की जो सस्था है और जिसे आजकल के पढे-लिखे लोग निकम्मी बताते है, वे नही जानते कि यह सस्था कितनी उपयोगी है। मैं चाहता हू कि आनेवाली पीढी इसकी उपयोगिता समझे और इसका सम्मान-करे।"

१९७० मे भागीरथजी ने व्यावसायिक जीवन से सन्यास ले लिया और साल मे तीन-चार महीने किशनगढ को केन्द्र बना कर राजस्थान मे रहने लगे। थोडे ही दिनो मे उन्होने आसपास के धार्मिक स्थानो और साधु-सन्तो का पता लगा लिया। उन्हे पता लगा कि किशनगढ के पास 'पीताम्बर की गाल' नामक जगह मे कोई मन्दिर है, जहा से कुछ दूर सलीमाबाद मे निम्बार्क सम्प्रदाय के आचार्य श्रीजी महाराज रहते हैं और जोधपुर के पास कोई साध्वी रहती है। इनके बारे मे उन्होने पूरी जानकारी प्राप्त की। आचार्य जी से उन्होने देश, दर्शन, अध्यात्म और आश्रम की व्यवस्था पर दीर्घ-चर्चा की। सलीमाबाद मे एक कुआ है। इसके बारे मे कहा जाता है कि उसमे से कितना ही पानी क्यो न निकाला जाय और इलाके मे कितना ही दुष्काल क्यो न पडे, उसका पानी कम नही होता। भागीरथजी इस कुए को देखने गये और उसके बारे मे लोगो से खोद-खोद कर पूछते रहे। आचार्यजी के पास वहा के राजा का एक पुराना रोजनामचा था। इसकी जानकारी भागीरथजी को हो गयी। आचार्यजी से आग्रह करके वह रोजनामचा उन्होने निकलवाया और पढा। रोजनामचे मे राजा के यहा एक बारात के आने का बडा विस्तृत विवरण है—कितने आदमी, कितने घोडे और नौकर आये, क्या क्या मिठाइया बनी, किसको क्या और कितना दिया गया आदि। रोजनामचे से बारातवाला अश उन्होने परिवार के लोगो को सुनाया भी।

किशनगढ मे डाक्टर फैयाज अली नामक विद्वान और चित्रकार रहते हैं। किशनगढ के एक राजा नागरीदासजी कृष्ण भक्त एव कवि थे। फैयाज अलीजी को उनकी रचनाओ पर शोध करने पर डाक्टरेट मिली है। फैयाज अलीजी ने नागरीदास के पदो के भावो पर अपने पुत्र से किशनगढ शैली मे चित्र भी बनवाये हैं। भागीरथजी पिता की विद्वत्ता और पुत्र की चित्रकारी पर मुग्ध हुए। जो भी किशनगढ आता उसे डा० फैयाज अली के बारे मे बताते और उससे कहते कि वह उनसे जाकर जरूर मिले।

किशनगढ मे भागीरथजी जिस घर मे रहते थे उसमें बैठक और भोजन के कमरे के बीच कांच पर खुदाई किये हुए चार दरवाजे है। उनमे बुद्ध को खीर देती हुई सुजाता, राम को बेर देती हुई शबरी और सुदामा का सत्कार करते हुए कृष्ण के चित्र अकित हैं। सुदामावाले चित्र मे श्रीकृष्ण सुदामा के चरणो मे झुके हुए है। श्रीकृष्ण का यह विनीत और अपने को क्षुद्र मानने का भाव भागीरथजी को विभोर करता था। घर मे जो अतिथि आता, उसे दरवाजो के पास ले जाते और बड़े चाव से चित्र दिखाते। सुदामा और कृष्ण का चित्र दिखाते वक्त उनकी आखो मे नरोत्तमदास का वही भाव उमड आता—"पानी परात को हाथ छुयो नहिं, नैनन के जल सो पग धोए।"

(४)

भागीरथजी आस्थावान व्यक्ति थे। वह यह मानते थे कि आदमी विवेक और बुद्धिसम्पन्न प्राणी है सो आपसी झगड़े सौहार्द और सद्भाव के द्वारा दूर किये जा सकते हैं, यदि व्यक्ति अपने अह को विसर्जित कर दे और दूसरो के बारे मे उदारतापूर्वक और न्यायपूर्वक सोचे तो बहुत सारी समस्याए उत्पन्न ही न हो। इस मान्यता के कारण वह काफी छोटी उम्र मे ही पचायतियो के पचड़े मे पड़े और लगभग अन्तिम दिनो तक पचायतिया करते रहे। कई पचायतियो मे तो उन्हे बहुत कुछ सुनना पडा—दोनो पक्षो या एक पक्ष की कटूक्तिया और अपने ऊपर दोपारोपण। कटूक्तियो और दोषारोपण को वह जिस तरह सह लेते थे, उसे सहिष्णुता की अति ही कहा जा सकता है। सीतारामजी की डायरियो से ऐसे कई प्रसगो का पता चलता है। १९ सितम्बर, १६४६ की डायरी मे सीतारामजी लिखते हैं. "....जी की कोई पचायत भागीरथजी ने की थी। उस बारे मे .... जी ने आज भागीरथजी को बहुत अनुचित बाते कही पर भागीरथजी उनको बिलकुल बरदाश्त करते रहे। भागीरथजी बहुत सहनशील है पर आज तो उनकी बहुत ज्यादा सहन करने की शक्ति का पता चला।" १९५८ मे जीप-दुर्घटना मे घायल होने के बाद भागीरथजी ने अत्यन्त शारीरिक अस्वस्थता एव कष्ट मे भी एक व्यक्ति के आग्रह पर एक पंचायती की थी। अत्यन्त कष्ट से बैठ कर घण्टो हिसाब-किताब कर फैसला किया लेकिन उनका फैसला 'आग्रही' व्यक्ति के अनुकूल न हुआ तो उसने भागीरथजी पर आरोप लगाया कि उन्होने (भागीरथजी) उसे जालसाजी कर फसा लिया और फैसला मानने से इनकार कर दिया। इस घटना का कई वर्षो बाद पता चला क्योकि भागीरथजी ने किसी को भी नही बताया था कि उनके साथ क्या बीती थी।

कटूक्तिया सुनने और आत्मीय स्वजनो के दूसरो के पचड़े मे पड कर अपने को परेशान न करने के उपदेश के बावजूद भागीरथजी अपने इस विश्वास के कारण पचायतिया स्वीकार कर लेते थे कि अपनी विवेकशील मध्यस्थता से वह दोनो दलो के बीच वैमनस्य को दूर कर सौहार्द तथा सद्भाव स्थापित कर सकेंगे। कभी-कभी तो पचायतियो मे उन्हे आर्थिक भार भी सहन करना पड जाता। पाठक सस्मरणो मे सीतारामजी केडिया के सस्मरण मे एक ऐसे ही प्रसग से भागीरथजी की सदाशयता

का आभास पा सकेगे । उनकी नजर मे कही भी कोई झगडा होता दिखायी पडता तो वह बीच-बचाव की जरूर कोशिश करते । शेखावाटी मे जाटो और मुसलमानो के गावो मे भागीरथजी ने बडा काम किया—स्कूल खुलवाये, कुए खुदवाये आदि । एक बार वह जीप से जाटो के एक गाव से गुजर रहे थे कि उन्होने देखा जाटो के दो दल लड रहे हैं और खुल कर लाठिया चला रहे है । वह जीप से तुरन्त कूद पडे और अकेले निहत्थे लाठियो के बीच घुस गये और दोनो दलो के बीच लडाई रुकवा कर ही रहे ।

१९७२ मे राजस्थान के चुरू नगर मे जैनियो और हिन्दुओ के बीच दगा हो गया । १९६१ मे तेरापथी जैन समाज के बडे आचार्य तुलसी गणि ने 'अग्नि परीक्षा' नामक काव्य लिखा था । इसमे उन्होने राम और सीता का चरित्र जिस तरह अकित किया था उसका सनातनधर्मियो द्वारा विरोध किया गया और इसके फलस्वरूप आचार्य तुलसी ने अपने काव्य मे सुधार करना भी स्वीकार कर लिया । लेकिन ग्यारह वर्ष बाद भी १९७२ मे आचार्य तुलसी जब चुरू आये तो सनातनधर्मियो ने पुरी के शंकराचार्य के नेतृत्व मे उनके खिलाफ बडे जोरो का आन्दोलन छेडा । इस आन्दोलन ने हिन्दू-जैन दगे का रूप ले लिया । दोनो तरफ से गुण्डो की मदद ली गयी, लूट-खसोट हुई और एक-दो आदमी मारे भी गये । भागीरथजी को इस दगे से बहुत पीडा हुई । वह चुरू गये और उन्होने सनातनियो और जैनियो के बीच शान्ति स्थापना करने की कोशिश की । दोनो पक्षो को एक साथ बिठा कर शान्ति वार्ता करवायी ।

झगडा मिटाने की कोशिशो का ही एक दूसरा पहलू यह था कि भागीरथजी स्वय कभी विवाद मे नही पडते थे । उनकी हमेशा यही कोशिश रहती थी कि विवाद उत्पन्न हो ही नही । श्रीमती कुसुम खेमानी ने बताया कि वह किसी समारोह मे भागीरथजी के साथ गयी थी, वही सीतारामजी भी उन्हे मिल गये और उन्होने भागीरथजी को उन्ही के (कुसुम खेमानी के) सामने डाटना शुरू कर दिया कि आपने (भागीरथजी ने) कैसे इस्तीफा दे दिया । बात यह थी कि भागीरथजी ने हलवासिया ट्रस्ट से इस्तीफा दे दिया था और इसकी खबर सीतारामजी को उसी दिन लगी थी । सीतारामजी कह रहे थे कि जिस ट्रस्ट मे आपने ३५ साल काम किया, जिसे आप एकदम शोचनीय हालत से उबार कर अच्छी हालत मे ले आये और जिसके मार्फत आप इतना काम कर रहे थे उससे आपने इतनी सहजता से इस्तीफा कैसे दे दिया । सीतारामजी कहते रहे और भागीरथजी चुपचाप सुनते रहे । उन्होने अपने सबसे अन्तरग मित्र को भी इस्तीफा देने के बारे मे सफाई नही दी (इस्तीफे के कारण के बारे मे पाठक पहले पढ चुके है) । उन्हे कही स्पष्टीकरण देना तक भी विवाद बढाना लगता था । किसी भी सभा-समिति मे यदि उनके किसी प्रस्ताव पर थोडी असहमति दिखती तो वह अपने प्रस्ताव को वापस ले लेते या उस पर आग्रह नही करते ।

भागीरथजी के बारे मे एक ऐसा किस्सा सुनने को मिला जिससे कटुता और विवाद के प्रसग टालने के बारे मे उनकी अत्यन्त सजगता का पता चलता है—एक बारात मे भागीरथजी वर-पक्ष के मुख्य कर्त्ताधर्त्ता थे । वधू-पक्ष वाले बारातियो के लिए फलो का इन्तजाम करना भूल गये । भागीरथजी को कही से भनक मिली कि वर-पक्ष के कुछ लोग फलो की कमी अत्यधिक 'महसूस' कर रहे हैं ।

उन्हे लगा कि इस 'महसूस' करने से कही वधू-पक्ष का अपमान न हो जाय सो उन्होने चुपके से खुद तत्काल फलो की व्यवस्था कर दी ।

विवाद उत्पन्न न होने देने की इस कोशिश के कारण भागीरथजी एकदम जरूरी हो जाने पर ही विरोध करते । सभा-समितियो मे बहुत सारे लोग छोटी-छोटी बातो या गौण बातो का विरोध कर एक प्रकार का असहिष्णु वातावरण बना डालते हैं । भागीरथजी की हमेशा यही कोशिश रहती कि काम मे बाधा न आये और इसके लिए वह गौण बातो को नजरअदाज करने के आदी बन गये थे । लेकिन यह थोडे अचरज की बात लगती है कि विवादो से बचनेवाले और भूल से भी अप्रिय सत्य न बोलनेवाले भागीरथजी किसी व्यक्ति के बारे मे कोई बदनामीवाली खबर सुनने पर उससे तपाक से सीधे पूछ लिया करते थे कि खबर सही है या गलत । एक महिला कल्याण सस्था के सचालक के बारे मे भागीरथजी को पता लगा कि उन्होने अपनी विवाहिता पत्नी के रहते अन्य स्त्री से विवाह कर लिया है । भागीरथजी ने इस व्यक्ति से तुरन्त पूछा कि खबर सही है या गलत । जब व्यक्ति ने विवाह करने की बात स्वीकार की तो उन्होने उसे कहा . "एक महिला-कल्याण सस्था के सचालक होते हुए आपने जो आचरण किया है, वह शर्मनाक है ।" कई लोगो ने हमे बताया कि वह कभी-कभी इस तरह प्रश्न कर डालते थे कि सामनेवाला आदमी शर्म से गड कर अपराध स्वीकार कर लेता था ।

सीतारामजी की डायरियो से पता चलता है कि वह भागीरथजी को कई बार कह दिया करते थे "आप समझते नही, जानते नही ।" ऐसा कहने के बाद वह यह भी लिखते कि यह भागीरथजी की महानता है कि वह ऐसी बातो का जरा भी बुरा नही मानते जब कि उनका ज्ञान और जानकारी ज्यादा है । सीतारामजी की ५० साल की डायरियो (१६२९-१९७९ ; भागीरथजी की मृत्यु के बाद और वृद्धावस्था के कारण सीतारामजी का डायरी लिखना बन्द हो गया) मे एक ही प्रसग है जिसमे भागीरथजी ने सीतारामजी को कोई कडी बात कही हो । १९४२ मे जब दोनो मित्र एक साथ जेल मे थे तब एक दिन सीतारामजी ने इस बात पर क्षोभ प्रकट किया कि जेल मे फल नही मिलते तो भागीरथजी ने उनसे कहा : "आपका यह क्षोभ मोहजन्य और अनुचित है ।"

भागीरथजी के जीवन के बारे मे जानने की कोशिश मे हमने जिन लोगो से भी मुलाकात की उनमे से प्राय सभी ने उनके कभी क्रोध न करने और यहा तक कि अपमान सह लेने की बात कही लेकिन इसका अर्थ यह नही है कि भागीरथजी ने निरीहता को गुण मान लिया था । गाधीजी ने अपने प्रभाव मे आये लोगो मे लोक-तान्त्रिक मर्यादाओ और वैयक्तिक अधिकारो के प्रति चेतना और जागरुकता पैदा की थी । गाधी-युग मे किसी भरी सभा मे मर्यादाविहीन और उद्धत आचरण करना सहज नही था । कोई करता तो उसका निश्चय ही कही न कही विरोध होता । भागीरथजी के द्वितीय पुत्र तुलसीदासजी कानोडिया ने भागीरथजी के जीवन के ऐसे तीन प्रसग बताये जिनसे लोकतान्त्रिक मर्यादाओ और वैयक्तिक अधिकारो के प्रति उनकी चेतना तथा उनके प्रति उनके आग्रह का पता चलता है । इन तीनो प्रसगो को आगे दिया जा रहा है :—

अंग्रेजो के जमाने की बात है। दूसरे विश्वयुद्ध के पहले १९३९ के किसी एक दिन भागीरथजी हवडा स्टेशन से दूसरे दरजे (तब तीसरे दरजे को दूसरे दरजे का नाम नही दिया गया था और दूसरे तथा तीसरे दर्जे के बीच एक ड्यौढा दरजा भी अलग था) के डिब्बे मे सवार हुए। इसी डिब्बे मे एक अंग्रेज भी अपना कुत्ता लेकर सवार हुआ। भागीरथजी ने गार्ड को कहा कि कुत्ते को साथ लेकर सफर करने की मनाही है सो अंग्रेज सज्जन कुत्ते के साथ सफर नही कर सकते। गार्ड ने अंग्रेज को कहा कि आपके सहयात्री को आपके कुत्ते के साथ सफर करने पर आपत्ति है तो उसने कहा मेरा कुत्ता तो मेरे साथ ही चलेगा। भागीरथजी ने कहा कि वह डिब्बे मे अंग्रेज सज्जन को कुत्ते के साथ यात्रा करने नही देंगे। लेकिन गार्ड ने अंग्रेज की रौद्र मुद्रा देख कर कहा कि वह कुछ नही कर सकता। इस पर भागीरथजी ने गार्ड से कहा कि आप यह लिख कर दें कि आप कुछ नही कर सकते। गार्ड ने लिख कर देने के बजाय कहा आपके पास सेकेण्ड क्लास का टिकट है। मैं आपको फर्स्ट क्लास के डिब्बे मे जगह देता हू। आप मेरे साथ चलिये। भागीरथजी ने कहा कि वह फर्स्ट क्लास मे नही जायेंगे और उसी डिब्बे मे चलेंगे और कुत्ते के साथ सफर भी नही करेंगे। ट्रेन चल पडी तो भागीरथजी ने चेन खीच कर ट्रेन रोक दी। गार्ड को समझ मे आया कि यह व्यक्ति माननेवाला नही है तो उसने हार कर अंग्रेज को कहा कि नियम के अनुसार आपको ही उतरना होगा। आखिर मे इस तरह अंग्रेज को कुत्ते के साथ डिब्बे से उतरना पडा।

दूसरी घटना भी रेल-यात्रा की ही है। १९४४ मे भागीरथजी अपने पुत्रो, तुलसीदासजी और ज्योतिप्रकाशजी के साथ पुरी जा रहे थे। ज्योतिप्रकाशजी की उम्र तब ५-६ साल थी। उन दिनो ट्रेन की खिडकियो में छड नही रहते थे। रात को ज्योतिप्रकाश ट्रेन से गिर गये। भागीरथजी ने चेन खीच कर ट्रेन रोकी। गार्ड अंग्रेज या ऐंग्लो इंडियन था। भागीरथजी ने उससे कहा कि बच्चे को ढूंढने के लिए ट्रेन विपरीत दिशा मे ले जायी जाय। गार्ड ने इससे इनकार किया तो भागीरथजी ने उससे कहा "टिकट खरीदनेवाले सभी यात्रियो को उनके गनतव्य तक पहुचाना रेलवे कम्पनी की जिम्मेवारी है। जब तक बच्चा नही मिल जाय तब तक आप गाडी आगे नही बढा सकते।" गार्ड को उनकी बात माननी पडी। इत्तफाक से उसी समय विपरीत दिशा मे जानेवाली एक ट्रेन आ गयी तो गार्ड ने उसे रोका। भागीरथजी उस ट्रेन मे बैठ कर गये। डेढ मील दूर पर बच्चा लहूलुहान और बेहोश मिला। उसे लेकर आये तब ट्रेन आगे बढी।

तीसरी घटना १९४६ की है। उन दिनो कलकत्ता बेल जूट एसोसिएशन और इन्डियन जूट मिल एसोसिएशन के बीच जूट के निर्यात को लेकर झगडा चल रहा था। मिलवाले निर्यात नही करना चाहते थे। कलकत्ता बेल जूट एसोसिएशन इस झगडे के सम्बन्ध मे एक प्रस्ताव पास करना चाहता था। जाहिर है कि यह प्रस्ताव जूट मिल एसोसिएशन के प्रतिकूल था। लेकिन बेल जूट एसोसिएशन के सेक्रेटरी श्री जे० जे० वी० सदरलैंड ने एसोसिएशन की सभा मे कहा कि वह इस प्रस्ताव को पास नही होने देंगे क्योकि यह जूट मिल एसोसिएशन के खिलाफ जाता है। उस समय सदरलैंड बगाल चेम्बर आफ कामर्स की ओर से बेल जूट ऐसोसिएशन और इण्डियन जूट मिल एसोसिएशन दोनो के ही सेक्रेटरी पद पर थे, उनका (सदरलैंड का) कहना था कि

चू कि वह दोनो एसोसिएशनो के सेक्रेटरी हैं इसलिए एक एसोसिएशन द्वारा दूसरे एसोसिएशन के खिलाफ प्रस्ताव पास होने नही दे सकते। सदरलैंड द्वारा प्रस्ताव का विरोध करने पर वेल जूट एसोसिएशन के सदस्य ढीले पडने लगे। भागीरथजी वेल जूट एसोसिएशन के सदस्य थे और वह भी सभा मे उपस्थित थे। उन्होने सदरलैंड को कहा कि यह वेल जूट एसोसिएशन की सभा है, जूट मिल एसोसिएशन की नही। इस पर सदरलैंड ने कहा कि यह ठीक है लेकिन वह अपनी मौजूदगी मे किसी भी हालत मे जूट मिल एसोसिएशन के खिलाफ प्रस्ताव पास नही होने देंगे। इस पर भागीरथजी ने उससे कहा कि तब आप इस सभा से उठ कर चले जा सकते हैं (यू आर फ्री टू गो)। सदरलैंड बैठक से चले गये और प्रस्ताव पास हो गया। (सदरलैंड के बारे मे यहा यह जानकारी देना आवश्यक लगता है कि कलकत्ता के १९४६ के हिन्दू-मुस्लिम दगे मे उन्होने अपने मुसलमान ड्राइवर की जान बचाने मे अपनी खुद की जान गंवायी। दगाई उनके ड्राइवर को मारना चाहते थे, उन्हे नही, लेकिन उन्होने दगाइयो का प्रतिरोध किया और अपने ड्राइवर की जान बचाने मे स्वय मारे गये)।

(५)

किसी भी व्यक्ति को अच्छी तरह जानने के लिए उसकी कार्य-पद्धति को जानना बहुत सहायक होता है क्योंकि वह व्यक्ति की मूल-प्रवृत्तियो की ओर इंगित किया करती है। आर्त्त के प्रति भागीरथजी की सम्वेदना की गहराई को जानने के लिए यह देखना आवश्यक लगता है कि वह किस प्रकार आर्त्त की सहायता करने की चेष्टा करते थे। भागीरथजी की हमेशा यह कोशिश रहती थी कि सहायता प्राप्त करनेवाला सहायता से स्वावलम्बी बनने की ओर मुखातिब हो और उसमे अपने कष्ट दूर करने के लिए कुछ करने का उपक्रम भी पैदा हो। व्यक्तिगत सहायता करते हुए भी वह इसी बात की चेष्टा करते थे। कितने ही लोगो की उन्होने इस तरह सहायता की जिससे वे आगे जा कर अपने पैरो पर खडे हो सके।

राजस्थान के गावो मे भागीरथजी ने हजारो कुए खुदवाये, लेकिन एक भी कुआ 'कूप-दान' के तहत नही खुदा। हर कुए के निर्माण के वक्त उनकी यह सख्त हिदायत रहती थी कि डायनामाइट से विस्फोट के बाद मलबा हटाने का काम गाव वालो को खुद करना होगा, अगर वे कुआ बनाने मे श्रमदान नही करेंगे तो कुए का काम बन्द कर दिया जायेगा। भागीरथजी राजस्थान मे इतने अधिक कुए बनवा सके तो उसका एक बहुत बडा कारण यह भी था कि कुओ की चिनाई आदि का काम गाववालो ने खुद किया।

१९५५ मे भागीरथजी ने अहमदाबाद के पास वीरमगाम मे कपडे की मिल खरीदी। इसके काम के सिलसिले मे उन्हे वीरमगाम रहना पडता था। सुबह टहलने की आदत होने के कारण वह वीरमगाम की सरहद के पास माण्डल रोड नाम की सडक पर टहलने जाने लगे। सडक के कुछ दूर पर भोजवा नाम का एक गाव है। एक दिन जब वह टहल रहे थे तो उन्हे एक अधनगा ग्रामीण मिला। भागीरथजी ने उससे बातचीत शुरू की। वीरमगाम मे फुलवारी नाम के एक बगीचे के कुए के

पानी को छोडकर अन्य सभी कुओं का पानी खारा था, ग्रामीण ने उन्हे बताया कि उसके गाव भोजवा मे भी पानी खारा है। ग्रामीण की बात सुन कर भागीरथजी सोचने लगे कि मीठे पानी का कैसे इन्तजाम किया जाय। उन्होने ग्रामीण को कहा कि अगर बोरिंग खोदा जाय तो पानी ज्यादा मिलेगा और मीठा भी। ग्रामीण बेचारे को पता भी नही था कि बोरिंग क्या चीज होती है। भागीरथजी ने इस पर गाववालो से बातचीत करना तय किया। उन्होने ग्रामीणो को बुलाकर कहा कि वह बोरिंग खोदने के लिए एक हजार रु० देंगे लेकिन बाकी गाव के लोगो को इकट्ठा करना पड़ेगा। उन दिनो एक बोरिंग खोदने मे १३-१४ हजार रुपए लगते थे। गाववालो को भागीरथजी का प्रस्ताव पसद आया, उन्होने काफी उत्साह और जोश से रुपये इकट्ठे किये। बोरिंग खुद गया और उसमे मीठा और भरपूर पानी निकला। यह बोरिंग आज भी चल रहा है। इससे गाववालो को मीठा पानी तो मिल ही रहा है, खेती भी अच्छी हो रही है।

भागीरथजी जो भी काम करते उसमे हमेशा छोटी-छोटी बातो का पूरा ध्यान रखा करते और अपने सहयोगियो और सहकर्मियो के बारे मे ज्यादा से ज्यादा जानने की भी कोशिश करते। जिन सस्थाओ का काम उन्होने सभाला उनकी दैनन्दिन की समस्याओ के बारे मे अपने को पूरी तरह वाकिफ रखा। राजस्थान मे बहुत सारा काम उन्होने पत्र-व्यवहार के द्वारा किया। वह काम के सिलसिले मे सस्थाओ के अधिकारियो से तरह-तरह के सवाल पूछते। विस्तार मे चीजो को जानने-समझने की उनकी इच्छा को कोई अधिकारी समझ नही पाता तो वह लिखते कि "मेरे पत्र का जवाब देते वक्त आप मेरा पत्र सामने रख लिया कीजिये तो सुभीता रहेगा।" किसी सस्था मे अधिकारियो के बीच किसी भी प्रश्न को लेकर मतभेद होने पर सभी पक्षो की बात बहुत ध्यान से सुनते और उन्हे यह समझाने की कोशिश करते कि वे एक दूसरे के प्रति उदार होकर सस्था के हित की बात सोचें।

उनकी कार्य-पद्धति उनकी सम्वेदना को पग-पग पर प्रकट करती थी। यह कहा जाता है कि किसी भी सस्था के काम को कुशलतापूर्वक करने के लिए थोडी बहुत कडाई की जरूरत पडती ही है। ऐसा लगता है कि भागीरथजी कही इस मान्यता को गलत साबित करने पर तुले हुए थे। राहत-कार्य उन्होने बडी कुशलता के साथ किये लेकिन कडाई कही नही बरती।

(६)

भागीरथजी जैसे व्यक्ति के बारे मे यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि क्या एक उद्योगपति के रूप मे वह ट्रस्टी थे? इस प्रश्न से कतराया नही जा सकता। जब-जब किसी सम्पन्न व्यक्ति की परदुखकातरता और आर्त्त के प्रति सम्वेदना की बात कही जायेगी तो सुननेवाला पलट कर पूछेगा ही "ठीक है, पर असली प्रश्न का जवाब दीजिये कि वह व्यक्ति ट्रस्टीशिप के सिद्धात पर कितना खरा उतरता था?" ऐसे प्रश्न का ठीक-ठीक जवाब दे पाना हमारे लिए सभव नही है लेकिन हम यहा इसका 'सामना' करने की कोशिश करते हैं।

गाधीजी ने ट्रस्टीशिप का सिद्धात तो रखा लेकिन यह कहना पडेगा कि वह अपने जीवन-काल मे और उसके वाद भी ऐसा कोई व्यक्ति पैदा नही कर पाये जिसे पूरी तरह ट्रस्टी कहा जा सके। प्रसिद्ध समाजवादी विचारक और नेता डा० राममनोहर लोहिया ने लिखा है कि ट्रस्टीशिप के सिद्धात पर ३० वर्ष तक कडी मेहनत के वावजूद गाधीजी सिर्फ एक ऐसा व्यक्ति पैदा कर पाये, जो उपभोग के मामले मे ट्रस्टी था लेकिन उत्पादन के मामले मे पू जीपति और समाज को अपनी सम्पति वसीयत कर जाने के मामले मे अर्धट्रस्टी और अर्धपू जीपति था। डा० लोहिया का इशारा स्व० सेठ-जमनालाल वजाज की तरफ था। हमारे खयाल मे यह जमनालालजी को वडी से वडी प्रशसा है।

डा० लोहिया की एक कसौटी पर भागीरथजी खरे उतरते हैं। उपभोग के मामले मे जमनालालजी की तरह वह भी निश्चय ही पूरे ट्रस्टी थे। उनका अपना रहन-सहन अत्यन्त सीधा-सादा और किसी भी प्रकार के खर्चीलेपेन और विलासिता से पूर्ण रूप से मुक्त था—जो परस दिया वह खा लिया और जो कपडे सिला दिये, वे पहन लिये। व्यापारी और उद्योगपति मे मुनाफा कमाने के लिए जिस प्रकार की "निर्ममता" होती हैं, वह भागीरथजी मे कतई नही थी। उनके मातहत काम करनेवाले सभी लोगो का कहना है कि उनका व्यवहार उनके प्रति कभी मालिक-नौकर जैसा नही रहा।

कर्मचारियो के वेतन के वारे मे भागीरथजी का क्या रुख रहता था, इस वारे मे सीतारामजी की २४ नवम्वर, १९४१ की डायरी से कुछ प्रकाश पडता है। मातृ सेवा सदन मे भागीरथजी कर्मचारियो का वेतन वढाने के पक्ष मे थे और सीतारामजी कर्मचारियो के वेतन को ठीक समझते थे। सीतारामजी लिखते हैं "(भागीरथजी की) विचार करने की पद्धति है और अपनी जो है उसमे फर्क है। और फर्क होना स्वाभाविक है। सवका एक सा विचार कैसे हो सकता है? दूसरी एक वात और भी है कि उनकी और अपनी स्थिति भी भिन्न है। आर्थिक कामो मे अपने उनके इतना साहस कैसे करे इसलिए कई मौको पर अडचन सी मालूम होने लगती है। जैसे सेवा सदन मे जितने आदमी काम करते हैं उनका जो वेतन है, वह अपनी निगाह मे ठीक है। वेतन वढाने की और नये आदमी रखने की और जरूरत नही। उनकी (भागीरथजी की) निगाह मे है। (लेकिन) वह अपने से कुछ नही कहेगे या अपने जो कहेंगे उसको मान लेगे। यह उनका सीधापन और सरलता है। इससे एक तो सेवा सदन में काम करनेवाले लोग यह समझेंगे कि सीतारामजी अनुदार हैं तथा काम को वढाना नही चाहते या उनकी हिम्मत कम है। नाना तरह की वाते हो सकती हैं। अपने भी सोचते है कि लोगो को ज्यादा वेतन दिया जाना चाहिए, जो काम दो आदमी करते हैं उसको जगह पर तीन करे तो शायद काम अच्छा होगा और काम करनेवाले आदमियो को आराम मिलेगा पर अपने इसको कर सकने मे असमर्थ से हैं क्योकि वेतन ज्यादा देने मे या ज्यादा आदमी रखने मे वही आर्थिक सवाल काम करता है। क्या तो पास मे ज्यादा रुपये और उनको लगाने की इच्छा हो, शक्ति हो या लोगो से ज्यादा रुपये उठाने की शक्ति हो। अपने दोनो वातो मे भागीरथजी से हल्के है इसलिए स्वभावत. अपने से उनकी वह वात (वेतन वढाने की) उत्साहपूर्वक स्वीकार नही की जाती। ऐसे ही दूसरी

सस्थाओ की बात है। आज रात उनसे थोडी स्पष्ट बाते की। अपना उनका कोई मतभेद नही है और न कोई और ही बात है। वह अपने को बहुत अच्छे, बहुत प्यारे और नजदीकी मालूम होते है। ईश्वर से यही प्रार्थना है कि अपने और उनसे अच्छे काम कराये।"

कर्मचारियो-मजदूरो के हडताल करने पर उनका रुख हमेशा बातचीत से विवाद का निपटारा करने का होता था। मोहनलालजी टीबरेवाल ने बताया कि भागीरथजी ने उन्हे एक बार उनके कारखाने मे मजदूरो के हडताल करने पर कहा कि ताश के खेल मे इक्का जिस तरह निर्णायक होता है उसी तरह मजदूरो का एका निर्णायक हुआ करता है। मजदूरो की बात टाली नही जा सकती, "मजदूरो के एका के सामने तुम्हे ही सेट्लमेट करना पडेगा।" श्री कल्याण आरोग्य सदन मे कर्मचारियो ने एक बार हडताल कर दी तो भागीरथजी ने सख्ती बरतना तो दूर रहा बहुत अल्प समय के भीतर चार बार सीकर की यात्रा की और बातचीत के द्वारा विवाद का हल किया और अपने साथियो को कहा "प्रबन्धको को (कर्मचारियो के साथ अपने विवाद को) प्रतिष्ठा का सवाल नही बनाना चाहिए। कुछ सुविधाए देनी चाहिए। जीत हमेशा मजदूरो की होती है। दीन-दुखी की सेवा और उसे सहयोग करने से आत्मा को शान्ति मिलती है।" मुकुन्दगढ के शारदा सदन कालेज के अध्यापको से बातचीत करते हुए भागीरथजी ने उद्योग-धन्धो मे मजदूरो की दशा सुधारने के बारे मे यह मत व्यक्त किया था : "सरकार का कुछ हस्तक्षेप तो आवश्यक है जैसे न्यूनतम मजदूरी, काम करने के घटे, वास्तविक छुट्टी, आवास आदि (के मामलो मे)।"

ट्रस्टीशिप के बारे मे भागीरथजी के शारदा सदन कालेज के अध्यापको से इस बातचीत के दौरान जो विचार प्रकट किये, उन्हे यहा उद्धृत किया जा रहा है। अध्यापको के प्रश्न—गाधीजी के ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त को क्या कभी व्यावहारिक रूप मिला है तथा इसकी उपादेयता क्या है—के जवाब मे भागीरथजी ने कहा : "यह कोई नया सिद्धान्त नही है। ईशोपनिषद के—

"ईशावास्यम् इदम् यत् किं च जगत्या जगत्।
तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृध कस्यस्विद् धनम्॥"

मन्त्र से स्पष्ट होता है कि यह बहुत पुराना सिद्धान्त है। गाधीजी ने समय-समय पर कहा है कि मैं जो कुछ प्रतिपादित कर रहा हू उसमे कोई नयी बात नही है। मैं तो अपने पूर्वजो द्वारा कहे गये सिद्धान्त को नयी भाषा और नये रूप मे रख रहा हू। इस सिद्धान्त की उपादेयता सर्वदा थी है और रहेगी। लेकिन लोगो के मन मे जब तक स्वार्थ-भावना है तब तक यह सिद्धान्त कार्य-रूप नही ले सकता। मनुष्य के मन मे यह तैयारी होनी चाहिए कि उसमे अपनी चाह कम हो, अपने लिए भोग की इच्छा कम से कम हो, देने की अधिक से अधिक। ज्यो-ज्यो यह भावना विकसित होगी त्यो-त्यो लोगो की सुख-शान्ति बढेगी।"

(७)

भागीरथजी के बारे मे इस जीवन-वृत्त मे हमने ज्यादा से ज्यादा जानकारी जुटाने की कोशिश जरूर की है, लेकिन हमे सदेह है कि हम उनके व्यक्तित्व

को पकड पाये हैं, जैसा कि हमने शुरू मे लिखा वह हमारी मुट्ठी से बार-बार फिसल जाते हैं। एक कारण तो यह भी है कि इस जीवन-वृत्त को जानकारी इकट्ठा करते-करते लिखा गया है। किसी पुरानी घटना की कोई नयी बात मालूम पडने पर उसे उसके स्थान पर जोड़ने के बजाय किसी अन्य स्थान मे घुसेडने की चेष्टा की गयी है, जिससे समग्रता के बजाय छितराव का ज्यादा आभास होता है। दूसरे, भागीरथजी के राजस्थान के काम के बारे मे गहराई से जानने के लिए राजस्थान जाकर लोगो से मिलना आवश्यक था लेकिन मिलने के बजाय पत्र-व्यवहार से काम चलाया गया है, जिससे वृतान्त मे भारी कमी रह गयी है।

कलकत्ता मे भागीरथजी के बारे मे जानने के लिए हम लोगो से मिले तो हमने पाया कि वह अजातशत्रु थे। ऐसे लोगो ने भी, जिन्हे समाज, खासकर मारवाडी समाज मे सनकी और विक्षुब्ध माना जाता है और जिनके बारे मे कहा जाता है कि वे केवल निन्दा ही करना जानते हैं, हमे बहुत प्रेम से भागीरथजी के बारे मे बताया और उनके प्रति श्रद्धा प्रकट की। ऐसे एक व्यक्ति ने कहा भी . "मैं मारवाडी समाज के सभी धनी-मानी लोगो से घृणा करता हू लेकिन भागीरथजी के प्रति मेरे मन मे अपार श्रद्धा है। मैं जो भी जानता हू वह बताऊ गा। भागीरथजी के गुण ज्यादा से ज्यादा प्रकाश मे आने चाहिए।" सभी मुलाकातियो ने भागीरथजी की परदुखकातरता और सम्वेदना की चर्चा की। एक ने राजस्थान मे अकाल के समय भागीरथजी द्वारा पशुओ के लिए चारे का प्रवन्ध करने के बारे मे बताते हुए कहा "बा न मीणखा की ई पीडा नई (ही) व्यापती जानवरा की भी व्यापती।" बातचीत के दौरान कितने ही लोगो ने उनके शिष्टाचार और सौजन्य (कर्टसी) की चर्चा की, साथ बिठा कर खिलाने की बात कही। उनकी सम्वेदना और हमेशा दूसरो का खयाल रखने के स्वभाव की एक चरम अभिव्यक्ति हमे उनके किसी को भी अपनी प्रतीक्षा न करने देने मे प्रकट होती मालूम पडती है। भागीरथजी को यह बात शायद कही बरदाश्त ही नही होती थी कि कोई उनकी प्रतीक्षा करे। हम और हममे खासकर जो भी थोडे प्रतिष्ठित हुए, सहज ही इस बात के आदी हो गये हैं कि अगर हम से कोई अपने काम से मिलने आया है तो उसे अगर वह हमसे कम प्रतिष्ठित हुआ, तो प्रतीक्षा करवाने मे कोई हर्ज नही। भागीरथजी से अधिकाश लोग अपने काम से ही मिलने जाते थे, ज्यादातर सहायता मागनेवाले, लेकिन उन्होने अपने जानते हुए किसी को भी कभी अपनी प्रतीक्षा नहीं करने दी।

इस ग्रन्थ मे भागीरथजी का अपने पौत्र श्रीनिवास के साथ एक बहुत ही सुन्दर चित्र है। बच्चो के प्रति उनके प्रेम के कई उदाहरण मिले। कोई बच्चा उन्हे चिट्ठी लिखता तो उसे चौथे दिन उनके हाथ का लिखा जवाब मिल जाता था (तब डाक-व्यवस्था आज जितनी बिगडी हुई नही थी)। भागीरथजी की सबसे छोटी पुत्री उमाजी की बेटी से, जिसने अपनी मा की शिकायत उनसे की थी, हमने मिलना चाहा तो वह नही मिली। वह अपने नानाजी के बारे मे उनकी मृत्यु के बाद किसी से बातचीत नही करती। उसका यह भाव किसी को भी द्रवित कर सकता है।

इस वृतान्त के प्रारम्भ मे हमने लिखा कि जिस व्यक्ति ने चुपचाप स्वधर्म निबाहा हो उसकी जीवनी लिखना उतना ही कठिन है जितना किसी गुप्त दानी के दान

का पता लगाना। 'स्वाधीनता आदोलन मे मारवाडी समाज की आहुतिया (राधाकृष्ण नेवटिया, १९४८)" मे भागीरथजी के परिचय मे लिखा भी गया है "कभी-कभी ऐसे अवसर भी आये हैं जब आपने खयाल किया है आज अच्छे कार्य मे सहायता प्राप्त करने के लिए कोई नही आया। अधिकतर गुप्त रूप से ही आप दान दिया करते है जिसकी सख्या कभी-कभी लाखो तक पहुच जाती है।" सचमुच ही उनकी जीवनी लिखना कही गुप्त दानी के दान का पता लगाना जैसा था। भागीरथजी के गुप्त दान के पीछे क्या सस्कार काम करते थे, उन्हे आज समझना भी कठिन है क्योकि यह मान लिया गया है कि दान के पीछे अगर प्रतिष्ठा प्राप्त करने की हविस न हुई (और ज्यादा से ज्यादा कोई अच्छी चीज हुई) तो अपराध-शमन की भावना होती है। भौतिकवाद के दुराग्रहो के चलते हम कही मनुष्य की उन प्रवृत्तियो को भी समझने से इनकार कर रहे है जो उसे पशु से ऊपर उठाती है, मानव बनाती है।

भागीरथजी के इस जीवन-वृत्त को लिखने के दौरान उनके अभिन्न मित्र सीतारामजी सेकसरिया और एक सहयोगी रामेश्वरजी टाटिया की डायरिया हमने पढी। सीतारामजी की डायरियो की इस जीवन-वृत्त मे बहुत दफा चर्चा आयी है और रामेश्वरजी की एक बार। १९५१ मे रामेश्वरजी भागीरथजी के साथ पहली बार १०-१५ दिन रहे। इस दौरान अपनी डायरियो मे भागीरथजी के प्रति उन्होने जो उद्गार प्रकट किये, उन्हे यहा उद्धृत करने का हम यहा लोभ सवरण नही कर पा रहे है क्योकि उसके बाद यह लिखने की बहुत जरूरत नही रह जाती कि लोगो पर उनका प्रभाव कैसा पडता था। रामेश्वरजी ३ दिसम्बर, १९५१ की डायरी मे लिखते है "भागीरथजी महापुरुष हैं"। इसके बाद १० दिसम्बर को उन्होने फिर लिखा: "भागीरथजी के साथ रहने से मालूम हुआ कि उनका स्वभाव बहुत ही अच्छा है।"

जीवन-वृत्त के इस 'उपसहार' को लिखने के दौरान भी उनके परिचितो से बात करने पर उनकी परदुखकातरता और सम्वेदना की कोई न कोई नयी बात मालूम होती है और यह लगता है कि द्रौपदी के चीर की भाति उनकी परदुखकातरता और सम्वेदना का कोई अन्त नही था। सीकर के एक ग्रामीण अपढ जाट ने सीकर मे भागीरथजी की मृत्यु पर आयोजित शोक सभा मे कहा कि वह भी कुछ बोलना चाहता है। जब इस जाट को मौका दिया गया तो वह बोला "भागीरथजी इन्द्र से भी बडे थे।" बडे होने का उसने कारण यह बताया कि अकाल के समय बहुत प्रार्थना करने के बावजूद इन्द्र नही आता था लेकिन भागीरथजी बिना बुलाये चले आते थे। इस अपढ जाट जैसी टूक बात कह कर इस वृत्तात को समाप्त करने की क्षमता हममे नही है सो हम लिखते है दुनियावी दृष्टि मे भागीरथजी बहुत बडे आदमी नही रहे हो लेकिन जिन्होने उन्हे जाना है वे जानते हैं कि वह कितने बडे थे। उनकी परदुख-कातरता और उनकी सम्वेदना का जो भी आधा-अधूरा चित्र इस वृत्तात से उभरता है, वह यदि हमे कही भी दूसरे के प्रति उदार होने मे और अपनी सम्वेदना का विस्तार करने मे मदद दे तो हम कृतकृत्य होगे।

●

अग्रज स्व० गगावक्सजी कानोडिया

युवा व्यवसायी भागीरथजी

युवावस्था का एक और चित्र

बुजुर्ग भागीरथजी दफ्तर में काम करते हुए

परिवार के बीच भागीरथजी

ऊपर खड़े बाए से : विमला कानोडिया, उर्मिला कानोडिया (पुत्र-वधुए), सावित्री खेमका, दीनानाथ खेमका, (पुत्री-जामाता), राधेश्याम भुवालका, उषा भुवालका (जामाता-पुत्री), भारती कानोडिया और मैना कानोडिया (पुत्र-वधुए) ।

कुर्सी पर बैठे बाए से आत्माराम कानोडिया, तुलसीदास कानोडिया (पुत्र), गगादेवी (धर्मपत्नी), भागीरथजी, अश्विनीकुमार कानोडिया और सन्तोषकुमार कानोडिया (पुत्र) ।

नीचे बैठे बाए से - कुमकुम, अलका, नीरजनयन, रश्मि, मधलिका और मृणालिनी ।
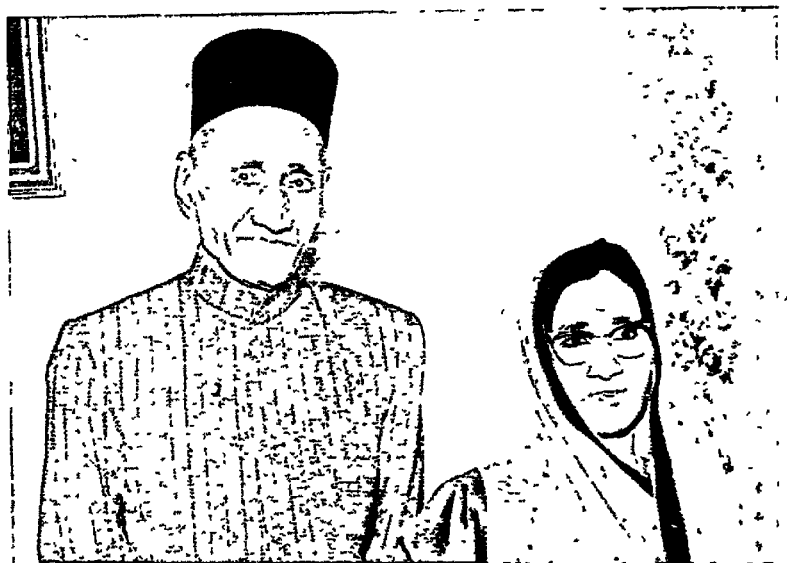
धर्मपत्नी गंगादेवी के साथ
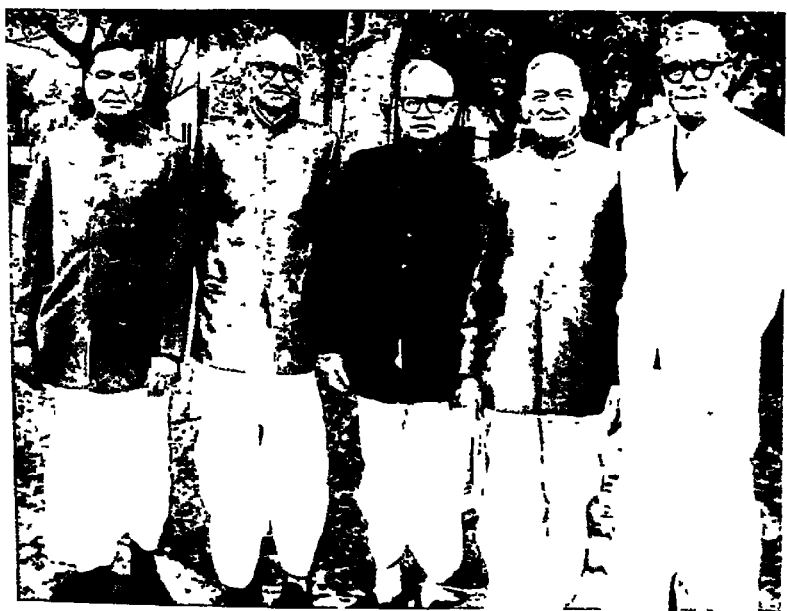
पांच समाज-सुधारक मित्र . बाएं से दाएं : स्वर्गीय श्री मोतीलालजी लाठ, स्वर्गीय भागीरथजी, श्री प्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका, श्री सीतारामजी सेकसरिया और स्वर्गीय श्री रामकुमारजी भुवालका

परम मित्र श्री सीताराम सेकसरिया के साथ

परम सहयोगी श्री बदरीनारायण सोढाणी के साथ

ज्योतिपीठ के शंकराचार्य स्वामी श्रीस्वरूपानन्दजी के साथ

मुनि जिन विजयजी की अभ्यर्थना करते हुए

लोकनायक जयप्रकाशनारायण को माला पहनाते हुए

वनस्थली के वार्षिकोत्सव (१९७१) मे आचार्य कृपलानी का स्वागत करते हुए। चित्र मे बाए से दाए आचार्य प्रेमनारायण माथुर, आचार्य कृपलानी, स्व० प० हीरालाल शास्त्री और श्री गोकुल भाई भट्ट।

राजर्षि स्व० टण्डनजी के साथ

अपने दो मित्रों—स्व० हीरालालजी शास्त्री और डा० प्रफुल्लचन्द्र घोष के साथ

१९४० मे देशरत्न डा० राजेन्द्रप्रसाद के वनस्थली आगमन पर समूह चित्र ।

श्री शिक्षायतन के उद्घाटन के अवसर पर प० बगाल के साथु राज्यपाल डा० हरेन्द्रकुमार मुखर्जी के साथ ।
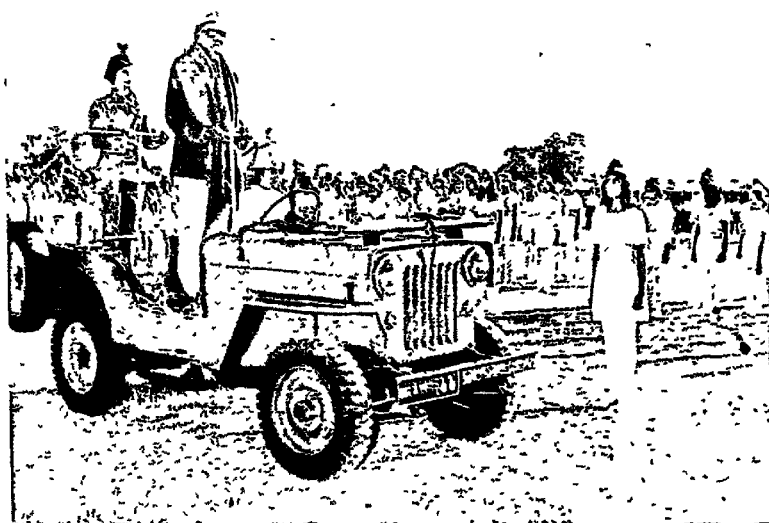
वनस्थली विद्यापीठ के वार्षिकोत्सव (१९७१) पर छात्राओं की परेड का निरीक्षण करते हुए।

श्री शिक्षायतन के एक समारोह मे बाए से दाए : तृतीय श्रीमती लतिका नाग, भागीरथजी, श्री सीताराम सेकसरिया, श्री भवरमल सिंघी और स्व० श्री जगन्नाथ वेरीवाल।

डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या के साथ

राजस्थान के सहयोगियो के साथ . बाए से दाए : श्री बदरीनारायण सोढाणी, श्री लादूराम जोशी, श्री रामेश्वर अग्रवाल, मास्टर आदित्येन्द्र और भागीरथजी ।
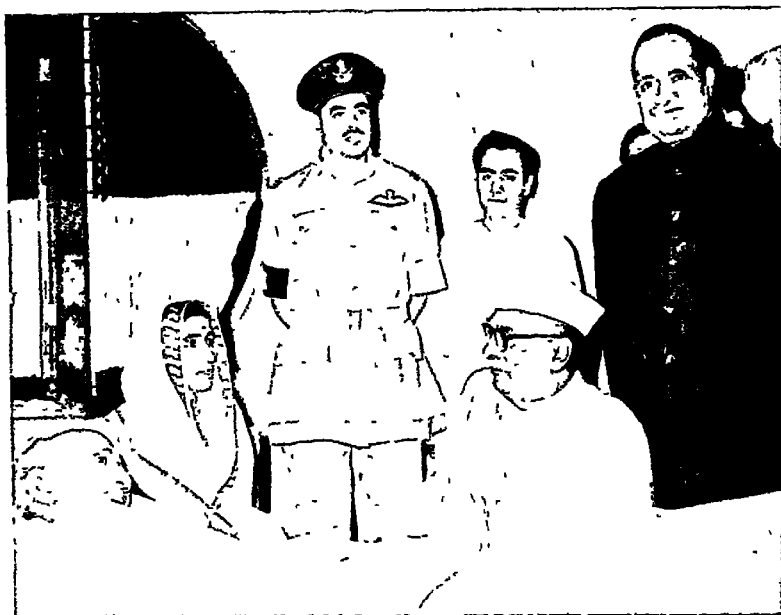
१९५८ मे जीप दुर्घटना मे घायल भागीरथजी को राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद घर पर देखने आये ।
चित्र मे श्रीमती गगादेवी कानोडिया, श्री आत्माराम कानोडिया और श्री राधाकृष्ण कानोडिया भी दिख पडते है ।

८०वें जन्म दिन पर अपने कुछ मित्रो के साथ। पीछे: बाए से दाए . नथमलजी भुवालका, सीतारामजी सेकसरिया और प्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका । सामने बाए से दाएं : ताराचन्दजी साबू और स्व० रामकुमारजी भुवालका ।
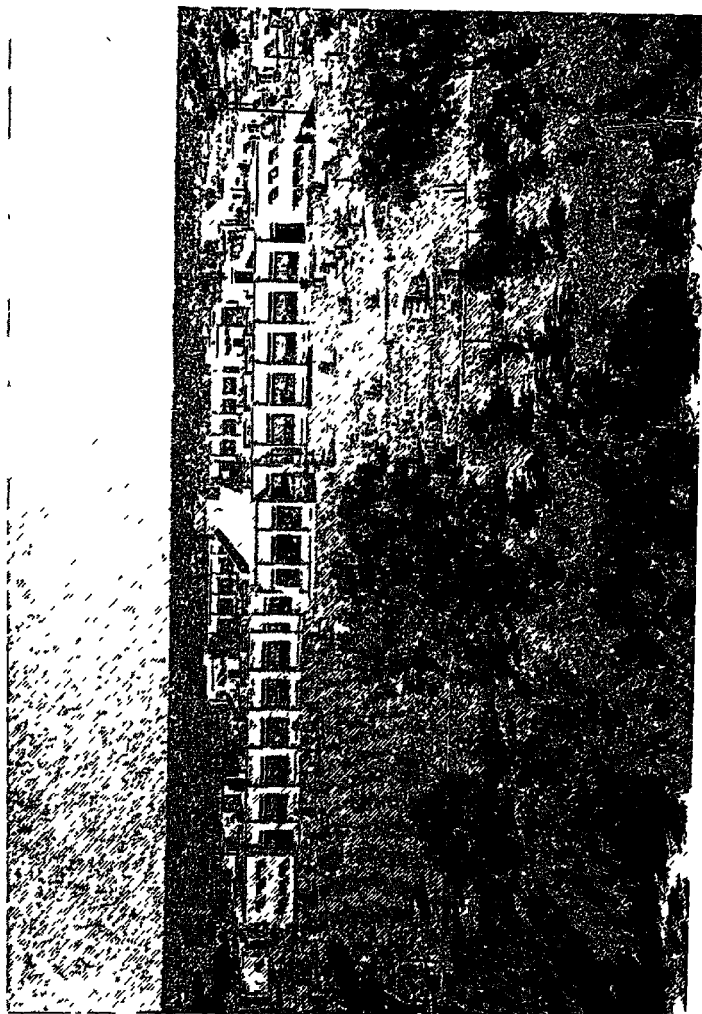
भागीरथजी का श्री कल्याण आरोग्य सदन, सीकर

पौत्र श्रीनिवास के साथ प्रसन्न भागीरथजी

चिर निद्रा मे

संस्मरण

सर्वोदय-सत
आचार्य विनोबा भावे

सेवाभावी भक्त

भागीरथजी सेवाभावी भक्त थे। गोसेवा और गोरक्षा के कार्य में उन्हें रुचि थी और उसमे उनका हमेशा सहयोग रहा। आशा है कि भागीरथजी का सेवा-कार्य उनके परिवार-जन आगे भी जारी रखेंगे। वही भागीरथजी का सही स्मारक होगा।

—: ० :—

सुप्रसिद्ध गांधीवादी विचारक एवं लेखक
काका कालेलकर

सज्जन और विनम्र

भागीरथजी कानोड़िया के साथ मेरा परिचय मेरे परम स्नेही सीतारामजी सेकसरिया द्वारा हुआ। उनकी सज्जनता और विनम्रता तो देखते ही प्रभावित करती थी। भागीरथजी जितने कार्य-कुशल थे उतने ही सज्जन भी। किसी के भी दुख मे मदद करने को हमेशा तत्पर रहते, किन्तु चाहते कि अपना नाम आगे न आये। प्रत्यक्ष राजनीति मे कोई रस नही था किन्तु स्वराज्य के लिये जेल अवश्य गये थे।

पूज्य गाधीजी के सब रचनात्मक कार्यो मे सदा मदद करते रहते थे।

—: o :—

श्री रामकृष्ण आश्रम नीमपीठ के मंत्री
स्वामी बुद्धानन्द

वीतराग जनसेवक

मेरे चारो ओर स्व० भागीरथजी की स्मृतिया वमी हुई हैं। सन् १९४३ का भयकर वर्ष युद्ध, अकाल और महामारी का वर्ष था। द्वितीय विश्वयुद्ध अपनी पूर्ण क्रूरता से ध्वस कर रहा था। उपनिवेशवादी ब्रिटिश राज भारत पर शासन कर रहा था और उसका रक्त चूस रहा था। उसने षडयन्त्र कर के बगाल से अनाज गायब कर के कृत्रिम अकाल की स्थिति पैदा कर दी जिससे कि भूख मरते लोग अग्रेजो की फौज मे भर्ती हो जायें। बगाल मे भीषण अकाल पडा। प्रत्येक घर से भूख के कारण अन्न की पुकार उठने लगी। लाखो की सख्या मे स्त्री-पुरुष और बच्चे कीडे-मकोडो की तरह मरे। महामारी ने भी इस अकालग्रस्त प्रान्त को धर दबोचा और मानव-प्राण हरने मे पीछे नही रही। दुर्भिक्ष एव महामारी के दोहरे प्रहार ने अपनी विनाशलीला से बगाल मे वास्तविक नरक का दृश्य उपस्थित कर दिया।

भागीरथजी कानोडिया इस विपत्ति के समय बगाल रिलीफ कमेटी के सेक्रेटरी के रूप मे राहत कार्य करने मे अगुआ बने। यह कार्य उनकी सगठन-शक्ति, कार्य-कुशलता एव सबसे अधिक अकालग्रस्त दीन-दुखियो के प्रति उनकी करुणा का प्रमाण था। इन राहत कार्यों के दौरान मुझे भागीरथजी से परिचय प्राप्त करने का अवसर मिला। मैने उन्हे बिना थके, बिना माथे पर शिकन लाये अनवरत कठिन परिश्रम करते, कभी-कभी दो-दो टेलीफोन पर एक साथ बात करते देखा है। बगाल के उस वीर पुरुष डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने मेरा भागीरथजी से परिचय करवाया था।

मैं सन् १९४५ मे अविभाजित बगाल से निकल पडा और सन् १९६१ मे विभाजित बगाल मे वापस आया। १९४५ से १९६० तक के वर्ष मैंने गिरनार पर्वत, हृषिकेष, उत्तर काशी तथा पशुपतिनाथ मे सयम धारण और ध्यान करने मे विताये। इन वर्षो मे अन्तिम कुछ वर्ष मैंने श्री रामकृष्ण आश्रम के आदर्शो के अभ्यास एव प्रचार, तथा गुजरात एव बम्बई मे जन-सेवा के कार्य करने मे व्यतीत किये। भारत स्वतत्र तो हो गया परन्तु गावो के करोडो भारतीयो को अभी तक आर्थिक स्वतत्रता प्राप्त करनी बाकी है। वापसी पर मैंने पश्चिम बगाल के ग्रामीणो की यथाशक्ति सेवा करने का निश्चय किया। इस कठिन एव भारी कार्य के लिए मैंने भागीरथजी से मार्ग दर्शन एव सहायता मागी। उन्होने सहर्ष स्वीकार किया और श्री रामकृष्ण आश्रम, नीमपीठ की कार्यकारिणी समिति के १९६१ से १९६४ तक उपाध्यक्ष एव १९६५ से १९७४ तक अध्यक्ष रहे। १९६१ से १९६४ तक का ४ वर्ष का समय बहुत कठिन था क्योंकि तब सब कार्यो का आरम्भ एव निर्माण शून्य से करना था। भागीरथजी ने, जो

स्वय मे एक सस्था थे, कार्य आरम्भ करने की सारी मुश्किलों को हल करते हुए आश्रम की सहायता की। आश्रम मे लडको का हाई स्कूल, लडकियो का हाई स्कूल, हरिजन एव अनुसूचित जाति के छात्रो के लिये आश्रम प्रणाली की पाठशाला, प्राथमिक विद्यालय, पूर्व प्राथमिक विद्यालय एव ग्रामीण पुस्तकालय, इन सब सस्थाओ के जन्म एव विकास के लिये उनका प्रेरक नेतृत्व उत्तरदायी है। बिजली की व्यवस्था, टेलीफोन एक्सचेज, रामकृष्ण आश्रम प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, मत्स्य विकास केन्द्र के साथ कृषि विकास केन्द्र की स्थापना, पक्के श्मशान घाट का निर्माण, डाक-घर का खुलना, पक्की सडक का निर्माण, ये सब उपलब्धिया उनके अथक प्रयास, दूरदर्शिता और महानता की कथा सुनाती है।

उन्होने कभी भी नाम और यश की आकाक्षा नही की। वह अपने कर्त्तव्य को साहस और ईमानदारी से पूरा करने मे विश्वास करते थे। इमारतो पर अपने नाम की शिला लगा कर अपना यश गाने की वृत्ति को वह नापसन्द करते थे और इसे व्यर्थ मानते थे। उनके अनुसार महान युगद्रष्टाओ एव विद्वानो की ही स्मृति चिरकाल तक रहती है। साधारण मनुष्य जिन्होने कभी थोडा सा कुछ काम कर दिया वे बहुत थोडे समय के लिये याद किये जाते है। उनसे किसी समारोह की अध्यक्षता कराना बडा कठिन काम था, क्योकि वह कभी भी उच्च पद पर आसीन होने के विरोधी थे। उनके जैसी नम्रता एव विनयशीलता अन्यत्र पाना दुर्लभ है।

एक अलभ्य गुण था उनमे—किसी को भी कष्ट न देने का। वह सावधानी से उन बातो से अपने को दूर रखते थे जिनसे दूसरो को पीडा पहुचे। वह सदा सबो को सहजता के वातावरण मे रखने का प्रयत्न करते और विरोध एव मतभेद से दूर रहते। वह अह भाव से अछूते थे और विवश किये गए बिना अपने बारे मे कभी कुछ नही कहते थे। वह परनिन्दा और परचर्चा से परे रहते। उन्होने किसी के लडाई-झगडे का कभी नाजायज फायदा नही उठाया और न कभी ओछापन दिखलाया। वह बहुत ही धैर्यवान, सहनशील एव दूसरो के लिये सदा रास्ता छोड कर हट जानेवाले व्यक्ति थे। उन्होने कभी किसी के प्रति मनोमालिन्य नही रखा तथा बातचीत मे सदा शान्ति और बडप्पन से काम लिया। वह बहुत ही मृदुल स्वभाव के मिष्टभाषी एव शिष्ट व्यक्ति थे। उनकी छवि सदा मेरी आखो के सामने घूमती है, उनकी वाणी मेरे कानो मे गूजती है और मुझे अपना कार्य करते रहने को प्रेरित करती है। उनकी स्मृति की सुगन्ध सदा हममे बसी रहे और हमे प्रेरणा देती रहे।

आश्रम की कार्यकारिणी समिति ने उनके निधन पर जो शोक प्रस्ताव पास किया था उसमे मेरी भावनाए प्रतिध्वनित होती है। अपने को व्यक्त करने के लिये उससे अधिक अच्छे शब्द मेरे पास नही है, इसलिये उसी के कुछ शब्द उद्धृत करता हू:

"सज्जनता मे बेजोड, अच्छाई और महानता के जीते-जागते उदाहरण, और प्रेरणा के अजस्र स्रोत भागीरथजी कानोडिया ने कर्मपूर्ण वर्षो का ऐसा जीवन जिया जिसकी कुजी सादगी थी और धर्म मेरुदण्ड था, उद्देश्य के प्रति सच्चाई उनके जीवन की विशेषता थी तो उदारता उनका मूल-मत्र था। देखने मे अत्यन्त सीधे-सादे, आचरण मे सहज, सबके प्रति मृदुल एव नम्र, खुशमिजाज और विनोदी, मन के कोमल, बोलने मे मीठे,

महृदय, सदा औरो के दृष्टिकोण के माथ मेल मिलाने को उत्मुक अपने स्वभाव के कारण वह मदा सबो के प्रिय और सम्मान के पात्र बने। उद्योगपति के रूप मे वह बहुत चमके, परन्तु उनकी नीरव और मौन रह कर दान देने और स्वार्थ से ऊपर उठ कर जन-कल्याण करने के वैभव की चमक कही अधिक थी। उद्योग-धन्धे मे व्यस्तता के बावजूद दीन-दुखियो और वचितो के प्रति उनकी मम्वेदना उन्हे नीमपीठ के रामकृष्ण आश्रम की ओर खीच लायी। तब आश्रम बीहड और दलदल में एक छोटी कुटिया मे अविकसित अवस्था मे था। उपाध्यक्ष और अध्यक्ष के रूप मे उनके दीर्घ, कार्यशील सान्निध्य की अनेकों मधुर स्मृतिया हैं जो आश्रम के आरम्भ के कठिन संघर्षमय दिनों की याद दिलाती है—उन्होने किम तरह नवजात मम्था को दृढता के माथ पाला और बडा किया, जिससे कि वह पीडित मानवता की सेवा करने का केन्द्र बन मके।

"आश्रम की स्थापना के समय से ही उन्होने, व्यक्तिगत हैसियत से दान देकर उसे बढाने की कोशिश की। उदारमना धनिक व्यापारियो और कलकत्ता के प्रतिष्ठित लोगो को आश्रम मे परिचित करवा कर, अपनी मिलनसारिता और याचना की अनुपम शैली के बल से, उन्हे केवल अपनी तिजौरी खोलने को ही नही वरन, इस मानव सेवा कार्य के लिये बडे-बडे अनुदान देने को प्रेरित किया। इस तरह उन्होंने आश्रम को शून्य से इस ऊ चाई तक पहुचने के मघर्ष में मदद की। आश्रम अति कृतज्ञता के साथ यह मानता है कि उनके महयोग और शुभ कामनाओ के बल पर ही वह आज इतना विकास कर पाया है। आश्रम मदा इस महान हितैषी की मधुर याद संजो कर रखेगा।

"१९७४ के आखिर मे वार्द्धक्यजनित दुर्बलता और अस्वस्थता के कारण उन्होने आश्रम की कार्यकारिणी के अध्यक्ष पद मे इस्तीफा दे दिया था परन्तु अन्त तक आश्रम के प्रति उनका प्रेम बना रहा। उनके द्वितीय पुत्र श्री तुलसीदास कानोडिया, जो उतने ही मिलनसार और आकर्षक स्वभाव के हैं, उनकी जगह आश्रम की कार्यकारिणी के सदस्य बने हैं। इस तरह कानोडिया परिवार के साथ आश्रम एक सूत्र मे बंधा रह गया है। भागीरथजी के रोमांचित करनेवाले व्यक्तित्व की सबसे महत्त्वपूर्ण बात थी कि वह हमेशा आश्रम की उन्नति के लिये उत्सुक रहे। आश्रमवासियों के तथा आश्रम की गतिविधियो के बारे मे तब भी पूछताछ करते रहे जब उनके जीवन की रेणु उनकी रोगशय्या पर से तेजी से फिसलती जा रही थी—यहा तक कि जब उनकी जीवन-ज्योति किसी भी क्षण बुझ जाने की धमकी दे रही थी और उनकी आवाज मृत्युगीत के भीषण शोर के बीच केवल फुसफुसाहट मात्र रह गयी थी।"

—: o :—

प्रसिद्ध जैन मुनि, अणुव्रत के प्रस्तोता

आचार्य तुलसी गणि

परिणाम-भद्र

कुछ सम्पर्क आपातभद्र होते है, परिणाम मे भद्र नही होते और कुछ सम्पर्क आपातभद्र नही होते, परिणाम मे भद्र होते है। भागीरथजी कानोडिया का जब पहली बार सम्पर्क हुआ, तब वह बहुत भद्र नही था। उनके मन मे भी अनेक आशकाए थी और हमारे मन मे भी एक विचार था। किन्तु जैसे-जैसे निकटता बढती गई, सारी आशकाए समाप्त हो गई और एक आत्मीय भाव बन गया। वे एक सामाजिक कार्यकर्ता थे, चिन्तनशील व्यक्ति थे और थे कर्मठ और बहुत समझदार। वे बात को बहुत जल्दी पकड लेते थे। एक बार जयपुर आये थे तो मेरे पास एक पुस्तक पडी थी—"जैन दर्शन : मनन और मीमासा"। उन्होने पुस्तक हाथ मे ली। उसका मूल्य देख कर बोले—"इतना मूल्य!" मैंने सोचा—सब लोग शिकायत करते हैं कि पुस्तको का मूल्य बहुत रखा जाता है। ये भी कहेगे कि मूल्य ज्यादा है। उन्होने दूसरी ही बात कही। वे बोले—"इतना कम मूल्य इस पुस्तक का! केवल पच्चीस रुपया! इसका मूल्य कम से कम पचास रुपया अवश्य ही होना चाहिए था। बहुत मूल्यवान् पुस्तक है। कम मूल्य देख कर लोग कहेगे—कोई महत्त्व की पुस्तक नही है, इसीलिए कम मूल्य रखा है, केवल पच्चीस रुपया। यदि पचास रुपया देखेगे तो कहेगे—कोई न कोई महत्त्वपूर्ण पुस्तक होनी चाहिए।" मैंने सोचा—कितनी गहरी बात! सामान्य व्यक्ति का दृष्टिकोण दूसरा होता है और प्रबुद्ध व्यक्ति का दृष्टिकोण दूसरा होता है। वस्तुस्थिति भी यही है कि प्रबुद्ध व्यक्ति यदि कम मूल्य देखता है तो उसकी यही धारणा बनती है कि यह या तो कोई प्रचार की पुस्तक है या इसमे कोई दम नही है। यदि यह महत्त्वपूर्ण होती तो इसका इतना कम मूल्य कैसे होता? यह दृष्टि का बहुत बडा अन्तर होता है। मैंने देखा कानोडियाजी की दृष्टि बहुत साफ थी। हर बात को बहुत जल्दी पकड लेते थे।

एक प्रसग बना। वे मेरे पास आकर बोले—"आचार्यजी, आपने उन तीन साध्वियो के प्रति जो दृष्टिकोण अपनाया वह सन्तोषजनक नही है।" मैंने कहा—"आपको वस्तुस्थिति ज्ञात नही है, इसीलिए आप यह कह रहे है।" उन्होने कहा—"यह सच है। मैं सुनी-सुनाई बात के आधार पर कह रहा हू। वास्तविकता का मुझे पता नही है।" तब फिर मैंने उन्हे सारा घटना-क्रम बताते हुए कहा—"क्या आप मेरी प्रवृत्ति से परिचित नही हैं?" उन्होने कहा—"बहुत परिचित हू। अनेक वर्षो से सम्पर्क मे हू।" मैंने कहा—"क्या मैं क्रूरतापूर्ण व्यवहार कर सकता हू और वह भी एक साध्वी के प्रति? क्या आप ऐसी कल्पना कर सकते हैं?" उन्होने कहा—

"जचता तो नही है। फिर भी आप इसे और अधिक स्पष्ट करे।" मैंने कहा—"अंतिम क्षण तक मैंने प्रयत्न किया कि यह घटना न घटे।"
घटना यो है—

वे उदयपुर मे थी। एक बहिन अस्वस्थ थी। विहार की स्थिति मे नही थी। बहिनो के बारे मे मेरे पास कई शिकायतें थी। मैंने कहा—"अस्वस्थ बहिन को वहा रख दो। उसकी परिचर्या मे एक पूरा ग्रुप साध्वियो का रख देंगे। बाकी की तुम विहार करके यहा आ जाओ।" तब उन्होने कहा—"हम बहिन को छोडकर नही आ सकती।" मैंने कहा—"बहिन या किसी का मोह साधु-जीवन मे नही रहना चाहिए। हा, सेवा होनी चाहिए—वह होगी ही।" उन्होने नही माना, तो मैंने यहा तक कहलाया—'तुम एक बार आ जाओ, फिर वापिस तुमको बहिन के पास भेज देंगे। इतना आश्वासन देने पर भी उन्होने कोई बात स्वीकार नही की। अनुशासन का प्रश्न उपस्थित हो गया। सघनेता के नाते, आचार्य के नाते मुझे अनुशासनात्मक कदम उठाना पडा। हमारे सघ मे अनुशासन की अवहेलना कभी मान्य नही हो सकती। इसलिए मुझे उन तीनो साध्वियो को सघ से अलग करना पडा।"

कानोडियाजी बोले—"यह स्थिति है, तब तो आपने उचित ही किया। किन्तु मेरे सामने घटना का दूसरा ही रूप प्रस्तुत हुआ था।" मैंने कहा "सुनी-सुनाई बात मे बहुत अन्तर रहता है।" उनकी धारणा स्पष्ट हो गई। मैंने देखा जब वस्तुस्थिति सामने आई तो उनका मन बिल्कुल भारहीन हो गया। मन मे कोई समस्या या उलझन नही रही।

वे एक उद्योगपति थे, धनी व्यक्ति और सम्मान्य थे। यह उनके जीवन का एक पक्ष है। किन्तु मैं उन्हे जिस दृष्टि से देखता हू, वह दृष्टि उनकी अन्य विशेषताओ के कारण बनी हुई थी। मुझे वैभव या सम्पदा से कोई विशेष सरोकार नही है। उनमे जो मानवीय गुणो का विकास था, वह दुर्लभ था। इस दृष्टि से उनके प्रति, उनकी आत्मा के प्रति मैं सद्भावना व्यक्त करता हू और यह आशसा करता हू कि उनकी आत्मा उत्तरोत्तर अपने चैतन्य को अनावृत कर आगे से आगे बढ़ी रहे।

—.०.—

हिन्दी की मूर्द्धन्य कवयित्री
श्रीमती महादेवी वर्मा

स्मृतियां

हर व्यक्तित्व की अपनी भाषा होती है। कुछ व्यक्तित्व ऐसे जटिल होते हैं कि जीवन भर उन्हे समझने का प्रयास करने पर भी सफलता सदिग्ध ही रहती है किन्तु कुछ ऐसे सरल होते है कि उन्हे क्षण भर मे खुली पुस्तक के समान पढा जा सकता है।

भाई भागीरथजी का व्यक्तित्व ऐसा ही सरल स्वच्छ बिल्लौर जैसा था, जिसमे किसी दुराव या अस्पष्टता का आभास मुझे नही मिला। भाई सीतारामजी को जान कर भागीरथजी को न जानना सम्भव नही था, क्योकि वे सीतारामजी के ऐसे मित्र थे, जो बाल्य-काल से अन्त तक उनके साथ छाया के समान निरन्तर भिन्न और अभिन्न रहे। उनके हर कार्य मे सहयोगी रहने पर भी उन्होने सीतारामजी के यश मे कोई अश-भाग नही चाहा। जब सीतारामजी ने स्वय देना भी चाहा तब उन्होने अपने सहयोग को भी उपेक्षित करके नकार दिया।

यश की लिप्सा मनुष्य की सहजात दुर्बलता है। उससे जो निर्लिप्त रह सके उसे असाधारण ही कहना चाहिए। मैंने विद्यापीठ के शैशव मे ही उन दोनो को साथ देखा। लम्बा कद, दुबली शरीर यष्टि, उज्ज्वल श्यामवर्ण, गोलाई लिए मुख और उसी के अनुपात से नाक-नक्श तथा आत्मीयताभरी आखो मे परिचयभरी सरल दृष्टि।

उसी समय परीक्षा-विभाग से महाविद्यालय-विभाग को १, एल्गिन रोड के पुराने बगले मे लाये थे और वहा एक पुराने बगले के अतिरिक्त विशेष कुछ नही था। छात्रावास भी नया-नया कामचलाऊ बना लिया था। भोजनालय भी कच्चा-पक्का आधा बना था जिसके कच्चे आगन को लीप कर हम चटाइया बिछा कर बैठते थे। उसमे जब भाई सीतारामजी के साथ भागीरथजी आकर खडे हो गए तब पहले कुछ सकोच अवश्य हुआ परन्तु उन दोनो की प्रसन्न मुद्रा देखकर वह तुरन्त ही दूर हो गया। ऐसा लगा मानो हम जन्म-जन्मान्तर से परिचित और उसी ग्रामीण परिवेश मे पले-बढे हैं और बहुत दिनो के बिछोह के उपरान्त मिले हैं। वह कुछ ऐसी अनिर्वचनीय अनुभूति है जिसे व्यक्त करने मे शब्द असमर्थ ही रहेगे। भाई भागीरथजी के स्वभाव की एक विशेषता ने मुझे प्राय विस्मित किया है। सामान्यत मनुष्य अपने किये अपकार को स्मृति पटल से पोछ डालता है और उपकार को स्वर्णाक्षरो से अकित रखता है। इसके विपरीत भागीरथजी दूसरे के प्रति किये अपने उपकार को भूल जाते थे तथा अपनी छोटी से छोटी भूल को भी स्मृति मे अकित रखते थे। इतना ही नही दूसरा भूलना भी चाहे तो उसे याद दिलाते रहते थे। कहा नही जा सकता कि यह स्वभाव उन्हे किस जन्म की साधना से प्राप्त था, परन्तु यह विरल तो है ही।

उनकी मवेदनशील प्रकृति का प्रथम परिचय भी मुझे विद्यापीठ मे ही मिला। हम विद्यापीठ के सेवासदन मे पचास के लगभग असहाय वहिनो को नि शुल्क रख कर तीन वर्षो मे स्वावलम्वी वना देने का लक्ष्य रखते थे। उस युग मे भी इतनी महिलाओ के भोजन, वस्त्र, शुल्क आदि की व्यवस्था करना कठिन ही था। भोजन अत्यन्त मादा होता था। सब्जी, दही आदि सप्ताह मे दो वार ही दे पाते थे। भाई भागीरथजी को जव यह ज्ञात हुआ तव उनकी आखे सजल हो आई, जिनके आसुओ को छिपाने का वे प्रयत्न करते रहे। उनकी कातरता देखकर मैंने सात्वना देते हुए कहा कि भारत का अधिकाश जन-समुदाय ऐसा ही भोजन करता है परन्तु उनका समाधान नही हुआ और उन्होने भाई सीताराम के साथ उस अधिक व्यय-भार को मभाला जो उन वहिनो को नित्य अच्छा भोजन देने से वढा था।

उसी प्रकार जव वगाल से अपहृत कुछ वहिनो के वापस आने पर उन्हे उनके परिवारो ने स्वीकार नही किया तव महिला विद्यापीठ ने उनके लिए वनिता-विश्राम खोला और उनके पठन-पाठन की व्यवस्था की। इस व्यवस्था मे वे सहयोगी रहे।

साहित्यकार-ससद की स्थापना मे भी उनका सहयोग रहा। भाई सीतारामजी के हर सामाजिक-सास्कृतिक कार्य के तो वे अविच्छिन्न अग ही रहे, परन्तु अपने कृतित्व का कोई भार न उन्होने अपनी स्मृति मे रखा और न दूसरो को उसका स्मरण कराया। उद्योग के क्षेत्र मे रहते हुए भी हमारे स्वातन्त्र्य-सग्राम मे उन्होने महत्वपूर्ण सहयोग भी दिया और जेल मे वन्दी-जीवन भी विताया। पूज्य वापू के वे अपने जीवन के अन्त तक भक्त रहे। वापू के महाप्रस्थान के उपरान्त उनके अनेक भक्तो ने उनके सिद्धान्तो की सुविधानुकूल व्याख्या कर के अपने लिए सुविधाए जुटा ली किन्तु भागीरथजी जैसा समर्पित व्यक्तित्व ऐसी किसी सुविधा को हेय-दृष्टि से ही देखता रहा जो गाधीजी के नाम से सुलभ हो गई थी। आज उनके विना भाई सीतारामजी को देख कर मन विषाद से भर जाता है। छाया वृक्ष मे विलीन होकर भी उसे अकेला तो कर ही जाती है। उनकी कर्म-निष्ठा, उनका निष्काम-समर्पण, उनका अकुण्ठित स्नेह जो कभी उनकी वाणी मे मुखर नही हुआ, हम सवके हृदय मे अपना पता छोड गया है। इस युग मे जव मित्रता स्वार्थगत, स्नेह सुविधागत, और सहयोग लाभ और अर्थगत है, तव ऐसे व्यक्तित्व मिलना सम्भव नही रहा है। वे धन्य है जो ऐसा जीवन जी सके, जिससे अन्य जीनेवाले प्रेरणा ले सके। जो अपने आदर्श को अकुण्ठित रखकर विदा लेता है उसी का जीवन सार्थक है।

बध्यो वधिक पर्‌यो पुन्य जल उलटि उठाई चोंच।
तुलसी चातक प्रेम-पट, मरतहु परी न खोच॥

— o —

विश्वप्रसिद्ध भाषा-वैज्ञानिक

डा० स्व० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या

हिन्दी-प्रेमी

कानोडियाजी मेरे अत्यन्त सम्मानीय मित्रो मे से थे और उन्हे मैं प्रमुखतया दो रूपो मे पहचानता रहा। एक यह कि वे बहुत पुराने सामाजिक कार्यकर्त्ता थे और दूसरे यह कि वे सम्पर्क-भाषा हिन्दी के विकास मे सदैव ही प्रयत्नशील रहे। व्यक्तित्व और कृतित्व के लिए मैं उन्हे उच्चतम पद प्रदान करना चाहूगा क्योकि उन्हे मानव-सेवा की बेचैनी एक क्षण भी कम नही होती थी। हा, जरूरतमन्दो के पुनर्व्यवस्थापन के लिए गाधीजी ने जब व्यावसायिक व्यक्तियो का खुला आह्वान किया था तो कानोडियाजी उनमे से प्रथम पक्ति मे गणनीय थे। अत भागीरथजी जैसे सदाशय व्यक्तियो का उद्योग-व्यापार मे होना, वैश्य-समाज की आदर्श-प्रधान शुभ प्राचीन भारतीय परम्परा का मूर्तिमान स्वरूप है।

—:०—

भागीरथजी के अभिन्न मित्र
श्री सीताराम सेकसरिया

निष्काम कर्मयोगी

एक ऐसे व्यक्ति के बारे मे, जिसके साथ सत्तर वर्ष का परम आत्मीय दीर्घ सम्बन्ध रहा हो—जो बचपन, जवानी और बुढापे मे हमेशा साथ-साथ रहा हो, जिसके साथ रेल और जेल मे जीवन के सघन क्षण व्यतीत हुए हो—लिखना अत्यन्त दुष्कर है। लेकिन उसके बारे मे दुनिया को बताने की इच्छा भी बहुत प्रबल होती है। भाई भागीरथजी जैसे व्यक्ति के बारे मे जानने की बहुत लोगो मे इच्छा होगी, इसमे मुझे सन्देह है। हमारी दुनिया अब ऐसे लोगो की, जो अपने को नेता नही, कार्यकर्ता मानते है, कदर करना तो दूर उनके बारे मे जिज्ञासा भी अनुभव नही करती।

एक वाक्य मे कहना हो तो कहेगे कि गाधी-युग मे हमारे देश मे कार्यकर्त्ताओ की एक ऐसी जमात पैदा हुई, जिसने अपने हिन्दू-सस्कारो का अद्भुत रूपान्तर किया। हिन्दू-धर्म की बुनियाद पर ही इन लोगो ने प्रेम, करुणा और समता की भावनाए अपने मे इस तरह विकसित की कि उन्हे मुसलमान को पराया मानना या हरिजन को अछूत मानना पाप लगा। भाई भागीरथजी के हिन्दू-सस्कार तो प्रबल थे ही, साथ मे सामाजिक रीति-रिवाजो, राजस्थानी भाषा और कहावतो की विशद जानकारी के कारण उनमे अतीत के प्रति एक प्रकार का मोह भी था। लेकिन इन दोनो चीजो ने उनके व्यक्तित्व को सकीर्ण और पुरातनपन्थी बनाने के बजाय उदार और आधुनिक बनाया। यह कैसे सभव हुआ ? यह सोचने पर दो ही कारण नजर आते है—उनकी सम्वेदना और करुणा इतनी तीव्र थी कि वह उदार हुए बिना रह ही नही सकते थे। दूसरे, गाधीजी का प्रताप था कि हर आदमी कही-न-कही अपनी रूढिवादिता को त्यागने के लिए बाध्य हो रहा था।

देश गुलाम था, इसलिये भाई भागीरथजी ने राजनीति से सम्पर्क रखा था। उनके बगाल मे मत्री बनने की बात भी उठी थी। लेकिन देश के आजाद होने के बाद उन्होने राजनीति से सम्पर्क तोड लिया। वह अत्यन्त विनम्र व्यक्ति थे, सत्तर वर्ष के सग-साथ मे मैंने उनके मुह से कभी कडी बात नही सुनी। बातचीत मे क्षुद्रता और छोटेपन का प्रतिकार वह अपने को बातचीत से काट कर किया करते थे। हम सब झूठी प्रशसा सुनने पर कही-न-कही प्रसन्न होते हैं। अपने जीवन मे भाई भागीरथजी को ही मैंने एकमात्र ऐसा व्यक्ति पाया जो झूठी प्रशसा करनेवाले आदमी को यह कह कर चुप करा देता था कि 'आप इतनी हल्की बात क्यो करते है ?' अपने बारे मे कभी आत्म-प्रशसा के भाव मे कुछ बताते हुए मैंने उनको कभी नही पाया। अपने बारे मे उनकी यह उदासीनता उन्हे कही जनक-जैसा विदेह बनाती थी। मेरे मन मे उनकी

छवि राजा जनक की ही है। इधर मैंने उनमे एक परिवर्तन जरूर देखा था—उनकी लोक कथाओ की पुस्तक 'बहता पानी निर्मला' की चर्चा होने पर वह पूछते थे कि कौन-कौन-सी कहानी पढी, नही तो अपनी हर कृति और हर काम के बारे मे उनका रुख आसक्ति के बजाय वैराग्य का ही था।

आजादी की लडाई के दिनो मे उनका राजनीति से सम्पर्क रहा—गाधीजी, जमनालालजी बजाज, राजेन्द्रबाबू, सुभाषबाबू, टण्डनजी, सरदार पटेल और जयप्रकाशजी जैसी महान आत्माओ से भी उनका निकट का सम्पर्क बना। लेकिन उनका कार्य-क्षेत्र रचनात्मक ही ज्यादा था। गाधीजी ने जब हरिजनो का काम शुरू किया तब गाधीजी के सारे कामो मे उन्हे यही सबसे ज्यादा अपनी रुचि का लगा। हरिजन-बस्तियो मे जा कर वहा सफाई का काम करने, प्रौढ-शिक्षा के लिए रात्रिकालीन पाठशालाए खोलने और चलाने का काम उन्होने वर्षो किया।

१९४२ मे गिरफ्तारी के बाद १९४३ मे बीमारी के कारण जब उन्हे रिहा कर दिया गया तब बगाल मे १९४३ का महाअकाल ताण्डव कर रहा था। वह अकाल राहत के काम मे जुट गए। राहत-समिति के पास उन दिनो देश के कोने-कोने से मनीआर्डर आते थे। समिति के पास ४० लाख रुपये का कोष जमा हो गया था। बगाल के गाव-गाव मे जा कर अकाल पीडितो की सहायता का काम उन्होने जिस मुस्तैदी से किया उसकी तुलना राजेन्द्रबाबू के बिहार-भूकम्प के काम से करने की मेरी इच्छा होती है।

कलकत्ता मे कितनी ही सस्थाए उन्होने कायम की। मातृ सेवा सदन, मारवाडी बालिका विद्यालय, शुद्ध खादी भण्डार, श्रीशिक्षायतन, अभिनव भारती, भारतीय भाषा-परिषद आदि। मैंने जिन-जिन सस्थाओ का काम सम्भाला उनके मूल मे वह थे। बहुत कम लोगो को यह पता है कि मैंने जिन सस्थाओ का काम सम्भाला उनमे भाई भागीरथजी की साझेदारी कितनी अधिक थी। अपने को छिपा कर अदृश्य शक्ति के रूप मे काम करने की उनकी आदत जब भी स्मरण आती हैं, तब लगता है कि वह सचमुच ही देवता थे क्योकि देवताओ की शक्ति ही अदृश्य हुआ करती है।

राजस्थान मे एक बार जल-सकट के भीषण होने पर तत्कालीन मुख्यमन्त्री मोहनलाल सुखाडिया ने उनसे राज्य की जल-व्यवस्था का काम सम्भालने का आग्रह किया। भाई भागीरथजी ने पहली बार सरकारी मदद से काम किया। जल-बोर्ड के अध्यक्ष के रूप मे वह गाव-गाव मे घूमे। हजारो कुए और ट्यूबवेल खुदवाए। राजस्थान के लोग आज भी उनके इस काम की प्रशसा करते नही अघाते। अपने जीवन के अन्तिम दिनो मे वह सीकर (राजस्थान) के टी० बी० सेनेटोरियम का काम देख रहे थे। बद्रीनारायणजी सोढानी जैसे कुशल व मेहनती व्यक्ति का साथ पाकर उन्होने सीकर जैसे पिछडे इलाके मे टी० बी० का एक ऐसा सेनेटोरियम बनाया है, जो देश मे विशिष्ट है।

इस छोटे से परिचयात्मक लेख मे मैंने अत्यन्त मोटी मोटी सूचनाए ही दी हैं। सत्तर वर्षों के साथ के बारे मे लिखने के लिए कम-से-कम सत्तर पन्ने तो चाहिए ही। मैं और भागीरथजी राजस्थान के अगल-बगल के दो कसबो—नवलगढ और मुकुन्दगढ मे जनमे। आज से ६८ साल पहले उन्होने अपने शहर मुकुन्दगढ मे पुस्तकालय खोला और मैंने अपने शहर नवलगढ मे। वह सोलह वर्ष के थे और मैं अठारह वर्ष का। हमारी बचपन की मैत्री किशोरावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था से गुजर कर आज उनके चले जाने से खण्डित हो गई। इस वियोग का दुख कथन से परे है। लेख समाप्त करने के पहले भाई भागीरथजी के बडे भाई गगाबक्सजी की मुझे याद आती है। भागीरथजी से उम्र मे बडे होने के बावजूद वह भागीरथजी की बात को हमेशा बुजुर्गाना सलाह ही मानते थे।

—:०:—

सुप्रसिद्ध सामाजिक एव राजनैतिक कार्यकर्ता
श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका

उड़ रे हंसा जाओ गगन में

श्रीमद्‌भागवत मे लिखा है

यथा प्रयान्ति सयाति, श्रोतवेगेन वालुका
सयुजन्ते नियुजन्ते, काल वेगेन देहिन ॥

अर्थात् जिस प्रकार जल के प्रवाह मे वालू के कणो का मिलन होता है और बिछुडन होता है उसी प्रकार कालरूपी नदी के प्रवाह मे प्राणियो का मिलन और वियोग होता है।

उसी काल के प्रवाह मे आज से लगभग ६० वर्ष पूर्व सन् १९२०-२१ मे भागीरथजी से मिलन हुआ था और इस लम्बी अवधि मे हमलोग एक साथ काल-प्रवाह मे बहते रहे और एक दिन उनसे विछोह भी हो गया। जब साठ साल की लम्बी अवधि के प्रथम छोर से खडे होकर मजिल के अन्तिम सिरे की ओर दृष्टिपात करता हू तो भागीरथजी के साथ बिताई हुई न मालूम कितनी सुखद घडिया और घटनाए काल-यवनिका पर आ-आ कर चित्रपट की तरह छा जाती है। जिस व्यक्ति का सान्निध्य एव स्नेह इतने वर्षो तक मिलता रहा, जो जीवन के उतार-चढाव मे एक साथ डटा रहा, जो व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक एव पारमार्थिक सभी समस्याओ का शब्द-कोश की भाति समाधान रहा, उसके वियोग से मन पर कितना बडा आघात लग सकता है इसकी कल्पना करना सहज बात नही है। ऐसा लगता है

"ख्वाव था जो कि देखा,
जो सुना अफसाना था" ॥

जो कुछ आखो से देखा था वह सब एक स्वप्न का जजाल मात्र था और जो कुछ कानो से सुना था वह एक गल्प था, कहानी थी।

भागीरथजी सचमुच एक व्यक्ति ही नही थे, वे एक सस्था थे। अपने जीवन-काल मे भागीरथजी ने विभिन्न क्षेत्रो मे बडी सेवाए की। हजारो व्यक्तियो और सस्थाओ के वे सबल थे। उनकी सेवाओ से बहुत लोग परिचित भी नही है क्योकि उनका आदर्श कर्मनिष्ठा था। प्रचार, प्रसार और दिखावे से वे हमेशा दूर भागते थे। कई मित्रो ने उनके अभिनन्दन का प्रस्ताव कई बार रखा पर वे कभी सहमत नही हुए।

आरम्भ मे भागीरथजी बिडला परिवार के व्यवसाय के साथ सम्बद्ध थे और बिडला सस्थान मे जिम्मेवारी के पद पर आसीन थे। बहुत दिन काम करने के बाद उन्होने अपना व्यापार आरम्भ किया। उसमे वे काफी सफल रहे।

भागीरथजी महात्मा गाधी द्वारा चलाए गए स्वतन्त्रता मग्राम मे कन्धे से कन्धे मिला कर डटे रहे। जब-जब गाधीजी का आन्दोलन हुआ, उसमे वे शरीक हुए और

आन्दोलन को आगे बढाया। १९४२ के "भारत-छोडो" आन्दोलन मे ६ मास का कारावास उन्होने भोगा। गाधीजी के चलाए गए हरिजन आन्दोलन मे भागीरथजी ने गाधीजी के साथ धन सग्रह किया और उसमें हर तरह से उन्हे सहयोग दिया। हरिजन पाठशालाए खोली। हरिजनो के बीच उन्होने काफी दिलचस्पी से काम किया।

राजस्थान के लिए की गई भागीरथजी की सेवाए सदा चिरस्मरणीय रहेगी। हीरालालजी शास्त्री, मानिकलालजी वर्मा, हरिभाऊ उपाध्याय और राजस्थान के अन्यान्य नेताओ और कार्यकर्ताओ को भागीरथजी के सहयोग से काफी मदद मिली। बहुत सी सस्थाए ऐसी हैं, जिनको उन्होने खडा किया, कई सस्थाए ऐसी है, जो भागीरथजी की सहायता से ही फली-फूली हैं। उनका सहयोग न होता तो कदाचित वे वन्द हो जाती अथवा ठीक ढग से पनप नही पाती।

पुराणो मे वर्णन है कि राजा भगीरथ ने कडी तपस्या करने के बाद भारत मे गगा का अवतरण करवाया जिसने सारे उत्तरी और पूर्वी भारत को धनधान्य से सम्पन्न कर दिया। वह कार्य तो अपने ढग का अनूठा और बेजोड कार्य था। पर उसी तरह की भावना से प्रेरित होकर राजा भगीरथ की तरह भागीरथजी ने भी जल-बोर्ड के माध्यम से पेय-जल तथा सिंचाई के लिये जल की उपलब्धि करवाई। राजस्थान की सूखी और बजर भूमि मे कुए बनवाए और वहा हरित-क्राति पैदा कर दी। अनाज के उत्पादन में वृद्धि तो हुई ही साथ ही साथ रेगिस्तानी भूखड हरा-भरा हो गया। लोगो को घर-बैठे काम मिल गया। कृषि को नया जीवन मिला। नैराश्य के अन्धकार मे भटकते हुए गरीब किसान के हृदय मे आशा की किरण फूटी। जल-बोर्ड के काम मे लगे रहने के कारण एक समय उन्हे काफी चोट आई। कई फ्रैक्चर भी हो गए और कई महीनो तक उन्हे शैया पर रहना पडा।

उस युग से आज के युग की तुलना करें तो कोई जोड ही नही है। उस समय समाज कितना रूढिग्रस्त था? समाज मे कितना अन्धविश्वास, कितना अज्ञान फैला हुआ था, इसका आभास सिर्फ उन्ही को है जो उस जमाने से गुजर चुके हैं।

सन् १९२६ मे भागीरथजी तथा हम सब मित्र एक विधवा-विवाह करवाने मे सहयोगी थे। उस विवाह ने समाज मे काफी हलचल पैदा कर दी थी। पचायत बैठी, हमलोग भागीरथजी के साथ पचायती के सम्मुख उपस्थित हुए। कट्टर रूढि-वादियो को बहुत समझाया। विधवा-विवाह के पक्ष मे बोले। पर उस समय कौन हमारी बात सुननेवाला था? फलस्वरूप हमे जाति-बहिष्कृत किये जाने का दड भोगना पडा।

गाधीजी के खादी आन्दोलन के समय १९२६ मे कलकत्ता मे शुद्ध खादी भडार की स्थापना के कार्य मे भागीरथजी अगुआ थे। महात्मा गाधी के द्वारा शुद्ध खादी भडार का उद्घाटन हुआ। इस सस्था ने तब से आज तक खादी जगत् मे न मालूम कितना काम किया है। खादी पहननेवालो को आसानी से खादी पहनने का मौका दिया है और अब भी दे रही है। उनके विविध सेवा-कार्यो की यहा विस्तृत गणना नही कर रहा हू। ये तो कुछ सकेत है जिनमे भागीरथजी की गहरी रुचि थी।

हिन्दी भाषा-विशेषकर राजस्थानी साहित्य, भागीरथजी को विशेष प्रिय था। समय-समय पर वे हिन्दी पत्र-पत्रिकाओ मे लिखते रहते थे। उन्होने राजस्थानी

कहावतों का मकलन किया। "वहता पानी निर्मला" उनकी मरस लेखनी का एक नमूना है।

भागीरथजी के मामने जो भी मार्वजनिक काम आया, उमके लिये धन एकत्र करने मे वे अगुआ रहे। कोई काम ऐमा याद नही आ रहा है कि जिसमे उनका सहयोग तन-मन-धन मे न रहा हो। मभी कामों मे वे आगे रहते थे और मदद देने के लिये मदा तत्पर रहा करते थे। जितना काम कलकत्ता तथा अन्य स्थानो मे भागीरथजी ने किया शायद ही अन्य किमी मित्र ने किया हो।

भागीरथजी से उनके अन्तिम दिनो एव अन्तिम घडियो मे मिलता रहा। लगता था कि अस्ताचल की ओर सूर्य ढल रहा है और क्षितिज के उस पार विलीन होने के पहले वह अपनी लालिमा बिखेर रहा है। उनका वियोग इतना असह्य हो रहा था कि उनके पास जाकर बैठने की हिम्मत नही होती थी।

ऐसे बहुत विरले ही पुण्य-पुरुप होंगे जिन्होंने इस "नर चोले" को पाकर उसे सेवा-धर्म मे लगाया हो, जो जन-जन के दुःख-दर्द मे शामिल होकर उनकी आर्त्त-वाणी से द्रवीभूत हुए हो, अपने परिश्रम से कमाए हुए धन को गाधीजी के सिद्धान्त के अनुसार जनता की धरोहर माना हो और "तेन त्यक्तेन भु जीथा" की वेदवाणी को दैनिक व्यवहार मे उतार कर अपने जीवन सुमन की सौरभ चारो ओर फैलाई हो। भागीरथजी उन्ही महान आत्माओ मे मे थे, जिन्होने मानवीय उसूलो को अपनाकर अपना जीवन सार्थक किया और एक दिन उन्होने अपने निर्मल चोले को प्रभु के समक्ष रख दिया।

"उड रे हसा जाओ गगन मे, खबरा लाओ मेरे प्रीतम की।"

और वह हंस अपने साध्य की प्राप्ति मे अपनी भौतिक सीमाओ को चीरता हुआ स्वच्छन्द गगन मडल मे विलीन हो गया, आखो मे ओझल हो गया। और हम असहाय की भाति देखते ही रह गए।

गीता के द्वारा बताये हुए उस शाश्वत सत्य का स्मरण करके कुछ ढारस मिलता है :

"अजो नित्य शाश्वतोय पुराणो, न हन्यते हन्यमाने शरीरे" ॥

—: o :—

भारत के भूतपूर्व उप प्रधानमंत्री,
ससत्सवस्य
श्री जगजीवन राम

पुष्पांजलि

श्री कानोडिया एक देशभक्त एव समाज-सेवी व्यक्ति थे। वे समाज और देश-सेवा के लिए सदैव तत्पर रहते थे और आजीवन इस काम मे जुटे रहे। दैवी प्रकोप से पीडित जनता का दु:ख अपना दु:ख मान कर वे उसकी सहायता का भरसक प्रयास करते थे। अपनी सेवा और दानशीलता के कारण कलकत्ता मे वे लोकप्रिय जन-सेवक के रूप मे जाने जाते थे।

— o —

सुप्रसिद्ध समाजसेविका,
एवं वनस्थली विद्यापीठ की सचालिका
श्रीमती रतन शास्त्री

न भूतो न भविष्यति

भाई भागीरथजी जैसे व्यक्ति के बारे मे जिनके साथ ५२ वर्ष के लम्बे समय तक आत्मीयतापूर्ण पारिवारिक स्नेह-सम्वन्ध की अजस्र धारा प्रवाहित होती रही, मुझे यह नही समझ पड रहा है कि क्या तो लिखा जाए और क्या छोड दिया जाय।

विवाह होकर अपने जयपुर पहुचने के कुछ ही महीनो वाद मुझे यह आभास होने लग गया था कि गवर्नमेण्ट का काम छोड कर किसी गाव मे जम कर बैठने और वहा कोई रचनात्मक काम करने की बलवती इच्छा शास्त्रीजी की है। शास्त्रीजी के भीतर जो गहरा मथन चल रहा था उसे देख कर एक दिन मैंने उनसे पूछ ही डाला कि इस प्रकार गम्भीर रहने का क्या कारण है ? उन्होने मुझे बताया कि बचपन से ही उनका यह विचार चलता रहा था कि वह किसी गाव मे बैठ कर गाववालो के भले के लिए कुछ करे, "मैं देख रहा हू कि इस समय मैं उससे उल्टी दिशा मे बह रहा हू। जब मनोनुकूल दिशा मे आगे बढने का विचार करता हू तो मुझे सहसा तुम्हारे और बच्चो का ध्यान हो आता है कि वैसी परिस्थिति मे तुम लोगो का मेरे साथ निभाव कैसे-क्या हो पायेगा।" यह सुन कर मैंने उस समय न तो कुछ सोचा और न ही कुछ समझा। सहसा मेरे मुंह से निकल गया कि आपको अपनी इच्छा के खिलाफ गवर्नमेण्ट के काम मे बिल्कुल नही रहना चाहिए। मेरे बारे मे आप कुछ सोचते हो तो मेरी बात तो यह है कि आप जो कुछ सोचते हो उसको कार्यान्वित करने मे मेरी वजह से आपको कोई कठिनाई नही होगी। फिर सही बात तो यह है कि जहा होगे राम वही होगी अयोध्या। थोडे दिन वाद मैं बीमार हो गयी और अपने पिताजीके पास रतलाम पहुच गयी। इसी बीच शास्त्रीजी ने अपने सरकारी काम से त्यागपत्र दे डाला।

इन्ही दिनो एक दिन दा साहब (भाई हरिभाऊजी उपाध्याय) जयपुर मे हमारे खेजडे के रास्ते स्थित मकान पर आये। उनसे शास्त्रीजी ने अपने गाव मे बैठ कर काम करने की विचारधारा की बात शुरू कर दी। उसके बाद शास्त्रीजी वर्धा चले गये। वहा काकाजी (श्री जमनालालजी बजाज) से उनका सम्पर्क हुआ। उनके साथ शास्त्रीजी बारडोली चले गये। उन दिनो बापू वही पर थे। गवर्नमेण्ट के काम को छोडने के बाद शास्त्रीजी माननीय घनश्यामदासजी बिडला के पास कुछ समय पिलानी रहे। पिलानी मे रहते बिडलाजी से सलाह-मशविरे के बाद यह सोचा गया कि कुछ दिनो कलकत्ता रह कर वहा सार्वजनिक काम करनेवाले कुछ लोगो से परिचय बढाया जाए और जो काम आगे करने को है, उसके बारे मे रूपरेखा बनायी जाए। इस प्रोगाम मे ५-७ महीने निकल गये। इस बीच मैं और बच्चे रतलाम रहे। कुछ

महीनो वाद शास्त्रीजी के साथ मैं भी कलकत्ता पहुच गयी। मेरे जयपुर से कलकत्ता पहुचने से पहले शास्त्रीजी के पत्रो से मुझे यह पता चल गया था कि वहा शास्त्रीजी के काम मे कुछ लोग दिलचस्पी लेने लगे है, तो कुछ लोग मार्गदर्शक और साथी जैसे वन रहे है। ऐसे लोगो मे से भाई सीतारामजी सेकसरिया और भाई भागीरथजी कानोडिया के स्नेह और उनकी आत्मीयता का कुछ-कुछ आभास भी मुझे शास्त्रीजी के पत्रो से हो गया था। इन दोनो का थोडा हालचाल भी शास्त्रीजी के जयपुर पहुचने पर मुझे मालूम हो गया था। हम लोगो के कलकत्ता पहुंचने के दिन भाई सीतारामजी तो हम लोगो को हावडा स्टेशन पर ही मिल गये और वहा से वे ही हमे उस मकान पर ले गये जो हम लोगो के रहने के लिए तय किया गया था।

मेरे लिए कलकत्ते मे सव कुछ नया था। सव लोग नये थे। वातावरण नया था तो वह सारा समाज भी नया था। पर्दा करना मैंने तव तक छोडा नही था और किसी नये व्यक्ति से वात करने मे स्वभावत झिझक और सकोच होता था। मुझे ठीक से याद नही आ रहा है कि मेरे कलकत्ता पहुचने के कितने दिन वाद की वात है—शायद १०-१२ दिन वाद की वात हो, भाई भागीरथजी को मैंने अपने घर आया देखा। मैंने अपने घूघट से ही उन्हे देखा, दुवला-पतला शरीर, सादा लिवास, सरल स्वभाव और बडा तेजस्वी चेहरा। उस दिन देखा हुआ उनका वह सौम्य चित्र इस समय भी ज्यो का त्यो मेरे सामने है। उनके जाने के वाद मैंने शास्त्रीजी को कहा कि "आप तो इनको सेठ वताते है, पर ये सेठ जैसे तो जरा भी नही लगते।" पर्दा होने के कारण भाई भागीरथजी और भाई सीतारामजी से सीधी वात करने का सवाल तो उस समय नही था। पर दिन भर वाहर रह कर शास्त्रीजी शाम को जव घर लौटते तो उनकी वातचीत से मुझे यह अहसास वरावर होता रहता था कि कामकाज के साथ-साथ शास्त्रीजी का इन दोनो ही मित्रो से दिन प्रतिदिन दिली सम्वन्ध वढता जा रहा है। जयपुर मे मित्रो और प्रियजनो के छूट जाने के कारण कलकत्ता पहुचने पर शास्त्रीजी एक प्रकार का अकेलापन और अपने को एकागी अनुभव करने लगे थे। परन्तु जो नया काम वे करना चाहते थे उसमे और व्यक्तिगत सम्वन्धो मे इन लोगो की वजह से ऐसा लगता था कि कलकत्ते मे भी अपने कुछ मित्र और प्रियजनो का ऐसा समाज जुट गया है, जो कठिन काम को करने मे साझीदार भी है।

हम लोग कलकत्ता से विदा होकर वर्धा पहुचे वहा वापू से भेंट हुई। नये काम के वारे मे उनका आशीर्वाद भी मिल गया। उस दिन मैंने पहली वार वहां शास्त्रीजी और भाई सीतारामजी को नये काम की कठिनाइयो के वारे मे एक पेड के नीचे वातचीत करते देखा। सीतारामजी कह रहे थे कि आप तो गाव मे जम कर वैठने का निश्चय कर लो, और कोई नही हो तो क्या अपन तो है ही। इस घटना के वाद वनस्थली मे मई, १९२९ मे "जीवनकुटीर" की स्थापना हुई। तव से ही भाई भागीरथजी से और सीतारामजी से मेरा सीधा सम्पर्क वना।

जैसे जैसे कामकाज मे, वातचीत मे भाई भागीरथजी से सम्पर्क वढता गया वैसे-वैसे उनके व्यक्तित्व, विचारधारा और रहन-सहन की एक सहज और अमिट छाप मेरे मन पर अकित होती गयी। मेरे मन मे यह विचार-मथन चलता रहता था कि

यह कैसा अनोखा व्यक्तित्व है जो इतने वैभव के बीच रह कर जल मे कमलवत् रहता है। अहकार कही इनके पास फटकता नही। जो कोई भी, जब भी जिस काम के लिए उनके पास गया होगा, उसकी वे दिल खोल कर इस प्रकार मदद कर दिया करते थे कि मुश्किल से ही किसी को उसका पता चल पाता होगा। यह कह सकते हैं कि दाहिने हाथ का किया बाये हाथ को नही मालूम हो पाता था।

जैसे-जैसे वनस्थली का काम बढता गया, वैसे-वैसे उस काम के प्रति उनकी लगन और रुचि भी बढती चली गयी। सर्वोपरि बात तो यह है कि हमारे दोनो परिवारो का नाता ऐसा बन गया कि हम एक ही परिवार के अग बन गये। यह *रिश्ता खून के रिश्ते से भी अधिक निकट का और पक्का था कि हम एक दूसरे के काम मे* दु ख-सुख मे भागीदारी अनुभव करते रहे। एक बार इस एकत्व के भाव का जिक्र अपने ढग से करते हुए अपने एक पत्र मे शास्त्रीजी हम दोनो की लासानी जोडी और हम चारो (भाई भागीरथजी और भाई सीतारामजी सहित हम दोनो की) की चौकडी की बात लिख गये तो भाई भागीरथजी का जो उत्तर मिला उसमे उन्होने लिखा कि "लासानी जोडी और चौकडी की खूब रही। लेकिन जोडी और चौकडी की गाडिया आगे के जमाने मे—याने आज से करीब बीसेक साल पहिले खूब हुआ करती थी। उनमे जो घोडे होते थे वे एक से हुआ करते थे। रग के, रूप के, कद के और उम्र के भी। जितना एकसापन घोडो मे होता था उतनी ही वह जोडी या चौकडी अच्छी मानी जाती थी। मेरे जैसा घोडा इस चौकडी मे उस हिसाब से किसी तरह भी ठीक बैठेगा नही। और ऐसे घोडे के साथ होने से चौकडी की कीमत कोई कद्रदा रईस लगायेगा भी नही।"

"शास्त्रीजी, मैं तो लोगो का अपने ऊपर स्नेह ही यह कारण मानता हू कि वे मुझे इस तरह निभा रहे हैं। नही तो अपनी कमिया या कमजोरिया मैं जानता हू और उन्हे देखते मैं अपने को आपकी चौकडी का हकदार नही मानता।" भागीरथजी के निरभिमान-भाव की यह बेमिसाल अभिव्यक्ति और कहा मिल सकती है?

शास्त्रीजी को जब भाई भागीरथजी का यह पत्र मिला तो उन्होने उनको लिखा: "जिस समय मैंने जोडी और चौकडी की बात लिखी थी उस समय घोडो की तो मुझे कल्पना भी नही थी। मनुष्य क्या घोडो से इतने गये-बीते हो गये कि उनकी जोडी या चौकडी न हो सके? आप अपनी कमियो और कमजोरियो को जानते है, इसीलिए *तो आप किसी भी जोडी या चौकडी के हकदार हो सकते है। असल मुश्किल तो मेरे जैसे* लट्ठ की है, जो बीस मे से उन्नीस बार अपनी खुद की राय को ही ज्यादा सही मानता हो।"

वे दूर बैठे भी काम की कठिनाइयो को आकते हुए काम करनेवालो को उत्साहित करते हुए दिशा दे दिया करते थे,—"बाधाओ से अपन को हताश नही होना चाहिए। अपनी शक्ति भर, अपने को बचाये बिना अपनी बुद्धि के अनुसार अपने को तो करते जाना है। सकट और असुविधा तथा अडचने जो अपने आप आवे या फिर लोग उपस्थित करे, उन्हे झेलते जाना और परखते जाना है।"

जीवन-कुटीर का काम उन्हे कितना प्यारा था और वे उसे किस महत्व का समझते थे, यह उनके इस कथन से स्पष्ट है कि "कुटीर का काम और उसकी कल्पना

हम लोगो को पसन्द नही, वल्कि उससे कुछ ज्यादा है। छोटी-मोटी एक ऐसी सस्था होनी ही चाहिए। फिर यह तो एक पुरानी और प्रिय चीज है जिसके पीछे एक इतिहास है। उसको जीवित रखना ही चाहिए।'

शास्त्रीजी मुझे अक्सर कहा करते थे · "मेरी मा मुझे डेड वर्ष का छोड कर चली गयी थी। परिवार मे सबसे वडा मैं था। अतः मेरा मार्गदर्शन करनेवाला मुझे कोई मिला नही। पर सार्वजनिक जीवन मे आने के वाद भाई भागीरथजी और सीतारामजी से जो आत्मीय सम्बन्ध बने, आराम-तकलीफ मे उनसे जो स्नेह, सलाह और सहायता मिलती आ रही है, उससे मुझे यह अभाव कभी खटका नही। भाई भागीरथजी जैसे कुछ व्यक्ति और हो तो देश का कल्याण हो जाए।"

मैं जव गहरे विचारो से घिर जाती हू तो मुझे शास्त्रीजी का एक वाक्य याद आता है, उससे मुझे वल मिल जाता है और मैं निश्चिन्त हो जाती हू। मैं और शास्त्रीजी सावित्री की पुत्री के विवाह के अवसर पर कलकत्ता पहुचे थे। तव शास्त्रीजी ने तो कुछ जरूरी काम से तुरन्त जयपुर लौटने का फैसला कर लिया था और मुझे वनस्थली के काम की दृष्टि से कलकत्ता ही रुकना पडा था। उनके कलकत्ता से रवाना होने के दो दिन पहले मैंने उनसे कहा था कि आप जयपुर पहुच कर वनस्थली से सुधाकर या श्याम (दिवाकर) को मेरे पास भेज देना। इस पर वे थोडे नाराज होकर कहने लगे कि, 'श्याम या सुधाकर कलकत्ते मे क्या करेंगे ? काम तो वनस्थली का नाम करेगा और मदद भाई भागीरथजी और सीतारामजी की होगी। तुम्हे क्या करना पडेगा ?" उनके इस प्रकार कहने पर मैं दो दिन तक परेशान रही। इससे पहले कितनी भी परेशानी मेरे सामने आयी होगी पर मैं कभी भी उनके सामने परेशान चेहरे से नही गयी हूगी। लेकिन मुझे मजूर करना चाहिए कि शास्त्रीजी के कलकत्ता से रवाना होते समय मैं हावडा स्टेशन पर अपने आपको निश्चिन्त और खुश दिखाने मे सफल नही हो सकी। मेरा उस समय यह हाल देख कर उन्होने ट्रेन से ही मुझे एक पोस्टकार्ड लिखा "तुम्हारा उदास चेहरा मैंने आज पहली वार देखा और मुझे लगा कि मैं तुमको अकेली को समुद्र मे ढकेल आया क्या ?" उसके साथ ही उनका अगला वाक्य था, "भाई सीतारामजी और भाई भागीरथजी के होते हुए मुझे तुम्हारी क्या चिन्ता है !" शास्त्रीजी पहले चले गये। वे अपने जिन अन्यतम मित्रो के भरोसे मुझे निश्चिन्त अनुभव करते रहने का अटूट भरोसा रखते थे, उनमे से एक भाई भागीरथजी भी शास्त्रीजी की तरह ही हमसे मुह मोड कर एक साल हो गया, उनसे जा मिले। नियति की कैसी विडम्वना है यह !

एक वार कोई प्रसग ऐसा ही आ गया कि भाई भागीरथजी के सामने मेरे मुह से निकल गया कि, "मैं कभी वुरा नही माना करती पर मुझे मजूर करना ही चाहिए कि आज तो मै थोडा वुरा मान ही गयी।" इस पर वे हसते हुए वोले कि, "आप वुरा मान गयी, पर मैं तो वुरा नही मानता न ! आप नाराज हो सकती है, पर मैं नाराजी को पहिचानता ही नही !"

एक दिन यो ही हसी-खुशी मे वात चल रही थी। वे पूछ वैठे, "रतनजी, यह तो वताओ कि सीतारामजी और मेरे मे से-हम दोनो मे से-आपको कौन ज्यादा

अच्छा लगता है ?" "मैंने फौरन ही जवाब दिया, "आपने यह कैसा अजीब सवाल किया। आपकी जगह भाई सीतारामजी नही भर सकते और भाई सीतारामजी की जगह आप नही भर सकते।" तो वे थोडे हसे और कहने लगे कि, "मैं यही सोच रहा था कि देखें, आप इसका क्या जवाब देती है।"

पिछले ५२ वर्षो के अपने सार्वजनिक जीवन मे मेरा राष्ट्र-निर्माताओ, उद्योग-पतियो, व्यवसायियो, सामाजसेवियो, कार्यकर्ताओ और आम जनता के छोटे-वडे सभी प्रकार के लोगो से वनस्थली के काम से काफी मिलना-जुलना होता रहा है पर जो आत्मीयता, दिलदारी, उदारता, विचारो की प्रौढता, सूझबूझ और सादगी भाई भागीरथजी मे देखने को मिली, उसका वखान करने के लिए मेरी कलम और जुबान नाकाफी है।

साधन-सम्पन्न लोगो का यह कायदा-सा वन गया लगता है कि जब कोई व्यक्ति सत्ता मे होता है तो उसकी मदद करने को वे आतुर रहते है, उससे सम्पर्क वढाने मे अपना गौरव समझते है। पर भाई भागीरथजी इसके सर्वथा विपरीत थे। वे ऐसे अनोखे व्यक्ति थे कि उन्होने किन्ही लोगो की कुछ मदद उनके सत्ता मे रहते कर दी होगी तो आवश्यकता पडने पर उससे कही अधिक मदद दिलेरी और दिलदारी से उस समय की होगी जब वह व्यक्ति सत्ताविहीन हो चुका होगा। इसमे भी उनकी अपनी वही परम्परा रहती थी कि उन्होने किस के लिए क्या कुछ कर दिया, उसका पता मुश्किल से ही किसी को चल पाता था।

वनस्थली कुछ बनी है। इस रचना के भाई भागीरथजी निर्माता, सरक्षक सलाहकार, सहायक और परम हितैषी स्तम्भ थे। वनस्थली के कार्यकर्ताओ को उनका बडा सम्बल था। शास्त्रीजी के शब्दो मे यथार्थ ही प्रकट हुआ था, जब उन्होने कहा था— "भाई भागीरथजी और भाई सीतारामजी के मौजूद रहते मुझे तुम्हारी और वनस्थली की क्या चिन्ता है ?" शास्त्रीजी के जाने के बाद वनस्थली के किसी सकट अथवा कठिनाई के समय भाई भागीरथजी की मौजूदगी ने मुझे कभी यह अनुभव नही होने दिया कि मैं किस के पास और कहा जाऊ ? जब कभी ऐसी परेशानी का मौका हुआ उनको पत्र लिख कर समाधान पा लिया या मिल कर वात करके हल निकाल लिया। अब तो शास्त्रीजी के वाद भाई भागीरथजी भी समष्टि मे विलीन हो गये। उनके जाने के बाद देश के सार्वजनिक क्षेत्र में उनसे निजी मित्रतावाले हजारो मित्र, उनसे सम्वन्ध रखनेवाली सैकडो सार्वजनिक सस्थाए ही उनके अभाव को जानती और अनुभव करती है कि वह कितनी बडी शक्ति थे। यह ऐसा अभाव है जिसकी पूर्ति सर्वथा असम्भव है। भाई भागीरथजी के लिए और क्या कहू ? उनका स्थान रिक्त ही रहेगा। उन जैसे वे ही थे। उन जैसा न कोई पहले हुआ और न होगा, "न भूतो न भविष्यति।"

— ० —

भागीरथजी के अन्यतम सहयोगी

श्री बदरीनारायण सोढाणी

जिनसे पिता का स्नेह मिला

यद्यपि आज श्रद्धेय बावू का शरीर हमारे बीच मे नही है, तथापि उस प्रेरणास्पद व्यक्तित्व के स्मरण मात्र से ही लगता है जैसे मैं परोपकार के लिए, उच्च आदर्शों के लिए उत्प्रेरित हो उठा हू। मैं यदि यह कहू तो अतिशयोक्ति नही होगी कि भागीरथ बावू ने सिर्फ मनुष्य शरीर ही नही पाया था बल्कि उसे पूर्ण सार्थकता प्रदान की और सही अर्थो मे इस नश्वर शरीर का जो सदुपयोग होना चाहिए वह उन्होने किया। पिछले ३८ वर्षो मे स्व० बावू का जो सान्निध्य मुझे मिला वह आज भी मेरे लिये प्रेरणा का राजमार्ग प्रशस्त कर रहा है।

उनसे जो स्नेह मुझे मिला वह धीरे-धीरे इतनी प्रगाढता को प्राप्त हो गया था कि मुझे याद ही नही रहा कि कभी उनके मेरे बीच अपरिचय भी था। फिर भी समय की गणना को सनो मे वाध कर याद करू तो वह १९३९वा ईस्वी सन् चल रहा था। मैं वर्मा से लौट कर आया था। उस समय राजस्थान मे भयानक अकाल पडा हुआ था। अत मारवाडी रिलीफ सोसाइटी, कलकत्ता की ओर से गावो मे अकाल-राहत के काम चल रहे थे। भागीरथ वावू सोसायटी के मन्त्री थे। चूकि आरम्भ से ही समाज-सेवा के कार्यो मे मेरी रुचि रही है, अतएव वर्मा से आते ही मैं भी इस अकाल-राहत के कार्यक्रम मे लग गया। बस यही से वह सूत्र अस्तित्व मे आ गया जिसके द्वारा एक ऐसे व्यक्तित्व के पथ से मेरा मार्ग जुड गया जिसके पास असहायो के लिए दयावान हृदय था, जन-सेवा के कार्यो को करने के लिए चिन्ताकुल मस्तिष्क था और कभी न चुकनेवाली क्षमता थी। बस, राहत-कार्यो के सम्बन्ध मे पत्र-व्यवहार होने लगा। जितनी सहायता के लिये हम उन्हे लिखते वे तुरन्त भेज देते थे तथा पत्रो द्वारा राहत-कार्यो के विषय मे उचित परामर्श देते और कामो की जानकारी मागते।

अभी पत्राचार के माध्यम से ही परिचय-सूत्र पनप रहा था कि सन् १९४२ मे प्रजामण्डल की सीकर-जिला कमेटी का गठन हुआ। उसके लिए धनराशि एकत्र करने के लिए मैं कलकत्ता गया। स्वाभाविक था, मैं भागीरथ वावू से मिलने गया। वस यही उस सौम्य व्यक्तित्व का प्रथम दर्शन हुआ और पहली बार मे ही मुझे अनुभव हुआ कि इन शात और गहरी आखो मे आदमी को परख लेने की अजव क्षमता है। मैंने उन्हे सीकर मे प्रजामण्डल-कमेटी के गठन की जानकारी दी और इसके लिए उनसे पाच सौ रुपये मागे। उन्होने किंचित भी विलम्ब किये विना मुझे पाच सौ रुपये दे दिये।

प्रजामण्डल दो तरह के कार्य करता था। पहले जनसेवा के कार्य और दूसरे राजनैतिक कार्य। मैं राजनैतिक कार्यों मे उतनी रुचि नही लेता था। मेरा

आग्रह जन-सेवा के कार्यो के प्रति ही रहता था और इसी सिलसिले मे मैं बराबर कलकत्ता जाता रहता था। वे जन-सेवा के कार्यो के प्रति, कभी हलवासिया ट्रस्ट से, कभी स्वय और कभी अन्य सस्थाओ के माध्यम से बराबर मदद देते रहते थे। जब भी राजस्थान आते सीकर आ कर जन-सेवा के कार्यो को देखते थे। उनकी हर समय यह इच्छा रहती थी कि अधिक से अधिक गरीब लोग लाभान्वित हो और इस सम्बन्ध मे उनसे लगातार पत्राचार चलता रहता था। यह क्रम १९४९-५० तक चला। १९४९ मे सरजिकल कैम्प लगाने का कार्यक्रम भी प्रारम्भ किया गया जिसमे शल्य-चिकित्सा करवाने की सुविधा लोगो को उपलब्ध करायी जाती। भागीरथ बाबू पूरी रुचि मे इस कार्य मे सहयोग करते थे।

इसी दौरान मेरा ध्यान दिनो-दिन फैलते जा रहे क्षय-रोग (टी० बी०) से लोगो को मुक्ति दिलाने की ओर गया। अत मैं और लादूरामजी जोशी, भागीरथ बाबू के पास कलकत्ता गये तथा उन्हे टी० बी० अस्पताल की योजना बताई। उस समय वे परपटी साध रहे थे। परन्तु वे तुरन्त हमारे साथ हो गये और कई जगहो पर सम्पर्क किया। पाच-सात लाख रुपयो का आश्वासन भी मिला, परन्तु फिर किन्ही कारणो से यह योजना स्थगित करनी पड गयी। इसी दौरान सन् १९५२-५३ में बीकानेर में भयानक दुर्भिक्ष पडा तब वहा मारवाडी रिलीफ सोसायटी की ओर से राहत-कार्य चले, जिन्हे भागीरथ बाबू की जिम्मेदारी पर मैं ही सम्भालता था। १९५३-५४ मे जयपुर में मारवाडी रिलीफ सोसायटी का क्षेत्रीय कार्यालय खुला तब चिडावा मे अकाल राहत का काम, चर्खे, सिलाई-मशीन आदि बाटने का काम भागीरथ बाबू की देख रेख मे मै करता था। इस तरह विभिन्न कार्यक्रमो के क्रियान्वयन के माध्यम से हम दोनो निकटतर आते जा रहे थे और उनका स्नेह-सिक्त वरदहस्त मेरी ओर बढता आ रहा था।

सन् १९५५-५६ मे राजस्थान मे जल-बोर्ड बना। करीब पौने दो करोड की इस योजना के तहत १०,००० नये कुओ, कुण्डो, तालावो का निर्माण होना था या पुरानो की मरम्मत होनी थी। भागीरथ बाबू इस बोर्ड के मन्त्री थे और उनकी देख-रेख मे मै काम सम्भालता था। बोर्ड को दो तिहाई राशि सरकार से मिलती, तथा एक-तिहाई जन सहयोग से प्राप्त की जाती थी। बोर्ड का व्यवस्था सम्बन्धी खर्च भागीरथ बाबू, स्व० रामेश्वरजी टाटिया व मातादीनजी खेतान के जिम्मे था। बोर्ड का लगभग सारा कार्य भार भागीरथ बाबू पर ही था। इस अरसे मे उनके साथ लगभग पूरे राजस्थान का दौरा करने का मौका मिला। दौरे के दौरान उनको मैंने कभी थकान से त्रस्त हुआ नही देखा। जिस गाव मे भी जाते बडी उत्सुकता से गरीब ग्रामीणो की समस्याओ को धैर्यपूर्वक सुनते तथा उनका कोई न कोई समाधान करते। किसी कार्यकर्ता से या कर्मचारी से कोई गलती हो जाती तो वे उसे इतने सहज भाव से लेते थे, कि गलती करनेवाला अपने आप ही आइन्दा गलती न करने का दृढ निश्चय कर लेता था।

इसी समय की एक घटना मुझे याद आती है। भागीरथ बाबू, टाटियाजी और मै जल बोर्ड के कार्य से जीप द्वारा मुकुन्दगढ से सालासर जा रहे थे कि रास्ते मे

एक्सीडेंट हो गया। भागीरथ बाबू के पैर मे भयकर चोट आयी (जिसका प्रभाव उनके जीवन भर बना रहा)। हम लोग तो सन्न रह गये, क्योकि हमने सोचा कि बाबू सदा के लिए हमारा साथ छोड गये है। परन्तु इसे ईश्वरीय कृपा कहिये या उनकी अजब सहन-शक्ति कि वे उस भयकर चोट को सह गये। उस बीमारी के दौरान भी उन्होने अपने मस्तिष्क को जन-सेवा के कार्यों की चिन्ता से मुक्त नही होने दिया।

जल-बोर्ड का कार्य सन् १९५८ मे समाप्त हो गया।

इसी प्रकार क्रम चलता रहा। मैं, अपना सारा समय सार्वजनिक कार्य मे ही लगा रहा था और पारिवारिक दायित्वो को पूरा करने के लिए समय नही निकाल पाता था। परन्तु मैंने तो एक ऐसे गहरी दृष्टि और उदारमना व्यक्ति का साथ पा लिया था जिसके कारण मुझे पारिवारिक जिम्मेदारियो के प्रति कभी चिन्ता नही रही क्योकि श्रद्धेय बाबू अपने-आप ही मेरे और बच्चो की पढाई-लिखाई के खर्च के लिए व्यवस्था करते रहते थे।

इधर जैसा कि मैं ऊपर उल्लेख कर चुका हू कि टी० बी० अस्पताल की योजना खटाई मे पड चुकी थी परन्तु मैंने इसके लिए प्रयत्न बन्द नही किया था। फलस्वरूप सावली में ४ दिसम्बर, १९६० को अस्पताल की नीव रख दी गयी। श्रीकल्याण आरोग्य सदन का गठन कर दिया गया था। मैं कलकत्ता गया। बाबू से मिला तो उन्होने अस्पताल के सम्बन्ध मे पूरी बात रुचिपूर्वक सुनी और पूर्ण योगदान दिया। विभिन्न सस्थाओ, ट्रस्टो और व्यक्तियो को अस्पताल के लिए सहयोग देने के लिए बराबर कहते रहते थे। १० वर्ष तक लगातार परोक्ष सहयोग उनका मिलता रहा। धीरे-धीरे उनके सहयोग और रुचि मे निरन्तर वृद्धि हो रही थी। ये १० वर्ष मेरे लिए बहुत व्यस्तता के रहे। अत मैं बहुत थक गया था। फिर 'सदन' मे कुछ आतरिक विवाद भी उठ खडे हुए थे। अत १९७० मे मैं बीदासर चला गया था। जब बाबू को यह बात ज्ञात हुई तो उन्होने इस सम्बन्ध मे जानकारी हेतु एक पत्र भी दिया और रुपये भी भेजे। अब स्थिति यह थी कि मैं सस्था से अलग होना चाहता था, परन्तु भागीरथ बाबू चाहते थे कि मैं सस्था मे बना रहू। सब लोगो ने मिल कर उन्हें अध्यक्ष बना दिया। परन्तु उनका आग्रह था कि मै मन्त्री रहू, तब ही वे अध्यक्ष होगे। मैं उनके स्नेहिल आग्रह को नही टाल सका।

बाबू ने अस्पताल के कार्य को इस तरह सभाला कि मैं तो कार्यभार से मुक्त ही हो गया। जैसे कोई व्यापारी अपने सर्वाधिक आय देनेवाले व्यापारिक केन्द्र को सम्भालता है, वैसे बाबू ने इस सस्था को सम्भाल लिया। साल मे तीन बार चाचीजी (अपनी पत्नी) व अपने निजी सचिव को साथ लेकर वे सीकर आते थे तथा अस्पताल के प्रत्येक कर्मचारी व मरीजो से मिलते थे। किसी भी समस्या का बडे सहज ढग से हल निकालते थे। किसी व्यक्ति के बारे मे कोई शिकायत आती तो उसे बिना उलाहना दिये दूर कर देने की अजीब क्षमता थी उनमे। छोटी से छोटी बात को बडे गौर से और धैर्य से सुनते थे। इस दौरान वे मुकुन्दगढ जाते तो जब तक वहा रहते, आस-पास के गावो, कसबो से टी० बी० के मरीज आते रहते और वे

उनका काम करते थे। कई बार तो मुझे ऐसा लगता जैसे टी० बी० अस्पताल का ही शाखा-कार्यालय वहा खुल गया है।

सन् १९७१-७२ में 'कासा' की ओर से १००० नल-कूपो के निर्माण का कार्य मैंने हाथ मे ले लिया। अब अस्पताल का काम और यह कुओवाला काम मैं साथ-साथ सम्भाल रहा था। परन्तु मेरी रुचि 'कासा' की कृषि-विकास-योजना की ओर अधिक थी। अत मैंने भागीरथ बाबू के सामने एक प्रस्ताव रखा कि 'कासा' वाले काम को अधिक व्यापक रूप दिया जा सकता है। चूकि विदेशी सस्थाओ से भारी मात्रा मे मदद मिल रही है, अत एक अलग सस्था का गठन किया जाय तो यह काम अधिक सुचारु रूप से हो सकता है। बाबू ने पूरी बात सुन समझ कर प्रस्ताव को सहमति प्रदान कर दी। फलस्वरूप १९७२ मे जन-कल्याण-समिति का गठन हुआ जिसके अध्यक्ष भागीरथ बाबू बने और मैं मन्त्री हुआ।

सन् १९७३ मे राजस्थान मे जबरदस्त अकाल पडा। हमने अकाल-राहत की योजना बनाई। हालाकि बाबू का स्वास्थ्य ठीक नही चल रहा था, इसके बावजूद उन्होने श्री रामेश्वरजी टाटिया को साथ लेकर अकाल-राहत हेतु धन सग्रह किया। इस तरह पहले वर्ष मे ही उनके मार्गदर्शन में जन-कल्याण समिति ने अकाल राहत जैसा भारी कार्य अपने हाथ मे ले लिया। उधर कूप-निर्माण का कार्य चल ही रहा था। इस दौरान उन्होने अस्वस्थ होते हुए भी बीकानेर, चूरू, नागौर, सीकर, झुझुनू, आदि जिलो का दो-तीन बार दौरा किया। हम लोगो को यह डर बना रहता कि कही उनके स्वास्थ्य मे गडबडी न हो जाय। परन्तु उन्होने कभी भी कोई कमजोरी नही दिखायी। हर समय वे उत्साहपूर्ण बने रहते थे।

शायद ही किसी भी यात्रा के दौरान उन्होने कहा हो कि "आज मुझे तकलीफ हुई है।" इतने अमीर होते हुए भी समयानुसार चाहे जहा सामान्य तरीके से रहने, खाने-पीने से वे जरा भी हिचकिचाते नही थे। एक बार भागीरथ बाबू, टाटियाजी और मैं जीप द्वारा कुचामन सिटी से गुजर रहे थे तो वही शाम हो गयी। बाबू ने अचानक गाडी को एक हलवाई की दुकान पर रुकवा लिया और नीचे उतर पडे। हम दोनो भी नीचे आ गये। बाबू ने तुरन्त हलवाई को बडे, पकौडी आदि खाने की सामग्री लाने को कहा। मैं अन्दर ही अन्दर काफी असमजस का अनुभव कर रहा था। यह सोच कर कि ..बाबू के यह क्या मूड मे आ गयी...इस तरह सरेआम एक साधारण सी दुकान पर इन जैसे बडे आदमी के लिये यू खाना-पीना करना ठीक नही है · " इधर मैं यह सोच रहा था और बाबू निश्चिन्त भाव से खडे टाटियाजी से बतिया रहे थे। खाने की चीजे हाथो मे आ गयी तो मैंने हिचकिचाते हुए कहा "यदि अपन को इस तरह खाते हुए कोई जानकार देखेगा तो क्या कहेगा" (असल मे आस-पास के लोग हमारी तरफ देख रहे थे, इससे मुझे और भी सकोच हो रहा था, फिर उस समय तक आस-पास के बहुत सारे लोग बाबू को व्यक्तिश जानने लगे थे)। मेरी बात सुन कर बाबू थोडे मुसकराये और कहा, "तो आपण के है, कहण हाला कै घरा चल्या चालागा।" सब लोग एक साथ हस पडे। हलवाई तो बेचारा अपने आप को पहले से ही कृतार्थ अनुभव कर रहा था। बाबू के मुह से यह बात सुन कर तो वह गद्‌गद् हो गया।

जन कल्याण समिति अपना कार्य सुचारु रूप से कर सके, इसके लिए समिति का व्यवस्था-खर्च उन्होने अपने जिम्मे ले रखा था और मुझे याद नही कि मुझे कभी भी उन्हे रुपये भेजने के लिए लिखना पडा हो। वे स्वय ही समय पर व्यवस्था-व्यय के रुपये भेज देते थे। समिति के विभिन्न कार्यक्रमो के लिए धनराशि हेतु मैं उन्हें कम से कम तकलीफ देना चाहता था फिर भी वे स्वय ही समिति के लिये रुचिपूर्वक सक्रिय रहते थे, कामो को देखते थे और जहा भी कोई अडचन आ जाती उसे तुरन्त दूर करने के लिए जुट जाते। वे जिस भी काम मे हाथ लगा देते, फिर उसके लिये रुपयो की कमी नही रहती। उनके कहने पर लोग तुरन्त सहयोग करते और आदर-पूर्वक उनकी बात को मानते। एक बार खादी-विकास के कार्यक्रम के लिए रुपयो की आवश्यकता हुई तो उनके साथ श्री कृष्णकुमार बिडला के पास जाना हुआ। ज्यो ही हम बिडला-बिल्डिंग मे पहुचे, श्री कृष्ण कुमार ने बहुत आदर किया और बाबू से कहा "पैसो के लिए आप यहा आये, मुझे यह अच्छा नही लगा। आप टेलीफोन कर देते, मैं रुपये आपके पास भेज देता।" तदुपरान्त वे हमे लिफ्ट तक पहुचा आये।

एक ओर जहा समिति के कार्यों के प्रति उनमे लगन रहती थी, वहा दूसरी वे मेरी निजी आवश्यकताओ के प्रति भी चिंतित रहते थे। इस अवधि में जब भी मुझे निजी कार्य के लिये रुपयो की आवश्यकता हुई मैं पुत्रवत् उन्हें निस्सकोच लिख देता था और वे पितावत् तुरन्त ही चैक या ड्राफ्ट भेज देते। बल्कि कई बार तो साथ के पत्र मे यह भी लिखते कि "इतने कम पैसे मे कैसे काम चलेगा?" कितनी चिंता रखते थे वे मेरी? पिछले ३-४ साल मे मेरा स्वास्थ्य खराब रहा। वे भी अस्वस्थ चल रहे थे। इसके बावजूद वे बराबर स्वयं पत्र लिख कर मेरी तबीयत के बारे मे पूछते रहते और इलाज के लिए पैसे की चिन्ता न करने के लिए लिखते रहते। कुछ अरसे के लिए मैं अमेरिका रहा तब वहा भी उनके स्नेह-सिक्त पत्र मिलते रहते थे।

कितनी सदाशयता, उदारता, निष्ठा और लगन उस सौम्य पुरुष ने पाई थी। इससे भिन्न और देवत्व क्या होता होगा? ३८ साल तक उनके सान्निध्य का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। इस अरसे मे कभी भी किसी गलती के लिए उन्होने मुझे उलाहना नही दिया, कभी क्रोध नही किया। सहन-शक्ति और क्षमा करने की शक्ति के आगार थे वे। 'क्षमा बडन को चाहिये' के अनुसार स्व० बाबू वाकई एक बडे इन्सान थे। नाश्ते और भोजन के समय पाच-सात आदमियो का साथ उन्हे अच्छा लगता था। दूसरो की बढोतरी और उन्नति को देख कर बहुत प्रसन्न होते थे। प्रेरणा देने वाले कहानी-किस्से, सस्मरण, कहावतें आदि सुनने-सुनाने के प्रति वे बहुत रुचि रखते थे। बातचीत के दौरान शालीन विनोद कर लेने मे उन्हे आनन्द आता था। धर्म के नैतिक पक्ष को वे सर्वाधिक महत्व देते थे और सदा कहते रहते, "आदमी को चरित्रवान् होना चाहिये।" यह उनमे एक विशेषता थी कि सिर्फ उपदेश देने के लिए ही वे कोई बात नही कहते थे अपितु स्वय भी पालन करते थे। पर-निन्दा उन्हे अच्छी नही लगती थी और अपनी गलती को बहुत सहज ढग मे स्वीकार कर लेते थे।

मुकुन्दगढ आते तो गाव के बडे बुजुर्गो से बडे चाव मे मिलते थे। हर समय दस-बीस आदमी उनके पास बने ही रहते थे। साधारण से साधारण कार्यकर्ता से भी

हिल-मिल जाते थे। मेरे खयाल मे शायद ही ऐसा कोई व्यक्ति होगा जो उनके सम्पर्क मे आया हो और उन्होने उसकी मदद न की हो। जो भी उनके पास सहायता प्राप्त करने के लिए आता था उससे बातचीत के दौरान ही वे समझ जाते थे कि उसे कितनी सहायता की आवश्यकता है, और जो कुछ करना होता तुरन्त ही कर देते थे। यह उनमे विशेपता था कि उनकी 'कथनी' और 'करनी' मे अन्तर नही होता था।

वे जन-सेवा के कार्यो के प्रति किंचित भी आलस्य नही वरतते थे तथा जन-सेवा के विभिन्न कार्यक्रम बनाने के प्रति उनका मस्तिष्क सदैव सक्रिय रहता था। अपने पत्रो मे वे सदैव इसी प्रकार का जिक्र करते रहते थे। यहा उनके दो पत्र प्रस्तुत कर रहा हू ·

कलकत्ता
१७-१-७८

"प्रिय श्री बद्रीनारायणजी,

श्रीकिशनजी सोमानी ने आपको एक पत्र प्राकृतिक चिकित्सा केन्द्र के बारे मे लिखा है। अगर यह कैम्प करना हो तो १५ फरवरी के आसपास करना चाहिए क्योकि तब तक सर्दी कम हो जायेगी। डा० विगमोर जानकार तो हैं। . लोगो को रहन-सहन, खान-पान के बारे मे हम जानकारी दे सके तथा कुछ रोगियो को पाच-दस दिन रख कर प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा इलाज कर सके तो अच्छा ही है।"

"प्रिय श्री बद्रीनारायणजी,

"११०० का एक ड्राफ्ट भेज रहा हू। जरूरतमद लोगो के अन्न, कपडा या दवा मे खर्चा करने के लिए।

राजस्थान सरकार ने यह ऐलान किया था कि जिन लोगो के घर गिर गये हैं उन्हे प्रति घर ३०० रुपये दिये जायेगे। लेकिन गवई लोगो के लिए सरकारी अधिकारियो से सम्पर्क साधना मुश्किल है। जिस तरह आपने पेशन का काम किया है, उसी तरह यह काम भी आप करा सके तो करने जैसा काम है। देहाती गावो का कोई धणी-धोरी नही है। इसलिए आप खुद कुछ कर सके तो देखना। अगर वडे पैमाने पर काम शुरू हो सकता हो तथा पार पडता लगे तो ऊपरी खर्चा तो अपन लोग कम-ज्यादा की व्यवस्था कर सकते हैं।"

उपरोक्त दो पत्रो से ही स्पष्ट है कि गरीब और जरूरतमन्द लोगो के प्रति वे कितने चिंतित रहते थे और उनकी कठिनाइयो को कितनी गहराई से समझते थे।

पत्रो का उत्तर वे तुरन्त देते थे और स्पष्ट लिखते थे। अधिकतर पत्र वे स्वय हाथ से लिखते थे। आलस्य तो उनके आसपास कही नही फटकता था। एक बार वे मुकुन्दगढ आये हुए थे और मैं भी वहा था। उस समय कलकत्ते मे श्री सीतारामजी सेकसरिया बीमार थे, अत वे बहुत चिंतित थे। उन्होने टेलीफोन से सम्पर्क करने की चेष्टा की, परन्तु नही हुआ। अतः वे बेचैन हो गये। रात मे उन्हे नीद नही आयी और कहने लगे . "उनका जीवन भर का साथ था। ऐसा न हो कि आखिरी समय मे उनसे मिलना न हो।" अन्त मे वे आधी रात को उठे और रातोरात ही कलकत्ता चले गये।

अन्त मे मुझे उनका स्वर्गारोहण से पूर्व का समय याद आ रहा है। मैं अमेरिका से लौट कर सीकर आया तो पता चला कि वावू ज्यादा वीमार हैं। मैं कलकत्ता उनसे मिलने गया। वावू काफी अशक्त हो गये थे। धीरे-धीरे वोल पा रहे थे। उन्होने मेरा हाथ पकड लिया और पास वैठा कर कहने लगे, "मैंने आपकी चाकरी वजा दी है, आगे आप अपना काम सम्भाल।" उनकी यह वात सुन कर मेरा हृदय भर आया। क्या कहू कुछ समझ मे नही आया। उस समय मैं २०-२५ दिन कलकत्ता ही रहा। मैं जव भी उनके पास गया मुझे लगता रहता कि वावू किसी वात से चिंतित है। उस दौरान उनके चेहरे पर कभी घवराहट के लक्षण नही देखे। एक दिन मुझे ज्ञात हुआ कि वे कल्याण आरोग्य सदन, सीकर मे चल रहे घाटे से चिंतित है। परन्तु मेरे समझ मे नही आ रहा था कि उन्हें किस प्रकार से सात्वना दू।

एक दिन मेरे सामने ही उन्होंने अपने पुत्र अश्विनी कुमार को वुलाया और कहा, "अश्विनी! टी० वी० अस्पताल मे रुपयो की कमी चल रही है। सो यदि तुम एक लाख रुपया प्रति वर्ष के हिसाव से पांच साल तक अस्पताल को दे सको तो सुविधा होगी।" अश्विनी वावू ने विना एक क्षण का भी विलम्व किये तुरन्त वावू की आज्ञा शिरोधार्य कर कहा. "रुपये हर साल न देकर मैं तो ५ लाख रुपये एक साथ ही दे दू गा।" लेकिन वावू की पूरी चिन्ता अभी दूर नही हुई थी सो वे फिर वोले, "... एक और वात है। जन कल्याण समिति मे सालाना २०-२५ हजार रुपये दे दो तो अच्छा रहे।" अश्विनी वावू ने इस आज्ञा को भी तुरन्त शिरोधार्य कर लिया तो उनके चेहरे से चिन्ता की रेखायें मिट गयी और खुशी से दीप्त हो उठा उनका मुख-मण्डल। क्या कहू। मैं तो भाव विह्वल हो उठा—अन्तिम समय में भी इस महान जन-सेवक को सिर्फ जन-सेवा की चिन्ता है।

कभी-कभी मैं कल्पना करता हू कि मृत्यूपरान्त जव धर्मराज ने उन्हे स्वर्ग मे निवास करने के लिए कहा होगा तो उन्होने कहा होगा, "मैं वहा नही रहना चाहता। यह जगह तो अभाव-मुक्त है। मुझे तो ऐसी जगह भेजो जहा मैं लोगो की सेवा कर सकू।"

मेरे सामने श्रद्धेय वावू के पद-चिन्हो से वना राजमार्ग फैला पडा है। वस यही इच्छा है कि इस राजमार्ग को प्रशस्त करता रहू।

—: ० :—

सामाजिक क्रान्ति एव परिवार नियोजन के क्षेत्र में अग्रणी
अ० भा० मारवाड़ी सम्मेलन के भूतपूर्व अध्यक्ष
श्री भवरमल सिंघी

सदानीरा निर्मला भागीरथी

'बहता पानी निर्मला' श्री भागीरथजी कानोडिया द्वारा श्रुत-सकलित-लिखित एकमात्र राजस्थानी लोक-कथाओ की पुस्तक का नाम है और यही नाम मुझे स्वय उनके जीवन के लिए भी सर्वथा उपयुक्त लगता है। उनके जीवन-प्रवाह को मैंने जितना देखा, जाना और समझा है, उससे बराबर यह लगता रहा है कि वे अपने चिन्तन और प्रवर्तन मे बराबर प्रवहमान रहे है और जहा प्रवाह नही होता वहा जडता और सडाघ पैदा हो जाती है। उन्होने कभी अपने जीवन मे इस प्रकार की जडता नही आने दी और यही कारण है कि वे हमेशा समान भाव से निर्मल बने रहे। निर्मलता और उसका अनुसधान ही उनका सब-कुछ रहा।

सन् १९३६ मे कलकत्ता आने पर पहले-पहल जिन लोगो से मैं मिला, उनमे श्री भागीरथजी भी थे। श्रद्धेय स्व० हीरालालजी शास्त्री का उनके नाम पत्र ले कर आया था। उन्होने पत्र पढने के पहले ही मुझे अपनी बातचीत मे अपनेपन से आपायित कर दिया। जिस स्नेहपूर्ण आत्मीयता से उन्होने मेरी बाते सुनी, उसे कभी भूल नही सकता। समाज-सुधार की दिशा मे कार्य करने की मेरी रुचि और प्रवृत्ति की उन्होने सराहना की और हर प्रकार के समर्थन और सहयोग की भावना व्यक्त कर मेरा उत्साह बढाया। मैं पहले ही स्वर्गीय शास्त्रीजी से सुन चुका था कि समाज-सुधार के क्षेत्र मे वे काफी सघर्ष झेल चुके है और कलकत्ता के मारवाडी समाज मे समाज-सुधार का कोई ऐसा कार्य नही हुआ था, जिसमे वे सम्मिलित नही थे। वास्तव मे, मुझे जैसी प्रेरणा और प्रोत्साहन की आवश्यकता थी, वैसी ही उनसे मिली। और उसके बाद तो निरन्तर उनसे प्रेरणा और मार्ग-दर्शन मिलता गया। जो कुछ मैं कर सका, करता गया, उसके लिये उन्होने सदैव हार्दिक प्रसन्नता प्रकट की। सन् १९४६ मे जब मैंने विधवा-विवाह किया तो उसकी व्यवस्था मे उनका मुख्य हाथ था। स्वय उनके घर मे ही विवाह हुआ था।

विगत ४० वर्षों की सह-यात्रा मे मैंने समाज-सुधार, शिक्षा, साहित्य और राजनीति के हर प्रसग मे उनके विचारो और कार्यो को निरन्तर सक्रियता के साथ गतिमान देखा। परिस्थितियो ने उनको कभी-कही अपने विचारो से मोडा नही, रोका नही। जैसे उस दिन थे, वैसे ही हमेशा रहे। कुटुम्ब बढा और बिखरा, काम-धधा बढा और बदला, सामाजिक, आर्थिक एव राजनीतिक परिस्थितिया बदली, बहुत सारी उथल-पुथल और उलट-फेर हुआ परन्तु श्री भागीरथजी का अन्तम वैसा का वैसा रहा।

स्कूल-कालेज की शिक्षा उन्हे कुछ नही मिली पर जीवन के विश्वविद्यालय मे उन्होंने इतना और ऐसा सीखा कि विद्या का धन भी उन्होने खूब कमाया। राजस्थानी और हिन्दी की बात तो अलग, अंग्रेजी का भी उन्होने अच्छा ज्ञान प्राप्त किया। उनके पास काम करते हुए मुझे कई बार बडा आश्चर्य हुआ कि वे दूसरे के लिखे हुए पत्रो मे सशोधन तक करते थे। और वे सशोधन समीचीन होते थे। यह सब श्रुत ज्ञान और अनुभव की दरिया मे से ही उन्होने प्राप्त किया था।

उनकी वृत्ति धार्मिक थी पर उनके निकट मानवता ही वास्तविक धर्म था। जिसका कोई विशेष नाम नही, पद्धति नही, भाषा नही। बस, मानव-धर्म है। जहा मानवता है, वहा उनकी सहानुभूति थी, प्रवृत्ति थी। जहा भी और जब कभी मानव की पीडा चीत्कार करती थी, श्री भागीरथजी का हृदय व्यथित हो उठता था और वे उसकी सेवा-सहायता के लिये दौड पडते थे। सन् १९४२ मे कलकत्ता की प्रेसीडेंसी जेल मे श्री भागीरथजी, श्री सीतारामजी सेकसरिया, श्री बसन्तलालजी मुरारका और मैं सब साथ मे थे। हममे से सर्वप्रथम श्री भागीरथजी छूटे। जब वे बाहर आये, उस समय बगाल मे भीषण अकाल की स्थिति थी। हजारो लोग बिना खाये मर रहे थे। भागीरथजी ने तुरन्त इस पीडित मानवता की सेवा मे अपने को लगा दिया। उन्होने इस कार्य मे बहुत समय और शक्ति लगाई और लाखो लोगो की मदद की। उसके लिये धन दिया और इकट्ठा किया। फिर भी सन्तोष उन्हे कभी नही मिला। उन्ही दिनो एक पत्र मे उन्होने मुझे जेल मे ही लिखा था—"जो कुछ मैंने किया है या कर सका हू, उससे मुझे कोई सन्तोष थोडे ही है लेकिन सन्तोष इतना तो है कि मैं जितना कर सकता था, उतना कस कर करने की कोशिश की।" यही उनके जीवन का आदर्श रहा और यही यथार्थ भी। आदर्श और यथार्थ के समन्वय का प्रयत्न ही उनके जीवन का धर्म था। वे सेवा-धर्म की मूर्ति थे। दया और अनुकम्पा उनकी सहज प्रकृति थी, जिसका उनके जीवन मे अनेक बार अनेक प्रसगो मे सच्चा परिचय मिला है। और यह सब सेवा-साधना किसी राजनीतिक या अन्य प्रकार के स्वार्थ के लिये नही रही। वे ऐसा मानते थे कि सेवा ही सबसे बडा धर्म है। मनुष्य को सेवा के मार्ग पर कभी पीछे नही रहना चाहिये। बगाल मे हो, राजस्थान मे हो या देश के किसी दूसरे हिस्से मे हो, अकाल, बाढ, भूचाल, सूखा या अन्य किसी कारण से जन-जीवन मे कष्ट पैदा हो जाता तो उनका हृदय मर्माहत हो जाता था और वे अस्थिर हो उठते थे। दुखियो की सेवा के लिये वे जो और जितना कर सकते थे, उसके लिये मैदान मे कूद पडते थे। मानव-सेवा के इतिहास मे उनका अपना एक अध्याय है।

इतना सब कुछ करने और करते रहने के बावजूद किसी प्रकार का अहकार उनको छू तक नही गया था। प्रचार उनके स्वभाव मे ही नही था। जब कभी हम लोगो मे से किसी ने उनसे यह कहा था कि इतना काम हुआ परन्तु उसके बारे मे जो प्रचार होना चाहिये था, वह नही हुआ तो उनका एक ही उत्तर रहा कि हमे अपनी सारी शक्ति कार्य मे लगानी है, प्रचार मे नही। कार्य मे ही प्रचार है। आज चारो तरफ प्रतिष्ठा और प्रचार का ही जो घटाटोप छाया हुआ दीखता है उसमे यह बात कितनी बडी और कठिन है। आज तो प्रचार पहले होता है और कार्य बाद मे।

वल्कि कभी-कभी तो प्रचार ही प्रचार रह जाता है, कार्य नहीं। यह निरभिमान भागीरथजी के व्यक्तित्व का बहुत बड़ा अग था। सन् १९४५ मे जब मैं जेल मे था तो उन्होने एक पत्र मे लिखा था—"अभिमान और स्वाभिमान दो अलग-अलग चीज माननी चाहिये। अभिमान माने घमण्ड किया जाये तो यह बुरी चीज करार दी जानी चाहिये। अभिमान यानी घमण्ड का अर्थ अनम्रता है और यह भी कि अभिमानी आदमी किसी चीज को ठीक भी मान ले तो लोगो मे, साथियो मे, भाइयो मे, गाव के लोगो मे इस बात से वह दूसरो की अपेक्षा छोटा हो जायेगा या उसकी इज्जत लोग कम करने लगेंगे, इस भय से वह उसे करेगा नही। अभिमानी आदमी की दृष्टि बराबर इस बात पर ही रहेगी कि वह अपने इर्द-गिर्द के आदमियो मे कोई दूसरा बड़ा न बने। यह उसे गवारा नही होगा। इसके लिये अनहैल्दी कम्पीटीशन भी करेगा। स्वाभिमान अच्छी चीज है। स्वाभिमानी आदमी किसी तरह की नीची बात नही सोचेगा, नीचा काम नहीं करेगा। सच्चा और पूरा स्वाभिमानी आदमी न अन्याय करेगा और न अन्याय बर्दाश्त करेगा।" इस माने मे भाई भागीरथजी स्वाभिमानी थे, अभिमानी बिल्कुल नही। यही कारण है कि वे न अन्याय करते थे और न अन्याय को बर्दाश्त करते थे, दूसरी ओर किसी के द्वारा की गई निन्दा या लगाये गये लांछन का भी उन पर कोई असर नहीं होता था। वे अन्यायी के प्रति भी हमेशा क्षमाशील रहते थे और बड़े से बड़े और छोटे से छोटे हर आदमी के प्रति उनके व्यवहार मे क्षमाशीलता थी।

वे हमेशा मध्यममार्गीय रहे और इसी मार्ग को वे प्रत्येक सामान्य व्यक्ति के लिये उचित भी मानते थे। उनके ही शब्दो मे "बहुत कम लोगो को छोड़ कर बाकी लोगो के लिये मध्यममार्ग ही अनुकूल हो सकता है। एक्स्ट्रीम का उद्देश्य सामने रहे लेकिन जल्दी करके—सोचे बिना—अपनी ताकत और परिस्थितियों का अन्दाज लगाये बिना—उस पर पैर रखने से आगे चल कर बहुत बड़ी प्रतिक्रिया होने का डर रहता है।"

उन्होने व्यापार-व्यवसाय को ही अपना सामान्य धर्म समझा पर उसके साथ-साथ सामाजिक, सास्कृतिक, शैक्षणिक और साहित्यिक एव राजनीतिक कामो मे भी निरन्तर योग दिया और इन सब मे उनकी दृष्टि समन्वयात्मक रही। इनमे से हर काम मे उनकी मूल प्रेरणा मानवता की ही रही। इस प्रेरणा का भी मूल-बिन्दु मानव की ही नही, प्राणी मात्र की पीड़ा मे था। मुझे जेल मे ही भेजे गये २० अक्टूबर, १९४४ के पत्र मे उन्होंने इस सन्दर्भ मे लिखा था—"इस ससार मे इतना दुख क्यो है? यदि ससार को ईश्वर का सरजा हुआ माना जाये और ईश्वर को पूर्ण माना जाये तो उसने दुखमय सरजना क्यो की? अगर दुख कर्मों का फल माना जाये तो ऐसे कर्म करने की ईश्वर ने प्रेरणा क्यों दी? कुछ समझ मे नही आता—क्या बात है यह सारी?" उनको यह बात निरन्तर खटकती रहती थी कि किसी की पीड़ा को देख कर मनुष्य खुद बिना पीडित हुए कैसे रह सकता है? वह उसकी उपेक्षा करने का क्यो आदी हो गया है? फिर उन्ही के शब्दो मे—"कितने दुखदायी दृश्य आखो के, कानो के और हृदय के सामने नित्य होते रहते हैं। लेकिन ये सब दृश्य देखते-देखते, सुनते-सुनते मन इतना आदी हो गया है कि चन्द मिन्टो तक उनका असर मन

पर भले ही रह जाये, उसके वाद तो फिर वैसा का वैसा। घी-दूध खाना, रेशम-ऊन पहनना, मोटरो पर चढे फिरना और अपनी भूठी वडाई सुन कर राजी होना, जाने-अनजाने शेखी भी वघारना, यह दैनिक चर्या रहती है।"

मैं पहले कह आया हू कि श्री भागीरथजी हर अर्थ मे मानव थे, मानवतावादी थे। वे अपनी और दूसरो सब की परीक्षा भी इसी दृष्टि से और इसी कसौटी पर करते थे। यह वात दिसम्वर, १९४४ मे लिखे उनके एक पत्र के निम्न वाक्यो से पूरी तरह समझ मे आती है—"मनुष्य के लिए सब से जरूरी चीज यह है कि वह मनुष्य बनने का प्रयत्न करे, योग्य और चतुर हो, सुलझे दिमाग का हो, सहिष्णु हो, सहानुभूति-वाला हो, पडोसी धर्म को माननेवाला हो, एक सुनागरिक हो, व्यवहार मे सच्चा और नेक हो। दुर्भाग्य से हमारे यहा याने हमारे देश मे इसका वहुत दीवाला है। अच्छे और काविल आदमी वहुत कम पाये जाते है। खुद मनुष्य बनने का प्रयत्न करे और दूसरो को मनुष्य बनाने के लिए अपनी शक्ति का उपयोग करे, यह वहुत जरूरी है।" श्री भागीरथजी ने जीवन भर इन्ही विचारो की प्रेरणा से खुद को और दूसरो को मनुष्य वनाने के लिये अपनी शक्ति का भरसक उपयोग किया।"

इसी भावना से यह स्वाभाविक है कि वे जहा भी मनुष्यता का हनन देखते थे, वहा उनका मन व्यथित हो उठता था। उसके कारण जो अशान्ति, संत्रास और तनाव पैदा हुआ दीखता, उससे उनका मन अशात होने लगता था। इसके बारे मे जब वे विश्लेषण करते थे तो इसका कारण उनको एक ही लगता था कि—"आदमी के मन की भूख और चाह ज्यो-ज्यो बढेगी, त्यो-त्यो मानव का मन अधिक से अधिक क्षुब्ध और अशात होगा ही। आदमी के पास भोग के साधन ज्यो-ज्यो बढेगे, त्यो-त्यो उसकी तृष्णा भी अधिक बढेगी। न भोग्य वस्तुओ की कोई सीमा है और न तृष्णा की ही। यह एक ऐसा गोरखधन्धा या जजाल है कि फसते ही जाओ। भर्तृहरि का वह श्लोक आपको शायद याद होगा जिसमे कहा है—'भोगा न भुक्ता, व्यमेव भुक्ता, तृष्णा न जीर्णा, तापो न तप्ता, वयमेव तप्ता।"

इस स्थिति के खिलाफ उनके मन मे हमेशा असन्तोष उत्पन्न हुआ रहता था, अशांति बनी रहती थी पर, जैसा वे स्वय कहते थे कि इसके खिलाफ वडी तपस्या की आवश्यकता होती है। और उनके शब्दो मे .."तपस्या देखने-दिखाने की चीज नही है, वह अतर्मन की क्रिया-प्रक्रिया है, प्रेरणा है। विवशता से झेले हुए कष्ट सहन का नाम तपस्या नही है। जो लोग पर-पीडा की आत्मानुभूति से पीडा से मुक्ति पाने के लिए सघर्ष झेलते हैं, कष्ट सहन करते है, उनकी ही तपस्या सही मानो मे तपस्या है। और, वह अवश्य सफल होती है।" हमारे राष्ट्रीय सग्राम के सदर्भ मे लिखे गए एक पत्र मे उन्होने आज से ३७-३८ वर्ष पहले मुझे लिखा था . "तपस्या विवशता की हुआ ही नही करती और विवशता से कष्ट-सहन हो, वह तपस्या नही कही जा सकती। उस हिसाब से माने तब तो आज हिन्दुस्तान के अधिकाश क्या, सारे के सारे आदमी ही तपस्या कर रहे हैं। लेकिन वह तपस्या नही है, यह तपस्या है। सफलता चाहे दीखे नही लेकिन हर शुद्ध-सकल्प और कृत्य की सफलता तो होती ही है। स्थूल चक्षुओ से तो बहुत चीजें नही दीखती, इसमे क्या यह थोडे ही मान ले कि उनका अस्तित्व नही

है। महीने नही, वर्ष बीत रहे है, यह ठीक है लेकिन काल के अनन्त आकाश मे दो-पाच दस या बीस वर्ष आखिर कितने होते है ? जो ससार विनाश और ध्वस की ओर जा रहा है, उसे मोडने के प्रयत्न मे शताब्दिया भी लगे तो ज्यादा थोड़े ही है। और, फिर भी उसका मुडना दिखाई न पडे—उस विनाशकारी, ध्वसात्मक वृति की जड को हम हिला दे या उसे एक हल्का सा धक्का भी दे दें तो क्या हमे उससे सन्तोप नही मानना चाहिये ? शताब्दियो और सहस्त्राब्दियो की आदत के कारण हमारी वृत्तिया, आदते, सोचने का दृष्टिकोण इतने सकुचित हो गये हैं कि हमलोग जल्दी अधीर हो उठते है। भवरमलजी, देश के उत्थान, मानव-समाज के कल्याण और लोकहित के साधन मे अगर अपन शरीर या बुद्धि से कुछ भी एक अणु-परमाणु भी हिस्सा दे सके तो अपन तो कृतार्थ है मोहवश कुटुम्बीजनो और मित्रो की तपस्या से लोग सदा से ही घबराते आये है और जब-जब किसी ने इस मार्ग पर पाव बढाया है, तब-तब बराबर ही तथा-कथित इष्ट मित्रो ने उसे विरत करने की कोशिश की है। विरत न होने पर क्रुद्ध भी हुए है, उलाहना भी दिया है, रोये है, लिपटे है लेकिन आखिर वह नही माना तो बाद मे उस पर अभिमान किया है, उसके नाम पर यश मिला है। पुराने आख्यान पढने को मिलते है। उनकी भापा आलकारिक चाहे हो पर घटना सत्य है । देव-दानव युद्ध हजार-हजार वर्ष से चलता आ रहा है सही, लेकिन इसी तरह चलता रहेगा, यह मानने को जी नही करता। मानव, दानव ही बना रहेगा, यह क्यो मान लेना चाहिये ? यह मान लेना तो मानवता की हार है। हो चाहे कुछ भी, लेकिन मै स्वप्न तो उस दिन का जरूर देख रहा हू—चाहे उसके आने मे कितने ही सौ वर्ष लग जाये, जिस दिन ससार सुखी होगा—एक दूसरे के मित्र होकर लोग रहेगे। दुश्मनी नाम की वस्तु कोश मे ही रह जायेगी। तुलसीदासजी ने कल्पना की है—रामराज्य की। रामायण मे दण्ड यतियो के हाथ मे ही गिनाया है याने दण्ड नाम की और कोई वस्तु नही रह गई थी। क्या यह कभी भी सत्य नही होनेवाला है ? होगा ? किसी दिन तो होगा ही।"

जो मानवतावादी होता है, वह हमेशा आशावादी होकर ही रहता है। आशा ही जीवन है। श्री भागीरथजी इसी प्रकार के आशावादी अन्त तक बने रहे। वे इसी प्रकार निरन्तर अपने जीवन का विश्लेषण करते रहे और अपने मन को, जीवन को साफ, जितना निर्मल हो सके बनाते रहे। आशाओ को धक्का लगता रहता। सबसे बडा धक्का उनको हमारे स्वराज्य के मामले मे लगा। कैसी बोलती अनुभूति है उनकी—"स्वराज्य का हाल तो यह है कि स्वर्ग से गगा गिरी तो शकर की जटा मे समा गई, धरती के लोगो को उसका लाभ तब मिला जब भगीरथ ने एक बार शकर के सामने अपना रोना रोया और प्रार्थना की, नही तो वह अनन्त काल तक शकर की जटा मे ही पडी रहती। शकर की जटा से निकली तो उसे फिर एक वार एक ऋषि ने अपनी जाघ मे रोक कर रख लिया। वहा से छूटने पर उसका नाम जान्हवी हो गया। भगीरथ बेचारे को फिर उसकी खुशामद करनी पडी। तब जा कर गगा का उपयोग जनता को मिल सका। यह स्वराज्य की गगा भी आज कुछ बडे लोगो की जटा में समाई हुई है, जनता के दुख-दर्द देखने की किसी को नही पडी है। स्वर्ग से गगा याने

अंग्रेजो से स्वराज्य गांधी ने लिया। गांधीजी चले गये तो अब शंकर की खुशामद करनेवाला या शंकर को डरानेवाला भी कोई नही रहा। भगवान को जो मंजूर होगा, सो होगा। फिर अपन भी तो केवल बात ही बात करते है, कुछ करते कहा है ?"

'हम भी कुछ करते कहा है ?' यही श्री भागीरथजी की जीवन-पीडा थी। कुछ करने की खोज ही उनकी खोज थी। उनके पास पीडा की अनुभूति थी और पीडा की ही अभिव्यक्ति। अपनी ८५ वर्ष की आयु तक वे निरन्तर इसी खोज में रहे। जितना और जो कुछ वे इस पीडा से मुक्ति के लिये समाज को दे सके, बता सके उसी मे उनका मन प्रवहमान रहा। जीवन ने उन्हे बहुत कुछ दिया—गहरा अनुभव और गहरा भाव तथा उसकी गहरी अभिव्यक्ति। उनका यह मौन किन्तु मुखर जीवन-प्रवाह हमारे जीवन में भी निर्मलता लाता और देता रहे, यही उनकी चिर-समाधि पर हमारा सबसे बडा अर्घ्य है।

—:०:—

भूतपूर्व संसत्सदस्य, सामाजिक कार्यकर्त्ता,
श्री वेणीशकर शर्मा

आदर्श मानव

श्री भागीरथजी कानोडिया, जहा व्यवसाय के क्षेत्र मे सचमुच भगीरथ थे, वहा सामाजिक क्षेत्र मे वे मा भागीरथी की तरह निर्मल स्वच्छ एव पवित्र थे। व्यावसायिक क्षेत्र मे जो भी उनकी महत्वाकाक्षा रही हो, सामाजिक या राजनैतिक क्षेत्र मे उनकी कोई महत्वाकाक्षा नही थी। नेता बनना उनके स्वभाव मे नही था। इसलिये वे नेतागिरी से कोसो दूर रहे। यदि वे चाहते तो एक कुशल नेता के रूप मे भी उभर सकते थे किन्तु उन्होने, क्या सामाजिक, क्या राजनैतिक, दोनो क्षेत्रो मे नेताओ के केवल सहयोगी के रूप मे कार्य किया। इन क्षेत्रो के नेताओ को उनका आर्थिक सहयोग तो था ही किन्तु उनके साथ वे कन्धे से कन्धा मिला कर काम भी किया करते थे। वे एक कार्यकर्ता मात्र थे और जीवन पर्यन्त कार्यकर्ता के रूप मे ही कार्य करते रहे।

इस छोटे से सस्मरणात्मक लेख में मेरा उद्देश्य उनकी सामाजिक या राजनैतिक उपलब्धियो की चर्चा करना नही है। वे तो एक खुला अध्याय है जो सर्वविदित है। यहा एक सीमित दायरे मे उनके शुद्ध मानवीय रूप का दिग्दर्शन मात्र कराना चाहता हू।

व्यावसायिक क्षेत्र मे, जहा तक मै समझता हू, उन्होने अपना प्रारम्भिक जीवन बिडला-बन्धुओ के प्रतिष्ठान मे एक उच्च सहयोगी के रूप मे आरम्भ किया, जहा उनके अग्रज स्व० बाबू गगाबक्सजी कानोडिया पहले से ही स्व० बाबू युगलकिशोरजी बिडला के अनन्य सहयोगी और सहायक के रूप मे कार्यरत थे। बात बहुत पुरानी है, इसलिए इससे शायद कम लोग ही वाकिफ होगे कि आज के इस वृहत् बिडला प्रतिष्ठान की आधारभूत शिला ये दोनो कानोडिया बन्धु थे। १९३९ के आसपास इन्होने इस वृहत् प्रतिष्ठान से अलग होकर अपना निजी व्यवसाय आरम्भ किया जो आज देश मे कानोडिया प्रतिष्ठान के रूप मे अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है।

सर्वप्रथम १९२८ मे जब मैं कलकत्ते उच्च अध्ययन के लिये आया तो बाबू प्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका के मार्फत श्री भागीरथजी से मेरा परिचय हुआ। यहा यह कहना अप्रासगिक न होगा कि बाबू प्रभुदयालजी मेरे कलकत्ते मे गार्जियन थे और आज भी मैं उन्हे अपना गार्जियन और पथ-प्रदर्शक मानता हू। उन्ही की प्रेरणा और सहायता से मैं आगे पढ सका।

कलकत्ते मे उच्च अध्ययन के लिये मेरे लिये यह आवश्यक था कि मै अपने पैरो पर खडा होऊ। अतएव मैंने बाबू प्रभुदयालजी से मुझे कोई छोटी-मोटी नौकरी दिलाने की प्रार्थना की। वे मुझे भागीरथजी के पास ले गये और उन्होने मुझे

तुरन्त बिडला ब्रादर्स की एक कम्पनी मे नियुक्त कर दिया ७५) मासिक पर, जो उस समय मेरे योग-क्षेम के लिये पर्याप्त था।

ताजा-ताजा बी० ए० पास कर आया था, इसलिये किसी भी प्रकार के किसी कार्य का अनुभव तो था नही। किन्तु भागीरथजी ने बडे धैर्य के साथ अपनी घोर व्यस्तता के बावजूद मुझे अगुली पकड-पकड कर काम सिखाया और मैं दो-तीन महीने मे ही कुशल कार्यवाहक बन गया।

मैंने उस कम्पनी मे शायद तीन वर्ष काम किया और १९३२ मे कानून का अध्ययन समाप्त करके वकालत शुरू करने का विचार किया। प्रैक्टिस करते हुये कानूनन नौकरी नही कर सकता था। नौकरी छोडनी लाजिमी थी। पर नौकरी छोडता तो फिर योग-क्षेम कैसे चलता। बडी विकट समस्या थी। तब तक छोटे भाई श्रीकान्त को भी मैट्रिक पास करने के बाद कलकत्ते बुला लिया था। उसे आगे पढाना जरूरी था। इसलिये उसका नाम विद्यासागर कालेज मे सायकालीन क्लासो मे लिखा दिया था। वह दिन भर बेकार रहता था। अतएव मैंने डरते-डरते भागीरथजी के सामने प्रस्ताव रखा कि प्रैक्टिस आरम्भ करते ही तो मैं अपने खर्च के पैसे कमा नही सकू गा। इसलिये आप मेरे स्थान पर श्रीकान्त को रख लें तो किसी प्रकार समस्या का समाधान हो सके। पर श्रीकान्त तो मुझसे भी ज्यादा कोरा था। केवल मैट्रिक था। इसलिये कुछ जानने का प्रश्न ही नही उठता था। काम क्या करता? मैंने भागीरथजी से कहा कि आधे दिन तो मैं कोर्ट की तरफ जाऊ गा और आधे दिन आफिस आकर काम पूरा कर दू गा तथा साथ-साथ श्रीकान्त को भी काम सिखाता जाऊ गा। यद्यपि मेरा प्रस्ताव बडा भोडा सा था किन्तु केवल मेरी दिक्कत दूर करने के लिये उन्होने उसे स्वीकार किया। केवल इतना ही कहा, देखना किसी प्रकार का ओलमा (उलाहना) न आय। यदि भागीरथजी उस समय मेरे प्रस्ताव को नही मानते, जो अस्वाभाविक नही होता, तो शायद मेरा जीवन नौकरी करते ही बीतता।

श्री भागीररथजी आरम्भ से ही बडे आदर्शवादी थे। उन दिनो शायद दोनो कानोडिया भाई घोडा-गाडी मे आफिस जाया करते थे। मोटरे तब तक कलकत्ते मे पर्याप्त सख्या मे नही थी। मैं छात्र-निवास से पैदल ही आफिस जाया करता था। एक दिन कैनिंग स्ट्रीट मे लम्बे-लम्बे डग भरते उनसे टक्कर हो गई। मैं हैरान था कि इतना बडा आदमी (उस समय वे बडे आदमियो मे गिने जाते थे) पैदल चल रहा था। पूछ ही तो बैठा कि आज गाडी क्या हुई तो हसते हुये बोले कि मैं कभी-कभी पैदल भी जाता हू, जिससे तुम लोगो के कष्ट का कुछ अनुभव तो हो। यह था श्री भागीरथजी का असली रूप।

अपने सहयोगियो और मातहत कर्मचारियो के प्रति उनका रुख बडा ही सहानुभूतिपूर्ण होता था। दया के तो वे अवतार थे। आफिस पाच या साढे पाच बजे बन्द हो जाती थी। किन्तु भागीरथजी अपनी सौदा-वही मिलाने काफी देर तक बैठा करते थे। उन दिनो क्लर्कों का वेतन तीस-चालीस रुपये मासिक था। कई लोगो को काफी देर तक भी अपना काम पूरा करने के लिये रुकना पडता था। उन दिनो यूनियन तो थे नही। सबको अपना-अपना काम ईमानदारी के साथ पूरा करना पडता

था। जब कभी वह अपना काम पूरा करके आफिस से जाते हुये किसी ऐसे बाबू को तब तक काम करते हुये देखते तो उसके पास जाते, उसकी पारिवारिक स्थिनि के सम्बन्ध मे पूछते, जो अकसर नाजुक ही हुआ करती थी, और दस-पाच रुपये जो उन दिनो काफी होते थे, उसकी पाकेट मे चुपचाप डाल देते। फिर कहते किसी को कहना नही। किन्तु कस्तूरी की सुगन्ध तो छिपाये कही छिपती है? बात औरो तक भी पहुची और कई लोगो ने उससे नाजायज फायदा भी उठाना शुरू किया किन्तु उन्होने अपनी गुप्त सहायता की आदत नही छोडी। गुप्त सहायता देना उनके स्वभाव का एक अग हो गया था और केवल वे ही जानते थे कि उन्होने कितने मित्रो, सहयोगियो और अनजान याचको की गुप्त सहायता की थी।

प्रगट आर्थिक सहायता भी उनकी कम नही थी। स्व० पडित हीरालालजी शास्त्री द्वारा स्थापित वनस्थली विद्यापीठ के प्रारम्भिक काल मे उन्होने उसकी काफी आर्थिक सहायता की थी। राजस्थान मे अपने गाव मुकुन्दगढ मे भी वे विद्यालय तथा चिकित्सालय चला रहे थे।

भागीरथजी उदार तो थे ही और थे सरल प्रकृति के व दिल के भी बडे साफ। अपनी भूल देखते ही उसे स्वीकार करने और उसका प्रतिकार करने मे उन्हे जरा भी हिचक नही होती।

सन् १९३४ की बात है। भूकम्प के कारण बिहार मे तबाही मची हुई थी। मुज्जफरपुर और मुगेर मे एक भी मकान साबूत नही बचा था। मुझे मारवाडी रिलीफ सोसायटी की तरफ से एक छोटी-सी टीम के साथ राहत-कार्य के लिये मुज्जफरपुर भेजा गया और मारवाडी रिलीफ सोसायटी की ओर से जो कार्य हुआ उसकी चारो ओर प्रशसा हो रही थी। उन दिनो वहा मैं प्राय. अठारह-बीस घटे काम किया करता था। दिमाग सातवे आसमान पर था।

किन्तु चूकि मैं तत्कालीन काग्रेस-कार्यकर्ताओ को सन्तुष्ट नही कर सका जो मुझसे पीडितो के बदले अपनी सेवा की अपेक्षा करते थे। उन्होने कलकत्ते मेरी शिकायत लिख भेजी और भागीरथजी इन्क्वायरी के लिये मुज्जफरपुर पहुचे। वहा पहुचते ही उन्होने मुझसे कहा "वेणीशकर, तुम्हारे काम की शिकायत है।" सुनते ही मैं तो जैसे आसमान से गिर पडा। कहा तो सब ओर प्रशसा ही प्रशसा मिल रही थी वहा अपने ही लोगो से उपालम्भ। बरदाश्त के बाहर बात थी। किन्तु जब भागीरथजी घूम-घाम कर तथा लोगो से पूछताछ कर वापस आये तो काफी सन्तुष्ट थ और उन्हे अपनी गलती महसूस हुई। बोले "वेणीशकर, मुझसे भूल हुई, क्षमा करना। मैंने बिना देखे-सुने ही तुमसे जो कुछ कहा था उसके लिये दुखित हू।" भावावेश मे मैंने उनके हाथ पकड लिये—"यह आप क्या कह रहे है?" आगे कुछ बोल नही सका। यह था भागीरथजी का सुलभ स्वभाव। जो मनुष्य स्वय अपनी भूल को पहचान कर उसके लिये पश्चाताप करता है वही महान होता है।

श्री भागीरथजी जहा आदर्श दानी थे वहा आदर्श भिक्षुक भी थे। उन्होने अपने अर्जित धन का कितना अश दान मे दिया यह तो शायद उनके वशधर भी नही जानते किन्तु उन्होने सार्वजनिक कामो के लिये समाज से करोडो की सख्या मे धन

भी एकत्रित किया। उनके झोली फैलाने के पहले ही लोग उनकी झोली भरने के लिये दौड पडते थे, क्योकि वे जानते थे कि भागीरथजी को दिया हुआ उनका एक रुपया सवा रुपया वन कर ही खर्च होगा। मारवाडी रिलीफ सोसायटी के लिये इकट्ठा किये गये' चन्दो मे, उनका जब तक वे इस सस्था से सम्बन्धित रहे, काफी हाथ रहता था। राजस्थान के पिछले भीषण अकाल मे भी राहत-कार्य के लिये उन्होने स्वय भी काफी दिया और मागा भी काफी।

हिन्दी साहित्य के विकास और सम्वन्ध मे भी उनकी काफी रुचि थी। अतएव जो भी साहित्यिक उनके द्वार पर आता कभी खाली हाथ नही लौटता। अच्छी-अच्छी पुस्तको के प्रकाशन मे वे बराबर सहायता करते।

वे शब्द के सम्पूर्ण अर्थ मे एक मानव ही नही अतिमानव थे। दया और सहानुभूति के मूर्तिमान स्वरूप, अपने नाम या प्रशसा से कोसो दूर, दूसरो के दु ख मे दुखी और उनके सुख मे सुखी।

जीवन के अन्तिम काल मे उन्हे काफी शारीरिक एव मानसिक कष्ट भोगना पडा और शायद यही भारतीय परम्परा भी है। भगवान रामकृष्ण परमहस को भी जिनसे बढकर निष्पाप, निष्कलक प्राणी दूसरा नही हो सकता, अपने अन्तिम काल मे काफी कष्ट भोगना पडा था। शायद ऐसे महापुरुष अपने पूर्वजन्म के पापो का मार्जन कुछ तो अपने सत्कर्मों से करते है, बाकी जो बच जाते है उन्हे यही भोग कर अपनी तलपट पूरी कर डालते है।

—: ० :—

अ० भा० सर्वसेवा सघ के भूतपूर्व अध्यक्ष
श्री सिद्धराज ढढ्ढा

सौम्य और स्नेहिल व्यक्तित्व

कौन व्यक्ति ऐसा है जिसमे गुण और दोष का मिश्रण न हो ? जिसके जीवन मे अच्छाई न हो, बुराई न हो ? और सामनेवाले को अच्छाई या बुराई का जो भान होता है उसमे उसके खुद के भावो का भी तो प्रतिबिम्ब पडता होगा। उसकी खुद की अपेक्षाओ की पूर्ति या 'न-पूर्ति' का असर भी पडता होगा ? इसके अलावा एक ही व्यक्ति का भिन्न-भिन्न व्यक्तियो से जो सम्पर्क आता है उसमे परिस्थिति की भिन्नता भी रहती है, और उस भिन्नता के अनुसार एक-दूसरे की छाप पडती है। इसलिए किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व का मूल्याकन अन्ततोगत्वा व्यक्ति-सापेक्ष ही हो सकता है।

मेरे चित्त पर स्वर्गीय भागीरथजी कानोडिया की छाप एक ऐसे सौम्य, स्नेहिल व्यक्ति की है, जिससे मिलने पर मन प्रसन्न हो जाता था। लगभग आधी शताब्दी बीत रही है, जब मैं कलकत्ता जैसे महानगर मे "इ डियन चेम्बर आफ कामर्स" मे काम करने के लिए गया था। उन दिनो व्यापारिक क्षेत्र मे भागीरथजी का नाम काफी आदरपूर्वक लिया जाता था। भागीरथजी से सपर्क के मेरे तीन बिन्दु थे—एक, चेम्बर के काम को लेकर, दूसरा, कलकत्ते के मारवाडी समाज मे चल रही सुधार तथा सेवा की प्रवृत्तियो को लेकर, तथा तीसरा, राष्ट्रीय आन्दोलन को लेकर। चेम्बर सम्बन्धी काम की अपेक्षा मेरा और भागीरथजी का सम्पर्क सार्वजनिक कामो और प्रवृत्तियो को लेकर ही अधिक था।

यह मैं अपना सौभाग्य ही मानता हू कि कलकत्ते के मेरे जीवन के शुरू मे ही मेरा सम्बन्ध श्री सीतारामजी सेकसरिया तथा श्री भागीरथजी कानोडिया जैसे मित्रो से हुआ। जहा तक मुझे याद है, कलकत्ते मे मेरे अभिन्न मित्र श्री सरदार सिंहजी मोहनोत के द्वारा सीतारामजी तथा भागीरथजी से मेरी निकटता बढी थी। धीरे-धीरे मैं उस मित्रमण्डल मे शामिल हो गया। अक्सर भागीरथजी के दफ्तर मे ही शाम को अपने-अपने कामो से निवृत्त होकर घर लौटने से पहले हम आठ-दस मित्र इकट्ठा होते थे। भागीरथजी और सीतारामजी के अलावा बसतलालजी मुरारका, रामकुमारजी भुवालका, प्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका, मोतीलालजी लाठ, वेणीशकरजी शर्मा, भवरमलजी सिंघी आदि इस मण्डली मे थे।

कलकत्ते मे उस समय मारवाडी समाज तथा हिन्दी-भाषी लोगो के द्वारा जो बहुत-सी सामाजिक या सार्वजनिक प्रवृत्तिया चलती थी उनमे किसी न किसी रूप मे इस मित्रमडल के सदस्यो का हाथ रहता था। अत एक तरह से यह मित्रमंडल उन सब प्रवृत्तियो का परस्पर समन्वय करने, और उन्हे सहायता तथा बल पहुचाने का

एक अच्छा माध्यम बन गया था। यो तो मित्रमंडल के सभी सदस्य सक्रिय थे और इन सार्वजनिक प्रवृत्तियो मे सभी का अपना-अपना योगदान रहता था, पर यह कहना शायद अत्युक्ति नही होगी कि भागीरथजी और सीतारामजी सब को जोडनेवाली कडी के रूप मे थे।

स्व० भागीरथजी आजादी के पहले के जयपुर राज्य के गांव मुकन्दगढ के थे, इसलिये स्वाभाविक ही उनकी प० हीरालालजी शास्त्री से मित्रता थी। आजादी के बाद जब राजस्थान की सब रियासतो को मिलाकर राजस्थान राज्य बना तब प० हीरालालजी शास्त्री उसके पहले मुख्यमत्री बने। भाई भागीरथजी का जयपुर राज्य तथा बाद मे राजस्थान प्रदेश की रचनात्मक प्रवृत्तियो से भी काफी सम्बन्ध अन्त तक बना रहा। राजस्थान प्रदेश हरिजन सेवक सघ के वे वर्षों अध्यक्ष रहे। स्वर्गीय ठक्कर बापा की प्रेरणा से राजस्थान के रचनात्मक कार्यकर्त्ताओ का एक सगठन "राजस्थान सेवक सघ" के नाम से बना था। उसके भी भागीरथजी सस्थापक-सदस्य थे। औपचारिक सम्बन्ध किसी प्रवृत्ति से होता या न होता, पर भागीरथजी सभी अच्छे कामो मे हमेशा सहयोग देते रहते थे। सार्वजनिक कामो से सबध रखने वाले व्यक्ति कलकत्ते मे धन-सग्रह के लिए आते रहते हैं। भागीरथजी उनके लिए बडा सहारा थे। वे स्वय तो अपना योग देते ही थे, लेकिन दूसरो से दिलाने मे भी मदद करते थे।

भागीरथजी का जीवन व्यक्तिश सादा और सरल था। उनके चेहरे पर अभिमान, क्रोध या झुंझलाहट के लक्षण मुझे कभी नही दिखाई दिये। जल्दबाजी उनके मिजाज मे नही थी। विचार, बातचीत, उठना-बैठना—सब चीजो मे धीरज उनकी एक खासियत थी। वे विचारो से उदार थे, हालांकि प्रगतिशीलता मे अक्सर जो दिखावा या बेताबी होती है वह उनके जीवन से प्रगट नही होती थी।

औरो ने भागीरथजी के जीवन के दूसरे पहलू देखे होगे, और उनमे भिन्न गुण-दोषो का दर्शन भी उन्हे हुआ होगा। यह स्वाभाविक है। पर कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि भागीरथजी एक ऐसे व्यक्ति थे जिनकी याद उन्हे जाननेवालो मे बहुत अरसे तक बनी रहेगी।

—: ० :—

राजस्थान के प्रसिद्ध गांधीवादी नेता

श्री गोकुलभाई. दौ० भट्ट

साधु-पुरुष

मुझे अभी याद नही आता है कि स्वर्गस्थ भागीरथजी कानोडिया के प्रथम दर्शन मुझे कहा और कब हुए ? हो सकता है कि स्वर्गस्थ जमनालालजी बजाज के साथ या सेवानिष्ठ सीतारामजी सेकसरिया के साथ हुए हो लेकिन एक छवि मेरे चित्त पर अकित हुई कि भागीरथजी एक विशिष्ट मानव थे ।

मेरी जानकारी के अनुसार उन्होने अपने पुरुषार्थ से, बुद्धिमत्ता से, कुशलता से और सतत परिश्रम से अपना व्यवसाय आरम्भ किया और उसका ऐसा विस्तार किया कि वे एक अच्छे और ऊ चे धनीमानी माने जाने लगे । लेकिन अर्थ-लाभ के साथ ही साथ उनका, गुण-वैभव भी बढा । चारित्र्य की गरिमा भी बढती गयी क्योकि अपने व्यवसाय के अलावा जनहितकारी कामो मे वे हिस्सा लेने लगे थे । वह कार्य दिनो दिन व्यापक बनता गया । सेवा-भावना उभरने लगी ।

स्वर्गस्थ भागीरथजी ने राजस्थान के अकाल-निवारण मे, हरिजन-सेवा मे, जलकष्ट निवारण मे अधिक रुचि ली । हरिजन-सेवा का कार्य भी उन्होने गाधीजी के अनशन के दिनो से अपना रखा था और उसी वृत्ति के परिणामस्वरूप राजस्थान मे भी उन्होने हरिजन-सेवा की ।

लोकशक्ति को जागृत करनेवाली, लोगो को प्रेरणा देनेवाली ऐसी मण्डनात्मक प्रवृत्तिया उन्होने अपने बलबूते पर और अन्त प्रेरणा से चालू की थी । परन्तु इन सब मे सीकर के आरोग्य केन्द्र ने उनको विशेष रूप से आकर्षित किया था क्योकि यह कार्य क्षय रोगियो की सेवा का था । उन्होने अपने अन्तकाल को समीप देखकर कितना बडा दान दे डाला । पहले उद्गार मे सीकर आरोग्य केन्द्र को पाच साल के लिए प्रतिवर्ष एक लाख के दान का और फिर कुछ समय के बाद ही करीब-करीब अन्त बेला मे पन्द्रह लाख के दान का उच्चारण किया । सीकर का आरोग्य केन्द्र उन्हे बहुत प्रिय था ।

खादी और ग्रामोद्योग की अपने वतन की सस्था के कार्य मे वे दिलचस्पी रखते थे और उसके द्वारा कत्तिन, बुनकर, कामगार और कार्यकर्ताओ की चिन्ता भी करते थे ।

ऐसे परोपकारी, सम्पत्ति के धनी की शक्ति और वृत्ति सीमित नही थी । उनके अन्तर मे सत्य और प्रेम का झरना बहता रहा था इसीलिये वे राजस्थान के नशाबन्दी कार्य की चिन्ता करते थे और सलाह-सूचना और सहायता करते रहते थे । मेरे अनशन के दिनो मे उनकी चिन्ता को मैं अच्छी तरह महसूस कर रहा था । मुझे उनके आशीर्वाद मिलते रहते थे । वे छोटे-बडे सब कार्यकर्ताओ का ध्यान रखते थे और जब-जब

जरूरत होती थी तब-तब उनकी ओर मे प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से आर्थिक सहायता भी कार्यकर्ताओ को मिलती रहती थी ।

स्वर्गस्थ भागीरथजी अपने परिवार के तो वडे थे ही परन्तु वे एक सच्चे मित्र भी थे। उनके परिचय का वर्तुल कलकत्ता या राजस्थान ही नही था परन्तु पूरे हिन्दुस्तान तक व्याप्त था क्योकि उनके दिल मे स्नेह और निर्वैरता तथा मिष्टभापिता भरी हुई थी। वे मितभापी होते हुये भी एक अच्छे वार्ताकार भी थे और किसी को कल्पना नही हो सकती थी कि व्यापारी भागीरथजी एक अच्छे लेखक भी है। उनकी कहानियो मे माधुर्य, रोचकता और वोध दिखाई देता है। ये कहानिया "वहता पानी निर्मला" नाम से प्रकाशित हुई है। उस ग्रन्थ के बारे मे मैं यहा लिखना नही चाहता परन्तु उन्होने खुद लिखा है कि "कहानिया, लोकोक्तिया, मुहावरे और लोक-कथाये सुनने-सुनाने की रुचि मेरी वरावर से ही रही है। मेरे कुछ मित्रो और परिजनो का यह आग्रह था कि जो कहानिया आदि मैं उन्हे सुनाता रहा हू, उनको लिपिबद्ध कर दू। लेकिन मैं टालता रहा। अब जब प० कन्हैयालालजी सहल ने, जो कि मेरे अच्छे मित्र है तथा राजस्थानी और हिन्दी के माने हुए विद्वान भी, मुझसे कहा कि मैं "मरुभारती" के कहानी अक के लिये कुछ कहानिया लिखकर भेजू, तो मै उनकी बात टाल नही सका। फलस्वरूप इतनी सारी कहानिया लिख गया हू। कहानिया लिखने वैठा तव तो न यह कल्पना ही थी और न यह इरादा ही था कि कहानियो की सख्या इतनी हो जायेगी, लेकिन लिखने वैठा तो एक के बाद एक याद आती गयी और मै लिखता चला गया। कुछ मित्रो का, खासकर यशपालजी जैन का, यह सुझाव रहा कि इन कहानियो को अलग से पुस्तक के रूप मे भी छपा देना ठीक रहेगा और सुझाव के अनुसार यह छोटी सी पुस्तक आप के हाथ में है।" भागीरथजी वहुमुखी प्रतिभा के पुरुप थे। उनकी सन्त-साहित्य मे रुचि भी प्रगाढ थी और इसीलिये तुलसी-ग्रन्थावली, सूर-ग्रन्थावली जैसे कामो मे उन्होंने न सिर्फ आर्थिक योगदान दिया परन्तु सम्पादन मे भी अपने सुझाव देते रहे।

ऐसे श्रद्धेय वडिल भ्राता समान साधु पुरुप भागीरथजी को किस तरह मैं श्रद्धाजलि अर्पित करु? वे प्रेरणा देते रहते थे और स्नेह वरसाते रहते थे। उनकी और सीतारामजी सेकसरिया की अटूट जोडी थी। सीतारामजी ने अपनी "एक कार्यकर्ता की डायरी" भाग-एक मे सन् १९२९ की १२ जनवरी की डायरी मे पृष्ठ तीन पर लिखा है—"सेवा समिति वालचर मण्डल के अधिवेशन मे गये। यहा भागीरथजी कानोडिया मिले। उन पर अपनी वडी श्रद्धा है, वास्तव मे देवता आदमी है अपने मे वडा ही प्रेम रखते है, वैसे तो वह सव मे ही रखते हैं।"

सीतारामजी ने स्वर्गस्थ भागीरथजी की जो छवि देखी वैसी तसवीर मैंने भी देखी। एक अच्छे साधु पुरुप ने जिस तरह का जीवन विताया वह धन्य जीवन था। ऐसे पुरुप के परिवार मे आ० रगादेवीजी तथा उनके स्वजन, आप्तजन साथी, मित्र, कार्यकर्ता तथा परिचित नित्य उन्हे याद करते रहेंगे। उन के गुणो का यत्किचित् अनुकरण करके स्वर्गस्थ को स्नेहाजलि, श्रद्धाजलि, स्मरणाजलि अर्पित करते रहेंगे। अगले पृष्ठ की मेरी कविता के उदगारो का अनुमोदन करेंगे। अभी इतना ही।

नि.सगी थे, निराडम्बर, निरभिमानी भागीरथ
सदा सन्तुष्टजीवन थे चिन्तनशील भागीरथ।
परोपकारी दयावान थे मानव उच्च भागीरथ
कमलवत् नीर मे रहकर प्रभुमय जीव भागीरथ।
धनी-मानी प्रतापी थे, विनयमूर्ति थे भागीरथ
विवेकी थे, विनोदी थे, सदा स्मितवान भागीरथ।
विपद मे धैर्यधारी थे, व्रती, निर्भीक भागीरथ
अहिंसा प्रेमपुजारी दलित-सेवक थे भागीरथ।
गुणालकार से भूषित फलेच्छा-त्यागी भागीरथ
सदा स्मरणीय जनसेवक महायोगी से भागीरथ।
नमन उस उच्च आत्मा को शिवात्मारूप भागीरथ
हमारे स्नेह के अर्घ्य स्वीकारो आप भागीरथ।

—: o :—

अ० भा० गो सेवा सघ के मत्री,
गांधीवादी कार्यकर्त्ता
श्री राधाकृष्ण बजाज

करुणामूर्ति अजात शत्रु

पू० भागीरथजी कानोडिया के देहावसान की खबर मिलते ही प्रथम क्षण तो चित्त को शान्ति का अनुभव हुआ। महीने से बेहोश पडे तकलीफ पा रहे थे। सारी यातनाओ से छूटे, इसका समाधान हुआ और मृत्युदेवका आभार माना। दूसरे ही क्षण वियोग-दुख उभरने लगा। हर क्षण उनका ही स्मरण होने लगा।

पू० भागीरथजी से मेरे सम्बन्ध को ५० साल से ऊपर हो गये। शुरू से लेकर आज तक देख रहा हू कि वे करुणा की मूर्ति थे। जहा भी दुख पडा हो वहा उन्हे खडा ही पाया। राजस्थान के अनेक अकालो मे उन्हे काम करते देखा। वे अध्यक्ष और बद्रीनारायणजी सोढाणी सेक्रेटरी, राजस्थान मे दोनो की जोडी अटूट थी। बद्रीनारायणजी सोढाणी भी एक त्यागी, तपस्वी और दयामूर्ति सेवक है। जहा तकलीफ देखी उनका हृदय द्रवित हो जाता है। पू० भागीरथजी को केवल अकाल-राहत से सतोष नही था, सतत् करुणा का एव दया का कार्य चलता रहे इसके लिये सीकर मे उन्होने पीपल्स वेलफेयर सोसायटी के नाम से एक सस्था खोली, जिसके जरिये अनेक करुणा के कार्य होते रहते है। भागीरथजी और सोढाणीजी इसके प्राण थे—वे अध्यक्ष और सोढाणीजी मत्री। पू० भागीरथजी का दया के क्षेत्र मे अतिम काम कल्याण आरोग्य सदन अर्थात टी० बी० सेनोटेरियम, सीकर का रहा। इस अस्पताल का काम सोढाणीजी ने शुरू किया था। काम शुरू करते समय जिसके पास केवल दो-चार सौ की पूजी थी, उसने तप और भक्ति के बल पर पचास लाख का सेनोटेरियम खडा कर दिया। सरकार की मदद तो दूर, उल्टे उसकी तरफ से कुछ कठिनाइया ही सहनी पडी। फिर भी यह मनस्वी हारा नही। जब अस्पताल पूरा खडा हो गया और सौ सवा-सौ बीमार सतत रहने लगे, सालाना लाखो का खर्च बध गया, तब सोढाणीजी ने भगवान से सहायता की याचना की। सोढाणीजी अत्यन्त व्याकुल थे। अन्त मे भगवान द्रवित हुए और पू० भागीरथजी के रूप मे सस्था का सारा भार सभाला। पू० भागीरथजी का हाथ लगा और सोने मे सुगन्ध आरम्भ हो गयी। आज वहाँ करीब ४०० रोगियो के लिए चारपाइयो की व्यवस्था हो गई है। ८-१० लाख के नये मकान बन गए है। सरकारी मदद के बिना वे सालाना ८-१० लाख रुपया दाताओ से जुटाते रहे। मृत्यु के पूर्व भागीरथजी अपने पुत्र को कल्याण आरोग्य सदन को पाँच लाख रु० देने को कह गये। पुत्र भी वैसे मनस्वी और दानवीर निकले कि ५ के बदले १५ लाख रुपये दिये।

राजस्थान मे १९३९ मे जयपुर सत्याग्रह का काम चला। प्रजामण्डल के कुल पदाधिकारी और सचालक मण्डल के सदस्य जेल भेज दिये गये तब मुझे सत्याग्रह

का सचालक बनाया गया था। मैं तो बहुत छोटा था, लेकिन जिन बुजुर्गो ने सत्याग्रह को चलाया और सहायता की, उनमे पू० भागीरथजी का नाम अग्रणी था। सभी जानते है राजस्थान मे पानी का अभाव रहा है और आज भी है। दो करोड रु० के कुए बनाने की योजना बनी तो भागीरथजी और सोढाणीजी ने उसका काम सम्भाला।

कलकत्ते मे भागीरथजी कानोडिया और सीतारामजी सेकसरिया दोनो की राम-लक्ष्मण की सी जोडी थी। उम्र मे सीतारामजी कुछ बडे है फिर भी दोनो एक दूसरे का पूरा आदर रखते थे। दोनो के विचारो मे थोडी भिन्नता भी थी। फिर भी सेवा-कार्य मे और प्रेम सम्बन्ध मे सूर्य-चन्द्र की तरह यह जोडी कलकत्ते के आकाश मे सदा चमकती रही। इन दोनो की बनायी अनगिनत सस्थाए कलकत्ता मे फली-फूली है।

सर्व सेवा सघ, गो सेवा सघ के वास्ते अनेक बार चन्दा मागने के लिये कलकत्ता गया हू और सदा ही इस जोडी ने मदद की। पू० काकाजी (जमनालालजी बजाज) के जाने के बाद उनके स्थान पर चाचाजी के रूप मे मैंने श्री सीतारामजी सेकसरिया, घनश्यामदासजी बिडला, भागीरथजी कानोडिया और जयदयालजी डालमिया को माना। भागीरथ चले गये, बाकी तीनो की शक्ति क्षीण हो रही है। गाय की मदद मे नई पीढी आ रही है। श्री विष्णुहरि डालमिया, श्री माधोप्रसादजी बिडला, मदद देगे। पू० भागीरथजी से प्रार्थना करने का मौका मिला नही, लेकिन मुझे भरोसा है उनके सुपुत्रो मे से कोई न कोई गाय की मदद मे आयेगा ही।

पू० भागीरथजी सर्व मित्र थे। करोडपति होते हुए भी कार्यकर्ताओ के साथ बराबरी मे बैठ कर बातें कर सकते थे। उनकी न्यायप्रियता की इतनी साख थी कि बडी-बडी पार्टिया आपस के झगडो मे उन्हे पच बनाती थी। पचायत करना भी उनके कार्य का एक बडा हिस्सा हो गया था। वे अजातशत्रु थे। जीवन मे किसी का बुरा नही चाहा। जितना बन सका भला ही किया। सारे भारत मे उनकी सहायता से पनप रही सस्थाए एव कार्यकर्ता लहरा रहे है।

एक बात और भी कह दू कि शक्तिशाली पुरुष हो और बडी-बडी सेवाए जिसके हाथ से हुई हो ऐसे पुरुषो मे कुछ न कुछ अहकार और क्रोध प्रगट होता ही है, लेकिन यह महापुरुष ऐसा देखा जिसे अहकार या क्रोध छू भी नही सका। सदा नम्रता की मूर्ति रहे। इस बारे मे भागीरथजी को लोकनायक जयप्रकाशजी का अनुयायी कह सकते है, जैसे लोकनायक मे अतीव कार्य-शक्ति होते हुए भी अत्यधिक नम्रता थी वैसी ही भागीरथजी मे भी थी।

ऐसे महामानव को प्रभु शाति देगा ही। प्रभु से नम्र प्रार्थना है कि देवी स्वरूप चाचीजी, बच्चे, परिवार तथा विशाल मित्र परिवार को सात्वना दे और उनके सद्गुणो को ग्रहण करने की शक्ति दे।

— ० —

हिन्दी के सबसे वरिष्ठ पत्रकार, इतिहास वेत्ता

पंडित झावरमल्ल शर्मा

कीर्तिः यस्य स जीवति

परमोदार, परोपकार-परायण बाबू भागीरथजी कानोडिया की याद उनके वियोगजन्य दुख को द्विगुणित कर रही है। कलकत्ते मे होनेवाले प्राय सभी शुभानुष्ठानो मे उनका और उनके अभिन्न मित्र बाबू सीतारामजी सेकसरिया का प्रत्यक्ष या परोक्ष सहयोग रहता था। चाहे वह कार्य साहित्यिक, राजनैतिक अथवा समाज सेवा-परक, कैसा ही क्यो न हो। स्वर्गीय बाबू बालमुकुन्दजी गुप्त का स्मृति महोत्सव उनके स्वर्गवास के ४२ वर्षो के बाद समायोजित किया गया था और जिसके मन्त्रित्व का भार मेरे दुर्बल कन्धो पर था और जिसका सभापति-पद अलकृत करने के लिए राजर्षि बाबू पुरुषोत्तमदासजी टण्डन पधारे थे, उस महोत्सव की सम्पन्नता मे बाबू भागीरथजी और बाबू सीतारामजी का हार्दिक सहयोग मिला था। इसके लिए बाबू बालमुकुन्दजी गुप्त के आत्मीय जनो की ओर से गुप्तजी के ज्येष्ठ पुत्र बाबू नवलकिशोरजी गुप्त ने विशेष कृतज्ञता ज्ञापित की थी।

मुझे मालूम है कि जिस वनस्थली विद्यापीठ की स्थापना कर पण्डित हीरालालजी शास्त्री ने राजस्थान की गरिमा बढायी, कई वर्षो तक बाबू भागीरथजी ने स्वय सहायता दे कर एव अपने मित्रो से दिलाकर सस्था का व्यय-भार वहन किया था। सस्था के द्वारा कोई विशेष कार्य करने की जब आवश्यकता अनुभव करते, तभी प० हीरालालजी शास्त्री कानोडियाजी के पास पहुच जाते और इच्छित धन-राशि प्राप्त कर प्रत्यावर्तित होते। कानोडियाजी का निवास स्थान देशभक्तो एव सेवाभावी कार्यकर्ताओ के लिए सदा खुला रहता था।

दो पार्टियो के झगडे मिटाने, बटवारे के लिए भाई-भाई का पारस्परिक मनमुटाव मिटा कर सद्भाव स्थापित करने के निमित्त वे दोनो पार्टियो की सहमति से मध्यस्थ बनाये जाते थे और आपके किये हुए निर्णायक फैसले आपस मे बटवारे के लिए झगडनेवाले निष्पक्ष मान कर सन्तुष्ट होते थे और यो अदालती खर्च और वकीलो की भारी फीस से उभय पक्ष बच जाते और भाइयो तथा पार्टियो को लडानेवाले चकित हो जाते।

निस्सदेह स्वर्गीय बाबू भागीरथजी कानोडिया एक प्रकृत देशभक्त और सेवा भावी समाज हितकारी के रूप मे सदा स्मरण किये जायेगे। उनकी कीर्ति की धवल ध्वजा सदैव फहराती रहेगी—कीर्ति यस्य स जीवति। मैं हार्दिक प्रेम के साथ स्व० श्री भागीरथजी कानोडिया के प्रति सादर अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करता हू।

— ० —

राजस्थानी एवं जैन साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान
श्री अगरचन्द नाहटा

भारतीय संस्कृति के आराधक एवं पोषक

भारतीय मस्कृति मे मंस्कारो को वहुत महत्व दिया गया है। गर्भाधान से लेकर मृत्यु पर्यन्त के अनेक सस्कारो का विधान हमारे ग्रन्थो मे पाया जाता है। वे चाहे औपचारिक रूप से हो, पर सस्कार वहुत प्रभावशाली होते है। सारा जीवन उनसे प्रभावित होता रहता है। वाल्यकाल मे जो सस्कार दिये जाते है या पडते हैं वे एक तरह से स्वभाव से वन जाते है। प्राचीन काल से इस पर वहुत जोर दिया गया है कि कुसस्कारो से वचा जाय और सुसस्कारो को दृढीभूत किया जाय। वैसे तो वास्तव मे सस्कार का अर्थ ही है—परिशुद्धि। और जीवन मे शुद्धि और सशोधन की वहुत वडी आवश्यकता है। भारतीय सस्कृति मे भागीरथी का नाम वडा प्रसिद्ध है, क्योकि भगीरथ द्वारा लाये जाने के कारण पवित्र गगा नदी का नाम 'भागीरथी' पडा। कानोडियाजी का नाम भागीरथ भी भारतीय मस्कृति का द्योतक है।

स्वर्गीय श्री भागीरथजी कानोडिया भारतीय सस्कृति के महान पोपक थे। अनेक सद्‌गुण उनके रोम-रोम मे व्याप्त हो गये थे। दूसरो की भलाई करना, यह उनका जीवन-आदर्श था। 'सादा जीवन और उच्च विचार' के वे जवरदस्त प्रतीक थे। कलकत्ता जाने पर उनसे कई वार मेरा मिलना हुआ। राजस्थानी भापा और सस्कृति के प्रति उनका अनूठा लगाव था। राजस्थानी कहावतो और लोक-कथाओ के वे अच्छे जानकार थे। उन्होने इन दोनो का काफी अच्छा सग्रह किया एव ग्रन्थ रूप मे उनका प्रकाशन भी हो चुका है। राजस्थानी भापा और साहित्य के मम्वन्ध मे मेरी उनसे वातचीत हुई और लिखा पढी भी। इसमे उनका इस विपय मे वडा भारी आकर्षण प्रतीत हुआ। उनके जैसे आदर्श व्यक्ति वहुत विरले ही मिलते हैं। अच्छे कार्यों मे वे सदा सभी को सहयोग देते रहते थे। अच्छे-अच्छे ग्रन्थो को मगाकर पढते रहना, उनका व्यसन-सा हो गया था। व्यक्ति रूप मे भी वे स्वय वहुत गुणी और गुणीजनो का आदर करनेवाले थे। निश्छल और निरभिमानी व्यक्तियो मे वे उल्लेखनीय थे ही, व्यापार मे भी उन्होने खूव सफलता प्राप्त की। जो भी उनके मम्पर्क मे आया, वह उनसे प्रभावित हुए विना नही रहा। जन-सेवा के क्षेत्र मे भी उन्होने वहुत अच्छा काम किया। ऐसे व्यक्तियो से हम सभी को प्रेरणा ग्रहण करनी चाहिए। उनके चालू किये हुए कामो को पूरा करने का प्रयास किया जाय। उनकी भावना को मूर्त रूप दिया जाय, यही उनके प्रति सच्ची श्रद्धाजलि होगी।

राजस्थानी लोक-कथाओ मम्वन्धी अपना ग्रन्थ उन्होने मुझे भेजा और मुझे वह ग्रन्थ वहुत ही अच्छा और उपयोगी लगा। उनकी सेवा की सुगन्ध आज भी सर्वत्र प्रसारित हो रही है। ऐसे गुणी व्यक्तियो के स्मरण एव अनुकरण मे हमारा जीवन अवश्य ही गौरवमय वन सकता है।

संत-साहित्य मर्मज्ञ,
हरिजन सेवक संघ के अध्यक्ष
श्री वियोगी हरि

यशस्वी जीवन

सन्मित्र, मृदुभाषी, उदारमना और सदा सेवा-तत्पर—ऐसे थे भागीरथ कानोडिया। जीवन उनका कर्तव्यनिष्ठ और सात्विक था। उनके इन सद्‌गुणो की याद बार-बार आती है। जब-जब मैं कलकत्ता आता था, उनसे बिना मिले नही रहता था।

कलकत्ते मे सबसे पहले श्री महावीरप्रसाद पोद्दार ने उनसे मेरा परिचय कराया था। यह परिचय बहुत जल्दी आत्मीयता मे परिणत हो गया। यह बात कोई १९२२ या १९२३ के आसपास की है। बहुत पहले भागीरथजी जकरिया स्ट्रीट (कलकत्ता) पर स्थित बिडला-हाउस मे रहा करते थे। उनके साथ तभी मैं दो या तीन बार ठहरा था। बाद मे बालीगज के मकान मे भी, जहा तक स्मरण है, मैं दो बार उनके साथ रहा था। आतिथ्य उनका कभी भूला नही जा सकता। हर सुविधा का वे और उनके परिवार के लोग पूरा ध्यान रखते थे।

भागीरथजी ने ही सबसे पहले मुझे श्री घनश्यामदास बिडला से मिलाया था, १९३१ मे। उसके बाद 'हरिजन सेवक-सघ' के साथ मेरा सम्बन्ध होने के कारण बिडला पार्क मे, कभी अलीपुर के बिडला-हाउस मे और कभी बिडला-निकेतन मे ठहरने लगा। तब अक्सर मुझे उनके यहा जाने पर मीठा उलाहना मिलता था।

हरिसन रोड (अब महात्मा गाँधी मार्ग) पर जब उन्होने और उनके सहयोगियो ने 'शुद्ध खादी भण्डार' का उद्‌घाटन गाधीजी से कराया था, उस दिन सद्‌भाग्य से मैं उन्ही का मेहमान था और मैंने बापू के हाथ से कुछ खादी भी खरीदी थी। खादी के प्रति भागीरथजी की निष्ठा जीवन के अन्तिम क्षण तक वैसी ही बनी रही। यो तो सभी लोक-सेवा के कार्यों और रचनात्मक कार्यों मे भागीरथजी तन, मन और धन से रस लेते थे, परन्तु हरिजन-सेवा के कार्य के प्रति उनके हृदय मे कुछ विशेष प्रेम था। कलकत्ता की हरिजन बस्तियो मे वे जाते थे और कुछ-न-कुछ सेवा-कार्य वहा स्वय करते और दूसरो से कराते थे। राजस्थान-हरिजन-सेवक-सघ का अध्यक्ष जब उनको नियुक्त किया गया, तो हमारे कार्य को विशेष बल और प्रेरणा उनसे मिली। कई वर्ष पहले जब उन्होने प्रादेशिक हरिजन-सेवक-सघ की अध्यक्षता छोड देने की बात सोची, तब मैंने उनसे अनुरोध किया कि चाहे और कार्यों को वे छोड सकते हैं, परन्तु हरिजन-कार्य को नही

छोडना चाहिए। उन्होने मेरा अनुरोध मान लिया और कई वर्ष तक अध्यक्ष बने रहे और अपना अनुकरणीय सहयोग सघ को देते रहे ।

भागीरथजी के साथ रचनात्मक कार्यो और साहित्य पर, विशेषकर राजस्थानी साहित्य पर, चर्चा करते हुए बडा आनन्द आता था। उद्योग और व्यापार के आवश्यक कार्यो मे से समय निकाल कर वे राजस्थानी साहित्य पर कुछ-न-कुछ लिखते रहते थे। पढने का उनको व्यसन था।

'सस्ता साहित्य मण्डल' के वर्षों सभापति-पद पर रह कर भागीरथजी ने मण्डल के कार्य का मार्ग-दर्शन किया था। 'मण्डल' के दिवगत मत्री श्री मार्तण्ड उपाध्याय तथा वर्तमान मन्त्री श्री यशपाल जैन जब-जब कलकत्ते जाते थे, उन्ही के निवास-स्थान पर ठहरते थे और उनसे अच्छा योगदान उनको मिलता था।

सब प्रकार से भागीरथजी का जीवन यशस्वी और अनुकरणीय था। उनके अनेक सस्मरण अमूल्य निधि के रूप मे सदा सचित रहेगे।

—: ० :—

हिन्दी के वरिष्ठ लेखक और पत्रकार

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी

अर्पण ही अर्पण

"विशाल भारत" का सम्पादन करने के लिए मैं ३० अक्तूबर, सन् १९२७ को कलकत्ता पहुचा था और १० अक्तूबर, १९३७ तक वहा रहा। इन १० वर्षो के बीच मुझे भाई भागीरथजी कानोडिया तथा बन्धुवर सीतारामजी सेकसरिया से मिलने का सौभाग्य बीसियो बार ही प्राप्त हुआ होगा। ये दोनो ही सज्जन मेरे यजमान थे और मेरे अनेक यज्ञो मे इन्होने भरपूर सहायता भी दी थी। इन दोनो का पारस्परिक सम्बन्ध इतना सुदृढ था कि मैं उनमे कोई भेद नही कर पाता था।

शान्तिनिकेतन के "हिन्दी भवन" का प्रारम्भ यद्यपि भाई सेकसरियाजी के ५०० रु० के अनुदान से हुआ था, तथापि उसे पूर्ण किया कानोडियाजी ने।

दीनवन्धु ऐण्ड्यूज विश्राम करने के लिए शान्तिनिकेतन से इलाहाबाद जा रहे थे। मैंने उनसे प्रार्थना की कि वे कलकत्ता मे एक दिन रुक जाएं, ताकि मैं 'हिन्दी भवन' के लिए चन्दा कर सकूं। वे इस काम के लिए सहर्ष राजी हो गए। बोलपुर से वे कलकत्ता शाम को पहुचे और मैं स्टेशन से उन्हे सीधे भाई भागीरथजी कानोडिया के घर पर ले गया। भागीरथ भाई को इसकी कोई पूर्व सूचना नही थी, इसलिए वे कुछ सकपका गए और बडे सकोच के साथ उन्होने कहा, 'आपने इन महापुरुष को यहां आने का कष्ट क्यो दिया ?' मैंने उत्तर मे कहा, 'हम लोग शान्तिनिकेतन मे हिन्दी भवन तैयार करना चाहते हैं। उसके लिए दो हजार रुपये की आवश्यकता है। आपसे प्रार्थना है कि आप तदर्थ एक हजार रुपये दें।' भाई कानोडियाजी ने कहा, 'मैं सहर्ष पांच सौ रुपये दे सकता हू।' हम लोगो ने उन्हे धन्यवाद दिया और दीनवन्धु ऐण्ड्यूज ने उनसे अनुरोध किया कि वे शान्तिनिकेतन मे 'हिन्दी भवन' बनाने मे भरपूर मदद करे।

तत्पश्चात मैं ऐण्ड्यूज साहब को भाई सेकसरियाजी के यहा ले गया। उन्हे भी कोई पूर्व सूचना नही थी। जब उन्होने श्री ऐण्ड्यूज को अपने मकान के नीचे देखा तो शीघ्र ही आकर मुझसे पूछा, 'इन महापुरुष को क्यो तग किया ?' मैंने कहा कि ये स्वय ही आपको धन्यवाद देने आए है क्योकि आप 'हिन्दी भवन' के लिए पांच सौ गुरुदेव को दे आए है। इस पर सेकसरियाजी ने कहा, 'धन्यवाद की तो कोई जरूरत नही थी। पर मैं अपने घर से इन्हे खाली हाथ वापस नही भेज सकता। दो सौ रुपये और लेते जाइए।' हम लोगो को इससे बडा हर्ष हुआ।

आगे चल कर भागीरथ भाई ने चौंतीस हजार रुपये की लागत से पक्का 'हिन्दी भवन' शान्तिनिकेतन मे बनवा दिया। यह पैसा उन्होने 'हलवासिया ट्रस्ट' से

दिलवाया था। आगे चल कर तो मारवाडी मित्रो से लाख-सवा लाख से भी ऊपर रुपया 'हिन्दी भवन' को मिला।

साहित्याचार्य प० पद्मसिंह शर्मा का जब स्वर्गवास हुआ तो मैंने ढाई सौ रुपये भागीरथ भाई से ले कर पालीवालजी के 'सैनिक' को भेज दिये थे और उन्होने 'सैनिक' का एक पद्मसिंह अक निकाल भी दिया था।

आर्थिक सकट के समय मेरी प्रार्थना पर भाई सीतारामजी तथा कानोडियाजी मे पाच हजार रुपये प्रवासी प्रेस को उधार दे दिये थे, जो मुश्किल के साथ चुक पाए।

सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी आसामी बाबू तथा साम्यवादी कार्यकर्ता तैयब शेख के लिए मैंने कुछ मदद भागीरथ भाई से ली थी। जब स्व० माखनलाल चतुर्वेदी को मैने शान्तिनिकेतन की यात्रा कराई थी उस समय भी भागीरथ भाई ने उन्हे पाच सौ रुपये दिये थे।

एक बार मेरे मन मे यह विचार आया, कि चार सौ रुपये का हिन्दी टाइप खरीद लिया जाय और प्राइवेट तौर पर कम्पोजीटर रख कर पुस्तके कम्पोज कराई जाए। यह विचार मैने भागीरथ भाई के सामने रखा। उन्होने तुरन्त चार सौ रुपये दे दिये। दुर्भाग्य से उन्ही दिनो मेरे बहनोई श्री कामताप्रसादजी बहुत अस्वस्थ हो गये थे और वे चार सौ रुपये उनकी बीमारी मे खर्च हो गए। वे बचाए न जा सके और उनका स्वर्गवास हो गया।

भागीरथ भाई बडे सहृदय व्यक्ति थे। एक बार प्रसगवश मेरे मुह से निकल गया था, 'उन दिनो मेरी आर्थिक स्थिति इतनी खराब थी कि दही लाने के लिए घर मे दो पैसे भी न थे।' कई वर्ष बाद भागीरथ भाई ने मुझे उस बात की याद दिलाई तब मुझे आश्चर्य हुआ।

जब 'हिन्दी भवन' के उद्घाटन के लिए प० जवाहरलालजी नेहरू शान्ति-निकेतन पधारे थे, मैं कलकत्ता मे ही था, पर अपने उस स्वप्न को पूरा देखने के लिए मैं शान्तिनिकेतन नही गया। बात यह हुई कि काग्रेस ने पच्चीस रुपये मासिक की आर्थिक सहायता बन्द कर दी थी और इस कारण मैं बहुत उद्विग्न था। पर मैं स्टेशन जरूर गया था। उस समय भागीरथ भाई ने कहा था, "आप शान्तिनिकेतन नही चल रहे, जबकि 'हिन्दी भवन' आपने ही बनवाया है। बिना दूल्हे की बारात कैसी ?"

साम्प्रदायिक एकता के लिए जब मैंने ट्रैक्ट छपवाने शुरू किये तो उनका व्यय कानोडियाजी तथा सेकसरियाजी ने ही दिया था।

यह मुझे पता था कि अनेक क्रान्तिकारियो को भागीरथ भाई से मदद मिलती थी, जिसका हाल किसी को मालूम न था। बगाल मे जब भयकर अकाल पडा था तब रिलीफ कमेटी के वे ही मन्त्री बनाए गए थे, क्योकि यह काम बडी जिम्मेदारी का था।

दो वर्ष पहले की बात है, मुझे एक सहायक की जरूरत हुई और मैंने यह बात कानोडियाजी को लिख भेजी। उन्होने तुरन्त ही सालभर के लिए चौबीस सौ रुपये भेज दिये। एक कहावत के अनुसार उनका बाया हाथ भी नही जानता था कि दाहिना हाथ किसकी मदद कर रहा है।

एक बार जब वे दिल्ली मे बिडला हाउस मे ठहरे हुए थे, उन्होने मेरी मुलाकात श्रद्धेय घनश्यामदासजी बिडला से करा दी थी और दिल्ली के 'हिन्दी भवन' के लिए एक हजार रुपये दिलवा दिये थे। उनकी सब सहायताओ का उल्लेख करने के लिए यहा स्थान नही है।

कानोडियाजी के अन्तिम दर्शन मुझे तीन-चार वर्ष पहले रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली मे हुए थे। वे पालम हवाई अड्डे से कलकत्ता जा रहे थे और रास्ते मे मुझसे मिलने के लिए भाई यशपाल जैन के साथ मेरे निवास-स्थान पर पधारे थे। भाई गोविन्दप्रसाद केजरीवाल उस समय मेरे यहा मौजूद थे। वे भी कानोडियाजी के प्रशसको मे हैं।

मेरा और गोविन्दप्रसादजी का यह विचार हुआ कि भागीरथ भाई को एक अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया जाना चाहिए और हम दोनो ने अलग-अलग चिट्ठिया इस विषय मे लिखी और दोनो को ही उन्होने नकारात्मक उत्तर दिए।

यदि उन सब उपकारो का विस्तारपूर्वक उल्लेख किया जाय, जो भागीरथ भाई ने मेरे ऊपर किये थे तो पाठक ऊब जायेंगे, इसलिए संक्षेप मे ही उनका जिक्र करूगा।

दक्षिण भारत मे हिन्दी-प्रचार का जो कार्य हो रहा था, उसे देखने के लिए मुझे कर्नाटक की यात्रा करनी पडी थी और उसके लिए डेढ सौ रुपये मार्ग-व्यय के लिए कानोडियाजी ने ही दिये थे। मैंने दोनो ओर से थर्ड क्लास मे ही सफर किया था। इसी प्रकार छपरा जिले की यात्रा के लिए कानोडियाजी ने डेढ सौ रुपये दिये थे।

जैसा कि मैं लिख चुका हू, मैं इन दोनो भाइयो मे कोई भेद नही कर पाता था। किसी एक की सहायता की मैं दोनो की सम्मिलित सहायता ही मानता था। रामानन्द चटर्जी स्मृति-ग्रन्थ (अग्रेजी) के लिए छत्तीस सौ रुपये उन्ही के व्यय हुए और वह बिना मूल्य वितरित किया गया। विश्वभारती (शान्तिनिकेतन) का भी रामानन्द अक भाई श्यामसुन्दरजी खत्री तथा डाक्टर रार्मासह तोमर की कृपा से निकल गया था।

जब मैं बारह वर्ष तक ससद की सदस्यता करके घर लौटा तो मेरे पास बैंक मे तेरह सौ छियालीस रुपये थे, जिनमे एक हजार रुपये सीतारामजी सेकसरिया द्वारा भेजे गये थे। पिछले पचास वर्षो मे मेरे द्वारा जो छोटे-मोटे साहित्यिक यज्ञ किये गए है, उनमे किसी-न-किसी प्रकार की आर्थिक सहायता इन दोनो भाइयो से बराबर मिलती रही है और यह मदद सर्वथा नि स्वार्थभाव से ही उन्होने की है। स्वर्गीय नवीनजी की एक कविता है :

'अरे, समुद अर्पण ही अर्पण
यह जीवन का क्रम है
और ग्रहण मे मृत्यु निहित है
प्रतिफल केवल भ्रम है।'

यही इन दोनो का मूलमन्त्र रहा है।

कलकत्ते मे 'भारतीय भाषा परिषद' की स्थापना का भागीरथजी का कार्य एक बडा कार्य है। बगाल मे राष्ट्रीय एकता के काम करने के लिए यह एक ठोस कदम है।

राजस्थान मे क्षय रोग की रोक-थाम के लिए चिकित्सालय की स्थापना भागीरथ भाई का अन्तिम स्वप्न था, जिसे वह अपने जीवन-काल मे सानन्द सम्पन्न करा गये। यदि भागीरथ भाई चाहते तो कारपोरेशन, विधान-सभा या ससद के सदस्य बनना उनके लिए आसान था, पर उस दिशा मे उनकी कोई आकाक्षा नही थी। उनके प्रिय कार्यो को हम लोग पूरा करे, यही उनका सर्वोत्तम स्मारक होगा।

भाई भागीरथजी ने अपने निवास स्थान के निकट ही तुलसी लाइब्रेरी कायम कर दी थी जिस पर उनका लगभग ४०-५० हजार रुपया व्यय हुआ होगा। उस पुस्तकालय के लिए अग्रेजी ग्रन्थ चुनने का काम मेरे सुपुर्द था और भाई धवलेजी हिन्दी ग्रन्थो का चयन करते थे। पुस्तकालय बडे सुचारु रूप से चल रहा था कि १९४६ में कलकत्ता मे साम्प्रदायिक दगा हुआ और गुण्डो ने उस पुस्तकालय मे आग लगा दी जिससे वह जल कर भस्म हो गया। भाई भागीरथजी ने इस दुर्घटना को बडे धैर्यपूर्वक सहा और अपना मानसिक सन्तुलन कायम रखा।

जब-जब मैं तुलसी पुस्तकालय की याद करता हू, मेरे मन मे एक हूक-सी उठती है। मैंने भी अपने कुछ श्रेष्ठ ग्रन्थ उस पुस्तकालय को बेच दिये थे। वे भी जल गए। उक्त पुस्तकालय की एक पुस्तक Rebels and Renegades अकस्मात् मेरे यहा पडी रह गई। वह उस पुस्तकालय की याद दिलाती है। भाई भागीरथजी के हृदय मे मुसलमानो के प्रति कोई विद्वेष नही था। वे भलीभाँति समझते थे कि अवाछनीय व्यक्ति किसी धर्म विशेष के अनुयायी नही होते।

—. ० :—

वरिष्ठ लेखक, सन्त साहित्य-मर्मज्ञ
श्री सीताराम चतुर्वेदी

भावुक सन्त

श्री भागीरथजी कानोडिया के आकस्मिक निधन का समाचार पा कर मुझे सहसा बड़ी बेचैनी हो उठी थी, क्योकि उनके रुग्ण होने का समाचार मुझे मिल नही पाया था। मैं भी सयोगवश सब कुछ छोड़-छाड कर एकान्तवास और आत्मचिन्तन करने लगा था। उसी अवस्था मे कलकत्ते के श्री शान्तिस्वरूप गुप्त के पत्र से यह समाचार मिला कि वे दिवगत होकर कीर्तिशेष रह गए है।

श्री भागीरथजी उन थोड़े से गुणग्राही, उदार, स्नेहशील और सेवाभाव-पूर्ण सत्पुरुषो मे से थे, जिन्होने जीवन भर लोक-सेवा करते हुए अधिक से अधिक लोक-मगल सम्पन्न करने मे अपना समय और पुरुषार्थ लगाया। मुझसे उनका परिचय कलकत्ते मे ही श्री सीतारामजी सेकसरिया के यहा बहुत पहले हुआ था और वही मुझे ज्ञात हुआ कि कलकत्ते के मारवाड़ी समाज मे व्याप्त कुप्रथाओ को दूर करने मे जिन विचारशील पुरुषो का हाथ है, उनमे श्री भागीरथजी प्रमुख हैं।

इसके पश्चात् जिन दिनो मैं कलकत्ते मे बिनानी विद्या मन्दिर का अधिष्ठाता था, उन दिनो प्राय किसी सभा मे अथवा विक्टोरिया पर भागीरथजी से दूसरे-तीसरे दिन भेंट होती रहती थी। सम्वत् २०३० मे जब यह घोषणा हुई कि सम्वत् ३१ मे मानस चतुश्शताब्दी मनाई जा रही है और काशी की अखिल भारतीय विक्रम परिषद ने गोस्वामी तुलसीदास के ग्रन्थो का सम्पादन और टीका करने का भार मुझ पर डाला और १४००-१४०० पृष्ठो के दो खण्ड परिषद ने १०-१० रुपये मे पूर्व-ग्राहको को देना शुरू किया, तब एक दिन अचानक उनका एक पत्र मुझे मिला कि १० रुपये मे रायल साइज की १४०० पृष्ठो की पुस्तक दे कर आपको कैसे पोसाता है? मैंने उत्तर मे उन्हे लिखा कि न तो सम्पादको मे से ही कोई किसी प्रकार का पारिश्रमिक लेता है, न अन्य सहयोगी ही किसी प्रकार के आर्थिक पोषण की अपेक्षा रखते हैं। इस उत्तर से सम्भवत वे बहुत अधिक प्रभावित हुए और उन्होने इसकी चर्चा अपनी मित्र-मण्डली मे भी की। जब सूर-पचशती मनाने का निश्चय हुआ तब सूर के ग्रन्थो का सम्पादन और टीका का भार सयोगवश मुझे ही सौंप दिया गया क्योकि अग्रेजी कहावत है—'रिवार्ड फॉर वर्क इज मोर वर्क' (काम करने का पुरस्कार है और अधिक काम करना)। सयोगवश हमारी परिषद मे हिसाब-किताब जाननेवाला कोई वणिक् बुद्धिवाला व्यक्ति नही था और इस विषय मे ब्राह्मण सदा पोगा होता है। इसी कारण हम लोग पूरी सूर-ग्रन्थावली के व्यय का अनुमान नही लगा सके। परिणाम यह हुआ कि तीन खण्ड तो हम लोगो ने राम-राम करके निकाल दिये किन्तु चौथा-खण्ड बहुत विराट (लगभग १५०० पृष्ठो का) हो गया, सम्पादकगण भी यथाशक्ति तन-मन के साथ धन लगा कर त्रस्त हो गए किन्तु ग्रन्थ का रूप सुरसा का मुख बन कर बढ़ता चला जा रहा था। हम लोगो मे से कोई भी पवन-तनय के समान बल-बुद्धि-निधान नही था इसलिए सबने कन्धा डाल दिया, क्योकि परिषद के

नियम के अनुसार न तो किसी से चन्दा लिया जा सकता था न ही उधार। मैने सारी स्थिति श्री भागीरथजी को लिख भेजी और साथ ही यह भी लिखा कि यदि कोई इस शर्त पर आर्थिक सहयोग दे कि हम उसके बदले परिषद की दुगने मूल्य की पुस्तकें उसे दे सकें, तो उन्होने तत्काल एक सहस्र रुपये स्वय और दो सहस्र रुपये श्री शान्तिस्वरूपजी गुप्त के द्वारा भिजवा दिये और किसी-न-किसी प्रकार चतुर्थ खण्ड भी प्रकाशित कर दिया गया। फिर भी बहुत सी आवश्यक सामग्री शेप रह गई और मैंने श्री भागीरथजी, श्री नन्दलालजी टाटिया, श्री नथमलजी भुवालका, श्री रामकुमारजी भुवालका तथा श्री शान्तिस्वरूपजी गुप्त को लिखा कि आपके सहयोग से सुई की नोक से ऊट तो निकल गया पर पूछ अटकी रह गई। इन सभी मित्रो ने ६०-५० प्रतियो का पूर्व-ग्राहक बन कर पूछ भी सुई की नाक से निकाल दी और पूरी ग्रन्थावली छप गई।

उसके अनन्तर मुझे सहसा प्रचण्ड वैराग्य हो गया और मै सब कुछ छोड-छाड कर हिमालय के पचवटी आश्रम मे मौन आत्म-चिन्तन करने लगा। इसी अवधि मे श्री भागीरथजी के शरीर-पात का दुखद समाचार मिला। उनके घर का ठिकाना मुझे ज्ञात नही था। इसलिए मैने अपनी सात्त्विक सम्वेदना श्री सीतारामजी सेकसरिया को लिख भेजी। श्री भागीरथजी अपना सम्पूर्ण व्यवसाय करते हुए भी मन से सत्यनिष्ठ लोक सेवक, साधु और सात्त्विक सन्त पुरुष थे—हमारे यहा सन्त के सम्बन्ध मे कहा गया है कि श्रेष्ठ वश मे उत्पन्न हुए सज्जन को हम उस अच्छे वश (बास) के बने हुए व्यजन (पखे) के समान मानते है जो अपने आपको तो चक्कर मे डाले रहता है किन्तु दूसरो का ताप दूर करता रहता है—

सुजन व्यजन मन्ये चारु-वश-समुद्भवम्।
आत्मान च परिभ्राम्य परतापनिवारणम्॥

एक दूसरे श्लोक मे सज्जन पुरुष की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि ससार मे ऐसे सन्त कितने है जो मन-वचन और कर्म से पुण्य के अमृत से परिपूर्ण होकर सदा तीनो लोको को उपकार ही उपकार की श्रेणियो से तृप्त करते रहते हैं और दूसरे के छोटे से गुण को पर्वत के समान बना कर अपने हृदय मे प्रसन्न हो कर खिल पडते है—

मनसि वचसि काये पुण्यपीयूपपूर्णास्त्रिभुवनमुपकार श्रेणिभि प्रीणयन्त।
परगुणपरमाणून्पर्वतीकृत्य नित्य निज हृदिविकसन्त सन्ति सन्त कियन्त॥

इस युग मे ऐसी गुण-ग्राहकता और श्रेष्ठ कार्यो मे तत्परता-पूर्ण सहायता देने की वृति कहा देखने को मिलती है। इस कलिकाल मे जब कोई एक पैसे के लिए किसी का विश्वास नही करता तब उन्होने मेरे कहने पर परिषद् के लिये ओरिएण्ट पेपर मिल से लगभग आठ हजार रुपये का कागज उधार दिला दिया था।

उनके निधन का समाचार देते हुए श्री शान्तिस्वरूपजी गुप्त ने लिखा था कि आपके सबसे बडे प्रशसक श्री भागीरथजी का देहावसान हो गया। तब यह समझना तो मेरे लिए कठिन हो गया कि मेरे वे किस गुण के प्रशसक थे किन्तु यह अवश्य है कि तत्काल मैं कुछ देर के लिए आत्मलीन हो कर उस गुण-ग्राहक महापुरुष को कृतज्ञता, स्नेह और सराहना के भाव से परिपूर्ण होकर देर तक स्मरण करता हुआ सात्त्विक भावाजलि देता रहा। सत्य यह है कि उनके साथ भावुक सन्तो का युग ही समाप्त हो गया।

—.०.—

सुप्रसिद्ध उद्योगपति एव लेखक
श्री लक्ष्मीनिवास बिरला

फल-फूल से लदा नम्र वृक्ष

दिवगत भागीरथजी के बारे के चन्द सस्मरण लिखने का आरम्भ अपने बचपन की एक घटना से कर रहा हू। उनका सबसे पहला परिचय उसी घटना मे हुआ था। आज भी वह ज्यो की त्यो मुझे याद है।

मैं ७ साल का हुआ, तब तक प्राय अपने नानाजी के पास ही रहता था। नानाजी के, मेरी मा को छोड कर, दो लडकिया अर्थात् मेरी दो मौसिया और थीं। मा की मृत्यु तो मैं डेढ साल का था तभी हो चुकी थी। दूसरा सामने कोई लडका न होने के कारण और मा की मृत्यु हो जाने के कारण नानाजी को मुझसे विशेष प्रेम था।

पिताजी कलकत्ते मे अकेले ही रहते थे और छोटी मां देश रहती थी इसलिये कलकत्ते मे पिताजी के साथ रहना भी सम्भव न था। इसलिये नानाजी और नानी मुझे साथ रखते थे।

स्कूल जाना मैंने शुरू कर दिया था। दशहरे पर कलकत्ता मे छुट्टिया लम्बी होती है। ऐसी ही छुट्टी मे नानाजी देवघर गये। वहा पिताजी के प्रयत्न से एक आरोग्य मन्दिर बनने जा रहा था। उस वक्त एक छोटा सा मकान बन गया था, बाकी झोपडिया थी। हम लोग एक झोपडी में ठहरे। भागीरथजी पिताजी के साथ उस छोटे से मकान मे ठहरे थे। मैं शायद ६ साल का था।

झोपडियो के सामने एक पत्थरो का ढेर लगा था और दूसरे मकानो की नीव के लिये शायद पत्थर लाये गये थे। मैं झोपडी से निकल कर दौडता हुआ एक ढेर पर जा चढा। छोटे पत्थर थे, फिसलने लगे। मेरा पाव पत्थरो मे फस गया और मैं गिरने लगा। इतने मे एक मनुष्य दौडता हुआ आया और मुझे खीच कर निकाल कर गोदी मे दूर ले गया।

दूर खडे पिताजी ने पुकारा "भागीरथ क्या हुआ"? भागीरथजी ने हसते हुए मुझे जमीन पर खडा कर दिया। यह थी मेरी पहली मुलाकात। उसके बाद की बात तो क्या लिखू? भागीरथजी हमारे परिवार के ही सदस्य थे और हम लोग उनका पिता के समान ही आदर करते थे।

बहुत मुद्दत बाद सन् १९२७ मे मैंने पाट के एक्सपोर्ट का काम उनके नीचे रह कर किया। बिरला जूट मिल का माल मैं बेचता था उसमे भी उनकी सलाह मिलती थी। विदेशो के तार आते उन्हे कोड मे से उतारना भी उनसे सीखा।

उनकी रोज शाम हमारे यहा ही बीतती थी इसलिये जो भी प्रश्न मन मे उठता, उन्हे पूछ लेते थे।

भागीरथजी जो काम उठाते उसे पूरी दक्षता से पूरा करते थे। प्रथम महा-युद्ध की समाप्ति के बाद व्यापार फिर चला। भागीरथजी हेसियन का निर्यात तो करते ही थे पर पाट का निर्यात भी शुरू किया। पाट जर्मनी, हालैण्ड, बेलजियम और डण्डी जाया करता था। अग्रेजो का महायुद्ध मे विजय के बाद पारा आसमान मे था। हिन्दुस्तान से पाट का एक्सपोर्ट करनेवालो मे सबसे ऊपर रैली ब्रादर्स थे। वह लन्दन मे पाट की बाल्टिक एक्सचेन्ज के मेम्बर थे इसलिये उन्हे बेचने मे सुभीता था। हम लोगो को हिन्दुस्तानी होने के नाते बाल्टिक एक्सचेन्जवाले अपना मेम्बर नही बनाते थे। हमे काम करने के लिये दलाली देकर दूसरे मेम्बर का सहारा लेना पडता था।

इतनी बाधाएं होते हुए भी भागीरथजी ने पाट का निर्यात शुरू किया तो रैली ब्रादर्स को भी उनका लोहा मानना पडा। चाहे व्यापार हो, या सामाजिक काम, चाहे हरिजन बस्ती का काम हो या राजस्थान मे सिंचाई के कुओ का, चाहे रघुमल चैरिटी ट्रस्ट का काम हो या सस्ता साहित्य मण्डल का काम, सब कामो मे वे लगन से जुटते थे और उन्हे आगे बढाते थे। 'भारत छोडो' आन्दोलन के समय थोडे दिनो के लिये भागीरथजी जेल भी हो आये।

राजस्थानी साहित्य से भी उन्हे प्रेम था और उसका स्वरूप "बहता पानी निर्मला" तथा गोविन्द अग्रवाल के साथ प्रकाशित "राजस्थानी कहावतो का कोश" मे मिला। कहते है फूल-फल से लदा वृक्ष झुका रहता है। ऐसे ही थे भागीरथजी। समाज मे उनका विशिष्ट स्थान था और अपने आप मे वह एक सस्था ही बन गये थे। नई पीढी को देने के लिये उनके पास बहुत कुछ था और वह उन्होने दिल खोल कर दिया। भागीरथजी जैसे लोग बहुत कम होते हैं।

—: ० :—

हलवासिया ट्रस्ट के ट्रस्टी, स्व० भागीरथजी के सहयोगी

श्री पुरुषोत्तमदास हलवासिया

आदमी होना बड़ा दुश्वार है

"बहता पानी निर्मला" को प्रकाशित करने के लिये सकलित कहानियो का टाइप किया हुआ प्राय. ५० पृष्ठो का सग्रह मुझे देते हुए श्री कानोडियाजी ने कहा, "इसे देख कर, कही पाठ-भेद हो तो बताना।" कुछ समय उस पर चर्चा हुई और फिर स्मृति के रूप मे सजोई कई शिक्षाप्रद कहानियो का उल्लेख करते हुए मुझसे किसी उल्लेखयोग्य प्रसग के विषय मे मेरे विचार पूछे। मैंने जब धर्मराज युधिष्ठिर और यक्ष के सवाद की चर्चा की, तो उन्होने कहा राजस्थान मे इसके सदर्भ मे एक और प्रसग यह भी है कि यक्ष के प्रश्नो का उत्तर देने के बाद युधिष्ठिर ने भी अपनी कई शकाओ का समाधान करने के लिये यक्ष को कहा। ये शकाए युधिष्ठिर द्वारा मार्ग मे आते हुए देखे गये दृश्यो के बारे मे थी, जिनसे वह आश्चर्यचकित हुए थे। यक्ष ने युधिष्ठिर को समझाते हुए कहा था कि वे सारे लक्षण कलियुग के आगमन के हैं। प्रसग सभवत सभी जानते होगे—बाड द्वारा खेत को उदरस्थ करना, मूल कुए का स्रोत सूख जाने पर उसके द्वारा पोषित कुओ का असहयोग, गाय द्वारा जन्मजात बछिया का दूध पीना आदि। उन दिनो यही एक लगन थी कानोडियाजी को, अपनी स्मृति को पुनर्जीवित कर समाज के सामने रखने की।

यद्यपि मेरी आयु और विचारो मे उनसे डेढ पीढी का अन्तर था—मैं पीढी १२ वर्ष की मानता हू—यद्यपि विचार-साम्य की दृष्टि से उनका स्नेह मुझ पर साहित्यिक और सार्वजनिक क्षेत्र के कार्यो मे समता का बोध कराता था।

वे राष्ट्रीय स्वय सेवक सघ से मेरे सम्बन्धो को जानते थे और मुझे इस विषय मे कभी छेडते हुए कहते थे हिन्दू की बात करना तो साम्प्रदायिकता ही है। मैं कहता यदि हिन्दू, हिन्दुस्तान मे साम्प्रदायिक है तो राष्ट्रीय कौन है। तब वे अपने मन की बात कह देते कि पाकिस्तान बनाने के बाद अब मुसलमान की यहा की राष्ट्रीयता स्वय सदेहास्पद हो गई है।

१९७५ मे आपात स्थिति की घोषणा के बाद वे मेरे लिये चिन्तित रहते क्योकि उससे पूर्व दो बार १९४८ और १९६४ मे कृष्ण-जन्मस्थान की यात्रा मैं उनके साथ कर चुका था। आपातकाल के दिनो मे कई महीनो बाद जब मैं उनसे मिला तो अत्यन्त प्रसन्न हुए, यद्यपि इस बीच मैंने सम्पर्क पत्रो के द्वारा रखा था तथापि मिलने पर उल्लास हुआ। फिर अनेको घटनाओ का जिक्र करते हुए मैंने निर्दोष बदियो के परिवारो का जब जिक्र किया तो वे बडे दुखित हुए और आर्थिक सहयोग देकर उनके प्रति अगाध सहानुभूति प्रकट की।

१९७१ की बात है बगलादेश मे विद्रोह के फलस्वरूप पश्चिम भारत मे युद्ध जनित आपातकाल की स्थिति बन गई थी। ऐसे समय पूर्व निर्धारित कार्यक्रमानुसार श्री कानोडियाजी किशनगढ आदित्य मिल मे थे और मुझे वहा से उनके साथ ही प्रवास पर वनस्थली, सीकर, मुकुन्दगढ होते हुए ८ दिसम्बर को भिवानी मे हलवासिया वाल मन्दिर के वार्षिकोत्सव पर पहुचना था। मुकुन्दगढ पहुचने पर शहरो और ग्रामो मे युद्धजनित कार्रवाई के फलस्वरूप ब्लैकआऊट रखने की घोषणा हो चुकी थी। किशनगढ मे उनका साथ तथा भिवानी तक का प्रवास, मार्ग मे साहित्यिक चर्चा आदि के कारण बडा ही सुखद एव स्मरणीय रहा। उसी ब्लैकआऊट की स्थिति मे रात्रि के ८ बजे जब भिवानी मे स्थानीय कवियो द्वारा उनके सम्मान मे गोष्ठी हुई तो उन्हे सुखद आश्चर्य हुआ कि २ घटे की सूचना पर वहा के राज-कवि सहित १० कवि एकत्रित हुए। सबो ने स्वरचित कविता सुनाकर उन्हे आल्हादित किया था और श्री कानोडियाजी ने राजस्थानी दोहे सुना कर वहा हरियाना-शेखावाटी का काव्य सगम वना दिया था। उसके वाद से तो वे मुझे अपने काफी निकट अनुभव करने लगे थे।

प्राय ४० वर्ष के उनके सम्पर्क मे रहने के काल-खण्ड मे मैंने उनमे अभिभावक का स्नेह, साहित्यानुरागी की कल्पना, स्वभाव से जिज्ञासु, समाज के प्रति चिन्तनशील कर्त्तव्यनिष्ठ, वीतरागी, भावना और सगठनशीलता का अनोखा सम्मिश्रण पाया और सबसे बढ कर उनमे पीडित मानवता के प्रति दर्द का अनुभव भी मुझे हुआ था।

आज के युग मे यही कहा जा सकता है—

मानते है हो फरिश्ते शेखजी
आदमी होना बड़ा दुश्वार है।

—: ० :—

स्व० भागीरथजी के समधी, समाज-सेवी
श्री नथमल भुवालका

स्मृतिशेष भागीरथजी

अपनी किशोरावस्था मे ही मैं कई व्यक्तियो से सुन चुका था कि बिडला ब्रदर्स प्रतिष्ठान मे श्री भागीरथजी कानोडिया एक बडे सुदक्ष एव प्रतिष्ठित व्यक्ति है जो देश और समाज का कार्य भी उत्साहपूर्वक किया करते है। एक बार किसी सेवा के कार्य से ही वे मेरे घर आये। यही मेरा उनसे प्रथम साक्षात्कार था। देखा, यश के अनुरूप ही उनका व्यक्तित्व था। आत्मीयताभरी मुस्कान थी और सहज ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेनेवाला व्यक्तित्व था। उन्होने मुझे भी समाज-सेवा करने के लिए प्रेरित किया। मारवाडी रिलीफ सोसाइटी की कार्यकारिणी समिति मे मैंने उनके साथ कार्य करने का सुयोग प्राप्त किया। उनकी कर्मठता और सौहार्द के कारण सस्था के कार्य सरल तो हो ही जाते थे, रुचिकर और आनन्ददायक भी प्रतीत होने लगते थे। अपनी अध्यक्षता की अवधि मे उन्होने सदैव यही प्रयास किया कि प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित हो और प्रस्तावो का कार्यान्वयन यथासम्भव अवश्य हो। मुझे भली भाति स्मरण है कि उन्होने बहुमत का समर्थन प्राप्त होने पर भी कतिपय प्रस्तावो को विशेषानुनय के बल पर यह कह कर पारित नही होने दिया कि अल्पमत होने पर भी विरोधियो की संख्या नगण्य नही है। उनकी मान्यता थी कि बहुमत के अभाव मे भी तर्क-पुष्ट एव औचित्य-मडित विषयो का तिरस्कार नही होना चाहिए। उनके नेतृत्व मे सोसाइटी मे अनेक उत्कृष्ट तथा महत्वपूर्ण कार्य सम्पादित हुए।

भागीरथजी के कार्य का क्षेत्र व्यापक था। भारत के भिन्न भिन्न भागो के अनगिनत होनहार व्यक्तियो को उन्होने जीवन-सग्राम मे प्रचुर सहायता प्रदान की। उनके द्वारा अध्ययन एव अन्यान्य पवित्र सकल्पो के कार्यान्वयन के लिए प्रोत्साहन, सहायता और पथ-निर्देश पानेवाले अनेक लोग आज ऊचे-ऊचे पदो पर विराजमान एव प्रख्यात है। कई नेताओ, कवियो, कलाकारो और पण्डितो की जीवन-यात्रा को उन्होने अपनी सहानुभूति, सेवा और दानशीलता के द्वारा सरल तथा सुखद बना दिया। सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि उन्होने कभी किसी को अपने गुप्त दानो के विषय मे नही बताया। बडे-बडे तथा अनगिनत लोगो की ओर से अपरिमेय सम्मान और श्रद्धा पाने का क्या मूल रहस्य था, इसका उन्होने किसी को पता ही नही चलने दिया। केवल सीतारामजी सेकसरिया उनके ऐसे अन्तरग लोगो मे थे जो कुछ-कुछ जानते है और वह भी इसलिए कि दोनो कई स्थानो पर बहुधा परस्पर विचार-विमर्श करके सहायता आदि देने की व्यवस्था किया करते थे।

वर्तमान शताब्दी मे सामान्य जन का अर्थ-कष्ट और तज्जन्य बहुविध सघर्ष उत्तरोत्तर बढता जा रहा है। अनेक प्रकार के सामाजिक और पारिवारिक द्वन्द्व एव विघटन दृष्टिगोचर होने लगे है। भागीरथजी इन सबके प्रति सदैव सचेत एव सम्वेदनशील रहे। विषम परिस्थितियो के दलदल मे फसे हुए सम्भावनाशील निराश व्यक्तियो को आशा तथा उल्लास प्रदान करने के लिए वे अपनी सामाजिक ऊचाई से नीचे उतरने मे न तो अपना अपमान समझते थे, न कही डगमगाते ही थे। इसका पता तो मुझे तब चला जब वे मुझे १९७२ ई० मे राजस्थान-दर्शन के लिए विस्तृत भ्रमण मे अपने साथ ले गये। मैंने पाया कि सैकडो सुदूरवर्ती ग्रामो मे भी उनसे मिलनेवालो मे केवल स्थानीय बडे आदमी ही नही थे, बल्कि अधिक सख्या तो उनकी थी जो साधारण, धनहीन और अनपढ थे। भागीरथजी समान स्तर पर बैठ कर घण्टो गाव के हरिजनो तथा अन्य किसानो से गम्भीर आत्मीयताभरी बातो मे मशगूल हो जाते थे। स्थानीय धनिक व्यक्तियो के लिए भागीरथजी जैसे प्रसिद्ध उद्योगपति को जानना उतना आश्चर्यजनक विषय नही था, किन्तु उन्हे जाननेवाले और उनसे परिचित इतनी अधिक सख्यावाले साधारण लोग भी हो सकते है, यह मेरी कल्पना के बाहर की बात थी। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि समाज-सेवा का व्रत ग्रहण करनेवाले सम्पन्न नेताओ को सामाजिक यथार्थ का प्रत्यक्ष बोध कराने के लिए एव उनकी सीख के लिए उन्होने सादगी, सेवा, आत्म-सयम एव आत्म-विस्तार का अद्भुत आदर्श उपस्थित किया। उन्होने सघर्ष और उपदेश के स्थान पर अपने आचरण द्वारा आदर्श उदाहरण प्रस्तुत किया और कही भी उसका ढोल नही पीटा। यह आत्म-तृप्ति और आत्मानन्द उपलब्ध करने की उनकी अभिनव प्रक्रिया थी। वे सहज ही दिव्य सकल्पो से उत्पन्न उल्लास के अनुपम रस का पान करते रहते थे। जयशकर प्रसाद की इन अमर पक्तियो मे उनकी दृढ आस्था थी —

औरो को हसते देखो मनु,
हसो और सुख पाओ,
अपने सुख को विस्तृत कर लो,
सबको सुखी बनाओ।

भागीरथजी युग-परिवर्त्तन के सन्धि-स्थल पर खडे एक प्रबुद्ध और उदारचेता नागरिक थे। उन्होने राष्ट्रीय आन्दोलन के युग मे कारावास का कठोर दड भोगनेवाले मनस्वी वीरो की पक्ति मे खडे होकर क्षुब्ध हृदय और सकरुण नेत्रो से देशी-विदेशी आततायियो के अत्याचारो का ताडव भरपूर देखा था। उन्होने उच्च आदर्श की लीक पर चलनेवाले तथाकथित नेताओ के नैतिक पतनो को भी खेदभरी दृष्टि से देखा था। निराश और पीडितो की अनभिव्यक्त कराहो को भी उन्होने द्रवित होकर सुना था। सामाजिक विषमताओ और आकस्मिक सकटो ने उनके भीतर तीव्र प्रतिक्रिया का सृजन किया था, तभी तो बगाल के अकाल के कराल दिनो मे वे स्वय सहायता का प्रचुर उपकरण लेकर उपेक्षित ग्रामाचलो की ओर दौड पडे थे। उन्होने दिन-रात घोर परिश्रम करके असख्य असहायो को मौत का ग्रास होने से बचा लिया था। राजस्थान मे जब भीषण अकाल पडा तब भी उन्होने वही करुणा और कर्मठता दिखायी। वे

सकटो की परवाह किये बिना ही कार्यकर्ताओ के साथ स्वय ही त्राण-कार्यो मे जुट पडते थे। दुर्गम स्थानो की यात्रा कर पीडितो की पीडा के सहभागी होने की अनुपम अनुभूति की चर्चा यदाकदा उनके अन्तरग मित्रो के सम्मुख अनायास ही छिड़ जाया करती थी। वे सबको सुखी देखना चाहते थे। दुखियो और सन्त्रस्तो को ऊपर उठाना उन्हें भाता था। वे ऋषियो की इस वैदिक वाणी मे आस्था रखनेवाले थे :—

सर्वे सुखिन सन्तु सर्वे सन्तु निरामया.।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुखभाग् भवेत्॥

उन्होने अनेक विद्यालयो, महाविद्यालयो, औषधालयो, धर्मशालाओं, गोशालाओ तथा मन्दिरो के निर्माण और सचालन के निमित्त प्रेरणा तथा सभी प्रकार के साधनो को जुटाया। उन सबका उल्लेख और लेखा-जोखा यहा सम्भव नही है। इन सब कार्यो मे कही भी भागीरथजी ने पद या नाम पाने का कभी प्रयास ही नही किया। लोगो के आग्रह पर भी उन्होने सर्वदा अज्ञात रह कर ही कार्य करने की इच्छा प्रकट की। वे ऐसे व्यक्तियो मे थे जो सुफलदायक पेड़ो को लगा कर दूसरो के भोग के लिए अर्पित कर दिया करते हैं। इधर के २० वर्षो मे मैं उनके अधिक से अधिक निकट आता गया। इसे मैं अपना सौभाग्य मानता हू। मैं अनुभव करता हू कि मैंने उनसे बहुत कुछ सीखा, जाना और पाया। जिन प्रेरणाओ को वे हमलोगो के मन मे जगा गये हैं, वे ही उनकी स्मृतियो को चिरस्थाई बनाने के लिए पर्याप्त हैं।

—: ० :—

सुप्रसिद्ध उद्योगपति

श्री मोहनलाल जालान

संवेदनशील समाज सेवी

मानव धर्म का सच्चे अनुराग से पालन करनेवाला पुरुष आदर्श मानव की सज्ञा से विभूषित किया जा सकता है। दूसरो की सेवा और सहायता से बढ कर मानव धर्म का परिचायक अन्य गुण है ही नही। गोस्वामी तुलसीदास ने कहा भी है

'परहित सरिस धरम नहिं भाई।
परपीडा सम नहिं अधमाई ॥

स्वर्गीय भागीरथजी कानोडिया ने अपने प्रारम्भिक जीवन से ही धार्मिक, सामाजिक, शैक्षणिक आदि विभिन्न क्षेत्रो मे बडे ही उत्साह से और निष्ठा से कार्य किया था। मेरी दृष्टि मे उनके व्यक्तित्व का सबसे उज्ज्वल तत्व उनकी त्यागमय निस्पृह सेवा-भावना और उनका निर्मल चरित्र है। अपना सारा जीवन उन्होने देश और समाज की सेवा मे लगाया, लेकिन प्रतिदान मे कुछ चाहा नही। वे निरन्तर समाज सेवा की कर्मनिष्ठ प्रचेष्टाए करते रहे। वास्तव मे कोई भी शुभ प्रचेष्टा कभी व्यर्थ नही होती।

स्वर्गीय कानोडियाजी का जीवन सामाजिक कुरीतियो, व्यापक अशिक्षा, विदेशी शासन से उत्पन्न विकृतियो से सघर्ष करते ही बीता। उनकी प्रतिभा, कर्तव्य और समाज-सेवा से राष्ट्र-जीवन के अनेक क्षेत्र उपकृत हुए है। प्रारम्भ से ही उच्चादर्शो को अपना कर जिस काम मे लग गये उसका परिपक्व रूप आज हमारे सामने है। समाज-सुधार के जितने भी कार्य हुए बाल-वृद्ध-अनमेल विवाह बन्द कराना, परदा प्रथा उठाना, विधवा विवाह प्रचलित करना, आदि इन सभी कार्यो मे उनका सक्रिय सहयोग रहा।

कितने सार्वजनिक कार्यो से कानोडियाजी सम्बन्धित रहे इसका ब्योरा देना दुष्कर है। कोई भी सगठनमूलक कार्य हो, कानोडियाजी निश्चय ही उससे सम्बन्धित रहे। शिक्षा प्रसार की ओर भी वे निरन्तर अग्रसर रहे। शिक्षा-प्रचार और समाज-सेवा के सच्चे समन्वय का दृष्टान्त विरला ही होता है। स्व० कानोडियाजी भी उन इने-गिने लोगो मे से ही एक थे जिन्होने अपना पूरा जीवन समाज-सेवा और शिक्षा-प्रचार और प्रसार मे ही अर्पित कर दिया।

कहते हैं मनुष्य की आकृति मे, विशेषत उसकी आखो मे, उसका हृदय प्रतिबिम्बित होता है। जिसके हृदय मे कुछ है ही नही, उसकी आखे भी भावशून्य होगी। कानोडियाजी ने जीवन भर समाज-सेवा करके जो पुण्य सचित किया था वह उनकी आखो मे छलकता था। उनकी आकृति से सादगी टपकती थी, अहिंसा झलकती थी,

चीटी के भी न दब जाने का विनम्र भाव प्रकट होता था। वे विशिष्ट अर्थ मे सुसस्कृत और सभ्य थे।

मातृ-जाति की प्रगति का ध्यान उन्हे निरन्तर रहा। उनका अटूट विश्वास था कि जब तक महिलाओ मे वास्तविक जागरण नही होगा, तब तक देश की धार्मिक साहित्यिक, सामाजिक और राष्ट्रीय प्रगति सच्चे अर्थो मे सम्भव नही हो सकती। इसलिये स्वर्गीय कानोडियाजी नारी-शिक्षा तथा उसकी प्रगति के लिये निरन्तर गतिशील रहे। मेरी दृष्टि मे उनकी सफल जीवन-यात्रा मे जो सबसे अधिक अणुतत्व रहा है वह थी उनकी सवेदनशीलता। शायद यही कारण रहा है कि वे इतने रचनात्मक हो सके। सवेदनशीलता के गुण ने ही उन्हे मातृ जाति के इतने निकट ला दिया। सवेदना की सबसे नाजुक कृति नारी को पहचानने और अपनाने मे वे सहज ही समर्थ हो गये। सवेदना का गुण धार्मिक होता है। बिना धर्म के सवेदना उपज ही नही सकती। कानोडियाजी जीवन भर रामायण, गीता आदि सद्‌गन्थो का अनुशीलन करते रहे। सीता-चरित्र ने जहा उन्हे नारी जाति के उत्थान की ओर आकर्षित किया, गीता ने उन्हे कर्म की ओर निरन्तर प्रेरित किया।

शमित हो जाने वाले इस जीवन की सार्थकता इसी मे है कि आगे आनेवाला जमाना हमे याद रखे और यह तभी सभव हो सकता है जब मानव मानवोचित काम करे। क्षमता के अनुसार दान दे। स्वर्गीय कानोडियाजी मे भी दान देने तथा असहायो और जरूरतमन्दो की विभिन्न रूपो मे सहायता करने की अच्छी प्रवृत्ति थी। जो भी उनके पास सहायता के लिये गया चाहे वह व्यक्ति रहा हो, चाहे सस्था, कुछ न कुछ लेकर ही लौटा, खाली हाथ नही लौटा। अनेक धार्मिक, सामाजिक, शैक्षणिक सस्थाओ की वे समय-समय पर आर्थिक रूप मे सहायता करते रहे।

स्वर्गीय कानोडियाजी बीते हुए युग के निस्पृह सत्यनिष्ठ सस्कारी जन-सेवकों की श्रेणी के एक अनमोल रत्न थे। स्व० कानोडियाजी का जीवन आलोक-शिखा की भाति सदा भावी पीढी का मार्गदर्शन करता रहेगा ऐसा मेरा विश्वास है।

—: ० :—

प्रसिद्ध गांधीवादी विचारक

श्री दादा धर्माधिकारी

समादृत व्यक्तित्व के धनी

कोई ३९ साल पहले और उससे भी पहले, दो-तीन वार मैं श्री भागीरथजी के जकरिया स्ट्रीट के निवास के नजदीक एक मकान मे ठहरा था। एक वार वालीगज स्थित उनके वगले मे ४३ साल पहले ठहरा था। उसके वाद उन्हे कई वार सभाओ मे देखा।

व्यक्तिगत परिचय इतने तक ही सीमित रहा। उनकी मृत्यु से पूर्व उन्हें देखने गया था।

जितना प्रत्यक्ष और परोक्ष परिचय हुआ, उसके कारण उनके लिए मन मे आदर की भावना है।

—:०.—

राजस्थान के वरिष्ठ गांधीवादी कार्यकर्ता

श्री भोगीलाल पण्ड्या

दीनबन्धु-दीनवत्सल

सन् १९१९ से मैं राजस्थान के आदिवासी एव पिछड़े क्षेत्रो के विकास मे सेवारत हू। इस लम्बे सेवाकाल मे मुझे भाति-भाति के लोगो से सहयोग मिला है। स्वर्गीय भाईजी भागीरथजी कानोडिया से पहली बार कलकत्ता मे पूज्य ठक्कर बापा ने परिचय कराया था। यह सन् १९३३ की बात है जब मैं अपनी सस्था के लिए चन्दा सग्रह करने हेतु कलकत्ता गया हुआ था। उस समय उनके प्रेम, सद्व्यवहार एव सार्वजनिक कार्य मे सहयोग की प्रवृति से मैं और मेरे साथी बहुत अधिक प्रभावित हुए थे।

भाईजी चन्दा लेनेवाले कार्यकर्ताओ को स्वय घर से चन्दा देकर स्वय उन कार्यकर्ताओ मे ऐसे घुलमिल जाते थे मानो वे स्वय भी चन्दा लेनेवाली टोली के ही एक सदस्य हैं और जब तक उस टोली का काम पूरा नही हो जाता, वे लगातार साथ बने रहते। खुशी की बात यह थी कि उनके पारिवारिक जन उनके इस स्वभाव से विपरीत नही रहते और वे सभी आगन्तुक साथियों को अपने परिवार का ही सदस्य मान कर व्यवहार करते। यह क्रम अनवरत चालू रहा।

स्वर्गीय कानोडियाजी भारतीय आदिम जाति सेवक सघ के १५ वर्षों तक कोषाध्यक्ष रहे। भारत के प्रथम राष्ट्रपति श्रद्धेय डा० राजेन्द्र प्रसादजी की अध्यक्षता मे बनी यह सस्था देश के ४ करोड आदिवासियो की सेवा करती है और पिछड़े गरीब दीन-हीन प्राय जगलो मे बसी आदिवासी जातियो के उत्थान का काम करनेवाली सस्थाओ का सगठन है। भाईजी इस सस्था के सन् १९४७ मे कोषाध्यक्ष बने और आदिवासियो के उत्थान हेतु स्वय आर्थिक सहायता देते-दिलाते रहे।

भाईजी राजस्थान हरिजन सेवक सघ के भी बीस वर्ष तक अध्यक्ष रहे और अस्पृश्यता निवारण हेतु भरपूर सहयोग देते-दिलाते रहे। वह स्वय खादीधारी थे और खादी के काम मे बडी रुचि लेते थे। नई सस्थाओ के गठन मे विशेषकर उन सस्थाओ की प्रारम्भिक पूजी की व्यवस्था करने मे भाईजी ने बहुत सहयोग दिया। अभी पिछले वर्षो मे पोकरण मे एक नई सस्था का गठन हुआ तो उसे आरम्भिक पूजी हेतु पाच हजार रुपये का सहयोग भागीरथजी ने ही दिया, जिससे इस समय १० लाख रुपये की ऊनी खादी का उत्पादन हो रहा है और साढे चार सौ लोगो को आशिक या पूरा काम मिल रहा है।

बाढ अकाल और बीमारी के समय भूखे लोगो को काम देकर भोजन उपलब्ध करवाने, गोरक्षा के लिए घास-चारा दाना जुटाने और बीमारो के लिए दवा आदि

दिलाने मे स्व० कानोडियाजी सदैव तत्पर रहे। पीने के लिए पानी हेतु कुए-तालाव खुदवाने और दूसरे सार्वजनिक कार्यों मे उन्होने वहुत दिलचस्पी ली। पश्चिमी राजस्थान सीमा-विकास के कार्य मे स्वर्गीय श्री माणिक्यलाल वर्मा के साथ वे पश्चिमी राजस्थान सीमा-विकास समिति के सस्थापक सदस्य वने और पाकिस्तान से लगी सीमा पर शिक्षा और अकाल-राहत के काम मे सहयोग किया।

सव मिलाकर आदरणीय भाईजी, जो मेरे साथ वर्षों तक भिन्न-भिन्न सस्थाओ मे पदाधिकारी एव सदस्य के रूप मे काम करते रहे, सच्चे मायने मे व्यवहार-कुशल, कर्मठ, सहृदय और दयालु स्वभाव के व्यक्ति थे जो निरन्तर आदिवासी, हरिजन, घुमन्तू जाति (गाडी लाहौर आदि) और विमुक्त जाति के (कजर, सासी, नट एव चौकीदार, मीणे आदि जो चोरी आदि की आदतें होने से प्राय. पुलिस की देखरेख मे रहती और जिनकी प्रातः-साय हाजरी ली जाती) कल्याण हेतु कार्यरत रहे। एक वाक्य मे कहू तो वे मुझे हर क्षेत्र मे किसी न किसी रूप मे आज भी स्मरण हैं और सदा याद रहेगे।

—: ० :—

सुप्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्री, विद्या-भवन उदयपुर के संस्थापक,

डा० मोहन सिंह मेहता

आदर्श कर्मयोगी

स्वर्गीय भागीरथजी के लिए उनके अनेक मित्रो की तरह मेरे मन में भी वडा स्नेह तथा श्रद्धा है। उनके निधन से जो वेदना हुई उसको शब्दो मे अच्छी तरह व्यक्त नही किया जा सकता। हमारे समाज मे उनकी क्षति कई वर्षो तक पूरी नहीं हो सकेगी। उनका व्यक्तित्व ऐसा ही था।

आज से लगभग ४७ वर्ष पूर्व मेरा परिचय भागीरथजी से मेरे स्वर्गीय मित्र भाई दुर्गाप्रसादजी खेतान की कृपा से हुआ। वे उन दिनो जहां रहते थे, उसी गली मे दुर्गाप्रसादजी का भी मकान था और उनका अतिथि होने के नाते मैं भागीरथजी के पास ही ठहरा हुआ था। मैं कलकत्ते जिस प्रयोजन को ले कर गया था उस कारण से भी मुझको भागीरथजी के निकट आने का अवसर मिला। वह सार्वजनिक हित का एक नया प्रयोग था। उस पर चर्चा होने से वह हमारे पारस्परिक स्नेह को वनाने और वढाने मे काफी मात्रा मे सार्थक हुआ। मैं जव कलकत्ते से लौटा तो यह विचार लेकर आया कि सामाजिक चेतना और राजस्थान के जीवन को जागृत करने मे सक्रिय होनेवाले दो मित्रो का और परिचय पाया। एक थे भागीरथजी और दूसरे थे प्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका। ऐसा लगा कि मानो एक वहूमूल्य निधि मिल गई हैं और मैं वहुत धनाढ्य हो गया हू।

उन दिनो भागीरथजी का अधिकाश समय और शक्ति व्यवसाय में लगती थी। वे एक उद्योगपति थे और इसमे उनको अच्छी सफलता की सिद्धि हुई। परन्तु मेरे मन मे उनके प्रति प्रेम और प्रशसा उत्पन्न होने का यह विशेष कारण नही था। धनी, और वैभवप्राप्त अनेक उद्योगपतियो से जीवन मे यदा-कदा मुझको परिचय प्राप्त हुआ है। उनमे से कुछ की कृपा और स्नेह भी मिला। फिर भी वरावर यह अहसास होता था कि यह समुदाय ही दूसरा है, उसकी और मेरी जाति भिन्न हैं। उसके निकट पहुच कर उस कोठी के द्वार से उस भव्य भवन के चित्र और छटा को देख कर हम चकित तो हो जाते हैं पर महल के अन्दर की शोभा और सौन्दर्य से हम दूर हैं। उसकी रीति-नीति को भली प्रकार हम न जानते हैं, न समझते हैं और ना ही उसके रग-रूप और कला की हमको कोई जानकारी है। हमारे लिये तो वह दुनिया ही दूसरी हैं—वह तो परदेस सा है। परन्तु यह भाव भागीरथजी के लिए मन मे प्रारम्भ से ही नही आया। उनसे सामाजिक समस्याओ पर चर्चा होती तो मालूम होता था कि वे वहुत मात्रा में हमारे वर्ग के ही हैं। उनके विचारो के पीछे चिन्तन था, लगन थी, दर्द था, सच्ची सम्वेदना थी। यह विशेषता वार-वार मानसिक नेत्रो के सामने आती थी।

कलकत्ता की उस १९३२ की यात्रा के वाद कई वार भागीरथजी से भेंट हुई। हमारे वीच पत्र-व्यवहार भी होता रहा। विचारो और आकांक्षाओ मे, स्नेह और पारस्परिक विश्वास मे, अर्थात् वुद्धि और भावना, दोनो ही क्षेत्रो मे हम एक दूसरे के निकट आये और आते रहे। जव भी कलकत्ता जाता तो उनसे अवश्य मिलता।

भागीरथजी के चरित्र, गुण, स्वभाव और व्यक्तित्व को वे ही अच्छी तरह से समझ सकते है जो उनसे घनिष्ठ थे। उनमे तो सार्वजनिक जीवन के साधारण नेताओ के लक्षण नही थे। वे अपनी प्रसिद्धि और प्रशसा के भूखे नही थे। उनमे सत्य और वास्तविकता के लिये आस्था थी और सामाजिक प्रगति के लिये निष्ठा थी। उनकी प्रकृति मे विनय और दूसरो के प्रति और दूसरो के विचारो के प्रति जो सद्भाव सत्कार और सहिष्णुता थी, वह मैंने बहुत थोडे लोगो मे देखी है। ऐसा नही हैं कि उनके विचारो मे स्वतन्त्र चिन्तन नही था परन्तु उनमे मानसिक हठ अथवा पूर्वाग्रहता का कही चिन्ह नही दिखाई देता था। विनय-भाव उनकी प्रकृति का एक प्रमुख लक्षण था। उनसे आप जिस विषय पर बात करते उसमे उनके अपने स्वतन्त्र विचारो की प्रतिक्रिया मिलती। जिस समस्या पर उन्होने ध्यान नही दिया था तो वे आपको तुरन्त बता देते। उनकी सरलता, सच्चाई और सिद्धान्तो की दृढता का आभास उनसे मिलते ही हो जाता था। यो तो ये गुण और लक्षण सीधे ही अच्छे लगते हैं पर हम सब जानते हैं कि हमारे समाज मे इनकी कितनी कमी हैं।

राजस्थान की उन्नति तथा उसकी प्रगति की भागीरथजी के मन मे बडी चिन्ता और लगन थी। इस विषय पर तो उनसे मिलने पर चर्चा अवश्य ही होती थी। राजस्थान मे जहा-जहा रचनात्मक कार्य हो रहा था उसकी उनको जानकारी थी। यही नही वरन् वे बडी सहानुभूति से उसमे रुचि रखते थे और उदारता से आर्थिक सहायता देते थे। उनके सामने किसी भी अच्छी सार्वजनिक हित की योजना लेकर कोई जाता तो कभी खाली हाथ नही आता था। ऐसे सेठ अथवा उद्योगपति इने-गिने ही होगे जो धन का ऐसी नि स्वार्थ भावना से उपयोग करते होगे। अन्य सेठो की तरह उनको अपने नाम अथवा ख्याति की इच्छा नही रहती थी। अनेक सस्थाए और उनके सचालक भागीरथजी की उदारता के लिये ऋणी है और रहेगे। मैं स्वय भी अपने आपको उस गणना मे रखता हू। मित्र का स्नेह तो उनसे विपुल मात्रा मे मिला ही पर मेरे सामाजिक कार्य मे जो उनका सान्निध्य प्राप्त हुआ वह भी कम मूल्यवान नही था। सात वर्ष पूर्व जब राजस्थान सूखे का शिकार हुआ और हम लोग अकाल पीडित जन समूह का सकट दूर करने की तैयारी कर रहे थे, तो भागीरथजी ने स्वय राजस्थान का दौरा किया और उस योजना के सचालन मे सक्रिय भाग लिया। उसको देख कर मेरे मन मे उनके प्रति श्रद्धा और बढ गई।

भागीरथजी के चरित्र और भावना को पहिचानने और सराहना करने मे उनकी लिखी हुई पुस्तक "बहता पानी निर्मला" बडी सहायक होती हैं। थोडे ही दिनो मे उसके कई सस्करण निकल गये।

कोई मनुष्य अमर होकर नही आता है। जीवन यात्रा का अन्तिम चरण सबके लिये मृत्यु ही हैं। पर कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जिनका अस्तित्व समाज-हित को पोषण करने मे लगा रहता है, जिनकी भावनाओ और आकाक्षाओ से समाज के वचित, पीडित और शोषित अग को प्रेम और आत्मीयता मिलते हैं—ऐसे लोग हमारे बीच से जब उठ कर चले जाते हैं तो हृदय को, समाज के हितो को चोट लगती हैं, गहरी वेदना होती है। भागीरथजी के निधन से ऐसा ही हुआ।

—: ० :—

ओड़िशा की प्रसिद्ध गांधीवादी रचनात्मक कार्यकर्त्री

श्रीमती रमा देवी

दुखी जनता के श्रद्धा-पात्र

भागीरथजी हमारे बीच नहीं हैं लेकिन उनकी आत्मा हमारे बीच जरूर है क्योंकि दुखी जनता के प्रति उनकी जो हार्दिक सहानुभूति थी, वह कभी जानेवाली चीज नही है। यह सहानुभूति अदृश्य रह कर हम सबको दुखीजनो की सेवा करते रहने के लिए प्रेरणा देती रहेगी।

उनका सेवा-भाव अतुलनीय था। ओडिशा मे जब भी बाढ आती या अकाल पड़ता तो भागीरथजी की सहायता दुखी जनता के पास अवश्य पहुचती। अपनी सेवा के कारण वह दुखी जनता की श्रद्धा के पात्र बने थे।

उनका सेवा-कार्य हमारे लिए अनुकरणीय है। उनके सद्‌गुणो का हम स्मरण करे और उनकी सेवा-भावना का अनुकरण करे, यही उनके प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

—: ० :—

पश्चिम बंगाल के भूतपूर्व मुख्यमंत्री
श्री प्रफुल्लचन्द्र सेन

गांधीवादी देशभक्त

स्वर्गीय भागीरथजी एक सच्चे देशभक्त थे, जिनकी गाधीजी के विचारो मे पूरी आस्था थी। गाधीजी ने ट्रस्टीशिप की कल्पना की थी। मै यह कह सकता हू कि भागीरथजी ने सम्पत्ति को ट्रस्ट ही माना और ट्रस्टी के रूप मे ही उसे रखा। उन्होने उसे ऐसे रचनात्मक कार्यो मे खर्च किया जिनसे बेरोजगार लोगो को मदद मिली। वह खादी के पक्षधर थे और यह मानते थे कि इससे देश का लाभ होगा। वह स्वातंत्र्य-योद्धा थे। स्वतन्त्रता सग्राम मे उन्होने कारावास भोगा। मै उन्हे ५० वर्ष से भी ज्यादा समय से जानता था। उन्हे अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता हू।

—: ० :—

प्रसिद्ध गांधीवादी, पश्चिम बंगाल के भूतपूर्व खाद्य मंत्री
श्री चारुचन्द्र भण्डारी

रचनात्मक कार्यकर्ताओं के सच्चे मित्र

१९३० के दशक में डायमण्ड हारबर सब डिवीजन (२४ परगना) के पिछड़े इलाकों में जब हम रचनात्मक कार्य चला रहे थे तो हमें बहुत ही आर्थिक कठिनाइयाँ झेलनी पड़ रही थीं। गांधीजी को इस बात का पता लगा तो उन्होंने सुझाव दिया कि सीतारामजी और उनके साथी हमारी आवश्यकताओं को पूरा करने की व्यवस्था करें। तब सीतारामजी, भागीरथजी और स्व० श्री बसन्तलालजी मुरारका हमारी सहायता के लिए आगे आये। इसके बाद तो सीतारामजी और भागीरथजी बंगाल में गांधीवादी रचनात्मक कार्यक्रम को बढ़ाने में अधिकाधिक दिलचस्पी लेने लगे। आजादी के पहले भागीरथजी और सीतारामजी एवं उनके द्वारा मारवाड़ी समाज बंगाल में ग्राम-निर्माण के रचनात्मक कार्यक्रमों का आधार स्तम्भ बन गया था। कोई भी ऐसा रचनात्मक काम न था जिसमें भागीरथजी और सीतारामजी न हों। रचनात्मक काम करनेवाली बहुत सारी संस्थाओं के भागीरथजी कोषाध्यक्ष थे। इन संस्थाओं की योजनाओं को सही तौर पर चलाने में भागीरथजी की व्यापारिक प्रतिभा बहुत काम आई।

उनकी मृत्यु से पश्चिम बंगाल के रचनात्मक कार्यकर्ताओं ने एक सच्चा मित्र खो दिया है।

—:०:—

पश्चिम बंगाल के प्रसिद्ध कांग्रेसी नेता

श्री अतुल्य घोष

भरोसेमंद मददगार

भागीरथजी को बंगाल की आम जनता नही जानती लेकिन जो उनके सम्पर्क मे आये, वे उन्हे कभी भूल नही सकते। वह व्यापार करते थे लेकिन उनका व्यापार, उनकी राजनीतिक, सामाजिक, रचनात्मक और शैक्षणिक सेवाओ मे कभी आडे नही आया। वह एक उदार और विनम्र व्यक्ति थे जो स्वाधीनता आन्दोलन के कार्यकर्ताओ की हमेशा मदद किया करते थे। गाधीजी और अन्य नेता उन पर बडा भरोसा करते थे। जब भी कोई प्राकृतिक विपत्ति आती तो पीडितो की सहायता के काम मे मैंने उन्हे आगे पाया। वह खादी और ग्रामोद्योग के कार्यो से बहुत अधिक जुडे हुए थे। रचनात्मक और सामाजिक कार्यकर्त्ताओ को हमेशा इस बात का भरोसा रहता कि वे अपने काम मे भागीरथजी से हर प्रकार की मदद पायेंगे। जन-कल्याण का कोई भी काम हो भागीरथजी उसमे रहते। इसी तरह स्वाधीनता आन्दोलन के भी हर काम मे वह रहते। जो उनको जानते है वे यह भी जानते है कि उनकी मृत्यु से जो स्थान रिक्त हुआ है उसे भरना कितना कठिन है।

मैं भागीरथजी के प्रति अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करता हू।

राजस्थान के वयोवृद्ध नेता
श्री लादूराम जोशी

विनम्र जनसेवक

स्वर्गीय श्री भागीरथजी कानोडिया केवल राजस्थान के ही नही वल्कि भारतवर्ष के एक विशिष्ट समाजसेवी और शिक्षाप्रेमी व्यक्ति थे। वे आज नही है यह वात जो मानने को तैयार नही हैं। ऐसा प्रतीत होता है जैसे वे अव भी मौजूद हैं। उनके प्रभाव और सत्ता को मृत्यु नही मिटा सकती। लेकिन वस्तुत. आज वे नही हैं। जव मानस पटल पर उभर कर उनकी स्मृतिया सामने आती है तो मानना पडता है कि वे अव स्मरण-मात्र ही रह गये हैं। उनका भौतिक शरीर आज हमारे सामने नही है पर उनकी विनम्रता, मधुरता, सार्वभौमिक मानवता—जो मिलनेवालो को अभिभूत कर देती थी—और कितना ही अपरिचित आदमी हो उसको अपना वना लेती थी—यह सव वातें जव याद आती है तो मनमे टीस उठती है कि ऐसा व्यक्ति क्या हमारे समाज को फिर मिल सकेगा।

मानवीय भावो का जितना विकास उनमे हुआ था उतना वहुत कम लोगो मे पाया जाता है। मुझे देश के कई विशिष्ट व्यक्तियो और प्रसिद्ध सामाजिक कार्यकर्ताओं के सम्पर्क मे आने का अवसर मिला है। पूज्य महात्माजी से लेकर देश के दूसरे महान व्यक्तियो से मिलने का और उनकी सेवा करने का भी यदा-कदा अवसर मिलता रहा है, पर स्वर्गीय श्री भागीरथजी जैसे निरभिमानी और विनम्र-सेवक समाज मे वहुत मुश्किल से ही पैदा होते हैं।

स्वर्गीय श्री भागीरथजी से मेरा परिचय सन् १९२७-२८ से था। उनके जन्म-स्थान मुकुन्दगढ मे उन्ही के द्वारा सचालित मिडिल स्कूल के वार्षिकोत्सव का अवसर था। देशभक्त सेठ जमनालालजी वजाज को उन्होने आमन्त्रित किया था। उस समय सेठजी सीकर आये हुए थे। उनके साथ मे मैं भी उस उत्सव मे शरीक हुआ था। आधी शताब्दी पहले उनके साथ जो साधारण परिचय हुआ था वह अन्त समय तक वढता ही रहा। जव से वे कल्याण आरोग्य सदन के अध्यक्ष हुए तव से तो साल मे दो-तीन दफे सीकर, सदन की मीटिंगो मे आते ही रहते थे और हर मीटिंग मे उनसे मुलाकात होती रहती थी। जव कभी वे मिलते तो स्वास्थ्य व उमर के वारे मे दिलचस्पी के साथ पूछा करते थे। उमर की दृष्टि से कुछ महीने मुझसे छोटे थे इसलिए वे कहा करते थे कि आपकी तन्दुरुस्ती मेरे से वहुत अच्छी है। उनको चलने-फिरने मे इन दिनो मे वहुत दिक्कत होती थी।

कल्याण-आरोग्य-सदन कायम करने की कल्पना को लेकर श्री सोढाणीजी के साथ सन् १९४९-५० मे हम कलकत्ता गये हुए थे। टी० वी० सेनीटोरियम की योजना

को मूर्त्त रूप देने की दृष्टि से मैं और श्री सोढाणीजी ने स्व० सेठ श्री रामसहायमलजी मोर, स्व० सेठ श्री ज्वालाप्रसादजी भरतिया एव स्व० सेठ श्री रावतमलजी नोपानी के साथ विचार-विमर्श किया और उन लोगो ने हम दोनों को साथ ले कर अन्य कई व्यक्तियो एव ट्रस्टो से विचार-विमर्श किया पर उन दिनो स्व० श्री कानोडियाजी कही वाहर गये हुए थे। उनके आने पर उनसे वातचीत करके आगे वढने की वात थी। उन दिनो राजस्थान के मुख्यमन्त्री स्व० श्री हीरालालजी शास्त्री भी कलकत्ता आए हुए थे और राज्य की प्रारम्भिक अवस्था मे वे कोई नया काम प्रारम्भ करने की स्थिति मे नही थे। इसलिए उस समय यह योजना स्थगित करनी पडी। पर उस योजना के प्रति उनकी भावना, दिलचस्पी व निष्ठा थी, जिससे आगे चल कर श्री सोढाणीजी को वहुत प्रेरणा और प्रोत्साहन मिला। अन्ततोगत्वा श्री सोढाणीजी का वोझ हल्का करने के लिए भागीरथजी ने पूर्ण दायित्व अपने ऊपर ले लिया। स्व० कानोडियाजी की यह विशेषता थी कि वे जिस किसी भी अच्छे काम मे दिलचस्पी लेते थे, उसको सफल वनाने और विकसित करने मे निष्ठा के साथ जुट जाते थे, और अपने मित्रो एव परिचितो से निरन्तर सम्पर्क करके उस काम को पूरा करने के लिये प्रेरणा देते रहते थे। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण सीकर का श्री कल्याण-आरोग्य-सदन है। पिछले वर्षों मे कल्याण आरोग्य सदन का जो विकास हुआ उसमे उनका सतत प्रयत्न और विनम्र सेवा-भाव ही मुख्य है। उनकी विनम्रता का एक उदाहरण यहा प्रस्तुत करना अप्रासगिक न होगा।

जव उनको कल्याण आरोग्य सदन का अध्यक्ष चुनने की वात हुई तो उन्होंने कहा था कि श्री वद्रीनारायणजी सोढाणी मंत्री रहेगे तो ही मैं अध्यक्ष वनू गा। मैं तो उनके मुनीम का काम कर सकता हू। काम की जिम्मेदारी सोढाणीजी पर ही रहेगी। यह उनकी विनम्रता की एक झाकी है। अनेक कार्यकर्त्ताओ से विभिन्न विषयो पर वार्ता करते समय हमेशा उनके चेहरे पर मुस्कान व प्रसन्नता रहती थी। दूसरे के अभावो को देख-सुन अनुभव कर उसकी पूर्ति के लिए स्वय व अपने मित्रो से यथाशक्ति सहायता दिलवाने का प्रयत्न करते थे। विरक्ति और आवेश उनके चेहरे पर वहुत कम देखने को मिलते थे। हमारे लिये सचमुच यह वहुत वडे गौरव की वात है कि राजस्थान की भूमि मे पैदा हुआ एक व्यक्ति न केवल राजस्थान मे वल्कि सारे भारतवर्ष में अपनी विनम्र सेवाओ के वलवूते पर प्रतिष्ठा व आदर का पात्र वन गया। हम प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि स्व० कानोडियाजी जैसे आदमी इस देश मे उत्पन्न हो, जिनकी प्रेरणा से समाज में चेतना, स्फूर्ति व उदात्त सेवा-भाव का विकास हो सके।

—. ० :—

प्रसिद्ध सामाजिक कार्यकर्त्री,

भारत सरकार की भूतपूर्व समाज-कल्याण राज्य मंत्री

डॉ० फूलरेणु गुहा

सब अवस्थाओं में सुखी

भागीरथजी की याद मुझे बहुत पहले आजादी के पहले के युग मे ले जाती है। मुझसे उनका परिचय श्रद्धेय सीतारामजी सेकसरिया ने करवाया था। १९४३ के बगाल के मानव-कृत अकाल के वक्त मैंने उन्हे ज्यादा निकट से जाना और यह निकटता प्रगाढता मे बदलती गई। इस अकाल की विभीषिका इतनी प्रचण्ड थी कि देश भर से सहायता की जरूरत हुई। अकाल के उन दिनो मे जब खासकर अनाथ और निराश्रित बच्चो की दशा बहुत खराब थी, मैंने भागीरथजी के साथ काम किया। बगाल रिलीफ फड एव ऐसे ही अन्य सगठनो तथा बाद में अखिल भारतीय महिला सम्मेलन की कलकत्ता शाखा द्वारा बगाल के विभिन्न हिस्सो मे स्थापित शिशु केन्द्रो के कार्य के दौरान भागीरथजी के साथ अपने सम्बन्ध का मुझे विशेष रूप से स्मरण है। बाद मे १९४४ मे अ० भा० महिला सम्मेलन के तहत अ० भा० शिशु-रक्षा कमेटी बनाई गई तो भागीरथजी ने उसमे भी प्रमुख हिस्सा लिया।

अकाल के वक्त मुझे भागीरथजी के साथ बगाल के दूर-दराज के स्थानो की यात्रा करनी पडी। इन यात्राओ मे मैंने उन्हें बहुत नजदीक से देखा। उनके सहज और सरल स्वभाव, काम के प्रति लगन और दूसरो की भावनाओ का हमेशा खयाल रखने और सम्मान करने की प्रवृति ने मुझे अत्यन्त प्रभावित किया। विभिन्न जिलों की यात्राओ के दौरान मैंने देखा कि वह सामान्य जनो से घुल-मिल जाते थे, उनके आतिथ्य को बहुत कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करते थे। मैं जानती थी कि वह अपने लिए टिकने की अच्छी व्यवस्था कर सकते थे लेकिन उन्होने कभी ऐसा नही किया, जैसी भी व्यवस्था रहती, उसी मे वह खुश रहते।

अकाल के दिनो मे हम युवा-कार्यकर्ताओ पर उनके व्यक्तित्व की अमिट छाप पडी। उन्होने सहायता-कार्य के साथ अपने को एकदम एकाकार कर डाला था। पीडित लोगो के प्रति उनके मन में सच्ची करुणा थी जो पग-पग मे प्रकट होती थी।

व्यक्तिगत कारणो से उन्होने शिशु-रक्षा कमेटी के कार्यो से छुट्टी ले ली। लेकिन हमने जब भी उनसे सहायता और सलाह चाही तो उन्होंने मुक्त हृदय से दी। यद्यपि अब वह हमारे बीच नही हैं लेकिन वह हमारी स्मृतियो मे हमेशा जीवित रहेंगे, हम उन्हें एक महान कार्यकर्ता के रूप मे हमेशा याद रखेंगे।

—: ० :—

सुप्रसिद्ध उद्योगपति एव
स्व० जमनालालजी वजाज के पुत्र
श्री रामकृष्ण वजाज

अभिमानमुक्त

व्यवसाय और उद्योग मे लगे हुए ऐसे व्यक्ति तो अनेक हैं, जो सामाजिक कार्यो के लिए आर्थिक सहायता और दान आदि देते हैं, किन्तु स्वय सामाजिक सस्थाओ की प्रवृत्तियो मे ध्यान, समय व शक्ति खर्च करें, ऐसे व्यक्ति वहुत ही कम पाये जाते हैं। श्री भागीरथजी उन्ही गिने-चुने व्यक्तियो मे से थे। जो भी सेवा-कार्य वे उठाते, उसमें दत्तचित होकर लग जाते थे। इन कार्यो के लिए एक तरफ धन जुटाना और दूसरी तरफ कार्यकर्ताओ को तैयार करना व उनसे काम लेना उनकी अपनी ही विशेषता थी। कार्यकर्ताओ के साथ वे एकरस हो जाते थे और इस तरह का मेलजोल का सम्वन्ध स्थापित कर लेते थे कि फिर किसी प्रकार का भेदभाव नही रह जाता था। उनमे अपना वर्चस्व जताने की प्रवृत्ति विलकुल ही नही थी। यही कारण था कि वे पूरी तरह कार्यकर्ताओ का विश्वास प्राप्त कर लेते थे और उन्हे सार्वजनिक कार्यो मे प्रेरित कर पाते थे। जिन संस्थाओ से वे सम्वन्धित थे उनकी दिक्कतो को दूर करने मे वे सक्रिय रहते थे, खुद भी आर्थिक सहायता करते और दूसरो मे भी धन एकत्रित करते थे। यही कारण था कि धनिक वर्ग मे भी उनका मान-सम्मान था। एक और गुण उनमे यह था कि अपनी सेवा का, धन का और प्रतिष्ठा का अभिमान उनमे तनिक भी नही था।

हमारा तो उनका काफी पारिवारिक सम्वन्ध था। पू० पिताजी (श्री जमनालालजी वजाज) की उनसे वहुत ही आत्मीयता थी। सार्वजनिक कार्यो के प्रति दोनो का दृष्टिकोण एक जैसा ही था तथा कार्यप्रणाली मे भी साम्य था। पिताजी जव भी कलकत्ता जाते तो, भागीरथजी, वसन्तलालजी मुरारका और सीतारामजी सेकसरिया के साथ काफी समय गुजारते, सार्वजनिक कार्यो की चर्चा करते, योजनाए वनाते, और मिलजुल कर उन्हे कार्यान्वित करते थे। पू० भागीरथजी का जाना मेरे लिए तो व्यक्तिगत क्षति भी है। उनकी स्मृति को मेरे विनीत प्रणाम !

—: ० :—

प्रसिद्ध उद्योगपति एव शिक्षा-प्रेमी
डॉ० रामनाथ पोद्दार

सेवा की प्रतिमूर्ति

मैं भागीरथजी साहब को बहुत अच्छी तरह जानता था लेकिन मुझे किसी खास कमेटी मे उनके साथ काम करने का सौभाग्य प्राप्त नही हुआ। इसके बावजूद मैं उन्हे इतना तो जानता ही हू कि उनकी सार्वजनिक सेवाओ, उनकी लगन और त्याग की प्रशसा कर सकू। उन्होने बीसियो सस्थाओ का निर्माण किया जो हमे हमेशा उनके महान व्यक्तित्व को याद दिलाती रहेगी। अपने प्रेमल व्यक्तित्व और अपनी लगन के कारण वह समाज-सेवा का भाव रखनेवाले लोगो को अनायास ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेते थे। उनका जीवन बहुत दिनो तक बहुत से लोगो को प्रेरणा देता रहेगा।

—:०:—

राजस्थान के वयोवृद्ध गांधीवादी, सस्ता साहित्य मंडल के संस्थापक
श्री जीतमल लूणिया

सादा जीवन : उच्च विचार

स्व० भागीरथजी कानोडिया के निकट सम्पर्क मे आने का मुझे अवसर नही मिला और न उनके साथ कभी मेरा पत्र-व्यवहार ही हुआ, लेकिन सस्ता साहित्य मण्डल के साथ हम दोनो का ही अत्यन्त घनिष्ट सम्वन्ध था और उस नाते हमलोग मडल की बैठको मे प्रायः मिलते रहते थे।

एक बार हम लोग (श्री हरिभाऊ उपाध्याय, श्री मार्तण्ड उपाध्याय, श्री यशपाल जैन और मैं) कलकत्ता गये, तो उन्ही के साथ ठहरे। अन्य व्यक्तियो से तो उनका बहुत ही नजदीक का परिचय था क्योकि वे कलकत्ते जाते रहते थे और उन्ही के यहा ठहरा करते थे, लेकिन मैं तो एक तरह से नया ही था। पर उन्होने जो आतिथ्य-सत्कार किया और समय पर खाने-पीने आदि की छोटी-से-छोटी बात तक के लिए जिस प्रकार बराबर पूछते रहे, उससे उनके सौजन्य का मेरे मन पर बडा असर पडा। वह सम्पन्न व्यक्ति थे। उनके यहा नौकर-चाकर थे, फिर भी वह स्वय बडे ही नम्र और सेवा-भावी थे। ऐसा गुण बहुत कम सम्पन्न व्यक्यिो मे पाया जाता है, पर भागीरथजी तो अपने इस गुण के कारण सर्वत्र आदर के भाजन थे।

परोपकार-वृत्ति उनमे गजब की थी। कोई भी जरूरतमन्द आदमी अथवा सेवा-भावी सस्था का प्रतिनिधि उनके पास आता था तो वह स्वय उसकी आर्थिक सहायता करते थे, साथ ही अन्य व्यक्तियो से भी सहायता दिलवा देते थे। अभिमान तो उन्हे छू भी नही गया था। हमेशा हसमुख और नम्रता से पूर्ण ही मैंने उन्हे पाया। वह कहने मे तनिक भी अतिशयोक्ति नही होगी कि वह सेवा की जीवन्त प्रतिमा थे और दीन-दुखियो की सहायता के लिए सदैव तत्पर रहते थे। हरिजनो के प्रति उनका अगाध प्रेम था। वह जात-पात अथवा धर्म के आधार पर किसी को छोटा या बडा नही मानते थे और मानव के नाते सबको समान आदर देते थे। यदि कोई छोटा व्यक्ति उनके पास पहुच जाता था तो भागीरथजी के सामने वह दीनता अनुभव नही करता था, बल्कि उसे इस बात से प्रसन्नता ही होती थी कि वह उनके पास से छोटा होकर नहीं, बल्कि बडा होकर ही लौटा है।

भागीरथजी के जीवन मे हद दर्जे की सादगी थी। उनके रहन-सहन, आचार-विचार आदि को देखकर कोई भी यह नही कह सकता था, कि वह इतने पैसेवाले व्यक्ति हैं। उनका हाथ हमेशा खुला रहता था। जरूरतमदो को वह भरपूर सहायता देते थे और सबसे बडी बात यह कि वह जो कुछ देते थे, दिल से देते थे और उसके पीछे यश प्राप्त करने की भावना नही होती थी। इस प्रकार के सेवा-भावी, सात्विक, परदुखकातर व्यक्ति बहुत कठिनाई से मिलते हैं। इसीसे भागीरथजी का अभाव आज बहुत अखरता है।

सच बात यह है कि वह व्यक्ति नही, सस्था थे और अपने जीवन मे उन्होने लोक-कल्याण के जो कार्य किये, वे एक बडी-से-बडी सस्था भी नही कर सकती थी। मैं उनके प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धाजलि अर्पित करता हू।

— ० :—

राजस्थान के वरिष्ठ नेता

श्री कुम्भाराम आर्य

राजस्थान के सपूत

श्री भागीरथजी कानोडिया राजस्थान के सपूतो मे से एक थे। अपने पुरुषार्थ और सामर्थ्य से उन्होने जो यश और कीर्ति अर्जित की, उसका उदाहरण नही है।

बोल-चाल मे ग्रामीण मारवाडी, रहन-सहन सरल और सीधा जीवन, न यश, न कीर्ति की चाह, न धन का अभिमान। वे गाव, गरीब और दुखियो के दुख से सहानुभूति रखते थे। सेवा उनके जीवन का धर्म था।

मेरा उनसे सम्बन्ध रहा। मैंने उन्हे जब देखा, गाव, गरीब और पीडितो की सेवा मे लगा ही देखा। धन कमाते कभी नही देखा, फिर भी वे करोडपतियो की श्रेणी मे तो थे ही। हसमुख और मृदुभाषी थे। गरीबी और अमीरी का सही अनुभव उनके जैसा शायद किसी को न हो। उनको दोनो (गरीबी और अमीरी) सिद्धि प्राप्त थी। न गरीबी से घबराये और न अमीरी से बौराये। उनका जीवन सधा हुआ जीवन था। उनको कटु और कठोर बोलते कभी देखा और सुना नही। शायद मा-बाप ने यह सिखाया ही न हो। कठोर और विषम स्थिति को भी शान्त भाव से टाल देते थे। क्रोध कभी देखने को नही मिला, पर सोचता हू कि आता तो होगा ही, क्योकि यह मानव स्वभाव मे है। जो हो उन्हे कभी क्रोध करते नही देखा।

शेखावाटी उनके उपकार की सदा ऋणी रहेगी। आज शिक्षा और राजनैतिक क्षेत्र मे जो उन्नति शेखावाटी मे दिखाई पड रही है, उसका श्रेय धनपति बिडलाजी के साथ कानोडियाजी को भी है। बिडला ट्रस्ट का धन, शिक्षा-कार्य मे इतना सही और फलदायक सिद्ध नही होता, यदि श्री निहालसिहजी तक्षक शिक्षा-कार्य के सचालक नही होते। तक्षकजी को लानेवाले कानोडियाजी थे। उन्होने जन-जागृति के लिए जयपुर, बीकानेर और पटियाला आदि देशी रियासतो के क्षेत्र मे जो शिक्षा का कार्य करवाया वह किसी से छिपा नही है। राजस्थान के उत्थान मे बिडलाजी का धन और कानोडियाजी का मन पूरी तरह से लगे। कानोडियाजी अपने ट्रस्ट का धन भी शिक्षा-कार्य मे अधिक व्यय करते रहे। जयपुर मे कानोडिया गर्ल्स कालेज और अपनी जन्मभूमि मुकुन्दगढ मे स्थापित कालेज कानोडिया ट्रस्ट की देन है।

पीने के पानी की योजना को ले कर जो कार्य राजस्थान के गावो मे हुआ, उसमे कानोडियाजी का विशेष हाथ था, राज और समाज से करोडो रुपये इस कार्य मे उन्होने लगवाये।

उनके उपकार से न जाने कितने परिवार और व्यक्तियो को लाभ हुआ है और प्रसिद्धि मिली है। आजादी के पूर्व अनेक राजनीतिक कार्यकर्ता कानोडियाजी से रक्षण और पोषण पाते रहे है। आज वह हमारे बीच नही है पर उनके उपकार सदैव स्मरण रहेगे।

—:०:—

राजस्थान विधानसभा के भूतपूर्व अध्यक्ष

श्री नरोत्तमलाल जोशी

पुण्यश्लोक भागीरथजी

श्री भागीरथजी कानोडिया से मेरा साक्षात्कार १९३७-३८ मे हुआ, जब मैंने काशी विश्वविद्यालय से शिक्षा प्राप्त कर शेखावाटी क्षेत्र मे वकालत शुरू की थी और सामाजिक एवं राजनैतिक कार्यो मे भाग लेने लगा था। झुझनू नगर मे उस समय हरिजनो विशेषकर मेहतरो को पीने के पानी की बडी दिक्कत थी। रीगस निवासी भाई श्री मूलचन्दजी अग्रवाल उस समय प्रजामण्डल के कार्य के सिलसिले मे झुझनू रहते थे। हम दोनो ने मिल कर झुझनू के सेठ भोलारामजी टीबडेवाला की सलाह एव सहयोग से कानोडियाजी से मुकुन्दगढ जा कर सम्पर्क किया। उन्होने कुछ आर्थिक सहयोग दिया और बाद मे हरिजन सेवक सघ के ठक्कर बापा से पत्र-व्यवहार हुआ और उनकी आर्थिक सहायता व सहयोग से मेहतरो के मोहल्ले मे कुआ बनाया गया। कानोडियाजी उक्त कुए के निर्माण के बाद स्वय झुझनू निरीक्षण को आए। उन वर्षो मे देहातो मे शिक्षा-प्रसार के लिए कही भी राजकीय स्कूल नही थे। मारवाडी रिलीफ सोसाइटी, कलकत्ता, सुप्रसिद्ध दानवीर राय बहादुर सेठ सूरजमल शिवप्रसाद, राजपूताना शिक्षा मण्डल तथा बिडला ऐजूकेशन ट्रस्ट की ओर से कई कसबो मे स्कूल खोले गए। उसी सिलसिले मे कानोडिया एजूकेशन ट्रस्ट की ओर से भी तत्कालीन जयपुर राज्य द्वारा निर्धारित पाठ्य प्रणाली के अनुसार कई स्कूल देहातो मे खोले गए। बालिकाओ मे शिक्षा-प्रसार के लिए सुप्रसिद्ध राष्ट्रकर्मी स्वनामधन्य श्री हीरालालजी शास्त्री ने उन्ही वर्षो मे वनस्थली विद्यापीठ की स्थापना की।

कानोडियाजी वर्ष मे २-३ बार अपने व्यस्त कामकाजी जीवन मे से समय निकाल कर मुकुन्दगढ अवश्य आया करते, विशेषत आश्विन मास मे, जब यहा की मरुभूमि मे चारो ओर हरियाली रहती थी, फसल पकने मे आती और मौसम बडा स्वास्थ्यप्रद व सुहावना हो जाता था। उनके साथ उनकी मित्रमण्डली के बहुत लोग कलकत्ता से आते थे जिनमे प्राय. सीतारामजी सेकसरिया अवश्य होते थे। प्रसिद्ध समाज सुधारक श्री बसन्तलालजी मुरारका भी प्राय आते रहते थे। कानोडिया ट्रस्ट द्वारा सचालित स्कूलो के अध्यापको, विद्यार्थियो तथा उस क्षेत्र के काश्तकारो और हरिजनो की आर्थिक एव सामाजिक स्थिति की कानोडियाजी पूरी जानकारी रखते थे। वनस्थली मे प्रारम्भिक वर्षो मे शेखावाटी की ही बालिकाओ ने ही अधिकतर प्रवेश लिया था। उन सब की प्रेरणा, छात्रवृत्ति एव व्यवस्था के मूल मे कानोडियाजी ही थे। बाद मे तो इस सस्था ने अखिल भारतीय क्षेत्र की स्त्री-शिक्षा की सस्था के रूप मे अद्वितीय ख्याति प्राप्त की। वनस्थली से कानोडियाजी आजीवन सम्बद्ध रहे। कानोडिया ट्रस्ट की ओर से उस समय मिडिल स्कूल चलता था जिसमे विख्यात शिक्षा-शास्त्री प्रधानाध्यापक रखे जाते थे। इस क्षेत्र के सामाजिक, सास्कृतिक एव शिक्षा प्रसार मे जिन व्यक्तियो और परिवारो का योगदान रहा है उसमे कानोडियाजी व उनके परिवार की मुख्य गणना है।

कानोडियाजी की वृत्ति प्रधानत शिक्षा-प्रसार, सामाजिक कुरीतियो का निवारण, छूआछूत को दूर करना तथा हरिजनोद्धार की थी। ठिकानेदारो और काश्तकारो के सघर्ष मे उनकी सहानुभूति काश्तकारो की ओर थी क्योकि जागीरी शासन का अत्याचार वे स्वय अपनी आखो से देख चुके व अनुभव कर चुके थे। उन्होने जनता को शिक्षित करने के लिए स्कूल खोले और खुलवाए और अकाल-सहायता कार्य, जल कष्ट निवारण, छूआछूत को मिटाने मे बरावर लोगो को प्रेरणा देते रहे। राजस्थान बनने के बाद जल-बोर्ड के माध्यम से पेय जल-सकट निवारण के निमित्त मोहनलालजी सुखाडिया की सरकार के साथ सहयोग करके उन्होने जो कार्य किया उससे राजस्थान के जल सकटग्रस्त क्षेत्रो को बडी राहत मिली। कलकत्ता मे जहा उनका व्यापार केन्द्र था, राजस्थान की रियासतो के सार्वजनिक कार्यकर्ता बरावर सहायता के लिए कानोडियाजी के मेहमान रहते थे और शायद ही किसी देशी रियासत के कार्यकर्ता ऐसे रहे हो जिन्होने कानोडियाजी के सहयोग का लाभ न लिया हो।

कानोडियाजी शरीर के दुवले-पतले, स्वभाव से मृदुभाषी, सहिष्णु, सरल और तीक्ष्ण बुद्धि थे। वे एक दृष्टि मे ही मिलनेवाले का पूरी तौर से मूल्याकन कर लेते थे किन्तु अप्रिय सत्य किसी को नही कहते थे। सन् १९४३ की वात है, जब सारे राष्ट्रीय नेता जेल मे वन्द कर दिये गये और महात्मा गाधी को भी जेल मे वन्द कर दिया गया था उस समय कलकत्ता के एक युवा दम्पत्ति ने अपना जीवन समाज-सेवा के लिए अर्पण कर दिया और गाधीजी की खादी और ग्रामोत्थान की योजना ले कर शेखावाटी के एक ग्राम मे आकर रहने लगे। उक्त दम्पति ने स्पष्टत· कानोडियाजी से सलाह की थी और सहायता भी मागी—कानोडियाजी ने उनकी आर्थिक सहायता तो की परन्तु अपने मधुर स्वभाव के अनुरूप उन्हे यह भी वतलाया कि यह प्रण निभना कठिन है। इस पर भी वे झुझनू के पास एक ग्राम मे आ कर वैठे और स्कूल, आश्रम, ग्राम-सफाई, खादी ग्रामोद्योग का कार्य चालू कर दिया। वे थोडे दिनो मे ही ऊव गये। उनके कार्य का श्रीगणेश हुआ ही था कि इन पक्तियो के लेखक से, कलकत्त मे मिलने पर कानोडियाजी ने मुझसे पूछा कि "आप की राय मे कितने दिनो तक निभनेवाला है ?" उनका स्पष्ट सकेत था कि युवा दम्पति रचनात्मक कार्यो मे ज्यादा समय तक निभनेवाले नही है। आर्थिक सहयोग तो क्षेत्र के बाहर दानी महानुभावो से ही प्राप्त होता था जो ज्यादा लम्बा चलनेवाला नहीं था। एक वर्ष चल कर सारा कार्य वन्द हो गया। वाद मे उन्होने अपने सहयोग के लिए यह कह कर सन्तोष किया कि ऐसे मगल व कल्याण कार्यो मे जितना भी कुछ किया जा सके वह ठीक ही है।

भारतीय सस्कृति मे लक्ष्मी का महत्व दान से आका गया है। "दानाय लक्ष्मी. सुकृताय विद्या" की कहावत प्रसिद्ध है। इस क्षेत्र की पुरानी परम्परा के अनुसार दाता अपने दान मे किसी दूसरे के दान को शामिल नही करता था। यथाशक्ति दान कर के आत्मसन्तोष करता था चाहे वह मात्रा मे कितना ही स्वल्प हो। स्वतत्रता प्राप्ति के पूर्व इस क्षेत्र मे शिक्षा एव चिकित्सा क्षेत्र मे दानी सेठ महानुभावो का ही योगदान रहा है। अब तो स्कूल, कालेज और अस्पताल हमारे लोककल्याणकारी राज्य मे हर जिले मे स्थापित हो गये है। झुझनू जिले मे इससे पूर्व भी लगभग

प्रत्येक गांव मे दानी सेठ महानुभावो की ओर से स्कूल, धर्मशाला व औपधालय व कूप आदि बनाये गये। शिक्षा के क्षेत्र मे राज्य सरकार ने इस जिले में कोई कालेज नही खोला और चल रहे स्कूल और कालेजो को राज्य की ओर से वित्तीय अनुदान देना शुरू कर दिया। कानोडियाजी को प्रारम्भ मे यह बडा अटपटा लगा। सन् १९५२ मे उन्होने राजस्थान के तत्कालीन मुख्यमन्त्री श्री जयनारायणजी व्यास को यह कहा भी कि राज्य सरकार उन स्कूल और कालेजो को आर्थिक सहायता क्यो देती है जिनके पीछे बहुत बडी आमदनीवाले ट्रस्ट है और जिन्हे आर्थिक सहायता की आवश्यकता नहीं है? आज ३ वर्ष के राजकीय अनुदान के अनुभव से हमने जो कुछ पाया है वह हमारे सामने है। अनुदान प्राप्त करनेवाली सस्थाओ के शिक्षा स्तर और अनुदान को सर्वथा अस्वीकार करनेवाले बिडला ऐजूकेशन ट्रस्ट की सस्थाओ के शिक्षण स्तर का अन्तर हमारे सामने है, अस्तु।

कानोडियाजी रचनात्मक, साहित्यिक एव लोक-सेवा के कार्यो मे सदा अग्रसर रहते हुए भी अपने स्वय के विज्ञापन, ख्याति, प्रचार मे दूर रहते थे। शायद ही उन्होने किसी जातीय, सास्कृतिक या अन्य किसी सम्मेलन का सभापतित्व किया हो। ऐसा करना उनके लिए बहुत सुलभ था परन्तु वे सदा इससे दूर रहे। वे अपनी सामर्थ्य के अनुसार सहायता करके व्यक्ति को समाज मे अधिक चरित्रवान, शीलवान, विद्वान और समाज के उपयोगी बनाने का प्रयास करते थे। उनके सान्निध्य मे पवित्रता, सरलता और शुद्ध विचारो की लहर बहती थी। उनकी निश्छल आत्मीयता सदा ही मिलनेवाले को अपनी ओर आकर्षित करती रही। उनके सम्पर्क से कितने ही लोगो ने अपने जीवन मे प्रेरणा ली, कितनी ही सस्थाएं स्थापित हुई कितनी ही सस्थाओ को बल मिला। साहित्यकारो की रचनाओ और प्रवृत्तियो को प्रेरणा मिली और लोक-कल्याण का कार्य आगे बढा। झुंझनू के 'श्री मातादीन खेतान अस्पताल' व सीकर के सावली टी० बी० सेनिटोरियम उनकी ही प्रेरणा व सहयोग मे अस्तित्व मे आये हैं। श्री कानोडियाजी का दान सविवेक एव त्रिगुणात्मक था। श्री भर्तृहरि के कथनानुसार "मन्यामहे मलयमेव यदाश्रयेण ककोल निम्बकुटजा अपि चन्दना स्यु" उनके सम्पर्क मे उनके सद्गुणो का प्रसार दूसरे व्यक्ति मे सक्रमित हो कर उसे मगल मार्ग की ओर अग्रसर करता था। कानोडियाजी का बाल्यकाल मुकुन्दगढ शेखावटी मे बीता और यहा ही उन्होने शिक्षा प्राप्त की। कलकत्ता और बगाल उनका व्यापारिक क्षेत्र था। वैसे इस क्षेत्र मे धनीमानी व्यक्तियो की कमी नहीं है परन्तु साधारण जनता के लिए सहज सुलभ व सहानुभूति रखनेवाला व समय-समय पर उनके दुख दर्द मे काम आनेवाला कानोडियाजी जैसा दूसरा व्यक्ति मिलना कठिन है। उनके स्वर्गवास से इस क्षेत्र की एक ऐसी हस्ती चली गई जिसकी पूर्ति नही हो सकती। वे अपने सुख व सुविधा की अभिलाषा न करके लोगो की कल्याण साधना करते थे। उनकी श्रद्धाजलि मे महाकवि कालिदास की निम्न उक्ति चरितार्थ होती है:—

स्वसुखनिरभिलाषः खिद्यसे लोकहेतोः
प्रतिदिनमथवा ते वृत्तिरेवंविधैव।

—:०:—

समाज-सेवी, प्रमुख सॉलीसीटर

श्री भगवतीप्रसाद खेतान

युग-पुरुष

श्री भागीरथजी कानोडिया की जीवन-यात्रा की समाप्ति का समाचार हृदय को स्तभित कर देनेवाला समाचार था। यो तो जो जन्म लेता है, उसका एक दिन अन्त होता ही है, किन्तु भागीरथजी जैसे व्यक्ति जब दिवगत हो जाते है, तो समाज मे एक ऐसी शून्यता छोड जाते है, जो सहजता से भरी नही जा सकती। अपने जीवन-काल के सत्कर्मों के प्रकाश के द्वारा वे दुखी, दलित और उत्पीडित मानवता का एक ऐसा आधार बन गए थे कि उनका अभाव उन लोगो के लिए तो एक काल-रात्रि के समान ही हुआ है। मनुष्य कितना जिया यह उसने कितना जन-हित का काम किया, इस कसौटी पर आका जाता है। इस दृष्टिकोण से उन्हे दीर्घजीवी ही कहना उपयुक्त होगा। उनकी सेवाओ का लेखा बहुत लम्बा है। जिस किसी भी सस्था से उनका सम्पर्क हुआ, वह इतना गहरा था कि उनकी अनुपस्थिति उन्हे हमेशा खलेगी।

मेरा उनके साथ वर्षो से घनिष्ठ सम्बन्ध था। कई न्यासो मे हम न्यासियो के रूप मे सम्बन्धित थे। मैंने देखा है कि न्यास की राशि का सदुपयोग और याचको की आवश्यकताए पर्याप्त मात्रा मे तत्काल पूरी हो इसके लिए वे कितने आतुर, उदार और सम्वेदनशील थे। आर्त और दुखियो के प्रति उनके मन मे सहज करुणा की भावना थी और उनकी पीडा दूर करने के लिए वे कितने व्यग्र और प्रयत्नशील हो उठते थे, यह जो उनके निकट सम्पर्क मे रहा है, वही जान सकता है क्योकि उनमे प्रदर्शन की भावना बिलकुल नही थी, बल्कि कभी ऐसी सम्भावना होती तो वे सचेष्ट हो कर उससे दूर हो जाते थे। सेवा करके उन्हे आध्यात्मिक तृप्ति मिलती थी। यह एक मणिकाचन योग ही कहना चाहिए कि जितनी गहराई मे उनमे सेवा-भावना थी, उसी अनुपात मे उन्हे साधन भी सुलभ थे, जिनका अपनी क्षमता के साथ उन्होने सदैव उचित उपयोग किया।

कलकत्ता का सामाजिक-जीवन आज उनके अभाव में शून्य है। यहा की प्रत्येक प्रकार की राष्ट्रीय, सामाजिक, सास्कृतिक एव साहित्यिक प्रवृत्तियो मे उनके अवदान की अमिट छाप है। पीडित मानवता की सेवा का अवसर वे कभी नही चूके, सदा आगे रहे, और जहा यश या नाम की बात आई उन्होने अपना पग पीछे हटा लिया। राजस्थान की समस्याओ के समाधान और उसके विकास की भूमिका मे तो भागीरथजी का नाम स्वर्णाक्षरो मे लिखा ही जाएगा। वे सच्चे अर्थ मे युग-पुरुष थे। वे अब हमारे बीच नही हैं, किन्तु उनकी प्रेरणा सदा हमारा पथ-प्रदर्शन करती रहेगी।

—:०—

सामाजिक कार्यकर्ता,
मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी के भूतपूर्व प्रधानमंत्री
श्री सीताराम केडिया

न्यायनिष्ठ सरपंच

यो तो समाज की गाडी चलती ही रहती है, किन्तु बीच-बीच मे कुछ ऐसे लोग जन्म लेते है, जिन्हे लोग याद ही करते रहते हैं। ऐसे लोग समाज को गौरवान्वित तो करते ही हैं वर्षो तक ऐसे व्यक्ति के जीवन की घटनाओ का उदाहरण भी दिया जाता रहता है। ऐसे ही व्यक्ति थे श्रद्धेय स्वर्गीय श्री भागीरथजी कानोडिया। उनसे मिलनेवाला व्यक्ति प्रथम मुलाकात मे ही महसूस करने लगता था कि ये तो मेरे ही है। यही उनकी सबसे बडी विशेषता थी। मेरा श्री कानोडियाजी से सन् १९३८-३९ मे मारवाडी रिलीफ सोसाइटी को लेकर प्रथम परिचय हुआ था। इसके बाद दिन-प्रति-दिन मेरे ऊपर उनका स्नेह बढता ही गया। श्री कानोडियाजी मृदुभाषी, मिलनसार एव बहुत ही हसमुख व्यक्ति थे। वे किसी को कडी बात भी कहते थे, तो उनकी कहने की ऐसी शैली थी कि वह सुननेवाले को बुरी नही लगती। हर बात के साथ राजस्थानी कहावतो की याददाश्त रखना एव समयानुसार उनका उपयोग करना उनकी विलक्षण प्रतिभा थी।

श्री कानोडियाजी के पास बहुत से व्यक्ति किसी-न-किसी प्रकार की आकाक्षा ले कर जाते थे एव वे तन-मन-धन से यथासम्भव आनेवाले की आकाक्षा पूरी करने की चेष्टा करते थे, तो भी गाते नही थे। कारण जैसे कि आजकल के अधिकाश लोगो मे है, उनके मन मे नाम की भावना नही थी। न फोटो का शौक, न प्रचार की भावना। मन मे सेवा की भावना थी एव दूसरे के दु ख को महसूस करते थे, यही उनकी प्रमुख विशेषता थी।

श्री कानोडियाजी ने अपने जीवन-काल मे जितनी आपसी पारिवारिक पचायतें की थी, शायद ही किसी ने की हो। इन पचायतो के जरिये कितने परिवार नष्ट होने से बचे, कितने घरो मे कलह का सूत्रपात हो कर वापस सद्भावना और प्रेम हो गया, उसकी गिनती नही है। उनके जीवन-काल का बडा समय पचायतिया सलटाने मे लगा है। मारवाडी समाज मे घरेलू झगडा पचायतो द्वारा सलटानेवालो मे दो नाम ही आते है—प्रथम, श्रद्धेय श्री जयदयालजी गोयनका एव दूसरे श्री भागीरथजी कानोडिया। मैंने उनके ही मु ह से सुना था कि कभी-कभी पचायत करने मे भी बडा सकट उपस्थित हो जाता था। एक बार जब वे बिरला ब्रदर्स मे काम करते थे, तो एक पचायती पाट के सौदे के झमेले की थी। उसमे पचायत करने के लिये जिन्होने उनका नाम दिया था वे श्री जुगलकिशोरजी बिडला के नजदीकी व्यक्तियो मे थे। फैसला जब उनके विरुद्ध हुआ तो वे इतने नाराज हो गये, कि पहले तो उन्होने भागीरथजी को काफी खरी-खोटी सुनाई और कहा कि तुमको घर का समझ कर तुम्हारा नाम दिया था। यदि ऐसा ही फैसला कराना था तो बहुत नाम थे। उन्होने काफी समझाया तो भी सन्तोष न कर के श्री बिडलाजी के पास शिकायत ले गये और कहा कि "हमने तो

भागीरथ का नाम घर का समझ कर दिया था, और उन्होने तो हमे डुबो दिया।" इस पर श्री विडलाजी ने उनको बुला कर पूछा और उन्होने सारी वात उन्हे समझाई, तव उन्होने कहा कि तुमने ठीक ही किया है। फैसला हमेशा वाजिव ही होना चाहिये। तो भी वह पक्ष वर्षो तक उनसे वहुत नाराज रहा। सोचता हू, वह भी जमाना था, ऐसे भी व्यक्ति थे जिन्होने निर्भीक हो कर फैसला दिया, जरा भी नही सोचा कि वावू नाराज होगे या राजी। आज तो लोग वावू को राजी करने के लिये किसी प्रकार का भी अन्याय करने से नही हिचकते हैं। सभी वडे प्रतिष्ठानो मे ऐसे वहुत लोग भरे पडे हैं।

इसी तरह की एक दूसरी पचायत के वारे मे उनसे सुना था। आपस मे दो भाइयो के अलग होने की पचायती थी। करीव २० लाख के एस्टेट का वटवारा उस सस्ती के जमाने मे करना था। सारा काम सलट गया। दोनो भाई राजी हो गये किन्तु एक हीरे की अगूठी को लेकर दोनो मे जिद हो गयी—अगूठी तो मै ही लूगा। वडा भाई कहता: मेरा हक है। छोटा कहता . मेरा। सलटे-सलटाये काम मे धर्म-सकट पैदा हो गया। आखिर भागीरथजी ने अलग-अलग ले कर दोनो को आश्वासन दिया कि अगूठी तुम्हे ही मिलेगी लेकिन ३-४ महीने वाद और इस शर्त पर कि तुम इसका ५ साल तक न तो इस्तेमाल कर सकोगे तथा न किसी को कह सकोगे कि अगूठी तुमको दी गई है। इस तरह दोनो को अलग-अलग इस वात की सौगन्ध दिलवाई गई, और अगूठी अपने पास रख कर सारी लिखा-पढी करवा कर सारा मामला सलटाया गया। वाद मे चुपचाप किसी तरह उसी प्रकार की दूसरी अगूठी वनवा कर उसे इस्तमाल के द्वारा पुरानी कर के, करीव ४ महीने वाद दोनो भाइयो को अलग-अलग वुलवा कर पुरानी सौगन्ध दोहराते हुए (दोनो को) अगूठी दे दी गई। कुछ दिनो के वाद दोनो भाइयो मे आपसी प्रेम वापस हो गया और पहले से भी ज्यादा सद्भावना हो गयी तो छोटे भाई ने अपनी अगूठी वडे भाई को ले जा कर दी और कहा—मेरी भूल थी यह अगूठी आप ले लीजिये। इस पर भेद खुला और दोनो ने ही अपनी-अपनी अगूठी देखी। दोनो भाई काफी लज्जित हुए और पच के पास जा कर क्षमा याचना की तथा मयव्याज के अति आग्रहपूर्वक अगूठी की लागत दी जो करीव ५-६ हजार की थी। कितनी ही पचायतो मे तो दोनो ही पक्ष उनके विरोधी हो जाते थे। ऐसी थी यह समाज-सेवा जिसे करने का सौभाग्य विरलो को ही मिलता है, क्योकि पंचायती करानेवालो का विश्वास अर्जन करना भी मामूली वात नही है। श्री भागीरथजी ने अपने जीवन-काल मे सैकडो पचायतिया कर अपना अमूल्य समय देकर आर्थिक नुकसान भी उठाया, पर साथ ही वहुत परिवारों को नष्ट होने से भी वचाया। मैंने भी उनसे दो पचायतिया करवाई थी। पहली, मेरे परिवार मे दो भाइयो के झगडे की थी जिसमे उनको ६-७ महीने तक कष्ट उठाना पडा। उन्हे वहुत कष्ट हुआ था किन्तु उनके प्रयत्न से वास्तव मे वे परिवार नष्ट होने से वच गये। करीव १५ वर्ष पहले मेरा उनसे थोडा व्यापारिक सम्वन्ध हो गया था। एक वार उन्ही की प्रभा कॉटन मिल का एक झमेला एक्साइज ड्यूटी को लेकर मिलवालो ने डाल दिया। कानूनन मिलवालो की गलती थी, किन्तु लोभ सव कुछ करा देता है। आखिर मैंने कहा कि वडे वावू को सारा मामला समझा कर उनसे फैसला करा लें, वे जैसा कहेगे मेरे व्यापारियो को मन्जूर होगा। अव मिलवालो

को बोलने की गुंजाइश नही रह गई। श्री भागीरथजी ने ५ मिनट मे सारी बात समझ कर फैसला कर दिया। मिल का कार्य श्री आत्मारामजी कानोडिया देखते थे, उन्हे साफ कह दिया कि आत्माराम इसमे मिलवालो की बडी भूल है, ऐसा नही करना चाहिये।

व्यापारिक सम्बन्ध होने के कारण मुझे उनके पास जाने का काफी अवसर मिलता था। कभी-कभी तो घटो गपशप लग जाती थी। इसी सन्दर्भ मे एक दिन की बात याद आती है। उस दिन शायद उनका मूड कुछ आफ था। मैं करीब १२ बजे उनके पास कार्यालय मे पहुच गया था। उस दिन मेरे बैठे-बैठे करीब ४-५ याचक याचना लेकर आये। उनसे बात करने मे आधा घटा समय व्यतीत हो गया तो बोले कि ये लोग हैरान कर देते है। दिन भर दिक करते रहते है। मैंने कोई उत्तर नही दिया, तो बोले कि आप बोले कैसे नही ? तब मैंने कहा कि बाबू, क्या बोलू। यही तकलीफ मुझे है। आपको तो यह लोग फुरसत नही लेने देते तथा मेरे पास आते नही है। इस पर बोले यह क्या तकलीफ है, कल से ही इन्हे आपके पास भेज दूगा। तब मैंने कहा कि बाबू, इससे बडा और कोई उपकार नही होगा। यदि आप इनको मेरे पास भेज सकें तो मैं अपने को महान भाग्यशाली समझते हुए जिंदगी भर आपका अहसासमन्द रहूगा। मेरी बात सुन कर एक बार तो चुप हो गये, बाद मे बोले कि आप ठीक कहते है। जिस पर भगवान की कृपा होती है उसी के पास याचक आते है। कभी-कभी भाई रामेश्वरजी टाटिया के साथ जब भागीरथजी से बात करने का मौका मिलता था, तो वह समय तो याद रखने योग्य ही होता था क्योकि जैसे श्री कानोडियाजी खुशमिजाज थे, वैसे ही भाई टाटियाजी भी बडे मजाक-पसन्द, सेवाभावी तथा अपने मित्रो के लिये उदार-हृदय थे। सार्वजनिक सेवा मे इन लोगो का बडा योगदान था। मारवाडी रिलीफ सोसाइटी तथा मारवाडी आरोग्य भवन, जसीडीह तथा कल्याण आरोग्य सदन, सीकर के तो प्राण थे। वैसे शायद ही कोई सार्वजनिक कार्य हो जिसमे किसी न किसी रूप मे भागीरथजी का योगदान नही रहा हो। यो तो कानोडिया परिवार के कई सदस्यो से मेरा काफी परिचय है, किन्तु श्री भागीरथजी तो एक अलग ही व्यक्तित्ववाले व्यक्ति थे। समाज मे उनके स्थान की पूर्ति असम्भव है। प्रकृति के नियमानुसार जो जन्म लेता है उसे जाना ही पडता है, किन्तु इस तरह जाना भी अपने आप मे शान रखता है। विरले ही लोगो को इस तरह अपना पार्ट पूरा करके जाने का अवसर मिलता है। उन्होने अपने जीवनकाल मे जितनी समाज-सेवा की उसकी आज के युवक तो स्वप्न मे भी नही सोच सकते। राजस्थान के भयानक अकाल मे उन्होने श्री सोढाणी, श्री टाटिया एव अन्य मित्रो के साथ जिस तरह कडकती धूप मे गाव-गाव घूम कर सेवा की, वह भुलाई नही जा सकती है। कुछ महीने पहले उदयपुर के एक सार्वजनिक वयोवृद्ध कार्यकर्ता आये थे। उन्होने बातो ही बातो मे कहा, श्री कानोडियाजी चले गये। मैं उनकी आफिस मे गया था। चेष्टा करने पर भी किसी ने एक मिनट का भी मिलने के लिये समय नही दिया। चिट भिजवाने पर भी यही उत्तर मिला, अभी कार्य मे व्यस्त हैं। कानोडियाजी के पास तो बिना चिट के ही चला जाता था, और वे बडे प्रेम से मिलते थे। मैंने तो उन्हे यही कहा, कि उनकी बात उनके साथ चली गई। आपको विचार नही करना चाहिये। आजकल का धन्धा ही ऐसा है लोगो के पास समय का बहुत अभाव रहता है। उनका उत्तर था 'ठीक ही है।'

—: o :—

सामाजिक कार्यकर्ता, राजस्थान जल बोर्ड में भागीरथजी के सहकर्मी

श्री मातादीन खेतान

सेवामय प्रेम-स्रोत

समाज-सेवा, शिक्षा, मानव-सेवा और इसी प्रकार की अन्य प्रवृत्तियों में कोई जब अपने को समर्पित कर देता है तो वह एक ऐसे मनुष्य की कोटि में पहुंच जाता है जो समाज की अन्य धरोहर की भांति ही एक मूल्यवान धरोहर बन जाता है। ऐसे व्यक्ति के व्यक्तित्व से समाज को प्रेरणा प्राप्त होती है और सद्वृत्तियो की परम्परा में एक और कड़ी जुड जाती है। भागीरथजी कानोड़िया, मेरी दृष्टि में, व्यक्ति नही, ऐसे ही एक व्यक्तित्व थे। उन्होने जीवन पर्यन्त समाज-सेवा मे संलग्न रह कर जितना किया, उससे कही अधिक उन्होंने समाज के लिए समाज से ही करवाया। उनका यह एक विशेष गुण था।

मेरा उनका परिचय यो तो लम्बे अरसे मे था पर उनके निकट सम्पर्क मे आने का अवसर मुझे सन् १९५०-५१ मे, जब राजस्थान मे भीषण अकाल से वहां की जनता त्राहि-त्राहि कर रही थी, तब मिला। उस समय मैं मारवाडी रिलीफ सोसाइटी की ओर से अकाल पीडितों की सेवा के लिये बीकानेर गया हुआ था। संस्थाओ के साथ सरकार भी इस सेवा कार्य मे बड़ी तत्परता से जुटी थी। फिर भी कुछ उल्टा प्रचार किसी राजनीतिक दल के द्वारा यह किया गया था कि बीकानेर में लोग भरूट खाकर जी रहे है।

इन सम्बन्ध मे मुझे भागीरथजी का एक पत्र वही मिला। उस पत्र मे उन्होने लिखा था—हम लोगों को, जो मानव-सेवा जैसे पुनीत कार्यो मे सलग्न है, राजनीति से दूर रहना चाहिए। हमें सरकार से मिल कर अकाल पीड़ितों की सेवा करनी चाहिए। मैं वहा लगभग दो महीने रहा और इन दो महीनों में मुझे वे बराबर पत्र द्वारा सलाह देते रहे। दूसरी बार राजस्थान मे जल-बोर्ड मे उनके साथ मुझे काम करने का काफी मौका मिला। हमलोगों ने राजस्थान भर मे सभी २४ जिलो मे करीब-करीब १० हजार कुए बनवाये। १९५६-५७ की बात होगी। श्री बद्रीनारायणजी सोढाणी का मेरे पास पत्र आया : 'मैं सीकर के पास एक टी० बी० सेनेटोरियम करना चाहता हूं, उसके लिए आप मुझे ३५ हजार रुपये इकट्ठा करवा दें।' कुछ दिनों बाद बद्रीनारायणजी कलकत्ता आ गये। बद्रीनारायणजी मेरे पास २ महीना रहे। भागीरथजी ने लोगो से २-३ लाख इकट्ठा करवा दिये। कुछ दिनों बाद टी० बी० सेनेटोरियम बना तथा उसका उद्घाटन शास्त्रीजी से कराया गया। उस अवसर पर सुखाडियाजी से बात-बात मे भागीरथजी ने जयपुर में एक लड़कियों की शिक्षा संस्था की स्थापना कर दी। आज वह बहुत बढिया काम कर रही है। सीकर का टी० बी० सेनेटोरियम धीरे-धीरे बढ रहा था। रुपये की कमी के कारण अन्य दिक्कतें हो रही थीं। १९७० के करीब मे बद्रीनारायणजी ने भागीरथजी को आ कर कहा कि उनसे इसका काम अब नहीं सम्भल सकेगा। भागीरथजी ने उस काम को खुद सम्भालना शुरू कर दिया और पिछले दस वर्षो में ५० लाख रुपया लोगो से दिलाया तथा अन्तिम समय तक अस्पताल की चिन्ता उन्हे बनी रही। बीमार होने के पहले वे कहा करते थे कि सीकर के सेनेटोरियम का काम सम्भालने मे उन्हें बड़ी खुशी होती है।

—: ० :—

शिक्षा-प्रेमी, साहित्यिक संस्था अर्चना के सचालक
श्री नथमल केडिया

देवोपम चरित्र

एक पौराणिक गाथा याद आ रही है। देव और दानवो ने मिल कर समुद्र का मथन किया। उसमे से अन्य तेरह रत्नो के साथ अमृत से भरा एक कुम्भ भी निकला। उस अमृत-कुम्भ को पाने के लिये देव और असुरो मे भयकर सग्राम हुआ। उस सग्राम के दौरान आपस की छीनाझपटी के बीच उस अमृत कुम्भ से अमृत की कुछ बू दे हमारी इस पृथ्वी पर छलक पडी। जहा-जहा ये बू दे गिरी वे स्थान तीर्थ बन गये। प्रयाग, नासिक, हरिद्वार और उज्जैन के इन्ही तीर्थो मे आज सैकडो-हजारो वर्षो की लम्बी अवधि के बाद भी हम 'कुम्भ' पर्व मनाते है और वहा स्नान कर नये प्राण और नयी ऊर्जा ग्रहण करते है।

कई लोग कहते है कि जो रूप, आकार और साज-सज्जाए पौराणिक गाथाए धारण किए हुए दिखायी देती है वैसी ही वे नही होती। कथाकार कोई और सत्य उद्घाटित करना चाहता था पर चू कि उसने जान लिया था कि जब मनुष्य नामक प्राणी ने ईश्वर को भी निराकार से साकार होने के लिये बाध्य कर दिया है तब सत्य भी मनमोहक रूप, सुरुचिपूर्ण साज सज्जा एव सुन्दर वस्त्र व आभूषण धारण कर के ही सामान्यजन मे प्रतिष्ठित हो सकेगा, अत इस निष्कर्ष की पृष्ठभूमि पर हमारी पौराणिक गाथाओ की रचना हुई। इसलिये इन गाथाओ के प्राण या आत्मा को पहचानना जरूरी है।

पर, ऐसी गाथाओ की आत्मा किस सत्य की ओर इशारा कर रही है? यही कि देव और दानव प्रत्येक युग मे होते हैं और अमृत की प्राप्ति केवल देव-प्रकृति के लोगो को ही हो सकती है। इसका उदाहरण अभी कुछ ही दिनो पहले हमारे देश मे घटा देवासुर-संग्राम है। असुरो की बात छोडिये, पर उसमे देव के रूप मे थे 'महात्मा गाधी'। उस समय भी हमारे देश मे अमृत की बू दे छलकी थी—वे थी सेवा, परोपकार, त्याग और तपस्या के रूप मे। हा, हम यह कह सकते है कि वे बू दे किसी खास भूमि पर नही गिरी बल्कि उनका सस्पर्श हुआ अनेकानेक व्यक्तियो को। पर उन बू दो की प्राणवत्ता ऐसी थी कि जिन-जिन व्यक्तियो की चेतना से उनका सस्पर्श हुआ, वे मानो एक अदृश्य सूत्र द्वारा आजीवन आस्था के एक ऐसे अजस्र स्रोत से जुडे रहे जो उनमे नये प्राण, नयी ऊर्जा और गहरी से गहरी सवेदना का सचार करता रहा। तभी तो आज की इन सारी विपरीत परिस्थितियो एव स्वार्थ बुद्धि द्वारा अपनायी गयी नयी-नयी भाषा, परिभाषाओ के जोरदार आक्रमणो के बावजूद वे व्यक्ति पथ से डिगे ही नही, बल्कि जनता की सेवा मे गहरी और गहरी दिलचस्पी लेते गये। इसी तरह के व्यक्तियो मे से एक थे भागीरथजी कानोडिया।

सार्वजनिक क्षेत्र मे सेवा-कार्य करनेवाले ऐसे सैकडो कार्यकर्ता होगे जिनके साथ उनका व्यक्तिगत परिचय था। यह ऐसा परिचय था कि वे कार्यकर्ता उनसे अपनी

समस्याओ की चर्चा कर यथासम्भव उसका निराकरण प्राप्त करने मे सकोच नही करते थे। ये समस्याए उनके सार्वजनिक जीवन की भी होती थी और पारिवारिक भी। एक कार्यकर्ता द्वारा दूसरे कार्यकर्ता को अपने परिवार का सदस्य मानना और उसको सम्मान देना गाधी-युग का वातावरण था, जो पीछे आ कर कुछ लोगो का स्वभाव हो गया। लोग कहते है, यह बडी खूबी थी, कानोडियाजी मे। पर यह बड़ी खूबी और भी बडी इसलिये थी कि उनके मन मे कार्यकर्ता के प्रति आदर-भाव बहुत रहता था। मैं एक उदाहरण दे रहा हू। साहित्यिको मे मान्य एक सस्था बनारस मे है, नाम है 'ठलुआ क्लब'। यह बनारस की मस्ती, विनोद और साहित्य तीनो के समन्वय का मूर्त रूप है। मेरे मन मे 'अर्चना' के अन्तर्गत इस साहित्यिक सस्था के मत्री श्री विश्वनाथ मुखर्जी का अभिनन्दन करने और २१ हजार की राशि भेंट करने की बात आयी तो सबसे पहले इसकी चर्चा मैंने कानोडियाजी से ही की। उन्होने तुरन्त कहा कि विश्वनाथजी स्वाभिमानी हैं, फक्कड हैं, ऐसे साहित्यिक का सम्मान होना चाहिये। फिर पूछा, "आपने रुपया किस तरह से इकट्ठा करना सोचा है?" मैंने उनसे कहा कि २१ व्यक्तियो से एक-एक हजार ले लेगे। इस पर उन्होने कहा कि २१ व्यक्तियो से बात होनी कठिन हो जायगी। आप दो-दो हजार रुपये इकट्ठा करें और मेरे दो हजार रुपये तो आज ही मगवा ले। बस इतनी सी ही बात हुई और कार्य आगे बढ गया। मुझे उस समय लगा कि किसी भी अच्छे काम मे सहयोग और प्रेरणा किस तरह दी जाती है। उसके कुछ दिनो बाद का एक प्रसग तो मैं भूल ही नही पाता। मैंने किसी साहित्यिक व्यक्ति के सहयोग के लिये २५०/- रुपये के लिए उनसे पूछा। उत्तर मिला, "आप २५०/-, ५००/- के लिये पूछा मत करिये, मगवा लिया करे।"

पिछले कई वर्षो से वे सुबह विक्टोरिया मेमोरियल घूमने के लिये आते थे इसलिये हमलोगो को सौभाग्यवश उनके सान्निध्य और उनकी बातें सुनने का लाभ मिल जाता था। बातें उनकी सारगर्भित रहती पर होती बहुत ही सक्षिप्तता लिये हुए। शब्दो के इतने सयमी व्यक्ति कम देखने मे आते हैं। हा, चू कि साहित्य मे उनकी गहरी रुचि और पैठ थी इसलिये बातो मे कभी-कभी विनोद का पुट रहता था पर व्यग्य नही। राजस्थानी कहावतो, मुहावरो और लोकोक्तियो को उन्होने अपना पूरा समय और ध्यान दे कर देखा, सुना और परखा था, इतना कि उनके साथ अपना अपनापा पैदा कर लिया था। कैसी भी कहावत या लोकोक्ति क्यो न हो, उसका सही सदर्भ वे ढू ढ लेते थे। 'बहता पानी निर्मला' और 'राजस्थानी कहावत कोश' इसके सुन्दर प्रमाण है।

कानोडियाजी की कई विशेषताओ का जिक्र किया जा सकता है। पर आज के युग मे व्यक्ति की सबसे बडी विशेषता, अपनी प्रशसा सुनने की ऐषणा से अपने को दूर रखना है। मुझे मालूम है वे इस ओर बहुत सचेत थे। 'ठलुआ क्लब' वाले उनका अभिनन्दन करने की बडी इच्छा रखते थे। मुझसे भी उन्होने भागीरथजी से स्वीकृति प्राप्त करने को कहा था, पर कई बार आग्रह करने पर भी उन्होंने स्वीकृति नही दी। उनके जीवन के आरम्भिक दिनो की बात तो मैं नही जानता, परन्तु सम्प्रति तो उनका सारा ध्यान केवल गरीबो की सेवा मे ही बीतता था। इस ओर उन्होने

अपनी गतिविधियो को केन्द्रित कर रखा था और कार्य करने का माध्यम 'कल्याण आरोग्य सदन' और 'जनकल्याण समिति' (सीकर) को बना रखा था। मैं तो इतना भी मानता हू कि राजस्थान के इस तबके के अभावग्रस्त व्यक्तियो की टिप्पणी मे सौभाग्य का एक योग कानोडियाजी और वहा के कर्मठ गाधीवादी श्री बदरीनारायणजी सोढाणी का साथ होना था। व्यवस्था, प्रभाव और सेवा-परायणता का सम्मिलन लोगो को कितना लाभ पहुच सकता है, यह सीकर जिले की इन सस्थाओ मे जा कर दिखायी पडता है।

एक बार की बात है—वे बहुत बीमार हो गये, हमलोग उनसे मिलने गये। बातचीत के दौरान उन्होने कहा कि "म तो मेरी जान म चाकरी म कोई चूक कोनी करी, जिको काम मालिक सौप्यो बन इमानदारी क साग. निभार्‌यो थो। बि क बाद भी वो चाकरी से क्यू हटायो ?" इस वाक्य को कहते समय उनकी आखो मे जो वेदना और विषाद झलक रहा था उसकी अभिव्यक्ति कोई भाषा या शब्द नही कर सकते हैं।

कानोडियाजी के जीवन-दर्शन को दर्शानेवाली महात्मा गाधी की एक बात मुझे याद आ रही है जो सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री रामनरेशजी त्रिपाठी (अब स्वर्गीय) ने सुनायी थी। त्रिपाठीजी उस समय गाधीजी के २१ दिनो के उपवास के समय उनके दर्शन करने और उनसे मिलने पूना गये थे। गाधीजी ने बातो के दौरान उनसे कहा—"रामनरेश! रामायण मे से कुछ सुनाओ।" त्रिपाठीजी ने उनको निम्न दोहा सुनाया :—

> दुगुने तिगुने चौगुने, पच षष्ठ औ सात।
> आठ हुए पुनि नौ गुने, नव के नव रहिजात॥

दोहा सुनकर गाधीजी ने पूछा—"अच्छा बताओ, तुमने इसका क्या अर्थ लगाया ? रामनरेशजी ने कहा—"बापू! मैंने तो इस दोहे का यह अर्थ समझा कि मनुष्य को अपनी प्रत्येक अवस्था मे, नवपन (यौवन) बरकरार रखना चाहिये जैसा नौ दूना अठारह—एक आठ नव। नौ तीये सताइस—दो और सात नव। इस तरह तिरसठ—बहत्तर एक्कासी। सब मे जैसे दोनो अको के योग मे 'नव' विद्यमान रहता है उसी तरह मनुष्य भी प्रत्येक अवस्था मे उत्साह और नवपन से भरपूर रहे। यही गोस्वामीजी कहना चाहते थे।" रामनरेशजी ने कहा कि गाधीजी को यह अर्थ बताते समय उनके मन मे यह भावना थी कि वह बहुत ही अच्छा और सटीक अर्थ बता रहे है। पर जब गाधीजी ने उनको उपर्युक्त दोहे का अपना अर्थ बताया तो वे चमत्कृत हो गये कि इतनी गहराई लिए हुए भी कोई अर्थ हो सकता है। तो गाधीजी ने उनको जो कहा वह जहा तक मुझे याद है, त्रिपाठीजी के मुह से सुने हुए शब्दो मे ही लिख रहा हूं :—

"गाधीजी लेटे हुए थे। उपवास ने उनकी बोलने की शक्ति क्षीण कर दी थी। उनकी आवाज धीमी पर प्रवाहयुक्त थी। उन्होने मेरा अर्थ सुन कर कहा, "नही, मैं तुम्हे इसका अर्थ बताता हू। यह दोहा तो ऐसा है कि प्रत्येक गृहस्थ को इसे अपने दरवाजे पर लिख कर टाग लेना चाहिये। फर्ज करो, नौ एक आदमी है। वह जब अठारह वर्ष का होता है तब वह आत्म-विश्लेषण करता है और सोचता है कि

देखें, मेरे मे गुण कितने हैं और अवगुण कितने। तब वह पाता है कि मेरे में गुण तो एक है और अवगुण आठ। बस तभी से वह अच्छा होने का प्रयत्न शुरू कर देता है। उसके बाद जब वह दूसरी अवस्था मतलब २७ वर्ष का होता है तब वह पाता है कि मेरे मे गुण दो हो गये और अवगुण सात रह गये। तीसरी अवस्था आयी तब गुण तीन हो गये और अवगुण छह ही रह गये। चौथी अवस्था मे गुण चार हो गये अवगुण पांच रह गये। पाचवी अवस्था मे आकर गुण पांच हो गये और अवगुण चार रह गये। और गाधीजी कहते गये कि यदि मनुष्य लगातार अच्छा और अच्छा होने का प्रयत्न करे तो अन्तिम अवस्था मे आकर उसमे गुण पूरे नौ हो जाते हैं और अवगुण, शून्य।"

और, कविवर रामनरेशजी त्रिपाठी ही क्यो ? हम सब भी जो उस समय उनकी यह बात सुन रहे थे गाधीजी के चिन्तन की गहराई और अनोखी सूझ से अभिभूत थे। उस समय हमे लगा था जैसे नौ का पहाड़ा खुद महात्मा गाधी हैं और हमारे सौभाग्य से उनकी जीवन-पुस्तक का सार हम त्रिपाठीजी के मुह से सुन रहे हैं। पर उसके बाद तो लगा कि इसका नायक आत्मशुद्धि के प्रयास मे लगा कोई भी व्यक्ति हो सकता है। मुझे कानोडियाजी की बातें सुन कर और उनके द्वारा किये गये कार्यो को देख कर इस दोहे और गाधीजी द्वारा दी गयी व्याख्या की कई बार याद आयी है। मुझ मे इतनी क्षमता नही है कि मैं इस बात का आकलन कर सकू कि कौन पूर्णता के किस स्तर तक पहुच गया है। बडी बात इसमे यह है कि व्यक्ति लगातार उसी ओर प्रयत्नशील है, उसी का चिन्तन कर रहा है कि नही। मुझे याद है जब वे राजस्थान मे 'पीपुल्स वेलफेयर सोसाइटी के अन्तर्गत अकालग्रस्त लोगो मे बहुत बडा राहत कार्य कर के आये, तब सुबह के वक्त घूमते हुए मैंने उनसे कहा कि 'अब की बार तो आप बहुत बडा काम कर आये' तो उन्होने कहा—"नथमलजी ! मैं तो 'धमकड़ो' लगार्‌यो हू।" मैं और वे दो ही व्यक्ति थे। मैं चुप रह गया। उन्होने पूछा : "धमकडो को अर्थ समझ्या कि नही ?" मेरे ना कहने पर उन्होने बताया कि "देश मे लुगाया तडक. तीन बजे उठकर ही पीसनो शुरू कर देती और सार. परिवार को पीसनो पीसती। उनान नीद आती रहती और नीद की उ घ मे धीमो-धीमो ही पीसनो पीसो जातो पर जब उनान लागतो कि अरे ! दिन तो उगन की तैयारी मे है तब परात मे जिका बाकी बचेडा गेहू या बाजरो रहतो उनान जल्दी-जल्दी पीस कर काम सलटाती। व. जल्दी पीसन न ही 'धमकडो' क्यो जाव। सो मैं तो वो ही धमकडो लगार्‌यो हू।'

मैं उनकी ओर देखता ही रह गया। उनकी वह वृद्धावस्था और उनका सार्वजनिक कार्यो मे दिन पर दिन ज्यादा से ज्यादा रत होना—उनके कथन के सत्य को प्रभासित कर रहा था। सचमुच उसके बाद वे बहुत दिन नही जिये पर जितने दिन जिये "धमकडो" ही लगाते रहे क्योकि वे जानते थे कि 'मालिक ने परात मे गेहू ही ऐसे डाले हैं जो कभी खत्म नही होते। मेरा काम तो उन्हे पीसने भर का है। हा, जितने उत्साह, लगन एवं परिश्रमपूर्वक इस कार्य को करू उतनी ही मेरी सफलता है। किसी की चाकरी पर जो हू।'

—: ० —

सुप्रसिद्ध उद्योगपति, समाज-सेवी

श्री नन्दलाल टाटिया

वात्सल्य-मूर्ति

कानोडिया परिवार के साथ हमारा सम्बन्ध बहुत ही पुराना रहा है। बाबू (स्व० भागीरथजी) के साथ पिताजी (स्व० श्री रामेश्वरजी टाटिया) की बैठक रोज हुआ करती। अक्सर जब पिताजी के मित्रो का फोन आता था घर पर मिलने आते तो उन्हे न पा कर वे सबसे पहले बाबू के यहा सम्पर्क करते। मुझे याद नही, कब और कैसे मै बाबू के सम्पर्क मे आया। जब से होश सम्भाला उन्हे देखता रहा हू और उनका वात्सल्यपूर्ण स्नेह पाता रहा। जुलाई, सन् १९७७ मे पिताजी का शरीर शान्त हुआ। उस समय कहे गये बाबू के प्यारभरे शब्द आज भी मेरे कानो मे गूजते है, "नन्दू, रामेश्वरजी चले गये, पर जब तक मैं हू, उनकी कमी तुम्हे नही अखरनी चाहिये।" पता नही इन शब्दो मे क्या जादू था, मेरे मन से मायूसी का पर्दा अपने आप हट गया। ये शब्द मौके पर कहे गये केवल सात्वना के नही थे, उनमे गहराई थी। बाबू ने इसे अन्त तक निभाया। सचमुच, मुझे अहसास तक न होने दिया कि पिता का साया मेरे सिर पर से उठ चुका है। तब से कभी ऐसा नही हुआ कि रोजाना उन्होने मुझे एक-आध घटा न दिया हो। सहानुभूति के औपचारिक शब्द तो बहुतो से मिलते है, किन्तु जो विश्वास-व्यवहार बाबू से मिला, मुझे खयाल नही आता कि उसकी बराबरी और किसी के विश्वास-व्यवहार से हो सकती है।

बाबू व्यापारी-व्यवसायी थे। लगन-मेहनत से लक्ष्मी के कृपा-पात्र बने। अक्सर देखा जाता है कि लोग ऊचे उठने पर नीचे नही देखना चाहते, आगे बढने पर पीछे मुड कर नही देखते। बाबू इसके अपवाद थे। नीचे गिरे और पीछे खडे न जाने कितनो को उन्होने उठाया, सहारा दिया और आगे बढाया।

एक बार किसी विशिष्ट व्यक्ति के यहा विवाह था। बाबू भी आमन्त्रित थे। विवाहवाले सज्जन ने कहा, "आइये भागीरथजी, आपको जगजीवनराम से मिला दू।" परिचय कराने बढे ही थे कि जगजीवनरामजी ने झुक कर बाबू को प्रणाम करते हुए कहा, "आप, इनसे मेरा क्या परिचय करा रहे है? इन्ही की छात्रवृत्ति से तो मैं पढा हू।"

बाबू मे विशेषता थी कि वे कभी आत्म-प्रशसा नही करते, सुनना भी नही पसन्द करते थे। समाज सुधार और शिक्षा के क्षेत्र मे उन्होने जो बडे-बडे काम किये, उनका जिक्र कभी नही किया और न अपने सामने किसी को दुहराने दिया। सार्वजनिक कामो मे उनकी रुचि इतनी जबरदस्त थी कि जिस काम को हाथ मे लेते, उसको पूरा अजाम देते। मैंने पिताजी से सुना था कि सन् १९४३/४४ के बगाल के भीषण अकाल मे रात-दिन एक कर उन्होने राहत का कितना बडा काम किया था। केवल कलकत्ता नही, बगाल के सुदूर गावो तक अन्न पहुचा कर लोगो की जान बचायी। व्यवस्था ऐसी पक्की थी कि इतने बडे पैमाने के काम मे हिसाब की गडबडी नही रहती, समय की पाबन्दी के साथ मुस्तैदी से काम होते रहे। उनमे सगठन की अद्भुत

क्षमता थी। इसे मैंने स्वय राजस्थान के अकाल के समय देखा। एक ओर जहां लोगो के घर जा कर चन्दा मडाते, दूसरी ओर राजस्थान में जाकर कुए खुदवाने, जोहड़ मरम्मत करवाने के काम देखते। वाडमेर और जैसलमेर जैसी वीरान सूखी जगहो मे जा कर पानी की व्यवस्था कराना आसान काम नही था। बडे गहरे कुए खुदवाए जाते। वावू स्वय जाकर सम्भाल रखते। पोकरण के जिस कुए मे अणु-विस्फोट का परीक्षण हुआ था, वावू ने वताया कि वह गहरा कुआ सूखे के जमाने मे वनवाया गया था और पिताजी उसमे पानी के स्रोत की जाच के लिये उतरे थे। किसी भी व्यापारी के लिये वावू की तरह सार्वजनिक काम मे समय देना असाधारण बात है। धन की सहायता तो बहुत लोग कर देते हैं, किन्तु समय देना कठिन हो जाता है। वावू तन, मन, धन से लग जाते थे। एक दिन सुबह मैंने जिक्र किया कि यादवपुर मे लडकियो का एक हाई स्कूल है, वहा कच्चे मकान मे लडकिया पढती हैं और यदि आपको जचे, तो पक्के मकान की सोची जाय। उसी वक्त वावू ने गाडी मगायी और स्कूल देखने चले गये। इसी तरह ही वावू से रामकृष्ण सेवा प्रतिष्ठान की बात चली। वे तुरन्त ही स्वामीजी से मिलने और उनकी भावी-योजना समझने के लिये चल पडे। वावू से बात होने के वाद स्वामीजी को लगा कि योजना पार पड जायगी।

आज के सम्पन्न समाज मे छोटे-वडे की भावना देखी जाती है। वावू मे ऐसी बात नही थी। उनमे समता का सहज भाव था। एक दिन वावू के पास मैं वैठा था, उनका स्वास्थ्य शेष दिनो मे तेजी से गिर रहा था। समाज के और भी जाने-माने विशिष्ट व्यक्ति वैठे थे। इसी वीच श्री कल्याण आरोग्य सदन के शास्त्रीजी पहुंच गये। वे कुछ सकोच-सा महसूस कर रहे थे कि वावू ने पास बुला कर वैठा लिया और उन्हे कहा, "शास्त्रीजी, चिन्ता न करें, मैं जल्द ही ठीक हो जाऊंगा।"

कभी-कभी मुझे सीकर अस्पताल के काम से लोगो के पास भेजते। दो-तीन दिन ऐसा हुआ कि मैं अपने ऑफिस समय पर नही पहुचा। संयोग से उन्ही दिनो वावू का फोन मेरे यहा आया। चौथे दिन बहुत सख्ती से उन्होने मुझे उलाहना दिया, "आफिस समय पर क्यो नही आते? क्या तुम्हारी नौकरी नही कटती? ऑफिस के समय वाहर की भाग-दौड नही करनी चाहिये।" मैं नही कह सकता कि स्नेह, आदेश, अनुशासन से भरे ये शब्द मेरे मन को किस तरह छूने लगे।

वावू का मन वहुत ही कोमल था। दूसरो के दुख-दर्द से उनका मन बहुत जल्द पसीज उठता था। कोमल मन के लोगो पर बात-व्यवहार का असर बहुत जल्द होता है। वावू के मन की विशेषता थी कि उनमे अहम् नही था। इसलिये रोष, क्षोभ या द्वेष जरा भी नही था। मुझे एक बार एक विशिष्ट व्यक्ति के यहा ले गये। उनके दरवान ने कहा कि मालिक घर पर ही हैं। बैठक मे हम प्रतीक्षा के लिये बैठ गये। थोडी देर मे उनके पुत्र ने आकर कहा, "पिताजी घर पर नही है, वाहर गये है।" वावू ने कुछ कहा नही। मैंने विस्मय से वावू की ओर देखा। मुझे बुरा लग रहा था। किन्तु, वाहर निकलते हुए वावू ने मुस्कुरा कर कहा, "कोई खास बात नही, मेरे साथ तो ऐसा बहुत वार हुआ। जो देवे उसका भला, जो न देवे उसका भी भला।"

—•—

जीवन साहित्य के सम्पादक,
सस्ता साहित्य मण्डल मे भागीरथजी के सहकर्मी
श्री यशपाल जैन

मानवीय मूल्यों के उपासक

जानता हू इस धरा पर जो जन्म लेता है, उसे एक-न-एक दिन मृत्यु की गोद मे जाना ही होता है। इसमे किसी के लिए भी अपवाद नही होता। फिर भी कुछ व्यक्तियो के सम्बन्ध मे इच्छा रहती है कि वे चिरकाल तक हमारे बीच बने रहे। इसलिए नही कि उनकी भौतिक काया के प्रति हमारा मोह होता है, बल्कि इसलिए कि उन्हे लोकमगल अभीष्ट होता है और उनके हाथो सदा जनहित के कार्य सम्पादित होते रहते है।

स्व० भागीरथजी कानोडिया उन्ही विरल व्यक्तियो मे से थे। वह बडे उद्योगपति थे, लेकिन उससे भी कही बडे लोक-सेवी थे। पन्द्रह वर्ष की अल्पायु मे वह अपनी जन्मभूमि मुकुन्दगढ (राजस्थान) को छोड कर उद्योगनगरी कलकत्ता चले गये थे, जहा उन्होने विपुल धन अर्जित किया और एक सामान्य कार्यकर्ता की पक्ति से उठ कर देश के विख्यात धनपतियो के वर्ग मे अपना स्थान बनाया। उन्होने कमाई की और खूब की, लेकिन कमाई तो बहुत लोग करते हैं, किन्तु भागीरथजी उन व्यक्तियो मे से नही थे, जो केवल कमाई के लिए जीते है। उनमे अदम्य उत्साह था, अनोखी सूझ-बूझ थी और परिश्रमी भी वह खूब थे। अपने इन गुणो का अधिष्ठान उन्होने नीति को बनाया। यही कारण है कि उनके पास जो धन आया, वह अनीति की विकृति को नही लाया। अपने ४२ वर्ष के सम्पर्क के आधार पर मैं कह सकता हू कि उन्होने अपने सामने एक ऊंचा आदर्श रखा और धन को उसकी पूर्ति का साधन माना।

सुप्रसिद्ध अध्यात्म योगी बाबा मुक्तानन्द परमहस ने एक बार कहा था कि प्रभु ने हमे दो हाथ इसलिए दिये है कि हम एक हाथ से अर्जन करे और दूसरे हाथ से विसर्जन करे। एक पक्षी के दृष्टान्त से उन्होने अपनी बात को स्पष्ट करते हुए बताया कि पक्षी के दो पख होते है तभी वह उड सकता है। यदि एक पख को काट दें तो वह उड नही सकेगा, फडफडा कर रह जायगा। यही बात व्यक्ति के साथ है। यदि वह केवल अर्जन करेगा और विसर्जन नही करेगा अथवा केवल विसर्जन करेगा और अर्जन नही करेगा तो उसकी स्थिति पख कटे पक्षी की भाति हो जायगी। दोनो पखो के सतुलन से जिस प्रकार पक्षी, हलका हो कर, ऊचे-से-ऊचे उड जाता है, उसी प्रकार व्यक्ति भी अर्जन-विसर्जन के सतुलन से उत्तरोत्तर ऊचा उठता जाता है।

एक दिन भागीरथजी को जब मैंने यह प्रसग सुनाया तो उनकी आखें तरल हो उठी थी। सच यह है कि जब से उन्होने होश सभाला, उनकी दृष्टि निरन्तर जीवन के ऊचे ध्येय पर केन्द्रित रही। धन आया उसे उन्होने अस्वीकार नही किया, लेकिन

उसे मुट्ठी में वन्द भी नहीं किया। मुट्ठी को सदा खुला रखा। फिर धन के साथ जो आता है—अहकार, आडम्बर, विलासिता, आदि-आदि—उसे उन्होंने प्रयत्नपूर्वक दूर रखा। सादगी का जीवन जिया, सात्विक वृत्ति रखी, दूसरे के स्वाभिमान को भरपूर आदर दिया, आत्म-प्रचार से कोसो दूर रहे और सेवा के कार्यों मे सदा अग्रणी रहे। हमारे धर्म-ग्रन्थो मे राजा जनक को 'विदेह' कहा गया है। जिस प्रकार देह के होते हुए भी किसी व्यक्ति को देह का गुमान न हो, उसी प्रकार राजा जनक के चारो ओर वैभव होते हुए भी उसमे उनकी आसक्ति नही थी। भागीरथजी का जीवन कुछ वैसा ही था। जाने कितने घण्टे प्रतिदिन हम लोगो के साथ बीतते थे। देखता था, सवेरे से लेकर रात तक एक क्षण को भी वह मोह या मूर्च्छा-ग्रस्त नही होते थे। न पैसे का मोह, न यश का और न परिवार का। उनमे वात्सल्य था। जब कभी कोई परिवार का व्यक्ति उनके सामने आता था—छोटा या वडा—वे वडे मुक्त स्वर से वात करते थे। वच्चो से विनोद करते थे, लेकिन उनके मोह का भार अपने दिल पर नही रखते थे। सवको प्यार देते थे और सबका प्यार लेते थे। बस।

मैंने हजारो रुपये उनसे जरूरतमन्दो को दिलवाये, किसी छात्र की फीस जमा नही हुई, उसका नाम कटने वाला है; किसी के घर मे विवाह है, पर पास मे पैसा नही है, कोई बीमार है, इलाज की व्यवस्था नही है, भागीरथजी को लिखा कि उन्होने तत्काल सहायता की। लेकिन दाए हाथ से ऐसे दिया कि वाए हाथ को भी पता नही चल पाया।

उनकी एक वडी विशेषता को देखकर मेरा मन विभोर हो उठता था। उनके पास अपनी कठिनाइयो को ले कर सभी वर्गों के लोग आते थे। भागीरथजी उनकी बात को वडे ध्यान से सुनते थे। कभी-कभी तो पूरा दिन ऐसे व्यक्तियो के बीच गुजर जाता था। पर क्या मजाल कि भागीरथजी एक क्षण को भी ऊब जाय, खिन्न हो उठें, अथवा कोई तेज शब्द मुह से निकल जाय! मन और वाणी का ऐसा असामान्य सयम मेरे देखने मे बहुत कम आया है वस्तुत वह सकट या अभावग्रस्त व्यक्ति की स्थिति मे अपने को रखकर स्वय उसकी पीडा अनुभव करते थे और इस प्रकार उस व्तक्ति के साथ उनका गहरा तादात्म्य स्थापित हो जाता था। ऐसा व्यक्ति दूसरे की व्यथा या कठिनाई के प्रति उदासीन कैसे हो सकता था!

उनके दरवाजे पर जो भी हाथ फैलाकर आया, उन्होने उसे कभी निराश नही जाने दिया। वह मुक्तहस्त से सहायता देते थे। एक बार आपसी चर्चा मे श्री सीतारामजी सेकसरिया ने कहा था कि दानशीलता मे भागीरथजी का कोई भी मुकावला नही कर सकता। अधिकाश धनिक अपने वढते धन को इस प्रकार देते हैं, जैसे नाखून और वालो के वढने पर उन्हे काटना आवश्यक हो जाता है, पर भागीरथजी ने ऐसा कभी नही किया। धन के साथ उन्होने अपनी सवेदनशीलता दी। वाइविल मे कहा गया है कि यदि दान के साथ दाता का हृदय न हो तो वह दान व्यर्थ है। उससे देने वाले को गर्व होता है और लेने वाले के अदर हीनता की भावना पैदा होती है। भागीरथजी ने कभी किसी को हीन या दीन नही वनने दिया।

मेरा उनके साथ लगभग ४२ वर्ष पुराना परिचय था। कोई तीन दशक मे तो उन्हें बहुत निकट से देखने और समझने का सुयोग मिला। वह राग-द्वेष से ऊपर उठ गये थे। उनका कोई शत्रु नहीं था। वह सच्चे अर्थो में अजातशत्रु थे।

आज समाज मे धन और पद की प्रतिष्ठा है। भागीरथजी ने धन कमाया, लेकिन इस दृष्टि से नही कि धनी बनकर प्रतिष्ठा प्राप्त करें। वह प्रत्येक क्षेत्र में लोकप्रिय थे। बड़े-से-बडे राजनेता उनका सम्मान करते थे। उनके तनिक मे इशारे पर वह पश्चिम बगाल मे या राजस्थान में मन्त्री बन सकते थे, अथवा संसद सदस्य हो सकते थे; पर इसकी उन्होंने स्वप्न मे भी आकाक्षा नही की। इनना ही नही, अवसर आये तो उन्होने दूसरो को आगे कर दिया, स्वय पीछे हट गये।

उन्होंने अनेक सस्थाए स्थापित कीं। बहुतों को सहायता देकर जमाया-बढाया; लेकिन किसी भी संस्था के साथ अपने नाम को नहीं जुड़ने दिया। राजस्थान मे सरकार के अनुरोध पर जल की व्यवस्था का दायित्व अपने ऊपर लिया और उस बड़े कार्य को बडे ही सुचारु रूप से किया। वहां भी अपने नाम को कभी आगे नहीं आने दिया। पश्चिम बंगाल और राजस्थान की अधिकांश रचनात्मक संस्थाओ की वह आधार-शिला थे। उन्हें बराबर सींचते रहे। लेकिन किसी भी संस्था का नाम अपने नाम पर नही होने दिया।

विस्मय होता है कि वह प्रचार और यश के प्रति इतने निस्पृह कैसे रहे? सम्भवत. इसका मूल कारण यह था कि आरम्भ से ही उनका झुकाव महात्मा गांधी और उनके आदर्शो की ओर रहा। उन्होंने सेवा को सर्वोपरि माना और स्वार्थ को कभी उभरने नही दिया। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मानवीय मूल्यों का समावेश कराने के लिए वह अहर्निश प्रयास करते रहे।

कुछ महीने पहले जब मैं कलकत्ते की 'गाधी दर्शन समिति' की भाषण-माला मे व्याख्यान देने के लिए वहां गया तो अधिकांश समय उन्हीं के साथ बीता। चौरासी वर्ष की आयु मे भी वे इतना काम करते थे कि कोई युवक भी क्या करेगा। सवेरे ५॥ बजे उठकर विक्टोरिया मैदान मे घूमने जाते थे। ७॥ बजे लौटते कि मुलाकातियों का आना-जाना आरम्भ हो जाता। भोजन करके ११ बजे दफ्तर जाते, शाम को ६ बजे घर लौट कर भोजन करके लगभग १० बजे तक बातचीत करते या कुछ पढते रहते। एक क्षण को भी विश्राम नही लेते थे। मैंने उनसे कहा, "दिन मे आप थोडी देर के लिए आराम कर लिया करें, लेट जाया करें।" बोले, "मुझे इसकी आदत नही है।" बराबर कुर्सी पर बैठे रहते थे।

स्कूली शिक्षा उनकी अधिक नही हुई थी, लेकिन उन्होंने खूब पढ़ा था। उन्हें प्रत्येक विषय की गहरी जानकारी थी। उनकी रुचि अत्यन्त व्यापक थी। हिन्दी, संस्कृत, बगला, राजस्थानी, अंग्रेजी इन सब भाषाओ में उनकी बहुत अच्छी गति थी। राजस्थान के लोक साहित्य के प्रति उनका विशेष अनुराग था। दिवंगत डा० कन्हैयालाल सहल तथा मेरे विशेष आग्रह पर उन्होंने राजस्थान की कहावतो पर कहानिया, लोक कथाएं तथा बोध कथाएं लिखीं। उनका सग्रह 'बहता पानी निर्मला' के नाम से प्रकाशित होने को हुआ तो उन्होने मुझसे आग्रह किया कि मैं उसकी भूमिका लिखूं। मैंने विस्तृत भूमिका

लिखी। उसे पढकर वहुत प्रसन्न हुए। बाद मे उन्होने बहुत-सी कहानिया लिखी, जिन्हे पुस्तक के दूसरे सस्करण मे सम्मिलित कर दिया गया। उस पुस्तक को पढकर पता चलता है कि भाषा पर उनका कितना अधिकार था और वह जो कुछ लिखते थे, कितना प्रामाणिक होता था। राजस्थानी कहावतो का एक कोश भी उन्होने बडी लगन से तैयार किया।

उन्हे अनेक महापुरुषो के निकट सम्पर्क मे आने का अवसर मिला था। उनके वहुत-से सस्मरण वह समय-समय पर सुनाते थे। मैंने उनसे अनुरोध किया कि उन सस्मरणो को लिख डालें। गाधीजी के सक्षिप्त सस्मरण उन्होने लिखे भी, लेकिन वात आगे नही बढी। वहुत-सी मूल्यवान स्मृतिया उनके साथ ही चली गईं।

राजस्थान के प्रति प्रेम तथा गाधी-विचार के प्रति आकर्षण होने के कारण वह 'सस्ता साहित्य मडल' की ओर आकर्षित हुए और उसकी सचालक समिति के सदस्य बने, बाद मे जब श्री घनश्यामदासजी विडला ने अध्यक्ष-पद छोडा तो उन्होने उस पद पर भागीरथजी को बिठा दिया। 'मडल' को उन्होने आगे बढाने मे सब प्रकार से सक्रिय सहयोग प्रदान किया। जब कोई नई योजना बनाई जाती थी अथवा आर्थिक कठिनाई आती थी, हम लोग दौड कर कलकत्ता जाते थे ओर भागीरथजी थे कि वडी आत्मीयता से हमारा स्वागत करते थे। 'सहायक सदस्य योजना' के सदस्य वनाने के लिए हम लोग कलकत्ता गये और बाद मे जब मैं जम कर वहा बैठा तो एक दिन उन्होने मुस्करा कर कहा "यशपालजी, कलकत्ता तो कामधेनु है। जितना चाहो, दुह लो।" उन्होने सम्पर्क करने के लिए विस्तृत सूची तैयार कराई और वहुत-से व्यक्तियो को पत्र लिखे।

जब कुछ व्यक्तियो ने उनके अनुरोध पर ध्यान नही दिया तो मैंने एक दिन उनसे कहा, "भाईजी, कोई आपकी वात नही मानता तो आपको वुरा नही लगता ?"

बोले, "सार्वजनिक कामो के लिए मैं हमेशा झोली फैलाये रहता हू। यदि कोई उसमे कुछ डाल देता है तो ठीक, नही डालता तो ठीक। वुरा क्या मानना।"

मुझे 'मडल' की पुस्तको के कुछ सेट भारत मे और अन्य देशो मे भिजवाने थे। सोचा, आठ सौ रुपये के सेट के लिए जो चार सौ रुपये देंगे, वह सेट उन महानुभाव की ओर से भेज दिया जायगा। भागीरथजी ने इस उपक्रम मे पूरे उत्साह से मदद की। अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक वह 'मडल' के अध्यक्ष रहे और उसकी गतिविधियो मे पूरी दिलचस्पी लेते रहे, उसका मार्गदर्शन करते रहे।

मानवीयता उनमे कूट कूट कर भरी थी। अपनी चिट्ठियो मे वह पूरे परिवार की कुशलता पूछते रहते थे। जब मिलते थे तो एक-एक का नाम लेकर बात करते थे किसी को वीमारी होती थी, उन्हे सूचना मिलती तो अपनी ओर से पत्र लिखकर पूछताछ करते थे।

राजनीति मे उनकी रुचि थी, पर रस उनका रचनात्मक कार्यो मे था। समाज सस्कृति, साहित्य, कला, शिक्षा आदि विधायक प्रवृत्तिया उनके अधिक निकट थी। मानव को शुद्ध और प्रबुद्ध करने वाला प्रत्येक उपक्रम उन्हे प्रिय था।

उनके निधन के पश्चात कलकत्ते मे श्री सीतारामजी सेकसरिया से मिलने गया तो उन्होने अपनी आतरिक व्यथा व्यक्त करते हुए एक वडी मार्मिक बात कही,

"भागीरथजी के पास जाकर मैं अपनी मन की कह आता था और वह सहमत हो या नही, बडे ध्यान और धीरज से मेरी बात सुन लेते थे और मदद करते थे। उनके जाने के बाद अब ऐसा कोई व्यक्ति नही रहा।"

ईश्वर की कृपा से उन्होने भरा-पूरा परिवार छोड़ा है। उनकी पत्नी हैं, लडके है, लडकिया हैं, जिनके अपने बालबच्चे है। लडको के अपने-अपने उद्योग-धधे है। भागीरथजी का व्यक्तित्व सरल होते हुए भी इतना प्रखर था कि उनके कुटम्बी जन उनके सात्विक सस्कारो से बाहर नही जा सके। सभी सदस्य विनयशील और सादगी-प्रिय है। संभवत. वे अपनी पैतृक परम्परा को 'खडित' नही होने देंगे।

पर भागीरथजी की जो जगह थी, वह ऐसी थी कि उसे शायद ही कोई भर सके। उन्होने लोक-हृदय मे अपना स्थान बनाया था और यही कारण है कि उनके निधन से असख्य व्यक्ति अनुभव करते हैं कि उनका अपना प्रिय जन चला गया। ऐसे व्यक्तियो की भी सख्या कम नही है, जो कभी उनसे मिले नही थे, लेकिन पत्र लिख देने पर ही उनसे सहायता प्राप्त हो गई थी। भागीरथजी ने परिचित-अपरचित के बीच कभी भेद नही किया। कही से कराह आई कि वह द्रवित हो उठे।

उन्होने अपने नाम को सार्थक किया। धर्म-ग्रन्थो मे हम पढते हैं कि भागीरथ गगा को लाये थे—उस गगा को, जो भारत के कोटि-कोटि नर-नारियो के जीवन को पवित्र और समृद्ध करने वाली है। भागीरथजी ने सेवा के क्षेत्र मे एक ऐसी पावनधारा प्रवाहित की, जिसमे अवगाहन कर जाने कितने व्यक्तियो ने शीतलता अनुभव की और अपने कष्टो का निवारण किया।

मैं उनकी स्मृति को प्रणाम करते हुए प्रभु से कामना करता हू कि उनकी आगे की यात्रा सुखद हो और वह जहा भी रहे, सुखी रहे।

—. ० —

लोक संस्कृति शोध संस्थान नगर श्री, चूरु के मन्त्री
श्री सुबोधकुमार अग्रवाल

मोट्यार के खोलिये में—माँ

बात सन् ७६ की है, मैं कलकत्तै गयोडो हो जणा पुज भागीरथजी स्यू मिलण नै गयो। मनै बेरो कोनी हो'क डाक्टर मिलणो मना कर राख्यो है। कोठी पूच्यो तो एक मोटी सी नर्स बैठी ही, बोली—"बाबू को मिलना मना है"। आप आलो पैली बुरी चीतै। मैं देख्यो'क काम तो क्यूई कोनी, पण कठै दरसणा सें वंचित न रह ज्यावां, सो मैं एक परची पर मेरो नाव माड कर बाबू नै देणै बेई नर्स न दी। वा बडबडाती सी परचो लेकर गई।

वा परची देकर पाछी न पूगी, इतणै में देख्यो'क बहोत ही भीणी सी आधी बाया की कमेच अर पजामो पहर्‌या, बसमैं माय कर लाबी निजर नाखता, ब्यायोडी गाय बाछड़िये कानी आवै ज्यू, डोकरा चिंटियो टेकता टिक-टिक करता आ रैया है।

मैं पांवाधोक करी। वै पैली मनै बैठायो, फेर आप बैठ्या। मेरै ताई रस को गिलास मगायो। मनै घणो सकोच होयो, मैं बोल्यो, "बाबू! मैं कोई मेहमान हू के"? बोल्या, "मेहमान तो कोनी, पण टाबर तो है नी। थे दोनूं भाई बहोत आछो काम कर रैया हो।" मैं कैयो, "थारी आसीस सिर पर है क्यूई होज्या सो ठीक है।" दो-एक मिन्ट पछै मैं बोल्यो, "आप आराम करो, मैं ओरू आस्यू।" बोल्या, "कठै ठैरया हो? मेरै स्यू बिना मिले मत जायो।" "आछ्योजी" कह कर अर धोक खाकर मैं बारै नीकल्यो। पुज भागीरथजी स्यू रूबरू मिलणै को मेरो यो पैलो मौको हो।

कलकत्तै आलै ई मिलाप स्यू मेरै मन की सरधा कालजै स्यू अया छलक-छलक कर पडै लागी'क मेरै स्यू दो आखर लिखे बिना कोनी रैयो गयो। बो चितराम "मरु श्री" मे छप्यो। म्हारी घणी जिज्ञासा रैई क पुज भागीरथजी राजस्थान मे किसी-किसी साल कुण-कुण सा काम करया, ई बात की उना स्यू निवै करा, पण फेरूं मन मे आई'क मा कद गिण कर राखै है'क मैं आज टाबर नै कै बार बोबो दियो। भागीरथजी तो मोट्यार कै खोलिये मे ममतामयी माँ ई है।

X X X

इब कालै मई, ८० मे कलकत्तै गयो जणा भाई मोहनजी वर्मा मनै घरे लेज्याता थकां रस्तै मे हीरालालजी सरावगी स्यू मुलाकात कराई। "मरु श्री" कै सरक्षका मे भागीरथजी कानोड़िया को नाव देख, हीरालालजी बानै निरलेप बतावता एक आप बीती सुणाई—

"सन् १९३९ मे अकाल पीडित राजस्थान की सेवा-सारु गयोडा भागीरथजी सादुलपुर भी आया था। निसकाम भाव स्यू बाकी करयोड़ी लूठी सेवा नै आदरणै खातर सुरजमलजी मोहता बाको सार्वजनिक सतकार करणै की मनस्या स्यू सादुलपुर

कै वजार आलै चोक में गाव नै मेलो करयो अर एक अभिनन्दन-पत्र-छपवायो। अभिनन्दन-पत्र नै कोई ऊंची अवाज मे सुद्ध पढदे, इसै मिनख की टोह् ही, क्यूकै वी वगत ताई अै भू कला (माइक) चाल्या को हानी। मैं पिलाणी मे दसवी मे पढतो अर वी वगत सादुलपुर आयोडो हो। अभिनन्दन पत्र पढणै खातर मनै कैयो तो मेरै मन मे यो गुमान हिलोरा लेवण लाग्यो'क इत्ती वडी सभा मे दियो जाणै आलै अभिनन्दन-पत्र नै मैं पढस्यु। चाव-चाव को मारयो मैं वीनै दो-तीन वार चोखी तरिया पढ कर धोख लियो। मोहृताजी मनै बुलाकर मेरै पा वचवायो अर सुण कर भोत राजी होया, मेरी पीठ थापडी।

"सभा मे सादुलपुर-राजगढ अर आसै-पासै कै गावा का मिनख मोकला हा, पण भागीरथजी अपणै आपनै ई लायक गिण्यो नई, न वै मजूर कर्यो, न अभिनन्दन-पत्र लियो। वास्तव मे जसकी लालसा सैं दूर रह् कर निसकाम भाव सैं सेवा करणिया हा भागीरथजी।"

X X X

सुणता पाण अकाल, भाग्यो आतो देस नै।
अब कुण वाधै पाल, तेरै विन भागीरथा॥

हृजार कोस परै राजस्थान मे अकाल पडै अर कलकत्तै मे घरा वैठे डोकरै की छाती मे सूक्योडी जोहडती की काप मे पडै ज्यू तराड पडै। चामडो चिप्योडी गाया का ककाल अर सूकी डैरया की पाला ऊपर टोपै-टोपै पाणी नै तरसतै टोगडिया को सीन आख्या मे तिरै।

गावा मे धन, धीणै का धिराणा सरतरिया लोग भी डागरा का जेवडा काट, फलसा कै भीटखा छाप, लुगाई-टावरा नै सागै लेकर रोटी-रोटी करता गैलो नापै लाग्या। डोकरिया हृलवा-हलवा हालती, लारलो अकाल किसीक दौरो काढयो, याद करती, आपस री मे वतलावती वगै—

"भाजी, थे पग मतना छोडियो, डागरा ताणी फूस-फरडो अर मिनखा ताणी वाजरी की जापड-थापड होण लाग रैई है, या कैवणियो भागीरथ कानोडियो भी अैस वापरयो कोनी।"

"के होवै काकीजी, अैस भागीरथजी ही काल करग्या नी।"

"हा, विरा—जणाई तो गाव छूटग्यो। डीक्या, डीक्या पण को वापरयोनी जणा मैं टावरिया नै कैयो'क मोटयारियो मुकनगढ-सीकर कानो निघै तो करो, रामजी तो रूसग्यो, पण वा रामजी की गाय भी किया कोनी आई?"

"वाई दादीजी! वो तो मिनख के हो, साचलो भागीरथ ही हो, आणो तो चाये हो।"

"के आवै वेटा, वापडै को सुरगा मे वासो होयो, विसा मिनख अब कठै पडया है। मिनखा की तो वात ही के है, जिनावरा को दुख देख कर ही वीको कालजो भरया तो। पराई पीड नै देख कर वी को मन चूटिये की ज्यूं पिघल ज्यातो। वो तो मोट्यार के खोलिये मे माँ ई थो।"

—:o:—

'मरु श्री' के सम्पादक,
राजस्थानी कहावत कोश के सह-सम्पादक
श्री गोविन्द अग्रवाल

एक पुण्य स्मरण

कोई आदमी चाहे कितना ही बडा हो और चाहे देश भर में उसने कितना ही यश अर्जित कर लिया हो, फिर भी उसके अपने गाव मे तो उसके आलोचक अवश्यमेव मिल जायेंगे। लेकिन स्व० श्री भागीरथजी कानोडिया इसके अपवाद कहे जा सकते हैं। मैं उनसे मिलने हेतु कई वार उनके गाव मुकुन्दगढ गया, अनेक अपरिचित लोगो से वात-चीत भी हुई, लेकिन कभी किसी के मुंह से एक शब्द भी उनकी आलोचना के रूप मे नही सुना, वल्कि सब के मन मे श्री कानोडियाजी के प्रति हार्दिक सम्मान एव श्रद्धा की भावना ही देखने को मिली। मैं इस वात को उनके जीवन की एक वडी उपलब्धि मानता हूं।

मैं जब भी उनसे मिलने हेतु मुकुन्दगढ जाता तो प्राय: उन्हे अपनी हवेली की वैठक मे अनेक लोगो के साथ वैठे पाता। श्री बदरीनारायणजी सोढानी भी बहुधा सीकर से वहा आया करते थे। अकाल-पीडित लोगो की सहायता के लिए क्या किया जाना अपेक्षित है, दुर्भिक्ष के कारण मरती हुई गायो को वचाने हेतु क्या कुछ होना चाहिए, टी० बी० अस्पताल (कल्याण आरोग्य सदन, सावली) मे क्षय रोगियो के लिए और अधिक शय्याओ का प्रवन्ध अथवा रोगियो की सुख-सुविधा वढाने हेतु क्या उपाय किये जाए जैसी चर्चाओ मे ही वे निरत रहते थे।

अनेक जरूरतमन्द लोग अपनी निजी समस्याओ को लेकर भी उनके पास आते रहते थे। श्री कानोडियाजी उनकी वातो को सहानुभूतिपूर्वक सुनते और उनकी समस्याओ का निराकरण करने का प्रयत्न करते थे। ऐसा करने मे उन्हें सुख व सन्तोष की अनुभूति होती थी। किसी का उपकार करके वे उस पर कोई एहसान नही जताते वल्कि सहृदयता-वश इसे अपना पुनीत कर्तव्य ही मानते थे। 'नेकी कर और दरिया मे डाल' के सिद्धान्त को उन्होने अपना लिया था।

मैंने कभी उन्हे गुस्सा करते या तेज आवाज मे वोलते नही सुना। वे औरो को तो यथोचित सम्मान देते थे, किन्तु स्वय के लिए मान-वडाई की अपेक्षा नही रखते थे। 'सवहि मानप्रद आपु अमानी' के वे जीवन्त प्रतीक वन गये थे। श्री कानोडियाजी के प्रशसक और श्रद्धालु स्नेहीजन उनकी विद्यमानता मे ही उनका एक वृहत् अभिनन्दन ग्रन्थ निकालने के प्रवल आकाक्षी थे। लेकिन उन्होने कभी इस वात को स्वीकार नही किया। उनका यह इन्कार महज औपचारिक या दिखावटी नही, वल्कि हार्दिक था। आज के युग मे जव अपना-अपना अभिनन्दन ग्रन्थ छपवाने की होड सी लगी हुई है तो अपने अभिनन्दन ग्रन्थ के प्रति श्री कानोडियाजी की यह विरक्ति आदर्श एव अनुकरणीय ही कही जा सकती है।

अभिनन्दन ग्रन्थ तो दूर, वे अपना सक्षिप्त परिचय या फोटो छपवाना भी पसन्द नही करते थे। मेरे सह-सम्पादन मे जब उनका 'राजस्थानी कहावत कोश" छप कर तैयार हो गया तो मैंने कोश के जैकट पर उनका फोटो व संक्षिप्त परिचय देना चाहा। इसके लिए मैंने उन्हे पत्र लिख कर फोटो व परिचय यथाशीघ्र भिजवा देने हेतु निवेदन किया। इसके उत्तर मे कलकत्ता से दिनांक १५ फरवरी, १९७९ को उनके हाथ का लिखा जो पत्र मिला, वह उनकी हार्दिक भावना को प्रतिबिम्बित करता है। पत्र का अविकल पाठ इस प्रकार है—

प्रिय श्री गोविन्दजी,

आपने अपने पहिले एक पत्र मे मेरा पासपोर्ट फोटो मागा था। लेकिन फोटो न तो मैं अपना रखता ही हूं और न कही छापा जाना पसन्द ही करता हू। परिचय मेरा क्या पड़ा है—एक व्यापारी हू, कमाने-खाने का काम करता हूं। मेरा भी कोई परिचय होता है क्या ?

आपका
भागीरथ कानोडिया

श्री कानोडियाजी का यह पत्र मुझे कुछ विलम्ब से प्राप्त हुआ था, अत. मैंने इस बीच फोटो व परिचय शीघ्र भिजवाने के लिए उन्हें दूसरा पत्र लिखा एवं तार भी दिया। लेकिन वे इसके लिए कतई राजी नहीं हुए और उन्होंने अपने पत्र दिनांक १९ फरवरी, ७९ के द्वारा फोटो व परिचय छापने के लिए पुनः मना कर दिया।

श्री कानोडियाजी का दृष्टिकोण यथार्थवादी एव व्यावहारिक था। मैं एक बार उनसे मिलने हेतु मुकुन्दगढ गया तो खाने की मेज पर ही मेरे मझले लडके राजू की सगाई की बात चल पडी। चि० राजू एक-दो बार श्री कानोड़ियाजी के दर्शन कर चुका था और वे उसे जानते थे, अतएव बोले कि राजू की सगाई के लिए एक लड़की मैं आपको बतलाऊंगा। उस समय तो मैंने 'बहुत अच्छा' कह दिया, लेकिन फिर सोचा कि बहू कही इतने 'ऊंचे-स्तर' की न आ जाए कि दिन भर पलग पर बैठी फरमाइशें ही किया करे। इसलिए चूरू आकर मैंने श्री कानोडियाजी को एक पत्र लिखा कि मैं एक सामान्य गृहस्थ हूं, इसलिए मुझे तो घर का काम-धधा करने वाली बहू (पुत्रवधू) ही चाहिए, फरमाइशें करने वाली नहीं, कहीं ऐसा न हो कि—

भेड़'ज ल्याया ऊन नै, बैठी चरै कपास।
बहू'ज ल्याया काम नै, बैठी करै फरमास॥

इसके उत्तर मे मुकुन्दगढ से ही श्री कानोडियाजी ने दिनांक ३०-११-७७ के पत्र मे मुझे लिखा, "बहू आपको सुझाऊंगा तो 'फरमास' करने वाली नहीं, काम करने वाली ही होगी।" उनका उत्तर पाकर मुझे बड़ा संकोच हुआ क्योकि उनकी विवेकशीलता एवं जागरूकता को जानते हुए भी मैंने उन्हें ऐसा लिखा, जो नहीं लिखना चाहिए था।

एक सफल उद्योगपति एवं गांधीवादी कर्मठ समाजसेवी के रूप मे तो वे विश्रुत थे ही, राजस्थानी लोक साहित्य से भी उनका गहरा लगाव था। उनकी लेखन शैली प्रसादगुण युक्त थी। सरल, सुबोध एव लालित्यपूर्ण भाषा में प्रकाशित उनके कहानी सग्रह "वहता पानी निर्मला" के तीन सस्करण वडी जल्दी-जल्दी निकल गये जो उनकी लेखन-शैली की लोकप्रियता का प्रमाण है।

श्री कानोडियाजी एक वहुत अच्छे पत्र-लेखक भी थे। सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, सामयिक एव साहित्यिक विषयो की आंशिक चर्चा भी उनके पत्रों मे रहती ही थी, जिससे उनके चिन्तन की एक यथार्थ झलक देखने को मिल जाती है। सन् १९७१ से १९७९ तक की अवधि में उनके द्वारा मुझे लिखे गये लगभग दो सौ पत्र मेरे सग्रह मे हैं जिनमे से आधे से अधिक स्वय उनके हाथ से लिखे हुए हैं। इन पत्रो मे से कुछ को इसी स्मृति ग्रन्थ मे ही अलग से प्रकाशित किया जा रहा है, अतः उदाहरणस्वरूप केवल दो पत्रो के कुछ अश यहा दे रहा हू—

(१)

मदनगंज-किशनगढ़
५-४-१९७३

"अनाज की किल्लत और दिक्कत सभी जगह हो रही है। इस सरकार की व्यवस्था इतनी अपूर्ण है कि कुछ कहने की वात नहीं, लेकिन किया क्या जाय। तुलसीदासजी ने कहा तो है कि 'जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी, सो नृप अवस नरक अधिकारी।' लेकिन प्रजा को तो नित्य ही नरक भोगना पड़ रहा है, नृप का तो कव क्या होगा, भगवान जाने।"

(२)

कलकत्ता
२१-१०-७४

"हाल की वर्षा से सीकर, झुझनू जिलो मे तो फायदा हुआ है। खडी फसल मे भी तथा रवी की साख की उम्मीद भी अच्छी हो गई है।

मध्यवर्गीय समाज आज नितान्त उपेक्षित है, यह वात ठीक है। इसका एक कारण तो यह है कि उनका अपना कोई संगठन नहीं है। दूसरा यह कि यह समाज चाहे दुःख कितना ही झेलना पड़े, सहज ही हाथ नहीं पसारता। याचना करना तो दूर अमूमन अनायास मिलने वाली सहायता स्वीकार करते भी इसे सकोच और ग्लानि का अनुभव होता है।"

स्व० श्री कन्हैयालालजी सहल द्वारा सम्पादित—बिड़ला एज्यूकेशन ट्रस्ट के राजस्थानी शोध विभाग की मुख-पत्रिका "मरु-भारती" मे श्री कानोड़ियाजी जव-तव लिखते रहते थे। उक्त पत्रिका मे मैं भी लिखता आया हूं और एक वार मैंने राजस्थानी भाषा

मे बहु-व्यवहृत कोई आठ सौ दोहरे-शब्द इसमे प्रकाशित करवाये। इन दोहरे शब्दो के विषय मे श्री कानोडिया जी का मदनगज-किशनगढ मे दिनाक ३०-११-७१ का लिखा एक लम्बा पत्र मिला जिसमे उन्होने कतिपय दोहरे शब्दो के रूप-भेद आदि के विषय मे लिखा था। मरु-भारती मे प्रकाशित दोहरे शब्दो मे मैंने एक शब्द "बास-वलियो" लिखा था। इसके लिए श्री कानोडियाजी ने अपने पत्र मे लिखा कि मेरे गाव की तरफ यह शब्द "बास-पलियो" बोला जाता है।

श्री कानोडियाजी का पत्र मिलने पर मैंने कुछ लोगों से पूछ-ताछ की तो उन्होने *'बास-वलियो'* ही बतलाया, लेकिन मेरी पत्नी के अनुसार *'बास-पलियो'* अधिक सही था। मैंने श्री कानोडियाजी को पूरी बात लिख दी और यह भी लिखा कि स्थान-भेद आदि के कारण लोक भाषा के शब्दो मे थोडा-बहुत अन्तर आ ही जाता है। श्री कानोडियाजी सही बात को अविलम्ब स्वीकार कर लेते थे, अतः लोक भाषा के शब्दो मे स्थानीय अन्तर को तो उन्होने स्वीकार कर लिया, लेकिन अपनी विनोदी प्रकृति के कारण वे एक चुटकी लेने से भी नही चूके। मदनगज-किशनगढ से ही दिनाक २२ दिसम्बर, १९७१ ई० के पत्र मे उन्होने मुझे लिखा—

"शब्दो मे स्थानीय फर्क होता ही है। अपने यहाँ एक कहावत है, "चार कोस पर पानी बदले, बारा कोस पर बाणी।" चूरू तो मेरे गाव से १२ कोस से भी अधिक ही है, इसलिए वह फर्क मैं स्वीकार कर लेता हू। आपकी पत्नी 'बास-पलियो' ठीक समझती है तो मैं इतना ही कहूगा कि वह आप से अधिक सयानी है। बुरा मत मानना और यह भी मत समझ लेना कि मैं आप लोगो के बीच भेद उत्पन्न कर रहा हूं।"

श्री कानोडियाजी अपने पत्रों मे कभी-कभी ठेठ राजस्थानी शब्दो का प्रयोग इतने उपयुक्त ढग से करते थे जो सोने की अगूठी मे सच्चे नगीने की तरह दमकते थे। मेरी लडकी कमलकान्ता की सगाई की बात चल रही थी, लेकिन काम पार नही पड़ रहा था। एक बार बात कुछ आगे बढी तो मैंने इसकी सूचना श्री कानोडियाजी को दे दी। इस पर उन्होने दिनाक ६-७-७८ को कलकत्ता से मुझे लिखा—"बाई के सम्बन्ध मे समाचार लिखे सो ठीक, सम्बन्ध तो करना ही है। २-५ हजार का अधिक 'चरका' खाना होगा तो उपाय नही है।" यहा यह 'चरका' शब्द अपने-आप मे इतना उपयुक्त और सार्थक है कि कोई भाषा-शास्त्री भी इससे अधिक उपयुक्त शब्द नही बतला सकता।

'लोक सस्कृति शोध सस्थान, नगर-श्री, चूरू' द्वारा प्रकाशित शोध-त्रैमासिकी "मरु श्री" का प्रकाशन इन पक्तियो के लेखक के सम्पादन मे अक्तूबर, सन् १९७१ ई० से शुरू हुआ था। श्री कानोडियाजी ने प्रारम्भ से ही इसमे रुचि ली और अन्त तक इसके परामर्शक मण्डल मे रहते हुए वे हमारा मार्ग दर्शन करते रहे।

तेरापथी आचार्य श्री तुलसीजी की एक पुस्तक 'अग्नि-परीक्षा' के किसी अश को लेकर कुछ विवाद खडा हो गया था और इसी बात को लेकर चूरू मे पारस्परिक तनाव की सी स्थिति पैदा हो गई थी। श्री कानोडियाजी का दृष्टिकोण अत्यन्त उदार था और इस तनाव को मिटाने की दृष्टि से वे श्री नथमलजी भुवालका एव श्री जय-प्रकाश शर्मा के साथ चूरू आये थे। उसी अवसर पर दिनाक १९-१०-७२ को श्री

कानोडियाजी एव श्री भुवालकाजी ने सस्था (नगर-श्री) के कार्यो का अवलोकन करके अपनी सयुक्त सम्मति लिखी थी।

श्री कानोडियाजी राजस्थानी कहावतो के मर्मज्ञ थे और उन्हे बहुत सी कहावतें कठस्थ थी। श्री विजयदानजी देथा के सह-सम्पादन मे वे "राजस्थानी हिन्दी कहावत कोश" की एक जिल्द प्रकाशित भी करवा चुके थे जिसमे अ से लगा कर घ तक की कहावतें थी। लेकिन श्री कानोडियाजी राजस्थानी कहावतो का एक ऐसा सग्रह निकालना चाहते थे जिसमे चूरू-शेखावटी के क्षेत्र मे प्रचलित कहावतें अपने मूल आचलिक स्वरूप मे अर्थ सहित प्रकाशित की जाए और कुछ कहावतो की कहानिया भी उनके साथ दी जाएं।

इस प्रयोजन हेतु उन्होंने अपने सग्रह की १६७९ कहावतें मुझे भेजी और ११ अक्तूबर, सन् १९७७ के पत्र मे मुझे लिखा कि जितनी कहावतें आपको याद आवें या आप सग्रहीत कर सकें, वे इनमे और जोड लें। यदि २५०० कहावतें हो जाए तो मैं अच्छा सग्रह मान लूंगा, किन्तु २००० हो जाएंगी तो उससे भी मुझे सन्तोष होगा। कहावतो की सौ कहानियां देने से काम चल जाएगा। इसके बाद तो वे प्राय अपने हर पत्र मे दो-पाच कहावतें लिखते ही रहते थे। दिनाक १७-७-७८ को उन्होंने अपने हाथ से १६ पृष्ठो का एक लम्बा पत्र लिखा, जिसमे लगभग एक सौ कहावतें होगी।

यही नही, कहावतो वाला काम शुरू करने के बाद तो श्री कानोडियाजी जब भी राजस्थान आते तो कहावतो के सम्बन्ध मे विचार-विमर्श करने हेतु मुझे आवश्यक रूप से मुकुन्दगढ, सीकर या किशनगढ बुला लिया करते। लेकिन चूरू और मुकुन्दगढ के बीच की डाक-तार सेवा भी बहुत सुव्यवस्थित नही थी। कभी तो चूरू से डाला हुआ साधारण पत्र भी अगले दिन मुकुन्दगढ पहुंच जाता था और कभी आवश्यक तार के पहुंचने मे भी ४-५ रोज लग जाते थे। इसलिए कई बार बडी परेशानी होती थी और यथा-समय मिलना भी नही हो पाता था।

एक बार चूरू से १३ अगस्त, १९७८ को डाला हुआ मेरा पत्र उन्हे मुकुन्दगढ़ मे १४ को ही मिल गया तो उन्होने उसी दिन मुझे पत्र लिखा · "इस बार पत्र मिलने मे जरा भी विलम्ब नही हुआ है। सतजुग की तरह काम हुआ है, आप रोज-रोज शिकायत करते थे न, इसलिए। २० तारीख को आप सीकर आ जाए, मैं वही मिल जाऊंगा।" लेकिन १४ को मुकुन्दगढ से लिखा हुआ उनका यह पत्र मुझे चूरू मे २० तारीख को तब मिला कि जब सीकर जाने वाली गाडी कभी की जा चुकी थी, अत. मैं नही जा पाया।

इसके बाद उनका २९-८-७८ का मुकुन्दगढ से लिखा हुआ पत्र मुझे ४ सितम्बर को मिला कि आपको जिस दिन और जहा भी सुभीता हो, मुकुन्दगढ या सीकर मिल लें। मैंने पत्र मिलते ही उन्हे मुकुन्दगढ आवश्यक तार दे दिया कि मैं कल सीकर पहुच रहा हू और मैं अगले दिन सीकर चला गया। लेकिन श्री कानोडियाजी को मेरा तार नही मिला था, अत वे सीकर नही पहुचे और मैं उनसे बिना मिले ही चूरू लौट आया। मेरा यह आवश्यक तार उन्हें ८ तारीख को मिला जिसके अनुसार वे

९ को सीकर पहुचे। लेकिन मैं तो ५ की शाम को ही चूरू लौट आया था अतः वहा मिल पाने का प्रश्न ही नही था। इस पर मुकुन्दगढ जाकर उन्होने मुझे पत्र लिखा—

"कल आपका तार मिला था। उसके अनुसार मैं आज आपसे मिलने के लिए सीकर गया, किन्तु आप वहा नही पहुचे। लगता है, वहा कोई खास काम हो गया है। आते तो मिलना हो जाता। अब आपका कार्यक्रम किस तारीख का बन सकता है, कृपया लिखे।

पुन

अभी अभी आपका ६ ता० का पत्र यहा मिला। मैं ८ तारीख को यहा आ गया था। मुझे खेद है कि आप ५ ता० को सीकर गये भी तथा मिलना भी नही हुआ। नाहक ही 'फोडा पडया'। खैर, अब आपका किसी दिन सीकर या मुकुन्दगढ आना हो सके तो मुझे पहले से सूचित करना ताकि मैं अपना कार्यक्रम तय करके उसके अनुसार आपको तार से सूचना दे सकू।"

मार्च, १९७९ मे जब मैं श्री कानोडियाजी से पुन मिलने के लिए मुकुन्दगढ गया तो मेरे साथ इंग्लैण्ड निवासी श्री इले कूपर भी थे जो चूरू-शेखावटी के भित्ति-चित्रो के फोटो लेने के उद्देश्य से यहा आये हुए थे। उसी दिन शाम को वहा शारदा सदन कालेज मे किसी विदेशी महिला को व्याख्यान देने के लिये बुलाया गया था, लेकिन शाम हो चली थी अत हम दोनो ने कालेज के बाहर ही श्री कानोडियाजी से विदाई ले ली। पिछली बार की तरह श्री कानोडियाजी ने अपनी गाड़ी मे हमे चूरू छोडने के लिए भेज दी थी और यही मेरी उनके साथ अन्तिम भेंट थी।

'राजस्थानी कहावत कोश' छप कर तैयार हो चुका था जिसमे ३२०९ कहावतें एव लगभग ३५० कहावतो की कहानिया भी थी। कहावत कोश की मुद्रित प्रति को देख कर उन्होने सन्तोष प्रकट किया था।

इधर मेरी लडकी कमलकान्ता का विवाह हो गया था और कुछ ही दिनो बाद चि० राजू का विवाह भी सम्पन्न हो गया था एव राजू से बडे लडके चि० प्रेम-प्रकाश को पुत्री की प्राप्ति हुई थी। ये सब समाचार मैंने श्री कानोडियाजी को लिखे थे। इस पर उन्होने अपने ४-७-७९ के पत्र मे लिखा—

"आपका २६ का पत्र मिला। साधारण सी अस्वस्थता के कारण मैं ५-६ दिन से आफिस नही गया, इसलिए पत्र का उत्तर जाने मे देरी हुई। दोनो विवाह सानन्द सम्पन्न हो गये, जानकर सन्तोष हुआ। मारवाडी बोली मे विवाह को 'टावर विणजना' कहते हैं, हमारी तरफ। आपकी तरफ यह शब्द चालू है या नही, मालूम नही। आज तो शायद हमारी तरफ भी नही बोलते हैं, लेकिन मैं ५०-६० वर्षो पहले की बात लिख रहा हू। उन दिनो यह शब्द सार्थक था या नही लेकिन आज तो अक्षरश सत्य है। बाई की विदाई और पोती के आगमन, दोनो के लिए बधाई।"

श्री कानोडियाजी के हाथ का लिखा यह अन्तिम पत्र था। इसके बाद दिनाक १३-७-७९ का कलकत्ता से लिखा उनका जो पत्र मुझे मिला, वह उन्होने किसी अन्य व्यक्ति से लिखवाकर उस पर अपने हस्ताक्षर कर दिये थे। इसमे लिखा था—

"मेरा स्वास्थ्य अभी वैसा ही चल रहा है। इस वार कमजोरी अधिक है, लेकिन ठीक हो जाऊंगा। इस वार तो हिन्दुस्तान मे सारे ही प्रान्तो मे फसल की शिकायत है। अगर अकाल पड़ गया जिसकी कि सम्भावना वढ रही है, तो वडी मुश्किल होगी।"

श्री कानोडियाजी की ओर से मुझे मिला, यह अन्तिम पत्र था। यद्यपि उन्होंने ठीक हो जाने की आशा व्यक्त की थी, लेकिन दिन-व-दिन उनका स्वास्थ्य गिरता ही गया जिसकी जानकारी मुझे श्री नथमलजी भुवालका, श्री जयप्रकाश शर्मा, श्री कन्हैयालालजी सेठिया, श्री रतन शाह एवं श्रीमती उमादेवी कानोड़िया के पत्रो मे समय-समय पर मिलती रही। लेकिन उनके स्वास्थ्य मे निरन्तर गिरावट के ही समाचार प्राप्त होते रहे और अन्त मे उनके दिवगत होने का वह अत्यन्त पीड़ाजनक समाचार भी मिल ही गया, जिसकी आशका कुछ समय से वढ़ चली थी। मेरे ऊपर श्रद्धेय श्री कानोडियाजी का स्वाभाविक स्नेह था, इसलिए मुझे तो इस समाचार से हार्दिक दु:ख होना ही था, लेकिन इससे भी अधिक दु:ख इस वात का था कि इस धरती से एक सच्चा इन्सान उठ गया।

समालोचक, 'तटस्थ' के सम्पादक

डा० कृष्णबिहारी सहल

साहित्योपासक संत

आज से २७ वर्ष पहले की बात है, पिताजी (डा० कन्हैयालालजी सहल) के साथ सफेद खादी का कुर्ता और धोती पहने हुए एक व्यक्ति पिलानी स्थित 'सहल सदन' मे आया। व्यक्ति का आना कोई नई बात नही थी पर उसका ड्राइग रूम मे न जाकर सीधा घर के अन्दर जाना हम भाई-बहिनो को थोडा अटपटा सा लगा। पर चू कि पिताजी साथ मे थे इसलिए सब-कुछ ही क्षणो मे सहज सा हो गया। उन्हे जानने को हमारी जिज्ञासा बढती जा रही थी। देखते-देखते तो वे अन्दर रसोई के पास जा खडे हुए और मेरी माताजी को कहने लगे "क्या, पिलाणी माय मन लाग्यौ कि नही ?" इस पर पिताजी को हल्की सी हसी आई और कहने लगे कानोडिया जी आये है--इस पर माताजी ने कहा 'आ बात आज कइया पूछी बीस वरसा के पाछे।' इस पर भागीरथजी भी हसने लगे और हम लोगो की ओर देखते हुए बोले—यह बात ठीक है। बीस वर्ष बाद मन लगने की बात पूछना तो मजाक ही रहा।

तब पिताजी हम लोगो को बताया १९३९ मे वह मुकुन्दगढ से पिलानी आ गये थे। कानोडियाजी की इच्छा पिताजी के अध्ययन-कक्ष को देखने की थी और सम्भत वे घर पर आये भी इसीलिए थे। कहने लगे—कन्हैयालालजी, यह मकान तो आपने अच्छा ले लिया—आपका अपना कमरा कौन सा है। इस पर पिताजी उन्हे ऊपर ले गये और अपने दो कमरे दिखलाये जिनमे वे दिन के १८ घण्टे व्यतीत किया करते थे। हजारो पुस्तको के बीच स्थित "मूड्ढे" को देख कर कानोडियाजी कहने लगे 'क्या आप इसी पर बैठ कर लिखते-पढते हैं ?' पिताजी ने कहा, 'हा मैं कभी टेबिल कुर्सी का प्रयोग नही करता। कानोडियाजी को आश्चर्य हुआ—मूड्ढे पर बैठकर इतना सारा लिखने का कार्य कैसे कर लेते है ? कानोडियाजी कहने लगे, "कन्हैयालालजी आप तपस्या कर रहे हैं। मुझे इस कमरे मे बडी शान्ति मिली है।' उस कमरे के फर्श पर अस्त-व्यस्त ढग से पडी हुई ढेरो फाइलो, पत्र पत्रिकाओ को देखकर कानोडिया-जी शायद कुछ कहने को ही थे—तभी पिताजी बोले नीचे जो सामग्री पडी है उसे मुझे आज देखना है लेख लिखते समय कई सन्दर्भ देने होते हैं। जब कोई नयी चीज मिलती है तो मैं उसे नोट कर फाइल मे लगा देता हू। दोनो साहित्यानुरागी उस कमरे मे थोडी देर रहे और फिर नीचे ड्राइग रूम मे आगये। श्री कानोडियाजी का पिताजी पर बडा स्नेह था। वे उनका आदर भी बहुत करते थे।

बात उन दिनो की है जब पिताजी मुकुन्दगढ मे कानोडिया स्कूल मे प्रधानाध्यापक थे। उन्ही दिनो मुकुन्दगढ मे ठाकुर बाघसिहजी के ठिकाने की ओर

से भी एक विद्यालय चला करता था। सम्मान के किसी प्रश्न को लेकर ठाकुर बाघसिंह तथा कानोडिया विद्यालय परिवार मे मतभेद की स्थिति उत्पन्न हो गई थी। शनिवासरीय सास्कृतिक सभा के समय ठाकुर बाघसिहजी की ओर से एक चोपदार हुक्म सुनाने के लिए आया और कहा—"ठाकुर बाघसिहजी के हुक्म से कन्हैयालालजी को अगले २४ घण्टों मे मुकुन्दगढ छोड देना होगा।" विद्यालय समाप्ति पर पिताजी ने अपनी सस्था के सचालक श्री गगाबक्सजी एव भागीरथजी कानोडिया को इस भारी घटना से अवगत करा दिया। कानोड़ियाजी ने अपनी सस्था के कर्मचारी की इज्जत पर हुए हमले को अपने परिवार पर हुए आक्रमण की तरह गम्भीर समझ कर उद्योगपति सेठ घनश्यामदासजी बिडला को मुकुन्दगढ से तार लगा कर पूछा कि 'आप कहा है? जल्दी लिखिये।' घनश्यामदासजी को तार देने की सूचना मिलने पर परिस्थिति की गम्भीरता को समझ कर ठाकुर बाघसिहजी कानोडियो की हवेली पर भागीरथजी आदि से मिलने पधारे। गगाबक्सजी एवं भागीरथजी ने ठाकुर साहब का आदर भाव किया। उन्होने ठाकुर साहब को शालीनतापूर्वक तार देने का कारण बताते हुए व्यग्य मे कहा—"अब तो हमे २४ घण्टो मे मुकुन्दगढ छोडना है कही रहने की भी व्यवस्था तो करें।" नीति-कुशल ठाकुर बाघसिहजी ने बात को न बढने देने के लिए माफी मागते हुए भागीरथजी से समस्या को सुलझाने के लिए उपाय पूछा। इस पर कानोडियाजी ने जवाब दिया: "आगे होनेवाली 'शनिवासरीय सभा' मे आपका भेजा हुआ पहलेवाला चोपदार ही विद्यालय मे जाकर कन्हैलालजी से आपकी ओर से माफी मागे तथा अपने शब्द वापिस ले।" इस पर ठाकुर साहब "मुझे आपको मुकुन्दगढ से नही निकालना है" कहते हुए हवेली से चलने लगे कि बीच मे ही भागीरथजी ने उनको रोकते हुए पुन. कहा कि 'आपका माफी मागना आपका बडप्पन है। हमसे मागी गई माफी कन्हैयालालजी से मागी गई माफी के बराबर ही है। अब आप चोपदार को कन्हैयालालजी के पास न भेजें।" भागीरथजी की नीति-कुशलता तथा स्वाभिमान से ठाकुर साहब द्रवित हो गये। उनकी आखो मे पश्चाताप के आसू झलक आये। भागीरथजी ने पिताजी के देहान्त पर अपने किसी एक पत्र में मुझे लिखा था—"कन्हैयालालजी के स्वभाव मे भारत की आजादी की लगन उस जमाने मे भी गहरी थी। उनकी इस तरह की प्रवृत्ति के कारण एक बार मुकुन्दगढ के तत्कालीन ठाकुर साहब बाघसिंहजी ने उन्हे गाव छोडने का आदेश भी दे दिया था किन्तु बाद मे उन्हे वैसा करना नही था। इसके पीछे एक लम्बी और रोचक कहानी है फिर कभी लिखूगा।"

श्री कानोडियाजी से मेरा कई बार मिलना हुआ पिलानी मुकुन्दगढ, कलकत्ता मे। उनके सरल सहज स्वभाव से मैं बडा प्रभावित था। मुकुन्दगढ में जब उनके मकान पर मिलने गया तो बडे स्नेह से अपने पास बैठाया, कहने लगे 'कृष्णबिहारी, लोक कथाए टाइप हो रही हैं तुम भी इन्हे पढ लो भाषा सम्बन्धी कोई कमी हो तो बतलाओ।' मुझे बडा सकोच हो रहा था, मैं जानता था मुझे इनमे कोई सुधार नही करना है। यह तो उनकी निराभिमानता ही है। अभिमान उन्हें छू भी नही गया था। समृद्धि, वैभव प्राप्त करके भी विनम्र रहना कानोड़ियाजी जैसे व्यक्ति के लिए ही सम्भव था। मेरे मन पर जो गहरी छाप पडी वह थी उनकी विनम्रता एव सादगी

की। जब-जब मैंने उन्हे अपनी पुस्तकें भेजी उन्होने बराबर प्रशस्तिसूचक पत्र दिये। कभी अपने लेख का रिप्रिंट भेज देता तो उसे भी पढ कर अपनी प्रतिक्रिया अवश्य भेजते।

श्री भागीरथजी कानोडिया की समाज को बहुविध देन है। उन्होने शिक्षा, सस्कृति, साहित्य के क्षेत्र मे महत्वपूर्ण योगदान दिया। साहित्य के प्रति विशेपकर राजस्थानी साहित्य के प्रति उनकी जो गहरी पैठ थी, वह श्लाघनीय थी। इतने व्यस्त होते हुए भी उन्होने राजस्थानी लोककथा, राजस्थानी कहावतो पर जो कार्य किया वह स्मरणीय रहेगा। पिताजी के साथ उनके सैकडो पत्राचार हुए है, पर सभी पत्रो मे लोक साहित्य की चर्चा के अलावा और कुछ नही है। पत्रो मे वे कही राजस्थानी साहित्य के गवेषक के रूप मे है तो कही भाषा वैज्ञानिक दृष्टि लिए अर्थ-विमर्श करते हुए मिलते है, तो कही शोध कार्य मे तल्लीन शोधार्थी के रूप मे पाठालोचन कर रहे हैं, तो कही अपनी स्मृतियो के सहारे राजस्थानी सस्कृति, त्योहारो पर गाये जाने वाले गीतो के शुद्ध रूप की चर्चा करते है। वस्तुत. भागीरथजी कानोडिया राजस्थानी भाषा साहित्य के चलते-फिरते कोश थे। यह सब उनके प्रबुद्ध पाठक के व्यक्तित्व का एक रूप था। 'मरु भारती' के एक-एक पृष्ठ को वे पढते थे और जहा उन्हे कोई बात खटकी, वे तुरन्त कलम को पकड अपने 'प्रिय कन्हैयालालजी' को पत्र लिख डालते थे। ऐसे अनेक पत्र हैं। कुछ एक पत्र यहा दे रहा हू :

मुकुन्दगढ
९-३-७१

प्रिय श्री कन्हैयालालजी,

'रैसी देवी काठ की के पत्थर को पारसनाथ' इसमे मात्रा का हिसाब नही बैठता। सही रूप यह है "रैसी देवी काठ की (के) बाबो पारसनाथ।" कहानी इस तरह है कि एक गाव मे चोर आये। पास-पास मे दो मन्दिर थे, एक जैनियो का और एक वैष्णवो का। वैष्णवो के मन्दिर मे एक मूर्ति देवी की ऐसी थी जिसे आभूषणो से अभी तक अलकृत नही किया गया था, काठ का ढाचा मात्र ही था। बाकी देवी-देवताओ की मूर्तिया वस्त्राभूषणो से अलकृत थी। अत चोर उस काठ की देवी को छोड कर सारी मूर्तिया चुरा कर ले गये। पास के जैन मन्दिर मे वे गये तो सही, लेकिन वहा पारसनाथजी की मूर्ति थी, वह भी आभूषणो और अलकारो से शून्य थी, इसलिए चोर उस मूर्ति को भी छोड गये। सुबह दर्शनार्थी मन्दिर मे पहुचे और पुजारी से पूछा तो उसने उपरोक्त कहावत कही। आशा है सानन्द होगे।

आपका
भागीरथ कानोडिया

कानोडियाजी की स्मरण शक्ति भी गजब की थी। वे उद्योग मे जरूर रहे, पर उनका मन राजस्थानी भाषा, साहित्य, सस्कृति की श्रीवृद्धि मे ही लगा रहा।

पिताजी के साथ उनका बडा लगाव था, बडा स्नेह था, वे उनके साहित्यिक कार्यों मे बडी रुचि लेते थे। उनकी इच्छा थी पिताजी को कोई राष्ट्रीय पुरस्कार

मिले—ऐसा मुझे उनके पत्रो से लगा है। हजारीप्रसादजी द्विवेदी को ९-७-१९७५ कलकत्ता से पत्र लिखते है :

प्रिय श्री पण्डितजी,

आपका २ तारीख का पत्र मिला। साथ ही आपने कन्हैयालालजी सहल को जो पत्र लिखा उसकी प्रतिलिपि भी।

यह जान कर मन को अच्छा लगा कि आपको 'निहालदे सुलतान' नामक ग्रन्थ पसन्द आया। मुझे सन्तोष है कि मैंने आपको योग्य व्यक्ति के लिए पुरस्कृत कराने का प्रयत्न करने के बारे मे सिफारिश की।

आशा है आप सानन्द होगे।

आपका
भागीरथ कानोडिया

कानोडियाजी उद्योगपति जरूर थे पर मूलत: वे साहित्यकार थे। साहित्यकारो से उनका बराबर सम्पर्क रहा है। शायद ही कोई उनकी पीढी का साहित्यकार रहा होगा जिसका उनसे सम्पर्क न हुआ हो। सम्पर्क भी आत्मीयतापूर्ण। डा० सत्येन्द्र को उन्होने पत्र लिखा था। सत्येन्द्रजी ने जो उत्तर भेजा उससे लगता है सम्पर्क कितना आत्मीय था।

परम श्रद्धेय कानोडियाजी,

आपका ९-८-७१ का कृपा पत्र डा० सहल के पत्र के साथ प्राप्त हुआ। मैं शब्दो मे प्रकट नही कर सकता कि कितना कृतज्ञ हू।

मैं चाहे बहुत दिनो से आपसे मिलने का कोई सुयोग नहीं प्राप्त कर सका हूं फिर भी आपको मैं अपने जीवन मे निरन्तर अत्यन्त निकट वरदहस्त उठाये हुए देखता हूं। अत आपकी इच्छा मात्र भी आदेश के समान है। उधर डा० कन्हैयालाल सहल का भी स्नेह और कृपा मेरे ऊपर दीर्घकाल से रही है। फिर जिस कार्य को करने का आदेश हुआ है वह मेरे मन का सा है। अत. इसे अवश्य करूगा। प्रार्थना शब्द लिख कर आपने मुझ पर कुछ अन्याय ही किया है। मैं तो आपके आदेश का अधिकारी हू।

सूचनार्थ डा० कन्हैयालाल सहल के सुपुत्र चिरजीव डा० कृष्णविहारी सहल ने मेरे सुझाव पर ही निहालदे सुलतान पर मेरे निर्देशन मे पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की है। इस शोध प्रबन्ध के प्रकाशन की यदि कोई व्यवस्था हो जाय तो बहुत अच्छा हो।

आपका जयपुर भी आना-जाना रहता होगा। आप इस बार जयपुर आयें तो मुझे सूचित कर दे जिससे मैं दर्शनो का लाभ उठा सकू।

विनीत
सत्येन्द्र

साहित्यकारो से कानोडियाजी के बहुत ही मधुर सम्बन्ध रहे है। मैं इस तथ्य को रेखांकित करना चाहता हूं। हजारीप्रसादजी द्विवेदी ने २-७-७५ को वाराणसी से लिखा

आदरणीय कानोडियाजी,

डा० कन्हैयालालजी सहल द्वारा लिखा निहालदे सुलतान कथानक ग्रन्थ मिल गया है। मैने बडी रुचि के साथ उसे पढा है। यह कई दृष्टियो से बहुत महत्वपूर्ण पुस्तक है। लोक कथानको के अध्ययन के लिए तो शायद यह सबसे उपयोगी पुस्तक है। जिन लोगो को निहालदे सुलतान गेय रूप मे सुनने का अवसर नही मिला है उनके लिए सहलजी ने बहुत कुछ रस इसमे सुरक्षित रखा है। नि सन्देह वे बधाई के पात्र है।

बहुत बार कथानक मे रूढियो और अभिप्रायो का प्रयोग किसी उत्तम उद्देश्य के लिए नही होता परन्तु 'निहालदे सुलतान' मे उनका प्रयोग ब्रह्मचर्य, सत्यनिष्ठा और आदर्श की ओर उन्मुख करने के लिए हुआ है। यहा 'प्रकृति', 'विकृति' की ओर न जाकर 'सस्कृति की ओर जाती है। इस दृष्टि से भी इस कथानक का महत्व है। मैंने सहलजी को जो पत्र लिखा है उसकी एक प्रति अवलोकनार्थ आपके पास भेज रहा हू। आशा है आप स्वस्थ और प्रसन्न है।

आपका
हजारीप्रसाद द्विवेदी

ऐसे निर्मल और विनम्र व्यक्तित्व के प्रति जितना लिखा जाय कम है। श्री कानोडियाजी के चले जाने के कारण मुझे अपने परिवार मे एक और रिक्तता लगी थी। अभी जब मैंने "डा० कन्हैयालाल सहल हिन्दी राजस्थानी शोध सस्थान" के अन्तर्गत "अखिल भारतीय शोध सर्जन समर्पित सम्मेलन" का आयोजन पिलानी मे किया तो कानोडियाजी को पत्र लिखा था। उन्होने मेरे प्रस्ताव को न केवल स्वीकार ही किया बल्कि आर्थिक सहायता भी की। ऐसे उदारमना व्यक्ति का अभाव सदैव खटकता रहेगा।

साहित्य, सस्कृति, समाज व राष्ट्र के विविध पक्षो को सजाने-संवारने और उन्हे उन्नत करने मे श्री कानोडियाजी ने जो योगदान दिया है वह सदैव रेखाकित किया जायेगा।

—: ० :—

राजस्थान के गांधीवादी कार्यकर्ता

श्री रामेश्वर अग्रवाल

महामानव

पूज्य भागीरथजी से मेरा परिचय और सम्पर्क लगभग ५० वर्ष तक रहा। उनसे जो आत्मीयता, स्नेह और मित्रतुल्य-प्रेम प्राप्त किया उसीके बल पर शुरू मे कलकत्ता मे, फिर शेखावाटी के क्षेत्र मे मैंने खादी और ग्रामोद्योग की सेवा का कार्य किया।

अपने जीवन के पिछले वर्षो मे रचनात्मक कामो को करते समय उनसे निजी सम्पर्क व पत्रो द्वारा कठिनाई के समय मे सहयोग व मार्ग-दर्शन प्राप्त करता रहा। जो कठिनाइया आई उन्हे उनकी प्रेरणा से सहज ही दूर करके साहस के साथ उसी काम मे जुटे रहने का सम्बल मिलता रहा। वे अपनी फोटो खिचवाने मे इतना परहेज करते थे कि पिछले अकाल के समय गो-सेवा संघ के कार्य के निमित्त कलकत्ता के राजस्थान सूचना केन्द्र मे एक मीटिंग हुई थी उसमे उन्होने काफी आग्रह के बाद भी फोटोग्राफर को अपना फोटो नही खीचने दिया।

सन् १९३२ मे जब जयपुर राज्य युवक सम्मेलन रीगस मे करना तय हुआ तो उसके लिये मैं उनसे सलाह और सहयोग के लिये कलकत्ता गया तब उन्होने किसी भी पद के लिए अपने नाम की स्वीकृति नही दी। किन्तु उसी समय मेरी डायरी मे ५-६ आदमियो के नाम लिखकर आवश्यक सहयोग दिला दिया। ऐसे उदाहरण बहुत बार मिले है कि सस्था मे किसी पद पर न रहते हुए भी उन्होने संस्थाओ को दिल खोलकर पूरा सहयोग दिया। राजस्थान की सभी रचनात्मक सस्थाओ और खासकर खादी ग्रामोद्योगो की सभी सस्थाओ से उनका लगातार सहयोग व सम्पर्क रहा और उन्हे चलाने मे सैंकडो राजनीतिक व रचनात्मक कार्यकर्ताओ को उनका सक्रिय सहयोग और समर्थन तथा सहायता मिलती रही। कठिनाइयो के अवसर पर स्पष्ट मार्ग-दर्शन भी मिला। मैं तो इतना ही कह सकता हू कि मेरे जैसे अनेक कार्यकर्ता आज जहा भी खडे है और जो भी कुछ रचनात्मक कार्य हो रहा है उसमे उनका बडा भारी सहयोग है।

कई सस्थाओ को कठिनाई के समय तथा डगमगाती अवस्था मे, जैसे कि सीकर का कल्याण आरोग्य सदन, उन्होने सकट से उबारा। सदन आज पूरे हिन्दुस्तान के बडे व अच्छे अस्पतालो मे एक है। वे जाते-जाते भी उसके बारे मे चिंता करते रहे और उसकी नीव पक्की कर गये। इसी तरह के अनेक उदाहरण हैं किन्तु मैं ज्यादा न लिखकर इतना ही लिखूंगा कि उनके जैसा व्यक्ति आज मिलना दुर्लभ है।

—:०:—

बगाल के प्रमुख गाधीवादी कार्यकर्ता

श्री क्षितीश रायचौधरी

मूल्यों के प्रति समर्पित व्यक्तित्व

महान मानवतावादी, हृदय से देशभक्त, एक दुर्लभ कार्यकर्ता और जीवन के समस्त मानवीय मूल्यो के प्रति समर्पित भागीरथजी कानोडिया की दु खद मृत्यु का समाचार सुन कर मैं मर्माहत हो गया। विभिन्न गाधीवादी रचनात्मक प्रवृत्तियो मे उनका परामर्श और आदेश पाने के लिए मुझे उनसे कई बार मिलने का अवसर मिला था। बगाल मे बाढ और अकाल के वक्त खासकर मेदिनीपुर जिले मे अकाल राहत समिति द्वारा पीडित लोगो की उन्होने जो सेवा की, उसकी बार-बार याद आती है। जहा भी आर्त्त आदमी सहायता के लिए पुकारा करता, भागीरथजी वहा दौडे-दौडे पहुचते। बगाल की बाढ और अकाल सहायता समितियो के तो वह प्राण थे। मेदिनीपुर के तटवर्ती इलाको मे भयानक तूफान आने के बाद भीषण अकाल पडा था। इसमे उन्होने जिस तरह से काम किया, उसकी जितनी प्रशसा की जाय कम है। इससे उनकी अद्‌भुत सगठन क्षमता और चन्दा इकट्ठा करने की क्षमता का तो पता लगता ही था, साथ ही यह भी मालूम पडता था कि पीडित और आर्त्त आदमी के प्रति उनके मन मे कितनी करुणा थी। भागीरथजी के जैसे लोग मिलने मुश्किल है। गाधीवादी रचनात्मक कार्यकर्ताओ की वह हमेशा हर प्रकार से मदद किया करते—सलाह देते, पैसे देते। बलरामपुर के अभय आश्रम की उन्होने जो मदद की, उसकी याद आने पर लगता है कि आज एक गाधीवादी रचनात्मक केन्द्र के रूप मे उसकी प्रसिद्धि उनके बिना सम्भव नही होती। इस सस्था से अपने निकट सम्बन्ध के कारण मैं यह जानता हू कि वह उसके कितने बडे आधार स्तम्भ थे।

१९७२ से १९७९ के बीच विनोबा भावे के नाम से ग्राम-स्वराज्य-कोष और जयप्रकाश-अमृत-कोष के काम को लेकर मेरा उनसे सम्पर्क ज्यादा बढा। विनोबा भावे और जयप्रकाशजी के प्रति उनके मन मे अपार श्रद्धा थी। वे हमे रचनात्मक कार्यों और दलितो के उद्धार-कार्यो के लिए बराबर चन्दा उगाहने के लिए प्रेरित करते रहते थे। मुझे बार-बार याद याद आता है कि वह हमे सामान्यजनो के पास से चन्दा इकट्ठा करने को कहते थे ताकि अच्छे कामो मे उनकी भागीदारी बढे और उनकी चेतना का प्रसार हो।

उन्हे मैने हमेशा शान्त और विनम्र पाया, जब वह बोलते तो लगता कि उनकी वाणी से सज्जनता टपक रही है। उनकी कमी पूरी होनी कठिन है। युवा पीढी शायद यह नही जानती कि वह कितने महान व्यक्ति थे। यह आशा करनी चाहिए कि व्यापारी समाज उनसे प्रेरणा ग्रहण कर अपनी सामाजिक जिम्मेवारी के प्रति सचेत होगा।

— o —

बिहार के भूतपूर्व मुख्यमंत्री

श्री महामाया प्रसाद

अजातशत्रु

अजातशत्रु स्व० श्री भागीरथजी कानोडिया भारत माता के एक सच्चे सपूत और सादगी, सरलता तथा त्याग की प्रतिमूर्ति थे। अपनी देशसेवा, दानशीलता, मृदुलता, दूरदर्शिता और कुशाग्र बुद्धि से उन्होने एक अमिट छाप छोडी है। उन्होने सन् १९२१ ई० से ही महात्मा गाधी और देशरत्न डा० राजेन्द्र प्रसाद का सदा साथ दिया। वे गाधीजी के अनन्य भक्त थे। अमीरी के जीवन को ठुकराते हुए उन्होंने जेल-यातना भी सही थी। उनकी पैनी बुद्धि का लोहा सभी मानते थे। मनुष्यत्व और सज्जनता के तो वे मानो प्रतिरूप ही थे। वे अहिंसा के सच्चे पुजारी थे। प्रलोभन उन्हे अपने सन्मार्ग से कभी नही डिगा सकता था।

उनकी कुंदन सी खरी ईमानदारी ने किसका नहीं चकित किया? उनके रोम-रोम मे देशभक्ति और समाज-सेवा फूट पडी थी। उनकी प्रथम दर्जे की ईमानदारी ठीक ही उनके समृद्ध पुत्रो ने वपौती-धन के रूप मे पायी है। निस्सदेह ऐसे महत् पुरुष के उठ जाने से बहुत बडी क्षति हुई है और समाज मे उनका स्थान रिक्त हो गया है। मेरा उनसे पारिवारिक सम्बन्ध था और मैंने अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर ही उनका यह मूल्यांकन किया है। उनके पुत्रो के साथ भी मेरा वह सम्बन्ध बना हुआ है। उनके महाप्रयाण से मुझे भारी व्यक्तिगत क्षति हुई है। उनके प्रति मैं अपनी हार्दिक श्रद्धाजलि अर्पित करता हूं।

—: o :—

लेखक, राजस्थान हरिजन सेवक संघ के भूतपूर्व मन्त्री
श्री जवाहरलाल जैन

हरिजन-उद्धारक

भागीरथजी कानोडिया एक कर्मठ तथा सहृदय समाजसेवक थे। उनके मन मे समाज के पीडित और दलित वर्ग के लिए बहुत करुणा थी। खासकर हरिजनो की सेवा और सहायता की भावना सदा ही उनके मन मे तीव्र रही। राजस्थान हरिजन सेवक सघ के वे लगातार २० वर्ष तक अध्यक्ष रहे। वे सघ की आर्थिक सहायता प्रति वर्ष ही करते थे और कलकत्ते के अपने मित्रो तथा परोपकारी सस्थाओ और ट्रस्टो से भी बराबर करवाते थे। इसके साथ ही राजस्थान मे तथा खासकर मुकुन्दगढ मे वे हरिजनो से सीधे सपर्क मे आते थे। उनसे मिलते थे। उनकी कठिनाइयो को देखते और समझते थे और उनकी सहायता करते थे। हरिजनो की शिक्षा मे भी उनकी बहुत रुचि थी। पाठशालाओ और आश्रमो आदि की वे मुक्तहस्त से सहायता करते थे।

भागीरथजी की साहित्यिक रुचि भी बहुत परिष्कृत थी और मानवीय सवेदनाओ को वे बहुत मार्मिक ढग से प्रकट करते थे। राजस्थानी भाषा पर भी उनका अच्छा अधिकार था। सपन्न व्यक्ति समाज की सेवा मे किस प्रकार तत्पर रह सकते हैं, इसके श्रेष्ठतम उदाहरण भागीरथजी है।

राजस्थान हरिजन सेवक सघ के लगभग २० वर्ष तक भागीरथजी अध्यक्ष रहे और मैं १२-१३ वर्ष तक मत्री। इस नाते मुझे उन्हे निकट से जानने और समझने का मौका मिला तथा उनके सम्पर्क मे आने का अवसर मिला। इसे मैं अपना सद्भाग्य मानता हू। दूसरे की कठिनाई और कष्ट को समझनेवाले और उसमे हार्दिकता से सहायता करनेवाले बहुत कम लोग होते हैं। भागीरथजी ऐसे ही विरल लोगो मे से थे।

—.०—

राजस्थान की राजनीतिक कार्यकर्त्री, भूतपूर्व मंत्री

श्रीमती सुमित्रा सिंह

बहुमुखी प्रतिभा के धनी

सामन्तशाही के खिलाफ सघर्षरत जिस परिवार मे मैं पैदा हुई तथा देशभक्ति के रग के जिन हालात मे मैं पली उसमे बहुत पैसेवाले साधन-सम्पन्न व्यापारी वर्ग के प्रति एक विरक्ति तथा विद्रोह की भावना मेरे मन मे थी कि बडा व्यापारी शोषण का प्रतीक है क्योकि बिना शोषण के धन सचित नही हो सकता, लेकिन भागीरथजी कानोडिया के प्रति प्रारम्भ से ही मेरे दिल मे आदर एव अपनत्व का भाव था।

जब मैं छोटी थी, भागीरथजी कई बार हमारे गाव मे तथा हमारे घर आया करते थे और मैं बडे कौतूहल एव जिज्ञासा से एक धनी सेठ को देखा करती थी। वे बडी रुचि से ग्रामीण रहन-सहन को परखते थे, साधारण किसान के ग्रामीण खानपान का स्वाद चखते थे, ग्रामीण सस्कृति का अध्ययन करते, ग्रामीण हस्तकला की प्रशसा करते और गाव की कढी हुई कई वस्तुओ के सग्रह करने के भी शौकीन थे।

कानोडियाजी निर्धन, गरीब छात्रो की यथासम्भव विद्याध्ययन के लिए मदद करते थे। तारीफ की बात तो यह है कि वे लक्ष्मीपुत्र होने के साथ ही साथ सरस्वती के उपासक भी थे। शिक्षा के प्रति उनके प्रेम एव शिक्षा के प्रचार एव प्रसार के लिए उनके द्वारा की गयी सेवाओ के प्रतीक के रूप मे शारदा सदन कालेज, मुकुन्दगढ तथा कानोडिया महिला कालेज, जयपुर सदैव उनकी स्मृति दिलाते रहेंगे। झुझनू जिले के गावो मे आज से ४०-४५ वर्ष पूर्व जगह-जगह, ग्राम-ग्राम मे सचालित प्राथमिक स्कूल, जो आज क्रमोन्नत होते होते हाई स्कूल बन गये हैं और असख्य लोगो को शिक्षित बना चुके है, उनकी कीर्त्तिगाथा गा रहे हैं।

मारवाडी रिलीफ सोसाइटी के प्रमुख पदो पर रहते हुए राजस्थान के रेगिस्तानी क्षेत्रो के पशुओ की अकाल के समय जो सेवा उन्होने की है तथा ग्रामो मे पीने के पानी की समस्या के निदान स्वरूप जल-बोर्ड के माध्यम से रेगिस्तानी जिलो मे उन्होने जिस तरह कुओ का निर्माण कराया है, वह नजरअन्दाज नही किया जा सकता।

भागीरथजी कानोडिया उच्च कोटि के देशभक्त थे। मुझे याद है कि स्वाधीनता के सघर्ष के दौरान तथा सामन्तशाही के जोर-जुल्म को सहनेवालो के प्रति उनकी न केवल हमदर्दी थी, अपितु वे ऐसे लोगो को सब प्रकार की मदद करते थे तथा देशी रियासतो के समय राजनैतिक गतिविधियो वाले प्रजामडल के पोषक थे। सरदार हरलालसिहजी के प्रति उनकी श्रद्धा एव सहानुभूति इसी वजह से थी कि उस समय सरदारजी प्रजामण्डल के अग्रणी नेताओ मे थे।

एक कुशल उद्योगपति, देशभक्त, समाजसेवी तथा शिक्षाप्रेमी के साथ वे स्वय भी अच्छे साहित्यकार एव लेखक थे। मैंने उनके द्वारा लिखित एक पुस्तक "बहता पानी निर्मला" पढी है। छोटी-छोटी सी कथाओ के माध्यम से ग्रामीण जीवन और खासतौर से विभिन्न जातियो की परम्पराओ तथा रीति-रिवाजो तथा चरित्र का जो अकन उसमे किया गया है, वह बेमिसाल है। भारत की ग्रामीण सस्कृति का जो सूक्ष्म एव गहन अध्ययन इसमे मिलता है वह अद्वितीय है। छोटी-छोटी कथाओ एव आख्यानो मे मनोरजन तथा उपदेश तो है ही परन्तु ग्रामीण सस्कृति दर्शन और पौराणिक कथाओ से जोडकर ऐतिहासिक एव धार्मिक स्वरूप देकर उन्होने पाठक के लिए उसे अविस्मरणीय बना दिया है।

कुल मिलाकर उनके व्यक्तित्व के बारे मे यही कहा जा सकता है कि वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। अपनी वणिक बुद्धि के बल पर श्रेष्ठि-पुत्र की श्रेणी प्राप्त की तो सरस्वती की आराधना ने उन्हे अमर बना दिया।

उनकी पुस्तक पढकर नन्हे-मुन्ने आल्हादित होकर पौराणिक आख्यान तथा ग्रामीण सस्कृति का रसास्वादन करते रहेगे और लक्ष्मीपुत्र होने के नाते समाज का लब्ध प्रतिष्ठित उद्योगपति समाज सदैव एक धनी-मानी साधनसम्पन्न उद्योगपति के रूप मे याद किया करेगा परन्तु शेखावटी का ग्रामीण समाज उन्हे एक महामानव के रूप मे याद करेगा। वे मानवीय गुणो से भरपूर थे। सकट के समय जो कोई पहुचा, राष्ट्रीय कर्तव्य करते जिस किसी ने उनसे मदद चाही, मुक्तहस्त से उसे मदद मिली, इसीलिए उन्हे मेरी तथा शेखावाटी के असख्य सवेदनशील लोगो की हार्दिक श्रद्धाजलि अर्पित है।

—: ० :—

पं० बंगाल के भूतपूर्व उप मुख्यमंत्री
श्री विजयसिंह नाहर

सच्चे सेवक

कलकत्ते के मारवाड़ी समाज मे कम व्यक्ति पाये जाएगे जो व्यवसाय, समाज सेवा एव राजनीति मे सादगी से भाग लेते हैं। श्री भागीरथजी कानोड़िया ऐसे ही एक व्यक्ति थे जिन्होने व्यवसाय मे खूब उन्नति की, सम्मान के साथ उद्योग धधे किए और साथ-साथ समाज की कुरीतिया हटाने के आन्दोलन मे भाग लिया तथा स्वतन्त्रता आन्दोलन मे पूरा हिस्सा लिया। महात्मा गाधी के साथ उनका सपर्क था एव अहिंसक क्रान्ति मे विश्वास रखते हुए ग्राम-विकास कार्यो मे भी वे पूरी दिलचस्पी लेते थे एव सहयोग देते थे। बगाल के गाधीवादी अनेक कार्यकर्ताओ से उनका सपर्क रहा जिन्हे उन्होने सर्वदा सहयोग प्रदान किया।

अजातशत्रु, अल्पभाषी, सदा हसते हुए भागीरथजी से जो भी मिलता था उसे वे अपना बना लेते थे। बगाल प्रान्तीय कांग्रेस कार्यकारिणी कमेटी की सभा मे आते परन्तु जब जरूरत होती स्पष्ट और उचित अपना मत देते। किसी से वाद-विवाद नही किया, इसलिए सब कार्यकर्ता उनका सम्मान ही करते।

भागीरथजी कार्यक्षेत्र मे किसी को भी छोटा-बडा नही मानते थे। छोटी-बडी सब सस्थाओ मे सहयोग देते। 'तरुण सघ' सामाजिक क्रान्ति की छोटी-सी सस्था थी उसमे भी बराबर हिस्सा लेते थे। समाज मे उनके जैसे निरहकारी, त्यागी सच्चे सेवको की आवश्यकता है।

— ० :—

प० बंगाल के भूतपूर्व राज्य-मन्त्री
श्री रामकृष्ण सरावगी

दुर्लभ चरित्र के देव पुरुष

सन् १९४३ के आखिर की बात है। उन दिनो मैं मद्रास रहने लगा था और कार्यवश कलकत्ता दस-बारह दिनो के लिए आया था। एक दिन पूज्य पिताजी (स्व० तुलसीरामजी सरावगी) के पास बिडला ब्रदर्स की ऑफिस ८, रायल एक्सचेंज प्लेस मे बैठा था कि श्रद्धेय भागीरथजी भी वही आ गये और मेरे प्रणाम करने के साथ-साथ ही बोले कि तुम बडे मौके पर आये हो। बगाल रिलीफ कमेटी का काम, जब तक कलकत्ता मे हो तब तक जरा सम्हाल दो। भगदड के कारण कार्यकर्ता नही मिल रहे है। पिताजी और भागीरथजी के सम्बन्ध अत्यन्त ही निकट के थे और इधर मुझे भी १९४१-४२ के बर्मा शरणार्थी सेवा कार्य मे सलग्न रहने के कारण सार्वजनिक-कार्यों मे रुचि रहने लगी थी। भागीरथजी की आकर्षण-शक्ति मुझे बगाल रिलीफ कमेटी के सेवा कार्य मे खीच ले गयी। उनके साथ मेरा यह प्रथम सार्वजनिक सेवा कार्य मे सम्पर्क था।

बगाल के मानव-रचित उक्त दुर्भिक्ष की अपनी एक दर्दनाक कहानी है, जब कलकत्ते की सडको पर लाखो की सख्या मे बगाल के ग्रामीण अचलो से आये भूखे-अधनगे स्त्री-पुरुष और बच्चे तडप-तडप कर मर गये थे। यद्यपि अनेक सेवा-सस्थाओ ने अपनी अपनी सामर्थ्य के अनुसार सेवा कार्य प्रारम्भ किया था किन्तु गैरसरकारी स्तर पर बगाल के चुने हुए नेताओ और समाज-सेवको ने बडे पैमाने पर बगाल रिलीफ कमेटी के नाम से सहायता कार्य शुरू किया था और इसके मन्त्री थे श्री भागीरथजी कानोडिया। मद्रास से आदरणीय श्री रगलालजी जाजोदिया भी कलकत्ता आकर इस सेवा कार्य मे जुट गये थे। भागीरथजी की आफिस ८, रायल एक्सचेंज प्लेस ही उक्त समिति का कार्यालय थी।

भागीरथजी एक तरफ प्रतिदिन अर्थ-सग्रह की व्यवस्था करते, दूसरी तरफ कैम्पो मे जाकर शरणार्थियो की चिकित्सा, भोजन और वस्त्रो का प्रबन्ध करते। केवल कलकत्ता शहर ही ग्रामीण जनता के लिए रोटी पाने का एकमात्र केन्द्र न बन जाय, इस निमित्त डॉ० श्यामाप्रसाद मुखर्जी और भागीरथजी बगाल के गावो-गावो मे जाकर नि शुल्क चावल वितरण की व्यवस्था करते। सरकारी और अर्ध-सरकारी गोदामो मे लाखो टन अनाज भरा था किन्तु बाहर लोग भूखो मर रहे थे। यह डॉ० श्यामाप्रसाद मुखर्जी और भागीरथजी का ही श्रेय था कि राहत कार्य इतने बडे क्षेत्र मे हुआ कि भूखी जनता विप्लव और अराजकता की ओर नही झुकी। सस्ते के उस जमाने मे इस राहत कार्य मे चालीस लाख रुपये से अधिक की राशि खर्च हुई।

बंगाल उन दिनो मौत की घाटी बन चुका था और भागीरथजी को एक देव पुरुष की तरह उस मौत की घाटी के हर कोने मे अपनी सहायता का हाथ पहुचाते मैंने देखा था। मन मे अपार करुणा लिए इस व्यक्ति को मैंने अपनी सुध-बुध खो कर बगाल बचाने मे बगाल की जनता को बचाते हुए निकट से देखा था और जो श्रद्धा भक्ति उनके प्रति मन मे जन्मी, वह सदैव बनी रही।

श्री भागीरथजी ने सेवा को अपने जीवन का प्रधान लक्ष्य बनाया किन्तु सेवा-सस्थाओ से चिपके रहने की पद-लिप्सा उनमे कभी नही आई। सामाजिक सुधारो मे वे सदैव अग्रणी रहे किन्तु परिवर्तन और सुधारो की सीमाओ का उल्लघन उन्होने कभी नही किया। राजनैतिक क्षेत्र मे उनका अवदान महत्वपूर्ण था, स्वतन्त्रता सग्रामी वे रहे, अपने सभी समकालीन नेताओ के निकट सम्पर्क के व्यक्तियो मे वे थे किन्तु कभी भी राजनीति को अपने व्यक्तिगत या व्यापारिक लाभ का साधन नही बनने दिया। एक व्यक्ति मे इतने गुणो का एक साथ समावेश दुर्लभ होता है।

वे सार्वजनिक सस्थाओ की नीव के पत्थर थे। उनकी गतिविधिया मारवाडी रिलीफ सोसाइटी, श्री शिक्षायतन अथवा मारवाडी बालिका विद्यालय तक ही सीमित नही रही, कवि गुरु रवीन्द्रनाथ के शान्तिनिकेतन और हरिजन सेवक सघ तथा सस्ता साहित्य मण्डल भी उनके अवदान से अछूते नही रहे। व्यक्ति और सस्थाए उनसे उपकृत हुई, अनेक उनकी छत्रछाया मे बढे, फूले किन्तु भागीरथजी के लिए जैसे यह सब सामान्य बात थी। कही चर्चा नही, कही प्रचार नही, कही स्वागत और अभिनन्दन नही। विदेशी सरकार थी तब भी और राष्ट्रीय सरकार रही तब भी।

भागीरथजी अपने कृतित्व और अवदान के लिए स्वागत और अभिनन्दन, पद और ओहदे, प्रशस्तिया और उपाधिया लेने के लिए रुके नही, मानव कल्याण के लिए वे सदैव चलते ही गये और उनके साथ अपने जीवन के प्राय. ४० वर्षो के निकट सम्बन्ध मे मैंने देखा कि उनके मार्ग मे सदैव ही फूल खिलते रहे।

दुर्लभ चरित्र के इस देव पुरुष को कोटिश. प्रणाम।

—·०·—

भारत सरकार के भूतपूर्व शिक्षा मन्त्री

श्री कालूलाल श्रीमाली

सच्चा जन-सेवक

दिसम्बर १९३२ मे मैं काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के ट्रेनिंग कालेज मे अध्ययन कर रहा था। विश्वविद्यालय के होस्टल मे जिसमे इतने लोग रहते थे, बिजली नही थी। महामना मालवीयजी ने आदेश दिया कि यदि विद्यार्थी इसके लिये चन्दा करें तो बिजली के तार लग जाए गे। हम लोगो को चन्दा करने के लिये कूपन दिये गये। मेरे मित्र स्वर्गीय वेश गोपाल झिंगरन के साथ मैं कलकत्ता गया हुआ था। उन्होने श्री भागीरथजी कानोडिया से मेरा परिचय कराया। भागीरथजी उन दिनो जकरिया स्ट्रीट मे रहते थे। चन्दा तो उन्होने दिया ही, परन्तु उन्होने भोजन के लिए भी हम दोनो को आमन्त्रित किया। यह भागीरथजी से मेरी प्रथम भेंट थी। उनके रहन-सहन, वेश-भूषा और सरल स्वभाव से मैं बडा प्रभावित हुआ और धीरे-धीरे यह प्रथम भेंट घनिष्ठ मैत्री मे परिणत हो गई। उनके घर पर ही ठहरता था। भागीरथजी के स्नेह और कृपा का मैं पात्र बन गया था।

विद्या भवन के सचालन के लिये मुझे प्राय. चन्दे के लिये कलकत्त जाना पडता था। भागीरथजी स्वय तो चन्दा देते ही थे, परन्तु दूसरो से दिलवाने मे भी सहायता करते थे। एक भी बार ऐसा नही हुआ होगा कि उन्होने सहायता नही की हो। मुझे यह मालूम था कि कई लोग उनके पास सहायता के लिए आते और कोई भी उनके दरवाजे से खाली हाथ नही जाता था। एक बार जब वे आर्थिक कठिनाई मे थे तब भी उन्होने दान दिया। अधिकतर लोग तो दान देकर अपना नाम उनके साथ जोडना चाहते है परन्तु भागीरथजी कभी अपना नाम नही चाहते थे। विद्या भवन को जो उन्होने दान दिया वह कुल मिला कर इतनी रकम हो गई थी कि एक इमारत उनके नाम से की जा सकती थी। मैंने जब यह प्रस्ताव उनके सामने रखा तो उन्होने एकदम अस्वीकार कर लिया। इस माने मे भागीरथजी विरले ही व्यक्ति थे।

राजस्थान के सार्वजनिक-जीवन मे भागीरथजी का विशेष स्थान रहा। स्वतन्त्रता के पहले कई सस्थाओ को उन्होने अपनी सहायता से सीचा और पुष्ट किया। पिछले कुछ वर्षो मे उनका स्वास्थ्य गिरने लगा था। उनको कई बार मैंने कहा कि उन्हे अब विश्राम करना चाहिए परन्तु अन्त तक वे जन-सेवा मे लगे रहे। जहा-जहा लोगो को पीडा होती या अकाल पडता वहा भागीरथजी पहुच जाते और लोगो के कष्ट-निवारण मे लग जाते। गर्मी के मौसम मे जब सेठ लोग प्राय. पहाडो पर या ठण्डे देशो मे घूमने के लिए जाते है, उस समय भागीरथजी राजस्थान के रेतीले हिस्सो मे लू का सामना करते हुए दौरा करते थे। उनके देहावसान से राजस्थान ने एक बहुत बडा जन-सेवक खो दिया है।

—: ० .—

साप्ताहिक हिन्दुस्तान के
संयुक्त सम्पादक, स्व० मोतीलालजी केजड़ीवाल के पुत्र
श्री गोविन्दप्रसाद केजड़ीवाल

ऊंचाई के हिमालय

मानव के प्रति मानव की सहज जिज्ञासा मानव की आदिम वृत्ति है। लेकिन यह सहजता मनुष्य अपने अहम्, कुण्ठा और यान्त्रिकता की बोझिलता से विह्वल होने के कारण विसारता जा रहा है। स्व० भागीरथजी कानोड़िया मे यह सहजता अपने प्रकृत स्वरूप मे अन्त तक विद्यमान थी। उनकी यह सहजता मुझे बडी महगी पड़ती थी। हर बार मिलने पर वह मेरा कच्चा चिट्ठा विस्तार मे सुनना पसन्द करते थे। हर बार एक ही तरह का चिट्ठा सुनाना मुझे अखरता भी था, लेकिन कष्ट इसलिए नही होता था कि वह मुझे बारम्बार सुनाते-सुनाते कण्ठस्थ हो गया था।

वह मेरे पूज्य पिताजी (स्व० मोतीलालजी केजडीवाल) के मित्र थे। वय मे भागीरथजी मेरे पिताजी से बडे थे, लेकिन वे पिताजी का सम्मान अपने अग्रज की भाति करते रहे।

भागीरथजी को मेरी कुछ बातें पसन्द नही थी। वे उनकी स्पष्ट शब्दो मे तीखी आलोचना भी करते। कई बार विरक्ति की सीमा तक भी मैंने उनको अपने प्रति पाया, फिर भी कुछ ऐसी बात थी कि घूम-फिर कर उनकी मुझ मे सहज जिज्ञासा अपने प्रकृत स्वरूप मे सदा पलट आती थी।

मैं उनको अपना जीवन-दर्शन कभी समझा नही पाया। उन्होने कभी इसका मुझे मौका भी नही दिया। वे खाटी राष्ट्रीय वृत्ति के व्यक्ति होते हुए भी बहुत ही व्यावहारिक थे। व्यावहारिक होना उन्हे पसन्द था। वे चाहते थे कि मनुष्य अपनी भावुकता के साथ अपनी रोजी-रोटी के मामले मे भी चौकन्ना रहे। वह स्वय इसके उदाहरण थे।

मेरी वय १७ वर्ष रही होगी। शिक्षा भी अधूरी थी। द्वितीय विश्व-युद्ध का जमाना था। भागीरथजी जेल से वापस आ चुके थे। मेरे पिताजी जेल मे ही थे। अपनी सहज वृत्तिवश भागीरथजी ने मेरे लिए एक बड़ी अच्छी नौकरी एक भारत-प्रसिद्ध फर्म मे तय कर दी। काम था कैशियर का। वेतन भी खासा था। मेरी झक का खयाल रखते हुए उन्होने मुझे पहले बताने की आवश्यकता नही समझी। सिर्फ यह आदेश दिया कि फलां व्यक्ति से मैं मिल लू। फला व्यक्ति भी प्रथम श्रेणी के उद्योगपति थे। मैं उन दिनो बडी मलग तबीयत का था। आत्म-सम्मान के बोझ मे उचक कर चलता था। 'तुम' शब्द से चौकता था। अन्ततोगत्वा यही 'तुम' मेरे आड़े आ गया। मैंने स्पष्ट रूप से 'तुम' शब्द पर आपत्ति की और बाहर निकल आया।

जाहिर था मुझ-जैसे कूढमगज को भेजने पर उन्होने भागीरथ जी को फोन किया होगा। मैं वहा से लौटकर भागीरथजी के दफ्तर के बाहर उनके चपरासी के पास बैठ गया। वह भी मेरी उम्र का था। मुझसे यारी मानता था। इतने मे घनघनाती हुई घटी बजी। मै समझ गया। मैंने उसमे कहा, 'यदि मुझे बुलाए तो कह देना कि मैं नही हू।' फिर कई बार घटी बजी। अन्ततोगत्वा मुझे उनके दरबार मे पेश होना पडा। उनकी मुद्रा कठोर थी। मुझे देखते ही कुर्सी से उठ खडे हुए। बोले—'आप, इधर आकर मेरी कुर्सी पर बैठिए।' 'आप' पर बहुत-जोर था। फिर डांट कर बहुत-कुछ कहा।

मैंने तत्काल कलकत्ता छोड दिया और अपनी प्रियनगरी वाराणसी मे आकर, पढने-लिखने लगा। कुछ वर्षों के बाद जब मैं उनसे फिर मिला, तब वे उसी सहज जिज्ञासा-वृत्ति से मिले। उस घटना को एकदम भुला बैठे थे। इसके बाद मैं न जाने कितनी बार मिला होऊगा। वही सहजता, वही वात्सल्य।

मैं कहना यह चाहता हू कि मनुष्य मे दूसरो के दुख-दर्द और खामखयाली को समझने की जितनी क्षमता होती है, वह उतना ही बडा मनुष्य होता है। जिसमे यह नही होता उसे ही ओछा कहा जाता है। भागीरथ जी इस ऊचाई के हिमालय थे।

मैं उनसे अन्तिम बार ३० जून, १९७९ को कलकत्ता मे मिला था। मेरी भतीजी अलका का विवाह था। उन्हे निमन्त्रित करने गया था। वे अस्वस्थ थे। पैर मे भी कष्ट था। फिर भी आए। आते ही बोले—'गोविन्द, तुम इतने दिन दिल्ली में रहे, अभी तक मिनिस्टर नही बन पाए। न जाने कितने ऐरे-गैरे बन गए!" मैंने छूटते ही कहा—'ताऊजी, मैं ऐरे-गैरो मे नही हू।'

—: ० :—

कलकत्ता विश्वविद्यालय में हिन्दी-प्राध्यापक,
प० बगाल विधान सभा के सदस्य
श्री विष्णुकान्त शास्त्री

सहज सरल भागीरथजी

स्वर्गीय भागीरथजी कानोडिया सरलता की प्रतिमूर्त्ति थे। मैं उनसे बहुत बार मिला हू किन्तु कभी ऐसा नही लगा कि उनकी बातचीत या व्यवहार मे कही कोई दाव-पेच है। बराबर यही लगता रहा जो है, प्रत्यक्ष है, सहज है, समक्ष है। उनकी आदत ही थी उपकार करते रहने की। वे जो कर सकते थे, तुरन्त कर देते थे। 'ना' कहने मे उन्हे संकोच होता था किन्तु वे मिठास के साथ 'ना' कहने की कला जानते थे। और मजा यही था कि 'ना' सुननेवाले भी उनसे सादर सम्बन्ध बनाये रखते थे।

मेरा उनका सम्बन्ध १६५३ से ही रहा है। तब तक मैं कलकत्ता विश्वविद्यालय मे प्राध्यापक हो चुका था। वे मेरे पिताजी के सुहृदो मे थे और उस नाते भी मुझसे स्नेह रखते थे। मैं भी उनका आदर करता था। मिलना-जुलना कम होने पर भी आत्मीयता मे कमी नही थी। कलकत्ता विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के विकास के प्रति उनकी दिलचस्पी थी। १ पूर्णकालिक और १ अशकालिक प्राध्यापक वाला हिन्दी विभाग श्रद्धेय कल्याणमलजी लोढा के अथक प्रयास से १ रीडर, ३ पूर्णकालिक और २ अशकालिक प्राध्यापको के विभाग के रूप मे १९५३ मे ही विकसित हुआ था। हलवासिया ट्रस्ट के अध्यक्ष की हैसियत से भागीरथजी ने 'रीडरशिप' के लिये अपेक्षित धनराशि दिलाने मे महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। हिन्दी के प्रति उनकी भक्ति देशभक्ति का ही अग थी। वे उसकी उन्नति को सब उन्नतियो का मूल समझते थे। हिन्दी की विविध सस्थाओ को उनका उदार सहयोग था। अब ऐसे नि स्वार्थ हिन्दी प्रेमी कम होते जा रहे हैं।

श्री रामचरित मानस के प्रति उनका गहरा लगाव था। इस नाते भी वे मुझसे स्नेह करते थे। जब भी मैं उनसे मिलता वे अन्य चर्चाओ के साथ ही मानस की चर्चा अवश्य करते। राम से राम का नाम या राम का सेवक क्यो बडा माना जाये, इस पर उन्होने बहुत रस लेकर एक बार मुझ से बातचीत की थी। मैंने इस सूची मे राम के चरित को भी जोड दिया था। गीतावली मे तुलसीदास ने लिखा है :

नित नये मगल मोद अवध सब, सब विधि लोग सुखारे।
तुलसी तिन्ह सम तेउ जिन्ह के प्रभु तें प्रभुचरित पियारे॥

राम का नाम, राम का चरित, राम का सेवक ये तीनो हमे राम से जोडते है और इसी क्रम मे हम मे अनजाने ही दिव्य गुणो का समावेश कर देते है। हमलोगो के

लिये ये तीनो राम से भी अधिक है क्योंकि इन्ही के कारण राम हमे मिलते हैं। वास्तव मे देखा जाये तो यह वडा कहना भी सरसता-वृद्धि का एक उपाय भर है। आखिर ये तीनो राम के होने के फलस्वरूप ही बड़े माने गये हैं अतः वडप्पन तो राम का ही है। इनमे अपूर्वता यह है कि इनका अवलम्बन ग्रहण करने पर हम राम तक पहुच सकते है अन्यथा कहा राम और कहा हम। मुझे याद है उस दिन की चर्चा से वे बहुत प्रसन्न हुए थे।

कठोर परिश्रम, ईमानदारी और समझदारी के बूते पर ही वे अत्यन्त साधारण स्थिति से उठते हुए अत्यन्त असाधारण स्तर तक पहुचे थे। अपने अभ्युदय के साथ-साथ सामाजिक अभ्युदय के लिये भी वे प्रयासशील रहे। समर्पित सेवा भाव उनकी पहचान थी। जीवन के अन्तिम समय तक वे बीसियो लोक मगलपरक सस्थाओ से जुडे हुए थे।

काश, आज की पीढी भी उनके इन गुणो को अपने मे उतार पाती। उनकी पावन स्मृति को मेरी विनीत श्रद्धाजलि।

—: o :—

प्रसिद्ध पत्रकार, लेखक
श्री विश्वनाथ मुखर्जी

अजातशत्रु–कानोड़ियाजी

कलकत्ता जाने पर श्री नथमल केडिया की सराय मे ठहरता हूं और मेरा सबसे पहला कार्य होता है—श्रद्धेय सीतारामजी सेकसरिया का दर्शन। इस कार्य मे पिछले १६ वर्षों मे कोई व्यतिक्रम नही हुआ। नथमल केडिया नित्य सुवह विक्टोरिया गार्डेन जाते है जहा अनेक मित्र एकत्रित रहते हैं। सेकसरियाजी आदि कुछ लोग कुर्सी पर बैठते है और शेष लोग नीचे दरी पर।

इन्ही आगन्तुको मे मैंने एक वृद्ध सज्जन को देखा, जिनका रग-रूप और आकृति सरदार पटेल की तरह थी। पूछने पर पता चला कि आप ही श्री भागीरथ कानोडिया हैं। कानोडियाजी के नाम से परिचित था, पर उनकी आवाज और शक्ल देखकर मुझे निराशा हुई। जिस प्रकार अन्य लोगो के चेहरे की बनावट, बात करते समय बननेवाली मुद्राए, गले की मिठास व्यक्ति को प्रभावित करती है, यह सब गुण कानोडियाजी मे नही थे। लेकिन यह बराबर देखा करता कि उस मण्डली मे जब वे आते, तब प्रत्येक व्यक्ति के मन मे श्रद्धा की भावना उत्पन्न हो जाती। लोग बड़े मनोयोग से उनकी बातें सुनते और अपनी राय देते थे। उस समय ऐसा लगता कि इस नक्षत्र-मण्डली के वे एकमात्र चाद थे जो पूर्ण आकाश को आलोकित कर रहे हैं। मैं उनके प्रत्येक क्रिया-कलाप का अध्ययन करता रहता था।

कई बार इण्डिया एक्सचेंज स्थित उनके आफिस मे आचार्य सीताराम चतुर्वेदीजी के साथ गया तो पाया कि इस व्यक्ति की तीक्ष्ण दृष्टि है। सक्षेप मे अपनी बात इस ढग से कह देते हैं जैसा अन्य कोई नही कह पाता। यह कला उनमे उच्च कोटि की थी। कानोडियाजी के सहयोगी मित्रो ने भी मेरी इस धारणा की पुष्टि की है।

इस प्रकार जब भी कलकत्ता जाता तब उनके दर्शन सुबह विक्टोरिया मैदान के पूर्वी क्षेत्र मे होता। न जाने क्यो इच्छा हुई कि उनका अभिनन्दन किया जाय। जिस व्यक्ति के प्रति इतने लोग श्रद्धावान है, उनके अभिनन्दन मे मुझे सहयोग मिलेगा। जब मैंने उनसे आग्रह किया तब उन्होने तुरत इनकार कर दिया।

बाद मे १० वर्ष बाद हिन्दी-जगत के मूर्धन्य कथाकार भाई राधाकृष्ण ने लिखा कि अगर आप अपने प्रयोजन मे सफल हो जाते तो सोचता कि मगल ग्रह की यात्रा करके लौट आये हो। सन् १९३८ मे जिन दिनो मैं कलकत्ता मे कार्यरत था, तब उनके अभिनन्दन की चर्चा चली थी। वे अपना अभिनन्दन करवाना दूर रहा, फोटो तक छपवाना पसन्द नही करते थे। ऐसा सन्त पुरुष मैंने जीवन मे नही देखा। आपके पहले मैं कोशिश कर चुका हू। लेकिन मुझे सफलता नही मिली। वे जो कुछ करते हैं, चुपचाप करते है। आत्म प्रशंसा का लोभ उनमे नही है। मैं स्वय उनकी कृपा से दबा हू।

भाई राधाकृष्णजी की बातो की सत्यता का पता आगे चलकर हो गया। जिस उत्साह और लगन से उन्होने तुलसी ग्रन्थावली और सूर ग्रन्थावली के प्रकाशन मे सहयोग दिया, उसकी प्रशसा आज भी पण्डित सीताराम चतुर्वेदी करते है। अगर वे स्वय इस महान कार्य मे भाग न लेते तो यह कार्य सम्पन्न न होता।

सन् १९७३ ई० के दिनो मुझसे एक अपराध हो गया। भारत की एक अनोखी सस्था है—ठलुआ क्लब। इस सस्था का प्रारम्भ से मन्त्री हू। सस्था की ओर से कभी-कभी महत्वपूर्ण स्मारिकाए प्रकाशित की जाती हैं। सन् १९७३ के सितम्बर माह मे "यह बनारस है" नामक एक स्मारिका प्रकाशित की गयी जिसमे देश के विभिन्न फर्मों से विज्ञापन मागे गये। भाई नन्दलाल कानोडिया की एक फर्म से बिना मागे विज्ञापन आ गया। हम किसी लाभ के लिए यह कार्य नही करते। अब तक प्रकाशित स्मारिकाओ मे से अनेक अप्राप्य है।

अवैतनिक पद पर कार्य करने पर पदाधिकारी जरा झुझलाया-सा रहता है। इसी झुझलाहट मे मैंने एक पत्र फर्म को लिखा। बात यह हुई कि सभी जगहो से रुपये आ गये थे। हिसाब बन्द करना था। कई स्मृति-पत्र भेजने पर भी उत्तर प्राप्त नही हो रहा था। तब मन मे शका उत्पन्न हुई।

मेरा सख्त पत्र पाते ही श्री नन्दलालजी कानोडिया ने तूफान मचा दिया। श्रद्धेय सीताराम सेकसरिया, रामेश्वर टाटिया, आदरणीय बाबूजी (श्री भागीरथ कानोडिया) तथा बनारस के मुरारीलाल केडिया और प० सीताराम चतुर्वेदी को पत्र लिखा। तब तक मुझे यह ज्ञात नही था कि श्री नन्दलाल कानोडिया कौन है, और श्री भागीरथजी कानोडिया से उनका क्या रिश्ता है। सभी लोगो ने मेरी बुरी तरह फजीहत की। जब यह ज्ञात हुआ कि श्री नन्दलाल कानोडिया बाबूजी के सुपुत्र हैं तब मैं लज्जा और ग्लानि से त्रस्त हो उठा।

लेकिन अजातशत्रु कानोडियाजी की उस महानता को कभी नही भूलूगा जिसे उन्होने पत्र मे व्यक्त किया। उन्होने लिखा था—आप लेखक और विद्वान है। किसी भी व्यक्ति को ऐसा पत्र कदापि नही लिखना चाहिए जिससे उसे क्लेश प्राप्त हो। नम्रता ही मानवता का आभूषण है।

इन दो लाइनो ने मेरी आत्मग्लानि को दूर कर दिया। सिर्फ यही नही, भाई नन्दलाल कानोडिया का भी स्नेह बराबर प्राप्त होता आ रहा है। इसके बाद जब कभी उनसे मिला, कभी इस घटना का जिक्र नही हुआ।

काशी मे जब कभी कोई बडा समारोह होता है और मुझे उसमे सहयोग देना पडता है, तब स्मारिका के प्रकाशन का भार भी मुझे दिया जाता है। ठलुआ क्लब के अलावा अन्य सस्थाओ की ओर से जब स्मारिका का सम्पादन करता, तो उन्हें स्मरण करता। एक बार उन्होने लिखा कि आपको इतना अधिकार है कि आप मुझसे बिना अनुमति लिए दो पेज विज्ञापन छापकर बिल मेरे नाम भेज दे—बोरसिला टी इस्टेट और आदित्य मिलस। कभी-कभी तो मुकुन्दगढ से भी पत्र देते रहे। उनके इस व्यवहार के कारण उनके व्यक्तित्व की छाप गहरी होती गयी। वह इसलिए कि मैंने कभी भी निजी स्वार्थ के लिए उनसे किसी किस्म की याचना नही की और न कभी वे मेरे व्यवहार से असन्तुष्ट हुए।

कैंसर से पीडित होने के बाद मैं जब कलकत्ता गया तो न जाने किसके माध्यम से मुझे सहायता देने का प्रस्ताव रखा। मैंने उसे इनकार कर दिया। मैंने कहलाया कि उत्तर प्रदेश सरकार और कलकत्ता के कई उद्योगपतियो की सहायता मैंने नही ली। क्या होगा? बहुत होगा, मर जाऊ गा।

कुछ दिनो तक शायद १९७७ ई० के प्रारम्भ मे मैं श्री नन्दलाल टाटिया के भवन मे ठहरा था। वे नित्य मुझे साथ लेकर बाबू के पास जाते। देर तक बातें होती। अचानक एक दिन कानोडियाजी ने प्रस्ताव रखा कि मैं टाटियाजी द्वारा निर्मित होनेवाले अस्पताल मे जाऊ और वहा की व्यवस्था देखू। प्रस्ताव अच्छा था और उन दिनो मैं बेकार भी था। लेकिन उतनी दूर जाने की इच्छा नही हुई।

सहसा एक दिन मेरे पास नथमल केडिया का पत्र आया कि भागीरथजी कानोडिया नही रहे। याद आती है श्री रामकुमार भुवालका की बातें। एक चित्र दिखाते हुए उन्होने कहा था—कलकत्ता के हम पंच पाण्डव हैं। इनमे भाई बसन्त मुरारका नही है। उस चित्र मे सर्वश्री भागीरथ कानोड़िया, मोतीलाल लाठ, सीताराम सेकसरिया, प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका और रामकुमार भुवालका खडे थे।

उन्हे यह ज्ञात हुआ कि मैं रामेश्वरजी टाटिया की एक पुस्तक का सम्पादन कर रहा हू तो 'बहुता पानी निर्मला' की प्रति भेजते हुए लिखा कि इस पुस्तक के बारे मे अपनी राय भेजें। उस पुस्तक मे प्रयोग की गयी कहावतो का काशी के राजस्थानी नाटको मे उपयोग हुआ था।

श्री कानोडियाजी के निधन के बाद जब कलकत्ता गया तो नथमल केडिया ने कहा—शायद आपको नही मालूम कि आपको सम्मानित करने का विचार जब मेरे मन में आया और मैंने उनके सामने प्रस्ताव रखा तो कानोडियाजी बोले—निस्सन्देह मुखर्जी अभिनन्दन के लायक है। कभी किसी से कुछ नही चाहता। इस तगदस्ती मे भी हमेशा मस्त रहता है। एक काम करो, मेरे नाम दो हजार लिख लो और मगवा लेना।

मैं यह सुनकर अवाक रह गया। शायद जनवरी १९७७ को अर्चना की ओर से मेरा अभिनन्दन हुआ था। अनेक लोगो के भाषण हुए। जब भागीरथजी बोलने के लिए खडे हुए तब मैंने सोचा कि देखू, क्या कहते हैं, क्योकि मैं यह जानता था कि उनसे मेरी घनिष्ठता नही हुई और न वे मेरे व्यक्तित्व और कृतित्व से परिचित हैं।

पुरस्कार का चेक देते समय उन्होने कहा—"मैं मुखर्जी के व्यक्तित्व और कृतित्व से भलीभाति परिचित नही हू, पर एक साहित्य सेवी का सम्मान करने मे गौरव का अनुभव कर रहा हू। यह एक शुभ कार्य है।"

इस गोष्ठी मे अनेक लोगो के भाषण हुए। काफी बढा-चढा कर मेरी प्रशसा की गयी, पर इन चन्द शब्दो ने सभापति तक के भाषण को भी रसहीन कर दिया।

श्री भागीरथजी का शरीर नश्वर था। बुढापे ने आक्रमण कर रखा था, पर उनकी स्मृतिया इसलिए कचोटती हैं कि वे बहुत भले आदमी थे। किसी भी सत्कार्य के लिए आना-कानी नही करते थे। न जाने कितने लोग उस महान आत्मा से प्रभावित हुए हैं। आम तौर पर मैं उनसे प्रभावित नही होता, जो अपने को महान समझते हैं या धन का जिन्हे अहकार रहता है। कारण मैंने जीवन मे अर्थ को हमेशा ठोकर मारी है, पर आत्मीयता और प्यार जिससे प्राप्त करता हू, उसकी अनुपस्थिति की रिक्तता बराबर अनुभव करता हू। भागीरथजी कानोडिया आज नही हैं। उनके जीवन-काल मे कुछ नही हो सका, पर ये सुमनाजलि हमेशा उनकी याद दिलाती रहेगी।

—:०:—

प्रसिद्ध मजदूर-नेत्री, सामाजिक कार्यकर्त्री
डा० मैत्रेयी बोस

सौम्य और प्रेमल

मैं १९४२-४३ के बगाल के अकाल के दिनो मे भागीरथजी के निकट सम्पर्क मे आई। उस वक्त वह बगाल रिलीफ कमेटी के सेक्रेटरी थे। डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी की पहल पर यह कमेटी बनी थी। भागीरथजी और श्यामाप्रसाद बाबू के बीच इस तरह का सहयोग और सद्भाव था कि आज उसकी कल्पना करना भी कठिन है। बगाल रिलीफ कमेटी ने अविभाजित बगाल मे अकाल पीडित लोगो की सहायता के लिए जो काम किया, उसकी जितनी प्रशसा की जाए थोडी है। देश के विभिन्न प्रान्तो से अकाल मे राहत-कार्य करने बहुत से लोग स्वयसेवक के रूप मे बंगाल आए। ये लोग भागीरथजी के व्यक्तिगत निर्देशन मे ही काम करते थे।

अत्यधिक कार्यभार और आवागमन की भारी कठिनाइयो के बावजूद भागीरथजी ने सारे अकालग्रस्त क्षेत्रो की यात्रा की। मुझे याद आता है एक बार हम जाडे मे सुबह चार बजे एक भीड भरी ट्रेन से बीच के एक स्टेशन पर उतर कर एक भीड भरी बस मे सवार होकर और फिर तीन मील पैदल चलकर बगाल सहायता कमेटी द्वारा स्थापित एक शिशु-गृह की एक सामान्य घटना की जाच करने गये थे। यह शिशु-गृह अ० भा० शिशु रक्षा समिति को सौपा जा रहा था। मैं अ० भा० शिशु रक्षा समिति की बगाल शाखा की सेक्रेटरी थी। बगाल रिलीफ कमेटी सिर्फ अकाल मे राहत कार्यो के लिए बनाई गई थी। राहत-कार्य के दौरान उसने शिशु-गृह खोले थे। अकाल के बाद कमेटी के तहत चलनेवाले मेदिनीपुर के तीन शिशु-गृहो को चलाने के लिए भागीरथजी ने हमारे सगठन को चुना। इन शिशु-गृहो को हमे सौपते वक्त उन्होने बडी उदारता का परिचय दिया। मेरे साथ उन्होने जिस सहानुभूति और सद्भाव के साथ व्यवहार किया, उसके लिए मैं उनकी हमेशा कृतज्ञ रहूगी।

बगाल का अकाल जब अपनी चरम अवस्था मे था तब बगाल रिलीफ कमेटी ने काशीपुर मे एक सस्ता भोजनालय और अछिपुर व धापा के इलाको मे सस्ते अनाज की दुकाने खोलने के लिए मुझे २६००० (किस्तो मे) रु० दिए। सस्ते अनाज की इन दो दुकानो से कपडा भी सस्ती कीमत पर बेचा जाता था। अकाल की स्थिति के सुधरने पर भोजनालय और दुकाने बन्द कर दी गई तो मैं एक दिन बगाल रिलीफ कमेटी के कैशियर के पास ११००० रु० (जो सस्ते भोजनालय और दुकानो से इकट्ठा हुए थे)

का चेक लेकर गयी तो कैशियर को बड़ा आश्चर्य हुआ। भागीरथजी पास ही बैठे थे, उन्होने कैशियर को कहा, "मैंने आपसे कहा था न, सस्ती दुकानो से कुछ रुपया जरूर वापस आएगा। मैत्रेयी बहन ने मेरी आशा पूरी की है।"

१९५८ मे मोटर दुर्घटना के बाद स्वास्थ्य के निरन्तर बिगड़ते जाने की अवस्था मे भी भागीरथजी ने हमारी शिशु रक्षा समिति की हमेशा मदद करने की कोशिश की। अ० भा० शिशु रक्षा समिति की स्थापना के समय से ही वह उसकी प्रबन्ध-समिति के सदस्य थे और कुछ समय तक उसके कोषाध्यक्ष भी रहे। स्वास्थ्य के कारण जब उनके लिए हमारी बैठको मे भाग लेना सम्भव नही रहा तब भी वह हमारी भरसक मदद करते रहे।

सामाजिक कार्यकर्तृ के रूप मे १९४३ मे उनके निकट सम्पर्क मे आने के पहले भी उन्होने मेरी चिकित्सक के रूप मे बहुत मदद की और मुझे अपने परिचित और सम्बन्धियो के केस दिए। उनके परिवार मे प्रसूति का एक कठिन केस मेरे जिम्मे था। परिवार की महिलाए चाहती थी कि किसी बड़े डाक्टर की सलाह ली जाए लेकिन भागीरथजी ने कहा कि उन्हे मेरी योग्यता पर पूरा विश्वास है और रोगी को मेरे सुपुर्द कर दिया जाए और जैसी भी मेरी सलाह हो उसे माना जाए। मैं तब जर्मनी से लौटी ही थी और नई-नई प्रैक्टिस शुरू की थी। उनकी इस आस्था से मेरा आत्म-विश्वास बढ़ा। प्रसूति का यह केस अच्छी तरह हो गया और सबको बड़ी खुशी हुई।

मैं भागीरथजी को अत्यन्त आदर और कृतज्ञता के साथ याद करती हू।

—: ० :—

सुप्रसिद्ध समाज-सेवी, राष्ट्रकर्मी
श्री राधाकृष्ण नेवटिया

मूक सेवाव्रती

अगली पक्ति के क्रम मे तीन लोकव्रती समाजसेवी हमारे वीच से चले गये। ये महान आत्माए इस शताब्दी के प्रथम दशक से ही लोकयज्ञ मे कूद पडी थी और जहा इन्होने देश के औद्योगिक, व्यावसायिक और निजी वैभव का सम्वर्द्धन किया, वही समाज की नई जागृति मे अपनी अमूल्य भूमिका भी प्रदान की। इनमे अहकार का लेश भी नही था। ये थे भाई भागीरथजी, भाई रामकुमारजी और भाई ईश्वरदासजी। इनमे भाई भागीरथजी तो भागीरथ ही थे। आज उनका स्मरण होते ही लगता है कि कही कुछ ऐसा दरक गया है, जो भरा नही जा सकता। अब तो बस यादे ही यादें है।

सादा जीवन, विचारो की ऊंचाई और निष्काम कर्म का समुच्चय थे भागीरथजी। मैं उन्हे ६०-६५ वर्षो से जानता था। उनके साथ काम करने का अवसर मिला है। तव, यानी आधी शताब्दी पहले भी, वे जव एक साधारण व्यक्ति थे, साधारण खादी के धोती-कुर्ते मे रहते थे और ६० वर्ष वाद भी जव वे वैभव के शिखर पर थे तव भी वही साधारण पोशाक थी। समाज-सेवा का व्रत एक रफ्तार से चलता रहा। उसमे किसी भी क्षण न तो कोई कमी आयी, न मन मे ही किसी प्रकार का विकार-भाव आया। समय का चक्र तीव्र गति से समाज मे अहवादी परिवर्तन और प्रदर्शन लाता रहा है, जीवन के नैतिक और सम्वेदनात्मक मूल्य तीव्रता से बदलते जा रहे है, आत्म-प्रदर्शन जितना वढ रहा है, आन्तर-मूल्य उतने ही घटते जा रहे है, किन्तु भागीरथजी तो भागीरथ थे जो आदर्श की लीक से हटना नही जानते थे।

लम्बे कद के मावले भागीरथजी को देख कर कोई भी नही कह सकता था कि यह व्यक्ति वैभव और सेवा के चरम विन्दु पर आसीन है। उन्हे देखने से यही लगता था कि एक औसत भारतवासी जो गावो मे रहता है, उन्ही मे से एक होगा कोई। यह उनके चरित्र की महत्ता थी। वस्त्रो से या दम्भ से कोई महान नही होता। झोपडी से महल तक की मजिल लाघते हुए भी जो व्यक्ति वदला न हो यानी उसमे दर्द झोपडियो का हो, महलो का दम्भ न हो, वही थे भागीरथजी।

वे जो देते थे, उसे हम दान नही कह सकते। दान मे एक दम्भ होता है, ऊचाई-निचाई का भाव होता है। हम देते हैं, चू कि हमारे पास है और लेनेवाला छोटा है, दरिद्र है, कुछ ऐसा ही भाव आदर्शहीन-दान मे होता है। मेरे सामने देनेवालो के कई चित्र है, उनमे दो चित्र उज्ज्वल और अति उज्जवल है। देना जिनका धर्म और स्वभाव

बन गया हो तथा जो अपने को केवल माध्यम मानते हो कि अपना तो कुछ भी नही है, जो देता हू, गोविन्द का दिया हुआ गोविन्द को ही देता हू। ऐसे दान मे हृदय होता है, विनम्रता होती है, ज्यो-ज्यो हाथ ऊपर उठते है, आखें नीची होने लगती हैं। इन चित्रो मे भाई भागीरथजी और भाई राधाकृष्ण कानोडिया का चरित्र उज्जवल है। भागीरथजी के भीतर देने की ऐसी वृत्ति बन गयी थी कि अगर किसी दिन कोई लेने नही आया तो वे व्यग्र हो जाते थे और कहते थे कि आज का दिन व्यर्थ और खराव हो गया। कोई लेनेवाला नही आया। धन्य है यह दान की वृत्ति, जो देने के लिए दुकान खोले बैठा हो और पुकार रहा हो—प्यारे, मुझसे कुछ लेकर मुझे शाति दो।

भागीरथजी क्राति के मूक सवाहक थे, उस क्राति के जिसे महात्मा गाधी ने प्रर्वतित किया था। वे राजनीति से दूर थे किन्तु समाज-क्राति के सवाहक थे। रूढियो से वे जीवन भर लडते रहे। पर्दा प्रथा के वे कट्टर विरोधी थे। एक घटना याद आती है, जो उनके जीवन की सर्वोत्कृष्ट घटना मानी जा सकती है। जमुनादासजी खेमका का वडा सम्मानित परिवार था और रूढियो के लिए भी विख्यात था। हमलोग रूढियो को तोडते थे और खेमकाजी के समान्तर एक समाज था जो इसे वनाए रखना चाहता था। भागीरथजी की लडकी सौभाग्यवती सावित्री के विवाह का प्रश्न उठा। खेमका परिवार भागीरथजी की लडकी अपने परिवार मे लाना चाहता था, किन्तु आडे आ रही थी पर्दा-प्रथा। भागीरथजी अटल थे कि पर्दे के भीतर उनकी वेटी का व्याह नही होगा। खेमका परिवार भागीरथजी को छोडना नही चाहता था। अत लडकी वाले की शर्त के सम्मुख लडका वाला झुक गया। भागीरथजी की वेटी खेमका परिवार मे आयी और उस परिवार से पर्दा ही उठ गया। खेमका परिवार मे मेरी वहन व्याही गयी थी और सौ० सावित्री इस प्रकार मेरी भागिनेय पुत्रवधू हुई।

जहा तक मुझे याद है—भागीरथजी से मेरी प्रथम भेट जकरिया स्ट्रीट स्थित विडलो के मकान पर हुई थी। राजस्थान से कुछ समाज-सेवक आए थे और राजस्थान मे शिक्षा प्रसार की योजना उस दिन ही वनी थी। भागीरथजी इस योजना के मन्त्री निर्वाचित हुए थे। उस सभा मे मैं भी गया था। तभी से भागीरथजी से मेरी मित्रता उनके जीवन पर्यन्त रही। फिर तो वे मेरे सम्बन्धी भी वने और हम प्राय एक साथ समाज के काम मे भी रहते आए थे। राजस्थान मे शिक्षा प्रचार का श्रेय भागीरथजी को अधिक मिलता है।

१९४३ मे बगाल के अकाल मे भागीरथजी ने खुलकर सेवा का कार्य किया था। वे एक सुचिन्तक और सुलेखक थे। राजस्थानी कहावतो के सग्रह के लिए उन्होने वडा परिश्रम किया था। वे प्रेरणादायी कथाओ के लेखक थे और उनका एक सग्रह 'वहता पानी निर्मला' के नाम से प्रकाशित भी है।

भागीरथजी के चले जाने से हमे ऐसा लगता है कि समाज का एक मूक और अनन्य साधक चला गया जिसकी स्थान-पूर्ति नही हो सकती। मुझे आशा है उनके उत्तराधिकारी उनके आदर्शो की रक्षा करेंगे और समाज के युवक उनका अनुकरण करते हुए अपना जीवन धन्य वना सकेंगे।

—: ० :—

प्रसिद्ध सामाजिक कार्यकर्ता,
मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी के भूतपूर्व प्रधानमंत्री
श्री बजरंगलाल लाठ

सेवा ही जिनका लक्ष्य था

स्व० भागीरथजी कानोडिया से मेरा सर्वप्रथम परिचय १९३७ मे हुआ, जब मैं स्व० जमनालालजी बजाज के कारण मारवाडी रिलीफ सोसाइटी की कार्यकारिणी मे चुना गया। वैसे तो भागीरथजी का मकान मेरे मकान के बहुत नजदीक था, इस कारण मैं उन्हे बचपन से ही देखता रहता था लेकिन मारवाडी रिलीफ सोसाइटी की कार्यकारिणी मे निर्वाचित होने के बाद उनके सान्निध्य मे काम करने का अवसर मिला। कुछ महीनो तो मैं सोसाइटी का स्थानापन्न प्रधानमत्री भी रहा जब वे सोसाइटी के अध्यक्ष थे। उसके बाद तो एक बार ऐसा भी अवसर आया कि सोसाइटी के दो गुटो मे एक की ओर से वे और दूसरे की ओर से मैं प्रधानमन्त्री के पद के लिए खडा हुआ था। दूसरे गुट ने सहृदयतापूर्वक हमारे गुट को काम करने का अवसर दिया और वे लोग सोसाइटी से पृथक हो गये।

मुझे उस गुट ने प्रधानमन्त्री बनाया तो स्व० ओंकारमलजी सराफ ने मुझे कहा : "बजरग, सोसाइटी के मत्री-पद को सफल बनाना चाहते हो तो भागीरथजी से सम्पर्क रखना। जहा तक हो उनसे बराबर मिलते रहना।" मैं उनकी बात सुनकर हैरान हो गया क्योकि वे उस गुट के थे जो सोसाइटी से पृथक हो गया था, वे मुझे भला किस प्रकार अपनायेगे। राजस्थान मे एक कुए का जीर्णोद्धार करना था, मैं हिम्मत करके उनसे सहायता लेने गया। बडे स्नेह से मुझसे बात की, सोसाइटी का हाल पूछा। कुए के लिए सहायता दी। मैं गद्‌गद् हो गया।

इसके बाद तो उनके साथ काम करने के अनेक अवसर आये। ऐसे अवसर भी आये जब मैं सयोजक रहता और वे अध्यक्ष। मैं उनकी राय और उनका मार्ग-दर्शन प्राप्त करता रहता था। उनमे किसी प्रकार का दिखावटीपन नही था। उनके मन मे सेवा की भावना ही प्रधान रहती थी। सेवा ही उनका दर्शन थी।

स्व० किशनलालजी जालान एक बडे समाजसेवी थे। उन्होने अनाथालयो के माध्यम से दीन-दुखियो की बडी सहायता की। ८५ वर्ष की उम्र तक वे मन्त्री के रूप मे लिलुआ और फतेहपुर के अनाथालयो का काम देखते थे। इन्ही जालानजी ने मुझे एक दिन कहा "बजरग, भागीरथजी मारवाडी कर्ण हैं।" रोज दो-चार जनो या सस्थाओ को दान रूप मे कुछ न देने पर उन्हे अच्छा नही लगता था।

वैसे तो उन्होने सारे देश की ही सेवा की, लेकिन राजस्थान के प्रति उनके हृदय मे विशेष तडप थी। जब भी राजस्थान मे अकाल पडा, भागीरथजी निज की तथा समाज की थैली लेकर वहा पहुच जाते। वे खुद तथा कार्यकर्ताओ को साथ लेकर

गाव-गाव मे घूम कर मनुष्यो तथा गायो की सेवा करते। राजस्थान मे वैसे तो उनके अनेक साथी रहे, लेकिन सीकर के भाई बदरीनारायणजी सोढानी उनके दाहिने हाथ थे। कल्याण आरोग्य सदन की आर्थिक स्थिति जब कमजोर हो गयी और सदन डावाडोल होने लगा तब भागीरथजी ने उसे सभाला ही नही, उसके कार्य-क्षेत्र को भी बढाया। एक दिन मैंने उनसे कहा कि भागीरथजी, आप टी० बी० सेनोटोरियम को इतना बडा बना रहे है, आपके बाद इतने बडे भार को कौन सभालेगा? हस कर बोले: प्रभुदयालजी (हिम्मतसिंहका) भी ऐसा ही कहते हैं लेकिन मैं आपको कहता हू कि आप सभालेंगे। उनका कहना ठीक ही था अगर कर्मठ व्यक्ति कार्य को पहले से ही तौलना प्रारम्भ कर दे तो वह अपने जीवन मे बडा काम कर नही सकता। अगर बापू सोचते कि स्वराज के लिए मैं प्रयत्न तो कर रहा हू, लेकिन इतने बडे देश को मेरे बाद कौन सभालेगा तो स्वराज शायद कल्पना ही रह जाता।

मेरा कई मामलो मे भागीरथजी से मतभेद हुआ, जैसे गायो की रक्षा और यज्ञ के बारे मे। लेकिन मैंने उन्हे यह कहते भी सुना कि गाय की रक्षा होने मे देश का कल्याण है। पहले वे उपयोगी गाय के मसले मे फंसे हुए थे। जब वे इस दिशा मे साथ हुए तो कस कर पूर्ण गो वध बन्दी के लिए तन, मन, धन से काम किया। उनके साथ काम करके बडा आनन्द मिला।

मैं अपनी बात कहू कि मैं जब भी किसी सार्वजनिक मसले मे अटकता था, चाहे वह मारवाडी रिलीफ सोसाइटी का हो या और कुछ, मैं उनके पास जाता था और उनसे बात करके मुझे रास्ता दिखलायी पडने लग जाता था। कई वर्षो से तो मेरी हालत थी कि यदि महीने-बीस दिन उनसे बिना मिले हो जाते तो बेचैनी महसूस होने लगती थी। जीवन मे अनेक कार्यकर्ताओ के साथ काम करने का अवसर मिला लेकिन भागीरथजी जैसा त्यागी, सेवा ही जिसके जीवन मे प्रधान हो और हर समय सेवा के लिए तैयार (एवररेडी) व्यक्ति नही मिला। सेवा उनके जीवन का लक्ष्य बन गयी थी।

उनको अनेक बार इस श्लोक को कहते सुना था:

सर्वे भवन्तु सुखिन सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद दुखमाप्नयेत्॥

—:०.—

समाजवादी कार्यकर्ता
श्री विजय ढाढनिया

ताऊजी : स्मृतियों की सुगन्ध

श्रद्धेय ताऊजी आफिस से उतर कर गाडी मे बैठ रहे थे, मैं उधर से गुजर रहा था, उन्हे प्रणाम किया तो पूछा "कही कोई खास काम से जा रहे हो ?" मेरे "ना" कहने पर बोले "बैठो, चलो मेरे साथ।" "कहा ?" "चलो पता चल जायेगा।"

हम लोग पहले महात्मा गाधी रोड पर खादी भण्डार गये, वहा उन्होने कुछ कपडा खरीदा। फिर हम चल पडे हावडा की ओर। बाली ब्रिज पार कर गाडी एक छोटी-सी गली के सामने रुकी। धीरे-धीरे पैदल चल कर एक खस्ताहाल मकान मे गये। एक खादीधारी वृद्धा ने हमारा स्वागत किया। वह एक स्वतन्त्रता सेनानी थी। जब देश आजाद नही हुआ था तब आजादी के लिए मीरा की तरह बावली थी। विदेशी कपडो की दुकानो पर पिकेटिंग करती, सभाओ मे जाती, जेल को मदिर समझती। सम्पन्न घर की थी। पति को उनका आजादी-प्रेम पसन्द न था। बहुत वर्षों पहले पति से अलग हो गयी थी। अपनी स्कूल-अध्यापिका भतीजी के साथ रहती थी। स्वाभिमानी इतनी कि वर्षो जेल मे रहने के बावजूद पेंशन के लिए दरखास्त नही दी। ताऊजी को अपना भाई मानती थी। और ताऊजी भी अपनी इस बगालिन बहन के प्रति अपना कर्त्तव्य निभा रहे थे। उन्होने बहन को रुपये-कपडे दिये। बहुत से पुराने लोगो की चर्चा चली। वही मुझे पता चला कि ताऊजी का पुराने लोगो से सम्पर्क बना हुआ है। मतलब कि इसी तरह कई लोगो को चुपचाप कपडा-रुपया पहुच जाया करता है। इस बीच भतीजी भी स्कूल से आ गयी। चाय पिलाने मे सकोच कर रही थी, खाली चाय कैसे दे, प्याले भी साबुत नही थे। सकोच ताऊजी ने ही तोडा, "चा खावावे ना, आमि तो तोमार हाथेर चा खेते एसेचि।" तब उसने हमे चाय पिलायी। लौटते समय सारे रास्ते ताऊजी वृद्ध महिला का इतिहास, उसके त्याग की कहानी कहते रहे।

X X X

अब्दुल कयूम, चावल के दानो और पत्तो पर चित्र बनाने का काम बडी सफाई से करता है। इस लडके को मैं कई वर्षो से जानता हू, चाह कर भी उसकी कोई खास मदद नही कर पाया। एक दिन उसे ताऊजी के पास बैठा देखा। कैसे उनके पास पहुचा, नही जानता। लेकिन उसकी यह ताऊजी से दूसरी मुलाकात थी। ताऊजी ने उसे छोटे-छोटे दो लाइन के बीसियो पत्र और पते दिये। अब्दुल कयूम उन पत्रो के साथ गया, उसकी कला बिकी। ताऊजी ने मुझसे कहा, "मैं इस लडके को रुपया भी दे सकता था पर इससे इसमे आत्म-विश्वास नही आयेगा। चिट्ठियो से इसका सामान

विकेगा, सम्पर्क बढ़ेगा और आत्म-विश्वास आयेगा।" ताऊजी की सहायता से अब्दुल ने अपनी शिक्षा पूरी की और उन्ही के सम्पर्क से नौकरी भी प्राप्त की। ताऊजी जब अस्वस्थ हुए, तो वह कई बार उन्हें देखने गया पर डाक्टरी-सलाह के कारण उनसे मिलना सम्भव नहीं था। एक दिन धर्मतल्ला मे वह मुझसे मिल गया और मुझसे यह जानकर कि 'ताऊजी नही रहे', मेरा हाथ पकड कर बच्चो की तरह रोने लगा। मैं अवाक्! रास्ते पर लोग इकट्ठा होने लगे, पूछने लगे, मैंने बडी कठिनाई से उसे चुप कराया और वहां से भाग खडा हुआ।

x x x

ताऊजी का कमरा सबके लिए खुला रहता था, वहां स्लिप सस्कृति नही पहुच पायी थी। देश भर से उनके पास पत्र आते रहते थे, खासतौर पर पुराने गाधीवादियों के, हरिजन सघ, गो-सेवा सघ, सर्वोदय आश्रमो के। गावो मे कहा क्या हो रहा है, कहां कोई पुराना कार्यकर्ता बीमार है, यह जानने और मदद देने को व्यग्र वह पचासो पोस्टकार्ड और अन्तरदेशीय लेकर बैठते, सबका उत्तर अपने हाथ से लिखते। लिखावट उनकी सुन्दर नहीं थी, पर मन तो था। पत्र लिखने के बीच बीसियों व्यक्ति आते—किसी को राशन का पैसा चाहिए, किसी को दवा का, किसी को कुछ, किसी को कुछ। मेरे जानते, एक भी व्यक्ति खाली हाथ नही लौटा। यो उनकी अनुभवी दृष्टि जान लेती कि कौन सही मांग रहा है और कौन गलत। जरूरतमन्द को ज्यादा मिलता। कुछ को मैंने पहचाना भी, कि वे आदतन मागते है, पर ताऊजी को बताने पर इसका कोई असर नही हुआ। वह देने के आदी हो गये थे। कई लोगो को जो छोटा-मोटा धन्धा करके, कुछ बेच कर काम करना चाहते, उन्हे सामान खरीद दे कर मदद करते।

x x x

ताऊजी से कबसे घनिष्ठता हुई, ठीक याद नही। छोटी उम्र से ही उन्हें सभा-सस्थाओ मे देखता था, बुजुर्ग होने के नाते नमस्कार भी करता था लेकिन बात नही हुई। मुझे तारीख याद नही है—एक प्रसिद्ध सस्था ने गांधीजी के सचिव प्यारेलाल का भाषण करवाया था। वह गाधीजी के अन्तिम दिनो की मन स्थिति पर बोले थे। भाषण के बाद प्रश्न पूछने को कहा गया। मैने कुछ कडे सवाल पूछे, खासतौर पर विभाजन और काग्रेस पार्टी को विघटित करने के गाधीजी के अन्तिम आदेश के बारे मे। मेरा सवाल पूछना था कि सभा मे जैसे हडकम्प मच गया। उस आभिजात्य वातावरण मे सब मेरे ऊपर बरस पडे। न जाने क्या-क्या कहा गया। मुझ पर तो लोग बरसे ही, उन्होने डॉ लोहिया को भी बहुत कुछ कहा। खैर, दबा तो मैं भी नही, लेकिन उस वातावरण मे मुझे सिर्फ दो व्यक्तियो की सहानुभूति मिली—एक ताऊजी की और दूसरे श्री लक्ष्मीनिवास झुनझुनवाला की। ताऊजी ने पीठ भी ठोकी पर यह भी कहा, 'प्रश्न तुम्हारे ठीक थे, पर तुम्हे उत्तेजना मे नही, कडे शब्दो मे नही, सयमित-भाषा मे शाति से दृढता के साथ पूछना चाहिए था।' मेरे ऊपर असर पडा। ताऊजी की बात का मै कायल था पर आदत और स्वभाव से लाचार।

x x x

विनोबा भावे कलकत्ता आये, अपनी भूदान यात्रा के सिलसिले में। उनका जम कर स्वागत हुआ। ताऊजी को मैंने बाबा के लिए कहा कि गाधी का सबसे बडा दुश्मन आया है। सत्ता-पक्ष के फायदे के लिए विनोबा गाधीजी की क्रान्तिकारिता, का गलत भाष्य कर गाधी-विचार को मार रहे है। ताऊजी की बाबा पर भक्ति थी। उन्होने मुझे अपने दफ्तर बुलाया। यह पहला मौका था उनके दफ्तर जाने का। मैं अपने साथ दो हथियार ले गया था—एक थी लुई फिशर की छोटी सी किताब, जिसमे लुई फिशर के प्रश्न का उत्तर देते हुए गाधीजी ने कहा था कि आजाद भारत मे जमीन उसकी होगी जो जोतेगा, उस पर मेहनत करेगा, जमीन का एक पैसा मुआवजा नही दिया जायेगा। दूसरी पुस्तक थी डा० राममनोहर लोहिया की पुस्तक 'सरकारी, मठी एव कुजात गाधीवादी'। पहली बार ताऊजी से मेरी बहस हुई। वह अपने तर्क बडी शाति से देते थे, मैं उत्तेजित होकर। मेरी बातें सुनकर कहा "तुम्हारे तर्कों मे दम तो है लेकिन किसी को किसी का दुश्मन नही कहना चाहिए। गाधीजी को तो मानते हो न ? वह अपने बडे दुश्मन को भी प्यार से ही जवाब देते थे।" ताऊजी मे सयम था, शाति थी, धीरज था, मुझ मे क्रोध, उत्तेजना और विपक्षी पर तीक्ष्ण प्रहार करने की आदत। लेकिन कैसे, क्यो ताऊजी का इतना स्नेह मिला, नही जानता। यह उनकी महानता ही थी। ताऊजी ने हस कर कहा भी था "इसमे तुम्हारा दोष नही, पीढी का अतर है, गुरु का भी। मेरे नेता गाधीजी थे, तुम्हारे डा० लोहिया।" बाद मे वह मुझे विनोबा व सर्वोदयी साहित्य देते तो मैं उन्हे डा० लोहिया की पुस्तको और अन्य समाजवादी पुस्तको से पढकर सुनाया करता। मै देखता कि ताऊजी शान्त होकर सब सुनते। मारवाडी समाज के दो-चार लोगो को छोडकर सभी का मुह का स्वाद डा० राममनोहर लोहिया का नाम सुनते ही बिगड जाया करता था।

x x x

एक दिन ताऊजी ने मुझसे मजाक मे कहा 'तुम यहा समाज-सुधार के आदोलनो मे क्यो भाग नही लेते ?' इस पर मैं गुस्से मे उबल पडा और न जाने क्या-क्या कह गया। मैंने कहा—"ये कैसे समाज सुधारक है जो बालीगज के आलीशान के 'आलयो' और 'निकेतनो' को छोडकर बडाबाजार के मध्यवर्गी और गरीब लोगो के यहा विवाह-शादी मे फिजूलखरची बद करवाने के लिए प्रदर्शन करते हैं। विवाहो मे दिखावा और फिजूलखरची वन्द करने व परदा प्रथा उठाने के लिए समाज के रूढि-वादियो के हाथो पुरानी पीढी के कम-पढ-लिखे समाज सुधारको ने जो अपमान सहा था, उसका लोगो पर असर पडा था। लेकिन आज के तथाकथित सुधारक ज्यो-ज्यो प्रस्ताव पास करते है, प्रदर्शन करते है, मर्ज बढता ही जाता है। ऐसा क्यो होता है ? इन तथाकथित समाज सुधारको मे से अधिकाश तो परिचय बढा कर अपना धन्धा बढाने वाले है और कुछ को नेता बनने का शौक है।" इतना कहने के बाद मैंने उनसे पूछा "ताऊजी आपके यहा अगर कोई ब्याह हो तो क्या ये समाज-सुधारक उसमे फिजूलखर्ची होने पर नही आयेंगे ?" ताऊजी ने कहा : "सभी आयेंगे, तुम भी आओगे।" मैने कहा "मैं अवश्य आऊ गा पर आपके यहा तथा अन्य लोगो के यहा शानशौकत वाले ब्याह मे भाग लेने के बाद मुझे क्या इस बात का नैतिक अधिकार

रह जायेगा कि जिन्हे मैं नही जानता उनके यहा शानशौकत के खिलाफ प्रदर्शन करूं ?" दूसरा कोई होता तो इस पर भडक उठता लेकिन ताऊजी ने मेरी पीठ ठोकी और एक किस्सा भी सुनाया कि कैसे एक नेता ने अपने पुत्र की सगाई मे माग कर 'स्टीरियो' लिया। यह १५-१६ वर्ष पहले की बात थी, जब देशी स्टीरियो नही बनते थे, विदेशो से चोरी-छिपे लाये जाते थे।

x x x

एक दिन मारवाडी रिलीफ सोसाइटी और सेवा के काम की बात चलने पर ताऊजी ने कहा · "एक समय था जब चन्दा देने वाले, लाने वाले और बाढ-भूकम्प मे काम करने वाले एक ही लोग होते थे। अब यह बात नहीं रही। देने वाले और लाने वाले बाढ, भूकम्प मे काम करने नही जाते। दरार बहुत बढ गयी है। स्वाभिमानी लोगो का इस माहौल मे काम करना कठिन है। ऊपर के लोग कार्यकर्ताओ पर मन्त्रियो की सिफारिशो के अनुसार काम करने का दबाव डालते हैं।"

x x x

ताऊजी का सबसे बडा गुण था—दूसरे के दृष्टिकोण को समझने का और सही होने पर उसे स्वीकार करने का। यह गुण मैंने तो अपने समाज मे किसी मे नही पाया। उन्होने किसी की निन्दा की हो, मुझे याद नही आता। उनके स्वभाव से एकदम विपरीत होने के बावजूद उनका बहुत स्नेह मिला। कभी दस-पन्दरह दिन मिल नही पाता तो मेरी भतीजी चि० मजु ढाडनिया को वह फोन करते, पूछते, तुम्हारा चाचा कहा है ? कहते, उसे कहो आकर मिलेगा।

x x x

मेरे सकोची मन ने उनसे कभी सार्वजनिक काम के लिए पैसे नही मागे। मेरा उनसे चन्दे का रिश्ता नही रहा। लेकिन वह इतने उदार थे कि तीन मौको पर उन्होने बिना मागे पैसे दिये, पूछा भी "कम तो नही हैं।" कहा, "जब भी तुमको आवश्यकता हो नि सकोच माग लेना।" मेरी ही उनसे मागने की हिम्मत नही होती थी। यो अपने हम उम्र दोस्तो मे मैंने किसी को भी छोडा नही है, वहां मैं बहादुर हो जाता हू। हमलोग अहमदाबाद मे साबरमती आश्रम मे "अगरेजी हटाओ सम्मेलन" कर रहे थे। यह सम्मेलन मेरे गुरु डा० राममनोहर लोहिया का प्रारम्भ किया हुआ था। इस बार लोहिया की स्मृति मे आयोजन जरा जोर से किया जा रहा था। मेरे हाथ मे सम्मेलन के परचे थे। ताऊजी ने पूछा, तुम्हारे पास क्या कागज है। मैंने सम्मेलन और अग्रेजी हटाओ आन्दोलन के बारे मे उन्हे बताया कि हम चाहते हैं कि भारतीय भाषाओ की स्थापना हो और अगरेजी को हटाया जाय। इस पर उन्होंने कहा, 'एक समय था जब गाधीजी के निर्देश पर हमलोगो ने हिन्दी का बहुत काम किया। सब खतम हो रहा है। अब तो मेरे पोते भी मुझसे अगरेजी मे बात करते है। क्या हो गया है हम सबको ?" क्या इस काम के लिए तुमको रुपये नही चाहिए ?' मैंने कहा, "कुछ तो कर रहा हू लेकिन मेरे दोस्तो की भी इस आन्दोलन मे रुचि नही है, मजाक उडाते है, यह भी कोई आन्दोलन है।" ताऊजी ने अपने आप रुपये दिये और कहा, "मुझसे मागने मे सकोच क्यो ? अपने लिए मागने मे शर्म, मैं

समझ सकता हू। सार्वजनिक कार्य मे क्यों हो ? मेरे पास तो व्यवसाय है पर मैं मागता रहता हू। सीकर के टी० बी० अस्पताल के लिए तुम देखते ही हो मैं मागता रहता हू। सकोच मत करो।"

एक और मौके पर उन्होंने अखिल भारतीय वनवासी सम्मेलन के लिए अपने आप तो दिये ही, पास बैठे एक सज्जन से उसी समय दिलवाये। पटना से निकलने वाली पत्रिका 'सामयिक वार्ता' मे घाटा रहता है। उसमे छपे एक लेख के कारण वह उसके सम्पादक श्री किशन पटनायक से मिलना चाहते थे। मैंने उन्हे मिलाया भी। मुझे पूछा, कितनी प्रतिया निकलती है, कैसे निकलती है ? मैंने घाटा बताया और सकेत से एक विज्ञापन की बात की तो ताऊजी ने एक साल के लिए १२ विज्ञापन दिये और तुरन्त उसकी चिट्ठी भी बनवा कर दे दी।

x x x

उनके बारे मे जितना भी लिखू गा, थोडा ही होगा। कितनी ही बातें याद आती हैं, कितने ही लोगो से मेरा उन्होने परिचय कराया होगा (पैसेवालो से नही)। रामकृष्ण मिशन के साधुओ से लेकर अलग-अलग क्षेत्रो मे काम करनेवाले लोगो से। इनमे श्री बदरीनारायण सोढानी भी थे। मेरे ऐसे कई मित्र हैं जिन पर मैं गर्व कर सकता हू लेकिन मारवाडी समाज मे इक्के-दुक्के व्यक्ति ही हैं जिन पर मेरी श्रद्धा है। इनमे से एक थे मेरे बडे भाई जैसे श्री बालकृष्ण गुप्त, ज्ञान के उत्तु ग शिखर और एक थे ताऊजी, शात, सयमित और गगा की तरह पवित्र और निर्मल।

अगर उनके गुणो मे से एकाध भी मिल जाय तो अपने को धन्य मानू गा। उन्होने जो स्थूल धन कमाया उस पर अधिकार उनके पुत्र-पौत्रो का होगा। लेकिन सेवा, निष्ठा, उदारता, सहिष्णुता और परदुखकातरता के गुणो की जो सुगन्ध उन्होने बिखेरी उस पर अधिकार उन सभी का है जिनको प्यार से उन्होने अपना बनाया था।

—: o :—

सुप्रसिद्ध चित्रकार
श्री दिनकर कौशिक

दीनवत्सल

भागीरथजी से मेरा परिचय अल्प था किन्तु उसकी स्मृति स्नेहिल व गहरी है।

शान्तिनिकेतन से भागीरथजी का बहुत घना सम्बन्ध था। मुक्तहृदय और मुक्ततर कर कमलो से उन्होने हिन्दी भवन की सहायता की थी। एक बार जब भागीरथजी शान्तिनिकेतन आये तो उन्हे एक युवा चित्रकार की खोज थी, जो उनके श्रीनगर के कालीन कारखाने मे डिजायन का काम करने को राजी हो। उन्होने आचार्य नन्दलाल बसु से अपनी आवश्यकता बतायी। नन्दबाबू ने मुझे कहा "दिल्ली मे एक सज्जन, सिघीजी तुम्हारी प्रतीक्षा करेंगे। तुम्हे उनसे मिलना है। नौकरी के लिए हमारी ओर से तुम्हारा नाम भेजा गया है। मन लगाकर काम करना। रोजी के लिए हर शख्स काम करता है। स्वधर्मानुसार काम करना हमारा कर्तव्य है।" इसके एक दिन बाद ही भवरमलजी सिघी का पत्र भी मेरे पास आ पहुचा। मैं नियत दिन सिघीजी से मिला, उनसे नियुक्ति-पत्र लेकर डिजाइनर के पद पर काम करने श्रीनगर पहुच गया।

श्रीनगर मे कारखाने के मैनेजर प० दीनानाथजी से मेरी मित्रता हो गयी। वह कहा करते "हमारे पुराने मालिक हेडो साहब कानूनी आदमी थे, उनका सारा काम नियम कायदो और कानून से बधा होता। वे सबसे सख्ती से पेश आते। उनसे बात करने की आसानी से हिम्मत नही होती। लेकिन हमारे नये मालिक भागीरथजी बडे रहमदिल इन्सान है। उनके सामने जाने के लिए हिम्मत की जरूरत नही। कोई भी उनके पास जा सकता है, अपनी बात सुना सकता है। उनको यदि लगे कि आदमी कष्ट मे है, तो वह सहानुभूति प्रकट करते हैं।" मैं सारी बातें सुना करता। मै हेडो साहब से भी कई बार मिल चुका था और उनके कर्मठ स्वभाव से परिचित था।

श्रीनगर मे मेरे पहुचने के बाद राजनीतिक घटनाए बहुत तेजी से तूफान का रूप लेने लगी। १९४७ के कुछ महीनो मे बडी उथल-पुथल हुई। गाधीजी श्रीनगर आये, अनेक कार्यकर्ताओ से मिले। अगस्त मे पाकिस्तान ने बारामूला पर हमला किया। नागरिको मे भगदड मची। गाधी आश्रम के कुछ कार्यकर्ताओ की मदद से हवाईजहाज मे मुझे किसी प्रकार एक सीट मिली। मैं दिल्ली होते हुए कलकत्ता पहुचा।

मैं सोचता रहा, अब क्या करू ? हिम्मत करके डलहौसी स्क्वायर मे जनरल फाइबर लिमिटेड के दफ्तर मे गया, सिघीजी से मिला। कालीन का कारखाना जनरल फाइबर के तहत था और उसका काम भागीरथजी के सुपुत्र नन्दलालजी एव

निर्देशक सिंघीजी चलाया करते थे, सिंघीजी, भागीरथजी और नन्दलालजी से बात करने गये। भागीरथजी दीनवत्सल थे ही, उन्होने कहा "यह लडका जब हमारे यहा काम करने लगा, तो यह हमारा ही हो गया। ज्वायट फैमिली की तरह उसका दाना-पानी हमारे जिम्मे है। करने दो कुछ काम।"

कुछ दिनो बाद कलकत्ता के किसी विशाल उपवन मे एक अखिल भारतीय शिल्प प्रदर्शनी का अयोजन हुआ था। वहा जनरल फाइबर का स्टाल सजाने का भार मुझे दिया गया। इस प्रकार के काम का मुझे रत्तीभर भी अनुभव नही था, पर काम करने से ही अनुभव होता है। मैने बडी मेहनत की। एक सुन्दर विवरण-पुस्तिका छपवायी जिसका आवरण मेरे मित्र सत्यजित राय ने बनाया। उन दिनो वह कीमर कम्पनी के प्रधान आर्टिस्ट थे। फिर स्टाल के लिए कुछ अच्छी कालीनो का चयन किया। इस तरह स्टाल की काफी अच्छी सजावट हुई। एक शाम की बात है। चारो ओर लाउडस्पीकर बज रहे थे, शोर ही शोर था। मैं एक भारी कालीन समेट कर ठीक तरह से रखने की कोशिश कर रहा था। वजन बहुत ज्यादा था, समेटने मे दिक्कत हो रही थी। अचानक देखा कि भागीरथजी हाथ बटा रहे है। उनको समेटते देख और दस हाथ आगे बढे, और कालीन सही तरह से रखा गया। मैं देखता ही रह गया। इसके बाद वह कुछ समय स्टाल पर बैठे। सबके लिए शीतल पेय मगवाया। सबका कुशल पूछा। हसते-हसते सबसे व्यक्तिगत रूप से विदा ली।

उनकी ऐसी अनेक छोटी-छोटी बाते है। जो अब याद नही रह गयी हैं। यही लगता है कि सहस्त्र योजनो की उनकी दीर्घ तीर्थ यात्रा मे ऐसे कितने ही छोटे-छोटे कदम रहे होगे।

कालीनो के डिजाइनर से अपना कर्म-जीवन प्रारम्भ कर मैं शान्तिनिकेतन मे अध्यापक के रूप मे काम करने लगा। मेरे कर्म-जीवन का प्रारम्भ भागीरथजी की पुण्य स्मृति से आतरिक रूप से जुडा हुआ है। उनके प्रति अपनी सादर श्रद्धाजलि अर्पित करता हू।

—·०—

प्रसिद्ध हिन्दी कवि
श्री गुलाब खण्डेलवाल

समर्पित व्यक्तित्व

भागीरथजी के सम्बन्ध मे कुछ भी लिखना उतना ही कठिन है जितना ठोस सोने से आभूषण का निर्माण करना। सेवा इतनी मौन हो सकती है, अनुराग इतना निस्पृह हो सकता है और व्यक्तित्व इतना विवादरहित हो सकता है, इसकी कल्पना भागीरथजी को देखे बिना नही हो सकती है। वेदो मे वाणी को छान कर बोलने का निर्देश है। वे वाणी को इतना छान कर बोलते थे कि उनका शब्द-शब्द मन्त्र का रूप ग्रहण कर लेता था। उनकी गिरा मे अर्थ की ही नही क्रिया की भी अभेदता थी और इसलिए जो भी वे कहते उसका चमत्कारिक असर श्रोताओ के मानस पर होता था। भागीरथजी गाधी-युग के अन्यतम प्रसूनो मे थे। उनके कुम्हलाने से वाटिका मे जो स्थान रिक्त हुआ है उसका भरा जाना कठिन है। न अब वे माली ही हैं और न वैसी हवा ही है जिसने फूल खिलाए थे।

मैं जब भी भागीरथजी की बातें सुनता था या उनके सम्पर्क मे आता तो मन मे सदैव यही विचार आता था कि गाधीजी ने सेवा के पथ मे जो अपने आपको शून्य बना देने की बात कही थी उसे भागीरथजी ने अपने जीवन मे उतार लिया है, और शायद यही कारण है कि चुप रह कर भी इतना काम कर पाते हैं। ऐसे व्यक्ति उस दीपक के समान होते हैं जो स्वय जल कर प्रकाश तो देता ही है, दूसरे दीपको को ज्योतित करने का भी काम करता है। मुझे विश्वास है भागीरथजी की प्रेरणा का स्रोत उनके शरीर के नही रहने से भी सूखेगा नही क्योकि वे अपने जीवनकाल मे ही अपने कृश, दुर्बल शरीर से ऊपर उठे हुए लगते थे और उनके भगीरथ-सकल्पो और उनके विराट क्रिया-कलापो की छाया उनके भौतिक शरीर से हजारो गुना बडी लगती थी।

मुझे याद है कितनी कठिनाई से अपनी पुस्तक "अहल्या" के समर्पण के लिये मैं उन्हे राजी कर पाया था। जब उन्हे विश्वास हो गया कि यह समर्पण उन्हे प्रसन्न करने के लिये नही, केवल अपने हृदय की सन्तुष्टि के लिये ही मैं करना चाहता हू, तभी वे इसके लिये राजी हुए थे। "सर्वहिं मानप्रिय आप अमानी" की उक्ति उन पर पूर्णत चरितार्थ होती थी।

बाहर से अत्यन्त शान्त, गम्भीर और शुष्क से दिखाई देने पर भी भागीरथजी के अधरो मे सदैव एक विनोदपूर्ण मुस्कुराहट छिपी रहती थी और कभी-कभी वे इतना

सूक्ष्म और सटीक विनोद करते थे कि पण्डित रामचन्द्र शुक्ल की विनोदपूर्ण उक्तियो की याद आ जाती थी। एक बार जब सीकर मे स्वर्गीय रामेश्वरजी टाटिया की स्मृति मे टी० बी० के नये अस्पताल का शिलान्यास हो रहा था तो उस आयोजन मे भागीरथजी भी हमलोगो के साथ गये थे। मैं सीकर से अपने गाव मंडावा घूम आने के लिये नथमलजी केडिया को साथ लेकर जा रहा था। भागीरथजी ने पूछा—"आपलोग कहा जा रहे है ?" मैंने कहा कि मडावा जा रहे है। भागीरथजी ने धीरे से कहा कि ठीक है, आपके साथ रहने से नथमलजी को अच्छी खातिर हो जायगी। हमलोगो की मोटर जब थोडी दूर आगे बढ गई तभी मैं भागीरथजी की बात का अर्थ समझ सका। मडावा मेरा पैतृक गाव है और नथमलजी की वहा ससुराल है। इसी बात को लक्ष्य करके भागीरथजी ने मुझसे मधुर विनोद किया था।

कलकत्ता के विक्टोरिया मैदान मे सुबह जमने वाली गोष्ठी के भागीरथजी और सीतारामजी सेकसरिया प्रेरणा-स्रोत रहे हैं। भागीरथजी के अभाव मे वहा सारी मण्डली उदास लगती है। जीवन की यही नियति है। महाभारतकार को भी अन्त मे जीवन की यही परिणति दिखाने के लिए शान्ति-पर्व की रचना करनी पडी थी फिर भी उससे उद्योग-पर्व की महत्ता कम नही हो जाती। मैने अपने एक गीत मे जीवन की इसी विवशता को लक्ष्य कर के एक स्थान पर कहा है—

"शब्दो का कोई यहा अर्थ नही
तम से लडने मे ये समर्थ नही
फिर भी यह जलना था व्यर्थ नही
माना सब लिखा अनलिखा है
बुझते हुए दीपक की शिखा है"

इन्ही पक्तियो के साथ भागीरथजी को मैं अपनी विनम्र श्रद्धाजलि अर्पित करता हू।

—:०:—

प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री, वनस्थली विद्यापीठ के आचार्य,
राजस्थान के भूतपूर्व शिक्षा-मन्त्री
श्री प्रेमनारायण माथुर

पारदर्शी व्यक्तित्व

श्री भागीरथ कानोडिया से मेरा सम्पर्क सन् १९३८ मे हुआ, जब शास्त्रीजी (प० हीरालाल शास्त्री) के निमत्रण पर मैं वनस्थली देखने आया। उसी समय श्री भागीरथजी भी वनस्थली आए हुए थे। मार्च, १९३९ मे मैं वनस्थली आ गया और तब से बराबर भागीरथजी से मेरा सम्पर्क रहा। अधिकाश मे हमारा मिलना तभी होता था जब भागीरथजी वनस्थली आते थे। इस सम्पर्क के दौरान उनके व्यक्तित्व की जो छाप मुझ पर पडी उसका सक्षिप्त विवेचन करने का प्रयत्न मैं निम्न पक्तियो मे करूगा।

व्यक्ति के व्यक्तित्व का विश्लेषण तीन दृष्टियो से किया जा सकता है: (१) व्यक्ति के रूप मे, (२) व्यक्ति का जो भी धधा अथवा व्यवसाय हो उसकी दृष्टि से और (३) व्यक्ति की सामाजिक (राजनीतिक सहित) चेतना की दृष्टि से।

भागीरथजी एक व्यक्ति के नाते सीधे, सच्चे, सरल और मितभाषी व्यक्ति थे। उनके जीवन मे कोई आडम्बर नही था और उनका जीवन आइने जैसा स्वच्छ था। परिस्थितियो के अनुकूल वे अपनी व्यक्तिगत सुविधा-असुविधा मे आवश्यक समायोजन कर लेते थे और अपने आतिथेय को कभी भी यह अनुभव नही होने देते थे कि वह किसी सम्पन्न व्यक्ति का आतिथ्य कर रहा है। जिन व्यक्तियो मे इस प्रकार की सरलता का गुण होता है उनका सरल व्यक्तित्व सभी को आकर्षक और सराहनीय लगता है। भागीरथजी इसका एक अच्छा उदाहरण थे। उनकी यह सादगी और सरलता मुझे बडी पसन्द आती थी।

भागीरथजी के व्यक्तित्व का दूसरा पक्ष था उनके व्यवसायी होने का। वह एक कुशल और सफल व्यवसायी थे और इस क्षेत्र मे उन्होने अच्छी ख्याति प्राप्त की थी। सफल व्यवसायियो का यह गुण कि काम की और मुद्दे की बात कम से कम समय मे जान लेना, उनमे पर्याप्त मात्रा मे था। व्यापार-व्यवसाय के विषय मे उनकी दृष्टि और सूझ-बूझ का सबसे बडा प्रमाण इस क्षेत्र मे जो उन्होने प्रगति की, वह है। मेरा यह भी विश्वास है कि भागीरथजी उन व्यक्तियो मे से थे जो व्यक्तिगत ईमानदारी और सच्चाई तथा सामाजिक वृत्ति का व्यापार के क्षेत्र मे भी यथासम्भव अधिक से अधिक पालन करते हैं।

भागीरथजी के व्यक्तित्व का तीसरा महत्वपूण पक्ष उनकी सामाजिक चेतना से सम्बन्ध रखता है। मूलत. एक व्यवसायी होते हुए भी राष्ट्रीय भावना और सामाजिक सुधार के प्रति जो उनका आग्रह था वह उनसे परिचित लोग भलीभाति जानते हैं। यदि उदाहरण गिनाने हो तो अनेक उदाहरण गिनाए जा सकते है पर उसमे कोई लाभ नही। चाहे स्वाधीनता की लडाई हो, चाहे समाजसुधार का कार्यक्रम हो और चाहे सामूहिक कष्ट-निवारण या अकालपीड़ितो की सेवा जैसा कोई कार्यक्रम हो, सभी मे भागीरथजी का सहयोग, क्रियात्मक सहयोग और समर्थन प्राप्त होता था। सार्वजनिक कार्यकर्ताओ की वे इस सिद्धान्त को निभाते हुए सहायता करते रहे कि दाए हाथ मे दिया दान वाए हाथ को न मालूम पडे। राष्ट्र के कई नेताओ से उनका निकट का सम्पर्क था। ऐसा लगता था कि देश के नेताओ का आतिथ्य करना वह अपना कर्तव्य और सौभाग्य दोनो ही मानते थे। उनका सहयोग और समर्थन किसी व्यक्ति या सस्था विशेष तक सीमित नही था। वह सबके लिए उपलब्ध था। यही उनकी उदारता और उनकी विशेषता थी।

भागीरथजी के व्यक्तित्व के जिन पहलुओ का ऊपर वर्णन किया गया है उससे स्पष्ट है कि भागीरथजी न केवल एक सहृदय और सेवाभावी व्यक्ति तथा जागरूक और कर्तव्यपरायण नागरिक ही थे पर एक कुशल और सफल व्यवसायी भी थे जिन्होंने व्यापार के सामाजिक दायित्व को समझा और साथ-साथ व्यवहार मे निभाने का भी प्रयत्न किया।

—:०:—

भारतीय भित्ति-चित्रों के अध्येता इंग्लैंड-निवासी

श्री इल्लै कूपर

आतिथ्यपरायण

मैं सेठ भागीरथजी कानोडिया से एक ही बार मिला लेकिन एक बार का यह मिलना मुझे हमेशा याद रहेगा। मैं उन दिनो चूरू मे था और सेठो द्वारा शेखावाटी मे निर्मित हवेलियो और अन्य इमारतो की चित्रकारी का अध्ययन कर रहा था। श्री गोविन्द अग्रवाल भागीरथजी से मिलने मुकुन्दगढ जा रहे थे। उन्होने मुझे कहा, "मेरे साथ चलिये, आप एक और कसबा देख लेंगे।" तो हम मुकुन्दगढ पहुचे, वहा मेरी भागीरथजी से मुलाकात हुई। मुझे उनकी एक ऐसे व्यक्ति के रूप मे याद है जो शारीरिक रूप से वृद्ध हो जाने के बावजूद बहुत सचेत था। आसपास क्या हो रहा है, इसका उन्हें पूरा एहसास था।

यद्यपि वह बहुत व्यस्त थे और बहुत से लोग उनसे मिलने आये हुए थे फिर भी उन्होने मेरा बड़ा सत्कार किया। उन्होने मुझे अपनी हवेली और उसकी चित्रकारी के बारे मे बताया और भोजन पर आमन्त्रित किया। भोजन बहुत ही सादा और अच्छा था। भोजन के बाद उन्होने मुझे मुकुन्दगढ दिखाने की व्यवस्था की। जब मुकुन्दगढ देखकर हम लौटे तो उन्होने पास ही मे डुन्डलोद का किला देखने के लिए अपनी गाडी ले जाने को कहा। लेकिन बहुत देर हो चुकी थी इसलिए हम न जा सके। उनको स्थानीय कालेज मे जाना था। यह कालेज, मुझे पता लगा कि उनके द्वारा खोली गयी बहुत सी परोपकारी सस्थाओ मे एक था। हम उनके साथ कालेज गये। कालेज पहुचने पर उन्होने हम से कहा कि उनकी गाडी और ड्राइवर हमारे जिम्मे है और हम चूरू उनकी गाडी ले जाय। इस एक सक्षिप्त मुलाकात की मेरे ऊपर मुख्य छाप एक ऐसे व्यक्ति की है, जिसका दिमाग उमर के बावजूद पूरी तरह सचेत था और जिसकी उदारता और सहृदयता के लिए मुझे कृतज्ञ रहना चाहिए।

—: ० :—

बालमन्दिर, जयपुर की संचालिका
श्रीमती गीता बजाज

यथा नाम तथा गुण

भागीरथजी का जेल से छूट कर आने पर वनस्थली विद्यापीठ की छात्रा के नाते स्वागत-सत्कार करने का मुझे अवसर मिला। उनके साथ देवमूर्ति श्री श्रीनिवासजी बगडका भी थे। ये दोनो साथ-साथ वनस्थलो आये थे और मुझे सौभाग्य मिला था इनके आतिथ्य, सान्निध्य और सेवा का। आखें सजल हो जाती है भावुकतावश। ईश्वर ऐसी आत्माओ को पुन· पुन. मानव सेवा हेतु अवतरित करे इस देश की धरती पर। स्व० श्री बगडकाजी का भी बम्बई के राजस्थानी समाज मे करुणा, सादगी और त्याग-तपस्या के क्षेत्र मे अद्वितीय स्थान था।

कलकत्ते के प्रमुख उद्योगपतियो मे होते हुए भागीरथ बाबू अपने पैतृक धन्धे से भी अधिक निष्ठावान देश-सेवा के प्रति थे। गाधीजी ने देश की धरती को छान-छान कर जो कुछ हीरे बटोरे थे, उनमे वे भी एक थे। प्रात स्मरणीय श्री जमनालालजी बजाज, श्रद्धेय श्री घनश्यामदासजी बिडला और न जाने कितने धरती के लाल गाधीजी के सम्पर्क मे आये और सदा-सदा के लिये उन्ही के हो गये। इन सबका देश-प्रेम, सादगी और त्याग अनुकरणीय रहा। आज कलकत्ते के राजस्थानी समाज मे जो प्रतिष्ठा भागीरथजी की बनी हुयी है उस स्थान की पूर्ति कौन कब कर सकेगा, कहा नही जा सकता। स्वतन्त्रता सग्राम मे जूझे, जेल जीवन के अनुभव लिये किन्तु सत्ता की राजनीति तथा पदलोलुपता से सदा दूर रहते हुए गाधीजी द्वारा छोडे गये अधूरे कामो को आगे बढाने मे सदा सलग्न रहे। रामराज्य के सपने को साकार करने की दिशा मे सतत् प्रयत्नशील रहे। इस दिशा मे जितने भी कार्यक्रम गाधीजी द्वारा चलाये गये तथा समाज मे अन्य लोगो ने जो कार्य देश के विकास के लिए, समाज की उन्नति के लिये किये व किये जा रहे हैं, लगभग बहुतो मे आपका तन, मन, धन से योग रहा। कलकत्ते मे अनेक सस्थाओ के सस्थापक रहे और श्री सीताराम सेकसरिया साथ-साथ उनकी छाया की तरह सभी मे संलग्न रहे। कलकत्ता मे शुद्ध खादी भण्डार की स्थापना की। खादी सस्थाओ को न केवल पूरा योग दिया, बल्कि स्वय ने भी खादी का व्रत का जीवन भर पालन किया।

गाधीजी के रचनात्मक कार्यो मे हरिजन-सेवा का कार्य उन्हे सबसे प्रिय था। आजादी की लडाई के दिनो मे राजनीति से सम्बन्ध अवश्य था किन्तु उनका कार्यक्षेत्र हरिजन बस्तियो मे कार्य करना ही रहता था। राजस्थान हरिजन सेवक

सघ के वे वर्षो तक अध्यक्ष रहे और हरिजनो के हितो के लिये सतत् प्रयत्नशील रहे। भूदान, ग्रामदान मे भी उनका अटूट विश्वास रहा। शायद ही कोई सर्वोदय सम्मेलन ऐसा रहा होगा जिसमे बाबूजी उपस्थित न रहे हो। गो-सेवा सघ का कार्य तो आप छोड़ ही नही सकते थे। यह कार्य आपके प्रिय कार्यो मे से था। वे विशेषकर बगाल एव राजस्थान के कामो मे सदैव ही योग देते रहे, चाहे वह बगाल का महा-अकाल रहा हो, चाहे राजस्थान का जल-सकट। वे अपने आपको सक्षम सेवक के रूप मे समाज को समर्पित कर देते थे और अपना कर्तव्य पूरा करके ही सुख अनुभव करते थे।

पिछले कुछ वर्षो से जबसे किशनगढ मे 'आदित्य मिल्स' स्थापित हुई आपका राजस्थान मे भी काफी समय बीतता था। बनस्थली विद्यापीठ से तो आप आरम्भ से ही जुडे हुए थे। किन्तु धीरे-धीरे अन्य सस्थाओ से भी जुड गये। श्री कल्याण आरोग्य सदन, टी० बी० सेनेटोरियम सावली, सीकर के आप पिछले कुछ वर्षो से अध्यक्ष थे और आपकी अध्यक्षता के दौरान सदन को न केवल अच्छा आर्थिक लाभ हुआ बल्कि सभी प्रकार के मार्ग दर्शन का लाभ मिला। मुझे तो कभी-कभी ऐसा अनुभव होता था कि जैसे उस आरोग्य सदन के वे ही सस्थापक रहे हो। निरन्तर उसे आगे बढाने का चिन्तन चलता ही रहता था।

बनस्थली, महिला शिक्षा के प्रति उनकी अटूट श्रद्धा का द्योतक है। उसी शृ खला मे बाल मन्दिर मोतीडू गरी जो कि महिला-शिक्षक प्रशिक्षण का कार्य भी उठाये हुए हैं उससे भी आपका सम्बन्ध-सहयोग आरम्भ से ही रहा। लगभग दो वर्ष पहले जब बाबूजी के सामने बाल मन्दिर सम्बन्धी अपनी कठिनाई रखी तो थोडी दबी आवाज मे कहने लगे, 'अभी तो आरोग्य सदन का काम ही अधूरा है।' जिन भी कार्यो मे उनका सहयोग रहता था उनमे वे एक छिपी शक्ति के रूप मे कार्य करते थे। अपने नाम की चाह उनमे कभी नही रही। मैंने जब आग्रहपूर्वक सहयोग चाहा और उनकी शक्ति का रूप उनके सामने रखते हुये बम्बई से जो धन सग्रह आरोग्य सदन के लिये हुआ था उसकी बात कही, तो कहने लगे 'यह सब मैं नही करता। मैं तो इशारा करता हू। कोई मेरे इशारे को समझ कर कुछ कर देता है। श्रेय मुझे मिल जाता है। तुम्हे भी ऐसा इशारा चाहिये तो कुछ समय बाद ही प्रयत्न करेंगे।' इस वचन को उन्होंने पूर्णतया निभाया। मेरा पत्र-व्यवहार निरन्तर उनसे चलता ही रहता था। बाल मन्दिर की प्रगति से वे खुश व प्रभावित थे। जब भी राजस्थान आते भले ही थोडी देर ही आते, सस्था मे अवश्य आते थे। उनके आने से मुझे बल मिलता था। २० अक्टूबर, १९७८ को जिस दिन मैं विदेश से लौटी थी अचानक बाल मन्दिर पहुच गये। यहां वे कार्यक्रम मे एक सामान्य व्यक्ति की भांति सम्मिलित हुए। इतने बडे व्यक्तित्व का इस प्रकार आनन्दित होना मैं भुला नही पाती। कलकत्ते मे उनके साथ बिताये कुछ माह सदैव ही स्मरणीय रहेंगे। वहा मैं लगभग उन्ही के पास ठहरती थी या पूज्य श्री सीतारामजी सेकसरिया के पास, जो कि उनके बाल्यकाल से अभिन्न मित्र रहे हैं। सभी प्रकार की सुविधाए उपलब्ध कराते थे, जैसे मैं कोई विशेष व्यक्ति

हू। घर से साथ ले जाते थे, साथ लाते। कार्यालय मे बहुत बार तो मेरी प्रतीक्षा भी करते। जी भर आता है उनके स्नेहयुक्त व्यवहार को याद करके। जितना लिखा जाय, कम ही लगता है। जनवरी, १९७९ पूरा माह उनके साथ बीता। मैं किन शब्दो मे व्यक्त करू अपनी अनुभूति को ? वे मानव की देह मे देवत्व को समेटे हुए साधारण से पुरुष लगते थे। उनके साथ घण्टो बैठकर भी मन उठने को नही करता था। हसोड स्वभाव के धनी, बातचीत मे हसाते ही रहते थे। बात-बात मे मुहावरो, कहावतो का प्रयोग कर न केवल मनोरजन करते थे, बल्कि ऐसा अनुभव होता था मानो अनौपचारिक शिक्षा का धरातल तैयार करते हो। इतने व्यस्त रहते हुए भी अधिकतर पत्र व्यवहार का लेखन कार्य अपने हाथ से ही करते। वे न केवल साहित्य पढते थे, बल्कि साहित्य सृजन की ओर रुचि भी रखते थे। राजस्थानी कहावतो का सग्रह और 'बहता पानी निर्मला' उनकी कृतिया हैं।

इस व्यक्तित्व की कृति का श्रेय मेरी अपनी दृष्टि मे उनकी धर्मपत्नी श्रीमती गगा चाचीजी को भी कम नही जाता। करुणा के आगार, मृदुभाषी बाबूजी न भाने वाली बात भी मीठे से सूत्रो से समझा देते थे। मुझे याद है वह प्रसग जब उन्होने मुझसे पूछा, 'मैं अमुक अक से बालमन्दिर का चन्दा आरम्भ कर दू यदि तुम मुझसे एक साथ पूरा रुपया न मागो', मैंने भी सहज भाव से आश्चर्य मे उत्तर दिया 'बाबूजी, आपके रुपये की क्या चिन्ता, कभी भी मिल जायेगा'। इतनी जोर से हसे, और बोले 'तुमने काल को जीत लिया।' मैं तो यकायक समझ न सकी। बोले 'तुम्हे विश्वास है कि तुम्हारा रुपया चुकने तक मेरा यह शरीर रहेगा ही ?' कितना सत्य था उनके कथन मे। बहुत स्वस्थ थे तब तो बाबूजी। इतनी जल्दी हम लोगो के बीच से चले जायेंगे, और हम उन्हें सदा-सदा याद करते ही रह जायेंगे, ऐसा सोचा भी न था। ऐसी पुण्य आत्मा पुन पुन. भारत की धरती को पवित्र करे। उन्हे शत् शत् प्रणाम !

—: :—

राजस्थान के उदीयमान उद्योगपति

श्री लक्ष्मीनिवास झुनझुनवाला

सुगन्धित व्यक्तित्व

बाबू श्री भागीरथजी कानोडिया के जीवनकाल मे अनेक बार अभिनन्दन की चर्चा हुई, पर उन्होने न केवल उदासीनता दिखाई पर अपना तीव्र विरोध स्पष्ट रूप मे बताया। उनके जीवन ने बहुतो को प्रभावित किया है—बहुतो के जीवन का उन्होने निर्माण किया है—उनके प्रशसको का एक बहुत बडा परिवार है। जीवन काल मे तो उनके बारे मे कुछ छापा नही जा सका—पर अब उनके स्मृति-ग्रन्थ से इस सारे परिवार को मानसिक सन्तोष मिलेगा।

कई बार इस ग्रन्थ के लिये अपने सस्मरण लिखने बैठा। कुछ लिखा—सन्तोष नही हुआ—कागज फाड कर फेंक दिये। कितने अवसर याद आते हैं—जब निराशा का मानस ले बाबू भागीरथजी के पास गया। उनके पास जाकर बैठा। वे अन्य लोगो से वार्तालाप कर रहे थे। मैं भी बैठ गया—सुनता रहा। मुझसे भी कुछ चर्चा हुई और निराशा का मानस बदल गया। जब लौटा तो मन मे उत्साह था। मेरे लिये तो यह बहुत बडी घटना है—पर इसको शब्दो मे व्यक्त करने की कला मैं कहां से लाऊ ? उन्होने कोई उपदेश नही दिया। मैंने उन्हे अपनी निराशा की बात बतायी भी तो नही थी—और बताता भी क्या ? मुझे भी मालूम थोडे ही था कि क्यो मन निराश है ? पर यह मालूम है कि लौटा तो मन मे उत्साह था। अब कैसे लेख मे इसका विश्लेषण करू।

बाबू भागीरथजी की स्मृति आती है तो उनका अभाव मन मे विषाद पैदा करता है। दूसरी ओर जीवन के ४५ वर्ष के भिन्न-भिन्न अवसरो के उनके सम्पर्क के प्रसगो की याद मन मे प्रेरणा भी उत्पन्न करती है।

१९३४ साल मे पहले-पहल उनके दर्शन पूर्वी बगाल के छोटे से ग्राम सीरसाबाडी मे हुए जब मैं छ साल का था। एक अमिट छाप उस समय उनकी पडी जो आज तक विद्यमान है। उस समय जो वेशभूषा और जो कृपकाय शरीर देखा, वही १९७९ के अतिम दर्शन मे भी था। १९३६ मे सिराजगज मे फिर दर्शन हुए—मेरे चाचाजी उनके प्रतिष्ठान मे एक कर्मचारी थे तथा उन्ही के काम से पाट खरीदने के लिए उनके केन्द्रो मे रहा करते थे। मैं उनके साथ रहता। जब भागीरथजी कार्यालय मे कर्मचारियो को मार्गदर्शन देने के लिए आते, हमारे घर ठहरते। उन्होने अपनी सादगी व सरल स्वभाव का सस्कार मुझे दिया।

हमलोग भागीरथजी के ही ग्राम मुकुन्दगढ मे रहते। १९४१ मे द्वितीय महायुद्ध से कलकत्ता शहर एकदम त्रस्त था। भागीरथजी के परिवार के समस्त सदस्य तथा हमारे परिवार के समस्त सदस्य मुकुन्दगढ भेज दिए गये थे। कुछ कार्यरत लोग ही कलकत्ते रह गये थे। एक युग बीत गया लगता है। ऊच-नीच का भेद

आज की तुलना मे नगण्य सा था। उनका पुत्र और उनका भतीजा तथा मैं एक साथ पढते। एक साथ मैट्रिक की परीक्षा दी। एक साथ पिलानी मे भर्ती हुए।

१९४३-४४ मे अध्ययन के साथ-साथ जब व्यापार की प्रारम्भिक शिक्षा का प्रश्न आया, तो भी भागीरथजी के दफ्तर मे ही कालेज के उपरान्त दो घटे जाया करता—एक तरह से दूरी का अनुभव नही के बराबर होता था। यह सब क्या आज के वातावरण मे सम्भव है ?

१९६० मे जब मेरा मन भी बडे उद्योगो की ओर आकर्षित होने लगा, उनकी सक्रिय सहायता की आवश्यकता पडी। बडे उत्साह से उन्होने सहायता दी। सम्पर्क मे घनिष्ठता आती ही गई। कोई ऐसा सप्ताह नही जाता जब एक आध घण्टे बाबू के पास नही बैठता। उनकी जीवन शैली मे एक अद्भुत सरलता थी। चाहे प्रात. और सध्या घर मे हो या दोपहर कार्यालय मे हो, सब कोई उनके पास आ सकते थे—कोई रोक-टोक नही थी। बाबू के पास दो व्यक्ति बैठे हो—आप भी चले जाइये—बैठ जाइये—वार्तालाप का आनन्द लीजिए। अत्यन्त निकटता की भावना आ जाती थी। छोटे-छोटे मन के कष्ट उनको मैं सुनाया करता था। ऐसा भान होता था कि यह व्यक्ति जितना मेरे निकट है शायद ही किसी के हो। यह अभिमान मेरा तब टूटा जब एक दिन मालूम हुआ कि बाबू कई वर्षों से सिर के दर्द से पीडित रहते हैं तथा दिन मे उन्हे ७-८ बार दर्द को भूलने के लिये गोलिया लेनी पडती हैं। मैं दग रह गया कि कितना गाभीर्य इनमे है। हम अपने कष्टो की चर्चा सबसे करते है तथा जिन्हे थोडा भी अन्तरग मानते हैं उनसे तो अत्यधिक करते है। पर अपने कष्टो को औरो पर न लादने की प्रवृत्ति के दर्शन उनमे हुए। कोई भी व्यक्ति उनसे बात कर यह अनुमान नही लगा सकता था कि इतनी पीडा उनके हैं।

शारीरिक कष्टो तक ही यह सीमित नही था। उनका बाह्य जीवन एक साधारण व्यक्ति का सा जीवन लगता था—उसमे कुछ भी बाह्य रूप से असाधारण नही था। अपने व्यापार मे हम सब की तरह वे भी समय देते—उतनी ही तल्लीनता से उसमे भी लगे रहते। पर जहा हमे छोटी-छोटी बातो से उत्तेजना होती है, राग-द्वेष का इतना प्रभाव रहता है, वहा वह बडे से बडे व्यापारिक धक्को का चेहरे पर असर भी नही आने देते थे।

एक ओर ५ करोड रुपये के उद्योग पर निर्णय ले रहे हैं—दूसरी ओर, नए बी-ए पास लडके को नौकरी दिलवानी हो तो भी अपने हाथ से पत्र लिख रहे हैं—कोई छोटे-बडे का भेदभाव नही, कोई काम बडा नही—कोई काम छोटा नही। इतना बडा व्यक्ति एक साधारण आदमी को ४००) महीने की नौकरी के लिए किसी की सिफारिश का पत्र लिखे—यह साधारणतया होता नही है।

आपसी होड, प्रतिद्वन्द्विता, सबसे अधिक शक्तिशाली होने की प्रवृत्ति आदि व्यापार मे प्रमुख रहती है। बाबू इन सबकी चर्चा करते पर अपने आपको इनसे ऊपर रखते। कभी-कभी बाबू से चर्चा होती कि जीवन के मूल्यो का किस प्रकार उत्तरोत्तर ह्रास हो रहा है। उस समय वे अपनी एक प्रिय राजस्थानी कथा, जिसमे तीन पीढियो मे दो परिवार के व्यक्ति किस प्रकार व्यवहार करते हैं, बताया गया है, सुनाया करते।

उनका जीवन जितना बाह्य था, उससे कई गुना अन्तरग था। बाह्य तो एक छोटा सा भाग दीखता था। व्यापार व उद्योग के क्षेत्र मे ऐसा व्यक्ति दूसरा तो नही दीखता।

उनके कृतित्व मे ऐसा कुछ नही है जिसका बाह्य रूप देखकर व्यक्ति प्रभावित हो सके पर उनके व्यक्तित्व मे एक सुगन्ध थी, जो भी उनके पास आया सुगन्धित होकर गया तथा उस सुगन्ध को भूल नही सका। ऐसे व्यक्ति पर लिखना अत्यन्त कठिन काम है।

—: o :—

सामाजिक कार्यकर्ता

श्री हरिप्रसाद माहेश्वरी

सादर प्रणाम !

शान्त, सौम्य मुख
हंसती हुई आंखें ।
बोलते तो अपनी बात स्पष्ट शब्दों में—
अपनत्व भरी मीठी चुटकी लेते हुए ।
आज भी जब श्री भागीरथजी कानोडिया की याद आती है
तो ये बातें तस्वीर की तरह सामने आ जाती हैं ।
और याद एक बार नहीं अनेक बार आती है।
उनके जैसा स्नेह देनेवाला, ममत्व रखनेवाला
व्यक्तित्व अन्य मिलना दुर्लभ है ।
सार्वजनिक जीवन में उनके द्वारा
अनेकों को मार्ग-दर्शन मिला ।
उलझनें सामने आतीं और मिनटों में
बहुत स्पष्ट निराकरण उनके द्वारा होता ।
आक्रोश, विक्षोभ, झुंझलाहट से दूर—
सीधी, सरल, सच्ची, बेलाग बात—
और वह सदा मन पर प्रभाव छोडती ।
वर्षों पहले माहेश्वरी विद्यालय के सभापति-पद
पर जब वे थे तो पहला परिचय हुआ ।
उसी दिन से ऐसा लगा कि अपने परिवार
के ही एक वरिष्ठ व्यक्ति का
सिर पर हाथ हो गया है ।
'जसीडी आरोग्य भवन' के
रख-रखाव के प्रति हार्दिक सक्रियता
'मोहन कोठी' के स्थान पर नई कोठियों
के निर्माण के प्रति उनकी जागरूकता—
फिर श्रीशिक्षायतन के सभापति पद से
विद्यालय की उन्नति के लिए उनकी ममता—
सदा से प्रेरणाप्रद रही—
'भारतीय भाषा परिषद' की कल्पना

और उसे साकार रूप देने का श्रेय
श्री सीतारामजी सेकसरिया के साथ
उन्हे भी है।
सदा यह लगा कि ये दोनो व्यक्ति
एक दूसरे के इतने निकट है—
उनकी आत्मीयता इतनी प्रगाढ है कि
जब वे दोनो साथ होते है
तो दो नही ग्यारह आदमी बोलते हैं।
कलकत्ते के सार्वजनिक जीवन एव राजस्थान
के जन-जीवन मे मूक कर्मयोगी की तरह
काम करने वाला यह व्यक्तित्व—
साहित्य-सेवा, साहित्यिको की सहायता
समाज सुधार और उत्पीडित व्यक्तियो
को सहयोग—
अकाल, बाढ, गो-सेवा आदि कार्यो मे
इस तरह रमा हुआ था कि जैसे ये सब सेवा-कार्य
उसके जीवन के ही अग हो।
आज—वे हमारे बीच नही है
यह अभाव कभी दूर न होगा
पर उनकी अदृश्य-उपस्थिति का अहसास
कार्यकर्ताओ को सदा प्रेरणा देगा।
इस दृढ विश्वास के साथ
दिवगत आत्मा को सादर प्रणाम।

—: o :—

अ० भा० मारवाड़ी सम्मेलन के अध्यक्ष

श्री रामप्रसाद पोद्दार

कर्मठ समाजसेवी

श्रद्धेय भागीरथजी कानोड़िया एक कर्मठ कार्यकर्ता एवं सक्रिय समाजसेवी थे। समाज सुधार के हर कार्य मे वे आगे रहते थे। अखिल भारतीय मारवाड़ी सम्मेलन के तो वे प्राण ही थे। उनके सहयोग से सम्मेलन ने कई समाज-सुधार के कार्य हाथ में लिए और उनमे सफलता प्राप्त की। धर्मार्थ सचालित संस्थाओं की वे तन, मन और धन से सेवा करते थे। अभी कुछ ही समय पहले सीकर अस्पताल के लिए उन्होंने स्वय आगे होकर एक अच्छी धनराशि एकत्रित की। और भी कितनी ही धार्मिक, शैक्षणिक एव सामाजिक सस्थाओं को उनका आशीर्वाद प्राप्त था।

व्यक्ति रूप से वह मधुरभाषी एवं सम्वेदनशील व्यक्ति थे। जो भी उनके सम्पर्क में आया उनसे प्रभावित हुए विना नहीं रहा।

जहां वे सफल उद्योगपति एवं व्यवसायी थे वहां लिखने-पढ़ने का भी उन्हें बहुत शौक था—विशेषकर लोककथाए सुनने और सुनाने का। उनके द्वारा लिखित एवं सम्पादित पुस्तको को पढ़ने से ज्ञात होता है कि उनका लगाव विशेष रूप से राजस्थानी समाज एव राजस्थानी भाषा से था। 'बहता पानी निर्मला' एव 'राजस्थानी कहावत कोश' इसके प्रमाण हैं। 'बहता पानी निर्मला' मे अनेक बोधगम्य कहानियों का समावेश है जो उन्होंने बहुत ही सरल भाषा मे लिखी है परन्तु पाठक पर उनका प्रभाव बहुत गहरा पडता है।

'राजस्थानी कहावत कोश' मे उन्होंने लोकोक्तिया, कहावतें एव मुहावरों का सकलन किया है और साथ ही उनकी सन्दर्भ-कथाए भी दी हैं जिससे उन लोकोक्तियों तथा कहावतो को समझने मे और उनका उपयोग करने मे सहूलियत रहती है। इस प्रकार बहुमुखी प्रतिभा के धनी श्रद्धेय भागीरथजी कानोड़िया अपने आप मे एक संस्था थे जिनके माध्यम से साहित्य, समाज तथा संस्कृति का विकास हुआ तथा उनकी जड़ें मजबूत हुईं। ऐसे व्यक्ति के निधन से समाज की जो क्षति हुई है उसकी पूर्ति होना कठिन है।

—: ० :—

सामाजिक कार्यकर्ता, व्यवसायी

श्री माधोदास मूंधड़ा

रचनात्मक प्रवृत्ति के विशिष्ट पुरुष

श्री भागीरथजी कानोडिया हमारे समाज के एक पुराने सार्वजनिक कार्यकर्ता, समाज सेवक, देशप्रेमी व रचनात्मक प्रवृत्ति के एक विशिष्ट पुरुष थे। उनसे हम जैसे प्राय: सभी लोग कमोवेश परिचित थे।

वे साहित्य के अनुरागी थे। इतना ही नही, उनमे राजस्थानी साहित्य की, विशेपत: लोक-साहित्य की, गहरी पकड थी। वे राजस्थान व राजस्थानी-सस्कृति के परम प्रेमी थे और साथ ही जानकार भी।

काफी सम्पन्न होने पर भी श्री कानोडियाजी के रहन-सहन मे एक आकर्पक सादगी थी। वे मितभापी थे और जब भी जो कुछ कहते, उसके पीछे उनके सुचिन्तित विचार झाकते थे।

—:०:—

भारतीय भाषा परिषद के मन्त्री

श्री परमानन्द चूड़ीवाल

'बहता पानी निर्मला'

'बहता पानी निर्मला' के माध्यम से सहज भाव से अनजाने, जिन्होने अपनी जीवन-गाथा को तीन शब्दो मे समेट लिया—ऐसे थे अजातशत्रु, प्रणम्य भागीरथजी कानोडिया।

भागीरथजी की जीवन-यात्रा मे परम पावन गगा के 'बहता पानी निर्मला' की तरह परम्परा की पकड तथा प्रगति के प्रवाह का अद्भुत सामजस्य था। मरुधरा राजस्थान के लोक-साहित्य व लोक-सस्कृति की परम्परा से जुड़े हुए, पर साथ ही जीवन की दैनन्दिनी मे अकाल-पीडित आर्त मनुष्य तथा मूक पशुओ की क्षुधा-तृषा निवारण के लिए सदा समर्पित। आर्त-सेवा, बीमारो की सेवा उनकी जीवन-यात्रा की ध्रुव-तारिका थी।

"परोपकाराय पुण्याय" इस व्यास-वाणी के वे जीवन-भाष्य थे। व्यवसायिक कुशलता की सहज समस्त क्षमताओ, प्रयासो व चिन्तन को उन्होने सर्वतोभावेन आर्त-सेवा, साहित्यिक व शिक्षण सस्थाओ व सार्वजनिक न्यासो के मार्ग-दर्शन तथा दैनन्दिन गतिविधियो के प्रति समर्पित कर दिया। उनके व्यक्तित्व तथा कृतित्व के पारस-स्पर्श से अनगढ लौहतुल्य विभिन्न सस्थाए व न्यास प्रगति व विकास के शिखर पर पहुच गये। कल्याण आरोग्य सदन (सीकर), हलवासिया ट्रस्ट, शिक्षायतन, भारतीय भाषा परिषद प्रभृति सस्थान व न्यास उनके कृतित्व से सदैव सुरभित होते रहे।

भारतीय भाषा परिषद—सस्था की स्थापना की परिकल्पना, को मूर्त रूप देने के लिए श्री सीतारामजी सेकसरिया के साथ महीनो तक प्रतिदिन अर्थ-सग्रह का प्रयास, उसके बाद सस्था का गठन, भवन-निर्माण तथा गतिविधियो को आकार देने में उनकी अथक प्रचेष्टाए चिर-स्मरणीय रहेगी।

राजस्थानी लोक-साहित्य, लोक-सस्कृति, कहावतें, मुहावरे—उनके हृदय व मानस, दोनो से इन सबका इतना तादात्म्य था कि अन्य सार्वजनिक सेवा-कार्यो की अत्यधिक व्यस्तता होते हुए भी, "बहता पानी निर्मला", 'राजस्थानी मुहावरा कोश" के माध्यम से उनका साहित्यकार-स्वरूप उमड पडा।

त्याग व सेवा के प्रति समर्पित लोक-सेवको को कभी उपलब्धि की स्वीकृति के रूप में, कभी प्रेरणा-पाथेय के रूप मे प्रशसा व प्रणाम के स्वर मिलते हैं। प्राय: लोक-सेवक, यश-कामना के मधु-स्पर्श से अपने को अलग नही रख पाते पर भागीरथजी को यश-कामना व प्रशस्ति के स्वरो का मोहक रूप कभी स्पर्श नही कर पाया। अपनी प्रशसा की चर्चा होते ही वे ग्लानि से भर जाते तथा उनका मुख क्लान्त व म्लान हो जाता। जीवन के सध्या-काल मे मित्रो, सहयोगियो के अनवरत प्रयास के बावजूद उन्होंने सार्वजनिक-अभिनन्दन को शाप-तुल्य मानकर कभी स्वीकृति नही दी।

जीवन मे अनेक भयकर आघात लगे—शारीरिक व मानसिक, पारिवारिक व सामाजिक, लेकिन शरशय्याशायी भीष्म पितामह की तरह उन्होने स्थितप्रज्ञवत् सबको प्रसन्न-मुद्रा से झेला, यत्रणा का भाव न कभी चेहरे पर आया, न पीडा की अभिव्यक्ति कभी वाणी मे। अपने कष्टो को उन्होने कभी स्वीकारा नही, दूसरो के कष्ट-निवारण की सेवा के अवसर को कभी नकारा नही।

देवता भी मनुष्य बन कर जिस प्रकार के जीवन जीने की स्पृहा करें, तथा मनुष्य बन कर भी वैसा जीवन जीने मे असमर्थता का बोध करें, ऐसे थे भागीरथजी।

— ० —

प्रसिद्ध उद्योगपति
श्री जयदयाल डालमिया

सेवाभावी व्यक्तित्व

कहावत है कि 'यस्य कीर्ति स' जीवति' अर्थात् जिसकी कीर्ति है वह सदा जीता है। दिवगत भागीरथजी कानोडिया के लोक-सेवी कार्यो की पावन स्मृतिया आज उन सबके हृदयो पर अकित हैं जो उनके सम्पर्क मे आये थे। वे परम कर्मठ, समयनिष्ठ उदारमना और सेवाभावी व्यक्ति थे। उनसे सर्वप्रथम मेरा परिचय मेरे स्वर्गीय बड़े भ्राता श्री रामकृष्णजी डालमिया ने मेरी किशोरावस्था में कलकत्ते मे यह कहकर करवाया था कि यह मेरा छोटा भाई है। तभी से वह भी मुझे अपना छोटा भाई ही मानते थे और उसी प्रकार का स्नेह भी देते थे।

अपनी कमाई का एक बड़ा अश उन्होंने सदा परोपकार और लोक-सेवी कार्यों पर व्यय किया। जो भी कोई उनके पास अपनी समस्या लेकर जाता था, उसका यथोचित समाधान पाकर ही वह उनके पास से लौटता था।

न जाने कितनी समाज-सेवी संस्थाए उनसे उपकृत हुई। कलकत्ते की मारवाडी रिलीफ सोसाइटी तो उनकी चिर-ऋणी रहेगी। उसके माध्यम से उन्होंने आवश्यकता पड़ने पर देश भर मे लोक-राहत के कार्यो को फैलाया। लोक-सेवा के कार्यो के लिए वह समाज से पैसा जुटाने मे हिचकते नहीं थे। स्वय अपना पैसा देते और सम्पत्तिशालियो को भी उस परोपकार के काम मे दान देने को प्रवृत्त करते।

वे अद्भुत व्यक्तित्व के धनी थे। जिस प्रकार वे सेवा-कार्य मे दक्ष थे, उसी प्रकार से वे व्यापार मे भी पूर्ण पारगत थे। उन्होंने जिन-जिन कार्यो को भी अपने हाथ में लिया पूरी लगन और दक्षता के साथ उनको पूरा किया। साहित्य मे उन्हें विशेष प्रेम था। 'बहता पानी निर्मला' के नाम से उनकी रचनाओ का एक प्रकाशन भी हुआ है। सस्ता साहित्य मण्डल के साथ उनका अत्यन्त निकट का सम्बन्ध था और उसके संचालन मे उन्होंने अपना भरपूर सहयोग दिया एव दिलाया।

सचमुच श्री भागीरथजी कानोडिया वर्तमान युग के भगीरथ ही थे। जहा भगीरथ ने गगा अवतरण करवाकर प्राणदान दिये, वहां श्री भागीरथजी कानोडिया ने जरूरतमन्दो को अपने सेवा-कार्यो से सींच-सींच कर सदा हरा-भरा रखा। आज जब वह नही रहे हैं, तो उनका अभाव उन सभी सस्थाओं और व्यक्तियो को खल रहा जिनके स्रोत उनसे परिप्लावित थे। उनकी सबसे बडी विशेषता यह थी कि वह उपकार ग्रहणकर्ता को अपने निरहकार और सेवाभाव मे इतना अभिभूत कर देते थे कि वह उन्हें उपकारकर्ता न मान कर अपना आत्मीय ही मानता था।

हमारे देश की युवा पीढी को उनके जैसे व्यक्तित्व से सीख लेनी चाहिये। उनकी सच्ची स्मृति उनकी जैसी सेवावृत्ति को अपनाकर ही कायम रखी जा सकती है।

—: o :—

अ० भा० मारवाड़ी सम्मेलन के भूतपूर्व प्रधानमन्त्री,

श्री दीपचन्द नाहटा

परहित धर्म के पथिक

भागीरथजी कानोडिया के इस ससार से महाप्रयाण से करीब ६ महीने पहले की बात है। मैं उनसे उनके घर मिलने गया था। मुझे देख कर उन्होने बहुत स्नेह से अपने पास की कुर्सी पर बैठने के लिए कहा। बातो के सिलसिले मे उन्होने मुझ से कहा—दीपचन्दजी, धर्म की परिभाषा बताइए। मैं इस प्रश्न का उत्तर उनसे ही सुनना चाहता था। मैंने कहा—आप ही बताइए। इस पर उन्होने कहा—यो तो धर्म के बारे मे बहुत कहा गया है, पर धर्म का सार तो इन पक्तियो मे भरा पडा है :—

परहित सरिस धरम नहिं भाई। पर-पीड़ा सम नहिं अधमाई॥

आज जब मैं कानोडियाजी को याद करता हूं, तो मुझे यही लगता है कि उनका जीवन मानो इन दो पक्तियो की साधना का ही मूर्तिमान स्वरूप था।

श्री कानोड़ियाजी का जीवन-व्रत था—परोपकार। यही उनके जीवन का धर्म था। देश भर के सार्वजनिक सेवा-भावी कार्यकर्त्ता जो भी कलकत्ता आते तो उनको उनसे सहयोग मिलता और उससे भी अधिक मिलता अपनत्व।

श्री कानोडियाजी मे पीडितो, अभावग्रस्तो व जरूरतमन्दो के प्रति विशेष बन्धुत्व का भाव था। वे सबसे घुलमिल जाते थे और उनको अपना बना लेते थे। उद्योग एव व्यवसाय मे व्यस्त रहते हुए भी साहित्य के प्रति उनका गहरा लगाव था। वे राजस्थानी-साहित्य, विशेषत. लोक-साहित्य के मर्म के रसग्राही सग्राहक थे। बातचीत मे. लिखने मे लोक-साहित्य का यह अनुराग छलकता रहता था। 'बहता पानी निर्मला' इसका सरस प्रमाण है।

साल मे कई बार उनसे मिलने का मुझे सौभाग्य मिलता रहा। उनकी अनुभव भरी बातें मेरे लिए मार्ग-दर्शन का काम करती रही हैं। वृद्धावस्था मे भी युवकोचित उत्साह था। राजस्थान मे एक बार अकाल के समय उन्होने दूर-दूर तक कठिनाई भरी यात्राएं की और सेवा-कार्य को सुव्यवस्थित रूप से सचालित कर अपनी प्रबन्ध-पटता का परिचय दिया जिसकी गहरी छाप राजस्थान के लोक-मानस पर है। उस समय जीप दुर्घटना मे उनकी कई हड्डिया टूट गई और अन्य कई गहरी चोटें आई लेकिन उस सारे कष्ट को उन्होने निर्लिप्त भाव से सहन किया।

श्री कानोडियाजी समाज-सुधारक, रचनात्मक कार्य को गतिशील करने वाले राष्ट्र-सेवी, हरिजन प्रेमी, शिक्षा-प्रसारक व नारी-जागरण के हिमायती थे। सादगी व सरलता तो उनमे कूट-कूट कर भरी थी। वे मित भाषी थे, धीमे बोलते थे। विचार सुलझे हुए, सुचिन्तित व सुस्पष्ट थे। लोग उनसे आर्थिक सहयोग पाते, सलाह पाते, मार्ग दर्शन पाते, विचार पाते और प्रेरणा-प्रोत्साहन भी। वे हमारे समाज के गौरव थे।

—०:—

महिला मण्डल, उदयपुर के सस्थापक-संचालक

श्री दयाशंकर श्रोत्रिय

शिक्षा संस्थाओं के परम सहायक

श्री बागडोदियाजी का फोन आया कि श्री भागीरथजी कानोडिया नही रहे। इस दु खद समाचार से महिला मण्डल परिवार को गहरा धक्का लगा। परिवार एकत्रित हुआ और शोक सभा हुई। सब विभागो मे अवकाश हो गया। रक्षक, पोषक और सरक्षक श्री कानोडियाजी के तैल चित्र के समक्ष बारह दिन दोनो वक्त धूप, दीप और माल्यार्पण के बाद भजन, राम धुन तथा श्रद्धा सुमन चढे।

संस्था के सम्पूर्ण भाई-बहिने श्री कानोडियाजी से कई बार मिल चुकी थी। कलकत्ते प्रवास मे भी अनेक बार उनके स्नेह, सहानुभूति और सस्था के विकास के प्रति लगन और मार्गदर्शन से हम लाभान्वित हो चुके थे, अत सस्था उनके निधन को अपने ही परिवार की क्षति मान रही थी। मैंने कुछ बहिनो को सजल नेत्रो से श्रद्धाजलि देते देखा। शोक सभा मे मैंने कहा कि साबरमती आश्रम और प्रयाग निवास के बाद मैं विद्याभवन उदयपुर मे सन् १९३४ मे सेवाए दे रहा था, तब कलकत्ते के एक दानदाता ने बाल मन्दिर भवन का निर्माण करा कर उद्घाटनार्थ आने की स्वीकृति प्रदान की। ये उद्घाटनकर्ता ही सेठ भागीरथजी कानोडिया थे।

श्वेत, धवल खादी वस्त्र पहिनने वाला मैं अकेला सेवक श्री कानोडियाजी को दिखाई दिया और मेरी ड्यूटी भी अतिथि भवन मे उनकी सेवा मे थी, अत उनका मेरे प्रति आकर्षित होना स्वाभाविक ही था। मेरा नाम, गाव, शिक्षा, दीक्षा, परिवार और जीवन का उद्देश्य श्री कानोडियाजी ने जानना चाहा। अत सविस्तार कहा कि "मैं भाई साहब (डा० मेहता), काकाजी (जमनालालजी बजाज) और श्रद्धेय महात्मा गान्धी के आशीर्वाद और आज्ञा से दक्षिण राजपूताने मे बहिनो की सेवार्थ बैठा हू। साबरमती आश्रम अहमदाबाद, अखिल भारतीय सेवा समिति इलाहाबाद और विद्या भवन उदयपुर मेरे भावी जीवन के लिये अनुभव प्राप्त करने हेतु पाठशालाए है। उनके सकेत पर अपनी महिला सेवा योजना लिखी जो पिछले ८ वर्ष से दिमाग मे चक्कर काट रही थी। लेखनी द्वारा कागज पर उतर आई। अतः कानोडियाजी ने कार्यारम्भ के लिये मुझे बिना रसीद के तीन हजार रुपये के नोट देकर प्रोत्साहित किया। यह प्रथम मिलन अथवा प्रथम परिचय था।

भगवत्-प्रेरणा से प्राप्त साधनो से योजना छपी, अपील प्रकाशित हुई, साहित्य बना, कार्यकर्ता जुटे और कार्यारम्भ हुआ। चर्खा-द्वादशी पर श्रीमती राधादेवी गोयनका, अकोला, के नेतृत्व मे पर्दा निवारक दिवस मनाया और जुलूस सभा के रूप मे परिवर्तित हो गया। सर्वश्री सीतारामजी सेकसरिया और भागीरथजी कानोडिया अध्यक्ष तथा उद्घाटक थे। यही महिला मण्डल के ४५ वर्ष के पूर्व के जन्म का इतिहास है।

सस्था की मासिक रिपोर्ट प्रति मास भागीरथजी को भेजी जाती रही अत उन्होने लिखा कि एक दफा यहा (कलकत्ता) आ जाओ। अस्तु मैं गया। राजस्थान के सार्वजनिक कार्यजनिक कार्यकर्ताओ के ठहरने के लिये शुद्ध खादी भण्डार, हरिसन रोड

पर एक कमरे की व्यवस्था कर रखी थी। अत भण्डार के व्यवस्थापक नवलजी मुझे ले गये। उन दिनो श्री कानोडियाजी जकरिया स्ट्रीट स्थित बिडला भवन मे निवास करते थे। सयोग ही था कि इसी बीच सेठ जमनालालजी बजाज अपने ज्येष्ठ पुत्र श्री कमलनयनजी बजाज के विवाह की बारात लेकर आये। मुझे देखते ही विवाह मे सम्मिलित होने का आग्रह हुआ। अतः पोद्दारो के यहा जो बारात गई उसमे मैं भी शरीक हुआ। स्नेहपूर्ण निमन्त्रण मानना मैं अपना कर्तव्य मानता हूं। बजाजजी ने भागीरथजी को उस अवसर पर मेरे विषय मे कहा कि दयाशकर को बापू के आदेश से मैंने महिला सेवादल के लिए दक्षिण राजपूताना मे बैठाया है। अपना व्यक्ति है। ध्यान रहे। इस चर्चा से मेरी श्रद्धा भी श्री कानोडियाजी के प्रति अधिक बढ गई, जिसका मेरे मन पर यह प्रभाव पडा कि मुझे समर्पण की भावना से कार्य करना चाहिये।

कानोडियाजी कम बोलने वाले प्रशसा से दूर, सद्-विचारवान, आदतन दानी, अतिनिकट के व्यक्तियो मे देने की रुचि पैदा करने वाले, अत्यन्त विनयी, नम्र, सरल, सादे, राष्ट्रीय विचारो से ओत-प्रोत, वयोवृद्ध समाजसेवी स्वतन्त्रता सग्राम के सैनिक, लेखक, साहित्यकार परिश्रमी, स्वदेश प्रेमी, परदु ख कातर, शिक्षाप्रेमी और मानवीय गुणो के धनी थे।

सर्वश्री सीताराम जी सेकसरिया, प्रभुदयालजी, हिम्मतसिंहका, रामकुमारजी भुवालका, वसन्तलालजी मुरारका, रामेश्वरजी टाटिया इत्यादि श्री कानोडियाजी के अनन्य मित्र थे। यह टोली सार्वजनिक कार्यो मे, सस्थाओ की स्थापना मे, सचालन मे, समाज-सुधार के कार्यों मे अग्रणी रहती थी। मैंने इस टोली को घर-घर जाकर शिक्षा हेतु कन्याए एकत्रित करते, खादी प्रचार करते और प्रतिनिधिमण्डल बनाकर सस्थाओ के लिये धन एकत्रित करते हुए भी देखा है।

उदयपुर यात्रा मे मेरे परिवार से मिलना, बच्चो की पढाई, स्वास्थ्य, शिक्षा, विकास, कठिनाई, सामाजिक बन्धनो की जानकारी आदि लेते। मार्ग-दर्शन देकर कानोडियाजी प्रेरणा और उत्साह दिलाते। एक बच्चे को अपने गाव मुकुन्दगढ ले गये। भोजन, वस्त्र, निवास, पुस्तकें इत्यादि की समुचित व्यवस्था नि शुल्क। चि० रमेश ने मुकुन्दगढ से लिखा कि यहा अधिकाश विद्यार्थी सार्वजनिक कार्यकर्ताओ और कानोडिया साहब के कर्मचारियो के बच्चे हैं।

मुझे एक बार मुकुन्दगढ ले गये। कसबे मे कालेज, छात्रावास, कन्याशाला, औषधालय, पुस्तकालय, धर्मशाला, नल, बिजली, सडक और रेलवे स्टेशन तक के दोनो तरफ छायादार वृक्ष और छोटे वृक्षो की रक्षा और पानी पिला कर बडे हो तब तक भिश्ती तैनात—सम्पूर्ण व्यवस्था भागीरथजी द्वारा की हुई। सम्पूर्ण शेखावाटी घुमाया। देश, विदेश मे अध्ययन को जाने वाले छात्र-छात्राओ को आपके ट्रस्ट की ओर से छात्रवृति उदारतापूर्वक देने की व्यवस्था देखकर मैं दग रह गया। प्रो० वशगोपाल झीगरन, धाडीजी, नवलजी और झुनझुनवालाजी इत्यादि से आपके कसबे में सम्पर्क हुआ तो उन्होने श्री कानोडियाजी के आर्थिक सहयोग के अनेक सस्मरण सुनाये।

मेरी एक कन्या को टी० बी० हो गई। किसी के द्वारा कानोडियाजी को ज्ञात हुआ और तत्काल एक हजार रुपये का इन्श्योर्ड चेक आया। मैंने वापिस कर

दिया तो पुनः तीन हजार रुपये आये। यह रकम भी वापिस कर दी तो स्नेहपूर्ण पत्र आया जिसमे लिखा था कि भेजने की क्रिया मे क्या कोई त्रुटि थी ? जब मैंने नम्रतापूर्वक धन्यवाद देकर उत्तर मे लिखा कि मैं अपने निजी कार्य मे किसी प्रकार का आर्थिक-सहयोग स्वीकार नही करता। केवल सस्था के लाभार्थ ही भिक्षा ग्रहण करता हू। तब उत्तर आया कि यह रकम भी तो आपकी ही है।

अनेक बार सस्था का प्रतिनिधि-मण्डल आर्थिक सहायता प्राप्त करने हेतु कलकत्ते गया, तो सर्वप्रथम हम भागीरथ बाबू की सेवा मे ही जाते। स्नेह एव सहानुभूति से परिवार की कुशलता पूछते। पिता तुल्य आत्मीयता दिखा कर थकान दूर करने को कह कर जलपान कराया जाता। सस्था के विकास की पूछताछ होती। अन्त मे मधुर-मुस्कान के साथ यह कहते कि कितनी रकम की आवश्यकता है। सस्था का पैड का कागज मागते और कलकत्ते के दानियो के नाम ५-६ पक्तियो मे मार्मिक अपील लिखते यह भी लिखना कभी नही भूलते कि सस्था मेरी देखी हुई है। अच्छा काम कर रही है। सहायता कर अपनी रकम का सदुपयोग कीजिये। इसके पश्चात अपने चार-पाच मित्रो के नाम लिख कर रकम चढा कर झुनझुनवालाजी से रकम दिला कर चिट्ठा चालू कर देते। प्रतिदिन ३-४ बजे हमसे रिपोर्ट मागते। परिचय कराने के लिये हमे सुबह विक्टोरिया बुलाते। दफ्तर हर रोज एक व्यक्ति को फोन करके कहते कि ये महिला मण्डल उदयपुर वाले हैं। महिला मण्डल के हमारे ऐसे सरक्षक स्त्री शिक्षा-प्रेमी, दानवीर और महामानव भागीरथजी का सस्था के अनेको कार्यकर्ताओ से निकट का सम्पर्क हो गया था। उनके नाम अलग से पत्र-पत्रादि भी आते। प्रत्येक को हाथ का लिखा ही पत्र मिलता। मैंने उनके नाम का कोई पत्र टाइप किया हुआ नही देखा। आज उनके हाथ के लिखे पत्रो का सग्रह ही उनकी याद बन गया है। एक पत्र मे मैंने छात्रावास भवन की माग की तो शीघ्रताशीघ्र उत्तर आया कि भवन का ब्ल्यू प्रिन्ट बनवाओ। शीघ्र ही उदयपुर आगमन का योग बन रहा है। मैंने पत्र भाई श्री सुखाडियाजी को बताया।

श्री नन्दलाल भुवालका तपेदिक अस्पताल के उद्घाटनार्थ तपोधन राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू पधारे, तब इस शुभ अवसर पर सर्वश्री भागीरथजी कानोडिया, रामकुमार भुवालका, शिवकुमारजी भुवालका, भानमलजी भुवालका, नथमलजी भुवालका, मोहन लालजी जालान, इत्यादि अनेक सज्जनो की मण्डली यहा आई। इन उद्योगपतियो की टोली को कानोडियाजी ससम्मान महिला मण्डल मे लाये। सस्था देखी निरीक्षण के बाद सराहना की, और आगमन के स्मरणार्थ श्रीमान् मोहनलालजी जालान से पुस्तकालय का उद्घाटन कराया तथा श्रीमान् माननीय मोहनलालजी सुखाडिया, मुख्यमन्त्री राजस्थान की अध्यक्षता मे भागीरथजी ने 'श्री रामकुमार भुवालका कस्तूरबा कन्या छात्रावास' का शिलान्यास किया। श्री रामकुमारजी भुवालका ने छात्रावास-भवन के लिए आर्थिक सहायता की घोषणा की।

श्री भागीरथजी कानोडिया कलकत्ते मे बैठे-बैठे भी सदैव महिला मण्डल को स्मरण रखते। वहा से जो भी उदयपुर यात्रार्थ आता तो उसे महिला मण्डल देखकर आने का स्मरण दिलाते। श्री कानोडियाजी ने तो अपने परिवार को महिला मण्डल

मे ही ठहरने का आग्रह किया अतः उनकी पत्नी, बहन गंगादेवी कानोड़िया महिला मण्डल मे ही ठहरी।

महिला मण्डल के प्रतिनिधि मण्डल को एक बार कलकत्ता मे उन्होने रात्रि-भोज मे आमन्त्रित किया और भोजनोपरान्त परिवार एकत्रित हुआ। परिचय कराया गया और अन्त मे सबके नामसे एक एक सौ रुपमे सहायतार्थ दिये अतः मैंने कहा कि कानोडिया हाऊस से तो सहायता प्राप्त हो गयी है। इस पर कानोडियाजी ने कहा कि इनका सबका बैंक मे खाता है। इन सबको भी देना सीखना चाहिये। इनके पैसे का यही सदुपयोग है। आप महिलाओ की सेवा का कार्य कर रहे हैं, आपने तो जीवन लगा रखा है। हम तो आपके साथ मे लगे है। आपकी कठिनाई यदि धनिक वर्ग समझ जाय तो आपको इस वृद्धावस्था मे पैसे के लिये घर-घर नही फिरना पडे। आप तो हमारा पुण्य बढाने आये है। सुनकर हम सजल और अवाक हो गये।

राजस्थान और अन्यत्र, मैं जहा भी जाता हू भागीरथजी की सहायता की चर्चा होती है। उनके पास जो भी गया निराश होकर खाली हाथ नही लौटा। बिना नाम चुपचाप देते थे। यहा भी अनेक छात्र है जिन्हे छात्रवृत्ति प्राप्त हुई। श्री मोहन बहिन ने उनका चित्र मांगा। काफी प्रयत्न करने पर भी नही मिला। 'मेरी छोटी सी रकम आपके समर्पित-जीवन के सामने तुच्छ है।' सत्य तो यह है कि उनको देने का शौक ही था। मना करना सीखा ही नही था। ४-५ दिन तक कोई लेने वाला नही आता, तो पूछते कि क्या आजकल कलकत्ते मे किसी सस्था का प्रतिनिधिमण्डल धन सग्रहार्थ नही आया है।

देश मे कही बाढ, दुष्काल भूकम्प आया हो तो उसके सहायतार्थ प्रयत्न करने मे उन्हें चिन्तित देखा। राजस्थान के दुष्काल मे मेवाड क्षेत्र मे भीलो के घर-घर जाकर सहायता करते मैंने उन्हे देखा है। वाटर बोर्ड मे उनके प्रयत्न से सैकडो कुए खोदे गये हैं। गावो में दुष्काल मे कैम्प लगे तो उन्होने गो-रक्षा को भारत के इतिहास मे पहिला और उच्चकोटि का कार्य बताया। राजस्थान राज्य मे बाडमेर, जैसलमेर क्षेत्र से मालगाडियो मे गौओ को लाकर, एक-एक हजार गायो के अनेक कैम्प लगाये, तो इस कार्य की बडी सराहना हुई। श्री मोहनलालजी सुखाडिया, मुख्यमन्त्री, राजस्थान, को गो सेवा के इस पुण्य कार्य को पवित्र कार्य मानकर आर्थिक सहायता की और मेरे सामने धन्यवाद दिया। कानोडियाजी की मेवाड की अन्तिम यात्रा भी बडी स्मरणीय है। भूपाल नोबल्स कालेज की स्वर्ण जयन्ती पर कानोडियाजी आये। सैनिको को वीर चक्र, राष्ट्रपति पुरस्कार-प्राप्त अध्यापको और ताम्रपत्र-प्राप्त स्वतन्त्रता-सग्राम के सैनिको का सम्मान उनके हाथो से स्वर्णपत्र देकर किया गया। स्वतन्त्रता सग्राम के सैनिको को उन्होने अपनी ओर से दुशाला ओढा कर सम्मान दिया। मुझे दुशाला ओढाते हुए पूछा कि आप कहा-कहा जेल मे रहे। मैंने अहमदाबाद, इलाहाबाद, अजमेर और उदयपुर का कहा तो पुन प्रश्न किया कि आपका मेरा परिचय कितने वर्ष पूर्व हुआ, तो मैंने विनोद मे कहा कि आपकी और मेरे मिलन की स्वर्णजयन्ती है। समय निकाल कर महिला-मण्डल आये। भाव विभोर होकर आशीर्वाद दिया और कहा कि महिला-मण्डल अब वट-वृक्ष हो गया है।

—: ० :—

सर्वोदय-नेता
श्री देवदत्त निडर

ग्रामीणों के सेवक

शेखावाटी मे जब से आजादी के लिए आन्दोलन चला तब से ही मुकुन्दगढ निवासी श्री भागीरथजी कानोडिया उसमे भाग लेने लग गए थे। एक बार किसानो ने मुकुन्दगढ मे जुलूस निकाला तब वहा के जागीरदार ठाकुर साहब ने नही निकालने दिया तथा कई प्रकार की दिक्कतें पैदा की और आने वालो को डराया और धमकाया, फिर भी किसानो ने खुब सामना किया।

उस समय इस क्षेत्र मे श्री कानोडियाजी ने शिक्षा का प्रचार किया और ग्रामीण जनता को यह समझाने लगे कि 'आप लोग बच्चो को पढाओ तथा जुल्म-ज्यादती करने वालो का सामना करो।' श्री कानोडियाजी को भी कई प्रकार के कष्ट दिए गए, फिर भी उन्होने हिम्मत करके सब प्रकार से उनका सामना किया और किसानो को तथा हरिजनो व मजदूरो को ऊपर उठाने मे हर प्रकार से सहयोग देते रहे। गरीब बच्चो को आर्थिक सहायता भी वह समय-समय पर करते रहते थे। उस समय नवलगढ के सीतारामजी सेकसरिया तथा मडावा के श्री देवीबक्सजी सराफ तथा किसान नेता सरदार हरलाल सिंहजी इत्यादि सब ही आजादी की लडाई मे लगे हुए थे। देश आजाद हुआ, गरीब जनता सामन्तवाद की ज्यादतियो से काफी दुखी हो गई थी। कुछ आराम मिला।

आजादी के बाद श्री कानोडियाजी साहित्य पर भी ध्यान देने लगे तथा राजस्थानी-भाषा और लोक कथाए प्रकाशित करवायी। गरीब ग्रामीण जनता को रोजगार मिले, इसके लिए खादी वालो को भी प्रोत्साहन दिया तथा सहयोग करने लगे। खादी सस्थाओ मे जब भ्रष्टाचार तथा बेईमानी फैलने लगी, तब वे उनसे धीरे-धीरे दूर होने लग गए क्योकि इन सस्थाओ मे सुधार होने की उन्हे आशा नही रही।

श्री बदरीनारायणजी सोढानी को भागीरथजी ने सहयोग दिया और सीकर मे श्री कल्याण आरोग्य सदन के नाम से एक बडा अस्पताल चालू करवा दिया, जिससे गरीब जनता को काफी लाभ हो रहा है। भागीरथजी ने देश सेवा मे तथा गरीबो के सुधार मे सब प्रकार का सहयोग दिया है। उनके चले जाने से देश को नुकसान हुआ है।

देश के नवयुवको को कानोडियाजी के जीवन से शिक्षा लेकर के कुछ रचनात्मक काम करना चाहिए।

—: ० :—

भूतपूर्व ससत्सदस्य, प० बंगाल के भूतपूर्व मंत्री
श्री सुशील धाडा

अत्युच्च राहत-संगठक

भागीरथजी कानोडिया का नाम कलकत्ता के दो अन्य गैर-बगाली सज्जनों श्री सीताराम सेकसरिया एव श्री बसन्तलाल मुरारका के साथ जुडा हुआ है, जो मेदिनीपुर जिले के नमक अभियान आन्दोलन से अनवरत सपृक्त रहे। उस समय मैं महज एक किशोर, जिले के सब-डिवीजन तामलुक मे स्वयसेवक था। तामलुक में यह आन्दोलन बडा प्रसिद्ध हुआ और स्थानीय आन्दोलनकारियो मे ये मारवाडी सज्जन बडी श्रद्धा के पात्र बने। इस तरह मैं उस समय के कलकत्ता के एक प्रख्यात व्यवसायी भागीरथजी के नाम से परिचित हुआ।

समय बीतने के साथ, यह नाम अपनी आत्मीयता, निष्कलक चरित्र एव उदार हृदयता के कारण बहुत लोकप्रिय हुआ। १९४२ की अगस्त-क्रांति, बगाल मे आंधी के प्रकोप एव १९४३ के अकाल के दौरान भागीरथजी ही थे, जो हमारे निकट पीडित मानवता की सेवा मे समर्पित एक सच्चे गाधीवादी के रूप मे आये। राहत कार्यों के एक अद्वितीय सगठक के रूप मे भागीरथजी का सभी आदर करते थे।

१९४२-४४ मे जब तामलुक की 'ताम्रलिप्त जातीय सरकार' एव 'विद्युत वाहिनी और भगिनी सेना' के नाम से प्रसिद्ध वहा की राष्ट्रीय सरकार और राष्ट्रीय सेना के अविभाज्य अग के रूप मे मुझे वर्षो भूमिस्थ होकर जीवनयापन करना पडा था, तब भागीरथजी के राहत कार्यों ने ब्रिटिश प्रशासन द्वारा उत्पीडित लाखो भूखे और बेघरबार पुरुषो और स्त्रियो का जीवन और प्रतिष्ठा बचाई। अधिकाश मामलो मे राहत का सामान उक्त राष्ट्रीय सरकार के भूमिस्थ कार्यकर्ताओ द्वारा ही इधर-उधर पहुंचाया जाता था, जिसकी पूरी जानकारी भागीरथजी को थी। अपने स्वय के ऊपर ब्रिटिश-उत्पीडन की सभावना से वे निर्भय थे, और लगभग एक वर्ष तक उन्हे कारावास भी भोगना पडा। वे धार्मिक वृत्ति के पुरुष थे और दीन एव उत्पीडित मानवता की सेवा उनके धर्म का अग थी। कलकत्ता के उपद्रवो मे या कलकत्ता के विशाल हत्याकाड मे महात्माजी के आदेश पर भागीरथजी की निर्भीक सेवाए, सच्चे अर्थ मे उनके गाधीवादी चरित्र का औचित्य प्रस्तुत करती हैं।

वे बगाल को प्यार करते थे और प्यार करते थे हृदय की अन्तरतम भूमि से। भागीरथजी का नाम मुझे महाभारत के उस भगीरथ का स्मरण दिलाता है, जो कठिन परिश्रम, त्याग तथा मनन के द्वारा करुणा, समृद्धि और हरियाली की धारा गगा या जाह्नवी को इस भूतल पर ला सका था। पार्थिव भागीरथजी कानोडिया की भी हमारे इस देश मे और इस सीमित काल-मान मे वही देन है।

आदर्शो से भरे हुए हृदय वाले भागीरथजी एक मौन कार्यकर्ता एक अत्युच्च राहत-सगठक के रूप मे स्मरण किए जाए गे।

—:o:—

शिक्षा-शास्त्री, राजस्थान विद्यापीठ के संस्थापक
श्री जनार्दनराय नागर

समाज-सेतु

तब मैं विद्याभवन मे एक अध्यापक था, मेवाड-सरकार की एक वर्ष तक चाकरी कर शिक्षक बनने के लिये विद्याभवन मे शिक्षक बना था। इधर विद्यापीठ की स्थापना और उसके प्रारम्भिक विकास का काम, उधर ब्रिटिश साम्राज्य की गुलामी के विरुद्ध सघर्ष, प्रजामण्डल, कांग्रेस, महात्मा गाधी, जवाहरलाल नेहरू, राष्ट्र, राष्ट्रीय स्वतत्रता, राष्ट्रभाषा हिन्दी, राष्ट्रलिपि देवनागरी और महात्माजी का मुक्ति-मोर्चे का रचनात्मक कार्यक्रम। तब पच्चीस रुपयो की सेकेण्डहैंड साइकल पर सवार मैं स्वप्नो से भरा हुआ विद्याभवन नौकरी पर जाता और विद्यापीठ का आयोजन करता चलता। तब विद्याभवन का नई शिक्षा का सन्देश मेवाड मे फैलने लगा था और नई चेतना की शिक्षा को हम शिक्षक, माता-पिता और अभिभावक जानने लगे थे। कीर्ति-कार्य भागीरथजी कानोडिया तब विद्याभवन के सरक्षक के समान ही थे। विद्याभवन के विकास मे डॉ० कालूलालजी श्रीमाली ने जितनी देन दी है, उतनी ही भागीरथजी कानोडिया ने विद्याभवन के आर्थिक सघर्ष को हल्का करने मे मदद की है। परन्तु भागीरथजी कानोडिया ने उस समय के राजपूताना और बाद के वृहत् राजस्थान की सभी राष्ट्रीय शिक्षा, सस्कृति और समाज कल्याण की सस्थाओ, प्रवृत्तियो और व्यक्तियो की मौन सहायता की गगा बहाये रखी।

राजस्थान के उत्थान के रचनात्मक और उत्कर्ष के शिक्षात्मक सत्कार्यो के लिये वह भगीरथ ही थे। अभाव मे डोलते तथा अपनी गृहस्थी की गरीबी सहते हुए अनेक कर्मठ कार्यकर्ताओ के लिये तो भागीरथजी पिता-तुल्य ही थे। निस्संदेह राजस्थान के श्रेष्ठियो की निष्काम आर्थिक सहायता के बिना भारत के दिव्य घोष और मानव घोष मन्दिरो का जीर्णोद्धार नही होता और ना ही जनता मे जनतत्रीय-राजस्थान के सामाजिक शौर्य की सद्भावना ही फैलती। राजस्थान के श्रेष्ठियो ने भारतीय धर्म-समन्वय और सस्कृति के उद्धार तथा प्रसार के लिये सदैव सन्तो, महन्तो, मठो, मन्दिरो, यज्ञो आदि की दिल खोल कर सहायता की है।

सामाजिक श्रेय की इस गगा का मार्ग प्रशस्त करने वाले महाजन व्यक्तियो मे हमारे समाज सेतु भागीरथजी कानोडिया अग्रगण्य थे। बिडला, बागड, सोमानी, कमानी, डालमिया, तापडिया, मोहता गिनाने लगू तो सभी आदि वरेण्य श्रेष्ठियो ने निस्सदेह मन्दिरो के दीपक सजोये रखे हैं और सामाजिक राष्ट्रीय कार्यकर्ताओ तथा उनकी प्राणापन्न सस्थाओ को समय-समय पर सहायता कर उनका सदैव परित्राण किया है। महात्मा गाधी के रचनात्मक कार्यक्रम के बहुविध मोर्चो को इन मतिमानो ने सक्रिय रखा है तथा

राष्ट्र-पुरुषो की निधियां भरपूर रखी हैं। भागीरथजी इस सामाजिक श्रेय के विशाल क्षेत्र के सरक्षक मित्र तथा साथी थे। निर्विवाद भागीरथजी कानोडिया राजस्थान के भारतीय समाज सेतु थे—अपने सौजन्य, अपने शील, अपने जाग्रत विवेक और बुद्धिमान चैतन्य द्वारा भागीरथजी कानोडिया बिना कहे और माने समाज के सेतु बनते चले गए। तभी उनके स्वर्गारोहण को लेकर राजस्थान की प्रत्येक वास्तविक सस्था और प्रत्येक धीर-वीर सामाजिक कार्यकर्ता आह भर कर रह गया है। भागीरथजी कानोडिया राजस्थान के विशाल रचनात्मक कार्य के पितामह हो गए थे। उनका ससार से विदा लेना सैकडो कार्यकर्ताओ तथा पचासो सस्थाओ को एक प्रकार से अनाथ कर गया है। किन्तु सज्जन तो आने पर प्रसन्नता और जाने पर आसू ही प्रदान करते हैं। भागीरथजी कानोडिया राजस्थान के ऐसे ही सज्जन थे।

मेरे जैसे अभाव-ग्रसित और सघर्षरत एक मध्यम श्रेणी के सामाजिक कार्यकर्ता की ओर वह सहज ही खिचे। विद्याभवन के ओपन एयर सेशन मे तब मैं अपने ग्रुप के साथ अरूणोदा गाव मे था। शिविर मे प्रसन्नता फैली कि भागीरथजी कानोडिया आए हैं। विद्याभवन का यह ओपन एयर शिक्षा कार्यक्रम यद्यपि पश्चिम से उधार लिया कार्यक्रम था तथापि हम लोगो के लिए यह एक विशिष्ट देन थी। विद्याभवन के आजीवन अध्यक्ष डॉ० मोहनसिंह मेहता का तम्बू ऊंचाई पर गडा था और प्रधानाध्यापक का शिविर उसके नीचे सुशोभित था। भागीरथजी कानोड़िया वहीं टिके थे। सभी ग्रुपो के कार्य को देखते हुए भागीरथजी कानोडिया मेरे तम्बू के द्वार पर आ खडे हुए। वह अकेले ही थे। मैं अपने विद्यार्थियो के साथ था—कुछ कर रहा था। सहसा मैंने देखा भागीरथजी द्वार पर खड़े हैं। मेरे देखते ही भागीरथजी तम्बू मे आ गए। मैं उठा, मैंने उनको नमस्कार किया। भागीरथजी बोले—"मन्दिर मे मैं देवता का दर्शन करने आया हू।" मैं अवाक् सा उनका शान्त प्रसन्न मुख-मण्डल देखता खडा रहा। भागीरथजी ने पुनः कहा—"विद्याभवन की सेवा जी लगाकर कर रहे हो, किन्तु विद्यापीठ का दीपक बुझने न देना। उसको अपने आसुओ से सीचे रखना।" किसे पता था, भागीरथजी का यह विधाता का सकेत था। तब से विद्यापीठ के दीपक को आंसुओ से ही नही कार्यकर्ताओ के रक्त से सीचे रखना पडा है। आज भी राजस्थान विद्यापीठ का कार्यकर्ता-कुटुम्बियो का यह प्रथम भारतीय जनतन्त्रीय कुल देश काल के विषाद मे डूबा अपने भाग्य और भविष्य के संघर्ष में पडा हुआ है। किन्तु आधियों और तूफानो मे, निराशा की अधेरी रातो मे मुझे भागीरथजी का वही शान्ति, धैर्य और साहस प्रदान करने वाला प्रसन्न किन्तु गम्भीर स्वर सुनाई देता है। भागीरथजी कानोडिया विद्यापीठ के एक ही पितामह थे, जिन्होंने अपने इस गरीब कुल की शुभकामना ही नही की, उसकी रक्षा के लिये निरन्तर सहायता की है और करवाई है। आज मैं अपने चित्ताकाश मे भागीरथजी से विद्यापीठ के भविष्य का आश्वासन ही पाता हू। देह त्याग कर भागीरथजी हमारे चित्ताकाश मे एक आभा से भरा आश्वासन ही हो गए हैं।

तभी राजस्थान विद्यापीठ कुल सम्बोधिनी ने उनको भारत का समाज सेतु पुकारा। भागीरथजी मरणासन्न रुग्ण हैं—यह धक् करने वाला समाचार मैंने-

हमने सुना। एक टीस उठी विद्यापीठ के अन्त करण मे, और हमने भगवती परमेश्वरी जगदम्बा से प्रार्थना कर उनको भारत का समाजसेतु कहा—घोषित किया। भागीरथजी को कदाचित् इसका पता नही चला। कुटुम्बियो ने उनको यह बताया नही, किन्तु उनके सम्बन्धी बागडोदियाजी ने इस सम्बोधन को झेला। मुझसे कहा— "भागीरथजी वास्तव मे समाजसेतु ही थे।"

भागीरथजी सम्मान नही चाहते थे। मैंने कई बार निवेदन किया। उदयपुर पधारो और हमारी श्रद्धा के सुमन स्वीकारो। भागीरथजी ने मुस्करा कर मना कर दिया। मैंने कहा "कलकत्ता आकर हम आपको भारत का समाजसेतु पुकारेंगे।" भागीरथजी ने अवसर ही नही दिया। भारत के सेवको की पुरानी पीढी के भागीरथजी कानोडिया निष्काम कर्म योग मे ही निष्ठा रखने वाले उदारचेता मानव थे। पचम बिडला कहे जाने पर भी श्री-स्मृद्धि से घिरे रहने पर भी भागीरथजी को मैंने एक सरल, जाग्रत, विवेकशील उदारचेता मानव ही पाया है। भागीरथजी लेखक थे, समाज-सेवक थे, राष्ट्रीय पुरुष थे। किन्तु सर्वोपरि वह हमारे विशाल भारतीय समाज कल्याण के जलधियो के सेतु भी थे। मैं भागीरथजी कानोडिया को कभी भी 'सेठ' नही मान सका, उनको कभी भी मैं पचम बिडला नही कह सका। कभी उनको कलकत्ते के राजस्थानी महाजन के रूप मे स्वीकार नही कर सका। सीतारामजी सेकसरिया और भागीरथजी कानोडिया को हमने सदैव समाज-सेवक ही माना है। भागीरथजी कानोडिया ने क्या नही किया है इस उदीयमान भारत राष्ट्र के लिए राजस्थानियो द्वारा कठिन परिश्रम और विचक्षण दाक्षिण्य से अर्जित भूति को उन्होने पुण्य की गगा की ओर मोडा तथा भारतीय राष्ट्रीय श्रेय को उन्होने भारतीय जनता का तीर्थ बना दिया। अवश्य, भागीरथजी कानोडिया ने विद्यापीठ को स्वय लाख नही दिए, लाख एकत्र करवाए। किन्तु भागीरथजी कानोडिया ने हमे सघर्ष मे साहस, निर्माण मे आलोक तथा निराशा मे गहन आशा दी है। भागीरथजी कानोडिया को इसीलिये हम सामाजिक कार्यकर्ता अपना पितामह मानते है।

भागीरथजी कानोडिया का नश्वर देह पचभूतो मे मिल गया है। अवश्य, भागीरथजी कानोडिया ससार से विदा ले गए हैं, किन्तु मुझे आज भी भागीरथजी राजस्थान विद्यापीठ की कुटियाओ के द्वार पर खडे दिखते है। आज भी विद्यापीठ की रक्षा, हित और विकास के निराश सघर्षों की अंधेरी एकान्त रातो मे मैं भागीरथजी को पुकारता हू और सच मानिये, भागीरथजी दिव्य कीर्ति-शरीर मे व्यक्त होकर मुझे धैर्य बंधाते है—आशा जगाते हैं और मैं अपना अरण्य-रुदन बन्द कर भविष्य के अन्धकार मे मुस्कराने लगता हू।

—: o :—

विश्वभारती विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष
श्री रामसिंह तोमर

सज्जनोत्तम

कीर्तिशेष कानोडियाजी की शिक्षा और सास्कृतिक कार्यो मे विशेष रुचि थी, इसी कारण उनका इस शती के द्वितीय दशक से ही शान्तिनिकेतन के साथ घनिष्ठ सम्पर्क रहा। रवीन्द्रनाथ ठाकुर और चार्ली फ्रियर एण्ड्रूज के वे विशेषरूप से प्रिय व्यक्ति थे। एण्ड्रूज अन्त समय तक कानोडियाजी को नही भूले। कानोडियाजी विश्व-भारती की ससद के सदस्य थे। मुझसे स्वर्गीय श्री सुधीरजन दास (विश्वभारती के वाइस-चासलर और भारत के उच्चतम न्यायालय के प्रधान विचारपति) ने कानोडियाजी की चर्चा करते समय कहा था कि वे निर्भीक और सच्ची बात करते हैं। विश्वभारती की ससद मे वे स्पष्ट बात कहते थे, जो प्रधान सचिव श्री रथीन्द्रनाथ ठाकुर को अच्छी नही लगती थी, फलत कुछ दिनो बाद उन्हे ससद मे शामिल नही किया गया।

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर की इच्छा थी कि हिन्दी भाषा और साहित्य के क्षेत्र मे शोधकार्य, अध्यापन की व्यवस्था विश्वभारती मे हो। एण्ड्रूज साहब ने इस प्रसग मे कानोडियाजी से सहायता चाही और उनके प्रयत्न से हलवासिया ट्रस्ट द्वारा प्रदत्त आर्थिक सहायता से हिन्दी-भवन स्थापित किया गया। प० जवाहरलालजी नेहरू ने हिन्दी भवन का उद्घाटन किया। उद्घाटन समारोह के अवसर पर जो निमन्त्रण पत्र भेजा गया था उसमे कानोडियाजी का नाम आमन्त्रणकर्ता के रूप मे था।

कानोडियाजी का हिन्दी भवन के प्रति विशेष प्रेम था। चीन-भवन के साथ भी उनका विशेष प्रेम था। ये सस्थाए कैसा काम कर रही है, विश्वभारती की प्रगति तथा स्थिति के विषय मे पूरी जानकारी वे मिलने पर प्राप्त करना चाहते थे। अपने योगदान के विषय मे बात करना तो दूर, वे कुछ सुनना भी पसद नही करते थे। हिन्दी-अध्यापन की व्यवस्था हिन्दी-भवन की स्थापना के पहले ही हो चुकी थी। प० हजारीप्रसाद द्विवेदी को वेतन देने के लिए सुनिश्चित व्यवस्था नही थी। एक बार गुरुदेव ने द्विवेदीजी के गुणो की प्रशसा करते हुए कानोडियाजी से कहा था कि 'मुझे एक हीरा मिला है किन्तु मैं उसे अपने पास रखने मे असमर्थता का अनुभव कर रहा हू।' कानोडियाजी ने उदार आर्थिक व्यवस्था की और द्विवेदीजी को रखने मे गुरुदेव को कोई कष्ट नही हुआ। हिन्दी-भवन बन गया लेकिन कई वर्षो तक खाली पडा रहा। शोध-सस्था के रूप मे कार्य करना अर्थाभाव के कारण सभव नही था। कानोडियाजी ने आवश्यकता को समझा और सन् १९४५ से १९४८ तक हलवासिया-ट्रस्ट से अनुदान स्वीकृत कराया, फलस्वरूप हिन्दी-भवन अपने सुनिश्चित कार्यक्रम के

अनुसार काम करने लगा। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के द्वारा अन्य विभागो के समान हिन्दी भवन को भी अनुदान मिलता रहा है, फिर भी अनेक योजनाएं अपूर्ण रह ही जाती है। कानोडियाजी उदार दृष्टिकोण के थे, किन्तु उनकी उदारता का लाभ वे ही लोग उठा सकते थे जो उन्हे आश्वस्त कर सके कि जिस काम के लिए उनसे सहायता करने के लिए कहा जा रहा है वह वास्तव मे उचित और आवश्यक है। हिन्दी भवन के पुस्तकालय का विस्तार आवश्यक था, कानोडियाजी ने उसे उचित समझा और हिन्दी भवन का विस्तार कराया।

किन-किन विषयो पर कार्य होना चाहिए, कई बार इसकी चर्चा मुझसे हुई। हिन्दी-भवन की स्थापना का उद्देश्य था, आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओ और विशेष रूप से हिन्दी की मूल आधारभूत समस्याओ पर शोध कार्य करना, अपभ्रंश, व्रजभाषा, नाथपथ, सतमत जैसे पहलुओ का प्रामाणिक अध्ययन। मैंने उनका ध्यान आकर्षित किया—भारतीय मध्य-युगीन इतिहास के कुछ पहलुओ को समझने के लिए अन्य भाषाओ मे सुरक्षित आधारभूत सामग्री का प्रामाणिक हिन्दी-अनुवाद, जैसे भक्ति-धारा को समझने के लिए आलवारो की वाणियो का प्रामाणिक हिन्दी अनुवाद, ग्रीक-भाषा मे प्राप्त ऐतिहासिक-विवरणो का अग्रेजी मे तो अनुवाद है किन्तु हिन्दी मे मूल ग्रीक-भाषा से अनुवाद कराना चाहिए। सूफी-मत को समझने के लिए मूल अरबी, फारसी, तुर्की मे प्राप्त सूफियो के साहित्य का अनुवाद और चीनी यात्रियो के विवरणो का हिन्दी अनुवाद। कानोडियाजी ने मेरे प्रस्ताव को पसन्द किया और आलवारो की वाणियो के मूल तमिल से हिन्दी रूपान्तर कराने की व्यवस्था की। प्राचीन तमिल, सस्कृत, वैष्णव धर्म और दर्शन, हिन्दी, इतनी भाषाओ का प्रामाणिक ज्ञान रखनेवाला विद्वान प्राप्त करना कठिन था। यह योजना प्राय- पूरी हो गई है। पूरे व्यय की व्यवस्था उन्होने ट्रस्ट से कराई। मैं नही सोचता इस शृंखला की अन्य योजनाए कानोडियाजी जैसे प्रभावशाली व्यक्तित्व के अभाव मे पूरी हो सकेंगी।

अन्तिम वर्षों मे उनके साथ कलकत्ता मे 'हिन्दी-भवन' की स्थापना के सम्बन्ध मे अनेक बार चर्चा हुई। मैंने उन्हे सुझाव दिया था कि हिन्दी-भवन तो एक है ही, और हिन्दी-भवन स्थापित होगा तो उसका इतना स्वागत नही होगा। भावात्मक एकता के लिए भारतीय भाषा परिषद जैसा कोई नाम देकर सस्था स्थापित होती तो अच्छा होता। उन्होने कहा 'मेरा विचार तो हिन्दी भवन बनाने का था, आप जो कहते है, वही ठीक है। मैं तो बना दू गा, काम तो आप ही लोगो को करना है।'

कानोडियाजी को शान्तिनिकेतन के प्रति श्रद्धा थी, शान्तिनिकेतन के समावर्तन समारोहो मे वे प्राय सम्मिलित होते थे। उनके ठहरने के लिए विश्वविद्यालय की ओर से अतिथि-भवन मे व्यवस्था रहती थी, किन्तु उसको छोडकर वे हिन्दी-भवन मे या मेरे साथ ही ठहरते थे जहा अपेक्षाकृत असुविधाए अधिक थी। हम लोग उनसे कहते भी थे कि असुविधा होगी—उनका हम लोगो पर अपार-स्नेह था, और वे कहते थे 'अपने घर मे ही ठहरना ठीक है।' हमारे घर मे हाथ धोने का 'वेसिन' नही था, नल पर हाथ धोते समय कपडे भीग जाते थे, हम उन्हे सतर्क कर देते थे। उन्होने कहा 'बेसिन लगवा ले।' जब मैंने कहा विश्वभारती के सभी घरो की यही हालत है, इस

पर उनका कथन था कि 'तब ठीक है' । एक बार उनके साथ उनकी पुत्री भी आई थी, छोटे-से कमरे मे उन्हे बहुत कष्ट हुआ और तब उन्होने प्रस्ताव किया कि पखा, बेसिन से युक्त एक कमरा अतिथियो के लिए बनाना चाहिए और वह उनकी कृपा से बन भी गया। हिन्दी-भवन के अतिथि उसी मे ठहरते हैं। कानोडियाजी दूसरी बार आए तो उसी मे ठहरे।

सन् १९७१ मे विश्वेश्वरलाल हलवासिया स्मृति ग्रन्थ का प्रकाशन-समारोह हिन्दी-भवन मे आयोजित किया गया, विश्वभारती के वाइस-चासलर तथा अनेक विद्वान उपस्थित थे। कानोडियाजी की विनम्रता असाधारण थी—उन्होंने कुछ इस प्रकार कहा था, 'गुरुदेव और एण्ड्रूज की जो मेरे ऊपर कृपा थी वह मेरे लिए बहुत बडी चीज थी। हम लोग तो ट्रस्ट के धन के व्यवस्थापक है। आप लोग सहायता के लिए हमारे पास आते हैं इसके लिए हम कृतज्ञ हैं।' जब भी वे शान्तिनिकेतन आते थे तो पुराने परिचितो से अवश्य मिलते थे। सुधाकान्त रायचौधुरी, प्रो० तानयुनशान के घर जाकर मिलते थे, क्योकि वे लोग चल-फिर नही सकते थे। शान्तिनिकेतन के आचार्य प० नेहरू थे। उनसे उनका परिचय था। दिन के भोज मे कानोडियाजी विशिष्ट अतिथि के रूप मे आमन्त्रित रहते थे और वे एक दूसरे को अभिवादन निवेदित करते थे। जब इन्दिराजी आचार्य हुई, तब भी कानोडियाजी दो बार समावर्तन समारोहो मे सम्मिलित हुए। एक बार जन-सम्पर्क-विभाग की ओर से भेजे गए निमत्रण पत्र मे उनके नाम के पूर्व 'सेठ' शब्द जोड दिया था, उन्होने इस पर आपत्ति की और जब तक 'सेठ' के स्थान पर श्री लिख कर नही आया वे निश्चिन्त नही हुए।

कानोडियाजी का स्वभाव गम्भीर था, किन्तु साथ ही वे बडे विनोदी थे। समावर्तन समारोह समाप्त होने के कुछ घण्टे बाद प्रधानमत्री चले जाते थे और बहुसख्यक आगन्तुक भी। हम लोग बैठे हुए बात कर रहे थे, कानोडियाजी से एक सज्जन ने सहज भाव से कहा कि खास-खास आदमी चले गए हैं, ऐसे-वैसे लोग रह गए हैं। कानोडियाजी इस कथन का अभिप्राय समझ कर हसते हुए कह रहे थे 'यह आपने अच्छा कहा।' वे सज्जन भी कुछ सकोच मे पड गए और अपने कथन की व्याख्या करने लगे, आखिर 'ऐसे-वैसे' का अर्थ क्या है ? प्राचीन युग मे 'ऐसे-वैसे' व्यक्ति का अर्थ विशिष्ट व्यक्ति रहा होगा और अब अर्थ परिवर्तन होने के कारण उसका अर्थ 'सामान्य व्यक्ति' हो गया है।

उनके साथ उनकी श्रीमती बराबर आती थी, एक बार बडी लडकी भी आई थी। सब लोग शान्तिनिकेतन से देवघर जा रहे थे, जल-कलश मे पानी भर कर एक भद्र महिला रास्ते के लिए दे रही थी, कानोडियाजी कहा 'इसमे क्या दूध भर कर दिया है ?' उनकी आत्मीयता हमारे लिए अनुकरणीय थी। वे हमारे अपने घर के सदस्य थे जितनी बार वे हिन्दी-भवन आए, बडे स्वाभाविक और सहज भाव से हमारी कम सुविधाओ और अधिक असुविधाओ के साझीदार हुए। काठ के तख्त पर सोना, देहाती स्नानागर मे स्नान करना, शीत-काल मे ठडे पानी से ही हाथ-मु ह धोना, और छोटे से कमरे मे दिन बिताना।

राजनीतिक और साहित्यिक समस्याओ पर उनके विचार सतुलित, तटस्थ और महत्वपूर्ण होते थे। यह सर्वविदित है कि वे गाधीजी के आदर्शो के प्रति श्रद्धावान थे,

खादी पहनते थे। काग्रेस के प्रति उनका भुकाव था। पिछले वर्षों की सिद्धान्तहीन राजनीतिक परिस्थिति से वे चिन्तित थे, अनेक व्यक्ति उनके पास परामर्श और सहायता के लिए पहुचते थे। हिन्दू-मुस्लिम एकता, अन्तर्जातीय सद्भावपूर्ण सम्बन्धो के पक्षपाती थे।

पुरानी कहानियो, उक्तियो, शब्दो की व्युत्पत्ति को लेकर प्राय चर्चा होती थी। मैं जब भी कलकत्ता जाता था, कानोडियाजी से मिलने का कार्यक्रम अवश्य रहता था। पाणिनि के जीवन का अन्त किस प्रकार हुआ। मेघो के कितने पर्यायवाची सस्कृत मे है? भक्ति का उद्गम कब हुआ? महाभारत के शान्ति-पर्व मे कही-कही विचित्र उपदेश क्यो है? ऐसे नाना प्रसगो पर चर्चा होती थी और 'बहता पानी निर्मला' नामक उनकी कृति मे जो लोक कथाए प्रस्तुत की गई हैं उनके स्रोतो के विषय मे वे प्राय. मनन किया करते थे। शब्द का गलत प्रयोग उन्हे अच्छा नही लगता था। मेरे साथ एक विद्वान उनसे मिलने गए, वे बिना प्रयोजन के 'परस्पर' शब्द का प्रयोग बातचीत मे कर रहे थे। किसी व्यक्ति की चर्चा होती वे कह उठते 'हमारा उनसे परस्पर है'। कानोड़ियाजी ने उनसे पूछा 'परस्पर' क्या है?' शायद बगला के प्रभावस्वरूप वे सज्जन परस्पर का अपूर्ण प्रयोग कर रहे थे।

आत्म-प्रशसा कानोडियाजी सुनना पसन्द नही करते थे। अनेक सस्थाओ की उन्होने निस्पृह भाव से सहायता की, और अनेक व्यक्ति उनसे उपकृत हुए। प्रशसा और निन्दा, सुख और दुःख उनके लिए समान थे। सी० एफ० एण्ड्रूज ने उनके सम्बन्ध मे लिखा है कि, 'वे इस प्रकार लोगो की सहायता करते थे कि सहायता पाने वाले व्यक्ति को भी ऐसा लगे जैसे सहायता लेकर वह देने वाले का उपकार कर रहा हो। उनका बाया हाथ यह नही जान पाता था कि दाहिना क्या कर रहा है?' पण्डित हजारीप्रसादजी द्विवेदी ने एक बार कहा था कि कानोडियाजी मारवाडियो मे नर-रत्न है। वे उन सज्जनोत्तमो मे से थे जिनके विषय मे यह उक्ति सही लगती है -

क्षणमिह सज्जनसंगतिरेका
भवति भवार्णव तरणे नौका।

अपने कल्याणमित्र की पुण्य स्मृति मे मैं विनम्र श्रद्धाजलि समर्पित करता हू।

—: ० :—

कलकत्ता विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष
श्री कल्याणमल लोढ़ा

पुण्य स्मरण

जोधपुर विश्वविद्यालय के कुलपति पद को स्वीकार करने के पूर्व स्मृति शेष भागीरथजी कानोड़िया से मिलने जब मैं उनके निवास पर गया तब उन्होंने कहा, 'लोढाजी, आप कलकत्ता छोड़कर भले ही जाए पर यह ऐसी मोह नगरी है कि सारी असुविधाओं के बावजूद इससे कभी मोह भग नही होता।" मैंने उनके इस कथन पर गम्भीरता से विचार किया और पाया कि सचमुच इस मोह के भंग नहीं होने का कारण कलकत्ता से अधिक कलकत्ता के वे प्रभावी पुरुष हैं, जिनका सान्निध्य और सम्पर्क मनुष्य को बार-बार उसकी ओर निरंतर आकर्षित करता रहता है। पुण्य श्लोक भागीरथजी कानोड़िया भी ऐसे ही 'प्रभावी पुरुष' थे। जब जोधपुर में उनके स्वर्गवास का समाचार सुना तो मुझे मर्मान्तिक पीड़ा पहुंची और ऐसा लगा कि सचमुच एक 'प्रभावी पुरुष' चला गया है, जिसकी मनस्विता, तेजस्विता, सरसता और उदारता कभी विस्मृत नहीं हो सकेगी।

आचारो विनयो विद्या प्रतिष्ठा तीर्थदर्शनम्।
निष्ठा वृत्ति तपो दानं नवधा कुललक्षणम्॥

ये नव कुललक्षण तो उनमें थे ही—ये उनके व्यक्तित्व की भी विशेषताएं थीं।

भागीरथजी से मेरा प्रथम परिचय सन् १९४५ में मारवाड़ी विद्यालय की तुलसी-जयन्ती के समारोह मे हुआ था। उन दिनों मैं कलकत्ता आया ही था। वह हमारी पहली मुलाकात थी। उस दिन उनका व्यक्तित्व ऐसा आकर्षक लगा कि मैं उनके निकट सम्पर्क में आता गया और मृत्यु पर्यन्त यह निकटता घनीभूत होती गयी। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ की योजना एवं उसके प्रकाशन के समय मैंने पहली बार उनके निकट सम्पर्क मे रह कर कार्य किया। तब मैंने उनकी विवेक शक्ति और हृदय की विशालता के साथ-साथ उनकी आन्तरिक सरलता और गम्भीरता का प्रचुर अनुभव किया। अभिनन्दन ग्रन्थ के प्रस्तुतीकरण और समर्पण समारोह के दौरान कुछ अप्रत्याशित विरोध उपस्थित हो गये थे, परन्तु जिस औदार्य, शान्ति और धैर्य के साथ उन्होने सारी स्थिति सम्भाली, वह उनकी सूझबूझ, वैचारिक दृढ़ता और गम्भीरता का प्रमाण थी। पूज्य दद्दा ने अभिनन्दन समारोह मे दिए गए अपने वक्तव्य मे भागीरथजी की प्रशस्ति मे निम्नोक्त शब्द कहे थे—

'भगीरथ प्रयत्न' फलें आपके
ले आ सकते है यहां गंगा से प्रवाह जो

आप अनुवाद की ही योजनाएं कर दें
तो कह सकें हम सगर्व-विश्वभर के
वाड्मय मे जो है वह चुन लिया हमने
और जो हमारा अपना है अतिरिक्त है
उस रस धारा के समक्ष रौप्य धारा क्या।
लक्ष्मी सरस्वती का मगल मिलन हो।

राष्ट्रकवि के मुख से कहे गये ये शब्द उनके व्यक्तित्व की गरिमा और महिमा के स्पष्ट प्रमाण है।

एक और घटना सुनाऊ। श्री कन्हैयालालजी चितलागिया और मैं भागीरथजी से एक बौद्ध भिक्षु के साथ राजगृह मे बौद्ध मन्दिर और कृषि भूमि के लिए आर्थिक सहायता प्राप्त करने के लिए गए। उस बौद्ध भिक्षु से श्री कन्हैयालालजी का अच्छा परिचय था, पर मेरा उतना नही। भागीरथजी ने उदारभाव से सहायता की पर न जाने क्यो चलते-चलते यह कहा, "लोढाजी, इसके सदुपयोग को देख लीजिएगा।" पीछे पता चला कि वह बौद्ध भिक्षु गृहस्थ बन गया और समस्त राशि का दुरुपयोग हुआ। कुछ दिनो के अनन्तर जब मैंने और श्री चितलागियाजी ने उन्हे वस्तुस्थिति से अवगत कराकर क्षमा मागी, तव उन्होने कहा कि यह न सदुपयोग है और न दुरुपयोग, केवल एक "प्रयोग" है। आप इसकी कुछ भी चिन्ता न करें। ये सब मनुष्य को नए-नए अनुभवो से युक्त करते हैं।

ऐसे अनेक सस्मरण उनके साथ जुडे हैं। हमलोग लेक पर प्रात कालीन चक्रमण साथ-साथ करते थे और उनसे विविध विषयो पर विचार-विमर्श होता रहता था। वही मुझे उनके गम्भीर साहित्यिक अध्ययन के प्रचुर प्रमाण मिले—उसकी गहराई के। भारतीय सस्कृति और उसकी महान परम्परा मे उनकी गहरी आस्था थी। राजस्थानी साहित्य और उसकी लोक संस्कृति के वे निष्णात और अधिकारी विद्वान थे पर उनका यह वैदुष्य आरोपित और कृत्रिम नही था। कबीर, तुलसीदास, सूरदास और अन्य मध्ययुगीन कवियो का उन्होने अध्ययन किया था। कई वार वे उनके पद और दोहे सुनाते थे। एक वार उन्होने निम्नोक्त दोहा सुनाया, जिसमे राधा के अनिन्द्य रूप एव सौन्दर्य का अद्भुत वर्णन हुआ है—

सब तिथियन को चन्द्रमा देखि लेहु तुम आज।
धीरे धीरे खोलियो, घूघट तुम ब्रजराज॥

उनका पुत्र सन्तोष कुमार हमारे हिन्दी विभाग का विद्यार्थी था। प्रारम्भ मैं कभी-कभी मैंने सन्तोष के साहित्यिक अनुराग और उसकी काव्य प्रतिभा की उनसे चर्चा की। वे सुनकर मुक्तभाव से हस देते थे, पर कहते कुछ भी नही थे।

मेरी यह दृढ मान्यता है कि आचार व विचार की एकता और व्यक्तित्व की अन्तर्बाह्य स्वच्छता ही मनुष्य को महान बनाती है। सरलता का अथ निरभिमान और

निरहंकार तो होता ही है पर आत्म बल और निश्छल रागात्मक संश्लेष की वह शक्ति भी उसमे निहित रहती है, जो मनुष्य को विनम्र रखते हुए उसे महान बनाकर स्वस्थ मानसिकता प्रदान करती हुई व्यक्ति-मन की सामाजिक चेतना को प्रकृत भावभूमि से जोडती है। यही लोक मन का उदय होता है और उससे उद्भूत सच्ची लोक सेवा और लोक भावना का वास्तविक स्वरूप हमे दिखाई पड़ता है। श्रद्धेय भागीरथजी का व्यक्तित्व इसी लोक मन का प्रतीक था।

उन्होंने कलकत्ते के नवजागरण और सामाजिक अभ्युदय में जो अवदान दिया, वह सर्वविदित है। तुलसी पुस्तकालय जो १९४६ के दंगो में पूर्णतः नष्ट कर दिया गया उन्ही के द्वारा स्थापित किया गया था। बंगीय हिन्दी परिषद् की स्थापना मे उनका प्रमुख हाथ रहा। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के कार्यो में उन्होंने सदैव रुचि ली। अनेक साहित्यिक संस्थाओं से उनका सम्बन्ध था और यह सम्बन्ध अखिल भारतीय स्तर पर व्यापक और प्रतिष्ठित रहा। सस्ता साहित्य मण्डल मे उनकी रुचि और उसके विकास में उनका योगदान सर्वविदित है। कलकत्ता विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग मे हलवासिया रीडरशिप की स्थापना उन्हीं के सत्संकल्प का परिणाम थी। विश्वभारती के हिन्दी भवन का भी श्रेय उन्ही को देना चाहिए। यह तो हुई उनके साहित्य-प्रेम और लगन एवम् निष्ठा की बात। इतनी साहित्यिक सस्थाओ से सम्बद्ध रहकर भी वे कभी इसका गुमान नहीं करते थे। साहित्य सेवा, साधना और साहित्यकारों का सम्मान उनकी वह अनन्य विशेषता थी, जिसने उन्हें समस्त प्रख्यात साहित्यकारो का आत्मीय बना दिया। हिन्दी ही नही, समस्त भारतीय साहित्यकारों और विद्वानों के मध्य भी वे अत्यन्त समादृत थे। डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, डा० कालीदास नाग, पं० विधुशेखर भट्टाचार्य भागीरथजी की प्रशंसा करते थकते नही थे। उनका यह साहित्य-प्रेम भी नैसर्गिक था। साहित्य मानवीय सम्वेदनाओ को रचनात्मक अभिव्यक्ति और संकल्प प्रदान करता है। स्व० भागीरथजी का सम्पूर्ण जीवन इसी सम्वेदनशीलता का रचनात्मक और घनीभूत सकल्पात्मक जीवन था, जिसमें राग-विराग का भी विचित्र मणिकांचन सयोग विद्यमान था। राग स्वत. स्पष्ट है, पर विराग, हां, इस दृष्टि से वे निःस्पृह व वैरागी भी थे। सेवा को उन्होंने अपना साध्य गिना—साधन नहीं। वह उनकी प्रकृति का ही एक अग थी। साहित्य-साधना जिन उच्चतर मानवीय मूल्यों की मांग करती है, भागीरथजी में वे सभी मूल्य स्वतः सिद्ध थे।

वे सांस्कृतिक जागरण के भी अग्रदूत थे। कलकत्ते की अनेक सांस्कृतिक सस्थाओ के वे सूत्रधार थे। नारी शिक्षा आन्दोलन और समाज सुधार की कई योजनाएं उन्होंने क्रियान्वित की। मैं व्यक्तिशः अच्छी तरह जानता हूं कि जब भी कोई व्यक्ति उनके पास अपनी दुःखभरी कहानी लेकर पहुंचता, वे मुक्त भाव और सहज सम्वेदनशीलता से उसके दु.ख के भागीदार बनते थे। यह सब होते हुए भी उन्होने कभी आत्मश्लाघा या प्रचार की भावना से कार्य नहीं किया और न उन्होंने अपनी करनी का ढिंढोरा ही पीटा। आत्मप्रचार से विरति उनके व्यक्तित्व और स्वभाव की वह अद्भुत विशेषता थी—जो आज अत्यन्त

दुर्लभ है। मुझे स्मरण नही आता कि उन्होने कभी अपना सार्वजनिक अभिनन्दन कराया हो या किसी अभिनन्दन ग्रन्थ की योजना को स्वीकार किया हो। वे सही अर्थ मे गाधीवादी थे। गाधीवाद मानवीय मूल्यो और नैतिक आदर्शो के साथ-साथ जीवन के सत्य और शिवत्व पर विश्वास रखता हुआ उसे लोकमगल के सौन्दर्य से समन्वित करता है। लगता है, यही भागीरथजी का जीवन-दर्शन भी था—'परहित सरिस धर्म नही, भाई'। उनके जीवन का मूलमन्त्र कर्त्तव्य था, अधिकार नही, सेवा था, प्रभुता नही। भारतीय भाषा परिषद् की स्थापना का समस्त श्रेय उनको और श्रद्धेय सीतारामजी सेकसरिया को ही है। सारी योजना को पूर्ण कर वे तटस्थ भाव से एक साधक की भाति ही उससे जुडे रहे और कभी इस बात का डका नही पीटा कि यह सब उनकी चेष्टा और दूरदर्शिता का ही परिणाम था। सौजन्य, सारल्य और सारस्वत जीवन का इससे अधिक और क्या प्रमाण हो सकता है ?

'प्रकृति, खलु सा महीयसा सहते नान्य समुन्नति चया'
(किरातार्जुनीय)

गर्व दूसरो की उन्नति नही देख सकता। भागीरथजी अपनी नही, दूसरो की उन्नति देखते थे और इसी से वे सभी अर्थ मे श्रद्धास्पद थे।

—. ० :—

वरिष्ठ लेखक तथा पत्रकार
श्री गौरीशकर गुप्त

भागीरथ-काम

भागीरथ कानोड़िया नहीं व्यक्ति का नाम।
तपस्या से बढ़कर किया जिसने अनुपम काम॥
धन्य भगीरथ धन्य तुम धन्य तुम्हारा नाम।
मर कर भी तुम अमर रहो, अमर भगीरथ काम॥

—:०:—

प्रसिद्ध साहित्यकार, भारतीय भाषा परिषद के निदेशक

श्री प्रभाकर माचवे

'बहता पानी निर्मला' के लेखक

स्व० भागीरथजी के निकट सम्पर्क मे आने का सौभाग्य मुझे बहुत कम मिला। एक बार गाधी शताब्दी वर्ष मे मैं, १९६९ मे कलकत्ता आया था। तब उनके दर्शन किये थे। फरवरी २०, १९७९ से इधर कलकत्ते मे आया तो जिस सस्था से मैं जुडा हू उस भारतीय भाषा परिषद के वे उपाध्यक्ष थे, इस नाते उनसे सम्बन्ध आता रहा। पर इधर वे अस्वस्थ ही चल रहे थे और परिषद भवन के उद्घाटन के समारोह के बाद वे बहुत कम हमारे आयोजनो मे आ पाये और आते भी थे तो मौन मुस्कराकर रह जाते थे। यह उनके स्वभाव का एक सहज गुण था। सबको अच्छी तरह से और सूक्ष्मता से देखते थे। उनकी निरीक्षण-परीक्षण शक्ति अद्भुत थी। निर्मल पानी मे जैसे अपने आसपास का प्रतिबिम्ब बहुत स्वच्छ रूप से पडता है। वैसे ही उनका हृदय भी एक 'आदर्श' (जिसका सस्कृत मे एक अर्थ 'दर्पण' भी होता है) था।

अब मैं जब उस व्यक्ति को बहुत निकट से नही जानता था, पर जिनके बारे मे मैंने आदरणीय सीताराम सेकसरिया से लगाकर छोटे से छोटे कार्यकर्ता और लेखक से इतनी बातें सुनी हैं, उन गुणो का आकलन, उनकी दो पुस्तको 'बहता पानी निर्मला' और 'राजस्थानी कहावत कोश' के द्वारा करता हू तो इस बात की पुष्टि ही होती है। सबसे पहली बात तो यह है कि भागीरथजी बहुत सरल-चित्त, सम्वेदनशील, सहृदय और सर्वहितरत सेवाभावी सज्जन थे। यह बात उनकी भाषा और शैली से व्यक्त होती है। उनकी भाषा गाधी-युग के अनेक लेखको और कार्यकर्ताओ की तरह सादगी पसन्द थी। उसे अलकरण और शब्द-बहुलता से एकदम घृणा थी। ऐसी कृत्रिमता उनके सहज विचार-व्यवहार मे आ ही नही सकती थी। 'बहता पानी निर्मला' के 'दो शब्द' इस दो टूक और निर्व्याज भाव के उत्तम उदाहरण हैं।

जो व्यक्ति जिस प्रदेश, अचल या भूमि से निर्मित होता है, उससे उसका सम्बन्ध कमल और कमल-नाल का सा होता है। वही से वह व्यक्ति अपना सारा पोषण और रस पाता है। परन्तु मानव-जीवन की विकास-गति ऐसी है कि बच्चा जैसे मा की गोद मे सदा नही रह सकता—धीरे-धीरे उसे अपना कार्यक्षेत्र उस मूल भूमि या उत्स से दूर ले जाता है, उस मूल-बिन्दु के प्रति आकर्षण, अनुरक्ति और कभी-कभी अतिरिक्त आसक्ति भी बराबर बनी रहती है—वह चेतन से अचेतन मे स्थान करती जाती है। इसी कारण से क्या पूर्व मे और क्या पश्चिम मे, अपने मूल स्रोतो की ओर साहित्य का पुनरावर्तन एक महत्वपूर्ण घटना और आन्दोलन माना गया है। गाधी-युग के भारत मे, समाजवाद की ओर उन्मुख भारत मे, यह स्रोतोन्मुखी धारा कई भाषा और साहित्य के उपासको को 'पुन ग्रामाचल की ओर' ले गई। जैसे इस ग्रन्थ मे, राजस्थानी लोक कथाओ का इतना दिलचस्प और अनूठा सग्रह, कहावतो के मूल मे पायी गई मान्यताओ और विश्वासो का सकलन हुआ है, और इस पुस्तक की लोकप्रियता

देखिये कि देखते-देखते तीन सस्करण हो गये, वैसा ही कार्य भारत मे अफ्रीका से गाधी के आने के वाद दूसरे दशक से अब तक, बराबर चला आ रहा है अलग-अलग रूपो मे।

मुझे कुछ अन्य भारतीय भाषाओ मे समानान्तर कार्यो की याद आ रही है, पजाव मे देवेन्द्र सत्यार्थी ने 'मैं हू खानावदोश' लिखा, असम मे (स्व०) डा० विरिचि कुमार वरुआ ने इसी तरह चा-बागानो मे जाकर वहा के मजदूरो की भाषा और गानो को अपने उपन्यासो मे उतारा, बगाल मे तो बडे पैमाने पर पूर्व और पश्चिम दोनो बगालो मे इस तरह के लोक-कथा सग्रह, लोकगीतो के सग्रह किये गये—इन्ही के प्रभाव क्षितिमोहन सेन के सस्कृति विषयक अध्ययनो और रवीन्द्रनाथ की कविता पर भी मिलते हैं, उडीसा मे डा० कुजविहारी दास ने इस तरह का बडा काम किया, आध्र मे मल्लिकार्जुन राव और उनकी 'किन्नर' पत्रिका ने, कर्नाटक मे राघव अय्यगार और शिवराम कारन्त ने, महाराष्ट्र मे साने गुरुजी, कमलाबाई तिलक, दुर्गा भागवत, सरोजनी वावर, प्रभाकर माडे आदि ने, गुजरात मे झवेरचन्द मेघाणी और मधुकर राडेरिया आदि ने—ऐसी यह सूची बढाई जा सकती है। हिन्दी की विविध क्षेत्रीय उपभाषाओ पर जो कार्य हुआ उसका पूरा ब्यौरा हिन्दी साहित्य के वृहद इतिहास मे राहुल साकृत्यायन द्वारा सम्पादित खण्ड मे मिलता है। राजस्थानी मे भी टेस्सीटोरी और टौड, नरोत्तम स्वामी और सूर्यकरण पारीक से लगाकर डा० महेन्द्र भाणावत और आदर्शकुमारी जैन तक बडा काम हुआ है और हो रहा है।

परन्तु इस पुस्तक की विशेषता यह है कि लोक-प्रचलित कथाओ को बोध-कथा लोक-कथा, कहावतो की कथा, ऐतिहासिक कथा और मनोरजक कथाओ मे विभाजित कर प्रकाशित करने पर भी उनमे अत प्रवाह एक सा है। उस जनपद की विशेषताओ, की, जिन्हे सास्कृतिक नृतत्व विज्ञान (कल्चरल एन्थ्रोपौलाजी) मे विशेष चरित्रो, 'टाइपो' और उनकी मनो-ग्रन्थियो का अध्ययन कहा जाता है, छटा देखते ही बनती है। वस्तुत: राजस्थान प्रदेश के समाज-मनोविज्ञान का अध्ययन करनेवालो के लिए यह एक बहुत ही उपयोगी सन्दर्भ-ग्रन्थ है।

मैं इतिहास का विद्यार्थी रहा हू, और दर्शन शास्त्र का भी। मेरी मान्यता है इतिहास भूत को देखता है तो दर्शन भविष्य को—साहित्य वर्तमान मे इन दोनो को जोडनेवाली कडी है। अत इतिहासवाली कहानियो के खण्ड मे मुझे टोडरमल, घाघ, शाहजहा, अमरसिंह आदि के बारे मे नयी जानकारी इन कहानियो को पढकर मिली। इतिहास केवल तिथि और घटनाओ की क्रमबद्ध सूची नही, लोक मानस मे किसी भी ऐतिहासिक व्यक्ति का पडनेवाला प्रतिबिम्ब (इमेज) भी उतनी ही महत्वपूर्ण वस्तु होती है। वह इससे स्पष्ट होती है।

हास्य-व्यग का एक अध्येता और विनम्र हिन्दी लेखक होने के नाते अन्तिम खण्ड मुझे बहुत ही अच्छा जान पडा। इनमे नर्म-विनोद है। लोक-कथाकार कभी सीधे डडेमार आलोचना नही करता, पर वडी 'कान्तासम्मत तदोपदेशयुजे' ढग से वह बनिया-बुद्धि पर चौवेजी पर या जमाई पर या स्त्री-सुलभ कमजोरियो पर रोचक समीक्षा प्रस्तुत करते जाता है। यह खण्ड अपने आपमे साहित्य को एक बड़ी देन है। और इसमे से भागीरथजी के विनोदप्रिय स्वभाव के भी दर्शन होते हैं। वे मन्द मुस्कुराकर बहुत सा कह डालते थे, जो लम्बे भाषणो मे साध्य नही होता था।

उनकी स्मृति को प्रणाम।

—: ० :—

राजस्थानी कवि

श्री कन्हैयालाल सेठिया

नमन

सतत कर्म-रत मूर्त भगीरथ
यथा नाम-गुण सुत नमन,
सेवा-कामी, सम परिणामी
गीता के स्थित-प्रज्ञ नमन,
ऊंचा चिन्तन, सादा जीवन
पीड़ित जन के बन्धु नमन
सत् के साधक, चित् आराधक
मर्यादा के सिन्धु नमन।

—०—

प० बंगाल के प्रसिद्ध गांधीवादी नेता
स्व० अन्नदाप्रसाद चौधरी की पत्नी
श्रीमती हिरणबाला चौधरी

दीनन के हितकारी

भागीरथजी मेरे पति स्वर्गीय अन्नदाप्रसाद चौधरी के घनिष्ठ मित्र थे। मेरे पति ने अपने राजनीतिक जीवन के बाद खीरपाई, मेदिनीपुर मे लोक सेवा समिति की स्थापना की तो भागीरथजी ने उन्हे पूरा सहयोग दिया। वह लोक सेवा समिति की सचालन समिति के एकदम प्रारम्भ से ही सदस्य रहे। हमारे बालक भवन (अनाथाश्रम) के सचालन मे भी उन्होने नाना प्रकार से मदद की। वह बालको और हमारे विद्यालय की लडकियो को वस्त्र दिया करते थे। हमारे इलाके की महिलाओ और पिछडे वर्ग के निरन्तर लोगो के बीच शिक्षा और सस्कृति का प्रचार करने मे उन्होने गहरी दिलचस्पी ली।

समाज-सेवा और शिक्षा-प्रसार के कार्यो मे उनकी सहायता की बरबस याद आती है और उनकी कमी महसूस होती है।

—: ० :—

अ० भा० मारवाड़ी सम्मेलन के प्रधानमंत्री
श्री बजरगलाल जाजू

अनूठा व्यक्तित्व

स्व० भागीरथजी कानोडिया पिछली पीढी के ऐसे व्यक्ति थे, जिनको अपनी प्रशसा करने या करवाने की कभी भूख ही न रही। पिछले ५० वर्षो मे वे कलकत्ते के मारवाडी समाज मे एक शुभ नक्षत्र की तरह छाये रहे। आज का सार्वजनिक कार्यकर्ता उनसे सीख ले सकता है और उनके पद्-चिह्नो पर चल कर सेवा का आदर्श कायम कर सकता है।

काफी वर्ष पहले की बात है, एक ऐसा प्रसग आ पडा था, जिसमे सगीन अभियोग लगाये जाने की बाते चल रही थी। दुर्भाग्यवश मुझे भी एक गवाह के रूप मे भागीरथजी कानोडिया के सामने उपस्थित होने का अवसर मिला था। जिस शालीनता से, सहृदयता से उन्होने सारी बात को सुना व समझा, वह मैं आज भी भूल नही सकता। उनके मन मे दोषी के प्रति उतनी ही करुणा थी, जिसका कि वर्णन गीता मे किया गया है। इसी तरह एक अन्य मामले मे, जहा पर एक नव-विवाहिता को छोड दिया गया था, उन्होने बहुत शान्ति से एव अन्दर ही अन्दर सहायता करने की अनोखी भूमिका निभाई। आज जब हर व्यक्ति थोडा-सा कार्य करके भी अपना ढोल खुद पीटना चाहता है तब इस वातावरण मे स्व० भागीरथजी कानोडिया की याद एव उनकी आवश्यकता महसूस हुए बिना नही रहती।

"सबहि मानप्रद आप अमानी,
भरत प्राण सम मम ते प्राणी॥"

विनम्रता के वह ज्वलन्त एव मूर्तिमान उदाहरण थे। मैं विश्वास करता हू कि उनकी जाति पृथ्वी पर बनी रहेगी, वरना समाज मे एक बहुत बडा अभाव दृष्टिगोचर होगा।

—:०:—

अ० भा० मारवाड़ी सम्मेलन के भूतपूर्व प्रधानमंत्री
श्री जगन्नाथप्रसाद जालान

जन-जीवन के अग्रणी पृष्ठपोषक

स्व० श्री भागीरथजी कानोडिया कलकत्ते के जन-जीवन के लिए एक बहुत बडा सहारा थे। अपने नाम के अनुरूप ही राजस्थान के लिए तो वे भगीरथ ही सिद्ध हुए। राजस्थान जैसे जलाभाव-ग्रस्त प्रान्त मे जल की अजस्र धारा प्रवाहित करने मे उनका बहुत बडा योगदान रहा। इतना ही नही राजस्थान मे शायद ही कोई ऐसा जन-हितैषी कार्य हुआ हो जिसमें भागीरथजी का हाथ न रहा हो।

सार्वजनिक कार्य हेतु मैं कई बार उनके सम्पर्क मे आया और उन्होने सदैव बड़े प्रेम के साथ हम कार्यकर्ताओ को अपनाया और उचित परामर्श दिया। जब-जब किसी सहयोग की कामना की गयी, उन्होने सदैव अपना सहयोग प्रदान किया और हम लोगो का साहस बढाया। आज उनको खोकर हम एक बहुत बडे अभाव का अनुभव कर रहे हैं। इस अभाव की पूर्ति सम्भव प्रतीत नही होती। क्या कलकत्ता, क्या राजस्थान, सभी जगह के जन-जीवन के वे एक बहुत बडे पृष्ठपोषक रहे। उनसे सारे सार्वजनिक क्षेत्र को सहारा मिलता रहा। परम पिता परमेश्वर से प्रार्थना है कि उनकी आत्मा को सद्‌गति प्रदान करें। सार्वजनिक जीवन उनका सदैव ऋणी रहेगा।

—: ० :—

समाजसेवी, मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी के भूतपूर्व प्रधानमंत्री
श्री चिरजीलाल केजडीवाल

युवा वर्ग के प्रेरक

मेरा पूज्य भागीरथजी से, जब से मैं रानीगज (प० बगाल, मेरा जन्मस्थान) से कलकत्ता सन् १९३६ मे आया, तब से बडा निकट का सम्बन्ध रहा, यह मेरा बडा सौभाग्य था। पू० भागीरथजी से, मेरे मामाजी स्व० केदारनाथजी पाडिया (पिलानी निवासी) एव मेरे श्वसुर स्व० बद्रीदासजी खेमानी (मडावा-राजस्थान निवासी) के विशिष्ट मित्र होने के नाते, मुझे असीम स्नेह प्राप्त हुआ एव उनकी सदैव बडी कृपा रही। सामाजिक एव राजनैतिक विषयो पर ही उनसे सलाह-मशविरा करने का अवसर मुझे अधिक प्राप्त हुआ। उस समय पूज्य भागीरथजी, पू० बसन्तलालजी मुरारका, पू० सीतारामजी सेकसरिया, पू० रामकुमारजी भुवालका आदि ही समाज-सुधार एव समाज-कल्याण एवं राजनैतिक क्षेत्र मे मारवाडी समाज के ही नही बल्कि देश के अग्रगण्य नेताओ मे से थे। मारवाडी समाज का शिक्षित युवा वर्ग इनकी दैनिक गतिविधियो से बडा प्रेरित होता था। इन दोनो क्षेत्रो मे कार्य करने के लिए मुझे पू० भागीरथजी ने बडा प्रोत्साहित किया। रानीगज कलकत्ता के बिल्कुल नजदीक होने के कारण एव वहा मारवाडी समाज के लोगो की बडी जन-संख्या होने के कारण पू० भागीरथजी की रानीगज के प्रति विशेष दिलचस्पी रही एव वहा के कार्यकर्ताओ से गहरा सम्बन्ध रहा। प्रत्येक जन-हितकारी कार्यो मे उनका हर तरह से पूरा सहयोग प्राप्त हुआ। रानीगंज के मारवाडी समाज के लोग एव उस क्षेत्र के अधिवासी उनके हृदय से आभारी हैं।

चूकि मैं कलकत्ता ही बराबर रहा, उनके साथ पत्र-व्यवहार का अवसर कभी प्राप्त नही हुआ। ज्यादातर उनके निवासस्थान या कार्यालय मे ही समय-समय पर उनसे सलाह-मशविरा करने के लिए उनकी सेवा मे उपस्थित हुआ करता था। उनका विनयशील एव हल्की सी मुस्कान से भरा चेहरा, किसी भी दुखी व्यक्ति की मदद करने के लिए तत्परता, आदि सब बातें मुझे जीवन भर आनन्द देती रहेगी एव दूसरो के लिए जीवन जीने का एक मात्र उद्देश्य रखने मे सहायक रहेगी।

—: • :—

सामाजिक और रचनात्मक कार्यकर्ता

श्री रमेशचन्द्र ओझा

राजस्थान के सेवक

आज से प्राय. चालीस वर्ष पूर्व सन् ३८-३९ मे राजस्थान मे भीषण दुर्भिक्ष पडा था। मवेशी तडप-तड़प कर मर रहे थे और गरीब-भूखे-किसान बेकारी और भुखमरी के शिकार हो रहे थे। उन दिनो राजस्थान छोटी-छोटी रियासतो मे बटा हुआ था। अलग-अलग राज्यो मे अकाल राहत कमेटिया बनी थी। शेखावाटी मे जयपुर रियासत का शासन था। भीषण दुर्भिक्ष की समस्या को रियासती सरकार हल करने मे समर्थ नही थी। शेखावाटी के प्रवासी राजस्थानी सम्वेदनशील व्यक्तियो का ध्यान इस ओर गया और उन्होने समस्या को हल करने का मार्ग ढूढने का प्रयत्न किया। श्री भागीरथजी कानोडिया इन व्यक्तियो मे अग्रणी थे। उन दिनो राजस्थान मे खादी कार्य अखिल भारत चरखा सघ की राजस्थान शाखा द्वारा चलाया जा रहा था जिसका मुख्य कार्यालय गोविन्दगढ (जयपुर) मे था और श्री बलवन्त देशपाण्डे उसके मन्त्री थे। श्री कानोडियाजी ने अपने ग्राम मुकुन्दगढ और आसपास के क्षेत्र के गरीब बेकार लोगो की बेबसी को देख कर उन्हे काम देने और इसके साथ-साथ चरखे के माध्यम से उनका भरण-पोषण करने मे मदद पहुंचाने की शुरुआत की। चरखा सघ के कार्यकर्ता श्री रामेश्वर अग्रवाल इस काम मे सक्रिय हुए और श्री चिरजीलाल शर्मा को इस काम के लिए मुकुन्दगढ मे बैठाया। श्री कानोडियाजी की इस अगुआई ने शेखावाटी के विभिन्न कसबो के कई अन्य सेठो को भी प्रेरित किया और उन्होने भी कानोड़ियाजी की तरह इस कार्य में पूजी लगा कर कताई केन्द्रो के माध्यम से गावो की भुखमरी-बेकारी को कम करने मे सहयोग देना प्रारम्भ किया।

सन् १९५०-५१ की बात है। राजस्थान सेवक सघ की बैठक जयपुर मे हो रही थी। स्व० ठक्करबापा उसके अध्यक्ष थे किन्तु उनकी अस्वस्थता के कारण स्व० श्रीकृष्णदास जाजू ने बापा की अनुपस्थिति मे बैठक की अध्यक्षता की थी। राजस्थान सेवक सघ के निर्माण के बाद जब उसका व्यापक स्वरूप बनने लगा तो कानोडियाजी ने खुले हाथ इस काम मे सहयोग-सहायता प्रदान की थी। हा, तो इस बैठक मे भाग लेने के बाद जब श्री राधाकिशनजी बजाज ने सहज भाव से मेरा परिचय कराते हुए बताया कि यह भाई मेवाड मे गरीब ग्रामीण लोगो की सेवा मे लगे हैं, दोनो पति-पत्नी अपने ढग से काम कर रहे हैं। स्नेह और सौहार्द भाव से उन्होने काम की सक्षेप जानकारी ली और तत्काल ही कहा कि आपको ढाई हजार रुपये भिजवा रहा हू, इनमे पाच सौ सस्था की सहायता हेतु तथा दो हजार आपकी सस्था के कार्य चलाने हेतु पूजी स्वरूप। बाद मे इन दो हजार रुपयो को भी उन्होने सहायता स्वरूप प्रदान कर दिया। यही इन पक्तियो के लेखक का उनसे प्रथम परिचय था।

राजस्थान हरिजन सेवक सघ की अध्यक्षता ग्रहण करने के साथ ही उन्होंने इस काम को व्यापक और सघन रूप से चलाने मे तथा सघ को सुनियोजित रूप से गठित करने मे तत्कालीन हरिजन सेवक सघ के मन्त्री श्री भंवरलाल मदादा को

प्रोत्साहित किया। सघ की ओर से एक हरिजन छात्रावास शाहपुरा, नगर (मेवाड) मे चालू किया। उन दिनो ठक्करबापा का देहावसान हो गया था और प० वियोगी हरिजी अखिल भारतीय हरिजन सेवक सघ के अध्यक्ष थे। उसी वर्ष शाहपुरा के हरिजन छात्रावास के निरीक्षण का कार्यक्रम बना। कानोडियाजी और वियोगीजी ने छात्रावास को देखा। काम-काज, छात्रो की दिनचर्या, प्रार्थना, सामूहिक कताई और भोजनादि की व्यवस्था से बडे प्रभावित हुए। स्थान के अभाव को अपनी आखो तथा छात्रो से उनकी कठिनाइयो को समझने के बाद कानोडिया साहब ने मुझे कलकत्ता आने को कहा और आश्वस्त किया कि बच्चो के रहने, तथा सस्था के लिए मकान की व्यवस्था के लिए वहा आने पर कुछ मदद हो जायेगी। कलकत्ता मे कानोडियाजी ने छात्रावास भवन के लिए आवश्यक राशि एकत्र करवाने मे अपनी ओर से शुरुआत करके अच्छा सहयोग प्रदान किया। हलवासिया ट्रस्ट के व्यवस्थापक श्री गणेशमल वैद ने पूरा समय देकर मेरा सहयोग किया था।

राजस्थान की रियासतो का एकीकरण हुआ। विभिन्न रियासतो के स्थानीय राजनैतिक सगठनो-सस्थाओ के, जो उस समय प्रजामण्डलो अथवा लोक परिषदो-प्रजा परिषदो के नाम से बनी हुई थी, अलग-अलग स्थानीय नेता गण थे। जयपुर रियासत के श्री हीरालाल शास्त्री, जोधपुर-मारवाड के श्री जयनारायण व्यास, मेवाड के श्री माणिकलाल वर्मा, सिरोही के श्री गोकुलभाई, अजमेर के ब्रिटिश इलाके मे कांग्रेस के स्थानीय लोगो मे गाधी विचारक और बापूभक्त दा. साहब हरिभाऊ उपाध्याय थे। जब तक देश आजाद नही हुआ था, तब तक ये सब सम्माननीय जन-नेता मिल जुल कर अपनी-अपनी स्थानीय समस्याओ पर विचार करते और सामूहिक रूप से उन्हे हल करने का उपाय ढूढते। देश की आजादी के बाद रियासती सीमाओ की दीवारें टूट गईं और विविध रियासतो का अस्तित्व समाप्त होकर राजस्थान एक प्रदेश हो गया तो जो राजनीतिक सगठन विभिन्न नेताओ के अलग-अलग क्षेत्रो मे विविध नामो मे चलते थे, वे भी समाप्त होकर प्रदेश काग्रेस मे मिल गए। सगठन जहा एक हुआ, राज्य सत्ता भी राजाओ और सामन्तो के हाथो से जनता अर्थात् काग्रेस सगठन के पास आई, तो इन जन नेताओ की एकरूपता मे दरारें लेकर भी आई। ये लोग अपनी-अपनी तानने लगे। इतना उल्लेख करना आवश्यक समझता हू कि इन सभी विभिन्न क्षेत्रीय नेताओ और कार्यकर्ताओ का सम्पर्क निष्पक्ष रूप से श्री भागीरथजी के साथ बना रहा। श्री कानोडियाजी की ओर से सभी लोगो के प्रति आदर भाव रहा। वे सभी को योग्य और उपयोगी मानकर सबका सम्मान, सहयोग करते रहे।

राजस्थान के रचनात्मक सेवाकार्यो मे उनका जो भरपूर योगदान रहा है वह एक प्रकार से अद्वितीय माना जायगा। वे जिनको भी जो सहायता प्रदान करते, सोच समझ कर विचारपूर्वक देते और सत्पात्र एव उपयोगी कार्य के लिए अपने हाथो को मुक्त कर के देते थे। उनके निधन से जो अभाव राजस्थान की रचनात्मक सेवा भावी संस्थाओ के लिए हो गया है उसकी पूर्ति होना कठिन प्रतीत होता है। उनकी पावन स्मृति मे एक विनम्र रचनात्मक कार्यकर्ता की यह हार्दिक श्रद्धाजलि।

—: o .—

प्रसिद्ध व्यवसायी

श्री आर० वी० शाह

कुसुमादपि कोमल हृदय

स्वर्गीय भागीरथजी कानोडिया को मैं पिछले ३५ वर्षों से जानता था। उनसे मेरा प्रथम परिचय एक उद्योगपति एव व्यवसायी के रूप मे हुआ और बाद मे परोपकारी एवं समाज-सेवक के रूप मे। वह एक खरे व्यक्ति थे। उनकी जिस बात ने मुझे सबसे ज्यादा प्रभावित किया, वह यह थी कि वे व्यापारिक कार्यों मे हमेशा ईमानदारी, सत्यता और स्पष्टवादिता पर जोर देते थे। वह यह भी आशा करते थे कि उनके कर्मचारी और सम्बन्धी भी व्यवसाय मे इन सिद्धातो का अनुकरण करेंगे और इस मामले मे मामूली चूक होने पर भी वह उन्हें बख्शते नही थे।

दानी तो वह बहुत बडे थे। उनकी तिजोरी हमेशा खुली रहती। सत्कार्यो मे सहर्ष दान देते, खुद ही नही देते, दूसरो से भी दिलवाते। जिस किसी भी सामाजिक सस्था को उन्होने संभाला, उसे पूरी निष्ठा के साथ सभाला और उसे अपनी व्यापारिक प्रतिभा का पूरा लाभ दिया। कई बार कितनी ही सस्थाओ को, चाहे वह स्कूल का छात्रावास हो या कोई राहत-कार्य हो या श्री रामकृष्ण मिशन की कोई सस्था हो, उन्होने अपनी व्यक्तिगत गारण्टी पर ऋण दिलाया ताकि वह सस्था अपने पैरो पर खडी हो सके। कोमल हृदय तो इतने थे कि किसी के भी कष्ट की बात सुनते ही उनका हृदय द्रवित हो उठता था। कलकत्ता और भारत के अन्य स्थानों मे उनके द्वारा खडी की गयी कई सस्थाएं उनकी नि.स्वार्थ सेवाओ एव उदाराशयता की जीवित स्मारक हैं। उनका जीवन नयी पीढी के लिए, व्यापार हो या सामाजिक सेवा, दोनो ही क्षेत्रो मे प्रकाश स्तम्भ है।

—: o :—

बम्बई के प्रतिष्ठित समाजसेवी और व्यवसायी
श्री गुरदयाल बेरलिया

प्रेरणादायक व्यक्तित्व

स्व० भागीरथजी कानोडिया से मेरा परिचय कलकत्ता से ही था और उनका स्नेह मुझे बराबर ही समय-समय पर मिलता रहा। सामाजिक जीवन मे वह बडे ही पक्के थे, यदि किसी को समय दिया तो उस पर वह अडिग रहते थे। मैं यह अवश्य कह सकता हू कि जिस भी व्यक्ति ने उन्हे पत्र लिखा होगा उसका जवाब उसे समय से तथा समस्या के निराकरण सहित ही मिला होगा। आज शिक्षायतन जैसी लडकियो की जो सस्था कलकत्ता मे चल रही है उसके सस्थापको मे श्रद्धेय श्री सीतारामजी सेकसरिया तो हैं ही परन्तु उसके पीछे स्व० कानोडियाजी की दूरदर्शिता भी है। वह यह मानते थे कि लडकियो का सुशिक्षित होना समाज मे परम आवश्यक है।

समृद्धि की चर्चा चलने पर वह कहा करते थे कि समृद्धि कोई लेकर नही आता वह तो अर्जित की जाती है। वही समृद्ध व्यक्ति सार्थक है जिसकी कमाई हुई समृद्धि समाज के कार्य मे लगे। अल्फ्रेड नोवल के जीवन की वह कई वार चर्चा किया करते थे कि प्रति वर्ष विज्ञान, साहित्य आदि क्षेत्रो मे महत्वपूर्ण सेवा करनेवालो को दिया जानेवाला नोवल पुरस्कार आज ससार का सबसे वडा पुरस्कार है। नोवल पुरस्कार से तो अधिकाश लोग परिचित हैं परन्तु उसके प्रवर्तक अल्फ्रेड नोवल का जीवनवृत्त जिन्हे मालूम है, वे जानते हैं कि उनके पिता एक जहाज मे एक *केविन-व्वाय* थे। आगे चलकर उनकी रुचि विस्फोटक पदार्थो के आविष्कार की तरफ हुई तथा उसी मे उन्होने प्राण गवा दिये। अव वच रहे अल्फ्रेड नोवल और उनकी विधवा मा, जिन्हे वडे कष्ट और अभाव मे अपने दिन गुजारने पडे।

अल्फ्रेड भी हमेशा बीमार रहते थे लेकिन उनमे प्रचण्ड मनोवल था और इसी मनोवल के सहारे ही उन्होने रोग तथा बीमारियो की कभी परवाह नही की तथा पुरुषार्थ और अध्यवसाय द्वारा इतनी सम्पत्ति अर्जित की कि उनकी गणना ससार के समृद्धतम व्यक्तियो मे की जाने लगी। मरने तक उनके पास करोडो पौण्ड से भी अधिक की सम्पति हो चुकी थी, जिसके व्याज से ही टैक्स आदि चुकाने के वाद छह लाख पौण्ड की विशुद्ध आय होती थी। अल्फ्रेड नोबल ने वह सारी सम्पति प्रतिवर्ष ऐसे पाच व्यक्तियो को पुरस्कृत करने के लिये दे दी जो मानवता की विशिष्ट सेवा मे लगे हो। कानोडियाजी कहा करते थे कि यह पुरस्कार-परम्परा एक ओर जहा विभूतियो का सम्मान करती है, वही धनवान तथा सम्पन्न व्यक्तियो के लिये प्रेरणा-स्रोत भी है। ससार मे जब तक मानव जाति रहेगी तब तक अल्फ्रेड नोवल 'नोबल पुरस्कार' के माध्यम से जीवित रहेगे। भागीरथजी वरावर कहा करते थे कि व्यक्ति के कार्य

जीवित रहते हैं व्यक्ति नही। अत. आदमी वही सच्चा है जो समाज के लिये कुछ करता है। मेरा विशेष सम्पर्क स्व० श्री कानोडियाजी से टी० वी० सेनोटोरियम, सीकर को लेकर हुआ। उन्ही की प्रेरणा से मैं सीकर (राजस्थान) भी गया। मैंने देखा कि वास्तव मे इसके माध्यम से श्री बद्रीनारायणजी सोढाणी टी० वी० के रोगियो की वहुत बडी सेवा कर रहे हैं। स्व० श्री कानोड़ियाजी की प्रेरणा से वम्बई में टी० वी० सेनोटोरियम के लिये लाखो रुपया इकट्ठा हुआ तथा बम्बई के समृद्धशाली व्यक्ति भी अव सदन के काम मे लगे हैं। मेरा विश्वास है कि इस सस्था के माध्यम से राजस्थानवासियो की ही नही देशवासियो की भी वहुत बडी सेवा हो रही है।

एक वार की घटना है उनसे मिलने के लिये कलकत्ता के कविराज रामाधीन शर्मा 'वशिष्ठ' और मैं साथ-साथ गये। कुशल-क्षेम पूछने के वाद स्व० श्री कानोडियाजी वशिष्ठजी से बोले कि कविराजजी आप अपने रोगियो को दवाएं कम देकर पथ्य-परहेज ही अधिक वताया कीजिये क्योकि असली दवा तो पथ्य-परहेज ही है। वह कहने लगे कि इससे कविराजजी की और भी ख्याति वढेगी क्योकि लोग कहेंगे कि ये तो बिना दवा के ही रोगियो को ठीक कर देते हैं।

वह हमेशा ही कहा करते थे कि अभावग्रस्त दीन-हीन अवस्था से उठ कर समृद्धि और सम्पन्नता के शिखर तक पहुंचनेवालो की आज ससार मे कमी नही है परन्तु समाज उन्हें ही याद करता है जो समाज के लिये कुछ करते हैं। अपने आस-पास वैठने वालो को तो प्रेरणा वह देते ही थे परन्तु कभी-कभी लेखनी के माध्यम से भी प्रेरणादायक प्रसग लिखा करते थे। मेरी श्रद्धाजलि है कि उनकी आत्मा उनके परिवार वालों को और सामाजिक कार्यकर्ताओ को सतत् प्रेरणा देती रहे, जिससे उनके द्वारा लोक मगल के लिए छेडे गये कार्य पल्लवित तथा सुगन्धित होते रहे।

—: ० :—

राजस्थानी एवं हिन्दी के कवि, फिल्मी गीतकार
श्री भरत व्यास

युग के भागीरथ

(१)
मन के सच्चे, धुन के पक्के,
रक्षक अपनी आन के
भारत-सेवक, वीर सिपाही
तुम थे राजस्थान के।

(२)
सादा जीवन, उच्च विचारक
सौम्य-सरलता की सूरत
मुख मण्डल पर सदा झलकती
'बापू' जैसी ही मूरत।

(३)
जिये राष्ट्र-हित, गये राष्ट्र-हित
तुम युग की स्वर्णिम रेखा
'नेता' बहुत मिले, पर तुमसा
'सेवक' कभी नही देखा।

(४)
जन सेवा के वृहत क्षेत्र हित
तुमने अपनी कसी कमर
मृत्यु मिटा नहिं सकती प्रियवर
तव "चरणो" के "चिन्ह" अमर।

(५)
पावनता की वही 'गग' तुम
व्यक्ति नही थे, 'तीरथ' थे
लघु तन, किन्तु प्रयास प्रबल
तुम इस युग के 'भागीरथ' थे ॥

—: ० —

प्रसिद्ध आय कर विशेषज्ञ
श्री रामनिवास लखोटिया

विलक्षण मानव

श्री भागीरथजी कानोड़िया एक विलक्षण मानव थे। पिछले लगभग १९ वर्षों से उनसे मिलने एव सामाजिक विषयों पर विचारों के आदान-प्रदान करने के मुझे कई अवसर प्राप्त हुए। उनके सादगीपूर्ण एवं सेवाभावी व्यक्तित्व ने मुझे सर्वदा प्रभावित किया।

दो-तीन वर्ष पहले की बात है कि एक दिन सवेरे-सवेरे मेरे चेम्बर की घंटी टन-टन करके बज उठी। फोन उठाने पर दूसरी ओर से आवाज सुनाई दी—'मैं भागीरथ कानोडिया बोल रहा हूं।' मुझे विश्वास नहीं हुआ कि फोन के दूसरी ओर महान समाजसेवी एवं कलकत्ते के प्रसिद्ध उद्योगपति श्री भागीरथजी कानोड़िया हो सकते हैं। कुछ क्षण फोन पर मैं हतप्रभ-सा निस्तब्ध रहा। पुनः आवाज आई—'मैं भागीरथ कानोडिया बोल रहा हूं। रामनिवासजी, क्या आपने मुझे पहचाना नहीं?' मुझे तब पूरा विश्वास हो गया कि फोन के दूसरी तरफ स्वयं श्री भागीरथजी कानोड़िया ही थे। मैंने बड़े आदरपूर्वक कहा—'नमस्कार, भागीरथजी! फरमाइये मेरे योग्य क्या सेवा है? आज आपने कैसे याद किया?' चूंकि उनका पहली बार फोन आया था इसलिए उनका उत्तर मिलने के पहले क्षण भर के लिए मन में यह विचार आया कि ऐसी कौन सी बात हो सकती है कि जिसके कारण श्री भागीरथजी कानोड़िया को चला कर फोन करना पडा है। मेरे भ्रम का निवारण करते हुए उन्होंने कहा—'लखोटियाजी, आप तो लायन्स क्लब के डिस्ट्रिक्ट गवर्नर हैं। बड़ी-बड़ी सेवा का काम करते हैं। कुछ गरीब-असहाय व्यक्तियों की भी सेवा करनी चाहिए। मेरे पास एक गरीब टी० बी० का मरीज आया है। उसके पास पैसे नहीं हैं, आपसे मैं कहना हू कि इसके लिए दवाई आदि का इन्तजाम किसी लायन्स क्लब से करवा दें। मैं इसे आपके पास भेज रहा हू।'

मैं मन ही मन सोचने लगा कि श्री भागीरथजी स्वयं इतनी सेवा के कार्य करते हैं और स्वयं बहुत ही धनाढ्य व्यक्ति हैं। इतनी छोटी सी बात के लिए उन्होंने मुझे क्यो फोन किया? इस विस्मय को अन्दर ही अन्दर छिपाये रखना चाहता था। लेकिन मैं अपनी शंका को छिपा नहीं सका और हृदय के भीतर छिपे हुए विस्मय के निवारणार्थ मैंने उनसे पूछ ही डाला—'भागीरथजी आप क्षमा करेंगे, मेरे मन में एक विचार—या विस्मय कहिए—उठ रहा है। इतनी छोटी सी सेवा के लिए जो आप स्वयं ही कर सकते थे, आप स्वयं नही करके यह छोटा सा सेवा-कार्य आपने मुझे सौंपा है? यह कैसे?'

फोन के उस पार उनकी धीमी-धीमी हसी सुनाई दी। फिर रहस्योद्घाटन करते हुए श्री भागीरथजी कानोडिया बोले—'आपका प्रश्न पूछना वाजिब है। मेरे सामने हर समय सैकड़ो गरीब एव असहाय व्यक्तियों की अर्जिया और मागें रहती हैं। मैं स्वयं चाहू तो यह कार्य अपने चैरिटी ट्रस्ट से करवा सकता हू। लेकिन मैं अधिकाधिक व्यक्तियो को सेवा-कार्य मे प्रेरित करना चाहता हू। इसलिए रोज किसी न किसी को फोन कर कोई न कोई छोटा सा सेवा का कार्य उन्हे सुपुर्द कर देता हू।'

धन्य है श्री भागीरथजी कानोड़िया और उनका महान् सेवा-कार्य। श्री भागीरथजी कानोडिया के द्वारा स्वय फोन करने का कारण जानने पर उनके प्रति मेरे मन मे और श्रद्धा जाग गई। उनके द्वारा सौपा हुआ छोटा सा सेवा-कार्य तो अवश्य ही पूरा कर दिया गया और वह बात आई-गई हो गयी। लेकिन श्री भागीरथजी कानोडिया के चरित्र का यह विशेष पहलू—सेवा के लघु कार्यों द्वारा अधिकतर लोगो को इस प्रकार प्रेरित करना, मुझे पहली बार ज्ञात हुआ। चू कि श्री भागीरथजी कानोडिया इस प्रकार के सेवा-कार्यों का प्रचार नही करते थे, इसलिए उनके अनगिनत प्रशसको को उनके जीवन-चरित्र के इस विशेष पहलू के बारे मे जानकारी देने की भावना से मैंने यह सस्मरण लिखा है। श्री भागीरथजी कानोडिया का सादा एव सेवा से ओत-प्रोत जीवन वर्षो तक मानव समाज के लिए प्रेरणा बिन्दु बना रहेगा।

—: o :—

दैनिक नवज्योति के संचालक

श्री दुर्गाप्रसाद चौधरी

सार्वजनिक संस्थाओं के प्राण

भाई भागीरथजी कानोड़िया से मेरा वर्षों सम्पर्क रहा है। वे एक मिलनसार, भले और दयालु व्यक्ति थे। मुझे मालूम है कि उनके पास राजस्थान का कोई भी सार्वजनिक सेवक मदद के लिये कलकत्ता आता था तो वे उसे कभी खाली हाथ नहीं लौटाते थे। बल्कि मैं तो यहा तक जानता था कि राजस्थान की कोई भी सार्वजनिक सस्था ऐसी नही होगी जिसे उन्होंने समय-समय पर सहायता न दी हो। अखबार हो चाहे कांग्रेस हो, चाहे शिक्षक-सस्था हो चाहे धार्मिक-सस्था हो, उसे हमेशा सहायता देते रहते थे। गो सेवा, अकाल, बाढ, आदि में आपने काफी सहयोग दिया है। सावली मे टी० बी० के अस्पताल में आपने काफी मदद की है। ऐसी ही और भी संस्थाएं है जिनसे उनका व्यक्तिगत सम्बन्ध रहा है और जिनकी वे सहायता करते रहते थे। राजस्थान की सार्वजनिक सस्थाए उनका कभी अहसान नही भूलेंगी।"

—:०:—

समाजिक कार्यकर्ता
श्री कन्हैयालाल दूगड़

जन-सेवा के प्रखर धुनी

मारवाड़ी समाज के उज्जवल रत्न, श्रीमान भागीरथजी कानोडिया उन विशिष्ट सेवा भावी लोगो मे से थे जिनको जन-सेवा की तीव्र धुन थी। किसी जाति, वर्ग, धर्म, मान्यता और क्षेत्र विशेष का ध्यान किये वगैरह मानव मात्र की सेवा उन्हे अभीष्ट थी। जहा भी कष्ट हो, वही सेवा कार्य मे जुट जाना उनका स्वभाव बन गया था।

जब से उनके सम्पर्क मे आया तब से मैंने देखा कि वे स्थानीय कार्यकर्ताओ को साथ लेकर जैसे-तैसे सहायता कार्यो को सम्पादित करवा ही लेते थे। हमारे सरदार शहर से कुछ दूर एक ग्राम मे पानी खारा था। जल-कष्ट से लोग बहुत दुखी थे, मैंने कानोड़ियाजी से वहा की स्थिति बता दी और उन्होने तुरन्त आर्थिक सहयोग देकर पहले वहां मीठे जल के स्रोत का पता लगाया और फिर एक पक्का कूप बनवा कर समस्या को हल कर दिया।

इसी प्रकार एक नही, अनेक बार अनेक कार्यों मे उनका योगदान अनेक रूपो मे होता रहता था। मिलनसारिता, व्यवहार-कुशलता, मिष्टभाषिता आदि उनके गुणो से तो निकट आने वाले सभी लोग प्रभावित थे ही, पर सेवा के गुण से उन्होने बहुत बडे जन-समाज पर अपनी अमिट छाप छोडी है। मुझ पर उनका बहुत स्नेह था। हमारी गाधी विद्या मन्दिर सस्था को वे जी जान से चाहते थे और सहयोग देते थे। उनके चले जाने से समाज को अपूरणीय क्षति हुई है। मैं आशा करता हू कि उनके परिवार के लोग उनकी परम्परा को कायम रखेंगे।

—: ० :—

प्रसिद्ध वैद्य, सामाजिक कार्यकर्ता
कविराज रामाधीन शर्मा 'वशिष्ठ'

श्रद्धा और विश्वास के धनी

श्री भागीरथजी कानोडिया के जीवन मे मुझे जो देखने को मिला वह सस्मरण के रूप में यहा प्रस्तुत कर रहा हू ।

श्री कानोड़ियाजी टी० बी० सेनेटोरियम सीकर (राजस्थान) के अध्यक्ष थे। एक बार मैं तथा श्री रामनिवास ओझा, एडवोकेट उनसे मिलने तथा एक टी० बी० के रोगी को सीकर भिजवाने के लिए चिट्ठी लेने के लिए गये। मैंने श्री रामनिवासजी ओझा का जब परिचय कराया तो वह मुस्कराते हुए बोले कि यह जब छात्र थे तभी से मैं जानता हू । इस पर श्री ओझाजी ने कहा कि वह छात्र जीवन मे दो-तीन बार उनसे मिले थे तथा उनके चाचाजी से भागीरथजी का अच्छा सम्बन्ध था। यह था उनकी स्मरण-शक्ति का चमत्कार। उस टी० वी० के रोगी के लिए उन्होने चिट्ठी भी लिखी तथा यह भी कहा कि यदि उसे पूर्ण श्रद्धा और विश्वास रहेगा तो वह अवश्य ठीक हो जायगा। दवाइयो से अधिक पथ्य और विश्वास रोगी को फायदा करता है ।

मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी का मामला हो या अन्य किसी सस्था का, वह बड़े स्नेह से उसे सुनते थे तथा सुलझाते थे। १९७९ मई की घटना है—एक जगह श्री कानोड़ियाजी को किसी विशेष व्यक्ति ने कहा कि मारवाडी रिलीफ सोसाइटी के इस चुनाव मे तो इस बार कविराज रामाधीन शर्मा 'वशिष्ठ' निर्विरोध सभापति हो गये हैं, उन्होने तुरन्त ही कहा कि कविराजजी तो योग्य हैं। सोसाइटी के सविधान के अनुसार उसका कोई भी सदस्य सभापति हो सकता है। यह थी उनकी उदारता तथा निष्ठा समाज के प्रति ।

मैं कई बार उनसे विशेष समारोहो मे तथा अकेले मे मिला परन्तु जब भी मिला कुछ न कुछ उनसे पाया ही। श्री गुरुदयालजी बरेलिया भी उनके कई सस्मरण बराबर ही सुनाया करते हैं। श्रद्धेय श्री सीतारामजी सेकसरिया, श्री कन्हैयालालजी सेठिया भी कई घटनाए उनके जीवन काल की प्रसग चलने पर बताते रहते हैं। इन घटनाओ से पता चलता है कि उनकी हर क्षेत्र मे सफलता के रहस्य के मूल मे श्रद्धा, श्रम और विश्वास ही था जिन्होने उन्हे सतत् आगे बढाया ।

श्रद्धा और विश्वास को आत्मसात् किया था स्व० श्री भागीरथजी कानोडिया ने। इसलिए वह जीवन पर्यन्त विकासोन्मुखी हो रहे। उनका जीवन अन्यों को प्रेरणा देता रहेगा।

—·०·—

राजस्थानी प्रचारिणी-सभा के मंत्री,
अ० भा० मारवाड़ी सम्मेलन के उप प्रधानमंत्री
श्री रतन शाह

अनेक में एक : एक में अनेक

यह सस्मरण मुझे बहुत पहले लिखना था परन्तु यह वस्तुपरक बन सके, भावनाओ का अतिरेक न हो, इसलिये जान-बूझ कर देर करता रहा। सुन रखा है समय गुजरने के साथ घाव भर जाते हैं। कहते हैं रिक्तता प्रकृति के नियमो के प्रतिकूल है, अत॰ दूसरा व्यक्ति आ जाता है वहा। समय गुजरा है, गुजरेगा। समाज मे यह रिक्त स्थान कैसे भर रहा है, यह टकटकी लगाये देख रहा हू। दस महीने कोई लम्बी अवधि नही है जिसमे ये दोनो काम हो जाते, परन्तु यह अवधि छोटी भी नही है। राजस्थान का शोधकर्त्ता आया, किसने उसके सिर पर हाथ रखा—किसने उसकी असली पीडा का अर्थ समझा ? निराश होकर चला गया, क्योकि भागीरथजी का स्थान कोई दूसरा ले नही सकता। छोडिये ! राजस्थान का जन-इतिहास लिखना चाहनेवाला मूल तथ्यो की जानकारी के लिये कलकत्ता अब नही आना चाहता क्योकि भागीरथजी अब नही है। गावो और गुआडो की गायो को ही नही, कितने ही अन्य सासरो को सालो साल जिन्दगी बख्शनेवाला, घास की भरोट्टियो का इन्तजाम करनेवाला व्यक्ति फोटो तक नही छपवाये, कहा है अब ? उन लोगो के घाव हरे के हरे है जो जन-सेवा मे या आन्दोलन मे चले आये हैं परन्तु परिवार के लिये अब रोटी का जोगाड नही हो रहा है। लोग राजस्थानी भाषा के कार्य का बीडा उठाने को बिल्कुल तैयार है परन्तु अर्थ के अभाव मे अब पाव वापिस खीच रहे है। लगता है घाव नही भरते हैं—जिनके घाव होते है वे खतम हो जाते हैं। "सभी नियमो के अपवाद होते है" यदि इस तरह गली निकाल लें तब तो अलग बात है, वरना मुझे तो दोनो ही, घाव भर जाने वाली व रिक्तता खतम हो जाने वाली बात गलत लग रही है। जिन ऊचाइयो पर हम पहुचे थे, उनके जाने से हम एक नही, दस-बारह सीढिया नीचे आ गये है। दिल को तसल्ली दे लेते हैं सीढियो पर ही तो खडे है, वे भी खडे थे हम भी खडे हैं। "क्या हो गया उनके जाने से ?" कहा खडे थे—कहा खडे है—यह नही देखते। भागीरथजी अनेको मे एक थे एवं अकेले ही अनेक थे।

पिछले ३-४ बरसो मे आदरणीय भागीरथजी का अटूट स्नेह मिला मुझे—रोज सुबह एक-डेढ घण्टा घूमते-घूमते एक लम्बी जीवन-यात्रा से, जो सामाजिक एवम् मानवीय घटनाओ के इतिहास क्रम की साक्षी ही नही सहभागी रही थी—विभिन्न पडावो और चौराहो के जरिये मुझे साक्षात्कार कराते रहे। बीते कल को दर्पण मे दिखाते रहे। सैकडो सस्मरण है जो लिखे जा सकते है—अलीपुर जेल मे खुदीराम बोस को माली के भेष मे जाकर पिस्तौल देने वाला राजस्थानी कौन था ? प्रसिद्ध

क्रान्तिकारी बटुकेश्वर दत्त उनके जकरिया स्ट्रीट निवास-स्थान पर किसलिये आये थे ? पण्डित नेहरू के चादी के वर्तन जो विकने आये थे उनमे कमला जी का मंगलसूत्र भी था, पण्डितजी के यज्ञोपवीत के समय की चादी की खड़ाऊं भी थी, उनका क्या हुआ ? लाला लाजपतराय की मा की स्मृति मे मन्दिर के निर्माण हेतु क्या करना पडा था ? शान्तिनिकेतन मे अध्यापन-कार्य करते समय हजारीप्रसादजी द्विवेदी की आर्थिक स्थिति कितनी बोझिल थी—सुहरावर्दी ने वगाल के अकाल के समय क्या कहा था उनसे ? एक ही सस्मरण अपने आप में इतिहास है। इनको मैं इसलिये नही लिख रहा हू कि और भी बहुत लोग उनके निकट मे आये हैं उनके पास भी ऐसे कितने ही सस्मरण होंगे, अतः उनके लिये मेरा लेख दुहरावट होगा ।

स्व० भागीरथजी ने कितनी ही बातें बताई । चाहते थे मैं और ज्यादा जानू, किताबें देते थे कि पढू—मेरे पास रखू । श्री घनश्यामदासजी विडला के दोनो प्रकाशन मुझे दिये तो साथ मे तोता मैना का किस्सा और वैताल-पचीसी भी दी कि इनको भी पढो । पहले के जमाने मे क्या पढाई होती थी इसका ज्ञान होगा। गम्भीर से गम्भीर चर्चा करते हुए एक दिन बोले, तुमने शनीचरजी की कथा सुनी है कि नही ?' 'मेरा कभी काम नही पडा', मैंने कहा, तो बोले "नही, इन चीजों की भी जानकारी बहुत जरूरी है। मैं सुनाता हूं तुमको।' पूरी कथा सुनाई। समाप्त होने पर कहने लगे, 'एक ताबे को पीसो दे'—मैं सकपका गया। 'छोड, पण शनीचरजी की कथा सुणनै के बाद ताम्वे को पीसो नईं दैवे तो सुणणियै और सुणाणियै दोनूवा नै दोस लागै, अब तेरे कारण दोस लागैगो तो लागैगो'। यह घटना ज्यो ही मेरी स्मृति मे आती है मैं दहल जाता हू। सोचता हू जिस व्यक्ति ने केवल परमार्थ के लिये जिन्दगी जियी थी उसे जिन्दगी के अन्तिम ३-४ माह मे तकलीफ क्यो मिली ? उन्होने तो ऐसा कुछ नही किया था—कही मैं तो दोषी नही हू ? उनसे शनीचरजी की कथा सुनी। मैं नही तो कोई और होगा, परन्तु वे खुद नही थे। जो व्यक्ति असहाय लोगो की दैनिक पीडा बाट लेता था निश्चित रूप से उसने किसी की दैहिक पीडा भी अपने मत्थे ले ली होगी—अड़ गया होगा भगवान से किसी की पीडा कम करवाने के लिये और खुद ने ले ली होगी।

इतने महान व उदार पुरुष के सस्मरण तो बहुत है परन्तु उनका 'सोच' भी होगा—उनके खुद के विचार भी तो होगे। मैं व्यक्तिगत रूप से चाहता हू उनके 'सोच' पर कुछ सोचा जाये—दिक्कत जरूर है क्योकि उन्होने अपने विचारो को ना तो कभी जोरदार शब्दो मे रखा और ना ही किसी पर थोपा। एक रास्ता है, उनसे हुई बातो व उनसे सम्बन्धित घटनाओ को लेकर एक प्रयास किया जाये। १९४३ के आस-पास हरिजन मण्डल की वगाल शाखा के तीन अधिकारी थे। अध्यक्ष शायद डा० विधानचन्द्र राय थे, एक अन्य सज्जन और कानोडियाजी। वे वता रहे थे कि एक व्यक्ति रुपये इकट्ठे करने के लिये रखा गया था। उसने रुपये इकट्ठे किये परन्तु सगठन को नही दिये। गाधीजी को पता चला तो उन्होने कहा तीनो अधिकारी बरावर-बरावर रुपया अपनी जेब से दें। भागीरथजी कहने लगे कि उस व्यक्ति से जब पूछताछ की, तो उसने बताया, उसका छोटा भाई क्रातिकारी है, उसके मुकदमे व सम्बन्धित कामो मे रुपया

लग गया—बेचारा क्या करता। मैंने झट से कहा 'लेकिन उसकी गलती है—भारी गलती है। जिस काम का रुपया था उसे वहा ही लगाना था।' भागीरथजी बोले 'भई ठीक है पण... .॥' 'तो के बो क्षम्य है ?' 'भई की काम खातर बो यो कर्यो था तो देखणी ही चाहे', इस घटना से स्पष्ट है, भागीरथजी लक्ष्य को बहुत महत्व देते थे—साधन उस हेतु थोडे उन्नीस-बीस भी हो तो ठीक है।

श्री भागीरथजी कानोडिया के लेखक की तरफ मेरा ध्यान जाता है। कुल तीन पुस्तके सामने है—'बहता पानी निर्मला' और राजस्थानी कहावतो के दो कोश। तीनो ही पुस्तकें राजस्थानी लोक साहित्य की अनुपम निधि है। प्रथम पुस्तक मे लोक-कथाओ पर आधारित आम बोलचाल की भाषा मे लिखी गयी कहानिया हैं और वाकी की दो पुस्तको मे राजस्थानी कहावतो का हिन्दी अर्थ है। राजस्थानी साहित्य मे उनकी कितनी गहरी पैठ थी, इन पुस्तको के द्वारा स्पष्ट है। परन्तु साथ ही साथ एक और भी बात उभर कर आती है। श्री कानोडियाजी राजस्थानी को हिन्दी से अलग मानते थे और वे चाहते थे कि इस भाषा की भी समृद्धि अन्य भाषाओ की तरह ही हो। यह प्रसग, विशेष रूप से इसलिये स्पष्ट करना चाहता हू कि श्री कानोडियाजी, आदरणीय सेकसरियाजी के साथ-साथ भारतीय भाषा परिषद के सस्थापक थे। इतनी बडी सस्था के सस्थापक का भाषा सम्बन्धी 'सोच' जानना जरूरी है। राजस्थानी और हिन्दी अलग-अलग है यह उनकी पुस्तक 'राजस्थानी हिन्दी कहावत कोश' के नामकरण से ही स्पष्ट है। इस सम्बन्ध मे कुछ घटनाए लिख रहा हू।

श्री कानोडियाजी गॉल-ब्लैडर ऑपरेशन के बाद बेल व्यू नर्सिंग होम मे थे। उस समय भारतीय भाषा परिषद् द्वारा एक पंजाबी भाषा की गोष्ठी का आयोजन किया गया था। बैठक के बाद मैं और आदरणीय सेकसरियाजी नर्सिंग होम गये। बैठक की चर्चा हुई। मैंने स्वाभाविक रूप से कहा कि पजाबी भाषा की तो आपलोगो ने गोष्ठी करायी एव पजाबी साहित्यकारो की शकाओ का निवारण भी किया, लेकिन राजस्थानी भाषा प्रेमियो के लिए आपका क्या जवाब है ? बीमारी की अवस्था मे भी श्री कानोडियाजी ने कहा 'सीतारामजी, हमे इस तरफ भी ध्यान देना ही चाहिए।' यही भाषा प्रसग फिर एक दफा उठा और उस समय इन दो व्यक्तियो के अतिरिक्त श्री नथमलजी भुवालका भी थे। परिषद ने भाषाओ का चुनाव अपनी इच्छा के अनुसार किया है। 'सन्दर्भ भारती' के पुराने अक इसके गवाह थे। सवैंधानिक मान्यता प्राप्त भाषाओ के अतिरिक्त मणिपुरी के श्री नीलकण्ठ सिंह का नाम परामर्श-मण्डल मे होना इस बात का द्योतक है। अतः राजस्थानी को नही लेने का सचालको का निर्णय गलत लगता था। आदरणीय सेकसरियाजी की मान्यता-सी है कि राजस्थानी के लिये जाने से हिन्दी का अहित होगा। श्री कानोडियाजी और भुवालकाजी की राय मे जब इतनी और अन्य भाषाए हैं तो केवल राजस्थानी के कारण हिन्दी के पक्ष को आघात पहुचेगा, यह डर मात्र है। आगे बात चली कि हमलोग राजस्थानी को मान ले, तो फिर हिन्दी किसकी है। इस पर श्री कानोडियाजी ने बहुत ही सहज बात कही थी कि हिन्दी या तो सबकी है या किसी की नही क्योकि यदि हिन्दी कुछ की है तो निश्चित रूप से बाकी के 'कुछ' की नही है, वे इसका विरोध

करेंगे। अत हिन्दी को यह पूर्वाग्रह छोडना पडेगा कि यह 'कुछ' की है। ऐसा स्वरूप बनकर आना चाहिए कि हिन्दी सभी की हो, तभी राष्ट्रभाषा के रूप मे वह सार्थक बन सकेगी।

उपरोक्त बातो से श्री कानोडियाजी के राजस्थानी के सम्बन्ध मे जो विचार थे वे स्पष्ट हो जाते हैं। प्रश्न उठ सकता है कि इतना स्पष्ट होने के बाद भी उन्होने भारतीय भाषा परिषद मे राजस्थानी को अलग से भाषा के रूप मे क्यो नही स्वीकार करवाया। मुझे व्यक्तिगत रूप से लगता है कि उनकी यह स्वाभाविक प्रवृत्ति थी। उन्होने विचार बता दिये, थोपे नही। स्वय उसमे ढल गये, परन्तु दूसरे भी ढलें इस बात पर जोर नही दिया। दूसरा कारण आदरणीय सेकसरियाजी की इच्छाओ का सत्कार करना भी हो सकता है।

श्री कानोडियाजी मे व्यक्तिगत रूप से निस्पृह रहने का 'सोच' गहरा समा गया था। बडे से बडे सस्थान उन्होने बनाये लेकिन उनमे जी नही अटकाया। काल की गति के अनुसार समाज की नियति के अनुसार कल जो होगा 'होगा' उसके लिए चिन्ता क्या, वे इस तरह सोचते थे। आरोग्य भवन सीकर एव शिक्षायतन का कल क्या होगा, इसके लिए वे चिन्तित नही थे। ऐसे महान व्यक्ति युगो मे होते हैं। 'नेकी कर कुए मे डाल' वाली बात उन्होने गांठ बांध कर पास रखी थी। जितना कुछ किया उसका २-४ प्रतिशत भी लोगो को पता नही है क्योंकि वे चाहते नही थे कि 'की हुई नेकी का' किसी को पता लगे। ऐसे व्यक्तियो की तुलना किसके साथ की जाय ? शब्द महान होते हैं परन्तु शब्दो की जानकारी एव सही उपयोग हर व्यक्ति के काबू की बात नही है और यही स्थिति इस समय मेरी है। 'अलख निरजन' को कैसे लखा जाय। श्री कानोडियाजी को शब्दो मे कैसे व्यक्त किया जाय ....। मैंने कभी एक राजस्थानी प्रेमी के प्रति श्रद्धा सुमन के रूप मे दो लाइनो का प्रयोग किया था। अन्य सटीक पक्तियां ध्यान मे नही आने के कारण मैं श्री कानोडियाजी हेतु राजस्थानी की वे ही दो लाइनें प्रयोग मे ला रहा हू। लेकिन वे और भी महान थे :

ओर घणाई आवसी चिडी कमेडी काग।
हसा फेर ना आवसी सुण सरवर मदभाग ॥

—: ० :—

हिन्दी के लेखक और उपन्यासकार

श्री सन्हैयालाल ओझा

अमृत-पुत्र

जिसने जन्म लिया है उसकी मृत्यु ध्रुव है। सृष्टि के आदि काल से यही नियम चला आ रहा है। कहना चाहिए, सृष्टि और काल, सर्जन और विसर्जन, जन्म और मृत्यु, अन्योन्य ही नही, परस्पर पर्याय माने जाने चाहिए। हमारी सस्कृति में 'समय' बोधक शब्द 'काल' का दूसरा अर्थ मृत्यु अहेतुक और अकस्मात नही है। इसीलिए जब कई सार्वजनिक सस्थाओ के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, कोपाध्यक्ष, ट्रस्टी आदि रूपो मे सपृक्त स्वनामधन्य श्री भागीरथ कानोडिया अपनी ८५ वर्ष की, पार्थिव पैमाने से लम्बी अवस्था में, बीमार हो गए तो यह आशका तो हो ही चली थी कि शीघ्र ही कही हमे उनका अभाव न सहन करना पड़ जाए, किन्तु जो पर-हित के लिए अपना जीवन समर्पित कर चुके होते हैं, उनके जीवन की किसी भी पैमाने से कितनी ही दीर्घ अवधि क्यो न हो, वह सतत सताप पीडित मानवता के लिए बहुत ही अल्प अवधि है, और उनका अभाव एक सदैव खलने वाला अभाव, एक रिक्तता पैदा कर देता है। स्व० श्री भागीरथ कानोडिया एक ऐसी ही विभूति थे, जो गत २९ अक्टूबर, १९७९ को अपने पार्थिव-शरीर की कारा से मुक्त हो गए।

यह शरीर ही तो मरणधर्मा है, क्षण-भगुर। वरना मनुष्य तो अमृत-पुत्र है। जन्म लेते समय यह शरीर अनन्त सम्भावनाओ से युक्त रहता है, किन्तु सृष्ट होकर ही वह मानो काल का ग्रास बन जाता है, प्रत्येक क्षण काल उसको क्षय करता रहता है। पार्थिव-आयामो मे वह बढता है, विकसित होता है, किन्तु यदि उसकी चेतना भी उसी रूप मे बढ़ती रह कर 'क्षण' की चुनौती को स्वीकार न करे तो शरीर तो केवल कारागृह ही बन कर रह जाता है, चाहे जितना दृढ, और विशाल क्यो न हो। और नष्ट तो एक दिन होना ही है। जातस्य हि ध्रुवोमृत्य !—समय-काल उसे बराबर जीर्ण करता रहता है, और वे जीर्ण दीवारें एक दिन ढह ही जाती है। हम पास खड़े हुए तब एकाएक उस अभाव को अनुभव करते हैं। दीवारे नही रहती, तब हमे दिखाई देती है, वह सृष्टि, वे कृतिया जो देह के भीतर रहने वाली अप्रतिम चेतना हमारे लिए निर्मित कर जाती हैं। वे कृतियां ही उस व्यक्ति की मृत्यु पर विजय की सूचक है ! क्षण ने उसे क्षय नही किया, बल्कि उसी ने क्षण को क्षय कर दिया। वह अमर हो गया। यही तो रहस्य है उनके अमृत-पुत्र होने में।

स्व० भागीरथजी सदैव मानव-मूल्यो के लिए जीवित रहे। अपने को उन्होने कभी माना ही नही, वे सदा दूसरो के लिए जीवित रहे। उनकी कृश किन्तु अनाविल काया, सामान्य-सा सहज परिधान, सहज ही स्पष्ट कर देता था कि वे कितने अनासक्त

नेत्र-चिकित्सक

श्री गोपालकृष्ण सराफ

प्रेरणा के स्रोत

१२ दिसम्बर, १९४५ मेरे जीवन मे बहुत महत्वपूर्ण दिन रहा है। मैं उस दिन प्रथम बार कलकत्ता आया था। उस समय मेरी अवस्था बीस वर्ष की थी। मैं आगरा मेडिकल कालेज का छात्र था और उस विवाह मे आया था, जिसमे पूज्य सीतारामजी सेकसरिया की लडकी विजया और मेरे भाई परमानन्द पोद्दार दाम्पत्य-सूत्र मे अनुबन्धित हो रहे थे। कुल ग्यारह व्यक्तियो की बारात आई थी और मेरे फूफा श्री महावीरप्रसादजी पोद्दार की आज्ञानुसार मैं उनमे एक था। आप सोचिए कि वह छोटी-सी बारात कहा ठहराई गई होगी, जबकि सारा विवाह ऐसी सादगी से हुआ जो आज भी कल्पना से परे हैं। उस समय पूज्य भागीरथजी कानोड़िया २३ न० ओल्ड बालीगज रोड मे रहते थे जो कि आज श्री राधाकृष्णजी कानोड़िया का निवास-स्थान है। हम ग्यारह व्यक्ति भी उसी मकान मे ठहरे थे और मेरे मानस-पटल पर आज भी वह पुल अकित है जिसपर से होकर हम भोजन करने जाया करते थे। उनके उस मकान मे मैंने जिन महान पुरुषो के दर्शन और हस्ताक्षर प्राप्त किए, वे मेरे लिए अमूल्य निधि है। उसमे विशेष उल्लेखनीय हैं—सरदार वल्लभभाई पटेल, असचार्य नरेन्द्र देव, खान अब्दुल गफ्फार खा, श्री गोविन्दवल्लभ पत, पट्टाभि सीतारमैया, ठक्करबापा, घनश्यामदास बिडला आदि। इनमे से कई उसी मकान मे हमारे साथ ही ठहरे हुए थे।

मैं दुबारा कलकत्ता आया सन् १९६० ई० मे और आते ही पूज्य भागीरथजी कानोडिया के दर्शन करने गया और उनसे आशीर्वाद लेकर कलकत्ता को अपना कार्यक्षेत्र बनाया। पूज्य भागीरथजी कानोडिया मेरी सगी भाभी के सगे फूफा थे और इसलिए मैं उनको सदा फूफाजी ही कहा करता था। मैं उनसे मिलता रहता था और उनका आशीर्वाद मुझे सदा मिलता रहा। उनके सुलझे हुए विचार, उनकी पैनी दृष्टि, उनका लम्बा अनुभव मेरे लिए सदा सहायक रहा। जब मैंने कलकत्ते मे नि.शुल्क नेत्र शिविर लगाना आरम्भ किया, तब सोसाइटी बेनीफिट सर्किल ने हिन्दुस्तान क्लब मे मेरा स्वागत किया था, जिसमे पूज्य फूफाजी ने सभापति का आसन ग्रहण करके मेरा उत्साह बढाया और मुझे नेत्र-शिविर लगाने के लिए बराबर उकसाते रहे। उनके स्वर्गवास से देश और समाज की अपार क्षति तो हुई ही, मेरे जीवन मे भी एक सच्चे मार्ग-प्रदर्शक का स्थान रिक्त हो गया है।

—:०:—

सामाजिक कार्यकर्ता

श्री नन्दलाल सुरेका

दान की महिमा के प्रतिष्ठाता

नित्य प्रात भ्रमण के वाद विक्टोरिया मेमोरियल उद्यान मे एक गोष्ठी लगती है। आदरणीय भागीरथजी कानोडिया भी उसमें आते थे। एक वार किसी कुष्ठ सस्था के लिए भी प्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका चन्दा इकट्ठा कर रहे थे। मैंने भी सकुचाते हुए कुछ भेंट दी। चन्द दिनो वाद ही श्री रामेश्वरजी टाटिया सीकर के टी॰ बी॰ सेनेटोरियम के लिये चन्दा इकट्ठा कर रहे थे, मैंने फिर सकुचाते हुए श्रद्धानुसार कुछ भेंट दी। श्री भागीरथजी ने मुझे दोनो वार ही देखा। मेरी परेशानी को समझ गये, वोले 'क्या वात है ?' मैंने कहा, "सोच रहा था, इतने वडे-वडे दान के वीच मेरी यह छोटी सी भेंट क्या माने रखती है, वस इसीलिये सकुचा रहा था।" भागीरथजी ने कहा, "दान छोटा या वडा नही होता। दान देने की प्रवृत्ति ही वडी है। इसमे सकुचाने को कोई वात नही।" मुझे वडी हिम्मत हुई और मन भी प्रसन्न हुआ। उन्होने कहा, "दान देकर मान पाने की इच्छा से दान की कीमत आधी हो जाती है और कही मान मिल गया तो फिर कीमत चौथाई हो जाती है।" ऐसे थे वे महान! जिन्दगी मे कितना दान दिया, कितनी सस्थाओ को जीवन-दान दिया, कितनी विधवाओ के आसू पोछे, कितने अनाथ बच्चो को शिक्षा दी, कितने लोगो के जीविकोपार्जन की व्यवस्था की, वे ही जानते थे, कभी चर्चा नही की।

वे प्रचार-प्रसार से दूर रहने वाले थे। उन्होने कभी भी अपने अभिनन्दन के लिये इजाजत नही दी। सदा यही कहते रहे, "मैंने क्या किया है, सो अभिनन्दन हो" ऐसे थे वे शीलवान। सदा हसमुख, हाजिर जवाव। उसके साथ मिलने वाला हसे विना नही रहता था। सब यही समझते थे कि वे मेरे हैं। उनका कोई भी विरोधी या शत्रु न था। वे अपने आप मे एक सस्था थे।

उनके परिवार वालो को तो उनके स्वर्गवास से दुख होगा ही, पर सारा समाज उनकी मृत्यु से मर्माहत है। सदियो मे कभी-कभी ऐसे महान पुरुष आते हैं। अपनी सेवा समाज को अर्पित कर कूच कर जाते हैं।

ईश्वर उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करें और समाज में उनकी कमी को पूरा करने के लिये कुछ लोग प्रेरणा लें।

—•०•—

राजस्थानी कवि
श्री विश्वनाथ विमलेश

सजग सतर्क

वैसे तो आदरणीय श्री कानोडियाजी का सैकडो बार सान्निध्य प्राप्त हुआ और मुझे हमेशा ही उनका अपार प्यार मिला लेकिन उनसे अपनी प्रथम मुलाकात को मै कभी भी नही भूल सकता। बात लगभग ३० वर्ष पुरानी है। वे शारदा सदन मुकुन्दगढ, मे सचालक की हैसियत से हाईस्कूल के अध्यापको के वीच वैठे बातचीत कर रहे है। मैं भी इसी वर्ष (१९५०) सहायक अध्यापक के रूप मे आया था और मात्र इण्टर पास। शारदा सदन हाई स्कूल को अगले वर्ष कालेज बनाना है। तत्कालीन प्रधानाध्यापक, या यो कहिये भावी प्रिन्सिपल साहब श्री राधेश्यामजी भटनागर बोल रहे हैं—'हमारे सामने सा'ब सबसे बडी समस्या लाइब्रेरी की होगी, क्योकि कालेज स्तर की प्राय. सभी पुस्तकें विदेशो के प्रकाशको की होती है, और वे रुपयो मे कीमत न लिखकर पुस्तको पर छपवा देते हैं ५ डालर। अब उन्हे क्या पता भारत मे इसकी कीमत १००) रु० हो जाती है।'

'पाच डालर का कितना रिपिया बताया राधेश्याम ?' कानोडियाजी माथे को उगली से पोछते हुए पूछते हैं। राधेश्यामजी सोचते हैं कुछ ज्यादा बता गये क्या ? बोले '७५-८० तो होगे ही।' श्री ईश्वरसिह यादव जो प्राइमरी स्कूल के प्रधानाध्यापक है—श्री कानोडियाजी की नजरो से नही बच पाते हैं—उनके पुराने साथी जो ठहरे !

'तू बता ईश्वरसिह, पाच डालरा की कीमत भारत मे के होनी चाये ?'

यादव खडे होते-होते अपने ऐनक को पोछते है। चारो ओर नजर दौडाते हैं कि शायद कही से कोई सकेत मिल जाय—पर निराश, हताश। लगभग एक मिनट बाद बोलते हैं—'पाच डालरा का, कम से कम २० बीस रिपिया तो होगा ही।' यादवजी की बगल मे ही बैठे हैं श्री विश्वम्भरलालजी गुरु, और ठीक उनके पास मैं, गुरुजी सोचते हैं—मुझे धीरे से कचोटकर कान मे फुसफुसाते हैं, 'तन्नै मालूम है के ?' पर गुरुजी तक नौबत नही आती, कानोडियाजी खुद ही कहने लगते हैं—ल्यो एक जण ५ डालरा की कीमत १०० रु० बतार्‌यो है, एक जण बीस—थे लोग अखबार कोनी बाचो के ?

भटनागरजी को थोडा ताव आ जाता है, 'आप तो सोने चादी के सट्टो के कारण डे-टु-डे भाव मालूम करते रहते हो ? हमे क्या मालूम डालर ' ।

'राधेश्याम, सुण, मास्टरानै आ बाता को तो बेरो होणू ही चाये।

उस समय मैं सोचता हू कि कानोडियाजी को अपने पैसे का बहुत ही घमण्ड है··· पर उसी रात कोठी पर गोठ हो रही है। सभी अध्यापक व नगर के गणमाण्य व्यक्ति हैं। मेरा कवि के रूप मे परिचय कराया जाता है और मुझे कुछ कविताए सुनाने का आदेश मिलता है। श्री कानोडियाजी व श्री सेकसरियाजी इस अकिंचन की सराहना करते हैं और आनन्दित होते हैं। दूसरे दिन मुझे प्रात काल कोठी पर फिर बुलाया जाता है, मैं "प्राणो की छाया" कविता संग्रह को प्रकाशित कराने का प्रस्ताव रखता हू, और मुझे अविलम्ब २००) रु० का अनुदान मिल जाता है।

मेरी कल की धारणा कितनी गलत थी। घमण्ड तो लेशमात्र भी नही दिखाई देता।

—: ० :—

हिन्दी के प्राध्यापक
डॉ० प्रतापसिंह राठौड़

प्रेरक व्यक्तित्व

शेखावाटी के सपूत श्री भागीरथ कानोड़िया का जन्म मुकुन्दगढ़ में २५ जनवरी, १८९५ ई० मे हुआ था। श्री गंगाबक्सजी और भागीरथजी कानोड़िया ने इस छोटे से कस्बे को शिक्षा का प्रमुख क्षेत्र बनाया। अपनी जन्मभूमि के दर्शनार्थ कानोड़ियाजी कलकत्ता से साल मे एक बार आना नहीं भूलते थे। सेकन्डरी स्कूल के पासवाली हवेली में उनका जन्म हुआ था, जिसकी वे यदाकदा चर्चा करते थे। निश्चय ही यहां आकर लोगो से मिलने मे उनको असीम आनन्द का अनुभव होता था, क्योंकि वे प्राय: हर प्रकार के लोगो से घिरे ही रहते थे। लोगो के दुख-दर्द की पूछताछ करना और गरीबों की मदद करना उनका स्वभाव था। लेखक का भी उनसे वर्षो का सम्पर्क था।

कानोड़ियाजी अपनी समाज-सेवा, लोकोपकारिता, कर्मठता, सदाचार, शिक्षा प्रेम, हरिजनोद्धार, नारी-जागरण, विनम्रता, सादा जीवन एवं उच्च विचार आदि विशेषताओं के कारण भौतिक शरीर त्याग कर भी सदा के लिए अमर रहेंगे। प्रेरणा के स्रोत, लोकोपकारी कर्मवीर, इस महान आत्मा को समाज भूल नहीं सकता। उनकी सारी सेवाए समाज को समर्पित थी। उनका व्यक्तित्व विराट था और चरित्र महान् था। सदाचार को वे जीवन के लिए अनिवार्य मानते थे। भारत में तो "आचार: प्रथमो धर्म:" पर बल दिया गया है। उनकी इस सूत्र मे पूर्ण आस्था थी। सदाचार ही उदात्त-चरित्र की कसौटी है, जिसमें सरलता, सत्य, करुणा, दया, मृदुता, धैर्य, सहिष्णुता, सयम, कर्त्तव्यनिष्ठा, अभय, स्वावलम्बन और अनासक्ति आदि गुणों का समाहार होता है। वे सदाचार की साक्षात् प्रतिमा थे। भारतीय धर्म-साधना एवं संस्कृति में उनकी पूर्ण निष्ठा थी।

समाज सेवा एवं मानवता-प्रेम उनके जीवन का अभिन्न अंग था। गांधीजी के निकटतम सहयोगी होने से उनकी समाज-सेवा एवं मानव-प्रेम की भागीरथजी पर अनूठी छाप थी। उन्होंने जीवन भर गांधीजी के जीवन-आदर्शों को व्यावहारिक रूप देने का प्रयास किया। समाज की शिक्षा, संस्कृति, राजनीति आदि विविध क्षेत्रों में जो सेवा उन्होंने की है, वह अनुकरणीय है। आज इस अवसरवादिता, आपाधापी, भाई-भतीजावाद और सकीर्ण-स्वार्थपरता के युग मे मानव-मूल्यों एवं सिद्धान्तों के लिए अडिग रहनेवाले कानोड़ियाजी जैसे व्यक्ति विरले ही मिलते हैं। भारत में—मुख्यत: राजस्थान व पश्चिमी वगाल मे—उन्होंने राष्ट्रीय-सेवा की।

वे अपनी हवेली में लोगो से सहज आत्मीय भाव से मिलते थे। लोगों से बातचीत करते हुए ही गरीब, वृद्ध, जरूरतमन्द लोगों से उनकी कठिनाइयां पूछते रहते

थे। कोई कह रहा है, 'बाबू ! बूढो हू, फिरे-टुरे जाय कोनी। कमाण की हीमत कोनी। मेरो बी को परबन्ध हुणो चाये।' दूसरा कह रहा है—'बाबू, जापो हुयो है। घर मे की आथ कोनी। थारै तो हाथ को मैल है। थोडी मदद होणी चाये।' और कानोडियाजी गम्भीरता से सोचते हुए विना नाक पर सल (सवटल)डाले पूछ रहे हैं, "तनै कतीक मदद चाये ?' तुरन्त ही अपने मुनीम से कह मदद कर देते हैं। आज के व्यस्त-युग मे बडी आत्मीयता से ऐसे गरीबो का दु ख-दर्द सुनना और तुरन्त यथोचित सहायता कर देना साधारण बात नही है। दुनिया मे धनीमानी बहुत है, किन्तु गरीबो के सच्चे साथी कम ही होगे। एक वार लेखक ने भी पत्र लिखकर एक विधवा को आर्थिक मदद दिलाई थी। अपने जीवन मे इस मानवता के पुजारी, करुणा के सागर, सम्वेदनशील सज्जन ने न मालूम कितने लोगो की सहायता की होगी। 'दीन-हृदय ईश्वर का मन्दिर और दीनो की सेवा ही ईश्वर की सच्ची सेवा है,' इस उक्ति मे उनकी गहरी आस्था थी। इसी कारण वे जीवन भर जनता-जनार्दन की सेवा मे तत्पर एव तल्लीन रहे।

आज सस्ती लोकप्रियता एव राजनीतिक लाभ के लिए लोग लम्बे-चौडे भाषण करते हैं, पर उनको तो कभी किसी से लाभ उठाना नही था, अत हरिजनोद्धार ही परम ध्येय था। उनकी करनी व कथनी मे अन्तर नही था। उनके शिक्षा-प्रेम एव अस्पृश्यता-निवारण का एक प्रसग अनायास ही स्मरण हो आता है। बात लगभग पचास वर्ष पूर्व की है। मुकुन्दगढ मे पाठशाला खुली, तो हरिजन बच्चो को भरती कराने वे गावो मे घर-घर गए। निकटवर्ती ग्राम छोडीवारा से श्री सागरमल रविदास को प्रवेश दिलाया (जो गत वर्ष ही शारदा सदन स्कूल से सेवा-निवृत्त हुए है) तो लोगो ने अपने बच्चो को स्कूल जाने से रोक लिया। पर दृढ सकल्पी एव साहसी, धुन के धनी भागीरथजी अडिग रहे। धीरे-धीरे लोगो को भी समझाया व छात्र पढने आने लगे। आज यह सामान्य-सी बात है, पर अर्द्धसदी पहले मामूली घटना नही थी। यह उनकी दृढता, साहस, हरिजन-सेवा और मानवता-प्रेम की परिचायक घटना है। सचमुच समाज के अग्रदूत, दूरदर्शी कानोडियाजी सच्चे समाज-सेवी व सुधारक थे। यो आज हरिजनो के प्रति झूठी सहानुभूति दिखाने वाले अनेक राजनीतिज्ञ मिल जायेंगे, जिनकी बातें मात्र दिखावा एव ढोग हैं।

भारतीय स्वतन्त्रता-सग्राम से उनकी पूरी सहानुभूति थी। १९४२ मे उन्हे जेल-यात्रा भी करनी पडी। अनेक सामाजिक सस्थाओ के वे सस्थापक, अध्यक्ष एव सदस्य रहे, चाहे वह शिक्षण-सस्था हो, हरिजन-सेवा-सघ या अस्पताल हो, महिला-सदन या अकाल-राहत समिति हो, पुस्तक-प्रकाशन सस्था या जल बोर्ड हो। सुप्रसिद्ध समाज-सेवी श्री सीतारामजी सेकसरिया के साथ उन्होने स्थायी महत्व के अनेक रचनात्मक कार्य किए। मुकुन्दगढ की शिक्षण सस्थाए, आरोग्य-सदन सीकर, श्री शिक्षायतन, अभिनव भारती, हिन्दी भवन (शान्तिनिकेतन) मातृ-सेवा सदन और मारवाडी रिलीफ सोसाइटी आदि से सम्बद्ध रहकर उन्होने अविस्मरणीय सेवाए की हैं। नारी शिक्षा, गरीबी-उन्मूलन, हरिजनोद्धार एव मानव-सेवा ही उनके जीवन का परम लक्ष्य था। गाधीजी, टैगोर, सत तुलसीदास उनके जीवन के आदर्श थे। ऐसे समाजसेवी, परदु खकातर, विनम्रता एव शील की सौम्य मूर्ति, साहित्य-प्रेमी, मूक

सामाजिक कार्यकर्ता, भागीरथजी के सहयोगी

श्री चिरजीलाल ढाचोलिया

पीढ़ियों का सम्पर्क

जब भी स्व० भागीरथ बाबू के विषय मे बात चलती है तो सहज ही हृदय उद्वेलित हो उठता है। उनसे सम्पर्क, सम्बन्ध की बात करू तो स्मृति को बहुत पीछे ले जाना पडता है, क्योंकि उनका मेरा सम्पर्क सिर्फ हमारा दोनो का ही नही, अपितु पीढियो का सम्बन्ध है। तब इतिहास के पन्ने लगभग २०० वर्ष पूर्व से उलटने पडते हैं। हरियाणा मे कालूड नामक गाव था, जो अब जिला मुख्यालय है और महेन्द्रगढ के नाम से जाना जाता है। भागीरथ बाबू के पूर्वज इसी कालूड गाव के रहनेवाले थे। कालूड के पास ही ढाचोली नामक गाव है, मेरे पूर्वज इसी गाव के रहनेवाले थे, जो भागीरथ बाबू के परिवार के निजी ब्राह्मण थे। २०० वर्ष पूर्व भागीरथ बाबू के पूर्वजो ने कालूड गाव को छोड दिया, और साथ ही मेरे पूर्वजो ने भी ढाचोली ग्राम छोड दिया। इस तरह दोनो साथ-साथ ही राजपूताना की ओर चल पडे। सर्वप्रथम फतेहपुर (शेखावाटी) मे आकर हमारे पूर्वजो ने निवास किया। चूकि हमलोग कालूड व ढाचोली नामक गावो से उठ कर आये थे, अत. बाबू लोग कालूडिया (वर्तमान मे यही नाम 'कानोडिया' हो गया है) कहलाये और हमलोग ढाचोलिया कहलाये।

थोडे समय बाद इन लोगो ने फतेहपुर भी छोड दिया और साथ-साथ ही नवलगढ आकर बस गये। भागीरथ बाबू के पूर्वज श्री जोखीरामजी ने नवलगढ मे एक कुआ तथा शिव-मन्दिर बनवाया। यह कुआ अब भी 'जोखीरामजी का कुआ' के नाम से प्रसिद्ध है। तदुपरान्त श्री परमानन्दजी ने मडी दरवाजे के बाहर एक सुन्दर बगीची का निर्माण करवाया। इस बगीची मे ही उन लोगो के अन्तिम सस्कार होते थे। उनकी स्मृति मे एक छतरी भी इस बगीची मे बनी हुई है। नवलगढ मे ये लोग काफी समय तक रहे और विभिन्न प्रकार के पुण्य-कार्य करने से शीघ्र ही उनका यश फैल गया था।

इसी समय मुकुन्दगढ शहर बसा था, और वि० स० १९१६ मे वसत पचमी के दिन गढ की नीव रखी गयी। नीव की पूजा हेतु मेरे प्रपितामह श्री हुकुमीचन्दजी को लाया गया था। ठीक इसी दिन भागीरथ बाबू के पितामह श्री जयनारायणजी ने यहा हवेली की नीव दिलवायी जिसकी पूजा भी मेरे पूर्वज श्री हुकुमीचन्दजी ने करवायी। पूजा करवाने की दक्षिणा के रूप मे उनको मुकुन्दगढ के सरदारो ने ११ बीघा जमीन का पहला पट्टा दिया और सेठो ने रहने के लिए पूरा मकान बनवा कर दिया। इस प्रकार हमारे पूर्वज साथ-साथ ही नवलगढ से आकर मुकुन्दगढ मे बस गये।

श्री जयनारायणजी के चार सतान हुई जिनके नाम क्रमशः इस प्रकार है :—श्री जानकीदासजी, श्री हरीरामजी, श्री हरदेवदासजी तथा श्री रामदत्तजी। श्री रामदत्तजी के तीन पुत्र हुए, श्री गगावक्सजी, श्री प्रह्लादजी तथा श्री भागीरथजी। श्री गगावक्सजी कलकत्ता गये और वही विडला ब्रदर्स के यहा रहने लगे। कालातर मे भागीरथ वावू भी कलकत्ता चले गये। मुझे याद है कि स्वय जुगलकिशोरजी विडला उनका वहुत आदर करते थे। धीरे-धीरे जहा भगवती महालक्ष्मी की कृपा वढती गयी, वही कानोडिया परिवार द्वारा पुण्य कार्यो मे भी वृद्धि होने लगी।

मेरे अब तक के जीवन का सबसे अधिक समय भागीरथ वावू के साथ गुजरा है। भागीरथ वावू ने जो आदर तथा स्नेह मुझे दिया वह मुझे किसी से नही मिला। वे मेरी सभी समस्याओ के हल थे। कभी उन्होने मुझे चिन्तित नही होने दिया। इतना सर्वगुण सम्पन्न और उदार व्यक्ति मैंने कभी नही देखा। यदि यह कहू तो अतिशयोक्ति नही होगी कि मौनी अमावस्या (माघ) वि० स० १९५१ को भागीरथ वावू के रूप मे साक्षात 'धर्म' ने जन्म लिया था।

सन् १९३७ के सितम्बर की बात है। भागीरथ वावू हरिजनोद्धार मे लगे हुए थे। उसी सिलसिले मे उन्होने मुकुन्दगढ मे हरिजनो को स्कूल मे प्रवेश दिलवाने का कार्यक्रम वनाया। स्वाभाविक था कि उस समय मे ऐसा काम करना वहुत जोखिम भरा था। परन्तु वे तो सोच-समझ कर निर्णय लेते थे और निर्णय लेने के वाद उस पर अटल रहते थे। हरिजन-प्रवेश का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ तो पूरे गाव मे विरोध की लहर उमड पडी। सवर्ण बच्चो ने स्कूल का वहिष्कार कर दिया। सिर्फ ५-७ विद्यार्थी रह गये। मुझ पर भी विभिन्न लोगो द्वारा दवाव पडने लगा, परन्तु मैंने तो भागीरथ वावू के साथ रहने का अतिम निर्णय ले लिया था। मुकुन्दगढ के सरदारो ने जब मुझ पर वहुत दवाव डाला तो मैंने उनके द्वारा प्रदत्त जमीन का पट्टा व ताबा-पत्र लौटा दिया (वाद मे भागीरथ वावू को जव यह घटना ज्ञात हुई तो उन्होने मुझे अपनी जमीन मे मे जमीन प्रदान कर दी)। अव हमलोगो के विरुद्ध तनावपूर्ण वातावरण तेजी से वनने लगा। अन्त मे ठाकुर साहव की सहमति से भागीरथ वावू को और मुझको जाति से वहिष्कृत (जो कि उस समय वहुत बडा दड होता था) कर दिया गया। परन्तु वावू ने इसकी परवाह नहीं की, और अपने कार्यक्रम को जारी रखा।

सन् १९३९ मे नागरिक अधिकार दिलवाने के लिए भागीरथ वावू की सहमति से आदोलन चलाया गया था। उस समय श्री राधाकिशनजी बजाज ने शेखावाटी का दौरा किया था, जबकि जयपुर राज ने श्रीयुत् जमनालालजी बजाज के जयपुर-राज्य की सीमा मे प्रवेश पर रोक लगा दी थी। परन्तु सत्याग्रह चलता रहा। मार्च, १९३९ को किसान-दिवस मनाया गया। इस अवसर पर मुकुन्दगढ मे भी जुलूस निकाला गया। जब जुलूस के बारे मे मुकुन्दगढ के ठाकुर बाघसिंहजी को मालूम हुआ तो वे क्रोधित हो उठे, और उन्होने पूरे जुलूस को बुरी तरह पिटवाया। जो किसान-युवक उसका नेतृत्व कर रहा था, वह बुरी तरह घायल हो गया था। भागीरथ वावू ने उसे वाद मे पूरा सरक्षण दिया। उस समय इस तरह के कार्यक्रमो

मे जो लोग भाग लिया करते थे, उन्हे बाबू पूरी तरह सहयोग और संरक्षण दिया करते थे।

ऐसे ही पचपाना (उस समय उदयपुरवाटी, चिराणा, गुढा, पूख आदि गावो को पचपाना नाम से सम्बोधित किया जाता था) के क्षेत्र मे जागृति लाने का कार्यक्रम बनाया गया था। परन्तु भौम्याओ (पचपाना के गावो के सरदार लोगो) ने अपने क्षेत्र मे निषेधाज्ञा लगा रखी थी, इसके बावजूद भागीरथ बाबू, नरोत्तमजी जोशी, महादेवजी, मैं और अन्य कार्यकर्ता चिराणा गये। भागीरथ बाबू ने सभा का आयोजन किया तो भौम्या लोग भडक उठे और लाठिया ले-ले कर सबको पीटने लगे। महादेवजी बुरी तरह घायल हो गये। सभी लोगो को चोटें आयी। भागीरथ बाबू की पसली मे गम्भीर चोट आयी, परन्तु वे उसे इतने सहज-भाव से सह गये कि हमलोग आश्चर्यचकित रह गये। बाद मे लोगो ने पुलिस केस बनाने के लिए कहा तो भागीरथ बाबू ने मना कर दिया। हद की सहनशक्ति थी उनमे।

यदि यह कहा जाए, तो उचित ही होगा कि इस क्षेत्र मे नव-जागरण की लहर लाने का बहुत सारा श्रेय भागीरथ बाबू को जाता है। उन्होने असल मे जन-जागरण का आधार तैयार किया था। सन् १९१९ मे मुकुन्दगढ मे उन्होने 'गाधी वाचनालय' की स्थापना की थी, जिसका अब 'सार्वजनिक पुस्तकालय' नाम है। उसी समय मे चर्खा-सघ, सहकारी सघ जैसी सस्थाओ की स्थापना की। उन्होने एक ग्राम शिक्षा विभाग की स्थापना की थी, जिसके तहत विभिन्न गावो मे पाठशालाए खोली गयी थी, जो इस शेखावाटी क्षेत्र मे शिक्षा का सूत्रपात थी। वे हर समय लोगो मे नई चेतना लाने के लिए उत्सुक रहते थे।

मुझे याद नही कि कभी ऐसा हुआ हो, कि कोई उनके पास सहायता प्राप्त करने हेतु आया हो और खाली हाथ लौटा हो। ऐसा ही एक छोटा सा रोचक सस्मरण और याद आ गया है· हमारे गाव मे एक धूणाराम नामक ब्राह्मण था, जो गरीब था परन्तु सनकी भी था। जब भी बाबू मुकुन्दगढ आते वह उन्हे बाजार मे गाली-गलौज देता। जब कोई व्यक्ति उन्हे यह बात बताता तो बाबू धूणा को हवेली मे बुलाते और अनाज, रुपये, कपडे आदि कुछ न कुछ देकर ही घर भेजते। धन्य है ऐसी महानता।

अन्त मे, आज भी मुझे वे ३-४ दिन याद आते है तो रोमाचित हो उठता हू जब १९४१ मे भागीरथ बाबू, देशरत्न राजेन्द्रप्रसादजी को लेकर मुकुन्दगढ आये थे। तब वे तीन-चार दिन यहा रुके थे। उस समय उनको दमा की शिकायत थी और वे यहा आकर बहुत खुश हुए थे। उन तीन-चार दिन के दौरान हर समय देश सेवा और उच्चादर्शो की बाते होती रहती थी। कितने महान लोगो का संसर्ग करने का अवसर मुझे मिला, इसका गर्व है मुझे। अस्तु।

भागीरथ बाबू के साथ बीता हुआ समय मेरा सबसे अधिक मूल्यवान समय था। ईश्वर हमे उनके पद-चिन्हो पर चलने की प्रेरणा दें।

—: o :—

राजस्थानी साहित्य संस्थान, झुंझुनूं के मंत्री

श्री मोहन सिंह

गांव और गरीब का संबल

धन कुबेरो की जन्मस्थली शेखावाटी मे शिक्षा, समाज और सेठाई का सौहार्दपूर्ण समन्वय किसी मे था तो वह था स्व० भागीरथजी कानोडिया मे। प्यार और अपनत्व लिये 'भागीरथजी' नाम छोटे-बडे, गरीब-अमीर, शहरी और ग्रामीण, सबमे समान रूप से श्रद्धेय रहा है।

उन्नीस सौ चवालीस। भारत की आजादी के स्पष्ट आसार नजर आने लगे थे। उस वक्त मुकुन्दगढ मे कानोडिया हाई स्कूल था। कॉलेज नही बना था। छात्रावास का खर्च आठ-दस रुपये महीना प्रति छात्र आता था। फिर भी देहात के मुझ जैसे गरीब विद्यार्थी इतना भी वहन करने की स्थिति मे नही थे। एक उपाय सोचा गया कि एक नया छात्रावास और बनाया जाय। उसमे जो विद्यार्थी रहे वे अपने-अपने घर से आटा लाएं। मकान, लकडी, रसोइया, लालटेन, किरासिन तेल, पानी आदि का सारा खर्च ट्रस्ट का। दाल-साग सामूहिक और आटा अपना-अपना था ही। पुस्तकें स्कूल से मिलती ही थी। स्कूल फीस भी माफ हो जाती थी। ट्यूशन फीस थी नही। महीने भर का खर्च सिर्फ रुपया सवा रुपया। मैं सोचता हू इससे सस्ती पढाई कही क्या होती होगी? २०-२५ विद्यार्थी और एक वार्डन। व्यवस्थित दिनचर्या मे लगा हुआ छात्रावास।

भागीरथजी मुकुन्दगढ पधारे। उनके शिक्षा प्रेम को केवल महसूस किया जा सकता है, वर्णन नही। शाम के पाच बजे थे। आ पहुचे छात्रावास मे। देखने लगे एक-एक चीज को बारीकी से। बनता हुआ खाना, पानी का हौद और फिर देखे कमरे। कमरो मे खिडकिया नही थी केवल दरवाजे थे। बात करने लगे हमसे। हम देहाती बालक अन्डरवियर पहने हुए थे। नेकर सिर्फ स्कूल के लिए थी जिसे सम्भाल कर रखते थे। बोले—'नेकर कोनी थार कनै?' हमने कहा—'है।'

"तो पैंरणो चाये। ओ जागियो तो नेकर कै नीचै पैं'रण को हुवै है," उन्होने कहा। "म्हे इस्कूल जावा जद नेकर पैंहर जावा। अठै पैंरणों सूं मैंलो हुज्यावै," हमने उत्तर दिया।

उन्होने प्रसग बदला और वार्डन साहब से कहा, "कमरां म अधेरो है। हवा कौस कोनी हुवै। टाबरा रै स्वास्थ्य पर बुरो असर पडै है। अर ओ मकान की को है?" वार्डन साहब ने उन्हे काफी बातें बतलायी होगी। वे उनके साथ ही बाहर निकल गये।

दो दिन बाद हमे सिला-सिलाया एक-एक नेकर मिल गया। छात्रावास के तमाम कमरो मे खिडकिया और रोशनदान लग गये। सारा व्यय वहन किया

भागीरथजी ने। ऐसे थे उदारमना भागीरथजी जिनके कोमल दिल मे अशक्त और गरीब के आत्मसम्मान को सशक्त बनाने की एक सुदृढ लगन थी।

x x x

गर्मी आ चुकी थी लेकिन सतानेवाली नही थी। प्रीपेरेशन-लीव चल रही थी। दिन भर पढाई करने के बाद हम छात्रावास के चौक मे तख्ते डालकर हवा का आनन्द ले रहे थे। छात्रावास का चौक काफी खुला था। शाम के सात बजे होगे। हम वापिस अपने-अपने कमरो मे जाने की तैयारी कर रहे थे कि अचानक भागीरथजी आ गये। एक सौम्य वातावरण का अवतरण उनके आगमन के साथ हुआ। चेहरे खुशी से चमक उठे। उठकर उनका अभिवादन किया। वे एक तख्ते पर बैठ गये और हम उनके चारो ओर। एक-एक का नाम व गाव पूछा। फिर लगे तलाशने ग्रामीण जीवन की झाकी, लोक-साहित्य के माध्यम से। बोले, "गाव की नेपैं खेडा बतावै" मुहावरै को के अरथ हुवै ? किसी ने कुछ अर्थ बताया और किसी ने कुछ। स्वय उन्होने इसे स्पष्ट किया और फिर कहा कोई ग्रामीण कहानी सुनाने को। हमारे एक साथी ने एक लोककथा सुनाई। परन्तु कहानी का उद्देश्य पूछा तो चुप। खैर पहले उन्होने उस कहानी का उद्देश्य बतलाया और फिर एक लोककथा सुनाई। वह आज तक हमारे मानस पर अकित है। आज भी जब हम मिलते है तो भागीरथजी के साथ वह लोककथा याद आती है। कथा सार इस प्रकार है—"एक समै की बात है कै देस म चारू कूटा कठे भी बिरखा कोनी हुयी। मिनख, जिनावर अर पखेरू घणा दुखी होगा। नोबत अठै ताणी आ पूची कै चातक भी घबरा उठ्यो। थावस की भी अेक हद हुवै है पण जद पिराण जाणै लागै तो कठै तक थावस राख्यो जावै। आखर हार'र चातक फैसलो करयो कै स्वाति बूद तो मिलै कोनी कोई साफ सुथरी तलायी को पाणी ही पी लियो जावै जिसू पिराण तो बचै। मन नै मसोस वो चातक उत्तराखण्ड माथ पाणी की तलास मे चाल पडयो। उडता-उडता रात हुयी जद अेक पेड पर बासो लियो। बी पेड पर अेक हस-हसणी को जोडो भी बिसराम कर्र्यो हो। बै बतलाया—बिरखा न होणै सू जीवा को धरम डिग चुक्यो है। सै आप आप की मरजादा छोड चुक्या है पण चातक ओजू अया को पखेरू बच्यो है जो आपकी मरजादा कोनी छोडी। पिराण भलै ही जावै पण चातक धरती को पाणी कद पीवै। चातक जद आ बात सुणी तो बी नै आपरै बस की मरजादा अर सम्मान को ग्यान हुयो। पाछो ही उडगो आपरै देस जठै सू आयो हो।"

कथा सुनाने के बाद उन्होने कहा—"देखो, पपीहे की ज्यू मिनख नै आपकी मान-मरजादा राखणी है चाहे पिराण चल्या जावै।"

x x x

शेखावाटी और अकाल, अकाल और शेखावाटी इतना मेल बैठ गया था कि एक दूसरे के पर्याय से नजर आने लगे। यहा का आदमी भी अकाल का इतना अभ्यस्त हो गया था और है कि भयकरतम परिस्थितियो मे भी धैर्य नही छोडता है और राह भटके मृग की तरह इधर-उधर जीने की राह तलाशता रहता है। अकाल और

आदमी सदैव एक दूसरे से जूझते रहे परन्तु अकाल और पशु जूझने लगे तो गावों के 'जोहड़' और 'गेरों' में पशुओं के अस्थि पंजर ही अस्थि पंजर नज़र आयेंगे।

ऐसी ही स्थिति थी अकाल की। एक समिति बनी अकाल समिति। इसमें एक बड़ी धनराशि स्व० भागीरथजी द्वारा दी गई थी। भागीरथजी समिति के अध्यक्ष थे। जगह-जगह राहत के नाम पर राशि बांटी गयी। प्रत्येक गाव और प्रत्येक घर त्रस्त था। कलकत्ता से चलकर अकाल राहत कार्य देखने भागीरथजी आये। सुजानगढ़ ठहरे। सुबह स्नान करके ही निकल पड़े गावों में। करीब नौ बजे होंगे कि एक घर पर 'गोबर चुगती' करके एक बुढ़िया (हरिजन) 'छाछ राबड़ी' और रोटी लेकर घर आ रही थी। ज्योंही वह गुवाड़ में से पहुंची कि एक जीप से उतरा एक आदमी, काली टोपी पहने, दुबला-पतला सा परन्तु आवाज का धनी। वह लपाक से बुढ़िया के पास गया और 'हाथ' पर से रोटी उतार ली। उसमें से एक छोटा सा टुकड़ा तोड़ा और खा गये। बाकी रोटी वापिस दे दी। फिर बोले—"बाजरी मिट्ठी है पर रोटी रूखी है।" देखने वाले अवाक रह गये। भागीरथजी ने हरिजन के हाथ की रोटी खाई। उनके प्रति गाव वालों की अटूट श्रद्धा थी। बात दो तीन दिन में सारे गाव में फैल गयी। ज्यों-ज्यों बात फैलती जा रही थी समाज से छुआछूत मिटती जा रही थी।

प्रणाम ऐसे मानव को जिसकी वाणी से वायुमण्डल शुद्ध हो और जिसका कर्म इतिहास बनता जाये।

—.०—

राजस्थान सरकार में उप सचिव, लेखक
श्री पदमचन्द सिंघी

मेरे ताऊजी

सुबह-सुबह बिस्तर छोड कर उठा ही था कि टेलीफोन पर किसी ने खबर दी कि कलकत्ते मे पिछली रात ही (२९ अक्टूबर १९७९) श्री भागीरथजी कानोडिया का देहावसान हो गया है। सुनकर स्तब्ध रह गया। एक गहरा धक्का लगा। मन और मस्तिष्क मे अनेको बाते और घटनाए ताजा होने लगी।

राजस्थान से केवल लोटा-डोर लेकर कलकत्ते मे कमाई के उद्देश्य से जानेवाले सैंकडो-हजारो मारवाडियो मे से विरले ही ऐसे है जिन्होने धन के साथ-साथ जन-सेवा के क्षेत्र मे अपने व्यक्तित्व और कृतित्व से यश भी कमाया हो। श्री भागीरथ कानोडिया उन इने गिने व्यक्तियो मे से एक है जो नाम से आगे बढ कर वास्तव मे एक सस्था ही बन गये थे। शिक्षा का क्षेत्र हो, समाज-सुधार का क्षेत्र हो, स्वास्थ्य एवं चिकित्सा का क्षेत्र हो या राजनैतिक क्षेत्र हो—हर क्षेत्र मे भागीरथजी की प्रेरणा, उनका योगदान सर्वप्रथम उपलब्ध हुआ। उन्हे स्कूली या कालेजी शिक्षा नही मिली थी। गाधीजी के निकट सम्पर्क मे आने मात्र से ही उनके जीवन-सस्कार उदात्त हुए और वे कलकत्ते के एक प्रमुख व्यक्ति बन गये। वे स्वभाव से बडे शान्त, बुद्धि से बडे तीक्ष्ण, मन से बडे सवेदनशील और व्यवहार मे बडे कोमल एव मधुर थे। जो भी उनके सम्पर्क मे एक बार आया, वही सदा-सर्वदा के लिये उनका हो गया—उनके व्यक्तित्व की छाप उसके मन पर जम गई।

मेरे बडे भाई श्री भवरमल सिंघी के माध्यम से, जो स्वयम् कलकत्ते मे पिछले-लगभग ४५ वर्षो से रहते हैं और वहा के राजनैतिक, सामाजिक, सास्कृतिक, साहित्यिक तथा शैक्षणिक जगत मे होनेवाले कार्य-कलापो मे ओत-प्रोत है, मुझे श्री भागीरथजी के सम्पर्क मे आने का मौका मिला था। मैं उन्हे ताऊजी कहता था। सन् १९४६ का वर्ष याद आया जब भागीरथजी जयपुर मे काग्रेस अधिवेशन के समय हमारे घर पर आये थे और मैंने उन्हे शायद पहली बार देखा था। होठो पर मुस्कान और वाणी मे अत्यन्त मिठास भर कर उन्होने मुझसे पूछा था—"पदम, तू काई पढै है?" मैंने बताया था कि मैं अब मैट्रिक की परीक्षा दू गा। उन्होने पीठ थपथपायी और कहा था—"पढाई नीका मन लगाकर करजे ताकि डिविजन चोखो आवे। भवरमलजी थारी तारीफ करया करै" और उसके बाद पहली बार मुझे कलकत्ते आने का अवसर मिला तब उनके फिर दर्शन किये। पास बैठा, आने-जाने वाले लोगो के साथ उनके द्वारा की जानेवाली चर्चाए सुनी—और यह क्रम जब-जब कलकत्ते जाता तब-तब चालू रहता। मैं श्री भागीरथजी को "ताऊजी" कह कर सम्बोधित करता था, क्योकि वे मेरे बडे भाई श्री भवरमलजी से उम्र मे काफी बडे थे और मैं अपने भाई साहब से १५ वर्ष छोटा हू।

सन् १९५३ की बात है, जब मैंने बम्बई विश्वविद्यालय से एम० ए० की परीक्षा पास कर दिल्ली मे श्री काका साहब कालेलकर की अध्यक्षता मे भारत सरकार द्वारा गठित पिछड़े वर्ग आयोग मे रिसर्च आफिसर के पद पर काम शुरू किया था। अगले वर्ष १९५४ मे कमीशन की रिपोर्ट समाप्त होने पर मैं कलकत्ते आ गया था। सामने प्रश्न था कि अब क्या करना है? बड़े भाई उन दिनो भागीरथजी के साथ उनके व्यावसायिक प्रतिष्ठान "दी जनरल फाइबर डीलर्स" मे चीफ एक्जीक्युटिव डाइरेक्टर के रूप मे काम तो कर रहे थे, पर उस सम्बन्ध से अधिक गहरा सम्बन्ध कानोडियाजी से उनका इसलिये था कि भाई साहब कलकत्ते के राजनैतिक, सामाजिक, साहित्यिक, सास्कृतिक और शैक्षणिक जीवन मे अपना महत्वपूर्ण स्थान बना चुके थे तथा भागीरथजी भी उस क्षेत्र मे इने-गिने मारवाडियो मे से एक थे। दोनो का कार्य-क्षेत्र एक था और इसलिये मालिक-नौकर के बीच की दूरी या सम्बन्ध का कोई अस्तित्व ही नही था। कानोडिया परिवार और हमारे परिवार के सम्बन्ध समानता के स्तर पर थे, रहे और आज भी हैं। अतः जब मैं अपनी पत्नी लीला के साथ कलकत्ते मे भाई साहब के पास था तो एक दिन ताऊजी ने मुझे पूछा—"तू अब के करणोरी सोचै है?" मैंने कहा "अभी कुछ तै नही कियां" तो वे बोले—"तू बगहा (बिहार प्रदेश) मे आपणी जो शुगर की फैक्टरी है, ऊमे चलोजा। ठीक रैही। एसिस्टेन्ट मैनेजर बण जासी।" मैंने कहा "सोचूंगा और आपको बताऊंगा" उसके बाद उसी दिन उन्होने नियुक्ति पत्र और साथ मे एक सप्ताह बाद का रेल्वे रिजर्वेशन और टिकट मुझे भिजवा दिया। मैं सोच ही नही पाया था, पर उन्होने मुझे अपना मान कर स्वय ही मेरे भविष्य का निर्णय कर दिया था। यह उनके मन मे मेरे प्रति होनेवाले स्नेह का प्रमाण था। खैर मेरी नियति तो मुझे राजस्थान मे खीच रही थी, इसलिये मैंने ताऊजी की बात नही मानी और मैं राजस्थान आ गया—राजकीय सेवा स्वीकार कर ली। किन्तु ताऊजी का स्नेह वैसा ही बना रहा। राजस्थान मे जब भी आते जरूर मिलते, मेरे परिवार के बारे मे पूछते और मेरे द्वारा राजस्थान के ग्रामीण क्षेत्र मे किये जाने वाले कार्य की चर्चा करते तथा प्रशसा भी।

मुझे याद आती है, सन् १९७३ की बात, जब मैं सीकर जिले मे अतिरिक्त-जिलाधीश के पद पर काम कर रहा था। ताऊजी वहा आये थे। ५-६ दिन ठहरे थे। उन्हे "पीपुल्स वेलफेयर सोसाइटी" के अन्तर्गत श्री बद्रीनारायणजी सोढाणी द्वारा किये जाने वाले कार्यों का निरीक्षण करना था। वे सावली मे ठहरे थे। मैं भी वहा गया था। काफी भीड थी उनसे मिलने वालो की। पर मुझे देखते ही पास बुलाया। अपने नजदीक बिठाया और क्षेम-कुशल पूछने के बाद कहने लगे—"पदम, थारो अठै रो काम खूब चोखो है। सोढाणी जी कवै था। मनै खूब खुशी हुई। तू सरकारी अफसर की तरै काम न कर, सेवा की भावना सू करै है तो काम हुवै है।" और फिर अनेक प्रकार की चर्चा होती रही। कुछ गावो की कठिनाइया उन्होने बताई और चाहा कि मैं उन्हे हल करने की चेष्टा करू। मुझे सन्तोष है कि मैं कर पाया।

ताऊजी स्त्री-शिक्षा के बडे कट्टर प्रचारक थे। उनकी मान्यता थी कि स्त्रिया जब तक शिक्षित नही होगी तबतक हमारे देश का विकास अधूरा रहेगा। वे स्त्री-शिक्षा

ही नही स्त्रियो द्वारा घर से बाहर के क्षेत्र मे काम करने के भी बडे समर्थक थे। मेरी पत्नी लीला जयपुर ओसवाल समाज की प्रथम स्नातिका थी। उन्होने वनस्थली विद्यापीठ जैसी सस्था से बाल्यकाल मे शिक्षा ली और जयपुर के महारानी कालेज से स्नातक बनी। विवाह के बाद उन्होने अध्यापन का कार्य करना तय किया। ताऊजी इसके लिये हमेशा उनकी तारीफ करते रहे। कहते थे "लुगाया भी घर से बाहर मोटयार (मर्द) की नाई काम करै तो वानै ज्यादा मुशकिल पडै। वाको त्याग मर्द सू ज्यादा होवै। लीला जैसी सस्कारी स्त्रिया बच्चा लोगो ने पढावै तो टाबर अच्छा सस्कारी बणैगा। या बडी खुशी की बात है। मैं लीला ने धन्यवाद देऊ।" लीला के बारे मे वे बराबर पूछते रहते और प्रशसा करते थे। ताऊजी स्त्री-शिक्षा के बडे भारी पोषक थे इसीलिये उन्होने जयपुर मे कानोडिया महिला महाविद्यालय जैसी श्रेष्ठ सस्था की स्थापना की, जो राजस्थान मे अपना सानी नही रखती।

एक और घटना याद आती है तब मैं राजकीय सेवा कार्य के अतिरिक्त बजाजनगर स्थित राजस्थान विद्यालय (बाल भारती) के सचिव, के रूप मे भी काम कर रहा था। ताऊजी जयपुर आये थे। मैं उन्हे विद्यालय का काम दिखाने ले गया। देखा, चर्चा की और प्रशसा भी। बोले—"चोखी सार्वजनिक सस्थाओ मे पीसा की मुशकिल हमेशा ही रवै। पर चोखा काम करनिया नै पीसा मिल भी जावै।" उन्होने कलकते जाकर स्कूल के लिये शायद दो हजार रुपयो का चेक भेज दिया।

ताऊजी को कोई नियमित शिक्षा नही मिली थी। जीवन-सघर्ष के माध्यम से और गाधीजी के सम्पर्क से उन्होने अपना व्यक्तित्व स्वयम् निखारा था। उनकी बुद्धि अत्यन्त तीक्ष्ण थी और अनुभव सिद्ध कहावतें, मुहावरे और कहानियो का उनके पास अथक भण्डार था। बातचीत के दौरान अपनी बात की पुष्टि और उसको अभिव्यक्त करने मे वे उस खजाने का खुलकर प्रयोग करते थे। ताऊजी नही रहे—उनकी भौतिक अनुपस्थिति हमे महसूस होती है, पर उनके व्यक्तित्व की छाप उनके द्वारा चलाई गई सस्थाओ और उनकी प्रेरणा से विकसित अन्य व्यक्तियो मे आज भी सर्वत्र दिखलाई देती है और यही महत्व की बात भी है। आदमी शरीर से जीवित नही रहता, जीवित तो उसे उसके कार्य रखते हैं। ताऊजी कर्मठ व्यक्तित्व के धनी थे। वे "यथानाम तथा गुण" की कहावत चरितार्थ करते थे। कोई भी काम हो, हाथ मे लिया तो भगीरथ-प्रयत्न के द्वारा उसे पूरा करते या कराते थे। तन-मन और धन से उसमे सहयोग देते थे। दानी थे—प्रकट और गुप्त दोनो प्रकार के दान उन्होने दिये। आजादी के युद्ध मे कूदे—जेल गये किन्तु आजादी के बाद कभी भी पद और सत्ता की राजनीति मे नही फसे। परन्तु सेवा—देश और समाज की सारी जिन्दगी करते रहे। ताऊजी आज नही है उनकी यादें हमारे साथ है। उनके प्यार और प्रेरणा भरे शब्द और वाक्य आज भी कानो मे गूजते है। गूंजते रहे—यही कामना है। उनके प्रति हमारी श्रद्धाजलि तभी पूर्ण होगी जब हम उनके द्वारा चलाये कामो को आगे बढायें।

—: o :—

जैन साध्वी
श्री गुलाब कंवरजी

सामाजिक क्रान्ति के अग्रदूत

सज्जन व्यक्ति की विशेषताओ पर प्रकाश डालते हुए शास्त्रकारो ने कहा है—

धर्मे तत्परता, मुखे मधुरता, दाने समुत्साहिता
मित्रेऽवंचकता, गुरौ विनयिता, चित्तेऽति गम्भीरता।
आचारे शुचिता, गुणे रसिकता, शास्त्रेऽति विज्ञानिता
रूपे सुन्दरता, हरौ भजनिता, सत्स्वेव सदृश्यते॥

अर्थात् धार्मिक प्रवृत्ति का होना, वाणी में माधुर्य, दान में उत्साह-सम्पन्नता, मित्रो के साथ विश्वासघात न करनेवाला, गुरु के प्रति विनम्र भावना, चित्त में गम्भीरता, आचार की पवित्रता, गुण ग्रहण मे अति रुचि, शास्त्र-ज्ञाता, आकृति मे लावण्य और हरि का भजन करने वाला—ये सब गुण सज्जन व्यक्ति में विद्यमान रहते हैं।

भागीरथजी कानोडिया उपर्युक्त सभी गुणो से युक्त थे। धार्मिकता, दयालुता, आचार-निष्ठा उन्हे संस्कारलब्ध थी। उनकी सबसे बडी जो विशेषता थी, वह थी दयालुता। जिस किसी के साथ भी वे अन्याय होता देखते, उसके प्रतिकार में तुल जाते। वहा वे यह नहीं सोचते, कौन-सा पलडा भारी है, कौन-सा हलका है। प्रायः देखा जाता है कि व्यक्ति हमेशा झुकते पलडे के ही साथी होते हैं, पर कानोड़ियाजी इसके अपवाद थे। उनका पक्ष सदैव सत्य व न्याय के साथ रहता। मेरी अपनी आपबीती घटना है—उदयपुर मे हम तीनो साध्वियों के साथ जो कुछ अनुचित घटित हुआ, उसका समाचार कानोडियाजी को मिला। वे यह सुनकर स्तब्ध रह गये। उन्होंने कहा—अबला साधिकाओ के साथ भी कभी ऐसा घटित किया जा सकता है? उन्होने आचार्य तुलसी को पत्र लिखा कि आपने जो यह निर्णय लिया है, वह व्यवहार एव मानवता के विरुद्ध है। आपको अपने निर्णय पर पुनर्विचार करना चाहिए। सामान्य स्थिति में भी ऐसा निर्णय अनुचित है, जबकि उन तीनो साध्वियो मे से एक साध्वी पूर्णतया अस्वस्थ है, रुग्ण हैं। उन्होने एक पत्र उदयपुर के श्रावको के नाम भी लिखा कि साध्वीश्री से कह देना कि वे तनिक भी चिन्ता न करें, मैं आपके साथ हूं। जो भी अन्याय हुआ है, उसका हमे डटकर प्रतिकार करना है। उसके पश्चात् कई बार उनके पत्र आये। वे स्वय भी आने के लिए बडे उत्सुक थे, किन्तु, वार्धक्य एव शारीरिक दौर्बल्य के कारण वैसा सम्भव नही हो सका।

एक अजनबी, अपरिचित व्यक्ति किसी के दुःख मे इतना हमदर्द हो जाये, यह सहसा विश्वास नही होता, किन्तु, यह सत्य है। कानोडियाजी से हमारा कभी साक्षात्कार

तक भी नही हुआ। उनके नाम और काम से यद्यपि हम परिचित अवश्य थी, पर, इस अवसर पर हमने उनके नाम और काम की वास्तविक सार्थकता देखी।

कानोडियाजी सम्प्रदायातीत व्यक्ति थे। उन्हे किसी सम्प्रदाय, समाज या व्यक्ति से कोई मोह नही था। अच्छी बात जहा भी देखते, वे उसका समर्थन करते तथा जहा अन्याय होता देखते, उसके विरोध मे खडे हो जाते। उनका सघर्ष किसी व्यक्ति से नही होता, अपितु, बुराइयो से होता। वे सदैव विशुद्ध धर्म एव स्वस्थ समाज की सरचना चाहते थे।

उपाध्याय मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' के साथ बनारस मे जो कुछ घटित हुआ, उसके प्रतिकार मे कानोडियाजी ने प्रशसनीय भूमिका का निर्वाह किया। अभिनिष्क्रमण के पश्चात् उपाध्यायश्री जब प्रथम बार कलकत्ता पधारे, उनका विराट् अभिनन्दन समारोह कानोडियाजी की अध्यक्षता मे रखा गया था। उस अवसर पर उन्होने जो उद्‌गार व्यक्त किये थे, वे कठोर से कठोरतर मानस को भी पानी-पानी कर देने वाले थे।

उन्होने अपना सारा जीवन समाज सेवा मे समर्पित कर दिया था। कहना चाहिए, सामाजिक क्रान्ति के वे भागीरथ थे। जब यह सुनने को मिला कि कानोडियाजी अब इस ससार मे नही रहे, तो मन पर एक आघात-सा लगा। उनकी कमी समाज को सदैव खटकती रहेगी।

—:•:—

जैन आचार्य
पूज्यपाद मुनिश्री नगराजजी

सूझबूझ के धनी

अनेक बार के साक्षात् सम्पर्क से जाना स्व० भागीरथजी कानोडिया दूरदर्शी, निडर व सूझबूझ के धनी पुरुष थे। जहा भी अन्याय व उत्पीडन होता, वे पीडित-पक्ष के सहयोग मे खडे होते। स्व० उपाध्याय मुनि महेन्द्रकुमारजी एवं विदुषी साध्वी श्री गुलाब कवरजी आदि भगिनी-त्रय के साथ घटित प्रसग ज्यो ही सामने आया, उन्होने स्पष्ट-स्पष्ट बातें आचार्य श्री तुलसी को लिखी—इन लोगो के प्रति अन्याय हुआ है, आप दुबारा अपने निर्णयो पर विचार करे, आदि-आदि। जबकि अन्याय हुआ है, यह सारे समाज ने माना था, पर सम्बन्धित बडी शक्ति के निर्णय को गलत बताकर उसे नाखुश करने की जोखिम कानोडियाजी ने ही उठाई।

सामाजिक सघर्षो को वे कितनी सूझबूझ से पटा दिया करते थे, उसका ज्वलन्त उदाहरण है—ओसवाल बिरादरी मे श्रीसघ-बिलायती का झगडा पराकाष्ठा पर था। कोठारी व सुराणा उसके मुख्य बिन्दु थे। एक बार होली के दिनो मे एक पक्ष 'चग मण्डली' एक प्रमुख कोठी पर चढ कर दूसरे पक्ष के प्रति मजाकिया व घटिया स्तर के आक्षेपात्मक गीत गाने लगी। फिर क्या था। दूसरे पक्ष से लोग भी 'चंग' ले लेकर पास वाली कोठी पर मच गये। आक्षेपात्मक व भद्दे गीतो का समा बध गया। अपने-अपने पक्ष की भीड जमा हो गई। गाने व नाचने वालो मे जोश भरने लगा। मिठाई, पूडी, कचौरी, पकौडी सब कुछ वहा पहुचने लगे। पहले नीचे कौन उतरे, यही हार-जीत की बाजी हो गई। समाज के अनेक बडे बुजुर्ग आने लगे और दोनो को हटाने का प्रयत्न करने लगे, पर, सब व्यर्थ। रात पडने लगी। अन्त मे कानोडियाजी व उनके सहकर्मी आये। दोनो पक्ष एक ही बात कहते—पहले उनको उतारिये। अन्त मे कानोडियाजी ने एक समान हल दोनो को मनवा ही दिया। उन्होंने कहा—दोनो पक्षो का साथ-साथ उतरना होगा। दोनो कोठियो पर रस्सा ले-लेकर मध्यस्थ लोग पहुच गये। दोनो उन्मत्त मण्डलियो को अपनी कोठी से नीचे उतारा। झगडा सिमट गया। न कोई ऊचा न कोई नीचा। ऐसे थे सूझबूझ के धनी कानोडियाजी।

—:०:—

राजस्थान गोशाला पिंजरापोल संघ के मंत्री

श्री ज्ञानचन्द मोदी

गो-सेवक भागीरथजी

भागीरथजी के साथ मेरे भी कुछ आत्मीय सम्बन्ध थे और वे बने थे गोमाता के माध्यम से। कहना न होगा कि एक हृदयशील गो सेवक हमसे बिछुड़ गया। ६ मार्च, १९७९ की बात है राजस्थान गोशाला पिंजरापोल संघ के वार्षिक अधिवेशन की गोसम्वर्धन गोष्ठी मे वह पधारे थे। पूरे एक दिन का समय दिया था।

इस गोष्ठी मे कानोडिया जी ने अपना आशीर्वाद देते हुए कहा: हिन्दू संस्कृति गो प्रधान संस्कृति है। यह देश कृषि प्रधान संस्कृति का देश है। आज भारत मे कृषि का ह्रास हो रहा है जो अनाज पैदा किया जा रहा है उसमे वह स्वाद आज ढूढने से भी नही मिलता क्योंकि आज जो अनाज पैदा किया जा रहा है वह नकली खाद द्वारा किया जाता है। गोबर की खाद द्वारा पैदा हुए अनाज का स्वाद हमने चखा है इसलिए यह फर्क हम अनुभव करते हैं। आज गोबर की खाद नही मिलती। अतः गायो का पालन एव वर्धन आवश्यक हो गया है। गाय हमारे लिये उपयुक्त पशु है। गाय हमारा धन है। हमारी संस्कृति गोधन शब्द का ही प्रयोग करती आ रही है। वेद मे कहा है कि गाय अवध्य है उसका वध नही होना चाहिये लेकिन दुःख से कहना पडता है कि आज गो सेवको के देश मे, गोपालको एव गो पूजको के देश मे यह सब हो रहा है। यह भारतीय संस्कृति के लिए अमिट लाछन है। अनुपयोगी गोधन के लिये गो सदन खोलने होगे। उनमे गायो का संगोपन करना होगा। गोमाता के हम पर अनत उपकार हैं। हजारो साल से उसकी वंश परम्परा हम पर उपकार किये जा रही है। उसका बदला हमें चुकाना होगा। मतलब उसकी रक्षा होनी चाहिये। गोवध निषेध कानून बनाने के साथ साथ गाय के पालन-पोषण की भी व्यवस्था होनी चाहिये। उसके संतुलित आहार की व्यवस्था मे भी हमे सक्रिय बनना चाहिये। गो विकास एव गो वंश वर्धन मे मेरी रुचि है। मैंने जितनी गोशालाए देखी है उनमे जयपुर की गोशाला अपने ढग की एक अच्छी उदाहरण है।

आज से लगभग ४० वर्ष पहले की बात है भागीरथजी ने कलकत्ते में गो सेवा के लिये एक कमेटी बनाकर सारे राजस्थान की गोशालाओ की सक्रिय सहायता की थी। तब राजस्थान मे अकाल पडा था और उन्होने लाखो की धनराशि भेजकर स्थान-स्थान पर पानी और चारे का प्रबंध किया था। उनकी गो सेवा की यह लगन कभी भुलाई नही जायेगी। उनकी नम्रता भी भुलाई नही जा सकती। एक दिन की बात है कल्याण आरोग्य सदन सीकर मे एक सभा मे रामेश्वरजी टाटिया ने उन्हे कहा 'बाबू, आप तो बद्रीनारायणजी को बहुत मानते हैं।' तो उन्होंने कहा 'मैं तो मुनीम हू सेठ तो बदरीनारायणजी हैं।'

—: ० :—

प्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्री, विद्याभवन उदयपुर से संलग्न
श्री केसरीलाल बोर्दिया

लोक-सेवी संस्थाओं के प्राण

श्रद्धेय भागीरथजी कानोड़िया ने राजस्थान की स्वयंसेवी संस्थाओं की जो सेवा की है, वह भुलाई नही जा सकती। किसी भी प्रगतिशील शैक्षिक संस्था को जब वित्तीय सकट का सामना करना पडता था तब पहले सहायता के लिए उनसे निवेदन किया जाता था और जहां तक मेरी जानकारी है, संस्था की अपील कभी व्यर्थ नही जाती थी। मुझे याद है कि विद्याभवन, उदयपुर की ओर से जब कभी उनसे अनुरोध किया गया उन्होंने हर समय उसे स्वीकार किया।

वित्तीय सहायता के अतिरिक्त राजस्थान की कई सस्थाओ को उनका मार्गदर्शन भी प्राप्त होता रहता था। कुछ विशिष्ट सस्थाए तो उनकी प्रेरणा से स्थापित हुई है। उनकी उदारता का प्रतीक जयपुर का कानोड़िया कॉलेज आज राजस्थान के सर्वोत्तम महाविद्यालयो मे गिना जाता है।

समाज-सुधार के क्षेत्र में भी श्रद्धेय भागीरथजी की देन अत्यन्त महत्वपूर्ण रही है। राजस्थान हरिजन सेवक सघ को कई वर्ष तक उनका मार्गदर्शन प्राप्त होता रहा है। कई विद्यार्थियो और रचनात्मक कार्यकर्ताओ को अपने जीवन-निर्माण और सेवा कार्य मे भागीरथजी से अपार सहायता और समर्थन प्राप्त होता रहा है।

मैं जब भी कलकत्ते जाता तो लेक के किनारे उनके दर्शन हो जाते थे और वे विद्याभवन तथा यहां की अन्य संस्थाओ के बारे मे तथा स्वय मेरे लिये सहानुभूतिपूर्वक पूछताछ करते थे। जो भी उनके सौम्य व्यक्तित्व से सम्पर्क मे आये है वे उन्हें कभी भूल नही सकेंगे।

मैं उन्हे सम्मानपूर्वक श्रद्धांजलि अर्पित करता हू।

—:०:—

विद्या-भवन उदयपुर के भूतपूर्व कार्यालय-सचिव
श्री केशवचन्द्र शर्मा

सम्पदा के मात्र ट्रस्टी

सन् १९४६ मे मैं डॉक्टर श्रीमाली साहब के साथ कलकत्ता गया तब भागीरथजी के प्रथम दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उसके बाद कई बार उनसे मिलता रहा। उनका मार्गदर्शन प्राप्त करता रहा। विद्यालय को जब भी आर्थिक सकट आया— हमलोग श्री कानोडिया साहब के पास अपनी पुकार पहुचा देते, वे अपनी ओर से और जहा से भी सम्भव होता योगदान दिलाते।

एक बार शेखावाटी मे श्री कानोडिया साहब की चोरो से मुठभेड हुई। उनको चोट आई है, यह सूचना पाकर मैं मुकुन्दगढ उनसे मिलने गया तो उन्होने कहा, "अरे, इस छोटी सी बात के लिए तुमने यहा आने का कष्ट किया" लेकिन मुझे मुकुन्दगढ जाने पर जो व्यापक कार्य श्री कानोडिया साहब ने जन-सेवा का हाथ मे ले रखा था, उसकी जानकारी मिली—उस समय ५८ गावो मे बच्चो की शिक्षा का कार्य उन्होने अपने हाथ मे ले रखा था। इसके अलावा मुकुन्दगढ मे उन्होने बालिकाओ का माध्यमिक स्कूल तथा बालको के लिए एक महाविद्यालय चला रखा था। उनके जीवन से हम लोग बहुत कुछ ग्रहण कर सकते है। वे रुपया कमाते थे किन्तु उसका सदुपयोग भी करते थे। उनका रहन-सहन बडा सादा था भावनाए बडी ऊची थी। वे सार्वजनिक क्षेत्र मे कार्य करने वालो से बडी अपेक्षा रखते थे और जो व्यक्ति चरित्र की दृष्टि से ऊंचा लगता सदैव उसकी सहायता करते थे। वे अपने को रुपये का ट्रस्टी मानते थे और उसका अधिक उपयोग अपने पर कभी नही करते थे। राजस्थान मे कोई सार्वजनिक सेवा का क्षेत्र नही है जहा श्री भागीरथजी ने उदारतापूर्वक सहायता न की हो।

पहले तो वे सदैव दूसरो से मदद कराने का भी यत्न करते थे लेकिन बाद मे वे कहने लगे "लोगो की आंख मे अब कार्य नही है इसलिए मेरी ओर से जो कुछ करना है कर देता हू। और लोगो से कहने को मेरा जी नही करता—"

अपने जीवन से उन्होने यह सिद्ध कर दिया है कि व्यक्ति अपनी व्यावसायिक प्रगति के साथ-साथ सार्वजनिक क्षेत्र मे पूर्ण योग दे सकता है। उनका जीवन सदैव आने वाली पीढी का पथ प्रदर्शन करता रहेगा। उन्होने अपने जीवन मे गीता के तीसरे अध्याय के २१ वें श्लोक को चरितार्थ किया है :—

यद्यदा चरति श्रेष्ठ स्तत्त देवेतरो जन.
स यत्प्रमाण कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥२॥

—: o :—

भूतपूर्व संसत्सदस्य, पत्रकार
श्री ओंकारलाल बोहरा

आलोक-स्तंभ

स्वाधीनता संग्राम का माहौल था। देशी रियासतो मे भी जगह्-जगह् प्रजामण्डलो के मच से आजादी की चेतना और उत्तरदायी शासन की माग जोर पकड रही थी। इसी प्रसग मे सन् १९४० के आसपास महात्मा गाधी का सन्देश लेकर जमनालालजी बजाज उदयपुर के महाराणा से मत्रणा करने आये थे। लोकनायक माणिक्यलालजी वर्मा द्वारा इन्ही दिनो मेवाड प्रजामण्डल की स्थापना हुई थी और उनके मार्गदर्शन मे अनेक कार्यकर्ता राष्ट्रीय जनजागरण मे सक्रिय होने लगे थे। इसके पूर्व सन् १९३१-३२ के आसपास बापू से आशीर्वाद प्राप्त कर शिक्षाविद् डा० मोहनसिंहजी मेहता ने आधुनिक शिक्षण के उद्देश्य से विद्याभवन की स्थापना की थी। इसी तरह् जयपुर प्रजामण्डल के सस्थापक प० हीरालालजी शास्त्री द्वारा बनस्थली विद्यापीठ और महामना मालवीयजी से प्रेरित होकर प० जनार्दनराय नागर द्वारा राजस्थान विद्यापीठ आदि अनेक राष्ट्रीय शिक्षण सस्थाओ का विस्तार हुआ। इस तरह् शैक्षणिक एव रचनात्मक कार्यो के द्वारा सामान्य लोगो मे राष्ट्रीय चेतना का तेजी से प्रचार और प्रसार प्रारम्भ हुआ।

राष्ट्र और समाज के बदलते हुए इस वातावरण मे मैं अपने जन्म-स्थान उण्ठाला (अब वल्लभनगर) से हाई स्कूल एव आगे की पढाई करने के लिए १९३९-४० मे उदयपुर पहुच गया था। भागीरथजी कानोडिया व्यवसायी और उद्योगपति परिवार के होते हुए भी बापू के आदर्शो से प्रेरित एव राष्ट्रीय आन्दोलन की धारा से प्रभावित थे और बगाल एव राजस्थान के राष्ट्रीय नवजागरण मे गहरी दिलचस्पी रखते थे। राजस्थान और विशेषकर उदयपुर की रचनात्मक सस्थाओ को प्रारम्भ से ही उनका सक्रिय सहयोग मिलने लगा। तभी से मैं उनके बारे मे सुनता आ रहा था और उनके व्यक्तित्व से प्रभावित होने लगा था। व्यवसायी तथा उद्योगपति से अधिक वे स्वाधीनता सग्राम के सेनानी थे। सन् १९४२ के राष्ट्रीय आन्दोलन मे वे जेल भी गये। उन्ही दिनो बगाल के भीषण अकाल मे उनकी महान सेवाओ से ब्रिटिश सरकार तक प्रभावित हुई और वे देश के विश्वस्त एव उच्च कोटि के नेताओ मे सम्मानित एव लोकप्रिय होते रहे।

परन्तु उनके दर्शन मैं सन् १९४८ मे ही कर पाया। देशी रियासतो के प्रसिद्ध नेता लोकनायक श्री जयनारायण व्यास ने राजस्थान की रियासतो के एकीकरण की आवाज बुलन्द करने के लिए कलकत्ता मे "रियासती लोक सघ" की स्थापना की और "रियासती आवाज" साप्ताहिक पत्र के प्रकाशन की योजना बनी। इसी "रियासती

आवाज" साप्ताहिक के सम्पादन के लिए मुझे सेकसरियाजी का आमन्त्रण मिला। तब से सन् १९४८ से कानोडियाजी के निकटतम सम्पर्क मे रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। अनेक ऐसे प्रसंग और सस्मरण हैं जिनमे उनकी महान उदारता, त्याग और मूक सेवा की स्मृतिया उजागर होने लगती है। उनकी मानवता, निष्पक्षता एव प्रगतिशील दृष्टिकोण का परिचय मिलता है। उन दिनो मारवाडी समाज मे पर्दा-प्रथा, दहेज, अंधविश्वास एव अन्य सामाजिक कुप्रथाओ के विरोध मे बसन्तलालजी मुरारका, विश्वमित्र सचालक मूलचन्दजी अग्रवाल, कर्मठ कार्यकर्ता भवरमलजी सिंघी आदि अनेक समाजसेवको के नेतृत्व मे प्रबल आन्दोलन जारी था। सारे देश पर उसका व्यापक प्रभाव पड रहा था। भागीरथजी समाज सुधार के इन प्रयत्नो मे उदार सहयोग के लिये तथा इनके सक्रिय समर्थक के रूप मे प्रख्यात थे।

ऐसा ही एक प्रसग है जिसमे उनके उदार चरित्र एव विचार-स्वतत्रता के प्रति उनकी निष्ठा का अद्‌भुत उदाहरण मिलता है। नई पीढी के युवको और साथियो ने भाई भवरमलजी को सन् १९५२ के प्रथम आम चुनाव मे कलकत्ता के बडाबाजार क्षेत्र से प्रगतिशील विचारक के रूप मे लोकसभा के लिए उम्मीदवार बनाया, जहा काग्रेस के अधिकृत उम्मीदवार प्रसिद्ध सोलिसीटर समाजसेवी प्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका थे। सिघीजी कानोडियाजी के औद्यौगिक प्रतिष्ठान मे वरिष्ठ पद पर काम करते थे। हिम्मतसिंहकाजो, कानोडियाजी के सहकर्मी एव जीवन-साथियो मे गिने जाते थे। बिड़ला परिवार का भी उनपर वरदहस्त था। तब भी चुनाव के सम्पूर्ण अभियान मे किसी तरह का मनोमालिन्य उनके मन मे नही आया। वे हिम्मतसिंहकाजी के साथ थे लेकिन सिंघीजी और हम सब साथियो को निर्भय होकर चुनाव अभियान चलाने मे कोई दिक्कत नही आयी। विचार-स्वतन्त्रता के सम्मान का ऐसा उदार उदाहरण अन्यत्र कम ही मिलेगा।

इसी तरह मारवाडी बालिका विद्यालय, शिक्षायतन, भारतीय भाषा परिषद आदि अनेक शैक्षणिक और राष्ट्रीय सस्थाओ मे कानोडियाजी का योगदान आका नही जा सकता। वे प्रचार-प्रकाशन की महत्वाकाक्षा से हमेशा दूर रहे जबकि वे इन सस्थाओ के प्राण थे।

आजादी के बाद राजस्थान सरकार ने भागीरथजी के सचालन मे पीने के पानी की समस्या का हल करने के लिए जल-बोर्ड का गठन किया। उन्होने प्रचण्ड लू एव गर्मी मे राजस्थान के रेतीले धोरो मे गाव-गाव घूम कर पीने के जल की व्यवस्था के लिए कुओ के निर्माण मे पूरी शक्ति लगा दी। समाजसेवी रामेश्वरजी टाटिया व कर्मठ कार्यकर्ता बदरीनारायणजी सोढाणी इस काम मे उनके सक्रिय सहयोगी थे। इसी दौरान अचानक जीप एक्सीडेन्ट के कारण भागीरथजी को प्राय ६ माह तक बिस्तर पर रहना पडा। भगवान की दया एव पुण्यो के प्रताप से ही बच पाये। राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसादजी भी तब अपने पुराने सहयोगी का कुशलक्षेम पूछने आये थे।

बाबू भागीरथजी अत्यन्त सवेदनशील थे। दूसरो की व्यथा-पीडा सुन-समझ कर भावविह्वल हो जाते थे। उनकी आन्तरिक मानवता मुखर हो उठती थी। मानव स्वभाव के गहरे पारखी भागीरथजी का द्वार सामान्य से सामान्य जन के लिए

खुला रहता था। गम्भीर प्रकृति एव चिन्तनशील होते हुए भी विनोद और हास्य भी उनके स्वभाव मे कम नही था। बडे से बडे उद्योगपति और उच्चतम राजनेता से लेकर सामान्य व्यापारी और कार्यकर्ता से वे समान स्तर पर सहज भाव से मिलते थे। देश की बढती हुई जनसख्या के प्रति न केवल चिन्तातुर थे बल्कि उसके समाधान के लिए परिवार नियोजन के अभियान मे सक्रिय सहयोगी बन गये थे।

साहित्यकारो विद्वानो कलाकारो एव सास्कृतिक पुरुषो के प्रति उनकी श्रद्धा और सम्मान किससे छिपा है। हरिभाऊ उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त, रायकृष्ण दास, महादेवी वर्मा आदि उनके घनिष्ठ मित्रो मे रहे। यो वे स्वय भी साहित्य प्रेमी थे। राजस्थानी भाषा, लोकगीत, लोककथा एव लोक सस्कृति के मर्मज्ञ एव सिद्धहस्त लेखक थे। भाषा पर उनका अपना अधिकार था।

हिन्दी जगत का शायद ही कोई मूर्धन्य विद्वान और साहित्यकार हो जिसे उनके स्नेह और आतिथ्य का अवसर न मिला हो। अपने औद्योगिक प्रतिष्ठान के कार्यो मे व्यस्त रहते हुए भी सार्वजनिक सेवा कार्यो से सम्बन्धित पत्रो का उत्तर वे अपनी हस्तलेखनी से प्राय हिन्दी मे ही दिया करते थे, चाहे पत्र सामान्य कार्यकर्ता का ही हो। वे हरदिल अजीज थे। समाज के सभी वर्गो का उनके प्रति आदर और श्रद्धाभाव था। अपनी निष्पक्ष दृष्टि एव न्यायप्रियता के लिए उन्हे सर्वत्र ख्याति मिली। जिससे भी मिलते उसके दुख-दर्द, परिवार, क्रियाकलाप एव गतिविधियो का परिचय प्राप्त कर निकटता एव आत्मीयता का सम्बन्ध जोड लेते। फिर मिलने वाला व्यक्ति सदा के लिए समर्पित हो जाय, इसमे आश्चर्य ही क्या ?

राजस्थान मे विशेषकर मेवाड की विद्याभवन, महिला मडल, लोक कला मडल, विद्यापीठ आदि सभी सस्थाओ से उनका ऐसा पारिवारिक नाता था कि वे सहज रूप से सभी के सरक्षक के रूप मे प्रतिष्ठित थे। रचनात्मक सस्थाओ को वे न केवल स्वय मुक्तहस्त से सहयोग देते थे बल्कि अग्रणी होकर अन्य न्यासो (ट्रस्टो) एव धनी-मानी उदार पुरुषो को भी देने को प्रेरित करते थे। उनका नाम ही एक बडा सम्बल था, सहारा था। उनके अवसान से कई सस्था-सचालक एव अनेको कार्यकर्ता अनाथ सा अनुभव करने लगे हैं।

स्व० कानोडियाजी उन क्षेत्रो मे भी विशेष सहयोग प्रदान करते थे जिनका कोई धनी-धोरी या जहा का कोई बडा उद्योगपति नही था। स्व० नन्दलालजी भुवालका की स्मृति मे राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद उदयपुर के निकट टी०बी० सेनिटोरियम का उद्घाटन करने आये थे तब कलकत्ता और बम्बई के कई प्रवासी उद्योगपतियो के साथ शिलान्यास समारोह मे भाग लेने के लिए बाबू कानोडियाजी पधारे थे। मैं उनके साथ था। प्राय. उदयपुर की सभी सस्थाओ तथा कार्यकर्ताओ से आत्मीयतापूर्वक मिले और उन्हे प्रोत्साहन दिया। इसी तरह हाल ही मे भूतपूर्व राष्ट्रपति गिरि उदयपुर के सरदारो की सस्था "भोपाल नोबल्स कालेज" की हीरक जयन्ती के समारोह मे पधारे थे तब आपने सस्था के निमत्रण पर पधार कर मेवाड के स्वतत्रता सग्राम के सेनानियो का सम्मानपूर्वक स्वागत किया था।

उदयपुर क्षेत्र उन्ही दिनो अकाल की चपेट मे था। स्थानीय जिलाधीश से बात कर वे आसपास के क्षेत्र मे अकाल की स्थिति का जायजा लेना चाहते थे। मुझ

भी साथ ले गये थे। झोपड़ियो मे घुसकर जिस तरह उन्होने आदिवासियो की स्थिति और उनके दुख दर्द को नजदीक से देखा और राहत-कार्य चालू कराये, वह वे ही कर सकते थे। उनके ऐसे राष्ट्रसेवक अब कहा है ?

वे देश की नैतिक गिरावट के कारण मन ही मन दुखी थे। उनकी दृष्टि निरतर रचनात्मक रही। वर्तमान राजनीतिक वातावरण से वे उदासीन थे। चरित्र निर्माण एव विकास के कार्यों मे उनकी गहरी दिलचस्पी थी।

राजस्थानी समाज के तो वे गौरव-स्तम्भ थे ही। मैं प्रायः हर सप्ताह उनसे उनके कार्यालय मे भेट करके विचार-विनिमय करने का सौभाग्य प्राप्त करता था जहा प्राय. स्वतत्रता सग्राम के कार्यकर्ता अपने दुख दर्द की समस्याए लेकर उन्हे घेरे रहते थे।

इधर अन्तिम वर्षों मे सीकर के आरोग्य सेवा सदन और कलकत्ता की भारतीय भाषा परिषद भवन की योजना के क्रियान्वयन मे ही वे अधिक सक्रिय रहे। अपने उद्योग-व्यवसाय से एक तरह से अलग वानप्रस्थ का ही जीवन जी रहे थे।

वे पुरानी पीढी के उन देशभक्तो मे थे जिनकी सेवाएं त्याग और बलिदान की भावना सहज रूप से स्वतत्रता सग्राम के सेनानी के नाते राष्ट्र के लिए समर्पित थी। महात्मा गाधी, जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल, सुभाषचन्द्र बोस, राजर्षि टडन, जयप्रकाशनारायण, गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर जैसे कई राष्ट्रीय नेताओ के सम्पर्क मे वे आये। उद्योगपति और व्यवसायी होते हुए भी श्री कानोडियाजी ने अपनी देश-सेवा और त्याग को भुनाने का कभी खयाल तक नही किया। उन्हे राज्य सभा का सदस्य अथवा राष्ट्रीय अलकार से अलकृत करने की बात कभी उठती तो वे तुरन्त अपने को बचा लेते थे। जीवन भर यश-लिप्सा और प्रचार-प्रकाशन से वे बिल्कुल दूर रहे। अन्त तक भी अपना अभिनन्दन दृढतापूर्वक नकारते रहे। उनके मन मे अपार करुणा थी। क्या हरिजन और क्या मुसलमान, सभी वर्गों एव दरिद्र-नारायण के प्रति उनकी सेवाए मुक्तभाव से प्रस्तुत रही। वे वर्षों तक राजस्थान हरिजन सेवा सघ के अध्यक्ष भी रहे। पूर्वांचल मे राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार के लिए वर्षों तक कार्य करते रहे। वैश्य कुल मे जन्म लेकर भी वे सचमुच ज्ञान और तप से ओतप्रोत साधुपुरुष थे। अहकार एव बडप्पन की भावना से कोसो दूर सहज सरल सबके लिए सुलभ वे सादगी एव सरलता की प्रतिमूर्ति थे। ऐसे ही तपोभूत पुरुषो को धारण कर धरा धन्य होती रही है।

उनसे पुत्रवत् स्नेह आशीर्वाद एव मार्गदर्शन प्रारम्भ से ही मुझे मिलता रहा और उनकी लम्बी बीमारी के बाद अन्तिम यात्रा मे भी शामिल हो सका। ऐसे "महाजन" समाज और राष्ट्र के लिए आलोक-स्तम्भ की तरह सदा प्रेरणापुज बने रहेगे। उनको मेरे शत् शत् प्रणाम।

—: o :—

दैनिक विश्वमित्र के संचालक-सम्पादक

श्री कृष्णचन्द्र अग्रवाल

सेवा-समर्पित व्यक्तित्व

आवला नवमी के पवित्र दिन २९ अक्तूबर, १९७९ को सायंकाल सुप्रसिद्ध समाजसेवी श्री भागीरथजी कानोड़िया का उनके कलकत्ता निवास-स्थान पर पचासी वर्ष की आयु मे स्वर्गवास हो गया। वह कुछ समय से अस्वस्थ थे। दुबला-पतला मुट्ठीभर हड्डियो का शरीर पिछले साठ वर्षो से जिस प्रकार कलकत्ता और राजस्थान के सास्कृतिक, राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा शैक्षणिक क्षेत्र से अन्तरग रूप से जुडा रहा कर्म करता रहा, नेतृत्व देता रहा और सवेरे से रात्रि-पर्यन्त जन-जन की समस्याओ को लेकर चिन्तन करता रहा, उनको समझता रहा, उसकी बड़ी लम्बी कहानी है; किन्तु हमारे बार-बार प्रयत्न करने पर भी आजन्म प्रचार-प्रसार से सदैव दूर रहने वाले भागीरथजी को अपनी कहानी लिखना मजूर नही हुआ।

जब मैंने होश सभाला, स्वतन्त्रता-सग्राम के महान अवतार महात्मा गांधी को जहा जब भी जिस आन्दोलन को छेड़ते देखा, उनके सैनिको की अग्रिम पक्ति मे श्री सीताराम सेकसरिया और उनके साथ अटूट रूप से सबद्ध श्री भागीरथ कानोड़िया, बसतलाल मुरारका और मेरे पिताजी (स्व० मूलचन्दजी अग्रवाल) को पाया। चारो व्यक्तियो की टोली ने कलकत्ता मे आन्दोलन के क्षेत्र मे समस्त देश के हिन्दी-भाषी समाज को नेतृत्व प्रदान किया। गाधीजी ने हरिजन आन्दोलन छेड़ा तो भागीरथजी बापू के साथ गली-गली, गाव-गाव चदे की झोली लटकाए घूमते फिरे। श्री जमनालाल बजाज ने राजस्थान मे रजवाडो के विरुद्ध आन्दोलन शुरू किया और राजस्थान का सीकर जिला इस आन्दोलन का हेड क्वार्टर बना, तब से भागीरथजी इस जिले के साथ अभिन्न रूप से सबधित हो गए और जीवन की अतिम सास तक उनका सीकर के प्रति अटूट अनुराग बना रहा। इस नेह की याद मे छोड गए हैं वे प्रसिद्ध टी० बी० सैनिटोरियम। राजस्थान मे पडित हीरालाल शास्त्री से लेकर ऐसा कौन-सा कार्यकर्ता है, जो भागीरथजी के सहयोग से उपकृत नही हुआ। राजस्थान मे आज अनेक सस्थाए उनके सहयोग की कहानी कहती हैं। यद्यपि भागीरथजी मुकुन्दगढ के थे, किन्तु समस्त राजस्थान और उसके कार्यकर्ता उनके कुटुम्बी थे। मुझे वह दिन याद आता है जब राजस्थान पर आजकल की तरह ही भयकर दैवी विपत्ति आई और पीने का पानी उपलब्ध नही था। तत्कालीन मुख्य मत्री श्री मोहनलाल सुखाड़िया ने भागीरथजी से उस बृहत् कार्य को संभालने के लिए कहा और गांव-गाव मे घूम-घूम कर भागीरथजी ने राजस्थान जलबोर्ड के अतर्गत व्यवस्था करवाई।

भागीरथजी केवल ढोल पीटने वाले समाज-सुधारक नही थे। उन्हें सदैव दिखावे से परहेज था। कलकत्ता मे जब हिन्दी-भाषी और राजस्थानी समाज की

बालिकाओ की शिक्षा का महत्व समझा गया तो मारवाडी बालिका विद्यालय से लेकर शिक्षायतन कालेज तक उनके कदम बढते गए और आज नगर मे हजारो बालिकाए शिक्षा का प्रकाश पा रही हैं। बापू ने खादी आन्दोलन छेडा तो शुद्ध खादी भडार की स्थापना हुई। बडाबाजार मे विदेशी वस्त्रो की स्मरणीय होली जली। बापू ने कहा, भारत की राष्ट्र-भाषा हिन्दी होनी चाहिए तो बगाल, उडीसा, असम और मद्रास मे राष्ट्र-भाषा प्रचार का अद्भुत आन्दोलन हुआ और प्रतिवर्ष हजारो गैरहिन्दी-भाषी स्नातक बने।

देश के सुप्रसिद्ध देशभक्त परोपकारी बिडला-परिवार के साथ प्रारम्भ से भागीरथजी का सम्बन्ध सोने मे सुहागा बना और उनके आह्वान पर बिडला-बन्धुओ ने सदैव मुक्तहस्त होकर सार्वजनिक कार्यों के लिए दान देकर उनका उत्साह बढाया। जीवन के अन्तिम क्षणो मे उनका पुन हिन्दी और भारतीय भाषाओ की समृद्धि और विकास की तरफ ध्यान गया और उन्होने 'भारतीय भाषा परिषद' की स्थापना की।

ईश्वर की कृपा से आज कानोडिया-परिवार देश के अग्रणी उद्योगपति परिवारो मे से है। भागीरथजी की आत्मा को अन्तिम क्षणो मे सन्तोष था कि उनके उठाये गए कार्यों को उनके परिवार के अन्य सभी सदस्य उसी भावना के साथ पूरा करने मे सदैव सहयोगी रहते हैं।

—: ० :—

भक्ति साहित्य व सगीत प्रेमी

श्री बलवन्त मिश्र

मेरे शुभचिन्तक

स्व० भागीरथजी कानोडिया के प्रथम दर्शन मुझे सन् १९३१ मे कलकत्ता में हुए थे। उसी समय से वह मेरे शुभचिन्तक रहे। सन् १९३८ से ४१ तक के दिनो मे महामना मालवीय कलकत्ते मे ठहरे थे। वह काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के विश्वनाथ मन्दिर के लिए धन सचय कर रहे थे। एक दिन मैं सितार लेकर मालवीयजी के पास गया और उन्हे कुछ भजन सुनाये। फिर तो उन्होने मुझे अपने साथ ठहरा लिया। रात अपने रसोइये से कहकर मेरे भोजन की व्यवस्था भी करवा दी।

एक दिन रात को मालवीयजी बोले, "मिश्रजी, मीरा का पद सुनाओ—'नींद तोहि वेचूगी, जो कोई ग्राहक होय।" मुझे यह पद आता नही था। मैंने कहा, "महाराज, यह पद मुझे याद नही है।" कहने को कह तो दिया, पर मुझे मन-ही-मन बडा बुरा लगा। तबसे मैंने मीरा के बहुत से पद कठस्थ किये।

सयोग से मालवीयजी के दोनो सचिव बीमार पड गये और बनारस लौट गये। मालवीयजी को ऐसा आभास हुआ कि मैं अग्रेजी जानता हू। इसलिए एक दिन मुझसे बोले, "चिट्ठी लिखो।" मैंने कागज-पेंसिल ले ली और लिखने को तैयार हो गया। वह अग्रेजी मे बोलते रहे और मैं देवनागरी लिपि मे लिखता रहा। फिर एक बुड्ढे टाइपिस्ट को बुलाकर मैंने चौदह पत्र अग्रेजी मे टाइप कराये। मालवीयजी ने उन पर हस्ताक्षर कर दिये। मैंने उन्हे डाक मे डाल दिया।

एक दिन श्री भागीरथजी कानोडिया मालवीयजी से मिलने आये और कुछ देर तक मालवीयजी का अग्रेजी मे पत्र बोलना और मेरा देवनागरी मे लिखना देखते रहे, पर कुछ कहा नही। मिलकर वह नीचे आये और बैठ गये। तभी मैं किसी काम से नीचे आया। उन्होने मुझसे बात की। मैंने उन्हे बता दिया कि मैं कैसे मालवीयजी के पास आया और अब क्या कर रहा हू। सुनकर बडे प्रसन्न हुए। बोले, "पडितजी के पास रहोगे?" मैंने कहा, "रहना तो चाहता हू, पर इनसे पैसे तो लूगा नही। फिर बच्चो की पढाई का खर्च कैसे चलेगा?" भागीरथजी ने पूछा, "कितना खर्च है?" मैंने कहा, "डेढ सौ रुपया मासिक।" बोले, "आप चिन्ता न करें। पडितजी के पास रहें। रुपये की व्यवस्था मैं कर दूगा।"

इस प्रकार दो वर्ष तक वह डेढ सौ रुपये महीना बराबर भेजते रहे। मैं दिन-रात मालवीयजी के साथ रहा। उनकी दवा लाता, भजन सुनाता, दूसरे काम करता। जब मालवीयजी को भागीरथजी की इस उदारता की बात मालूम हुई तो वह बहुत प्रसन्न हुए। बोले, "मैं तुमको अग्रेजी पढाऊगा।" और वह मुझे रोज 'लीडर'

के द्वारा अग्रेजी पढाने लगे। श्री भागीरथजी के कारण मैं मालवीयजी के साथ रह सका। मेरा भाग्य चमका। वह जहा भी जाते, मुझे साथ ले जाते। महात्मागाधी, प० जवाहरलाल नेहरू आदि नेताओ के दर्शन हुए।

भागीरथजी से जो सम्बन्ध जुडा, वह फिर कभी टूटा नही। व्याह-शादी, सुख-दुःख सब मे भागीरथजी ने मेरी सहायता की। बडे उदार और सदाशयी व्यक्ति थे। अपने हाथ से मुझे पत्र लिखते थे। उनकी याद करके मेरा हृदय उमड आता है। मेरी अवस्था अब ७९ वर्ष की हो गई है। कही भी आने-जाने मे असमर्थ हू। पीछे मुडकर देखता हू तो भागीरथजी जैसा परदुःखकातर व्यक्ति मेरे देखने मे नही आता। जहा भी उन्होने अभाव देखा, तत्काल मुक्तहस्त और मुक्तहृदय से सहायता की।

ऐसे व्यक्तियो की भौतिक काया भले ही चली जाय, लेकिन उनका यश.शरीर अमर रहता है।

—: o :—

व्यवसायी, सामाजिक कार्यकर्ता

श्री शिवभगवान गोयनका

सर्वजन हिताय

श्रद्धेय भागीरथजी कानोडिया मानव गुणो से परिपूर्ण थे। वे साधारण-मानव से परे थे, उनमे मानवता कूट-कूट कर भरी हुई थी। वे सच्चे अर्थ मे मानव थे, परदुखकातर थे, सहृदय थे, परमार्थी थे।

उनके जीवन का चरम लक्ष्य था—दीन-दुखियो की सेवा करना, उनको सुख पहुंचाना एव उनके जीवन मे आशा का सचार करना। पश्चिम-बगाल में एव विशेषकर राजस्थान मे उनकी जनसेवा चिरस्मरणीय रहेगी। शारीरिक दुख-कष्टो की अवहेलना करके वृद्धावस्था मे भी वे राजस्थान मे जाकर सेवाकार्य मे लग जाते थे। सेवा उनका परम धर्म था। ऐसे समय आए, जब उनका स्वास्थ्य ठीक नही था, फिर भी राजस्थान के वीरान एव बीहड स्थानो का भ्रमण करते हुए सेवा करते रहते थे। इन सबमे एक ही अन्तर्निहित उद्देश्य था—दीन, दुखी, रोगी एव पीडित लोगो की अधिक से अधिक सेवा करना।

भागीरथजी सरल, सीधे किन्तु कार्यपटु एव समझदार व्यक्ति थे। उनका जीवन था सादगीपूर्ण, वेश-भूषा थी अत्यन्त साधारण और हृदय अत्यन्त कोमल एव स्वभाव मृदुल था। वे दिखावे से बहुत दूर रहते थे। प्रेम और मित्रता को वे निभाना खूब जानते थे। साहस एव धैर्य के साथ निजी दुख एव कष्टो का उन्होने सामना किया।

समाज-सेवा मे वे अग्रणी थे। जिस समय समाज अनेकानेक रूढियो एव कुरीतियो से घिरा हुआ था, उस समय वे अपने कतिपय मित्रो के साथ उनको दूर करने मे अत्यन्त जोश एव तीव्रता के साथ लग गए। वे समाज की बुराइयो को मिटाने मे सक्रिय रहे। समाज-सेवा मे उनकी करनी एव कथनी मे अन्तर नही था। वे नियमो के कठोर थे। अपने घर में भी नियमो का भलीप्रकार पालन करते थे। यह सब मैंने उनको अपने घर मे अपनी कन्या के विवाह मे भी पालन करते हुए देखा। अन्य लोगो की तरह उनको धन का लोभ घेरे हुए नही था। वे सत्कार्य मे अपने से दान देते भी थे, एव दूसरो से भी दिलवा देते थे। मान एव झूठी मर्यादा से वे आक्रान्त नही थे। उनका कार्य-कलाप, उनका पुरुषार्थ एव उनकी उपलब्धिया कभी भुलाई नही जा सकती। उन्होने सरकारी एव अन्य ऊची उपाधियो से अपने को दूर रखा, जबकि उनके लिए वह सब सहज ही उपलब्ध थी।

वे दूसरो के लिए जिये। उनका जीवन भावी पीढी को प्रेरणा देता रहेगा। उनका जीवन अन्त तक सर्व सुखाय एव सर्व हिताय रहा।

— o —

व्यवसायी, सामाजिक कार्यकर्ता
श्री देवीप्रसाद मस्करा

एक मानवीय व्यक्तित्व

मनुष्य जब समाजहित के कार्यों के प्रति अपने को समर्पित कर देता है तब उसे हम समाज-सेवक के पद से अभिहित करते हैं। ऐसे लोगो मे देवत्व का विकास उत्तरोत्तर होता जाता है। ये लोग जीवन पथ मे आने वाली सुख-दु खमूलक परिस्थितियो के बीच से अपने पथ का संधान करते हुए अग्रगामी रहते हैं। वे साधन की चिन्ता से परे रहते हैं। आत्मविश्वास उनका सम्बल होता है, विवेक, बुद्धि तथा सिद्धान्त-निष्ठा और दूरदर्शिता उनके मार्ग निर्देशक। आधुनिक मानदण्डो के अनुसार उनकी विवेक-बुद्धि और उनके कर्म-चातुर्य को मापने वालो को निराश होना पडता है। यहा सीमाए टूट जाती हैं, उनका अन्तर्जगत् ज्ञान और भाव ज्योति से आलोकित हो उठता है। प्रत्येक प्राणी का साधारण दु ख भी उनकी करुणा के प्रवाह को वेगवान बना देता है। सामाजिक सम्बन्धो को अपने इसी प्रकार के रागात्मक प्रभाव से विस्तार प्रदान करते हुए, ऐसे ही लोग महामानव के रूप मे प्रतिष्ठित होते हैं। उनकी चेतना विमल हो उठती है, उनका मानस सात्विक भावो के लिये, आधार भूमि बन जाता है। भागीरथजी कानोड़िया ऐसे ही विशिष्ट पुरुषो मे से एक थे।

वैसे तो कानोड़िया परिवार समाज मे एक प्रतिष्ठित परिवारो मे गिना जाता है परन्तु भागीरथजी ऐसे नररत्न थे जो कि परिवार को आलोकित करके चले गये। २९ अक्तूबर १९७९ को जब मैंने उनकी मृत्यु का दु.खद सम्वाद सुना तो मेरे मुँह से सहसा निकल पड़ा—"ऐ अजल तुझसे बड़ी नादानी हुई, फूल वह तोडा जिसमे गुलशन मे वीरानी हुई"। एक सफल उद्योगपति के साथ-साथ वे निष्काम कर्मी और समाज-सेवक थे। शिक्षा, साहित्य, सस्कृति एव राजनीति के क्षेत्र मे उनका अनुदान प्रशंसनीय एव अनुकरणीय रहा है। जन-सेवक के रूप में उन्होने जो ख्याति अर्जित की वह तो अक्षुण्ण है ही, उनका तेजस्वी व्यक्तित्व और क्रान्तिकारी स्वरूप कभी विस्मृत नही किया जा सकता।

उनके जीवन की सबसे बड़ी सार्थकता इस बात मे है कि आज समाज को उनका अभाव खटक रहा है। ऐसे लोगो का कभी नाश तो होता ही नही। भगवान् श्री कृष्ण के शब्दो मे "शुचीनाम् श्रीमतां गेहे योग भ्रष्टोऽभिजायते।" जो शुभ कर्म करता है उसका पतन कभी किसी प्रकार भी नही होता।

—:०:—

बंगाल रिलीफ कमेटी में भागीरथजी के निकटतम सहयोगी
श्री कृष्णचन्द्र महापात्र

उन जैसा नहीं देखा

स्वामी विवेकानन्द ने लिखा है, "मनुष्य मे हृदय ही है जो सदैव प्रेम उत्प्रेरित करता है। बुद्धि जो उपकरण दे सकती है उससे बड़े प्रेरणा के उपकरण का अनुसधान हृदय ही करता है।"

भागीरथजी एक प्रेमल व्यक्ति थे। पीड़ित व्यक्ति के लिए उनका विशाल हृदय प्रेम से लबालब रहता था। इस प्रेम के वशीभूत होकर उन्होंने पीड़ित जनो की चुपचाप जो सेवा की, वह उन सब के लिए प्रेरणा की वस्तु है जो सचमुच मे मानव-सेवा करना चाहते हैं। इस तरह की निष्काम मानव-सेवा रामकृष्ण मिशन, भारत सेवाश्रम सघ और ईसाई मिशनो के साधुओं और कार्यकर्ताओ का आदर्श है। लेकिन भागीरथजी गृहस्थ थे, व्यापारी और स्वतंत्रता संग्राम के योद्धा थे, गेरुआ वस्त्रधारी साधु नही। इसके बावजूद वह ऐसे पीड़ित और दलित जनो के, जिन्हें तत्काल सहायता पहुचाने की आवश्यकता होती, सच्चे सेवक थे। इसीलिए हम उन्हें हमेशा विपत्ति मे फसे लोगो की सहायता के लिए दौड़े-दौड़े जाते हुए देखते थे।

सार्वजनिक काम करने वाले, खासकर आजकल राजनीति करने वाले लोग, प्रचार के शिकार हो रहे हैं—ये लोग अपने कार्य को अतिरजित रूप मे रखते हैं या उसके बारे मे झूठे दावे करते हैं। ऐसे लोग अपने अहम् और अपनी व्यक्तिगत महत्वाकाक्षाओं को त्याग नही सकते। आज की संस्थाए भी इस रोग से नही बची हैं। वे भी अपने कार्य के बारे में अतिरंजित सूचनाएं देती हैं, झूठे दावे करती हैं। भागीरथजी मे इस तरह के अहम् और प्रचार की ललक का सर्वथा अभाव था। वह एक विनम्र सामाजिक कार्यकर्ता थे, जिन्हे वे सहायता देते, उनके प्रति उनके मन मे सम्मान और सहानुभूति होती।

१९४३ के बंगाल के अकाल के वक्त मैं उनके सम्पर्क मे आया और तब से मैं उनके बहुत से सेवा-कार्यों से जुड़ा रहा। १९४२ के आन्दोलन मे मेदिनीपुर जिले के भयानक 'मसूरिया बलात्कार कांड' के विरोध मे डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने बगाल मन्त्रिमंडल से इस्तीफा दे दिया था। बंगाल मे अकाल की स्थिति दिनोदिन उग्र रूप धारण कर रही थी। डा० मुखर्जी अकाल से पीड़ित लोगो के लिए सहायता कार्य शुरू करना चाहते थे। उनकी कोशिशों से १९४३ मे बगाल रिलीफ कमेटी की स्थापना हुई। इस वक्त मैं कलकत्ता मे ताम्रलिप्त जातीय सरकार (मेदिनीपुर की राष्ट्रीय सरकार जो १९४२ के आंदोलन में कायम हुई थी) के सम्पर्क-अधिकारी के रूप मे काम कर रहा था। कलकत्ता के गणमान्य नागरिको से सम्पर्क रखना मेरा काम था। मैं डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी, प्रो० हुमायू कबीर, प्रो० विनयरंजन सरकार, प्रो० प्रियरंजन सेन, प्रो० अनाथनाथ बसु, डा० जे०पी० नियोगी,

श्री धीरेन्द्रनारायण मुखर्जी, श्री सुरेशचन्द्र मजुमदार (आनन्दबाजार पत्रिका) श्री विवेकानन्द मुखर्जी (युगान्तर) श्री हेमेन्द्रप्रसाद घोष (बसुमती) श्री सजनीकांत दास (शनिवारेर चिठी) श्री केदारनाथ चटर्जी (प्रवासी और माडर्न रिव्यू) प्रो० निर्मलकुमार बसु और श्री ज्ञानरजन नियोगी (जिनका जयप्रकाशनारायण और अरुणा आसफ अली से सम्पर्क बना हुआ था) जैसे लोगो को हमारी गुप्त पत्रिका (विप्लवी) नियमित रूप से देता और उन्हे हमारे कार्य-कलाप की जानकारी देता, ये लोग जो सुझाव देते, उन्हे अपनी सरकार तक पहुचाता। पुलिस की निगरानी से बचने के लिए (क्योकि हमारे शकर घोष लेन के मकान पर पुलिस का १३ बार छापा पड़ चुका था) डा० मुखर्जी ने मुझसे कहा कि अकाल पीडितो की सहायता के लिए बगाल रिलीफ कमेटी बनने जा रही है, अच्छा हो, तुम उसके कार्यालय-अधिकारी के रूप मे काम करो ताकि तुम्हारा गुप्त कार्य अच्छी तरह चल सके। इस तरह मेरा भागीरथजी से सम्पर्क हुआ। वह तभी जेल से छूट कर बाहर आये थे। डा० मुखर्जी और मैंने, दोनो ने ही, भागीरथजी को यह बात नहीं बतायी कि मैं मेदिनीपुर की राष्ट्रीय सरकार का काम करता हू। भागीरथजी को उनके साथ मेरे काम करने के कई वर्ष बाद इस बात का पता लगा। शायद पता लगने पर मेरे प्रति उनका प्रेम और भी ज्यादा बढ गया और इसीलिए उन्होने बाद की सभी सहायता कमेटियो मे मुझे साथ रखा और कुछ व्यक्तियो के मामले भी सौपे। १० वर्षों तक मैंने उनकी आफिस मे भी काम किया। इन व्यक्तिगत बातो को लिखे बिना मैं यहा रह नही सका। मैंने अपनी जान मे उनके स्नेह और विश्वास के योग्य बनने की पूरी चेष्टा की। उनका भी मुझ पर स्नेह और विश्वास अतिम समय तक बना रहा। १९७१ मे शिकागो विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के डा० पाल ग्रीनहो १९४३ के बगाल के अकाल के बारे मे अनुसधान करने आये तो भागीरथजी से मिले। भागीरथजी ने उन्हे सीधे मेरे पास भेज दिया कि बगाल रिलीफ कमेटी के बारे मे उन्हे जो भी जानकारी प्राप्त करनी हो, वह मुझसे प्राप्त करे। डा० ग्रीनहो ने मेरे घर पर एक महीने से भी ज्यादा बैठ कर मेरे पास जो कागजात थे, उनका अध्ययन किया। कमेटी में भागीरथजी ने जो काम किया उसकी डा० ग्रीनहो ने मुझसे बडी प्रशसा की।

इस लेख मे मैं उन विभिन्न कमेटियो के काम की चर्चा करूगा जिनमे मैंने भागीरथजी के साथ काम किया। यहा मुझे अपने आदरणीय सहयोगी और मित्र कृष्णदेवजी शर्मा का भी जिक्र करना चाहिए। जिन कमेटियो की आगे चर्चा आयेगी उनमे प्राय. सभी मे हमने साथ काम किया। कृष्णदेवजी काशी विद्यापीठ के स्नातक और बिहार के प्रसिद्ध किसान नेता स्वर्गीय कार्यानन्द शर्मा के छोटे भाई हैं। उन्होने जिस निष्ठा, आदर्शवादिता और देशप्रेम के साथ इन कमेटियो मे काम किया, वह मुझे हमेशा याद रहेगा।

बगाल रिलीफ कमेटी :

१९४२ के भारत-छोडो आदोलन के सिलसिले मे भागीरथजी प्रेसीडेन्सी जेल मे नजरबद थे। जब वह रिहा हुए तो बगाल की स्थिति अत्यन्त चिन्ताजनक थी।

जापानी हमले की आशंका के कारण अनाज के लाये-ले जाने पर प्रतिबन्ध, बंगाल सरकार की गलत और भ्रष्ट खाद्य नीति, अक्टूबर ४२ मे मेदिनीपुर और २४ परगना मे आये भयानक तूफान और भारत छोडो आंदोलन में सभी कांग्रेसी नेताओं की गिरफ्तारी आदि के कारण बंगाल में भयानक अकाल की स्थिति पैदा हो गयी थी। सभी जिलो से भुखमरी के हृदयविदारक समाचार आ रहे थे। सारा सामाजिक जीवन गडबडा रहा था—स्त्रियां शरीर बेचने को वाध्य हो रही थीं, पति अपनी पत्नी को छोड़ कर चला जा रहा था, मा अपने बच्चे को बेच रही थी और लाखों लोग भूख से बिलबिलाते हुए अपने परिवारो को गांवो में असहाय छोड कर शहरों की ओर भाग रहे थे। इस मानव निर्मित अकाल मे ३५ लाख से भी अधिक लोग मरे। ऐसी स्थिति में अकाल-पीडितो की सहायता करने के लिए गैरसरकारी प्रयत्न करने की आवश्यकता तीव्रता से महसूस को जा रही थी। डॉ० श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने भागीरथजी से उनके जेल से छूटते ही सम्पर्क किया और १९ जुलाई, १९४३ को प्रमुख नागरिको की एक बैठक बुलायी। इस बैठक मे अकाल पीड़ितो की सहायता करने के लिए बंगाल रिलीफ कमेटी के नाम से कमेटी बनायी गयी—अध्यक्ष : सर बदरीदास गोयनका, उपाध्यक्ष : डॉ० श्यामाप्रसाद मुखर्जी, मंत्री व कोषाध्यक्ष : श्री भागीरथजी कानोड़िया, सदस्य : डॉ० विधानचन्द्र राय, सर अब्दुल हलीम गजनवी, सर्वश्री नलिनीरंजन सरकार, गगनविहारी लाल मेहता, रगलाल जाजोदिया, रामकुमार भुवालका, मोहनलाल जालान, मोहनलाल शाह, गोविन्दलाल बांगड़, माधवप्रसाद बिड़ला, इन्द्रचन्द भुवालका, मंगतूराम जयपुरिया और रामेश्वरलाल नोपानी। भागीरथजी की आफिस बगाल रिलीफ कमेटी की आफिस बनी।

कमेटी, अकाल पीड़ितो के लिए अनाज और चन्दा इकट्ठा करने के काम में तुरन्त जुट गयी। कमेटी की ओर से देश-विदेश के अखबारों मे चन्दे के लिए अपील निकाली गयी। देश और विदेश, (श्री लंका, दक्षिण अफ्रीकी नगरों जोहानीसबर्ग, नटाल, डरबन और डंडी, सैलिसबरी, जंजीबार, चीन आदि से) से कमेटी की आफिस मे बाढ की तरह चन्दा आने लगा। देश के प्रमुख अखबारो दिल्ली के 'हिन्दुस्तान टाइम्स' जिसके प्रबन्ध सम्पादक गाधीजी के पुत्र देवदास गांधी थे, मद्रास के 'इण्डियन एक्सप्रेस', बनारस के 'आज' और 'ससार' इलाहाबाद के 'लीडर' पटना के 'इण्डियन नेशन', बम्बई की 'जन्मभूमि', हुबली के 'सयुक्त कर्नाटक' और करांची के 'ससार-समाचार'—आदि ने बगाल सहायता कोष खोले। बम्बई, नागपुर, धमतरी, लखनऊ, गोरखपुर, शिमला, भटिण्डा, रावलपिण्डी आदि स्थानो में बंगाल सहायता कमेटिया बनायी गयीं। बगाल रिलीफ कमेटी अकाल पीडितों की सहायता का सबसे बड़ा गैरसरकारी संगठन बनी, उसने ३० लाख रु० चन्दे के बतौर और १२ लाख रु० की कीमत का अनाज तथा अन्य वस्तुए इकट्ठा की। कमेटी ने (१) मुफ्त खाना देने के लिए लंगर खोले। (२) मुफ्त अनाज बाटा (३) अनाज की सस्ती दुकानें खोली (४) मुफ्त दूध बांटने के केन्द्र खोले (५) बच्चो के केन्द्र स्थापित किये (६) छात्रों की पढाई जारी रखने के लिए सहायता दी और स्टूडेन्ट्स होम खोले (७) कपड़ो और कम्बलों का वितरण किया (८) अपने रोग निरोधक विभाग के अन्तर्गत चिकित्सा केन्द्र खोले (९) अन्य सहायता

सस्थाओ को अनुदान दिया आदि। महामारियो, खासकर मलेरिया के निरोध के लिए कमेटी के रोग निरोधक विभाग ने सभी जिलो मे केन्द्र खोले। सरकार से ५००० पौण्ड कुनैन प्राप्त कर कमेटी ने डा० विधानचन्द्र राय से एक नयी गोली 'ए० बी० एन०-६१' बनवाई। इस गोली के द्वारा कुनैन की कम-से-कम मात्रा से ज्यादा-से-ज्यादा फायदा उठाया गया। यह गोली कुनैन की मूल गोली से ज्यादा असरवाली भी साबित हुई।

ऊपर जिन कामो की चर्चा की गयी है उनसे पाठको को पता लग गया होगा कि कमेटी ने कितना बड़ा काम किया। भागीरथजी बहुत रात बीतने तक एक मिनट भी आराम किये बिना लगातार महीनो काम करते रहे। विभिन्न जिला कमेटियो के प्रतिनिधियो से मिलते, पत्रो और तारो का जवाब देते, अकाल-पीड़ित क्षेत्रो की यात्रा करते, सारे राहत कार्यों पर निगरानी रखते। मध्यवित्त परिवार लोक-लज्जा के कारण लगरो मे जाने और मुफ्त सहायता लेने से हिचकते थे। ऐसे परिवारो के लिए भागीरथजी ने सस्ती कीमत पर १० रु० मन चावल सप्लाई करने की योजना चालू की। अकाल का वेग कम होने पर कमेटी ने पुनर्वास के लिए खादी केन्द्र और कुटीर उद्योग खोलने और तालाब खोदने जैसे रचनात्मक कार्य शुरू किये।

इतना बडा काम करते हुए मैंने भागीरथजी को एकदम निकट से देखा। उन्होने बगाल के अकाल मे किस तरह काम किया, यह तो वही लोग जानते हैं जो उसे देख चुके हैं। काम के बोझ से भागीरथजी आकठ डूबे रहते थे पर मैंने उन्हे एक बार भी चिड़चिडाते हुए या नाराज होते नही देखा। सारे समय वह लोगो से घिरे रहते—इस घेराव के बावजूद शात, स्थिर चित्त से टेलीफोन सुनते, चिट्ठिया लिखवाते, कार्यकर्ताओ को चिट पर निर्देश भेजते। उन्हे देखना सचमुच एक अनुभव था। रोज की डाक रोज निपटाते। काम के इतने बोझ मे भी उन्हें छोटी-छोटी बातें याद रहती।

अकाल पीड़ितो के प्रति उनकी सम्वेदना का एक उदाहरण देना चाहूगा। एक बार पूर्व बंगाल की यात्रा के दौरान मैं उनके साथ था। केला खाने के बाद भागीरथजी ने छिलका बाहर फेंका तो भूखे लोग उस छिलके को प्राप्त करने झपटे। यह दृश्य उन्हे असह्य लगा, उनकी आखें भर आयी। इसके बाद वह ३-४ दिन तक अच्छी तरह भोजन न कर सके। क्या हमारे देश मे आज कोई ऐसा नेता है जो पीडित के प्रति इस तरह की सवेदना अनुभव करे? मेरे खयाल मे मदर टेरेसा को छोड़ कर कोई ऐसा नही है। स्वामी विवेकानन्द ने कहा था, 'दूसरो की देह मे अपने को अनुभव करो कि हम सब अकेले हैं।' मुझे लगता है कि स्वामी विवेकानन्द की इस उक्ति को भागीरथजी ने अपने जीवन मे पूरी तरह उतारा था।

बंगाल सेन्ट्रल रिलीफ कमेटी :

नोआखाली मे भयानक दगो के बाद अक्टूबर, १६४६ मे बगाल सेन्ट्रल रिलीफ कमेटी की स्थापना हुई। इसके स्वर्गीय शरतचन्द्र बोस अध्यक्ष, श्री प्रभुदयालहिम्मतसिहका सेक्रेटरी और भागीरथजी कोषाध्यक्ष बनाये गये। कमेटी के अन्य प्रमुख सदस्य थे : डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी, सर्वश्री सुरेन्द्रमोहन घोष, सत्यरजन बक्सी, किरणशकर राय,

करमचन्द थापड, मोहनलाल शाह, रामेश्वरलाल नोपानी, केशवदेव जालान, बी० के० रोहतगी आदि।

कमेटी ने नोआखाली के दगा पीड़ितो की सहायता के लिए ८६४००० रु० और लगभग २ लाख रु० के कीमत के कपडे, कम्बल तथा अन्य वस्तुएं इकट्ठा कीं। कमेटी का पुनर्वास और सहायता कार्य मुख्यतया, दगाग्रस्त इलाको मे स्थापित की गयी स्थानीय कमेटियो के माध्यम से किया जाता था। स्थानीय कमेटियो से तालमेल कायम करने और सहायता वितरण का काम भागीरथजी ही करते थे। स्थानीय कमेटियो मे नोआखाली और त्रिपुरा जिलों की कमेटिया प्रमुख थीं। गाधीजी शाति और हिन्दू-मुस्लिम भाईचारा कायम करने के लिए जनवरी, १९४७ मे नोआखाली पहुचे और उन्होने गाव-गाव की यात्रा की। काजिरखिल गांव से सारे गाधी कैम्प संचालित होते थे। कमेटी का इन कैम्पो के अतिरिक्त हरिजन सेवक सघ, मारवाडी रिलीफ सोसाइटी, इण्डियन मेडिकल एसोसिएशन, अ० भा० महिला सम्मेलन तथा श्रीमती सुचेता कृपलानी द्वारा चलाये जाने वाले कैम्पो से भी सम्बन्ध था। इन सारे सगठनो को कमेटी ने रुपये (६ लाख से भी अधिक) और कपडे, कम्बल, दवाए व मिल्क पाउडर (डेढ लाख रु० से भी ज्यादा कीमत का) आदि सामान दिया। कमेटी ने विस्थापित छात्रो को छात्रवृत्ति और सहायता देने मे लगभग ५०००० रु० खर्च किये। नोआखाली तथा अन्य स्थानो के दगा पीडितो मे विश्वास और साम्प्रदायिक भाईचारा पैदा करने के लिए गाधीजी ने अपने प्राणो की बाजी लगा दी थी; नोआखाली उनके सत्य के प्रयोगो का अन्तिम परीक्षण स्थल था। नोआखाली पहुचने पर गाधीजी ने अपने सब साथियो को अलग-अलग गावो मे भेज दिया और खुद अपने लिए श्रीरामपुर गाव को चुना। इस गाव मे उनके साथ सिर्फ उनके बगला शिक्षक और सेक्रेटरी प्रो० निर्मलकुमार बोस और टाइपिस्ट परशुराम थे। उनके अन्य साथी कनु गाधी, डा० सुशीला नायर, प्यारेलाल, आभागाधी, अमतुससलाम, सुशीला पाई आदि—नोआखाली के गावो मे जाकर काम करने लगे। खादी प्रतिष्ठान के श्री सतीशचन्द्र दासगुप्त काजिरिखिल के गाधी कैम्प से विभिन्न गावो मे काम कर रहे इन लोगों से सम्बन्ध रखते। कमेटी ने गाधीजी के प्रयत्नो और उनके कैम्पो को पूरा सहयोग दिया।

हर स्थान की अपनी-अपनी समस्याए थीं। इन समस्याओ की जानकारी मिलते ही भागीरथजी स्थानीय कमेटी द्वारा अनुरोध किए जाने की प्रतीक्षा किए बिना सीधे मदद भिजवाते। उन्होंने काजिरखिल के गाधी कैम्प के लिए एक जीप की व्यवस्था की ताकि अन्य स्थानो से सम्पर्क रखने मे सहूलियत हो। प्यारेलालजी कोई भी जरूरत होने पर भागीरथजी को लिखते और उन्हे तुरन्त उनकी आवश्यकता का सामान भेजा जाता। एक बार बीबी अमतुलसलाम के अनुरोध पर मैं बहुत जोखिम उठाकर ५ सेर सिन्दूर, २००० शाखा और २५०० नोआ (बगाली महिलाए सौभाग्य सूचक चिह्न के रूप मे शख की जो चूडी पहनती है उसे शाखा और जो लोहे का कडा पहनती हैं उसे नोआ कहा जाता है), गीता की प्रतिया और कुछ जपमालाए लेकर नोआखाली के एक बहुत ही दूरदराज कैम्प (छटखिल हाई स्कूल) मे गया था। इस

कैम्प मे बहुत सारी स्त्रियो को आश्रय दिया गया था। इन महिलाओं के साथ अत्यन्त नृशसतापूर्ण व्यवहार किया गया था—इनका जबरदस्ती धर्मातरण किया गया था; इनके शाखा और नोआ तोड़ दिये गये थे, सिन्दूर पोछ दिया गया था, जबरदस्ती गोमास खिलाया गया था, इनके घर जला दिये गये थे और इनके साथ बलात्कार किया गया था। बीबी अमतुलसलाम ने सिन्दूर और शाखा आदि इन्ही महिलाओ मे बाटने के लिए मगाया था। जब इन महिलाओ को शाखा सिन्दूर आदि दिया जाने लगा तो वे इतनी भयभीत और आतकित थी कि बीबी अमतुलसलाम ने हरिनाम और हरेकृष्ण का उच्चारण शुरू किया। डर के मारे महिलाओ के मुह से पहले हरिनाम और हरेकृष्ण का उच्चारण नही हुआ पर बीबी अमतुलसलाम लगातार उच्चारण करती रही तो धीरे-धीरे इन महिलाओ मे साहस आया और वे सब उच्चारण करने लगी। हरिनाम और हरेकृष्ण कहते उनकी आखो से अविरल आसू बह रहे थे। यह एक ऐसा दृश्य था जिसकी याद मुझे इतने वर्षों बाद भी पूरी तरह है।

तो नोआखाली मे गाधीजी के काम करने का यह तरीका था। सेन्ट्रल रिलीफ कमेटी के मुख्य कार्यकर्ता और गाधीजी के सच्चे अनुयायी के रूप मे भागीरथजी ने सहायता-कार्य को सिर्फ सहायता-कार्य के रूप मे ही नही, गाधीजी के आदर्शों के अनुरूप भी चलाया।

शांति समिति :

१६ अगस्त, १९४६ को मुस्लिम लीग के 'सीधी कार्रवाई दिवस' पर कलकत्ता मे भीषण साम्प्रदायिक दगा हुआ। इसके बाद शहर मे बहुत दिनो तक सामान्य स्थिति नही हो पायी। इस दगे के बाद देश की राजनीति मे बहुत द्रुत परिवर्तन हुए और अन्तत· भारत-विभाजन का आत्मघाती प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया और १५ अगस्त को भारत आजाद हुआ। दगाग्रस्त कलकत्ता मे १५ अगस्त के दिन हिन्दुओ और मुसलमानो के बीच भाईचारा और प्रेम दिखायी पडा लेकिन यह अत्यत क्षणिक साबित हुआ। दो एक दिन बाद ही शहर के विभिन्न हिस्सो मे छिटपुट घटनाए होनी शुरू हो गयी। इस वक्त गाधीजी बेलियाघाटा मेन रोड मे एक मकान मे रह रहे थे। देश के विभाजन के कारण वह अत्यत दुखित थे। देश का स्वतन्त्रता दिवस उन्होने उपवास कर और चरखा कातते हुए ही बिताया। विभाजन के कारण पैदा हुई अपने मन की व्यथा का वह सार्वजनिक इजहार तो नही करते थे, लेकिन कुछ निकट के सहयोगियो के समक्ष उसे व्यक्त किए बिना नहीं रह पाते थे। श्री हसन शहीद सुहरावर्दी, जिनके प्रति हिन्दुओ के मन मे बहुत असतोष था, स्वतन्त्रता दिवस के दिन गाधीजी के साथ ही रहे। यह दिखाकर कि वह साम्प्रदायिक एकता के लिए काम करना चाहते हैं, सुहरावर्दी शायद अपनी बिगडी हुई राजनीतिक छवि सुधारना चाहते थे।

गाधीजी हिन्दुओ और मुसलमानो के बीच एकता कायम करने की कठिनाइयो को समझ रहे थे। वह यह जानते थे कि ऐसा वातावरण बन गया है जिसमे सहायता और पुनर्वास के काम मे भी हिन्दुओ और मुसलमानो के बीच आपसी सहयोग प्राप्त

करना कठिन हो गया था। वह दगाग्रस्त लोगो की सहायता और उनके पुनर्वास के काम को सुचारु रूप से चलाने की व्यवस्था करके ही कलकत्ता छोड़ना चाहते थे। इस समय कलकत्ता के मेयर सुधीरचन्द्र रायचौधरी की अध्यक्षता मे एक केन्द्रीय शांति कमेटी गठित की गयी थी। लेकिन यह कमेटी पुनर्वास का काम नही कर रही थी। गाधीजी चाहते थे कि पुनर्वास के काम के लिए इस कमेटी के तहत एक अलग समिति बनायी जाय। इस तरह ६ सितम्बर को बेलियाघाटा मे गाधीजी ने शहर के प्रमुख नागरिको को लेकर पुनर्वास के काम के लिए एक कमेटी बनायी। उन्होने भागीरथजी को कहा कि मैं कमेटी के बारे मे जो बातें कहू उसे आप (भागीरथजी) लिखते चलें, गाधीजी ने डा० प्रफुल्लचन्द्र घोष और भागीरथजी को इस कमेटी का अध्यक्ष और मत्री-कोषाध्यक्ष बनने को कहा। कमेटी के अन्य सदस्य थे—हुसन शहीद सुहरावर्दी, नलिनीरजन सरकार, के० डी० जालान, एम० एच० इस्पहानी, ए० पी० बेंथल, सुधीरचन्द्र रायचौधरी, एम० एल० शाह, डी० एन० सेन, कासिम ए० मोहम्मद, माधवप्रसाद बिडला, रामकुमार भुवालका, करमचन्द थापड, आर० के० जैदका आदि।

इस कमेटी ने ४६३००० रु० इकट्ठा किये। इस रकम को उसने मुख्य रूप से (१) उजाडी गयी बस्तियो मे रहने वाले हिन्दू और मुसलमानो के घरो की मरम्मत और उनका पुनर्निर्माण करने और (२) एक-एक लाख रु० की लागत से दो आदर्श बस्तियो का निर्माण करने के कार्यो पर खर्च किया। कमेटी ने दिलखुशा स्ट्रीट और नारकेलडागा रोड मे ये दो नयी आदर्श बस्तिया बनायी। कलकत्ता कारपोरेशन ने इन बस्तियो के लिए जमीन मुफ्त दी थी।

इन कार्यों को करने मे भागीरथजी बहुत बार आवेदनकर्ता बस्ती-निवासियों से खुद मिलने जाते और कभी-कभी श्री रामकुमार भुवालका या कमेटी के अन्य सदस्य उनके साथ होते। ऐसी यात्राओ मे मैं हमेशा उनके साथ रहता था। वह बस्तियो मे रहने वाले लोगो की बात बहुत ध्यान और सहानुभूति के साथ सुनते और उनसे मरम्मत और पुनर्निर्माण के बारे मे सलाह मशविरा करते। बस्तियो मे भयकर गदगी रहती लेकिन भागीरथजी का सारा ध्यान लोगो की बात सुनने मे ही रहता।

आदर्श बस्तियो का निर्माण करने की बात के पीछे यह कल्पना थी कि भविष्य मे बस्तियो का निर्माण करते वक्त सरकार, कलकत्ता कारपोरेशन, इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट इनका (आदर्श बस्तियो का) अनुकरण करें। शायद कलकत्ता मे बेहतर किस्म की बस्तिया बनाने की दिशा मे यह पहली शुरूआत थी। कमेटी के सदस्यो के नाम अपने अतिम सर्कुलर (२२ जुलाई, १९५२) मे भागीरथजी ने लिखा कि शायद इन बस्तियो मे हमारे कुछ ऐसे "अभागे भाइयो मे से कुछ को, जो अभी गदी और नारकीय बस्तियो मे रह रहे हैं, आदमियो की तरह रहने लायक स्थान मिले। महात्माजी की प्रेरणा से १९४७ मे यह कमेटी बनी थी। उन्होने इस बात पर बहुत जोर दिया था कि हमारी बनायी गयी बस्तिया भविष्य के निर्माताओ के लिए अनुकरणीय बनें।"

हिन्द सेवा संघ :

कलकत्ता मे अगस्त, १९४६ के दगे के बाद शहर का हिन्दू और मुसलमान इलाको मे विभाजन हो गया था, इसलिए इससे उत्पन्न समस्याओ के हल के लिए ३० मार्च, १९४७ को हिन्द सेवा सघ की स्थापना की गयी। स्थापना का मुख्य उद्देश्य—सियालदह और हवडा के बीच तथा नारकेलडागा, राजाबाजार और पार्क सर्कस आदि उपद्रवग्रस्त स्थानो मे मुफ्त परिवहन व्यवस्था उपलब्ध करना, घिरे हुए लोगो और परिवारो को निकालना तथा उपद्रवग्रस्त इलाके के उन मकानो की रक्षा करना जहा लोग उपद्रव के बावजूद रहने को तैयार थे, घटनाओ के स्थान पर पहुचना, घायल लोगो को अस्पताल पहुचाना और रक्षा कमेटियो के मारफत कानूनी सहायता चाहने वालो को कानूनी सहायता देना—था। संघ ने १३९००० रु० इकट्ठा किया और उसे उपरोक्त कामो मे खर्च किया। उसके पास ७ जीप, ३ वेपन कैरियर्स, २ स्टेशन वैगन, एक एम्बुलेंस और १२५ नेपाली दरबानो का दल था। हरीसन रोड की मोड पर मारवाडी छात्र निवास मे नियुक्त किए गये एक ऐसे दरबान की गुण्डो ने हत्या भी कर दी थी। श्री केशवदेव जालान सघ के अध्यक्ष और श्री रामेश्वरलाल नोपानी मत्री थे लेकिन कोषाध्यक्ष के रूप मे ज्यादातर काम भागीरथजी ने ही किया। सघ की आफिस उनके ही जिम्मे थी।

पश्चिम बंगाल प्रदेश रिलीफ कमेटी :

पश्चिम बगाल मे १९५३ मे भयकर बाढ आयी। बाढ की स्थिति से निपटने के लिए जुलाई, १९५३ मे पश्चिम बगाल प्रदेश रिलीफ कमेटी का गठन किया गया। मुख्यमत्री डा० विधानचन्द्र राय इसके अध्यक्ष और भागीरथजी सेक्रेटरी बनाये गये, अन्य प्रमुख सदस्य थे . सर्वश्री अतुल्य घोष, प्रफुल्लचन्द्र सेन, अजयकुमार मुखर्जी, नरेशनाथ मुखर्जी, शैलकुमार मुखर्जी (विधान सभाध्यक्ष) सीताराम सेकसरिया, बसतलाल मुरारका, आभा माइती, रामकुमार भुवालका, रामेश्वर टाटिया आदि। यह कमेटी मुख्य रूप से चदा इकट्ठा करने के लिए बनायी गयी थी। मत्री के रूप मे भागीरथजी ने इसका काम बहुत ही कुशलता से किया। शुरू मे चदा इकट्ठा न हो पाने पर भागीरथजी ने अपनी आफिस से सहायता कार्य के लिए एडवास रूपये दिये।

गांधी नैशनल मेमोरियल फंड ·

गाधीजी की हत्या के बाद देश मे राष्ट्रीय गाधी निधि की स्थापना हुई। बगाल मे श्री सुरेन्द्रमोहन घोष की अध्यक्षता मे चदा इकट्ठा करने के लिए एक प्रातीय समिति गठित की गयी। श्री असीमकृष्ण दत्त, अमरकृष्ण घोष, देवेन सेन, धीरेन्द्र नाथ मुखर्जी इसके मत्री और भागीरथजी कोषाध्यक्ष बनाये गये। अन्य प्रमुख सदस्य थे, डा० प्रफुल्लचन्द्र घोष, डा० विधानचन्द्र राय, डा० सुरेशचन्द्र बनर्जी, सर्वश्री किरणशकर राय, शरतचन्द्र बोस, हुसन शहीद सुहरावर्दी।

यह चदा इकट्ठा करने वाली कमेटी थी। चदा इकट्ठा कर इसे दिल्ली मे गाधी निधि को भेजना होता था। फंड का काम बहुत मदा चल रहा था।

चंदा इकट्ठा करने की अतिम तारीख जनवरी, १९४९ थी। बगाल कमेटी का लक्ष्य पूरा नही हो रहा था। ऐसे मे भागीरथजी ने दिन रात भाग-दौड कर लक्ष्य पूरा करवाया।

ट्यूनिसिया सहायता समिति :

१९५२ मे ट्यूनिसिया के स्वातन्त्र्य आन्दोलन के लिए मदद प्राप्त करने को श्री ताएब सलीम (अभी सुरक्षा परिषद के अध्यक्ष) और कुमारी मार्गरेट पोप ने भारत की यात्रा की। उनकी यात्रा के फलस्वरूप श्री अतुल्य घोष की अध्यक्षता में ट्यूनिसिया सहायता कमेटी गठित की गयी, भागीरथजी इसके कोषाध्यक्ष बनाये गये। भागीरथजी ने समिति की ओर से बगाल की सहायता के रूप मे १० हजार रु० ट्यूनिसिया की डेस्तेऊर पार्टी के सेक्रेटरी जनरल सलाह् बेन युसुफ को काहिरा भेजे। कमेटी का काम जल्द ही समाप्त हो गया। प्रचार के काम मे दिलचस्पी न होने के कारण इस कमेटी को भागीरथजी ने राजनीतिज्ञो पर छोड दिया।

भागीरथजी लेडी अबला बोस मेमोरियल फंड, रायबहादुर विश्वेश्वरलाल मोतीलाल हलवासिया ट्रस्ट, रखमल चैरिटी ट्रस्ट, जनसेवा समाज कोष आदि ट्रस्टो से जुडे थे। एक बार बातचीत के दौरान उन्होंने मुझे कहा कि वह इन ट्रस्टो का रुपया आदर्श शिक्षा सस्थाए स्थापित करने मे लगाना चाहते हैं। उनके पास विभिन्न प्रकार के लोग विभिन्न प्रकार की सहायता के लिए आते थे। कई बार ऐसे लोगो और उनकी आवश्यकताओ के बारे मे वह मुझे पता लगाने को कहते। अगर जांच के बाद उन्हे लगता कि सहायता देनी चाहिए तो वह अपने पास से मदद देते या दूसरो मे दिलवाते।

भागीरथजी ने अकाल-बाढ आदि के वक्त भारी काम किया। वह कितने ही प्रमुख नेताओ, व्यक्तियो और जरूरतमन्द लोगो की गुप्त सहायता करते थे। वह यह सब चुपचाप बिना प्रकट किए करते रहते। अदृश्य रहकर सहायता करना ही उनकी आदत थी। आज ऐसी विशेषता एकदम दुर्लभ है। वह इतने उदार और परदुख-कातर थे कि व्यापारी आदमी मे रुपये-पैसो के मामले में जो सख्ती रहती है, वह उनमे नही थी। एक व्यापारी और उद्योगपति के रूप मे उनकी सफलता या असफलता का मैं मूल्याकन नही करना चाहता। मेरे मन मे तो पीडित मानवता के साथी के रूप मे उनकी जो छवि अकित है, वह अमिट है। उनका परदुखकातर स्वभाव, उदार और प्रेमल व्यवहार, जो भी उनके सम्पर्क मे आता था उसे अपना बना लेता था। राहत कार्य के बारे मे अपने दृष्टिकोण को उन्होने इडिया फेमिन रिलीफ फंड, जोहानीसबर्ग के मत्री को १८ फरवरी, १९४४ को लिखे अपने पत्र मे बहुत अच्छी तरह रखा था, उन्होने लिखा था "मैं आपको पूरे भरोसे के साथ कहना चाहता हू कि सहायता-कार्य करते हुए हम, लोगों को उनके कष्ट मे मदद देने के सिवाय कोई दूसरी भावना नही रखते।"

ऐसे थे हमारे भागीरथजी! राहत और सामाजिक कार्यो मे उनके साथ काम करने का अवसर पाकर मैं धन्य हुआ हू। उनके साथ १९४३ मे जो सम्बन्ध बना, वह उनकी मृत्यु पर्यन्त बना रहा। मैंने बहुत से नेताओ और सामाजिक कार्यकर्ताओ को देखा है लेकिन उन जैसा परदुखकातर और स्नेही न किसी को पाया, ना ही देखा।

—: ० :—

श्री कल्याण आरोग्य सदन के एक अधिकारी
श्री दामोदर प्रसाद

सेवा ही जीवन

एक दिन उन्हे गहरी अचेत अवस्था मे देखा तो भीतर ही भीतर आशकाओ और दुश्चिन्ताओ के धागे बुरी तरह उलझने लगे। उनका शान्त चेहरा, कापते हुए हाथ और ध्यानस्थ मुद्रा मे वन्द आखे तथा खुले हुए होठ ··· ··· अपनी ही श्वास से धीमे धीमे कह रहे थे, "मृत्यु का भय नही। डरने की कोई वात नही। कल के खर्च व्यवस्था नही, कितना काम फैला रखा है, कितना खर्च वाध लिया है ?—"

उस उदासीपूर्ण वातावरण मे उनकी ये बातें कानो मे गूजी। एकटक होकर मैं उनकी तरफ देखता रहा। वे भी निर्विकार भाव से देखने लगे। हाथ मे घडी वाधने की कोशिश करने लगे। परन्तु शरीर मे शक्ति नही थी। मैंने उनके हाथ मे घडी वाधी। वैसी हालत मे भी उन्हे चिन्ता थी उन गरीवो की जो आर्थिक परेशानीवश शिक्षा नही ले पाते, इलाज नही करा पाते।

उनके परिवार के लोग उन्हे मुकुन्दगढ से थोडी देर बाद ही कार मे दिल्ली ले गये। हम लोग घबडाहट और बेचैनी से घर लौटे। दो दिन बाद सुना, वे काफी स्वस्थ हैं। डाक्टरो की मेहनत और लोगो की शुभकामनाओ से वे स्वस्थ हो गये। उसके बाद करीब ५ वर्ष जीवित रहे और समाज-सेवा करते रहे।

राजस्थान के विकास मे उनकी गहरी रुचि थी। राजस्थान मे उन्होने शिक्षा, चिकित्सा, समाजसेवा, पेय-जल की व्यवस्था, हरिजन सेवा आदि क्षेत्रो मे काफी कार्य किये।

उनका नाम वर्षों से सुनता आ रहा था। सन् १९६७ मे प्रथम बार उनसे मिलना हुआ। गरीबो की चिकित्सा के लिए निर्मित सावली का आरोग्य सदन तथा हर्ष पर्वत की मूर्तिया उन्हें दिखलायी। उनको चलने मे तकलीफ थी फिर भी काफी बीमारो से वे मिले, उनसे बहुत बातें पूछी तथा आवश्यकतानुसार उनकी आर्थिक मदद भी की।

आरोग्य सदन आर्थिक परेशानी से गुजर रहा था। कार्यकर्ताओ मे मनमुटाव था। बदरीनारायणजी सोढाणी सदन के मत्री पद से त्यागपत्र देना चाहते थे। मैं भी दूर भागना चाहता था। ऐसी स्थिति मे भागीरथजी को सदन का अध्यक्ष बनाया गया। उन्होने सदन के सभी अधूरे कार्यों को पूरा करवाया, अस्पताल के कार्यों को काफी बढाया। जब वे ३० दिसम्बर, १९७१ को अध्यक्ष बने, सदन मे १०० रोगियो को रखने की व्यवस्था थी। उन्होने ३८० बीमारो को रखने का प्रबन्ध करवाया। १९७१ मे सदन पर कई प्रकार के कर्ज थे। उन्होने कर्ज चुकाये और काफी विकास करवाकर क्षय चिकित्सालय के साथ साथ आयुर्विज्ञान अनुसन्धान केन्द्र, जनरल अस्पताल, नर्सेज ट्रेनिग सेण्टर, गौशाला, विद्यालय, शिशुगृह, तरण-ताल, नहर, मन्दिर आदि को चालू करवाया। इस तरह के काम केवल सीकर मे ही नही देश के विभिन्न भागो मे उन्होने करवाये परन्तु कही भी अपना नाम लिखवाने की इच्छा जाहिर नही की।

सामाजिक, साहित्यिक, सास्कृतिक, स्वतन्त्रता आन्दोलन, औद्योगिक, जनहित आदि विभिन्न क्षेत्रो मे उनकी काफी बडी देन रही है। ऊच-नीच, छोटे-बडे, गरीब-

अमीर आदि का उनके मन मे कोई भेद नही था। सभी को समान भाव से देखते हुए वे विचार-विमर्श करते रहते थे। एक बार की बात है कुछ कर्मचारियों ने गोशाला, वाटर वर्क्स, खेती आदि का काम बन्द करके हड़ताल कर दी। वे उनसे बात करने के लिये चार बार स्वय आये। उन्होंने कहा कि प्रबन्धको को प्रतिष्ठा का सवाल नहीं बनाना चाहिये। कर्मचारियो को कुछ और सुविधाएं देनी चाहिये। जीत हमेशा मजदूरों की होती है। दीन-दुखी की सेवा और उसे सहयोग करने से आत्मा को शान्ति मिलती है। मन में प्रसन्नता रहती है। कोई भी व्यक्ति उन्हें पत्र लिखता तो वे उसे उत्तर जरूर देते थे। वृद्धावस्था मे भी अधिकतर पत्रो के उत्तर वे अपने हाथ से लिखकर ही देते थे।

एक दिन वे सावली के बाग में घूम रहे थे। कुछ बीमार उनसे मिलने आये। बीमारो से बातें हुई। उनसे व्यक्तिगत रूप से अलग-अलग भी बातें हुई। उनमें से ८ बीमारो की पूर्ण नि.शुल्क चिकित्सा तथा ६ बीमारो को १२ महीनों तक निःशुल्क दवा देने की उन्होंने तुरन्त व्यवस्था की। पास मे बैठे सज्जन बोले, बाबू बहुत खर्च बांध लिया। उन्होने बडी नम्रता से कहा, "क्या इनमे चिकित्सा खर्च वहन करने की शक्ति है? रुपयो के अभाव मे आदमी चिकित्सा नहीं करवा पाये, दवा नहीं ले पाये और लोगो मे क्षय रोग फैलाये यह बडी सोचनीय बात है। इतना बड़ा अस्पताल है। इसमे गरीबो की सेवा होनी ही चाहिये। पता है लालबहादुर शास्त्री ने क्या कहा था? एक गरीब आदमी और एक सफेदपोश आये तो प्राथमिकता गरीब को मिलनी चाहिये, तभी यह अस्पताल सही मायने मे सार्थक होगा। मेरी तो यही इच्छा है कि कोई गरीब यहां से निराश नही लौटे। सदैव उनकी सेवा होती रहे। अभी सदन में २५५ रोगी दवा, भोजन, दूध आदि सुविधाएं मुफ्त प्राप्त कर रहे हैं और ४२३ बीमार आउटडोर से मुफ्त दवा ले रहे हैं। कभी वह दिन भी आये जब किसी को दवा लेने की जरूरत ही नही हो। सभी स्वस्थ रहें। उसके लिये प्रयास होना चाहिये।"

कभी उन्हें क्रोध करते हुए नही देखा। कार्यकर्ताओं को काफी सम्मान देते हुए देखा। सैकड़ों सस्थाओ और हजारों कार्यकर्ताओं को उन्होंने सहयोग दिया। लोग उनके पास सहयोग प्राप्त करने के लिए बिना हिचक के पहुंचते थे। किसी की कोई गलती भी होती तो उस पर बिना क्रोध किये यही कहते सुना कि संभाल रखें। कहीं भूल तो नहीं हुई। गलती करनेवाले को स्नेहपूर्वक बातचीत करते हुए ही स्थिति से अवगत करवा देते थे। उदारता, सहनशीलता, नम्रता, कर्मठता, स्नेह आदि गुणों से वे ओतप्रोत थे।

बहुत बडा ससार था भागीरथजी का। उसमें विभिन्न प्रकार के लोग शामिल थे। विद्वान, गुणी, कलाकार, समाजसेवी, लेखक, कवि, राजनीतिज्ञ और साधारण जन। महात्मा गाधी, मदनमोहन मालवीय, लाला लाजपतराय, मीरा, कबीर, तुलसी आदि का उन पर काफी प्रभाव पडा था।

काफी दिनों तक कानोडियाजी का सान्निध्य मिला। उनके मार्गदर्शन में काम करने का अवसर मिला। उनसे बहुत सीखा और बहुत पाया। २९ अक्टूबर, १९७९ को रात मे अस्पताल से घर पहुंचा ही था कि ट्रंककाल की घंटी बजी। जयपुर से रामकृष्णजी पारीक बोले "कानोडियाजी चल बसे ··· ।" टेलिफोन पर बात नहीं कर पाया। टेलिफोन हाथ से छूट गया । जिसने भी निधन का समाचार सुना वह दुखी हुआ और दुख प्रकट किया। दुखियों का सहारा चला गया। रह गयी है उसकी मधुर याद।

—: o :—

वनस्थली विद्यापीठ के कार्यकर्ता

श्री प्रहलादनारायण पुरोहित

दीनबन्धु काकोजी

काकोजी (भागीरथजी कानोडिया-अपने परिवार मे इसी नाम से सम्बोधित किये जाते थे।) से मेरा पहले से कोई विशेष परिचय नही रहा। सन् १९३९ मे वनस्थली पहुंचने पर वहा उनका नाम सुनने को मिला। थोडे अरसे बाद वहीं पर पू० आपाजी (पण्डित हीरालालजी शास्त्री) का सान्निध्य मिलने पर मुझे लगने लगा कि वनस्थली की स्थापना और सचालन मे पू० आपाजी तथा पू० भाभूजी (श्रीमती रतन शास्त्री) के अलावा उनके दो अभिन्न मित्रो श्री भागीरथजी कानोडिया और श्री सीतारामजी सेकसरिया का भी पूरा हाथ है और वनस्थली की स्थापना के पूर्व से ही ये एक परिवार जैसे स्नेह-सूत्र मे गु थे हुए हैं। यही नही, यह भी आभास होता रहता कि ये चारो मानो एक ही परिवार के अग जैसे हैं और राजस्थान बालिका विद्यालय (उस समय आज के वनस्थली विद्यापीठ का यही नाम था) और "जीवन कुटीर" के संचालन मे इन चारो व्यक्तियो के एकात्मभाव का एक अद्वितीय चतुरभुज है, जिसकी प्रत्येक भुजा का अपने स्थान पर अपना अनोखा महत्व है। अत. इन दोनो विभूतियो के प्रति भी मेरे मन मे सम्मान और श्रद्धा का भाव जगा।

अक्टूबर, १९४० मे देशरत्न डॉ० राजेन्द्रप्रसादजी की अध्यक्षता मे विद्यालय का पांचवा वार्षिकोत्सव आयोजित किया गया था। उस अवसर पर कलकत्ता से भागीरथजी और सीतारामजी साथ-साथ ही वनस्थली पहुचे। उस जमाने मे वनस्थली मे न मोटर थी और न ही निवाई रेलवे स्टेशन से वनस्थली गाव तक पहुचने के लिए पक्की सडक ही। वनस्थली से निवाई स्टेशन तक जाने-आने की ५ मील की दूरी को पार करने के लिए बैलगाडी ही सवारी का एक मात्र साधन थी। बैलगाडी से वनस्थली से निवाई स्टेशन पहुचने मे सवा-डेढ घण्टे का समय लग जाता था। ये दोनो सज्जन भी निवाई रेलवे स्टेशन से विद्यालय के सग्गड (एक प्रकार की परिष्कृत और छायादार गाडी) द्वारा उत्सव के एक दिन पूर्व वनस्थली पहुचे। इन दोनो व्यक्तियो के वनस्थली पहुचने पर विद्यालय-परिवार ने विद्यालय द्वार उनका हार्दिक स्वागत किया। अपने इन आत्मीय जनो को देख कर पूरे विद्यालय परिवार मे हर्ष और उत्साह की लहर दौड़ गयी। मैंने देखा कि चाचाजी (सीतारामजी) और काकोजी (भागीरथजी) दोनो ही हाथ जोडकर हल्की मुस्कान के साथ सबका अभिवादन स्वीकार कर रहे हैं। मुझे उस समय लगा दोनो ही विभूतियो का व्यक्तित्व सेठ के व्यक्तित्व से सर्वथा विपरीत पण्डितो जैसा है और सेवा ही उनका धर्म है। यह मेरा चाचाजी और काकोजी का वनस्थली के प्रागण मे प्रथम दर्शन था।

समय बीतता चला गया। चाचाजी और काकोजी समय-समय पर कभी दोनो साथ तो कभी अकेले भी वनस्थली आते-जाते रहे। उनके प्रति मेरे मन मे आत्मीयता और श्रद्धा के भाव दृढ से दृढतर होते चले गये। जहां तक मुझे याद है, अगस्त, १९४५ मे मुकुन्दगढ़ से वापस कलकत्ता लौटते समय काकोजी अकेले ही एक दिन के लिए वनस्थली पहुचे थे। उस समय आपाजी ने काकोजी से परामर्श करके मेरे लिए यह निश्चित कर दिया कि उनके कलकत्ता पहुचने के बाद, वनस्थली के लिए आर्थिक सहायता जुटाने के काम की दृष्टि से मैं भी उनके पास कलकत्ता पहुच जाऊ। तदनुसार आपाजी के निर्देश से मैं वनस्थली से कलकत्ता के लिए चल पड़ा। वह लडाई का जमाना था। हावडा स्टेशन से जब मैं उनकी बालीगज स्थित कोठी पर पहुचा, तब काकोजी उस समय कोठी पर ही मौजूद थे। मुझे देख कर वे बोले, "अच्छा! थे आ पूग्या। शास्त्रीजी को पत्र डाकसू काल ही मिल्यो। यात्रा आराम की रही या तकलीफ उठाणी पडी? थाने पहिचाने वाला अठे कोई आदमी न होणे से स्टेशन पर कोई ने पूगाकोनी सक्यो।" उत्तर मे मैंने उनको बताया कि मैं बिना किसी कठिनाई के यहा तक आराम से आ पहुचा हू। इसके बाद वे स्वय मुझे उस कमरे तक ले गये, जहा मुझे ठहरना था। उन्होने दरवान को मेरा सामान और बिस्तर आदि ठीक करने को कहा और स्वय साथ जाकर मुझे स्नान-घर आदि दिखा लाये। भाई तुलसीदासजी से मेरा परिचय कराने के बाद उन्होने मुझसे कहा: "स्नान-भोजन करने के बाद आज तो यही पर आराम करो। कल आफिस चलना"। उनकी इस सरलता और अपने प्रति उनकी इस आत्मीयता और स्नेह-भाव को देख कर मैं गद्गद् हो गया। बिना जल-स्नान किये ही उनके स्नेह-सलिल-स्नान से मेरी यात्रा की सब थकान दूर हो गयी।

इस अवसर पर शुरू में कोई दसेक दिन मैं काकोजी के सान्निध्य मे कलकत्ता रहा। प्रतिदिन वे मुझे अपने साथ आफिस ले जाते और वहा से अपने साथ ही वापिस ले आते। इन दिनो मैंने देखा कि वे निश्चित समय पर आफिस पहुच जाया करते थे। दो दिन ऐसा भी हुआ कि ड्राइवर समय पर कोठी पर नही पहुच पाया और गाडी पर ड्राइवर को न पाकर काकोजी मुझे साथ लेकर ट्राम गाडी पर सवार होकर ही आफिस जा पहुचे थे। उनकी इस सादगी, आफिस मे उनकी व्यस्तता, तत्परता, कार्यकुशलता को देख कर मैं दग रह जाता था। वे निर्लिप्त भाव से अपने काम मे लीन रहते थे। उन्हें किसी पर नाराज होते अथवा बिगडते मैंने नही देखा। इसके विपरीत जो कोई व्यक्ति अपनी जरूरत को लेकर पास पहुच जाता था, अपनी इस व्यस्तता मे भी वे ध्यान रखकर उसकी बात सुनते और उसका यथोचित सत्कार करके स्नेह और सहानुभूति प्रकट करते हुए आत्मीयता के साथ उसे विदा करते। जब कभी वे ऐसे किसी आगन्तुक से बात करते होते तो मुझे लगता रहता था कि वे उससे शाब्दिक सहानुभूति ही नही जतला रहे होते पर अपनी सजग दृष्टि से उसके भीतर के दु.ख दर्द को भी अनुभव कर रहे होते थे।

एक रविवार को उन्होने मेरा बाहर जाने का कार्यक्रम निश्चित कर दिया। राची, चाईबासा, टाटानगर, रानीगज, झरिया और भागलपुर स्थित अपने मित्रो के

नाम पत्र लिख कर मुझे दे दिये। पहले राची जाने का सुझाव दिया और मुझे समझाया कि कौन स्थान दिशा मे एक दूसरे से विपरीत पडते है, प्रवास मे सचेत रहना चाहिये, अपरिचित स्थान पर न ठहर कर जाने-माने व्यक्ति के घर पर ठहरना ठीक होगा।

अपने इस प्रवास काल मे जहा-जहा भी मैं गया मैंने देखा कि समाज मे काकोजी के प्रति उनके मित्रो की, स्नेहीजनो की एक प्रकार की अमिट आस्था, श्रद्धा और गजब का प्रेम और आदर भाव है। वे उन्हे अपना मार्ग-दर्शक मानते हैं। यह सब उन्होने राष्ट्र और समाज के प्रति अपने समर्पित सेवा-भाव और त्याग के बल पर ही अर्जित किया था।

बिहार, बंगाल के इन शहरो की यात्रा से मैं अक्टूबर मे वापस कलकत्ता लौट आया। काकोजी को जब मैंने अपने इस प्रवास और इन स्थानो से विद्यालय के लिए प्राप्त सहायता का विवरण दिया तो मेरा उत्साह बढाते हुए उन्होने मुझसे कहा कि "यह इतना रुपया आपको किसने दे दिया ?" मैंने उत्तर दिया कि "जो रुपया मिला है वह तो आपकी चिट्ठी के बल पर और उन लोगो द्वारा किये प्रयास के फलस्वरूप ही मिला है। मुझे तो जानता ही कौन था ?" पर वे मेरी बात को काटते हुए बोले : "इस काम मे युक्ति और प्रयास तो आप ही का है। इसलिए यह आपकी ही सफलता है।" उनका इस प्रकार कहना मेरी प्रति उनकी उदारता और महानता का ही परिचायक तो था।

इसके बाद कलकत्ता मे फिर एक बार और डेढ मास के लिए मुझे उनका सान्निध्य प्राप्त करने का अवसर मिला। इस अर्से मे मैं कलकत्ते मे भी कुछ जाने-माने व्यक्तियो के पास विद्यालय के लिए आर्थिक सहायता प्राप्त करने के प्रयोजन से पहुच जाया करता था। एक दिन मैं एक ऐसे सज्जन के पास जा पहुचा, जो शायद स्वय कम उदार थे। मेरी बात को सुनकर उन्होने कहा, "पण्डितजी, थे मेरे पास तो कोई गलती सू ही आ पूग्या दीसो हो। थाने त भागीरथ कानोडिया रै पास पूगणू चाये जिणा की आट मे देणे वास्ते खुजाल चालती रहवे है। दिन मे जद तक उणा के पास पाच-सात आदमी चन्दा लेण्या न पूग जावे और रोजीना उणके पास पूग्योडा की वो आस (आशा) पूरी न करै, उणा की आट की खुजाल नही मिट्या करे है। थे सीधा उठे चलया जाओ। थारो काम तो बठे सोरो बणसी।" उन्हे यह कहा पता था कि मेरा तो डेरा ही उनके शब्दो मे ऐसे उदारमना भागीरथजी कानोडिया की कोठी पर था। उनके इस प्रकार के कथन मे काकोजी की अगीकृत दानशीलता और उदारता के रहस्य का ही तो यथार्थ उद्घोष था।

पू० आपाजी के सान्निध्य मे रहते मैंने काकोजी के बारे मे बराबर यह अनुभव किया कि वे किस तत्परता से पत्रो का उत्तर दिया करते थे। उनके द्वारा भेजे गये उत्तर अत्यन्त सारगभित और सक्षिप्त होते थे। उनके पास पहुचे लम्बे से लम्बे पत्र का उत्तर वे कम से कम शब्दो मे लिखकर भेजा करते थे, जिसमे पत्र की कोई बात छूटने नही पाती थी। यह उनका चातुर्य और उत्तर लिखने की अपनी मौलिकता थी। किन्ही पत्रो का उत्तर तो केवल डेढ-दो पक्तियो मे ही लिखा होता था। लगभग सभी पत्रो का उत्तर वे स्वय अपनी कलम से (अपने हाथ से) ही लिख कर भेजा करते थे।

काकोजी एक ऐसे सम्पन्न उद्योगपति थे जिन्होने एक राष्ट्र-सेवक, समाज-सेवक और दीन दुखियो के सेवक के अलावा अपने आपको और कुछ माना ही नही। वे इस सारे वैभव और सम्पन्नता मे जल कमलवत-निर्लिप्त भाव से रहते थे। वे सागर की गहराई की तरह अत्यन्त गम्भीर, वटवृक्ष की सघन शीतल छाया की तरह सब के लिए सुखदायी थे। सेवा का कोई क्षेत्र उन्होने अछूता नही छोडा था। जहां जब, जैसी सेवा की जरूरत होनी थी, वही वे अपने आपको स्वेच्छा से झोक दिया करते थे। उन जैसा सच्चा, कर्मनिष्ठ, निष्ठावान, राष्ट्रसेवी, समाज-सेवी, समाज-सुधारक, दीनहीन को गले लगाने वाला, लेखक, उद्योगी, उद्यमी, उद्योगपति, गो सेवक, हरिजन सेवक, राष्ट्रभाषा हिन्दी की मूक भाव से सेवा करने वाला दूसरा कौन होगा ? सेवा का ऐसा कौन सा क्षेत्र है जिसमे उनका दखल न रहा हो। देश मे ऐसी कौन-सी बडी सस्थाए हैं जिसमे उनका योगदान न रहा हो ? 'बहता पानी निर्मला' उनकी ऐसी कृति है जिसकी प्रत्येक कहानी अत्यन्त बोधप्रद और प्रेरक है।

महिलाओ, विद्यार्थियो, विद्वानो, सार्वजनिक, सामाजिक एव राष्ट्रकर्मियो की सहायता करते वे कभी अघाते नही थे। दीन-दु खियो और जरूरतमन्दो की बिना किसी प्रकार के भेद भाव के सहायता पहुचाने तथा उनके कष्टो को दूर करने या कम करने के लिए वे सदा तत्पर और लालायित रहते थे। उनका जीवन ही सेवामय था। उनकी सदा यही भावना बनी रहती थी कि—

न त्वह् कामये राज्य न स्वर्ग न पुनर्भवम्।
कामये दु खतप्ताना प्राणिनाम् आर्तिनाशनम्॥

न मैं राज्य की कामना करता हू न स्वर्ग की और न ही मोक्ष की। मैं तो दु:खी प्राणियो के दु ख का विनाश चाहता हू।

ऐसे थे दीनबन्धु काकोजी!

—:०:—

मारवाड़ी बालिका विद्यालय, कलकत्ता के भूतपूर्व कार्यालय-अधिकारी

श्री द्वारका प्रसाद

उदार और कर्मठ

श्रद्धेय भागीरथजी कानोडिया को मैंने लगभग पचास वर्ष पहले पहली बार देखा था। उन दिनो हरिजन-उत्थान का कार्य जोरो पर था। भागीरथजी, सीतारामजी सेकसरिया और वसतलालजी मुरारका ने बडाबाजार मे हरिजन उत्थान समिति की स्थापना की थी। मैं समिति के आफिस-इन-चार्ज और समिति द्वारा सचालित हरिजन पाठशालाओ के निरीक्षक पद पर नियुक्त हुआ था। समिति की ओर मे कलकत्ता की बस्तियो मे २२ पाठशालाए — दिन की और रात्रिकालीन—चलायी जाती थी। पाठशालाओ और समिति के काम से पदाधिकारियो के पास जाने की मुझ जरूरत पडती रहती थी। सभी पदाधिकारी सुवह से रात तक व्यस्त रहते, लेकिन भागीरथजी की व्यस्तता तो गजब की थी। वह चार-पाच टेलीफोनो से घिरे रहते; एक न एक की घण्टी टनटनाती ही रहती, सामने बैठे लोगो से बात करते जाते; टेलीफोन गर्दन के सहारे रख सुनते जाते और हाथ से लिखते जाते और यह क्रम ५ बजे तक तो रहता ही।

आफिस कै काम मे इतनी व्यस्तता के वावजूद भागीरथजी समिति का काम ऐसे इतमीनान से देखते मानो घर से चल कर पहले-पहल काम कर रहे हो। कभी-कभी बस्तियो की किसी रात्रि-पाठशाला मे पहुच जाते। हरिजन बच्चो से प्रेमपूर्वक बातचीत करते और उनसे उनके अभिभावको के बारे मे जानकारी प्राप्त करते। किसी बच्चे की बात से उन्हें यदि अनुमान होता कि उसके अभिभावक विशेष रूप से कष्ट मे हैं तो उस अभिभावक से स्वय बात करते; अर्थाभाव के कारण इलाज न करा पानेवाले हरिजन भाइयो की सहायता करते; दुखियो की सहायता इस तरह करते कि कोई दूसरा जान भी न पाता। समिति का आफिस-इन्चार्ज और पाठशालाओ का निरीक्षक होते हुए भी मैं उनकी सहायता का पता नही पा सकता था। पाठशालाओ के निरीक्षण के सिलसिले मे सहायता का प्रसग उठने पर कोई भागीरथजी की सहायता की बात बतलाता तो मुझे कभी-कभी पता लगता। कितने दुखी हरिजन भाई तो उनके निवास-स्थान पर पहुच जाते; उन्हे वह कहते यह ले जाओ पर किसी से कहना नही। असल मे वह बड़े गुप्त दानी थे।

हरिजन उत्थान समिति मे काम करने के बाद सन १९३६ में मुझे मारवाडी बालिका विद्यालय के दफ्तर का भार सौंपा गया। तब से मैं अपने नाम के बजाय 'दफ्तर बाबू' नाम से ही ज्यादा जाना जाता हू। विद्यालय के प्रमुख पदाधिकारी वे ही सुधारवादी, समाज सेवक और देशभक्त कार्यकर्त्ता थे जो हरिजन उत्थान समिति

के भी पदाधिकारी थे। इस तरह श्रद्धेय भागीरथजी से मेरा सम्पर्क पूर्ववत रहा। मेरे विद्यालय मे काम शुरू करने के कुछ दिनो बाद एक सज्जन दो लडकियो के साथ आये कहा कि कानोडियाजी ने इनको भरती कराने भेजा है। लडकिया जिस क्लास के लायक थी, भरती कर ली गयी। लेकिन वह सज्जन प्राय विद्यालय मे आते, कुछ समय बैठते भी। मुझे दम लेने की फुरसत नही रहती कि उनसे कोई चर्चा कर सकूं। एक दिन वह देर से आये और मुझे फुरसत मे देख कर बोले, मेरा विचार है कि जल्दी लडकियो को पढाकर उनकी शादी कर दू। समय बीतता गया, जब कभी यह सज्जन आते तो शादी के लिए अर्थाभाव से चिंतित दिखते लेकिन उनकी बात से कही लगा कि भागीरथजी ने उन्हे मदद करने का आश्वासन दिया है। वर्षो बाद एक दिन वह प्रसन्न मुद्रा मे मुझे बता गये कि पिछली शाम कानोडियाजी ने बडी लडकी की शादी के लायक रुपये दे दिये हैं और छोटी लडकी के लिए बाद मे देखेंगे। उनके मन पर से चिन्ता का बोझ हटते देख मुझे अपार सतोष और आनन्द मिला।

भागीरथजी की सहृदयता की एक घटना का मुझे किसी तरह पता चला। यह घटना न समिति की है और न विद्यालय की। एक आदमी ने मोतिया बिंद का आपरेशन करवाया; चश्मा लगाने का समय आया तो उसके पास पैसे नही थे। किसी ने उसे भागीरथजी के पास जाने को कहा। वह उनके लेक स्थित निवास-स्थान पर गया, वहा किसी सज्जन ने उसे उनसे मिलने नही दिया बल्कि तेज आवाज मे डाट कर कहा कि यहा चश्मे का पैसा-वैसा नही मिलता। आदमी निराश होकर जा रहा था कि भागीरथजी तेजी से बगल के कमरे से बाहर निकले; उन्होने 'डाट' सुन ली थी। उन्होने डाटने वाले सज्जन को कहा: "किसी को कुछ दे नही सकते तो उससे आदमियत का व्यवहार तो कर ही सकते हो।" उन्होने उस आदमी को बुलाया और चश्मे का दाम दिया। आज भी वह आदमी वही चश्मा लगाकर अपनी जीविका चला रहा है।

काम पडने पर मैं उनसे फोन से न पूछ कर स्वय जाकर समझ आना बेहतर समझता था। एक बार जल्दी में कोई जरूरी काम पडा। मैंने उन्हे फोन किया। मैंने उन्हे अपना अभिप्राय बताना प्रारम्भ किया, लेकिन मैं उत्तेजना मे कुछ ऊची आवाज मे बताने लगा, तो इतने मे वह बोले इतनी जोर से क्यो बोलते हो। मुझे तत्काल अपनी असभ्यता का एहसास हुआ, मैं सभल गया और सदा के लिए सभल गया। उनकी सीख मौके-मौके पर मिल जाती थी जिससे मुझ मे सुधार हो जाता था। इसी तरह की एक और घटना है। एक बार विद्यालय की मीटिंग हो रही थी। बहुत ज्यादा गरमी थी। मैं मीटिंग की कार्यवाही नोट करने बैठा था। मैंने कुरते की बाह ऊपर तक चढा रखी थी। भागीरथजी अध्यक्ष थे। उनकी निगाह मेरी चढी हुई बाह पर गई। उन्होने अपनी कलम की छोर से मेरे कुरते की मुडी बाह की ओर इशारा किया और मैंने उसे सीधा कर दिया।

एक बार मैंने उनसे कहा विद्यालय के मासिक चन्दादाताओ के पास वसूली के लिए रसीदें भेजनी हैं। उन्होने कहा, आफिस मे ले आना, साइन कर दूगा। दूसरे दिन मैं उनको आफिस गया तो वह बहुत ज्यादा व्यस्त थे, बोले, रजिस्टर और

रसीदे रख जाओ परसो मगा लेना। वापस लौटते वक्त सोच रहा था कि रसीदें जल्दी बना कर रख तो आया लेकिन सही-गलती दुहरायी नही। इसके बाद रसीदो की रकम पर ध्यान दौडाने लगा तो ख्याल आया कि शायद एक रसीद का टोटल गलत हो गया है। सोचा वापस लौटकर रसीदो को फिर देख कर भ्रम दूर कर आऊ, लेकिन आफिस बन्द होने का समय हो रहा था। मैंने यही अच्छा समझा कि परसो भागीरथजी ने रसीदे मगाने को कहा है, कल जल्दी ही उनकी आफिस पहुच कर तसल्ली कर लूगा। तो दूसरे दिन मैं जल्दी ही आफिस पहुच गया, देखते ही भागीरथजी ने पूछा "क्यो।" मैंने कहा "एक रसीद मे गलती मालूम हुई, वही देखने आया हू।" उन्होने कहा "मैंने ठीक करके सब साइन कर दिया है, ले जाओ।" मैंने रसीदो को उलट कर देखा, सचमुच एक रसीद मे मेरी भूल थी। भागीरथजीने उसे सुधार कर उस पर अपने हस्ताक्षर कर दिये थे। उन्होने मुझे एक शब्द भी नही कहा। अपनी गलती स्वत: क्षमा होते देखकर मैं पानी-पानी हो गया। उनके बडप्पन पर श्रद्धा तो हुई ही, साथ यह भी सोचा कि इतनी व्यस्तता मे उन्होने कल का काम आज ही कर रखा था।

स्वतन्त्रता आदोलन और समाज-सुधार के उन दिनो मे एक से एक बात जुडती थी— मारवाडी बालिका विद्यालय मे एक साहित्य विभाग भी चलता था जिसके अन्तर्गत प्रयाग महिला विद्यापीठ की विद्याविनोदिनी, विदुषी व सरस्वती आदि तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन की प्रथमा, मध्यमा और उत्तमा की परीक्षाओ की पढाई कराई जाती थी। ये परीक्षाए देकर कितनी ही विधवा, परित्यक्ता और निराश्रित महिलाए अध्यापिका बन कर रोजी-रोटी कमाने लायक बनी। इनके अलावा स्कूल भेजने से कतराने वाले पुराने विचारो के घरो की कन्याओ और विवाह हो जाने के कारण पढाई छोड देने को बाध्य हुई लडकियो ने भी इन परीक्षाओ से बहुत लाभ उठाया। इस तरह मारवाडी बालिका विद्यालय सिर्फ बालिकाओ की ही शिक्षा का काम नही कर रहा था, स्त्रियो को स्वावलम्बी बनाने का भी प्रयत्न कर रहा था।

परीक्षाओ के लिए विद्यालय परीक्षा केन्द्र के रूप मे भी मान्य था। महिला परीक्षार्थियो की सख्या कम होने के कारण सम्मेलन ने विद्यालय से परीक्षा-केन्द्र हटाने का निश्चय किया। इससे परीक्षार्थिनिया परेशानी मे पड गयी; पुरुषो के साथ बैठ कर परीक्षा देने मे उन्हे हिचक थी। भागीरथजी ने दिन के तीन बजे मुझे फोन करके अपनी आफिस बुलाया और कहा कि तुम पुन केन्द्र स्थापित कराने के लिए आज ही इलाहाबाद चले जाओ। मैंने कहा कि अब तो परीक्षा को एक सप्ताह भी नही रह गया है, तो उन्होने कहा कि कोई बात नही। भागीरथजी और सीतारामजी ने मुझे सम्मेलन के पदाधिकारियो के नाम पत्र दिये। मैं शाम को इलाहाबाद रवाना हुआ। इलाहाबाद पहुचा तो पाया कि उस दिन सम्मेलन बद था। रजिस्ट्रार के मकान पर गया। उन्होने कहा यह काम इतनी जल्दी होने वाला नही है, इसके लिए मीटिंग की स्वीकृति लेनी होगी और पदाधिकारीगण शहर से बाहर हैं। बडी कठिनाई है पर आप ऐसे व्यक्ति विशेष के पत्र लाये है कि कुछ करना ही होगा। रजिस्ट्रार साहब ने दूसरे दिन ११ बजे

अरजेंट मीटिंग बुलाई और दो बजे तक परीक्षा केन्द्र के पुन स्थापित किये जाने की स्वीकृति मिल गयी। लेकिन प्रश्न-पत्र भेजने का सारा प्रवन्ध लखनऊ से होता था। मैंने रजिस्ट्रार साहब से कहा कि आप मुझ पर विश्वास करें, लखनऊ के लिए मुझे पत्र दे दें ताकि वहा के लोग मुझे प्रश्नपत्र का पैकेट दे दें। अगर मुझे कल प्रश्नपत्र मिल गये तो मैं समय पर पहुच कर कलकत्ता मे परीक्षा आरम्भ करा लू गा। लोगो को बात जची, मैं लखनऊ रवाना हुआ और वहा प्रश्नपत्रो के पैकेट तैयार करवाये और तुरंत कलकत्ता रवाना हुआ। यह प्रसग मैंने यह बताने के लिए लिखा है कि भागीरथजी की कर्त्तव्यनिष्ठा और तत्परता उनसे साथ काम करने वालो को किस तरह प्रेरित करती थी। कलकत्ता-इलाहाबाद-लखनऊ-कलकत्ता करते हुए मेरे मन मे एक ही बात थी कि अगर परीक्षा केन्द्र पुन. स्थापित नही हुआ तो भागीरथजी को बडा दुख होगा।

मारवाडी बालिका विद्यालय की प्रगति होती ही गयी। एक वक्त था जब पाचवी से ऊपर की कक्षाओ को, लडकियो की कमी के कारण चलाना मुश्किल होता था और फिर एक वक्त आया जब स्थान की कमी के कारण लडकियो को भरती करना मुश्किल हो गया। भागीरथजी और सीतारामजी को यह समस्या परेशान करने लगी। लार्ड सिन्हा रोड पर सर आगा खा की ३ बीघा ८ कट्ठा जमीन बिकाऊ थी। भागीरथजी ने अपने पास से जमीन का बयाना देकर सौदा पक्का कर लिया। जमीन के दाम, इमारत बनाने के खर्च और फर्नीचर के लिए बडी रकम की जरूरत थी। भागीरथजी और सीतारामजी चंदा इकट्ठा करने रोज सुबह नियम से निकलते और दिन मे ११-१२ बजे घर लौटते। यह क्रम १५ दिन चला होगा कि ७-८ लाख के करीब चदा आ गया। इस तरह १९५४ मे इस जमीन पर श्री शिक्षायतन का निर्माण हुआ। आज श्री शिक्षायतन कलकत्ता की विशालतम शिक्षा-सस्थाओ मे एक है।

ये तो कुछ बातें मैं जैसे-जैसे याद आती गयी लिखता गया, लेकिन भागीरथजी के चले जाने से मेरे जैसे लोगो को जो अभाव महसूस हो रहा है, उसे लिख पाना तो असभव है।

—: ० :—

चार्टर्ड एकाउटेन्ट, प्रबन्ध-सलाहकार

श्री नन्दलाल शाह

एक 'सामाजिक उद्योगपति'

मुझे श्रद्धेय भागीरथजी के साथ उनके औद्योगिक प्रतिष्ठानो के लिए कुछ समय काम करने का अवसर मिला। इस दौरान उद्योगो के सामाजिक उत्तरदायित्व सम्बन्धी उनके विचारो से अवगत हुआ। उनकी प्रेरणा से मजदूर-कानूनो और बोनस के प्रश्नो पर मैंने कुछ लेख पत्र-पत्रिकाओ मे लिखे। भागीरथजी बराबर मेरा मार्ग-दर्शन करते रहे। यहा एक ऐसे प्रसग का जिक्र कर रहा हू जिससे मुझे बहुत प्रेरणा मिली।

आदित्य मिल्स लिमिटेड सूत की एक बडी मिल है। यह मदनगज-किशनगढ (जयपुर और अजमेर के मध्य) मे स्थित है। भागीरथजी इसके बोर्ड आफ डाइरेक्टर्स के सभापति थे। बात १९६५-६६ की है। कम्पनी की वार्षिक साधारण-सभा का सभापतित्व भागीरथजी कर रहे थे। कम्पनी के मैनेजिग डाइरेक्टर अश्विनीकुमारजी कानोडिया और अन्य निदेशकगण—महाराजा मानसिंह, सरोत्तमभाई हत्थीसिंह और राजस्थान सरकार के प्रतिनिधि—उपस्थित थे। कम्पनी का उत्पादन १९६३-६४ मे ही प्रारम्भ हुआ था। प्रथम दो-चार वर्षों मे डेप्रिसियेशन और अन्य छूट इतनी अधिक होती है कि वितरण के लिए लाभ बचना सम्भव नही होता है। अतएव उस साधारण सभा मे भी हिस्सेदारो के लिए लाभाश देने का कोई प्रावधान नही था।

मदनगज-किशनगढ सूत की बडी मडी रही है। आज तो इसका स्थान रुई के सूत के पावरलूम के लिए देश मे प्रथम है। मिल की ख्याति इतनी थी कि अधिकाश व्यापारी कुछ न कुछ इस मिल के शेयर जरूर खरीद कर रखते थे। हर एक व्यापारी की इच्छा रहती थी कि मदनगज-किशनगढ के लिए कम्पनी की स्थानीय एजेन्सी मिल जाये। लेकिन एजेन्सी तो केवल एक ही फर्म के लिए हो सकती थी। उस समय कम्पनी के स्थानीय ऐजेन्ट मेसर्स मोतीलाल रामस्वरूप थे।

जैसा कि बडी कम्पनियो की वार्षिक साधारण-सभा मे होता है, इस सभा मे भी हिस्सेदारो ने अपना विरोध जोर से करने की योजना बना रखी थी। सैकडो व्यापारी सभा मे उपस्थित थे। यहा यह जान लेना आवश्यक है कि कानोडिया परिवार और उसके मित्रो के पास कम्पनी के शेयर इतने अधिक थे कि उनके किसी प्रस्ताव के गिरने का कोई प्रश्न ही नही था।

भागीरथजी की अध्यक्षता मे सभा की कार्यवाही आरम्भ हुई। एक-एक करके प्रस्तावो पर विचार शुरू हुआ। एक प्रस्ताव यह था कि डायरेक्टर-मीटिंग फीस ७५ रु० से बढा कर २५० रु० कर देने का अधिकार बोर्ड आफ डायरेक्टर्स को दे दिया जाय। यह प्रावधान कम्पनी कानून के नये परिवर्तन के अनुसार रखा गया था।

हिस्सेदारो ने एतराज किया कि जब अभी तक उन्हे लाभाश नही दिया गया है तब मीटिंग-फीस क्यो बढायी जा रही है। भागीरथजी ने हिस्सेदारो की बात का औचित्य समझा। उन्होने कहा कि हम कम्पनी-कानून मे नये परिवर्तन के अनुसार बोर्ड आफ डायरेक्टर्स को फीस बढाने की अनुमति सिर्फ अधिकार स्वरूप दे रहे हैं, लेकिन मैं इसकी व्यक्तिगत जिम्मेवारी लेता हू कि कम्पनी जब तक लाभांश नही देगी तब तक बोर्ड आफ डायरेक्टर्स यह फीस नही बढायेगा। प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हुआ। हिस्सेदारो की जीत हुई। भागीरथजी को ऐसी जीत से हमेशा खुशी होती थी।

दूसरा प्रस्ताव था कि दो वर्ष के लिए मेसर्स मोतीलाल रामस्वरूप को स्थानीय एजेन्ट नियुक्त किया जाय। अनेक हिस्सेदारो ने इसका विरोध किया कि मोतीलाल रामस्वरूप को ही एजेन्ट क्यो बनाया जा रहा है। इस पर कम्पनी की ओर से कहा गया कि ये अच्छे व्यापारी हैं और कम्पनी के पास उनके खिलाफ कोई शिकायत नही है। एक हिस्सेदार ने कहा मोतीलाल रामस्वरूप एजेन्ट की हैसियत मे स्थानीय व्यापारियो मे भेद-भाव करते है, एक ही समय में अलग-अलग व्यापारियो को अलग-अलग भाव मे माल बेचते हैं। इस वक्ता ने एक खास तारीख और दो व्यक्तियो के नाम भी बताये जब कि एक ही समय पर अलग-अलग भावो पर सौदे किये गये थे। कम्पनी कानून के अनुसार साधारण सभा मे कम्पनी के खाते दिखाना आवश्यक नही होता। लेकिन भागीरथजी ने कहा कि कानून अपनी जगह है और सामाजिक औचित्य अपनी जगह है। अतएव उन्होने सेल-कट्राक्ट के रजिस्टर सभा मे मंगवाने का आदेश दिया और कहा कि बात सबके सामने साफ होनी चाहिए। रजिस्टर, बिल आदि सब मगवाये गये। इनमे देखा गया कि दोनो व्यापारियो को एक ही भाव पर माल बेचा गया था। लेकिन इसके बावजूद कई हिस्सेदारो ने कहा कि मोतीलाल रामस्वरूप की नियुक्ति दो साल के बजाय एक साल के लिए की जाय। छह महीने बीत चुके थे। एक साल के लिए नियुक्ति करने से इसी प्रस्ताव को फिर अगले वर्ष रखना आवश्यक हो जाता था। साधारणतया ऐसी नियुक्ति ३ से ५ वर्ष तक के लिए होती है लेकिन भागीरथजी ने कहा . जहा तक हो, सभी हिस्सेदारो की सहमति प्राप्त करनी चाहिए अतएव प्रस्ताव मे सशोधन हुआ और नियुक्ति एक वर्ष के लिए ही हुई। यह भी हिस्सेदारो की जीत थी और भागीरथजी उनकी जीत से प्रसन्न थे।

अगला प्रस्ताव था कि मेसर्स जी० पी० केजडीवाल एण्ड कम्पनी को फिर से आडीटर्स नियुक्त किया जाय। हिस्सेदारो का कहना था कि राजस्थान मे चार्टर्ड एकाउटेंट रहते कलकत्ते की फर्म को क्यो नियुक्त किया जा रहा है। इस पर पूरी बात समझने के बाद भागीरथजी ने कम्पनी की ओर से जवाब दिया कि शुरू से ही मेसर्स जे० पी० केजडीवाल एण्ड कम्पनी आडिटर्स हैं अतएव उन्हें कम्पनी के विषय मे पूरी जानकारी है। इसलिए आडिटर तो उन्हे सर्वसम्मति से ही नियुक्त किया जाना चाहिए। इसके साथ ही उन्होने यह भी आश्वासन दिया कि कम्पनी के इन्टरनल आडिट और टैक्स आदि के कार्य राजस्थान के चार्टर्ड एकाउटेंटो को ही दिये जायेंगे। इससे उपस्थित राजस्थानी चार्टर्ड एकाउटेंट बहुत खुश हुए। इसके पश्चात इन्टरनल

आडिट का काम मेसर्स ए० एल० चनानी एण्ड कम्पनी, भीलवाडा को और इनकम टैक्स का काम आर० एस० दानी एण्ड कम्पनी, अजमेर को मिला।

सभा मे और भी कई अन्य प्रस्ताव थे जो सर्वसम्मति से ही पास हुए। सभा मे हिस्सेदारो की बातो को उतना ही महत्व दिया गया जितना कि परिवार के सदस्यो की बात को दिया जाता है। पबलिक कम्पनिया आज भी पबलिक कहलाते हुए भी जनता की नही समझी जाती हैं। १५ वर्ष पूर्व तो बात ही और थी। उस समय बडे औद्योगिक प्रतिष्ठानो मे हिस्सेदारो की बात को इतना महत्व देना, भागीरथजी की ही सूझ-बूझ थी। बाहर से आये कम्पनी के सभी डायरेक्टरो ने इस प्रकार हिस्सेदारो की बात मानने के लिए भागीरथजी की प्रशसा की। भागीरथजी ने मिल के अधिकारी वर्ग को कहा कि मुझे इस बात की खुशी है कि स्थानीय लोग मिल की कार्य-प्रणाली मे इतनी दिलचस्पी लेते हैं। उन्होने निर्देश दिया कि मिल मे लोगो की दिलचस्पी बनाये रखने के लिए सतत् प्रयास करना चाहिए। वे मानते थे कि हिस्सेदारो की हर उचित बात को स्वीकार करना चाहिए और अनुचित बात को भी सुनकर उन्हे समझाने की कोशिश करनी चाहिए।

इसके फलस्वरूप उनकी प्रेरणा से कम्पनी के मैनेजिंग डायरेक्टर श्री अश्विनी कुमार कानोडिया ने मदनगज, किशनगढ मे स्थानीय लोगो को पावरलूम बैठाने के लिए प्रोत्साहित किया और हर प्रकार की मदद की। आज किशनगढ मे ७ हजार पावरलूम हैं। एक हजार से अधिक परिवार इसके फलस्वरूप लघु-उद्योगो के मालिक है। किशनगढ आज रूई के सूत के पावरलूमो की हमारे देश की सबसे बडी मण्डी है।

—: o :—

भागीरथजी के व्यवसाय-प्रतिष्ठान में अधिकारी

श्री शिखरचन्द सरावगी

समदर्शी व्यक्तित्व

श्रद्धेय भागीरथजी कानोडिया से मेरा सम्पर्क सन् १९२४ मे हुआ। यो सामान्य-सा परिचय तो सन् १९२३ मे ही हो गया था, जब मेरे बडे भाई बिडला ब्रदर्स लि० मे उनके गनी एक्सपोर्ट डिपार्टमेट मे काम करते थे, परन्तु सन् १९२४ मे मैं भी बतौर प्रशिक्षणार्थी के बिडला ब्रदर्स मे काम करने लगा था। उन दिनो रामकुमारजी खेमका अमेरिका से वापस लौट कर आये थे तथा बिडला ब्रदर्स के अन्तर्गत उन्होने एक एक्सपोर्ट-इम्पोर्ट डिपार्टमेंट खोला था। कुछ ही समय बाद वह डिपार्टमेंट बन्द कर दिया गया क्योकि आयात किये गये मालो का भाव निरतर गिरता जा रहा था और वह डिपार्टमेंट घाटा दे रहा था। फलत. मुझे भी उस काम से छुट्टी मिल गयी और तब मैंने हैसियन बोरो की दलाली करनी शुरू की और उस काम से भागीरथजी के पास भी आने-जाने लगा। एक दिन उन्होने हठात् मुझसे कहा····"यदि तुम हमारे यहा काम करना चाहो, तो मैं तुम्हें काम दे सकता हू ··।" मैंने कुछ सेकेण्डो मे ही उन्हे 'हा' में उत्तर दिया और पूछा कब से काम शुरू करू। उन्होने कहा "अभी से।" मैंने तुरन्त ही दलाली सम्बन्धी अपने कागजात अपनी जेब मे रखे और उन्होने जूट एक्सपोर्ट डिपार्टमेट मे काम करनेवाले चिरंजीलालजी मिश्र को बुलाकर कहा कि वह मुझे डिपार्टमेंट के काम से अवगत करा दें। यही से भागीरथजी से मेरा सम्पर्क हुआ।

उनके कई गुणो पर मैंने बडी गौर से ध्यान दिया और मन ही मन उनके प्रति मेरी श्रद्धा बढने लगी। मुझे सबसे बडा और असाधारण गुण जो उनमे दिखाई दिया, वह था उनकी क्षमाशीलता एव क्रोध का सर्वथा अभाव। वे बिडला ब्रदर्स मे एक अति उच्च पदासीन अधिकारी थे। उनके अधीन छोटे-बडे पचीसो कर्मचारी काम करते थे। कर्मचारियो से भूल होना अत्यन्त स्वाभाविक बात थी, किन्तु मेरे ४७ वर्षों के सम्पर्क मे मैंने उन्हें किसी पर भी क्रोधित होते नही देखा। यह मेरे लिये महान् आश्चर्य की बात थी और आज भी जब मैं उनके इस असामान्य गुण को याद करता हू तो मुझे उनमे जैन-शास्त्रो मे वर्णित धर्म के १० अगो मे प्रधान 'क्षमा' अग का पूर्ण समावेश प्रतीत होता है। इस विषय की एक विशेष घटना का मैं जिक्र करता हू।

उन दिनो बिडला ब्रदर्स का कार्यालय १३७, कैनिग स्ट्रीट से उठकर न० ८ रॉयल एक्सचेंज प्लेस मे आ गया था। भागीरथजी जूट तथा गनी, दोनो ही डिपार्टमेंट का काम देखते थे। उन दिनो एक्सपोर्ट का काम यद्यपि बहुत जोरो पर था, किन्तु व्यावसायिक प्रतियोगिता इतनी तीव्र थी कि मुश्किल से ही थोडा लाभ होता था या कभी नही भी होता था। शाम के समय वे हमे जूट की अनेक किस्मो की दरें भारतीय

मुद्रा यानी रुपयो मे लिख कर दे जाते थे और मैं उनमे से प्रत्येक मे कई तरह के खर्च, एक्सपोर्ट ड्यूटी इत्यादि जोड़ कर उन्हे मुद्रा-विनिमय की दरो से पाउन्ड एव डालर के भावो मे परिवर्तन कर लन्दन एव अमेरिका को तार भेजने के लिये आफिस के एक सुदक्ष एव विश्वस्त कर्मचारी श्री ज्योतिप्रसन्न गागुली को दे दिया करता था। इसी तरह हैसियन और बोरो के भावो के दरो की लिस्ट वे गनी डिपार्टमेंट के एक सुयोग्य कर्मचारी मोहनलालजी खत्री को दे जाते थे जो उन्हे उपरोक्त तरीको से विदेशी मुद्राओ मे परिवर्तित कर श्री गागुली बाबू को दे जाते थे। काम की अधिकता के समय मे मैं और मोहनलालजी भी कभी-कभी गागुली बाबू की सहायता कर दिया करते थे। सभी तारो के उत्तर हमे दूसरे दिन सवेरे ही मिल जाया करते थे।

एक दिन बहुत बडे परिमाण मे अमेरिका से हैसियन की बिक्री का समाचार हमारे तार के उत्तर मे मिला। भागीरथजी को कुछ आश्चर्य हुआ कि उस दिन इतना ज्यादा माल कैसे बिक कर आया जबकि रुपयो मे उनके द्वारा दी गई दरे खास नीची तो थी नही। उन्होने मोहनलालजी खत्री को बुलाकर उनसे अपने हाथ का लिखा कागज लाने को कहा जिसमे पिछली शाम को उन्होने दरे लिख कर मोहनलालजी को दी थी। जाचने पर उन्हे अपनी कोई भूल नही मालूम दी। तब उन्होने मोहनलालजी से कहा कि डालर मे दिये हुए भावो को फिर अच्छी तरह जाच ले। जाचने पर पता चला कि मोहनलालजी ने एक बडी भूल कर दी थी, जिसके कारण अमेरिका मे हैसियन की दरें डालर की करेन्सी मे नीची दे दी गयी थी, फलत बहुत-सा माल बिक आया था। उस दिन कम्पनी को हजारो रुपयो का नुकसान हो गया। मुझे भय था कि इतनी बडी भूल के कारण मोहनलालजी को सिर्फ दुत्कार ही नही पडेगी वरन् काम से भी हाथ धोना पडेगा, किन्तु मेरे आश्चर्य और खुशी का ठिकाना न रहा जब भागीरथजी ने मोहनलालजी से सिर्फ इतना ही कहा—"देखो, तुम्हारी जरा-सी असावधानी के कारण कितना बडा नुकसान हो गया। भविष्य मे विशेष सावधान रहने की आवश्यकता है।"

यहा मै एक और घटना का वर्णन करता हू जो मुझसे ही सम्बधित थी। उस घटना से उनकी सहनशीलता, धैर्य एव शान्त-प्रकृति का स्पष्ट चित्र मेरे हृदय मे अकित हुआ। उन दिनो काम की अधिकता के कारण जूट एक्सपोर्ट डिपार्टमेन्ट के प्राय. सभी लोगो को अक्टूबर से जनवरी तक या कभी-कभी बाद के किसी महीने मे भी काम करते हुए रात मे ९ बज जाते थे। किसी-किसी दिन तो कुछ बचा हुआ काम घर पर भी ले जाना होता था ताकि दूसरे दिन ११ बजे के पहले ही आवश्यक कागजात तैयार कर जल्द ही बैको मे भेज दिये जाय और उनके बाबत उसी दिन बैको से रुपये मिल जाय। उन्ही दिनो एक दिन शाम के करीब ६-३० बजे थे और सारा स्टाफ सरगर्मी से काम करता हुआ अत्यन्त व्यस्त था। तभी लदन से एक बडा-सा तार मिला। तार गुप्त भाषा मे ही आते-जाते थे जिनका अनुवाद बडी-बड़ी अनुवाद करने वाली पुस्तको से किया जाता था। इस सम्बन्ध मे कुछ निजी तैयार की हुई पुस्तके भी अनुवाद करने मे साथ-साथ काम मे लाई जाती थी। अनुवाद करने में समय तथा सावधानी की काफी आवश्यकता रहती थी। भागीरथजी ने मुझे अपने कमरे मे बुलाया और कहा कि यह अर्जेन्ट तार अभी-अभी आया है, इसे अनुवाद करके ले आओ। मै काम की अधिकता

से दिन भर का थका हुआ परेशान तो था ही—साथ ही बहुत-सा और भी काम सामने पडा था, जिसे उसी दिन कर डालना अत्यन्त आवश्यक था ताकि दूसरे दिन सवेरे कागजात तैयार कर बैंको मे पहुंचा दिये जाय।

मैंने कुछ झुझलाते हुए उत्तर दिया कि मुझसे तार के अनुवाद का काम अभी नही होगा। उन्होने शान्त भाव से कहा, "कोई बात नही है। तुम अनुवाद करने की सारी पुस्तकें मेरे पास भेज दो, मैं स्वय इसे थोडी देर बैठकर कर लूंगा।" मैंने पुस्तकें उनके कमरे मे भेज दी तथा अपनी मेज पर काम करने बैठ गया। किन्तु मेरे मन मे कई तरह के विचार उत्पन्न होने लगे और मैं अपने काम मे पूरा मन नही लगा सका। मैं सोचने लगा, "इस डिपार्टमेंट के सारे काम का दारोमदार इन तारो पर ही निर्भर करता है। यदि हम इसकी ही अवहेलना करें, तो यह काम चलेगा ही क्योकर? मैंने बडी गलती की।" मैं उठकर शीघ्र ही उनके कमरे मे गया और लज्जित होते हुए बोला—"लाइये, मुझे तार दे दीजिए मैं अभी अनुवाद कर लाता हू।" उन्होने कहा, "मैं इस बात को जानता हू कि तुम लोगो के पास आजकल काम का बडा बोझ है। और फिर तार के अनुवाद होने तक तो मुझे भी उसका उत्तर देने के लिए आफिस मे ठहरना ही पडता। अतएव यह उचित ही है कि मैं इस काम को कर लू और तुमलोग भी अपना काम पूरा करने मे लगे रहो।" उनकी इस शान्त भाव से कही गयी बातो का मुझ पर गहरा प्रभाव पडा जिसे मैं कभी भूल नही सकता। बाद मे जब उन्होने तार का उत्तर लिख दिया तो मैंने कहा "मैं इसे अनुवाद कर तार आफिस मे भिजवा दूगा—आप निश्चिन्त होकर घर जाय।" उस समय रात के करीब साढे सात बजे थे। हमलोगो को रात के साढे नौ बज गये।

उनमे उदारता और सहृदयता तो थी ही साथ ही किसी के दोष को भी प्रकट करना उनके स्वभाव के विपरीत था। इस विषय की एक घटना का वर्णन मैं करता हू। उनके पास प्राय ही बगाली एव मारवाडी जाति के लोग किसी न किसी प्रकार की सहायता लेने के लिये आते रहते थे। वे उन्हे जैसी उचित समझते थे, सहायता देते थे। कई लोग तो उनसे यह कह कर रुपये माग कर ले जाते थे कि वे उन रुपयो से कोई छोटा-मोटा काम धन्धा कर के अपने जीवन-निर्वाह का रास्ता निकाल लेंगे और समय पाकर उन्हे उनके रुपये भी लौटा दे सकेंगे। इस तरह करते उन्हे कई साल बीत गये, तो एक दिन मैंने उनसे कहा कि इन रुपये ले जानेवालो मे कई तो अवश्य ही धूर्त और धोखेबाज होंगे जो झूठी बातें बनाकर आपसे रुपये ले जाते हैं। उन्होने उत्तर दिया—"फिर भी मैं सोचता हू कि यदि १० मे से एक मनुष्य भी इन रुपयों के सहारे अपने पैरो पर खडा हो जाय तो मैं अपने यत्न को सफल समझूगा।" एक भारत-विख्यात व्यक्ति के परिवार से उन्हे यह समाचार मिला कि वह विपन्न अवस्था मे हैं तो उन्होने मेरे हाथ से गुप्त सहायता भिजवायी। इस तरह कितनी ही बार हुआ।

उनसे रुपये ले जाने वालो में एक सज्जन ऐसे भी थे जो बगाल की कांग्रेस कमेटी के एक प्रमुख कार्यकर्ता थे। वे अक्सर ही उनसे रुपये ले जाया करते थे। यह सिलसिला एक लम्बे अरसे से चल रहा था। एक दिन मैंने उन्हे स्वभावत ही

टोक दिया कि आप इन महानुभाव को रुपये तो बराबर ही देते रहते है, पर क्या आपने कभी यह जानने की भी चेष्टा की है कि इन रुपयो का समुचित प्रयोग होता है अथवा नही। उन्होने कहा कि वे पूरे विश्वसनीय व्यक्ति हैं। सन्देह करने की कोई बात नही है। इस बात को २-४ महीने बीत गये। एक दिन मैं किसी कार्यवश उनके कमरे मे उनकी मेज के पास खडा था और वे टेलीफोन से बातें कर रहे थे। मेरा ध्यान एक पत्र पर पडा जो उनकी मेज पर मेरे करीब ही रखा हुआ था। जब उनकी दृष्टि मेरी ओर पडी तो उन्होने उस पत्र को उलटा कर वहा पर रख दिया और उस पर एक पेपरवेट रख दिया। मुझे कुछ उत्सुकता हो गयी कि उस पत्र मे ऐसी कौन सी बात थी जिसे वे मुझे जानने देना नही चाहते थे। उत्सुकता प्रतिक्षण बढती ही गयी। किन्तु तत्काल ही मुझे उस पत्र को पढने का अवसर प्राप्त हो गया। वे टेलीफोन से बातें कर चुकने के बाद पत्र को अपनी मेज की ऊपरवाली दराज मे रख कर बाथरूम मे गये। मैं पत्र का समाचार जानने के लोभ को रोक न सका। दराज को खोलकर जल्द ही उस पत्र की खास बातें पढ ली (यद्यपि मैं जानता था कि मेरा यह काम सर्वथा अनुचित था)। पत्र पढकर मन ही मन मुझे कुछ हसी आयी। उपरोक्त पत्र महात्मा गाधी के परम भक्त और अनुयायी श्री सतीशचन्द्र दासगुप्त ने उन्हे लिखा था और उसका साराश यह था कि अमुक व्यक्ति (जिनका नाम मुझे अच्छी तरह याद है किन्तु मैं लिखना उचित नही समझता) को अब आप और रुपये न दें, क्योकि उन्होने बहुत सी रकम गबन कर ली है। ये व्यक्ति वही सज्जन थे जिनके बारे मे मैंने उन्हे एक दिन टोका था।

घरेलू नौकरो की सुख-सुविधा का उन्हे हमेशा खयाल रहता था। इस विषय से सम्बन्धित एक छोटी सी घटना का मुझे आज भी अच्छी तरह स्मरण है। वे वर्ष मे १-२ बार घूमने-फिरने कलकत्ते के बाहर जाया करते थे। कभी पूजा की छुट्टियो के आस-पास और कभी बडे दिन की छुट्टियो मे। कई बार तो राची जाना होता था। अक्सर मुझे भी साथ ले जाया करते। एक बार की बात है। जाडे के दिनो मे वे सपरिवार राची गये। साथ मे मै भी था। शायद कुछ और लोग भी आ गये थे। जनवरी के दिन थे। कडाके की सरदी पड रही थी। हमलोग राची मे बिडलाजी की लालपुर की कोठी मे ठहरा करते थे। कोठी का अहाता बहुत बडा था। मुख्य द्वार से अन्दर कुछ दूर जा कर कोठी बनी हुई थी एव पीछे एक बहुत बडी जमीन मे फलो के वृक्ष दूर-दूर तक लगे थे। सामने एक छोटा सा बगीचा था। रात मे जाडा इतनी जोर का पडता था कि कभी हमलोग सूर्योदय के पहले उठकर कोठी के बाहर निकलते तो देखते कि घास पर ओस की बूदें जमकर हिम के छोटे-छोटे कणो मे परिवर्तित हो गई है। कोठी के बीचोबीच एक बडी बैठक तथा उससे सटे हुए दोनो ओर सोने के लिए बडे-बडे कमरे थे, जिनमे चार-चार मनुष्य भी पलग डालकर सुविधापूर्वक सो सकते थे। ऊपर एक तल्ले पर भी सोने के कमरे बने हुए थे। भागीरथजी तथा उनकी स्त्री और छोटे बच्चे ऊपर सोते थे तथा बाकी लोग नीचे। पीछे की ओर कोठी के दरवाजे से निकल कर और बरामदा पार कर कुछ खाली जमीन को पार करने के बाद फलो का बगीचा शुरू होता था। खाली जमीन

की एक ओर कुछ नये कमरे एव बाथरूम भी बन रहे थे। उन दिनो, आजकल की तरह कमरो से सलग्न बाथरूम नही थे। कोठी की दूसरी ओर सटा हुआ एक बडा सा स्थान था जिसमे रसोईघर, भण्डारघर, भोजन के लिए टाइल्स मे छाया हुआ एक बडा दालान और दालान के सामने एक बहुत बडा आगन था। कोठी के अन्दर से उस ओर जाने के लिए एक दरवाजा था, जिसमे से होकर हमलोग भोजन के लिये जाया करते थे। रसोईघर से फलो के बगीचे मे जाने के लिए भी पीछे की ओर एक दरवाजा बना हुआ था।

हम लोग सभी शाम को एक साथ घूमने के लिए निकलते थे तथा कुछ देर बाद लौटकर आते थे तो रात हो जाती थी क्योकि जाडे के दिन छोटे होते है। लौटकर कुछ देर विश्राम कर भोजन कर के कोठी की बैठक मे बैठे हुए गप-शप करते या किसी दिन कोई धार्मिक पुस्तक लेकर पढने बैठ जाते थे। सोने के पहले हमलोग कोठी के बाहर पीछे की ओर बगीचे मे ही एक-एक कर मूत्र त्याग करने के लिए जाते और फिर अन्दर आकर सो जाते थे। एक दिन रात को करीब साढे नौ बजे होगे जब हमलोग बैठक से निकल कर सभी कामो से निवृत्त हो कोठी के अन्दर आए तो सयोगवश मैं सबसे पीछे था। वे बरामदे मे खडे थे और अन्दर घुसते ही उन्होने मुझसे पूछा "तुम पीछे से आ रहे हो, तुम्हे बगीचे के पास कुछ दिखाई दिया ?" प्रश्न मुझे कुछ अटपटा-सा जान पडा क्योकि उन्हे अच्छी तरह मालूम था कि मैं भूत-प्रेत आदि पर विश्वास नही करता। मैंने सोचा कि इस प्रश्न मे कुछ गूढ रहस्य अवश्य है। जरा सी देर के बाद ही मैंने उत्तर दिया "हा एक चीज तो दिखलाई पडी और वह यह कि इस कडाके की सर्दी मे हमलोग जब गरम कपडे लादे हुए सोने के लिए रजाई और कम्बलो के अन्दर घुसने के लिए तैयार हैं, तब वह बेचारा 'मगरू' खुले आकाश के नीचे जमीन पर बैठा हुआ बर्तन माज रहा है और ठन्डे पानी से उन्हे धो कर अन्दर लाकर रखने के बाद ही खाना खायेगा।" मगरू वहां का मुंडा जाति का नौकर था जो कोठी मे ही रहता था। यह सुनकर वे कुछ गम्भीर हो कर सीढियो से चलकर ऊपर सोने चले गये और मैं नीचे अन्दर आकर बैठक का दरवाजा बन्द कर अपने स्थान पर सो गया। दूसरे ही दिन सवेरे उन्होने आदेश दिया कि शाम का भोजन जल्दी तैयार हो जाना चाहिए, तथा जल्द ही सभी को भोजन से निवृत्त हो जाना चाहिए, तथा मंगरू के लिए जूठे बर्तन मलने तथा उन्हे धोने के वास्ते गरम पानी की व्यवस्था हो जानी चाहिए। मुझे भी यह आदेश मिला कि मैं बाजार जाकर एक मोटा और अच्छा सा ऊनी स्वेटर लाकर दू। कहना अनावश्यक है कि उनके इन आदेशो का पूरी तौर से पालन हुआ।

अस्पृश्य लोगो के प्रति उनके हृदय मे कैसे विचार थे, इसका भी एक दृष्टान्त मेरे सामने आया। राची के जिस स्थान का मैंने ऊपर वर्णन किया है, वहा के रसोई-घर के पिछले दरवाजे से निकलने तथा दाहिनी ओर मुडने पर पास ही कोठी के भगी की कोठी बनी थी, जिसमे भगी सपरिवार रहता था। वह राजस्थान का रहने वाला था। एक दिन रात को भोजन करने के पश्चात मैंने देखा कि भागीरथजी सदा की भाति कोठी के अन्दर न जाकर पिछले दरवाजे मे बाहर निकले। मैंने सोचा कि शायद नौकरो को देखने गये होगे। जब कुछ देर तक लौट कर नही आये, तो मैं भी

पीछे की ओर उन्हे देखने के लिए चला गया। अधेरा था। उन दिनो राची मे बिजली नही थी। सामने एक लालटेन रखे हुए मंगरू बर्तन माज रहा था। जब नजर इधर-उधर दौडाई तो वह दिखायी तो न दिये किन्तु उनकी धीरे-धीरे बोलने की आवाज मुझे सुनाई पडी जो कोठरियो की ओर से आ रही थी। मैं भी वहा पहुचा। देखा, भगी बीमार पडा है और वे उसके पास जाकर उससे उसकी बीमारी की बाबत पूछ-ताछ कर रहे थे। मेरे वहा पहुचने पर उन्होने कहा कि इससे बीमारी के विषय मे बाते पूछो, ताकि पता लगे कि क्या बीमारी है। मुझे होमियोपैथी की पुस्तकें पढने मे बहुत रुचि रहती थी (आज भी है)। इसलिए बीमारियो के विषय मे कुछ-कुछ जानकारी रखता था। भगी की बाते सुनकर मैंने उन्हे कहा कि इसे मलेरिया है। इसकी व्यवस्था कल हो जायेगी। दो-तीन दिनो मे ही वह ज्वर से मुक्त हो गया।

चोर जैसे अपराधी के प्रति भी उनमे मानवता के भाव रहते थे। एक बार की बात है, जब वे जकरिया स्ट्रीट स्थित बिडला बिल्डिग मे रहा करते थे। जाडे के दिन थे। रात के समय सडक पर किसी भारी वस्तु के गिरने का शब्द सुना। दौडकर बाहर गये तो पता चला कि सामने के मकान से एक व्यक्ति जो सम्भवत. चोरी करने के लिए चढ रहा था, फिसल कर नीचे गिर पडा। लोग इकट्ठे हो गये। किसी ने उसे गालिया दी, किसी ने उसे पीटने की सलाह दी, किसी ने कुछ और किसी ने कुछ कहा। उन्होने सबको रोककर कहा कि इसे चोट तो लगी है ही, यह जाडे से भी ठिठुर रहा है। मैं इसे कम्बल लाकर ओढाता हू— और उन्होने घर के अन्दर से एक कम्बल लाकर उसे ओढा दी। लोगो का क्रोध शायद शान्त हो चला। मुझे पता नही कि बाद मे क्या हुआ।

अपरिचित साधारण मनुष्यो के प्रति भी उनके भाव सम्मानपूर्ण रहते थे। पूजा की छुट्टियो के दिनो मे हमलोग राची गए हुए थे। दोपहर मे भोजन के उपरात कोठी के सामने वाले मैदान मे एक छायादार जगह पर दरी और चादरें बिछाकर गप-शप कर रहे थे कि एक मनुष्य साधारण से कपडे पहने हुए नजदीक आया और उसने दुर्गापूजा के लिए कुछ चदा मागा। उन्होने मुझसे अन्दर जाकर उनकी जाकेट की जेब से दो रुपये निकालकर उसे दे देने को कहा। मैं रुपये निकाल लाया तथा नजदीक आकर उसकी ओर जरा दूर से ही रुपये फेक दिए। वह उन्हे रसीद देकर चला गया। बाद मे वे मुझसे बोले "देखो, किसी के कुछ मागने पर देना या न देना तो दाता की इच्छा पर निर्भर करता है, किन्तु यदि दिया जाय तो इस तरह से दिया जाय कि दाता के मन मे अभिमान एव लेने वाले के मन मे हीनता का भाव उत्पन्न न हो। तुमने उसे रुपये दिये, वह देने का उचित तरीका नही था।"

सार्वजनिक उपयोगी सस्थाओ मे न केवल स्वय ही दान देते थे, बल्कि दूसरो से भी दिलवाते थे। कई शिक्षण सस्थाओ एव चिकित्सा कार्य करने वाली सस्थाओ के लिए तो वे अनवरत कुछ न कुछ करते ही रहते थे। इनमे राजस्थान मे हीरालालजी शास्त्री द्वारा स्थापित वनस्थली विद्यापीठ एव सीकर स्थित यक्ष्मा सेनेटोरियम ऐसी ही सस्थाए है। वे जिस दिन बीमार हो कर शैयाशायी हुए उसके तीन चार दिनो

पहले मैं अचानक उनसे आफिस मे मिलने चला गया था। बातचीत के सिलसिले मे उन्होने मुझसे कहा कि वे तीन-चार दिनो बाद सीकर जाए गे।

वे जब कलकत्ते मे रहते तो प्राय ही दोपहर के बाद आफिस मे आकर बैठते और कई लोग उनसे मिलने आ जाया करते थे। मैं भी अक्सर ८-१० दिनो से उनके पास चला जाया करता था। पिछली बार जब मैं उनसे मिलने गया था और उन्होने मुझसे कहा था कि वे ३-४ दिनो मे सीकर जाए गे तो मैने यह सोचकर कि वे सीकर चले गये होगे, उनसे मिलने की कोई चेष्टा न की। करीब एक महीने बाद उनके पुत्र तुलसीदासजी से वे बातचीत के सिलसिले मे मुझे यह जानकर दु ख और आश्चर्य हुआ कि वे एक महीने से घर मे बीमार पड़े हुए है और कमजोर भी इतने हो गए हैं कि बातचीत करने मे भी कष्ट का अनुभव करते है। मैं तत्काल घर पर उनसे मिलने गया और मुझे उनसे मिलकर और भी दु ख हुआ कि मैंने उन्हे कष्ट दिया ही क्यो ? मेरे आने की खबर पाकर वे नर्स की सहायता से अपने कमरे से बाहर बरामदे मे कुर्सी पर आकर बैठे और मुझे बुलवाया। कुछ मिनटो तक बहुत धीरे-धीरे बातचीत की। पर मैं जल्दी ही उठकर चला आया क्योकि उन्हे बोलने मे कष्ट हो रहा था। बाद मे मैं कई बार उनके घर गया किन्तु समाचार पूछ कर ही दु खित मन से लौट आया करता था। इस बीमारी से वे छुटकारा नही पा सके।

व्यावसायिक क्षेत्र मे भी वे एक अति सम्मानित व्यक्ति माने जाते थे। इसका कारण जो मैं समझता हू वह यह था कि वे कभी गलत बात कह कर या किसी से छल-कपट की बातें कर क्रय-विक्रय का काम नही करते थे। स्पष्टवादिता के कारण व्यवसायीगण उनकी बात का पूरा विश्वास करते थे।

मैं करीब ४० वर्षो से श्री नथमलजी सेठी के नलिनी सेठ रोड स्थित मकान मे सपरिवार रहता हू। वे पाट के एक कुशल व्यवसायी, व्यवहार के अति उत्तम एव शिष्टभाषी, सम्मानित सज्जन हैं। अतएव उनका एव भागीरथजी का परस्पर आकर्षण रहना स्वाभाविक ही था। मैं जब उनसे मिलने जाता था तो वे अक्सर नथमलजी के बारे मे पूछा करते।

नथमलजी के ज्येष्ठ भ्राता (स्वर्गीय) गणपतरामजी सेठी भी पाट के एक कुशल एव बड़े व्यवसायी थे। अस्वस्थता के कारण बाद मे उन्हे व्यवसाय से अवकाश ग्रहण कर कलकत्ते से दूर स्वास्थ्यप्रद स्थानो मे रहना पडता था। कभी-कदाचित यहा भी आ जाया करते थे। नथमलजी ने पहली बार उनसे मेरा परिचय कराते हुए कहा कि मैं भागीरथजी के पास वर्षो से काम करता आ रहा हू और उनके विश्वस्त एव प्रधान कर्मचारियो मे से हू तो वे बड़े ही प्रसन्न हुए। एक बार जब वे भागीरथजी से मिलने गए तो मुझे भी साथ लेते गए। रास्ते मे उनके विषय मे बाते होती रही। उनकी भागीरथजी के प्रति इतनी बडी श्रद्धा थी कि बातचीत के सिलसिले मे उन्होंने मुझसे कहा कि वे उन्हे "छोटा गाधी" ही समझते हैं।

विनोदप्रियता तो भागीरथजी के स्वभाव का एक अग ही बन गयी थी। विषाद के समय भी कभी अवसर आ जाता था तो वे विनोद करने से चूकते नही थे। आफिस मे काम करते समय भी वे कभी-कभी अवसर के उपयुक्त चुटकुले हमलोगो

को सुना दिया करते थे। मुस्कुराहट तो उनके मुख पर सदा ही बनी रहती थी। किसी आगन्तुक के साथ मुस्कुराहट से ही बात आरम्भ करते।

एक बार की बात है। वर्षा के दिन थे। शाम को घर जा रहे थे। बीच मे गाडी से उतर कर टहल लिया करते थे। सयोगवश एक दिन उन्होने मुझे भी साथ ले लिया। दोनो ही गाडी से उतर कर पगडडी छोड बीच मैदान मे चलने लगे। मैदान मे कुछ कीचड भी हो गया था। उन्होने कहा "शिखरचद, सावधान होकर चलना, कीचड बहुत है, कही फिसल न जाना" इतना कहना था कि वे स्वय ही कीचड मे फिसल कर गिर गए। चोट तो जरा भी नही आयी, किन्तु कपडे खराब हो गए। हंसकर बोले "उपदेश देना तो सहज है किन्तु उस पर अमल करना मुश्किल है।"

सच पूछिए तो सार्वजनिक काम के सिलसिले मे ही उनकी आयु मे क्षीणता आयी। राजस्थान जलबोर्ड के काम से जीपगाडी द्वारा (स्वर्गीय) रामेश्वरजी टाटिया के साथ गावो मे भ्रमण किया करते थे। एक बार वे दोनो ही एक बडी दुर्घटना मे फस गए। उनकी जीपगाडी किसी एक सामने से आती हुई ट्रक से टकरा गई। फलत दोनो ही जीप से उछल कर दूर जा गिरे। भागीरथजी के एक पैर की जाघ की हड्डी टूट गई। रामेश्वरजी को भी काफी चोट आयी किन्तु साघातिक नही। जाघ की हड्डी टूट जाने से उन्हे एक लम्बे अरसे तक पलग पर सीधे पडे रहकर, उसमे एक बोझ लटका कर रहना पडा जो अत्यन्त कष्टकर था। यद्यपि चिकित्सा से वे एक प्रकार से अच्छे हो गए किन्तु इस दुर्घटना के बाद ही उनका स्वास्थ्य गिरता गया जो कभी सुधरा नही। फिर भी वे सीकर के यक्ष्मा आरोग्य भवन के लिए काफी परिश्रम करते रहते, वहा जाकर उसे सभालते और उसके विस्तार के लिए सतत् प्रयत्नशील रहते थे। देश या समाज मे ऐसे महान व्यक्तियो का स्थान रिक्त होने से उसकी पूर्ति असम्भव नही तो भी अति कठिन होती है।

एक शायर ने कहा है :—

यू तो जीने के लिये सभी जिया करते है।
मगर लाभ जीवन का कितने लिया करते है।
मृत्यु से पहले भी मरते है हजारो लेकिन।
जिन्दगी उनकी है जो मर कर जिया करते है।

—: ० :—

श्री शिक्षायतन की भूतपूर्व प्राचार्या
श्रीमती लतिका नाग

नारी समाज के सेवाव्रती

भागीरथजी चले जायेंगे, इसके लिए मैं प्रस्तुत नहीं थी। जानती हू आदमी अमर नही है, लेकिन क्या हमारे अभागे देश से सभी पुण्यात्माए उठती जायेंगी ? मेरा मन तो यह मानना नही चाहता कि भागीरथजी से कभी फिर भेंट नही होगी और आवश्यकता पडने पर उनका उपदेश अब नही मिलेगा।

भागीरथजी हमारे शिक्षायतन के अध्यक्ष ही नही थे, उसमे ओत-प्रोत भी थे। सीतारामजी और भागीरथजी बचपन के मित्र थे। एक ने जो काम शुरू किया, दूसरे ने उसमे पूरी तरह योग दिया, उसे अपना ही काम माना। श्री शिक्षायतन के काम के सिलसिले मे आज से २५ वर्ष पहले मेरा उनसे परिचय हुआ था। इस दौरान उनके निकट आने के बहुत अवसर भी नही मिले, लेकिन यह जानने में कोई कठिनाई नही हुई कि वे मूक सेवक थे, अत्यन्त अल्पभाषी थे किन्तु काम मे उनका उत्साह अपरिसीम था।

हमारे देश मे जिन्होंने नारी समाज की सेवा का व्रत लिया था, उन सभी की दृष्टि सजग थी और हृदय था उदार। ऐसे लोगो ने असंख्य कठिनाइयो और विपत्तियो के बावजूद अपने पैर वापस नही मोडे और अपनी शक्ति के बल पर देश के नारी समाज को उन्नत करने की चेष्टा जारी रखी। श्रद्धेय भागीरथजी इसी गोत्र के व्यक्ति थे। हम मे से जिनको उनको जानने का अवसर मिला, वे निश्चय ही सौभाग्यशाली है।

हमारे समाज मे आज भी नारी लाञ्छित और प्रताडित है। भागीरथजी की मृत्यु से समाज को तो क्षति हुई ही है लेकिन नारी समाज की क्षति ज्यादा है। क्या कभी ऐसा हुआ कि विपत्ति मे किसी नारी ने उनसे सहायता मांगी हो और उसे न मिली हो ?

एक छोटी सी घटना की यहां चर्चा करूगी। घटना छोटी सी है लेकिन यह उनके सवेदनशील मन की थोडी झलक जरूर दे जायेगी। बहुत वर्ष पहले की बात है। एक दिन किसी विशेष कारण से शिक्षायतन की कार्यकारिणी की सभा बहुत देर तक चलती रही। रात हो गयी थी। मैं मन ही मन सोच रही थी कि इतनी रात अकेले टैक्सी मे घर लौटना ठीक नही होगा। कैसे घर जाऊ, सोच नहीं पा रही थी। तब भागीरथजी और कार्यकारिणी के सदस्यो से बहुत सामान्य सा परिचय था। भागीरथजी कार्यकारिणी के सदस्यो से बातचीत कर रहे थे। मैं धीरे-धीरे शिक्षायतन के फाटक की ओर मन ही मन क्या करू, सोचते हुए बढ रही थी। ऐसे मे भागीरथजी ने मुझे बुलाया और कहा कि मैं अकेली नही जाऊ, उनकी गाड़ी मे ही जाऊं। वे

अपने सहयोगियो से बात कर रहे थे किन्तु उनकी दृष्टि सजग थी। क्या संवेदनशीलता और सहृदयता न होने पर उन्हे मेरी कठिनाई का आभास होता ? छोटी घटना है पर उसका तात्पर्य बडा है।

आज यह सब लिखते हुए यही लगता है कि उनके प्रति श्रद्धाजलि तभी सार्थक होगी जब हम अपने कर्मक्षेत्र और सामाजिक जीवन मे उनके आदर्श से अनुप्राणित हो तथा अपनी शक्ति के अनुसार हमारे अभागे नारी समाज की सेवा कर सकें। हमारे नारी समाज की सभी समस्याए तो बनी हुई हैं। दहेज प्रथा असहाय, निरपराध और अल्पवयस्क किशोरियो के लिए जीवन-मरण की समस्या बनी हुई है। इस समस्या से जूझने के लिए भागीरथजी जैसे पुरुपो की जरूरत है। उनकी कमी बहुत तीव्रता से महसूस होती है। क्या हम भारत के अभागे नारी समाज के लिए कुछ भी नही कर पायेंगी ?

बचपन मे स्कूल मे एक अगरेजी कविता पढी थी जिसका भाव यह है कि 'जिस तरह एक दीपक दूसरे दीपक को आलोकित करता है, लेकिन अपने आलोक को कम नही करता, उसी तरह सत्य व उदारता दूसरो मे भी सत्य व उदारता को जन्म देती है।' हमारे जीवन मे भी भागीरथजी के जीवन से यही आलोक आये। हम मे साहस के साथ अन्याय के विरुद्ध खडे होने का सकल्प जगे।

—:०:—

कानोड़िया महिला महाविद्यालय, जयपुर की प्राचार्या
श्रीमती हेमलता प्रभु

अकृत्रिम व्यक्तित्व

भागीरथजी कानोडिया ने अपने पीछे एक गौरवमय स्मृति छोडते हुए लम्बे जीवन से विदा ली है। कानोडिया महाविद्यालय की स्थापना के दिन वह किसी जरूरी कारण से उपस्थित नही हो सके थे। लेकिन एक महीने के भीतर ही वह कालेज आये। अपने सीधे-सादे स्वभाव और स्पष्टवादिता की उन्होने उस दिन हम पर जो अमिट छाप छोडी थी उसकी मुझे बराबर याद है। हम सब को उनके अकृत्रिम और विना रोब-दाब वाले व्यक्तित्व के पीछे जो सच्चाई और दृढता थी, उसका आभास मिल गया था। हमे लगा कि कालेज इस महान व्यक्ति के मार्गदर्शन मे उज्ज्वल भविष्य की आशा कर सकता है।

इसके बाद वह कई बार कालेज आये। उसकी सचालन समिति की बैठको की तब तक अध्यक्षता करते रहे जबतक कि शारीरिक रूप से असमर्थ न हो गये। हम जब भी उनसे मिलते हमारा हृदय खिल उठता। वह एक दरियादिल व्यक्ति थे।

कालेज, उसके कर्मचारियो और छात्राओ के प्रति उनकी हित-चिंता की मुझे हमेशा याद आती रहेगी। एक बार किसी ने सुझाव दिया कि कालेज को अब फीस लेना शुरू कर देना चाहिए तो उन्होने जोर देकर कहा कि राजस्थान जैसे राज्य मे लडकियो के लिए शिक्षा मुफ्त होनी ही चाहिए। जब कालेज मे छात्राओ की सख्या बढने लगी और स्थान की कमी होने लगी तो उन्होने मुझसे कहा कि आशा है आप गरीबो और विधवाओ की सतानो को प्रवेश देने से इन्कार नही करेंगी। इनके लिए प्रवेश के जो कडे नियम हैं, वे लागू होने नही चाहिए। सम्पन्नता के परिवेश मे रहने के बावजूद दीन दुखियो के कष्ट की आज की दुनिया मे उनकी यह आत्मानुभूति एक विरल वस्तु है।

कालेजो के सस्थापक व्याख्याताओ की नियुक्ति और छात्रों के प्रवेश के बारे मे दखलदाजी करते देखे गए हैं। भागीरथजी ने कभी ऐसा नही किया। कालेज मे नौकरी चाहने वाले, नौकरी न मिलने पर असतुष्ट हो उन्हे शिकायत करते तो उस शिकायत को वह मेरे पास जानकारी के लिए भेज देते। उन्होने इस तरह के मामलों में मुझसे कभी सफाई नही मागी। उनका यह रुख हमारे आत्मविश्वास को बढाने और उनके विश्वास के अनुरूप हमारे काम करने मे जबरदस्त रूप से सहायक रहा।

भागीरथजी की अकृत्रिमता, सहजता और सरलता उनके साधु स्वभाव के कारण थी। इस महान व्यक्ति को कालेज हमेशा श्रद्धा सहित याद करता रहेगा।

—.०—

श्री शिक्षायतन कालेज की प्राचार्या

श्रीमती लीना राय

हमारे अध्यक्ष

"जीवन एक यात्रा है जो घरकी तरफ मुखातिब है (लाइफ इज ए वायेज दैट इज होमवार्ड बाउ ड)।" कानोडियाजी अब नही हैं।

उनको अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करने के लिए जब मैं यह लिख रही हू तो मेरा मन भरा आ रहा है। अब हमारे उत्सवो और आयोजनो मे वह लम्बा विनम्र बुजुर्ग कभी नही दिखेगा। स्वाधीनता-दिवस, गणराज्य-दिवस और हमारे वार्षिकोत्सव पर उनकी हमेशा याद आयेगी। अपने जर्जर स्वास्थ्य के बावजूद इनमे वह हमेशा उपस्थित रहते। उपस्थित रहना "अनिवार्य" था, क्योकि वह उस पीढी के थे, जो आचरण के कुछ सिद्धान्तो पर अडिग थी। मुझे याद आता है कि अपनी मृत्यु से एक वर्ष पहले जब वह स्वाधीनता-दिवस के उत्सव मे शामिल होने आये तो उन्होने देखा कि हमारे दफ्तर के बहुत कम कर्मचारी उपस्थित हैं। उन्होने मुझसे पूछा कि इतने लोग अनुपस्थित क्यो है। मैं कोई जवाब नही दे पाई। उत्सव के बाद जब वह कार मे बैठने लगे तो उन्होने बहुत दुखी होकर कहा "हम कभी ऐसे अवसरो पर अनुपस्थित रहने की सोच भी नही सकते थे।"

मैं उन्हे हमारे कालेज की सचालन समिति के अध्यक्ष के रूप मे ही जानती थी। उनके व्यवहार से कभी मुझे मालूम ही नही हुआ कि वह कोई बडे आदमी हैं। उनकी समाज-सेवाओ का बहुत कम लोगो को पता है क्योकि वह प्रचार से दूर भागते थे। आज के आत्म-प्रचार के इस युग मे उनके जैसे व्यक्ति दुर्लभ होते जा रहे हैं। सचालन समिति की बैठको मे मुझे यह देखकर अचरज होता था कि उनके जैसा बुजुर्ग एकदम नये विचारो को इतनी सहजता और खुशी से कैसे स्वीकार कर लेता है।

कालेज का नतीजा यदि किसी साल खराब रहता तो वह चिंतित हो उठते, पूछते ऐसा क्यो हुआ। कभी-कभी वह मेरे पास दफ्तर मे आ जाते और पूछते, क्या कुछ नम्बरो से फेल हुई उस गरीब लडकी को अगली कक्षा मे चढाया नही जा सकता ? एक बार इस तरह का अवसर आने पर मैंने उनसे कहा, हमारे अध्यक्ष के रूप मे आप जानते हैं कि एक बार परीक्षा-फल निकाल देने के बाद हम कुछ नही कर सकते। मेरे यह कहने पर धीरे से अपनी कुरसी से उठे और अपने हमेशा के शात व सयत लहजे से बोले जानती हो, "एक गरीब लडकी का फेल होना उसकी माता-पिता को कितनी मुसीबत मे डाल देता है।" ऐसे अवसरो पर उनके शात और सयत व्यक्तित्व के पीछे करुणा की जो अजस्र धारा बहती रहती थी, उसकी अनायास झलक मिल जाया करती थी। यह सोचते हुए दुख होता है कि जब कालेज अपने जीवन के २५ वर्ष पूरे करेगा, तब वह हमारे बीच नही होगे, लेकिन जानती हू कि उनका आशीर्वाद हमेशा रहेगा।

जीवन का लक्ष्य पूरा हुआ, जो किया वह अच्छी तरह किया, अब विश्राम।

—: o :—

संस्कृति की आचार्य, सामाजिक कार्यकर्तृ
श्रीमती सरस्वती कपूर

'पद्म पत्र मिवाम्भसा'

शान्ति निकेतन मे "हिन्दी भवन" के निर्माण के सिलसिले मे प० बनारसीदासजी चतुर्वेदी जी हिन्दी प्रेमियो की एक टीम के साथ शान्तिनिकेतन गये थे। वहीं स्व० भागीरथजी कानोडिया के साथ मेरा प्रथम साक्षात्कार हुआ था। स्व० हजारीप्रसादजी ने कृपापूर्वक अतिथेय की भूमिका निबाही थी। पुण्यश्लोक रवीन्द्रनाथ ठाकुर के श्रीमुख मे वैशाख पूर्णिमा के शुभ दिन आम्र कुज मे छोटी सी दीपिका के प्रकाश में वहा की अन्तेवासिनियो के नृत्य-गीत-वादित्र के जो मधुर स्वर उस दिन सुने थे वे सदा के लिये अविस्मरणीय है।

अगले दिन पूज्य चौबेजी अपने सभी यजमानो के साथ पूज्य गुरुदेव के उत्तरायण मे गये, सभी का उनसे परिचय कराया। प्रसगवश अग्रेजी मे वार्तालाप का निषेध करते हुए पूज्य गुरुदेव ने कहा कि या तो आपलोग बगला मे बातचीत कीजिये, नही तो फिर हिन्दी मे ही बात कीजिये, हिन्दी मैं समझ तो ठीक लेता हू— हा, उत्तर बगला मे ही दूगा। चौबेजी बोले 'मैं थोडी-थोडी बगला बोलना सीख गया हू"। पूछने पर उन्होने बताया "आमरा मे मानुष" (हम लोग स्त्री है, बगला मे 'मे मानुष' का अर्थ स्त्री जाति होता है)। उत्तरायण मे हसी का झरना फूट निकला, परिणामस्वरूप सभी लोग परस्पर निसकोच मित्रवत् हो गये। हमारी शान्ति-निकेतन की यात्रा सुखद और अविस्मरणीय रही।

समय बीतता गया, ऐसा भी एक अवसर आया जब मैं "कालिम्पोग" की विषम परिस्थितियो मे थी। उस समय मैं सोच भी नही सकती थी कि मेरी विपन्न अवस्था मे स्वर्गीय भागीरथजी को मेरी याद आयेगी। क्रमश मैंने श्री कानोडियाजी की उस अविस्मरणीय विशेषता का अनुभव किया कि जिसे वे पात्र समझ लेते थे, उनकी सहायतार्थ स्वत प्रस्तुत हो जाते थे।

ऐसा भी समय आया कि मैं उनके यहा प्रतिदिन जाती थी। एक दिन प्रसगवश घर की बहू-बेटियो के साथ वैदिक-साहित्य, उपनिषद् दर्शन, आदि पर चर्चा चल पडी। आर्यसमाजी विचार धारा से जुडी होने के कारण इन विषय मे मैं कुछ साधिकार बता सकती थी। 'ईशावास्योपनिषद' यजुर्वेद का चालीसवा अध्याय है, उस दिन इसी उपनिषद् पर मेरी वाणी प्रस्फुटित हो गई। अपने ढग से कई मन्त्रो की व्याख्या-समीक्षा कर दी। परिणामस्वरूप सभी बहुएं बहुत प्रभावित हो गई। सम्भवत इसकी चर्चा कुछ पूज्य कानोडियाजी से हुई होगी, अगले दिन अलकत्ता कानोडिया-हाउस मे प्रविष्ट होते समय पूज्य कानोडियाजी अपने कमरे आराम से टहलते हुए मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। देखते ही बोले—

"आज तो अपने गुणो की गठरी का कुछ प्रसाद हमे भी देना होगा।" सांझ ढल चुकी थी, रात घिरी आ रही थी, मैं कुछ अप्रस्तुत-सी ही बोली—

"एकोहि दोषो गुण सान्निपाते,
निमज्जतीन्दो रिति यो बभाषे,
नून न दृष्ट कविनाऽपि तेन
दारिद्र्य-दोषो गुण राशि नाशी।"

पूछने पर मैंने बताया कवि कहता है कि "गुणो के धनी व्यक्ति मे बडे से बडा दोष भी छिप जाता है, जैसे चन्द्रमा मे कलक, पर उन कवि महोदय ने यह कभी नही सोचा कि दारिद्र्य-गरीबी एक ऐसा दोष है, जिसके चलते गुणो की राशिया भी नष्ट हो जाती है।"

स्व० कानोडियाजी भावुक हो उठे, अन्तिम पद का अर्थ उन्होने दुबारा सुना। मैं आगे बढ गई। मैंने देखा कि वे मुझसे पूछे बिना ही प्राय मेरे हित के लिये प्रस्तुत रहते थे। मेरी तीनो कन्याए विभिन्न विद्यालयो मे पढ रही थी। एक दिन उन्होने कहा, "अगले रविवार को सगीत श्यामला शिक्षायतन, मे चली जाना, लडकियो को भी साथ ले जाना।"

मैं वहा गई। वहा की मुख्य सचालिका श्रीमती सोमा तिवारी जी ने पूछा, कन्याए क्या-क्या सीखना चाहती है? मैंने बताया तो उन्होने मेरे घर का पता पूछा, सगीत श्यामला की बस उन लोगो को घर से लाने पहुचाने को थी। इसके अतिरिक्त प्रवेश-फीस, शिक्षा-फीस, बस-फीस, इत्यादि के विषय मे उन्होने कुछ भी नही पूछा। निश्चय ही स्व० कानोडियाजी ने उन्हे यही निर्देश दिया होगा। मेरी लडकिया वहा सालो गई, और विभिन्न ललित कलाओ मे विशेष योग्यता प्राप्त कर सम्मानित हुई।

स्वर्गीया भगवानदेवीजी सेकसरिया का अकारण ही मुझ पर स्नेह था, मैं जब-तब उनके दर्शनार्थ जाया करती थी। उनके स्वर्गवास का समाचार पाकर मैं पूज्य सेकसरियाजी के यहा गई थी। वहा से लौटते समय मन बहुत खिन्न था। मैं सीधी बाहर निकल ही रही थी कि स्वर्गीय रामेश्वरजी टाटिया, स्वर्गीय भागीरथजी कानोडिया एव पूज्य श्री सीतारामजी सेकसरिया सामने बैठक मे ही दिखाई दिए। औपचारिक वार्तालाप के अनन्तर स्व० टाटिया जी बोले—"अब तो आपके बेटे-बेटियो के विवाह आदि भी हो गये, गृहस्थी भी हल्की हो गई। अब तो आप छोडिये घर-द्वार और जैसिडीह मे प्राकृतिक चिकित्सा-भवन का चार्ज सम्हालिये। प्राकृतिक चिकित्सा मे आपकी पुरानी रुचि भी है, बस अब आप तत्काल स्वीकृति दीजिये।"

मैं निरुत्तर। दो मिनट तो बीते ही होगे, कानोडियाजी बोले, "सरस्वती बहन कही जाने वाली नही हैं। पुत्र-पुत्रियो से उऋण हो चुकी, पर अभी नाती-पोतो की चिन्ता भी तो करनी है न?" स्व० कानोडियाजी के शब्दो मे हो सकता है कि व्यग-सा भी रहा हो। पर मेरी तो आजतक यही मान्यता है कि गृहिणी का सर्वप्रथम कर्त्तव्य घर ही है। समय-समय पर वह बाहर भी सहायक हो सकती है, पर उसका

वास्तविक कर्म-क्षेत्र उनका घर ही है। इस विषय में बहुत कुछ लिखना चाहकर भी केवल इतना ही कहना चाहती हूं कि, "मातृवान् पितृवान् आचार्यवान् पुरुषोवेद।" यह एक स्वतंत्र विषय है।

स्व० कानोडियाजी में प्रदर्शन-प्रशंसा से दूर रहने की प्रवृत्ति इतनी अधिक थी कि वे जिनकी सहायता करते थे, वह भार से दब नहीं जाता था, वे स्वयं उस भाव से शून्य अनजान दर्शक की तरह सर्वदा निर्लिप्त, "पद्म पत्र मिवाम्भसा," जल में रह कर भी जल से पृथक कमल के पत्तों की तरह रहते थे। आत्मश्लाघा की भावना उनमें थी ही नहीं। दान-करना वह भी ऐसे पात्र को जो कुछ प्रत्युपकार भी न कर सके, और इतना सब कुछ करके भी स्वयं मात्र दर्शक होकर रह जाना, स्वयं को कभी प्रगट नहीं करना, निश्चय ही यह उनकी चारित्रिक विशेषता थी।

स्व० कानोडियाजी में यों तो अनेक उत्तम गुण थे ही, सर्वोपरि थी उनकी गुणग्राह्यता। मेरे वे परम हितैषी, एवं स्नेही मित्र थे। मैं उनके मित्र-भाव के प्रति सदा कृतज्ञ हूं, रहूंगी भी।

मैं पूज्य बनारसीदास जी की कृतज्ञ हूं, उन्होंने जिन सदाशयपूर्ण व्यक्तियों से मुझे आत्मीयता रखने की प्रेरणा दी, वे मेरे लिए बहुत ही अच्छे मित्र सिद्ध हुए। परमपिता स्व० कानोडिया जी की आत्मा को चिर शान्ति एवं सद्गति प्रदान करें।

—:•:—

संगीत-श्यामला की संस्थापक-संचालक
श्रीमती सोमेश्वरी तिवारी

संस्कृति-पद्म-पल्लव

पूज्य बाबूजी (स्व० भागीरथजी) पिछले २५ वर्ष से हमारे मार्ग-दर्शक थे। वह सिर्फ सत्परामर्श ही नही देते बल्कि मित्र और चिन्तक के रूप मे सुरक्षा की भावना के साथ सकल्प-शक्ति भी प्रदान करते थे। हमे जब भी उनकी जरूरत होती तो उन्हे हमेशा अपने पास पाते, हर अच्छे काम मे मदद देने के लिए वह हमेशा तैयार रहते और हमे बताते कि किस प्रकार हमारी योजनाए सफल हो सकती हैं।

मेरी बाबूजी से पहली मुलाकात मारवाडी छात्र सघ के एक समारोह मे हुई थी जो मुझे कलकत्ता विश्वविद्यालय की परीक्षा मे स्वर्ण-पदक प्राप्त करने पर बधाई देने के लिए आयोजित किया गया था। मेरी तब नयी-नयी शादी हुई थी और भागीरथजी और सीतारामजी की मशहूर जोडी के सामने मैं कुछ घबरा सी गयी थी। उस वक्त मैंने सोचा भी न था कि ये दोनो सगीत श्यामला की स्थापना करने के हमारे सपने को साकार करेंगे।

मुझे संगीत श्यामला द्वारा शिक्षायतन मे आयोजित पहली सगीत गोष्ठी की याद आती है। इसमे सलामत अली और नजाकत अली की प्रसिद्ध जोडी ने गाया था। गोष्ठी के बाद बाबूजी और सीतारामजी ने दूसरे दिन सुबह मुझे मिलने को बुलाया और गोष्ठी की प्रशसा की। दोनो ने हमारे काम मे बडा ही उत्साह दिखाया। बरसो बाद जब दिल्ली मे जमीन खरीद कर सगीत श्यामला सास्कृतिक केन्द्र की इमारत बनाने की योजना बनी तब भी बाबूजी का उत्साह पहले जैसा ही था। जब भी मैं उनसे मिलती तो वह पूछते "दिल्ली डेवलपमेंट अथारिटी से तुम्हे जमीन कब मिल रही है?" मैं कहती "मैंने कई लोगो से बातचीत की है, जल्द ही कुछ हो जायेगा।" हर बार जब दिल्ली आते तो मुझसे पूछते "काम कितना बढा?" मुझे इस बात का बहुत दुख होता कि सरकारी काम मे इतनी ज्यादा देर लग गयी कि बाबूजी को यह काम अधूरा छोड चले जाना पडा।

सच, हम अनाथ हो गये। दुनिया पहले की तरह ही चल रही है लेकिन हमारे हृदय मे एक ऐसा शून्य घर कर गया है जो भरता नही।

—: ० :—

अभिनव भारती बाल मन्दिर की संस्थापक-मंत्री

श्रीमती ज्ञानवती लाठ

प्रेरणास्पद जीवन

जिस व्यक्ति ने अपने कार्यों का न कभी प्रदर्शन किया, न शब्दो मे उसकी चर्चा की, उसके लिए लिखना मुश्किल है, यह सभी समझ सकते हैं। कुछ लोगो की बातचीत, चर्चा शब्दो मे उतार सकते हैं, तो कुछ लोगो के कार्यो के प्रदर्शन अपने आप बोलते रहते हैं। मैं स्व० भागीरथजी से इतना मिलती थी परन्तु मुझे उनके द्वारा सीकर के अस्पताल के लिए भरी धूप मे यात्रा कर के रुपये इकट्ठे करना, या उसके बारे मे सब समय सोचना और उसकी प्रगति मे अपने को लगाए रखना, यह अनायास उन्ही के बरामदे मे अन्य किसी से सुन कर ही मालूम हुआ। और तो छोडिए, उनका सगीत-श्यामला के सस्थापक-सभापति होने का कितने लोगो को मालूम है? उनकी पुस्तक भी किसी अन्य व्यक्ति द्वारा पढने को मिली थी, बाद मे मुझे इतनी अच्छी लगी कि खरीद ली। उस पुस्तक से ही उनके हृदय की विशालता की झलक मिल सकती है।

व्यक्ति को समझना बहुत कठिन है। भागीरथजी जैसे मन के वैभवशाली व्यक्ति मैंने बहुत कम देखे हैं। प्रतिदिन सुबह घूमने के समय उनके मकान के सामने गुजरते हुए अनायास ही दृष्टि उनके ऊपर टिक जाती थी। सुबह बरामदे मे बैठने का उनका नियम था। दुबला-पतला शरीर कितने महान मन को छिपाए हुए था? मिलने का मन होता, या सगीत-श्यामला या अभिनव भारती के बारे मे परामर्श की आवश्यकता होती तो उनसे मिलने चली जाती थी। सिर्फ दो शब्द "कैसी हो ज्ञान?", प्यार, आदर और अपनेपन से लिपटे होते थे। जब जाती, कुछ सीखकर, कुछ लेकर ही लौटती थी।

उन्होने न जाने कितने व्यक्तियो को कार्य की प्रेरणा और स्नेह-सम्मान दिया है, जिसकी स्मृति वे ही जानते है जिनसे उनका सम्पर्क रहा। उनकी सज्जनता मे एक भोलापन था, निश्छल छोटे शिशु जैसा, मुस्कुराहट मे थी व्यक्ति को मोहने की शक्ति। उदार होते हुए भी एकदम व्यावहारिक थे। इतने गहरे थे, कि आपकी समझ मे नही आ सकता था कि किस विषय पर क्या निर्णय लेंगे। किन्तु जहा तक मैंने देखा है, उनके निर्णय व्यक्ति के प्रति उदार होते थे। उनका सख्त से सख्त विरोध भी शान्त वजनदार शब्दो मे प्रकट होता था। एक ऐसी गहरी गम्भीरता थी कि व्यक्ति उनके निर्णय के सामने झुक जाता था। उनके साथ काम करने वालो को पूरी स्वतत्रता थी। कहते थे, करना तुमको है, तुममे शक्ति हो तो करो। मेरे से जो सहायता चाहिए, जब मन हो आ जाना बिना झिझक के।

आज भी घूमने जाती हू, गुजरती हू उसी पोर्टिको के सामने से। आखें उठा कर देखते ही लगता है कुछ खो गया है।

—. ० —

सामाजिक कार्यकर्तृ, 'पारिवारिकी' की
संस्थापक-संचालक
श्रीमती सुशीला सिंघी

श्रद्धा के फूल

श्रद्धेय भागीरथजी से मेरा परिचय बचपन मे मारवाडी बालिका विद्यालय के पदाधिकारी के रूप मे हुआ था। अपनी स्नेहशील वृत्ति के कारण वे सभी बालिकाओ को प्रोत्साहन देते थे। सीतारामजी मुझे बडा प्यार करते थे और उन्होने भागीरथजी को मेरे बारे मे काफी कुछ बता रखा था। पर सबसे बडा परिचय तो उनका मुझे अपने विवाह मे ही मिला। उस दिन मैंने जाना कि वह किस प्रकार के समाज-सुधारक हैं। मेरा विवाह उन्ही के २३ नम्बर ओल्ड बालीगज के मकान मे हुआ, उसी दिन उनके भतीजे राधाकृष्णजी की बडी लडकी का विवाह भी था। इस विवाह मे पर्दा होने की बात थी सो भागीरथजी उसमे सम्मिलित नही हुए। वह घर के विवाह के बजाय मेरे विवाह मे ही सक्रिय रहे।

इसके बाद तो संस्थाओ मे और घरेलू समारोहो मे हम अक्सर मिलते। सस्थाओ के काम के सिलसिले मे वे बडा स्पष्ट और सही निर्देश देते। परिवार के समारोहो मे वे मीठी-मीठी चुटकियो से चिढाते और मैं कुछ बोलती तो यह कह कर कि 'नेता हो गयी हैं' मुझे अपरोक्ष समर्थन देते हुए सराहते। उनके इस मधुर स्नेह-भरे व्यवहार ने मुझे जीवन मे कितनी ही समस्याओ से जूझने मे प्रेरणा दी है। जाने कब मैं उन्हे ताऊजी कहने लगी।

उनकी पत्नी गगा देवी भी बडे अपनेपन से मिलती हैं। हा, उनके और मेरे बीच एक मजाक हमेशा रहा। उन्होने मुझे ताईजी नही कहने दिया और अपने को चाची ही कहलवाया। मैं भी चूकती नही थी, ताऊजी की पत्नी चाची कैसे होगी, पूछ-पूछ कर उन्हे चिढाती। चाचीजी की सेवा ने ताऊजी को दीर्घकालीन जीवन दिया। पिछले वर्षों मे चाचीजी भी राजस्थान और कलकत्ता के बीच यात्रा करती रहती, कहती "सीकर के अस्पताल मे इनके प्राण है तो मुझे भी जाना पडता है और यह अच्छा लगता है।" अभी पिछले दिनो सीकर अस्पताल देखने का मुझे सुयोग हुआ। व्यवस्था देखकर ही लगा कि किन प्राणो का रस उसमे है।

भागीरथजी अपने व्यवहार और सहृदयता के कारण अमर हैं और जाने कितने लोगो की भावनाओ मे अमर रहेगे। मैं तो उस महान आत्मा के अतिम दर्शन भी नही कर पायी क्योकि उन दिनो शय्याशायी थी। मेरी श्रद्धा के ये फूल वे निश्चय ही स्वीकार करेंगे।

—: o —

सामाजिक कार्यकर्तृ
श्रीमती शांति खेतान

वाक्पटु

स्वर्गीय भागीरथजी कानोडिया के व्यक्तित्व एव कृतित्व के गुणगान की सामर्थ्य मुझमे नही है, किन्तु उनके जीवन-काल की कतिपय मधुर स्मृतिया हृदय मे इस प्रकार बनी हुई हैं, कि उन्हे व्यक्त करके अपनी हार्दिक श्रद्धा ज्ञापित करने को बाध्य हू ।

कानोडियाजी मेरे लिए तो मेरे पिता (स्व० रगलालजी जाजोदिया) के तुल्य ही थे। हमारा पारिवारिक सम्बन्ध घनिष्ठ था। इसलिए मैं कानोडियाजी को बचपन से ही जानती थी। वे बडे ही कर्मठ, दयालु एव गम्भीर थे। अपने व्यापारिक क्षेत्र मे वे बडे निपुण तो थे ही उन्होने समाज-सेवा का भी बडा काम किया था। उस समय की सामाजिक कुरीतियो को दूर करने तथा समाज को उन्नत बनाने मे जिन व्यक्तियो ने प्रमुख रूप से हाथ बटाया था उनमे कानोडियाजी भी प्रमुख थे। इस प्रकार वे जीवन-पर्यन्त एक क्रातिकारी समाज-सेवी बने रहे। मेरे पिताजी तथा वे दोनो ही समाज-सेवा मे एक दूसरे के पूरक थे। अत उन्ही लोगो के संस्कारो मे पलकर मैं भी जीवन जी रही हू । मेरा जीवन भी जो कुछ बन पाया है उसमे उनकी ही प्रेरणा है।

कानोडियाजी गम्भीर और मितभाषी होते हुए भी बडे विनोदप्रिय थे। जब मैं मारवाडी बालिका विद्यालय की छात्रा थी। एक बार विद्यालय की ओर से एक नाटक मचस्थ हुआ था, जिसमे मेरी भाभी ने मालकिन और मैंने नौकरानी का अभिनय किया था। भाई लोग मुझे घर पर चिढाते थे। मैंने बाल-स्वभाववश कानोडियाजी से शिकायत की। उन्होंने बडी गम्भीरता और धैर्य से मेरी बातें सुनी, किन्तु थोडी देर पश्चात् मुस्कुराते हुए बोले—"भाभी की साडियां तो तुम्हे धोनी ही पडेंगी।" यह सुनकर जितने लोग वहा थे, सभी हस पडे और उन सभी लोगो के साथ मैं भी हसे बिना न रह सकी।

मेरा ज्येष्ठ पुत्र प्रकाश एव कानोडियाजी के पुत्र ज्योति दोनो ही सेण्ट-जेवियर्स के छात्र थे। प्रकाश को हिन्दी मे ज्योति से अक अधिक मिलते थे। सयोग-वश एक बार मैं और प्रकाश के पिताजी दोनो ही कानोडियाजी के यहा मिलने के लिए गये। उस समय उन्होंने ज्योति को हमारा परिचय देते हुए कहा—"ज्योति ये ही

प्रकाश के माता-पिता हैं तो क्या मैं इनसे कहूं कि ये प्रकाश को सेण्टजेवियर्स से हटा लें ?" इसका तात्पर्य यह था कि ज्योति हिन्दी के लिए खूब मेहनत करे और प्रकाश जैसे अंक प्राप्त करे। यह उनकी वाक्पटुता का एक अद्भुत उदाहरण है।

एक घटना उस समय की है, जब मेरी शादी होने वाली थी। समाज मे पर्दा और दहेज दोनो ही प्रथाए बड़े जोरो पर थीं। मेरी शादी मे भी यह समस्या थी। मेरा मानस विवाह के विरुद्ध ही था। किन्तु कानोड़ियाजी को ही इसका श्रेय था कि मैं शादी के पवित्र बंधन मे बंध सकी। यदि वे न होते तो मैं शादी स्वीकार न करती।

इसके बाद भी जब कभी मुझे जीवन मे कठिनाइयो का सामना करना पड़ा, मैं उनसे अवश्य मिली और उन्होंने सदा उचित सलाह और प्रेरणा दी। उन्ही की प्रेरणा और प्रोत्साहन से मैंने भी समाज-सेवा का व्रत लिया था। जो कुछ भी आज तक मेरे जीवन मे सफलता मिली है, उसमे अधिकांश उनके स्नेह और प्रेरणा का ही फल है।

कानोडियाजी का जीवन समाज के लिए एक खुली पुस्तक के समान था। वह सदा ही हमलोगो के लिए अनुकरणीय रहेगा। हमे ही नही वरन् सारे समाज को उनकी कमी अखर रही है, किन्तु ईश्वरेच्छा के सामने हम सभी असहाय हैं।

—: ० :—

श्री सीताराम सेकसरिया की पुत्री
श्रीमती पन्ना देवी पोद्दार

'चाचाजी'

भागीरथ चाचाजी को मैं कब से जानती थी, यह पता नही। शायद १९३० से जानती होऊ गी, लेकिन जब से जाना तब से जो सम्बन्ध बना, वह बढता ही गया और अब जब वह नही हैं तब उनकी स्मृतिया हैं। उन्हे कौन भूल सकता है? कितनी ही छोटी-बडी बातें याद आती हैं और न जाने कितनी याद नही आती होगी क्योकि यह तो कभी नही सोचा था कि वह एक दिन चले जायेंगे और उन पर मुझे भी कुछ लिखना होगा। जो-जो याद आता-जाता है उसे लिखती जाती हूं।

१९३२ मे मेरे बाबूजी सार्वजनिक कार्यों मे बहुत व्यस्त रहते थे। उन दिनो हमलोग बालीगज मे रहते थे और बाबूजी का कार्य-क्षेत्र ज्यादातर बडाबाजार था। इसलिए वहा देर हो जाने के कारण वह बहुत बार रात को भोजन किये बिना रह जाते थे। जब चाचाजी को इस बात का आभास हुआ तो वह बाबूजी को ढू ढ कर अपने यहा जकरिया स्ट्रीट मे ले जाते। यह रोज का काम था। वर्षों बाबूजी ने रात का भोजन चाचाजी के यहा किया। मैं और मां यह चाहती कि रविवार को चाचाजी हमारे यहा भोजन करे। मुझे याद नही कि कभी उन्होंने यह कहा हो कि समय नहीं है। वह हमेशा मेरा और मा का मन रखते थे। इसी वर्ष बाबूजी को पीलिया हुआ तो उन्होने दिन-रात एक कर दिया। कभी किस डाक्टर को लाते, कभी किस डाक्टर को। दिन मे बडाबाजार से बालीगज के तीन-चार चक्कर करते।

१९३३ मे चाचाजी की तबीयत खराब हुई तो उन्होने परपटी (दूध का एक प्रकार का इलाज) ली। उसी समय देशप्रिय जे०एम० सेनगुप्त का रांची मे नजरबद अवस्था में देहान्त हुआ, उनका शव हवडा लाया गया और वहां से ७-८ मील दूर केवडातला श्मशान घाट ले जाया गया। परपटी मे बाहर आना-जाना सख्त मना था। सब लोगो ने बहुत रोका पर चाचाजी शव-यात्रा में शामिल होकर ही रहे। १९३४ मे बिहार मे भूकम्प हुआ तो चाचाजी देहातो मे पैदल कहां-कहा गये, पता नहीं।

१९४० मे एक दिन रात को ग्यारह बजे वह डाक्टर को लेकर घर आये। मैंने दरवाजा खोला तो इतनी रात डाक्टर के साथ उन्हे देखकर आश्चर्य में पड गयी। मालूम हुआ कि किसी नौकर ने उन्हे बताया था कि मुझे सांस उठता है। १९४० व्यक्तिगत सत्याग्रह का समय था। ब्रिटिश सरकार ने भयकर दमन नीति अपनायी थी। वह अपने खिलाफ बोलनेवालो की सम्पत्ति जब्त कर लेती थी और उन्हें जेल मे डाल देती थी। ऐसे व्यक्तियो की मदद करनेवालो पर भी उसकी कडी नजर रहती थी। बाबूजी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह किया लेकिन बगाल सरकार ने आंदोलन

को दवाने का अलग तरीका ही अपनाया; वह सत्याग्रहियो को पकडती ही नही थी। वडावाजार मे वावूजी ने युद्ध-विरोधी नारे लगाते हुए सुवह सत्याग्रह किया लेकिन उन्हे पुलिस ने पकड़ा नही। जव वावूजी नारे लगाते-लगाते थक गये तो चाचाजी उन्हें विना किसी भय के अपने घर ले गये। वावूजी शाम को फिर सत्याग्रह करने के लिए उनके घर रहे।

१९४१ मे द्वितीय विश्व युद्ध मे जापान के शामिल होने पर कलकत्ता खाली होने लगा। कुछ ही दिनो मे इतने लोग चले गये कि सडको पर आदमी नही दिखते थे। स्त्री-वच्चो को कलकत्ता के वाहर छोड़ कर पुरुषो को कामकाज के सिलसिले में कलकत्ता आना पडा तो कितने ही लोग चाचाजी के घर और गद्दी मे रहे। इन सवका उन्होने पूरा प्रवन्ध किया। जिन लोगों के नजदीकी नाते-रिश्तेदार नही थे, उनके स्त्री-वच्चो को मुकुन्दगढ मे रखने की व्यवस्था की। रगून से भागकर आये लोगो के रहने खाने-पीने की भी चाचाजी ने व्यवस्था की।

१९४२ के अगस्त मे गाधीजी का 'भारत छोडो' आन्दोलन शुरू हुआ। यह पहले वाले आन्दोलनो से भिन्न था। इसमें सत्याग्रह का दूसरा रूप था। इनमें तोड-फोड और अडरग्राउण्ड रहना शामिल था। चाचाजी प्रारम्भ मे ही पकड लिये गये तो उनके घर के लोगो ने अडरग्राउण्ड रहने वाले लोगो के वाल-वच्चो की पूरी मदद की। चाचाजी की गिरफ्तारी के वक्त नन्दलालजी (चाचाजी के वड़े लडके) वहुत वीमार थे। उन दिनो की कल्पना करके मैं आज भी सिहर उठती हूं। नन्दलालजी तो वीमार थे ही, आत्माराम (चाचाजी के तीसरे पुत्र) तीसरी मजिल से गिर पडा और चाचीजी भी वीमार पड गयी। हम सव वहुत आशंकाओ से घिर गये—नन्दलालजी इतने वीमार और आत्माराम तथा चाचीजी की यह हालत। डा० चारु वावू (चाचाजी के परिवार के चिकित्सक) और विधान वावू (डा० विधानचन्द्र राय, वाद मे पश्चिम वगाल के मुख्यमत्री) ने कहा कि अव तो हमलोग भागीरथजी को जेल से निकलवायेंगे ही लेकिन चाचाजी ने कोई भी सहूलियत लेने से इन्कार कर दिया। उस समय कलकत्ता मे व्यापार वहुत जोर पर था। आज के कितने ही करोड़पति-लखपति उस समय के कमाये हुए धन से ही वड़े हुए हैं पर चाचाजी के मन मे कहीं भी लोभ नही आया।

जेल में वावूजी को चाचाजी का सहारा था तो वाहर हमलोगों को चाचाजी के घरवालो का। राधाकृष्ण भाईजी (चाचाजी के भतीजे) ने जो किया, उसको कहा नही जा सकता। मां ने कहा "मेरे लड़का नही है पर तुम्हारे वावूजी राधाकृष्णजी को लड़के के रूप मे छोड गये हैं। तुलसी (चाचाजी के दूसरे पुत्र) के करने का तो क्या, वह तो तुम लोग हो वैसा ही है।"

१९४३ का समय आया तो ब्रिटिश सरकार ने वहुत से राजनीतिक वदियो को छोड़ा, इनमे चाचाजी को भी रिहा कर दिया गया। ईश्वर को चाचाजी से वहुत वड़ा काम लेना था। १९४३ में वंगाल मे भयंकर अकाल था। चाचाजी वंगाल रिलीफ कमेटी के सेक्रेटरी वनाये गये। उन्होंने न जाने कितने रिलीफ सेंटर खोले। रिलीफ सेंटरो को चाचाजी के खास-खास आदमी संभालते थे। खुद वह सेंटरो का निरीक्षण करते और सारे हिसाव-किताव की देख-भाल करते। जगह-जगह उन्होंने लंगर

खुलवाये। एक लगर मैं भी चलाती थी। इस समय कलकत्ता मे अमरीकी सैनिक बहुत बडी तादाद मे थे। उन्होने भूख से मरने वालो और गाव से आए लोगो के चित्र अमरीका भेजें तो वे वहा के अखबारो मे निकले। इससे ब्रिटिश सरकार की बहुत निन्दा हुई। जब वायसराय कलकत्ता आये तो बगाल सरकार ने गाव के लोगो को शहर से निकालने के लिए रिलीफ सेंटर बन्द करवा दिये। कलकत्ता मे उस समय कोई भी चीज बिना ब्लैक के नही मिलती थी। इसलिए मजदूरी करनेवाले तथा नौकरीपेशा लोगो को बहुत तकलीफ थी। चाचाजी ने अपने खास आदमियो को पाडो (मुहल्लो) और बस्तियो मे भेजा। ये आदमी लोगो को राशन-कार्ड जैसे कार्ड देते थे जिसे दिखाकर लोग अपने पास के रिलीफ सेंटर से सामान ले सकते थे। शाम को सब काम करने वालो को चाचाजी खुद जा कर या फोन कर सभालते थे, पूरी रिपोर्ट लेते थे।

यो तो पालिटिकल सफरर्स को कानोडिया कम्पनी से हमेशा ही सहायता मिला करती थी लेकिन १९४३ मे जेल से छूटने के बाद चाचाजी ने व्यापक रूप से निर्भीकतापूर्वक सहायता करनी शुरू की। इस समय सैनिक लोग खासकर स्त्रियों और बच्चो पर बहुत अत्याचार करते थे और बदमाश अफसर पोलिटिकल सफरर्स के परिवार के लोगो को बहुत तग करते थे। चाचाजी ने इनकी सहायता के लिए लोगो को रुपये देने को कहा तो लोग उन्हे गुप-चुप रुपये देने लगे, क्योकि ब्रिटिश सरकार के खिलाफ सामने आने का लोगो मे साहस नही था। चाचाजी पता लगाकर एक-एक गाव मे सहायता भेजते।

१९४४-४५ का समय बहुत सी छोटी-बडी घटनाओं के साथ बीता। १९४६ मे कलकत्ता मे हिन्दू-मुसलमान दगा हुआ तो चाचाजी रात-रात लोगों को निकाल कर लाये और उनको अपने घर रखा। दगो मे चाचाजी खतरनाक मुहल्लो मे पूरी निर्भीकता के साथ आते-जाते थे। एक दिन मुर्गीहट्टा मे जा रहे थे। थकावट के कारण गाडी मे लेट गये। पुलिस ने गाडी का नम्बर नोट किया और उनके यहां फोन किया कि आपकी गाडी को इतने बजे मुर्गीहट्टा से एक मुर्दा ले जाते हुए देखा गया है, सो क्या बात है। इत्तफाक से चाचाजी ने ही फोन पकड़ा था, उन्होने कहा: "आपकी बात ठीक है। उसमे पूरा मुर्दा नही अधमुर्दा था और वह मैं ही था।" इसके बाद तो देश स्वतत्र हो गया। पार्लियामेंट मे जानेवाले पार्लियामेंट मे गये, मत्री बनने वाले मत्री बने। चाचाजी को कई बार पार्लियामेंट मे जाने और मत्री बनने को कहा गया पर वह गगनविहारी मेहता आदि का नाम देते रहे। आजादी के बाद चाचाजी ने राजस्थान मे जो काम किया उसके बारे मे ग्रन्थ मे बहुतो ने लिखा होगा, लेकिन मैं एक बात यहं लिखना चाहती हू कि राजस्थान मे चाचाजी ने जो कठिन मेहनत की उसीसे उनका स्वास्थ्य बिगडता गया। १९५८ की जीप दुर्घटना, पीलिया और प्राणलेवा कमजोरी राजस्थान की देन थी।

आखिर मे कुछ निजी बातें लिखती हू। बचपन मे चाचाजी को देखकर मुझे लगता था कि वह लक्ष्मण हैं क्या। बाबूजी उनको उनकी मृत्युपर्यन्त कुछ भी कह देते थे लेकिन उनके चेहरे पर कभी शिकन नही आयी। हमारे सुख-दुख मे वह जिस तरह साथ रहे उस तरह कोई नही रह सकता। मां उनको बाबूजी की बहू कहा करती। समय

बीतता गया। एक दिन चाचाजी ने नन्दलालजी से कहलवाया कि वह मेरी बेटी भारती को अश्विनी के लिए चाहते है। तो मैं चाचाजी के रिश्ते मे समधिन बन गयी। विवाह मे लोग पूछते भागीरथजी लडके वाले हैं या लडकी वाले। कइयो ने मुझे आकर कहा कि मालूम ही नही होता कि तुम लडकी वाली हो। किसी ने कहा कि मालूम होता है कि भागीरथजी तो ऐसा व्यवहार करते हैं कि वे ही लडकी वाले हैं तो मैंने कहा कि जन्म भर का अभ्यास कैसे चला जायेगा।

अत तक मैं उनकी बेटी ही रही। इसको लेकर दोनो घरो मे काफी विनोद होता। उनकी कितनी बडी छत्रछाया मुझ पर थी! मेरे पति को दिल का दौरा पडा तो खबर मिलते ही रात को ग्यारह बजे चाचीजी के साथ अस्पताल आये और बिना कुछ बोले मेरे सिर पर अपना हाथ रख दिया। उनका वह हाथ रखना बार-बार याद आता है। उनके जाने के बाद मैं तो हसना ही भूल गयी हू। वे किम शब्द का क्या अर्थ निकाल कर हसा देते थे। दुनियां मे ऐसे चाचाजी किसी को नही मिले होंगे, जैसे मुझे मिले। उनके जैसा कोई नही होगा।

—: ० :—

सामाजिक कार्यकर्तृ, 'रचना' की मंत्री
श्रीमती कुसुम खेमानी

प्राणिनाम् आर्ति-नाशनम्

न त्वह कामये राज्यम् न स्वर्गं ना पुनर्भवम्
कामये दुःख-तप्तानाम् प्राणिनाम् आर्ति-नाशनम् ॥

"कुसुम !"

"हाँ काकोजी !" (मैं उन्हे 'काकोजी' कहती थी)

"तू अभी जो श्लोक गायोना, 'इम ताप्तानाम्' नई 'तप्तानाम्' होम्मी, दुःख के तप्त प्राणिमात्र के लिये है वो ।"

वाबूजी (सीतारामजी सेकसरिया) के यहा सीढी से उतरते वक्त धीरे से वे यह बात मुझे समझा रहे थे । उस समय उनका यह अर्थ समझाना, श्लोक को ही समझाना लगा था, पर जब पूर्ण समग्रता से काकोजी के बारे मे सोचती हू तो लगता है उस समय मानो वे स्वय को ही परिभाषित कर रहे थे ।

फ्लैशबैक की तरह ढेरो बातें स्मृति खडो से झाकने लगती हैं । ऐसी बातें और घटनाए जो अत्यन्त साधारण और सहज दिखें पर यथार्थ मे बहुत गहरी और असाधारण हो ।

x x x

कलकत्ता शहर के अमेरिकन वाणिज्य दूतावास मे बैठे बाब्बू राय पुरानी यादो को दोहराते अचानक कहते हैं "तुम्हारे समाज के बहुत से व्यक्तियों ने मेरा परिचय नही फिर भी एक ऐसा व्यक्तित्व है जिसे कभी देखा नही, पर उस नाम के लिये मन मे असीम श्रद्धा है । उम्र मे छोटा ही था, जब सत्याग्रह करके जेल गया था । वहाँ एक भागीरथजी कानोडिया भी थे । उन्हे जब पता लगा कि एक बच्चा जेल मे है तो उन्होने तुरत अपनी ओर से मेरे लिये दूध का इन्तजाम करवा दिया ।"

मैंने काकोजी से जब इसके बारे मे पूछा—तो बोले, "ऐसा कुछ याद नो नही आता ।"

x x x

भयानक गर्मी, राजस्थान मे अकाल । काकोजी दिनरात राहत कार्य मे जुटे हुए है । कलकत्ता प्रवासी सभी स्वजन छटपटा रहे हैं, उनकी शारीरिक अस्वस्थता की चिन्ता मे । उधर वे अपना अस्वस्थ शरीर और चरम स्वस्थ मन लिये कभी नहर खोदने वालो के पैरो मे चप्पल पहना रहे हैं, तो कभी शहर से सस्ता गल्ला ला उन्हे अनाज उपलब्ध करा रहे हैं । कलकत्ते वालो के बार-बार लौट जाने के आग्रह पर वे जवाब देते हैं, "मैं एकदम स्वस्थ हू । आप लोग यदि सचमुच मेरे लिये चिन्तित

हैं तो इन दु ख कातर मनुष्यो और पशुधन की रक्षा कीजिये। नही तो आने वाला समय, पूरी तरह इस अकाल का ग्रास बन जायेगा।"

x x x

राजस्थान मे ही सीकर गाव और उसमें नन्दन कानन सा शोभता "जन कल्याण आरोग्य सदन।" सौभाग्य से मैं जब आरोग्य सदन देखने गई तो काकोजी वही थे, और वहा से जो अनुभूति लेकर आई, उसे मैंने टुकड़ो मे अपनी डायरी मे यो लिखा :—

"१३-११-७६ : काकोजी के टी० बी० अस्पताल गये। कल्पनातीत काम है। और काकोजी! वे तो सचमुच जनक हैं, पूर्णत. विदेह। बनजारेवाली बात रह-रह कर मन मे कौंध रही है।"

बनजारे वाली घटना इस प्रकार है—

सीकर अस्पताल के चारो ओर बड़ा चिकित्सा-शिविर लगा था। बम्बई, दिल्ली, कलकत्ते आदि शहरो के नामी-गिरामी डाक्टर वहां सैकड़ो की सख्या मे ऑपरेशन कर चुके थे। कही नेत्र-शिविर, कहीं शल्य-शिविर, कही दन्त-शिविर आदि नाना शिविरो का विस्तार वहां फैला हुआ था।

शाम का झुटपुटा था, और बम्बई के प्रसिद्ध स्त्री रोग चिकित्सक डॉ० पुरेन्दरे (नि शुल्क) अपना कार्य समाप्त कर बम्बई लौट रहे थे। उनकी विदा की तैयारी मे काकोजी की प्रतीक्षा हो रही थी। काकोजी उस समय शिविरो की ओर गये हुये थे। मैं उनके पास गई और उनसे कहा "डॉ० पुरेन्दरे आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।" वे अपना काम समाप्त कर, जैसे ही जीप मे बैठे, एक बनजारा सामने आकर बोला, "बाबू, म बिणजारो हू, मेरी लुगाई (पत्नी) की सुणाई (देख-भाल) कोनी हो रई।"

काकोजी ने आव देखा ना ताव, और जीप मे उतर पड़े। पुरेन्दरे का जाना, उनकी थकान, अनेक अतिथियो की प्रतीक्षा, सब उस एक उलाहने मे तिरोहित हो गये। वे उसकी फाइल ढूढने कभी एमरजेन्सी कभी आउटडोर तो कभी इनडोर के चक्कर लगाने लगे। फाइल निकाल, डाक्टर का नाम मालूम किया तो पता चला कि वह डॉ० पुरेन्दरे के पास ही बैठे हैं, तब बोले "चलो वहीं चलते हैं।"

बनजारे को साथ लिये पहुंचे वहां। डॉ० पुरेन्दरे से पीछे मिले, पहले उस डाक्टर से जवाबदेही माग बनजारे को सतुष्ट किया। यह सब कर चुके, तब उन्होने दूसरी ओर देखा।

घटना छोटी ही थी पर जब-जब मुझे यह याद आती है रोमांच होने लगता है। सारे शिविर मिलाकर, हजारो लोगो को लाभ हुआ था। आशीर्वादो के अम्बार लग गये थे पर इन सबसे परे, एक साधारण आदमी का दर्द इस तरह छू जाये...शायद इसे ही करुणामय कहते होगे।

डायरी मे आगे भी उनके बारे मे बहुत कुछ था और एक उच्छ्वास—"बाबूजी, (सीतारामजी सेकसरिया) आप धन्य हैं, ऐसा मित्र पाकर ! हमलोग धन्य है, आपके आशीर्वाद से ऐसे व्यक्ति का सान्निध्य पाकर।"

x x x

उनकी बीमारी की खबर सुन उनसे मिलने गई। कहने लगे "म बीमार कोनी, तन्ने बुलाण को साग (स्वाग) कर्यो है"। मैंने कहा, "ईन्न साग ही राखियो।"

काश ! वह स्वांग ही होता।

गन्दगी मे कमल की तरह रहना महानता है, पर जब कोई यश और कीर्ति मे भी अनासक्त योगी सा रहे तो उसे क्या संज्ञा दें ? शायद काकोजी।

मृत्यु ने उनके पार्थिव शरीर को पृथ्वी से ले स्वर्ग को सुरभित कर लिया। पर आज भी लगता है, वे हमारे बीच में ही है। बार-बार रवीन्द्रनाथ ठाकुर की वे पक्तियां याद आ रही है—

"जाहार अमर स्थान प्रेमेर आसने,
क्षति तार क्षति नेई मृत्युर सामने।"

जो प्रेम के अमर सिंहासन पर आसीन है, मृत्यु उसका कुछ नही बिगाड़ सकती।

—:o:—

अ० भा० मारवाड़ी सम्मेलन की महिला विभाग की भूतपूर्व अध्यक्ष

श्रीमती सरोजिनी शाह

एक संस्मरण

मैं १९६६-६७ मे अजमेर मे पढती थी। मेरे ममेरे भाई श्री पुरुषोत्तमदास पोद्दार आदित्य मिल्स किशनगढ का कार्य सभालते थे। छुट्टियो मे मैं भी किशनगढ जाती रहती थी। जिस समय स्व० भागीरथजी किशनगढ होते थे, तो मिल के और शहर के अनेक व्यक्ति शाम को उनसे मिलने कालोनी मे जाते थे। मुझे भी कई बार अवसर मिला। जब उन्हे ज्ञात हुआ कि मैंने हिन्दी और समाजशास्त्र दोनो मे एम०ए० किया है तो दोनो ही विषयो पर मुझसे अनेक प्रश्न करते और मेरी जिज्ञासाओ का, जो अनेक पुस्तके पढकर भी स्पष्टत. शान्त नही हुई थी, समाधान सीधे और सरल तरीके से कर देते थे। इन विषयो पर उनका वृहत् ज्ञान देखकर आरम्भ मे मैं आश्चर्यचकित रह जाती थी।

मैं बी०एड० कर रही थी अतएव एक दिन शिक्षा-पद्धति पर चर्चा चल पडी। वे वर्तमान महगी शिक्षा से असन्तुष्ट थे। उन्होने बताया कि उनकी सम्पूर्ण स्कूली शिक्षा पर मात्र तीन रुपये के लगभग व्यय हुआ था। मेरी आखो मे जिज्ञासा देखकर उन्होने इस खर्च का विस्तृत विवरण दिया जिसमे तत्कालीन शिक्षा-पद्धति की भी झलक मिलती है। यह बताया कि ७० वर्ष पूर्व हिन्दी, अग्रेजी, गणित का ज्ञान और विज्ञान का भी सामान्य ज्ञान कर लेना बहुत अच्छी शिक्षा मानी जाती थी। ऐसी शिक्षा कक्षा ८ तक समाप्त हो जाती थी। इससे आगे पढने की सुविधा जिला हेडक्वार्टर्स मे भी नही थी। किन्तु यह अल्पकालीन शिक्षा भी जीवन के प्रति आस्था के बीज डालने के लिये पर्याप्त थी।

उन्होने बताया कि उनकी शिक्षा उनके पारिवारिक स्थान मुकुन्दगढ, जिला झुझुनू राजस्थान मे हुई थी। आरम्भिक चार वर्ष तक सवा तीन आने वार्षिक शुल्क लगता था और तत्पश्चात चार आने वार्षिक। इसे देने की भी कोई निश्चित तिथि नही थी। विद्यार्थी के माता-पिता अपनी सुविधानुसार किसी भी समय दे देते थे और कुछ तो मात्र आश्वासन ही देते रहते थे, कभी चुका नही पाते थे तथापि उन विद्यार्थियो का पढने का अधिकार बना रहता था। इसके अतिरिक्त गणेश-चतुर्थी पर सवा किलो गेहू देना अनिवार्य था। सभी विद्यार्थी अपने-अपने घर से गेहू लाकर स्कूल मे रखी नाद (कूडी) मे डालते जाते थे। गुरुजी सम्पन्न परिवारो के लडको का गेहू नही नापते थे क्योकि वे जानते थे कि वे सवा किलो से कुछ अधिक ही लाये होगे। बल्कि वे उनके गेहू डालते समय इधर-उधर देखने लगते थे। यदि किसी पर सदेह होता था तो नाप लेते थे और कमी को दूसरे दिन लाकर पूरा करने का आदेश दे देते थे। उस समय सवा किलो गेहू का दाम लगभग चार पैसे था।

इसके अतिरिक्त कागज, कलम, पुस्तक आदि पर चार-पाच पैसे प्रति वर्ष का व्यय होता था। अर्थात् चतुर्थ कक्षा तक साढे पाच आने वार्षिक तथा ऊपर की कक्षाओ मे साढे ६ आने वार्षिक व्यय होता था।

प्राचीन काल की गुरुकुल पद्धति और आधुनिक विवादास्पद अनेक शिक्षा पद्धतियो के बीच की यह शिक्षा-पद्धति अनेक गुणो से परिपूर्ण थी।

—: ० :—

प्रसिद्ध उद्योगपति, स्व० भागीरथजी के भ्रातृ-पुत्र

श्री राधाकृष्ण कानोड़िया

मेरे चाचाजी

पूज्य चाचाजी भागीरथजी का जन्म संवत् १९५१ के पौष महीने में मुकुन्दगढ़ (राजस्थान) मे हुआ था, जब उनकी उम्र पढने की हुई तो वे स्कूल जाने लगे। पढने मे वे तेज थे और अपनी क्लास मे हमेशा प्रथम आते थे। १६ वर्ष की उम्र में वे कलकत्ता आ गए। यद्यपि उन्होंने ज्यादा शिक्षा प्राप्त नही की थी, फिर भी उनका अभ्यास और अनुभव इतना था कि वे चिट्ठी आदि का ड्राफ्ट अपने से अधिक पढे-लिखे व्यक्तियो से भी अच्छा बना लेते थे। उनकी चिट्ठियो से विदेशी व्यापारी बहुत प्रसन्न रहते थे।

प्रारम्भ से ही उनकी रुचि सामाजिक कामो मे थी। जब वे बहुत छोटे थे, तभी उन्होंने मुकुन्दगढ मे एक पुस्तकालय की स्थापना की। आज यह पुस्तकालय बहुत सुचारु रूप से चल रहा है। मुकुन्दगढ में जो भी सार्वजनिक काम होते, उन सबमें वे यथा-संभव सहयोग देते, कलकत्ता के सामाजिक क्षेत्र मे तो उन्होंने काफी सक्रियता से भाग लिया। मारवाडी बालिका विद्यालय, श्री शिक्षायतन, मारवाडी रिलीफ सोसाइटी, भारतीय भाषा परिषद आदि संस्थाओ से वे लम्बे समय तक जुडे रहे। उनकी यह विशेषता रही कि जब भी किसी सस्था का कोई काम अटक जाता वे उसे हाथ मे लेकर सभाल लेते। सीकर (राजस्थान) के टी० बी० सेनेटोरियम का कार्य जब कुछ ढीला पडा, तो उन्होने उसे अपने हाथ मे लिया और व्यवस्थित कर दिया, न केवल ठीक ही किया, काफी हदतक उसे बढाया भी।

उन्होंने राजस्थान मे कुए खुदवाने का काम बड़े पैमाने पर किया। राजस्थान के हर मुख्यमत्री ने उन्हे सम्मान दिया और माना। पहले हीरालालजी शास्त्री मुख्यमत्री बने, वे तो घर के ही आदमी थे, फिर जयनारायणजी व्यास, पालीवालजी, सुखाडियाजी, हरदेवजी जोशी, भैरोंसिहजी शेखावत सभी उन्हे बहुत मानते थे। राजस्थान के ही नही हमारे देश के बडे-बडे नेता उन्हें सम्मान देते थे, जैसे, महात्मा गाधी, पडित मदनमोहन मालवीय, लाला लाजपतराय, डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद, गोविन्दवल्लभ पत, जयप्रकाशनारायण, डा० विधानचन्द्र राय, प्रफुल्लचन्द्र सेन, डा० प्रफुल्ल घोष प्रभृति। महात्मा गाधी द्वारा जब अंग्रेजो के विरुद्ध आन्दोलन चलाया जा रहा था, उस समय उन्होंने आन्दोलनकारियो की काफी मदद की। इस तथ्य का पता बगाल की खुफिया पुलिस को लग गया, फलस्वरूप उन्हें १९४२ मे गिरफ्तार किया गया।

हमारे देश के अनेक नेता समय-समय पर उनके निवास-स्थान पर ठहरते थे। डा० राजेन्द्रप्रसाद, प० गोविन्दवल्लभ पत, पुरुषोत्तमदास टडन, पट्टाभि सीतारामैया, जयप्रकाशनारायण, आचार्य कृपलानी, जमनालालजी बजाज, हीरालालजी शास्त्री, ठक्करबापा, दादा धर्माधिकारी आदि अनेक नेता उनके पास ठहरे हुए हैं।

चाचाजी एक बहुत अच्छे लेखक भी थे। उन्हें लोक जीवन से सम्बन्धित बहुत सी कहानियां याद थी, जिन्हे वे सुनाते रहते थे।

उनमे अभिमान नही था। वे अपने को किसी से बडा नही समझते थे। उनके चरित्र की एक यह भी विशेषता थी कि उन्होने कभी किसी पर क्रोध नही किया। वे हर किसी की सहायता करने को तैयार रहते थे। किसी भी सस्था को आर्थिक मदद की आवश्यकता होती, वे उसे चन्दा करवा देते।

जो भी काम उन्होने किया, लगन और निष्ठा से किया। विश्वेसरलाल हलवासिया चैरिटी ट्रस्ट का मामला जब अदालत मे चला गया था, तब कोर्ट ने उनको इस ट्रस्ट का रिसीवर नियुक्त किया। फिर तो बहुत वर्षो तक वे उसके ट्रस्टी बने रहे और काफी काम किया।

देश के प्रति उन्हे बहुत लगाव था। महात्मा गाधी ने विदेशी वस्त्र न पहनने का आह्वान किया, उनका कहना था कि खादी पहननी चाहिए क्योकि उससे गरीबो को सहायता मिलती है, रोजगार मिलता है। जहा तक मुझे याद पडता है, चाचाजी ने सन् १९२५ के पहले से ही खादी पहननी शुरू कर दी थी और अन्त तक पहनते रहे। वे खादी का प्रचार भी किया करते थे। मुकुन्दगढ मे उन्होने बडे पैमाने पर खादी बनवाने का काम किया, जिससे लोगो को प्रचुर आमदनी हुई। कलकत्ता मे शुद्ध खादी भण्डार चलाने मे भी उनका काफी हाथ रहा।

हरिजनो को वे बहुत चाहते थे। वह जमाना था जब हरिजनो को स्कूलो मे नही जाने दिया जाता था। उस समय अन्य जातियो के लडके हरिजनो के साथ नही बैठते थे। मुकुन्दगढ मे छोटी-मोटी पाठशालाएं और भी थी, किन्तु बडा स्कूल हमारा ही था। उस समय अत्यधिक विरोध के बावजूद उन्होने एक हरिजन लडके को स्कूल मे भरती कर लिया। काफी शोर मचा। किन्तु उन्होने उसकी परवाह न कर हरिजनो के लिये स्कूल खोल दिया। विधवाओ के प्रति उनकी विशेष सहानुभूति रहती थी और कई युवती विधवाओ के विवाह उन्होने करवाए। प्रथम विधवा-विवाह उन्होने उस समय करवाया, जब समाज मे विधवा-विवाह वर्जित था और उसे घृणा की दृष्टि से देखा जाता था। उन्होने बडे साहस और धैर्य के साथ इस कार्य को अपने हाथ मे लिया। समाज ने उन्हे बहिष्कृत कर दिया किन्तु धीरे-धीरे यह बात लोगो की समझ मे आ गई कि जो काम वे कर रहे है वही ठीक है।

उन्होने राजस्थान का अनेक बार दौरा किया। वहा के निवासी उन्हे बडे श्रद्धा-भाव से देखते थे। उन्हे कोई भी तकलीफ या कष्ट होता, वे उन्हे बताते और चाचाजी उसे दूर करने का यथासभव प्रयास करते।

सन् १९३४ मे बिहार मे भयकर भूकम्प आया था और उससे बहुत बडी क्षति हुई थी। उस समय चाचाजी ने बिहार का दौरा किया और भूकम्प पीडित लोगो की सहायता के लिए चदा एकत्र कर उनको राहत पहुचाई। सन् १९४३ मे बगाल मे भीषण अकाल पडा, उस समय उन्होने बगाल रिलीफ कमेटी के मत्री बनकर जगह-जगह सहायता-केन्द्र खोले और अकाल पीडितो की बहुत अधिक मदद की। उस काम के लिए उस जमाने मे ४० लाख रुपयो का चन्दा एकत्र हुआ था।

—: o :—

स्वर्गीय भागीरथजी की पुत्रवधू,
श्री तुलसीदास कानोड़िया की धर्मपत्नी
श्रीमती उर्मिला कानोड़िया

सतरंगी आभा से मंडित

"आओ बीनणी जी !" वात्सल्य रस से ओतप्रोत, चिर-परिचित, यह मधुर सबोधन हमारे परम श्रद्धेय स्वर्गीय बाबूजी का था। आज उनका सस्मरण लिखने बैठी हू, किन्तु जीवन के हर क्षेत्र मे उनकी बाते, उनकी यादे समाई हुई हैं ; स्मृतियो के उन धागो को किस सिरे से उठाऊ, समझ नही पा रही हू। उनके किस्से, कहानी चुटकुले, मुहावरे, मानो मणिया हैं भले सबको ही पिरो लो।

पूज्य बाबूजी सभी उम्र वालो के साथ, सभी रूपो मे समरस होकर सहज सम्भाषण कर लेते थे—यह उनकी अभिनव विशेषता थी। साहित्य, कला, सस्कृति, भक्ति मे अभिरुचि एक ओर, तो परम सवेदनशील हृदय दूसरी ओर। दूसरो की व्यथा सह ही नही पाते थे, करुणा विगलित हो उठते थे। अतीत मे घटित इन सदर्भों की चर्चा मात्र से उनके नेत्र आर्द्र एव कठ रुद्ध हो उठता था। जीवित व्यक्तियो के प्रति तो करुणार्द्र होते ही थे, "मानस" के कतिपय प्रसगो पर, अथवा गुप्तजी की "यशोधरा", "कनुप्रिया", या "साकेत" की उर्मिला की मौन व्यथा के सागर मे गहरे पैठ जाते थे। उनकी कम्पित वाणी उनके समस्त उद्गारो को उ डेल देती थी।

भक्ति सागर तो उनमे सदैव ही तरगायित होता रहता था। तभी तो "ऐसो को उदार जग माही", अथवा "अब लौ नसानी, अब न नसैहो" आदि गोसाई जी के भजन सुनकर आत्म-विस्मृत हो जाते थे। सूर, मीरा के भजन, "प्रभु मोरे अवगुण चित न धरो," या "ऊधो ! मन न भये दस-बीस," "पायो जी मैंने राम-रतन धन पायो," अथवा "राम-नाम रस पीजै मनुआ" इत्यादि उनको अतीव प्रिय थे। मन के कोमलतम भावो के नियोजन मे ही उनकी मर्मभेदी दृष्टि सदा रहती थी। यथा—"सदेसो देवकी सो कहियो। हौ तो धाय तिहारे सुत की, मया करत ही रहियो।" सूरदास का यह पद गाते-गाते कितनी बार "धाय" शब्द के उच्चारण मात्र से विगलित हो उठते थे। इसी सवेदना के कारण मुहल्ले के, समाज के सर्वमान्य न्यायाधीश बने हुए थे। सभी अपना दुखड़ा बाबूजी के सामने रो लेते थे, कह लेते थे।

ईमानदारी व सच्चाई तो उनमे कूट-कूट कर भरी हुई थी। देशवासियो के, विदेशियो के विश्वासभाजन थे। लौकिक सम्पत्ति हो या वाक्-धन, सभी को गुप्त धरोहर सी रख लेते थे। सकोची तो इतने थे कि किसी ने उनका गुण-गान करना चाहा, या मान-पत्र भेंट करना चाहा, तो वहा से चुपचाप सरक जाते थे। "नेकी कर कुए मे डाल" के ज्वलन्त उदाहरण थे। उपर्युक्त गुणो को कथनी मे ही नहीं, अपितु करनी मे भी उतारते रहते थे। वे कर्मठता के सही अर्थ मे मूक प्रहरी थे।

इसके अतिरिक्त बाबूजी तो विनोदी भी बहुत थे। एक बार की बात है कि अम्माजी किसी बात पर मुझसे रुष्ट हो गई। मैं उदास बैठी थी। बाबूजी को पता चला तो आकर तुरत उन्होने एक फुलझडी छोडी—"सासु सुसेवित वश नहिं लेखिय" और हसा ही तो दिया। "मानस" के प्रसग उन्हे यथेष्ट स्मरण थे। अत. बहुधा उसकी पक्तिया अपने परिवेश मे लेकर, परिवर्तित करके हम सबको हसाते रहते थे।

इसी सदर्भ मे एक रोचक घटना और याद आ गई। एक बार मेरा ज्येष्ठ पुत्र राजीव उनसे मिलने गया था। बाबूजी ने उससे उसकी पढाई के विषय मे पूछा, तो राजीव ने कहा वह B.Sc. कर रहा है। प्रत्युत्पन्नमति उनमे इतनी थी, तुरत बोले, "ओ, समझा! Brain seriously cracked!" राजीव हसते-हसते लोट-पोट हो गया। तभी थोडी देर मे राजनीति की चर्चा चल पडी, और किसी M.L.A. का उल्लेख आया। बस, बाबूजी झट बोल पडे, "अर्थात्, Member of the Lunatic Asylum" दुबारा ठहाको से सम्पूर्ण वातावरण गूज उठा। ऐसा था उनका विनोद—बौद्धिकता के आवरण से वेष्ठित सरल, भोला विनोद!

बाबूजी अपने जीवन काल मे एक समाज सुधारक के नाम से विख्यात हुए। सदियो से परम्परागत आता हुआ लोकाचार, जिसमे मूल बात तो विलुप्त हो चुकी थी और रह गया था बाह्याडम्बर। कटिबद्ध होकर उन्होने इसका विरोध किया। यहा तक कि घर का ही एक विवाह पर्दे से हुआ, किन्तु बाबूजी अपने सिद्धान्तो के इतने पक्के थे कि विवाह मे सम्मिलित नही ही हुए। उनके लिए सब समान थे—स्वजन, परिजन, पुरजन। अन्य तथाकथित सुधारको की भाति दो व्यक्तित्व नही रखते थे।

जहा स्वय पर इतना नियत्रण रखा, वहा उनके पूर्व अर्जित सस्कार भी उदीयमान रहते थे। मेरे पुत्रो, राजीव और नीरज के विवाह के पश्चात बहुओ सहित उन्हे अपने पास बुलाया था—यद्यपि बच्चे पूज्य बाबूजी को प्रणाम करने जाते ही—फिर भी, याद करके, फोन करके बुलाया। और भोजनोपरान्त बेटो को नारियल, तथा बहुओ के हाथ मे गुड की डली स्वय दी और कहा, "यह हमारा कुल-धर्म है।" उसी अवसर पर विवाह मे बधे 'गठ-बधन' का अतीव सुदर अर्थ बताया। बच्चे कितना समझे, मैं नही कह सकती, किन्तु मेरा कठ अवरुद्ध हो गया।

इस प्रकार की अनेकानेक घटनाएं स्मृति-पटल पर समय-समय पर उभरती रहती है। दु.ख है इस बात का कि उनकी पुनीत छत्र-छाया मे रहकर भी "दिये तले अधेरा" के समान ही रही। उनका एक भी गुण जीवन मे घटाना सीख न सकी। वे अद्वितीय थे, कोई योग-भ्रष्ट सत थे... .....! "तुम तुग हिमालय शृग, मैं चचल गति सुर सरिता ....!"

इन कतिपय शब्दो के साथ अपनी भाव-भीनी श्रद्धाजलि उस महान विभूति के श्री चरणो मे अर्पित करती हू।

—: o :—

स्व० भागीरथजी की ज्येष्ठ पुत्री
श्रीमती सावित्री खेमका

मेरे काकोजी

कैसी विडम्बना ! स्मृति मे कुछ लिखना है, लिखें तो तब जब विस्मृति की सभावना हो, यहा तो काकोजी की याद अक्षुण्ण है। खैर जब सभी लिख रहे है तो मैं भी सही।

पुकारती मैं अवश्य काकोजी थी पर थे वे मेरी ममतामयी माँ !

मातृ देवो भव।
पितृ देवो भव।
आचार्य देवो भव।

गुरु-गृह से विदा होते समय स्नातक-छात्र को आचार्य का यह अन्तिम उपदेश है। आचार्य कह रहे हैं—मा मे, पिता मे और गुरु मे देव बुद्धि रखना, उनको पूज्य समझना। मा अलग, पिता अलग और आचार्य अलग, पर जब मैं काकोजी को याद करती हू तो उनमे मुझे तीनो एकाकार होते नजर आते हैं, तीन त्रिगुण रूप मेरे लिये एक हो गये, काकोजी के रूप मे उस मा के प्यार मे जब कहानिया उमडती तो उनका आचार्य रूप उनमे झाकता।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरणजी गुप्त के यहा राहुल को मा से बार-बार आग्रह करना पडता था, "मा कह दे एक कहानी" पर यहा आग्रह कहा, कहानियो की अजस्र धारा काकोजी से सदैव उमडती रहती जिनमे होता प्यार, दुलार आत्मीय भाव और ममतामयी सिखावन। भाई-बहन के सरल निश्छल, मधुर एव उत्सर्गशील प्रेम के प्रसग उन्हे बहुत प्रिय थे। सन् १९५२ मे मेरे नाम एक पत्र मुकुन्दगढ से आया था जिसमे "जीण माता" के करुण गीत की मार्मिकता भाई बहन के शुभ्र एव उज्ज्वल प्रेम के रूप मे प्रकट हुई है। पत्र अविकल रूप से यहा उद्धृत है—

डा० मकुन्दगढ
२०-१०-५२

सावित्री बेटी,

इस बार यहा आया तभी सोचा था कि देखें सावित्री का पत्र पहिले आवे तो ही पत्र दू। इसी उधेडबुन मे दिन निकल गये। तुम्हे पत्र न लिखने का मन मे अफसोस

भी बहुत होता था। एक तरह की खटक मन मे लेकर सोता था लेकिन फिर मन को मनाता था कि इस बार तो देखो देखे सावित्री भी अपने को याद करती है क्या? आखिर यह तय किया था कि दीवाली के दिन तक अगर सावित्री का पत्र न आया तो उस दिन तो अपने हार मान लेंगे और उसे पत्र लिखेगे ही। ठीक दीपावली के दिन तुम्हारा पत्र आया यानी परसो। कल तुम्हे जवाब लिखने वाला था लेकिन कल पत्र लिख नही पाया। इसलिये आज यह पत्र लिख रहा हू। विवाह के बाद लडकी का अधिकार नही रहता यह तो तुम लिख सकती हो और मान सकती हो। एक तरह से है भी, लेकिन मैंने अभी ऐसा अनुभव नहीं किया है। मन पूरा-पूरा तो तैयार भी नही है, ऐसा मानने के लिए। मानना पडेगा तो उपाय नही, उस दिन तुम भी मान लेना, अभी से क्यो मानती हो!

सयोग की बात, सावित्री, जिस घडी तुम्हारा पत्र आया उस वक्त मैं जीण माता की कहानी और गीत पढ रहा था। गीत तुम सुनो तो रोये बिना न रहो बडा हृदयस्पर्शी है। तुम्हारे पत्र के समाचार यानी अनाधिकार की बात उस गीत से मिल रही थी और मैं दोनो चीजे यानी वह गीत और तुम्हारा पत्र साथ-साथ पढ रहा था इसलिये मुझे भी रोना आ जाय तो तुम बुरा मत मानना।

कथा यो है—औरगजेब बादशाह के वक्त की बात है। जीवनी बहिन और हर्ष भाई दोनो प्रेमपूर्वक रहते थे। मा-बाप मर चुके थे। भाई और बहिन मे गाढा स्नेह था। भाई का विवाह हो गया था। एक दिन ननद और भावज एक दासी के साथ तालाब पर पानी भरने गई। भावज ने कहा मेरा घडा तुम उठवा दो, तुम्हारा दासी उठवा देगी। ननद ने कहा : ऐसा नही हो सकता, मेरा तुम उठवाओ, तुम्हारा दासी उठवायेगी, इस पर दोनो मे बोल-चाल बढ गई। ननद यानी जीवनी ने वहीं अपना मटका फोड दिया और अखण्ड ब्रह्मचर्य का व्रत लेकर कठिन तपस्या करने निकल पडी। भौजाई ने घर आकर सारे हाल हर्ष को कहे तो वह तुरन्त अपनी बहिन को मनाकर लाने के लिए निकल पडा। भाई ने पहिले तो बहुत खुशामद की। पीछे वात्सल्य की बाते कही लेकिन बहिन ने कहा कि मेरा प्रण अटल है तब भाई ने कहा · मैं भी साथ ही चलूगा क्योकि मा ने मरती दफा तुम्हारी सम्हलावण मुझे दी थी। मा के बारे मे हर्ष ने जो कहा वह तुम्हे लिखता हू .

"मा मरने लगी जब उसका जी गले मे अटक गया था तब मैंने मा से पूछा कि तुम्हे किस बात की चिन्ता है तो मा ने कहा था कि मेरे लाल, मुझे जीवनी की चिन्ता है वह छोटी है, वह मा किसे कहेगी, वह किससे रूठेगी, उसका सिन्हारा कौन करेगा, उसके हाथो मे रचनी मेहदी कौन माडेगा। सुबह शाम लुक-लुक कर कोनो मे घुस-घुस कर वह रोयेगी। इस पर मैंने उसे वचन दिया था कि मा, तू जीवनी की चिन्ता मत कर। तू निश्चिन्त होकर मर। जीवनी की सम्हाल मैं करूगा, मैं उसे हथेलियो पर रखूगा तब मेरी और तेरी मा निश्चिन्त होकर और मुझे यह कह कर मरी थी कि ऐ

मेरे समर्थ लाल, मुझे तुझसे ऐसी ही आशा थी। तूं जीवनी की सम्हाल रखना। कही कभी पेटे पाप आया तो दरगाह मे मैं तेरी दामणगीर होऊंगी। इस तरह कह कर वह शात चित्त से मरी थी। इसलिये मेरी बहिन, मेरी जामनजाई बहिन मेरी जीण बहिन मैं अपने किये हुए कौल से फिर नही सकता। मैं असली राजपूत हू या तो तुम घर चलो या जहा तुम वहा मैं।" फिर बहिन-भाई दोनो डूगर पर चढ गये। कठोर तपस्या की सिद्धि प्राप्त की। और वह जीवनी आगे चलकर देवियो की देवी जीण माता हुई जिसके मन्दिर में मेला लगता है और हर साल बहुत बडी सख्या मे लोग वहा एकत्र होते है। गीत तुम्हे पढाऊंगा कलकत्ते आऊंगा तब। दीवाली के उपलक्ष्य मे तुम्हे यह कहानी लिख दी है।

हम लोग सब कोई मजे मे है तुम अच्छी तरह होवोगी। घर मे और सब लोग अच्छी तरह हैं न? राहुल बाबू (मेरा पुत्र जो उस समय ढाई वर्ष का था) का क्या हाल है? वह पढता है क्या कुछ? लेक कोठी से उसका राजी पो हुआ या नही? दीनानाथ को भी यह पत्र पढा देना। उसे अलग नही लिख रहा हू। दोनो सीर मे मान लेना पाती कम ज्यादा चाहे जैसे कर लेना। लडना मत आपस मे। पाती मे फरक रह जाय तो मैं आऊंगा तब पचायती कर दूंगा।

काकोजी

इस तरह की एक और कहानी बहिन के निश्छल प्यार की मुझे १०-७-७१ के पत्र मे (यह पत्र, पत्र-खण्ड मे है) लिखी जिसका यह मार्मिक अंश है—

"तुम्हे एक कहानी लिखता हू मेरा ख्याल है कि तुम्हे अच्छी लगेगी लेकिन डर यह लगता है कि तुम्हारे स्नेह के आसू न चल जायें"।

काकोजी मे कितना पारिवारिक प्रेम भरा था यह बहुत कम लोगो को पता है, बच्चो के साथ खेलते, विनोद करते। अत सभी बच्चे उनसे नि सकोच दोस्ती का भाव रखते थे। हम सब को हमारे बचपन की निश्छल बातें बताते। मैं जब तीन-चार वर्ष की थी तो उन्होने पूछा, एक पैसे में दो नीबू तो दो पैसे मे कितने? मैंने कहा: तीन। उन्होने मुझे हिसाब समझाया तब मैंने झट कह दिया कि काकोजी आप साथ रहें तब तो वह चार देता है नही तो तीन ही। यह बात अकसर याद दिलाकर कहते कि मुझे तो तुम आज भी उतनी ही बडी लगती हो। कैसे वे हमारा बचपन हमे लौटाते रहते थे। मुझे काकोजी से स्नेह-दुलार अधिक मिला या उपदेश यह कहना कठिन है। उनके प्यार मे उपदेश था और उपदेश मे प्यार। काकोजी का जीवन सार्वजनिक जीवन था, उन्हे अवकाश कम मिलता था पर जो भी थोडा सा समय देते उसे प्यार से आत्मीयता से, अपनी सादगी व निर्मलता से गहन गभीर बना कर पूर्ण कर देते, कितना सच्चा व पावन प्रेम हमे मिलता था। उन्हे उन्मुक्तता बहुत भाती थी। वे प्रत्येक व्यक्ति को दिल खोल कर खिलखिलाते देखना चाहते थे, महादेवीजी की उन्मुक्त हसी पर वे न्योछावर थे।

काकोजी चाहे उम्र मे, अनुभव मे, व्यवहार मे बड़े होते रहे पर थे वे एकदम बच्चे ही। वैसी ही निर्मलता, वैसी ही सरलता, वैसी ही दूसरो के दोषो को नजरअन्दाज कर फिर वैसा ही हो जाने की भावना। कितना निश्छल प्रेम!

ऐसे उदार, सहृदय व निर्मल पिता की बेटी होने मे किसे गौरव न होगा? हजारो-हजारो स्मृतियो से अभिषिक्त मैं जब पुरानी बातो को याद करती हू तो सभी बातें इधर-उधर बिखर जाती है, मैं न उनको बटोर पाती हू और न सजो पाती हू। वे यश.काय हैं। यह उनकी प्रशस्ति नही बल्कि सच्चाई है। अब भी मुझे उनकी वह मन्द मधुर आत्मीयता से भरी वाणी सुन पडती है और मै पुनः उसे सुनने के लिये अधीर हो जाती हू। फिर मैं अपने से प्रश्न करती हूं, काकोजी ने बहुत दिया, देने मे कजूसी नहीं की। क्या मैं ले पाई? कितना ले पाई? प्रभु से यही प्रार्थना है कि ये शब्द केवल शब्द न रहें—मेरे जीवन मे अधिक से अधिक उतरें। यही होगी उनकी बेटी बनने की सार्थकता और यही होगी मेरी पूज्य पितृ-चरण मे सच्ची श्रद्धाजलि।

—: ० :—

स्वर्गीय भागीरथजी के जामाता,
ज्येष्ठ पुत्री श्रीमती सावित्री के पति
श्री दीनानाथ खेमका

श्रद्धेय काकोजी

"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत समा"

काकोजी कर्मवीर थे ? कर्मनिष्ठ थे ? नही, इनसे भी ऊपर काकोजी थे एक सच्चे 'कर्मनिष्ठ योगी'। स्व की सीमा लाघ धृति, श्रद्धा, उत्साह व पूरी निष्ठा से अनासक्त रह उन्होने अपना जीवन परहिताय विताया। "वसुधैव कुटुम्वकम्" उनका मूल मत्र था। महामना मालवीय जी की भाति मोक्ष की चाह नही, वल्कि पुनर्जन्म की आकाक्षा रही काकोजी की ताकि कर्म कर सकें।

न त्वह कामये राज्यम् न स्वर्ग नापुनर्भवम्
कामये दु ख-तप्तानाम प्राणिनाम् आर्ति-नाशनम् ॥

'दु ख सहना और सुख वाटना' यह उनके जीवन का ध्येय था। कभी किसी को छोटा नहीं माना और सदा सहायता करने को तत्पर रहते थे। किसी की निन्दा करना या दूसरे के प्रति दुर्भाव रखना इनको विल्कुल पसन्द नहीं, था। परोपकार इनके जीवन का व्रत था। गृहस्थ जीवन मे भी ये वरावर अनासक्त रहने की कोशिश मे लगे रहे—इनके जीवन का उद्देश्य रहा है—

"अकुत्सिते कर्मणि य. प्रवर्तते निवृत्तिरागस्य गृह तपोवनम्"।

काकोजी के परहिताय की एक वात यहा लिख रहा हू। आज से कोई ५०-६० वर्ष पूर्व की वात है। इन्होने अपने गाव मे हरिजनो के लिये उनकी ही वस्ती मे एक कुआ खुदवाया। उस समय हरिजन अछूत माने जाने के कारण जानवरो की पानी पीने वाली खेली से पानी लाकर पीते थे जिसमे कीडे कुलवुलाया करते थे। इनके दिल मे अछूतो के प्रति भाइयो सा प्रेम व समभाव था। हरिजनो का मान बढाने के लिए तीस वर्ष पूर्व सावित्री को लेकर अपने भगी के घर गये और वडे प्रेम से उनके यहा लस्सी पी। इस प्रकार एक ओर हरिजनो के प्रति अपने प्रेम को दिखाया वहा यह भी भावना रही कि उनके वच्चे निराभिमानी वनें और सवके प्रति समभाव रखें।

रामावतार मे प्रभु कटुभाषियो से मधुर वोलते थे, कृष्णावतार मे प्रभु कटुभाषियो से कटु पर इस कलयुग मे हमारे वीतरागी काकोजी प्रभु राम की भाति मधुर ही मधुर वोलते थे। अतः मेरा रोम-रोम व मेरी आत्मा श्रद्धावनत् हो यही कहती है

"इन्ह सम कोउ न भयउ जग माही,
है नही कवहू हूं हैं नाही"॥

—.०.—

श्री राधाकिशनजी कानोडिया की ज्येष्ठ पुत्री
श्रीमती सुमित्रा जालान

छोटे बाबाजी

मैं उनकी लाडली थी और उन्हे छोटे बाबाजी कहती थी। मेरे शैशव की स्मृतियो मे उनकी अनेको स्मृतिया है, लेकिन एक स्मृति इतनी सजीव है कि उसकी याद आते ही सारा दृश्य मेरी आखो के आगे खिच जाता है। उसी को लिखती हू।

२६ अगस्त, १९४२। यह मेरे जीवन का एक परम पुनीत दिवस बन गया है। मैं बच्ची थी और मेरे मन मे देश के प्रति प्रेम था। इस दिन छोटे बाबाजी गिरफ्तार किये गये थे। छोटे बाबाजी गिरफ्तार हो रहे है, इससे मैं दुखित नही थी, गर्वित थी—हमारे छोटे बाबाजी देश के लिये जेल जा रहे है। छोटे बाबाजी की जेल-यात्रा का दृश्य अनोखा था। यह कुछ वैसा ही था जैसा कि किसी राजपूत योद्धा का युद्ध के लिए अभियान।

स्वतन्त्रता के वीर सैनिक की विदा-वेला मे सारा परिवार, स्वजन, परिजन, बधु-बाधव अदम्य उत्साह से इकट्ठा हुए थे। इनमे मैं भी थी, उनकी लाडली अबोध बालिका जो न जाने कितनी हर्षित और गर्वित थी। आज भी बार-बार याद आती है वह अनुपम झाकी—छोटे बाबाजी के उन्नत ललाट पर बडे बाबाजी (भागीरथजी के अग्रज गंगाबक्सजी) का तिलक लगाना, उनका देदीप्यमान मुख और गर्वोन्नत वक्ष।

इस पावन झाकी की स्मृति मे आज भी मन धन्य-धन्य कर उठता है।

—:०:—

स्व० भागीरथजी के पुत्र एवं पुत्रवधू
श्री अश्विनीकुमार एव
श्रीमती भारती कानोडिया

सुरसरि सम सब कहं हित होई

"वेटी वीनणी कईया होव" ये शब्द सदा कानो मे अमृत वरसाते रहे और आज भी इनका स्मरण मुझे वात्सल्य के आगार मे प्रतिष्ठित कर देता है। ससार की दृष्टि मे काकोजी मेरे श्वसुर मात्र थे परन्तु वास्तव मे वे मेरे माता, पिता, गुरु तथा मित्र पहले थे, श्वसुर वाद मे। उनके अभिन्न मित्र श्री सीतारामजी सेकसरिया को दौहित्री होने के नाते मुझे उन्होंने जन्म से पुत्रीवत् माना। वाद मे जब वे मुझे अपनी पुत्रवधू वनाकर घर मे लाये तव वोले—

"मै पुनि पुत्रवधू प्रिय पाई, रूप राशि गुन सील सुहाई।
नयन पुतरि करि-प्रीति वढाई, राखेउ प्रान जानकीहि लाई॥"

इसके वाद उन्होने अपनी विकट समस्या मेरे सामने रखी, "वेटी वीनणी कइयां होव"। उनकी समस्या ने मेरे पितृ गृह-वियोग के दुख को हर लिया, काकोजी की आंखो में छलक आये अनमोल स्नेहाश्रु मेरी जीवन लता को सिंचित करते रहे।

विवाह के कुछ दिन पश्चात ही किसी सम्बन्धी के यहा निमंत्रण से रात को कुछ देर से लौटी तो देखा, काकोजी व्याकुलता से वाहर चहलकदमी कर रहे है। उनकी परेशानी पर मेरी हैरानी देखकर वे वोले "वधू लरिकनी पर-घर आई। राखेहु नयन पलक की नाई।"

"नयन पलक की नाई" रखी जानेवाली घर मे भारती अकेली नही थी। हम सब भाई-वहन एव वहुए सभी आपस मे यह दावा करते थे कि "काकोजी मुझे ही सवसे ज्यादा प्यार करते है।" किसी के भी इस दावे का अन्त तक निपटारा नही हो पाया। यहा तक कि मेरे पुत्र देवप्रिय के पढाई के लिए विदेश गमन की सध्या को काकोजी ने अपनी मृत्युशय्या से भी आसीष देने के लिए वम्बई फोन किया। यह उनकी अन्तिम फोन वार्ता थी। इतना विशाल था उनके स्नेह का प्रासाद कि हमारे वृहत् परिवार द्वारा उस प्रासाद पर अधिकार कर लेने के वाद भी अन्य लोगो के लिए पर्याप्त स्थान वच जाता था।

x x x

गृहस्थी मे रह कर भी किसी मनुष्य के लिए वानप्रस्थ ले पाना वहुत ही कठिन होता है और विशेषकर एक वैश्य के लिए। चौथेपन मे भी वह निन्यानवे के फेर मे पडा रहता है लेकिन काकोजी "पद्मपत्रमिवाम्भसा" थे। उन्होंने व्यापार से पूरी तरह संन्यास ले लिया था। पैसे की दुनिया से अपने आपको समेट लिया था और अपना समय मात्र पढने-लिखने तथा जन-कल्याण के कार्यों मे ही व्यतीत किया करते थे। एक

बार जब वे किशनगढ़ थे तब वहां से बम्बई फोन पर बात करने के दौरान उन्होंने मुझसे पूछा "तेरी मील ठीक चालू है ना। कमाई ठीक है ना"। मिल में ही बैठे हुए इस प्रकार का प्रश्न पूछना मुझे बहुत ही अटपटा लगा। मैंने उनसे कहा "आप वहीं तो हैं आपको मालूम ही होगा अन्यथा वहीं मिल के अधिकारियों से पूछ लीजिए।" सीधा सा जवाब था उनका. "मन्ने घाटे नफे स के मतलब, मतो थ्रम थ्रयां ही जाणन के लिये पूछ लियो थो। अठै ह्यारां स क्यूं पूछूं ?"

विनोद तो उनकी रग-रग में समाया हुआ था। अपने इसी स्वभाव के कारण वे सबके प्रिय बने और सभी उन्हें अपने नजदीक का मान लेते थे। कोई बूढा हो अथवा बच्चा—सभी के मित्र बन जाते थे। मेरी पुत्री अमिषा का मध्य रात्रि के अन्तिम प्रहर में जन्म हुआ ही था कि सुबह बहुत ही जल्दी उन्होंने मुझे फोन किया और बिल्कुल सरल तरीके से पूछा "तू कुण सी तीजी खर्च आज स कम करसी", मैंने कहा "मैं समझा नहीं। कोई विशेष खर्चीली आदत भी नहीं है जिसे मुझे कम करने के लिए कहा जाय", उन्होंने तुरन्त ही कहा "जो भी हो, खर्चो तो अब सू घटानो ही पड सी। रुपया भेला कर जद ही तो बेटी को ब्याह करन सक सी"। उनका कहना था कि बात एक बारगी ही समझ में आ गई और मैं हंसी से दुहरा हो गया।

X X X

गीता और रामायण से काकोजी का मन कभी नहीं भरा। हम सभी बहुओं ने उन्हें रामायण गा-गा कर सुनाई है। वे सुनकर आनन्दित ही नहीं, कृतज्ञ होते थे। याद आती है यह पंक्ति "अतुल सुभाव तनक तुलसीदल, मानत सेवा भारी"। उनके लिये तनिक सा भी कर दिया जाता तो वे उस 'तनिक' को भी इतनी बड़ी सेवा मान लेते कि उससे अपने को कभी उऋण नहीं समझ पाते। मैं कभी कुछ रूखा-सूखा भी बना देती तो बड़े शौक से स्वाद लेकर खाते और कहते "तेर हाथ स अमृत है।"

मैं विवाह के बाद अन्तिम परीक्षा देने के लिये पढ़ रही थी। नये परिवेश में नई जिम्मेदारियों को सम्हालने में इतनी घबरा गई थी कि गृहस्थी और अध्ययन का ताल बेताल होने लगा। मैंने पढ़ाई छोड़ने का निश्चय किया। जब काकोजी को यह मालूम हुआ तब उन्होंने मुझे यह कहानी सुनाई : एक पटु नट और नटनी किसी कंजूस राजा के दरबार में अपना कौशल दिखाने गये। रात ढलने को आयी परन्तु राजा ने कुछ देना पड़ेगा इस डर से, एक बार भी वाह-वाह नहीं की। नटनी थक गई तो नट से बोली "रात घड़ी भर रह गई, पिंजर थाक्या आय। यो राजा रीझे नहीं, मग्नरी ताल बजाय"। उत्तर में नट ने कहा "बहुत गई थोड़ी रही, थोड़ी भी अब जाय। नट कहे सुन नट्टणी, ताल भग क्यूं खाय"। यह सुनकर राजकुमारी ने अपना बहुमूल्य हार तथा राजकुमार ने अपना कीमती दुशाला उतार कर नट को दे दिया। राजा को क्रोधित देखकर राजकुमार ने कहा "हम दोनों आपकी कंजूसी से तंग आकर कल कुछ अकर्म करने वाले थे। "ताल भग क्यू खाय" याने जीवन का क्रम क्यों बिगड़े इस बात ने हमे नया जीवन-दर्शन दिया है। हमने अपना निश्चय बदल कर अपने को पाप करने से बचाया है। इसलिए नट को गुरु मानकर गुरु दक्षिणा-स्वरूप यह दे दिया"। यही प्रतिक्रिया मेरे साथ भी हुई तथा मैं नये संकल्प

के साथ अपनी पढाई मे जुटी और सफल हुई। आज सोचती हू तो प्रश्न उठता है कि यदि काकोजी मुझे समय पर नैतिक साहस नही देते तो क्या मैं अपनी मजिल तक पहुच पाती ? तब "बहता पानी निर्मला" लिखी नही गई थी परन्तु जीवन-काव्य तो वे सदा ही लिखते रहे। यह काव्य रस, रूप और गध तीनो गुणो से युक्त पुष्प की तरह था। उनकी हर बात निराली थी, जिसमे धरती की गध, जीवन का रस और अन्तस् के सौन्दर्य के दर्शन होते थे।

x x x

हम लोग बम्बई रहते हैं। मेरे गले मे एक बार भयकर तकलीफ हुई और मैं घबरा गया था। भारती ने सोचा कि काकोजी की उपस्थिति से मुझे बल मिलेगा। उसने कलकत्ता फोन करके काकोजी से सहज स्वर मे बम्बई आने को कहा। वे बोले "ठीक ह, काल शाम के प्लेन से आजास्यू।" भारती ने अनुरोध किया "शाम को नही सुबह के प्लेन से आ जाइये।" बिना पूछे ही कि क्या बात है वे सुबह की उडान से ही बम्बई आ गये। मुझे डिप्थीरिया हो गया था। परन्तु यह उन्हे आने के बाद ही बताया गया। भारती ने जब पूछा "आप मेरे बुलाने पर कारण जाने बिना सब कामकाज छोडकर तुरन्त कैसे दौड़े चले आये ?" इस पर वे बोले "क्यू गडबड है या तो म समझ गयो थो। इतनो विश्वास थो कि तू बिना मतलब मन्ने परेशान कोनी करे ई लिये कारण पूछनो जरूरी कोनी समझ्यो और आ गयो।

x x x

"या निशा सर्वभूताना तस्या जागर्ति सयमी" जब सारा जग अपनी-अपनी दुनिया मे खोया रहता था, तब भी काकोजी जागते रहते थे और सोचते थे, योजनाए बनाया करते थे—अकाल-राहत के कार्यो की, गरीब छात्रो के लिए छात्रवृत्ति की, निराश्रित वृद्ध अपाहिजो को पेन्शन दिलाने की, अस्पताल के लिए धन सग्रह की, परित्यक्ताओ को उनके अपने घरो मे पुनः प्रतिष्ठित कराने की। विचारना और विचार को कार्यान्वित करना, दिन हो या रात, उनके लिए कभी नही रुका, अनवरत चलता ही रहा—तब तक, जब तक सासें चलती रही।

यह सब हमने निकट से देखा था। कभी हमारा मन भी इस राह पर चलने को ललकता था, किन्तु दूसरे ही क्षण अपनी क्षमताओ की सीमा का परिचय पाकर हम थम जाते। यदि कभी इस ललक से पराजित होकर हम उनके पद-चिन्हो पर एक पग भी रख पाये तो अपने को धन्य मानेंगे।

—: o :—

भागीरथजी के कनिष्ठ पुत्र एवं पुत्रवधू

श्री सतोषकुमार एवं उमा कानोडिया

वट-वृक्ष

आकाश की तरह निर्मल—मेरे पिता
तुमने हमे जन्म दिया
प्यार दिया
सपने
गीत दिये
गीता के कर्म का पाठ
और घने वट-वृक्ष की छाया

जितना कुछ दिया है तुमने
उसके लिये शब्द नही है मेरे पास
भाषा बौनी लगती है
तुम्हारे विराट व्यक्तित्व के सम्मुख

आज जीवन के हर मोड पर, दिवस के हर क्षण मे, हमे अपने परम श्रद्धेय काकोजी का अभाव महसूस हो रहा है। उनके बनाये हुए प्रशस्त मार्ग पर हम यदि एक डगर भी चल पाये तो यही उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि मानेंगे।

ओ स्नेह, प्रेम, ममता, जीवन के गायक !
ओ सहज गीत के कर्णधार जन-नायक !
रूप रग रस गध, मम छन्द निर्माता !
ओ पिताश्री ! मैं तुमको शीश झुकाता।

:— ० —:

स्व० भागीरथजी की कनिष्ठ पुत्री
श्रीमती उषा भुवालका

वह शीतल छाया !

अचानक ही लगा जैसे समय आकर मेरे निकट रुक गया है और मैं तपते रेगिस्तान की रेत पर जलने के लिये छोड दी गयी हूं। वह शीतल छाया जो मेरे हृदय को बराबर सुख और शान्ति प्रदान करती रही वह हठात् कैसे पचभूत-तत्व मे विलीन हो गई। इस तरह उनके चले जाने से, जीवन मे एक बडी रिक्तता आ गयी। अब मुझे 'बेटी' कहने वाली वह मधुर आवाज नही मिलेगी—जन्म भर यह सुनने के लिये तड़पना पडेगा—मन छटपटाता रहेगा।

काकोजी हमेशा ही मुझे 'बेटी' कह कर पुकारते थे—वह आत्मीय क्षण फिर-फिर मिले इसकी प्रतीक्षा अब समाप्त हो गयी। कभी-कभी तो उनके स्नेहसिक्त साहचर्य और अतीत हो गयी आन्तरिक घटनाओ की याद मे मन इतना विचलित हो उठता है कि अपने आपको सम्भालना बहुत मुश्किल हो जाता है। उनकी वे कहानियां, उनकी उक्तिया व मीठी झिड़किया हमेशा-हमेशा याद रहेंगी। अन्तिम दिनों में वे कितने आत्मीय व स्नेहिल हो उठे थे कि भुलाये नही भूल पाती। जो जीवन भर स्वय दूसरो की तकलीफ दूर करने मे सलग्न रहे, अन्तिम दिनो मे उन्होने उतनी ही तकलीफ अपने ऊपर ओढ ली थी—यह सोच कर भी मन विलख उठता है।

काकोजी स्वय तो सबको रोता-बिलखता छोड कर स्वर्गवासी हुए। एक ऐसा अभाव दे गये, जिसकी पूर्ति नही हो सकती। ईश्वर के दूत के रूप मे मानो इस पृथ्वी पर अवतरित हुए थे। दूसरो को सेवा-सुख प्रदान कर स्वय सन्तुष्ट होते रहे और अपनी तकलीफें झेलते हुए ब्रह्मलीन हो गये। सच ही वे एक 'महापुरुष' थे। एक सन्त थे, जिनकी बेटी होने का सौभाग्य मुझे मिला—मैं गौरवान्वित हुई।

उनका आशीर्वाद, उनका आदर्श, उनकी सत् इच्छा मेरा पथ-निर्देश करे, इसकी प्रार्थना ईश्वर से करती हू। परम पिता परमेश्वर उनकी पावन आत्मा को शान्ति प्रदान करें—यही मेरी हार्दिक विनती है।

— ० —

स्व० भागीरथजी के व्यक्तिगत परिचारक

श्री जगरूप घरिया

दीनन के हितकारी

१९३० मे पन्दरह वर्ष की उमर मे मैं बाबू भागीरथजी के पास काम करने लगा। उस वक्त बाबूजी मुझे अपने लडके की तरह मानते थे। मेरी शादी उनकी मदद से हुई। मेरी स्त्री के पेट मे बहुत बडा रोग हो गया तो उन्होने बहुत पैसा खरच करके उसका आपरेशन करवाया।

एक बार बाबूजी ने पूछा, तुम्हारे पास खेत नही है तुमको कुछ खेत करवा दे, मैंने कहा, मेरे कोई बाल-बच्चा तो है नही, दो जने हैं, किसलिए खेत करू ? आपकी इच्छा हो तो हमको एक कुआ और शकरजी का मन्दिर बनवा दीजिये। बाबूजी ने कुआ और मन्दिर बनवा दिया। कुआ बनने से मेरे गाव वालो को पानी पीने का बहुत सुभीता हो गया। पहले कुआ बहुत दूर था।

इधर मैंने बाबूजी से पशुओ के पानी पीने के लिए मेरे गाव मे हौदी बनाने की बात कही तो उन्होने मुझे २००/- रु० दिये। हौदी का काम शुरु किया तो बाबूजी की मृत्यु हो गयी और फिर काम रुक गया।

सीताराम बाबू और बाबूजी की जोडी थी। दोनो एक दूसरे के हर काम मे साथ रहते। बाबूजी की मृत्यु के बाद उनके लडके मेरी सहायता करते है।

—:०:—

पत्र-लेखक भागीरथजी

स्व० भागीरथजी कानोडिया के जीवन के कई पहलू थे। वह लोक-सेवी थे, भारतीय सस्कृति के प्रेमी थे, अध्यात्म मे उनकी अभिरुचि थी, साहित्य मे उनकी गति थी, कला के वह पारखी थे। इन तथा अन्य क्षेत्रो मे उन्होने जो सेवा की, वह अत्यन्त महत्वपूर्ण है। लेकिन उनका एक पहलू और भी था, जो मेरी दृष्टि मे सबसे प्रमुख था। वह था उनके पत्र-लेखन का। वस्तुत पत्र-लेखन एक महान कला है। यो लिखने को हम सब पत्र लिखते है, लेकिन अधिकाश व्यक्ति यह नही जानते कि पत्र किस प्रकार लिखने चाहिए। हिन्दी के वयोवृद्ध लेखक श्री बनारसीदास चतुर्वेदी की फाइलो मे एक फाइल है, जिसमे उन्होने कुछ ऐसे पत्र रख छोडे है, जो लिखने वाले और पानेवाले, दोनो के लिए अशोभनीय है। उस फाइल के ऊपर चतुर्वेदीजी ने लिखा है - "हाऊ नॉट टू राइट लेटर्स, अर्थात्, किस प्रकार के पत्र नही लिखने चाहिए।" बिना अतिशयोक्ति के मैं कह सकता हू कि पत्र कैसे लिखने चाहिए, भागीरथजी के पत्र उसके नमूने है।

अपने जीवन-काल मे उन्होने हजारो नही, लाखो पत्र लिखे होगे। उनका स्वभाव ही था कि जो भी पत्र उनके पास आता था, चाहे वह किसी बडे नेता, विशिष्ट साहित्यकार अथवा किसी प्रमुख समाज-सेवी का हो, या सामान्य कार्यकर्ता का, उसका उत्तर वह तत्काल दे देते थे। मेरा उनका पत्र-व्यवहार बहुत पुराने समय से रहा है और उनके जीवन के अन्तिम दो महीनो को छोडकर, जब कि वह अत्यन्त अस्वस्थ थे, मुझे याद नही पडता कि मेरा एक भी पत्र अनुत्तरित रहा हो।

दूसरी उनकी विशेषता यह थी कि जहा तक उनका वश चलता था, पत्र अपने हाथ से लिखते थे। यह नही कि बोल कर पत्र लिखवाने का उन्हे अभ्यास नही था, मैंने बीसियो बार देखा कि वह हिन्दी अथवा अग्रेजी मे पत्र लिखवाने मे कोई कठिनाई अनुभव नही करते थे, धाराप्रवाह बोलते जाते थे। उनके पास साधनो का अभाव नही था, टाइपिस्ट भी था, लेकिन फिर भी वे अपने हाथ से ही पत्र लिखना पसन्द करते थे। मेरे पास उनके सैकडो पत्र है, उनमे कुछ को छोडकर शेष उनके हाथ के ही लिखे हुए है।

सम्भवत. इसका कारण यह रहा होगा कि पत्र लिखने वाला अपने दिल की बात लिखता है। वह नही चाहता कि उसकी बात किसी तीसरे व्यक्ति को मालूम हो। वह यह भी अपेक्षा रखता है कि उसके उत्तर की जानकारी और किसी को न हो। भागीरथजी इन बातो का विशेष ध्यान रखते थे। बहुत-से लोग उनके पास आते थे, उनके सामने अपनी निजी समस्याए रखते थे। भागीरथजी उनकी चर्चा कभी दूसरो के सामने नही करते थे, विशेषकर उन बातो को तो वह कभी नही कहते थे,

जिनका प्रभाव किसी की मान-मर्यादा पर पडता हो या जिससे किसी के स्वाभिमान को आघात पहुचता हो।

भागीरथजी के जीवन मे जिस प्रकार की सादगी थी, वही सादगी उनके विचारो मे थी और वही सादगी उनके पत्रो मे दिखाई देती है। वह बडे-बडे विशेषणो का प्रयोग नही करते थे, न उनकी बातो मे अतिशयोक्ति होती थी। वह पत्रो मे बडी सरल और सहज भाषा का प्रयोग करते थे। उनकी भाषा बहुत गठी हुई होती थी। कभी-कभी वह राजस्थानी की किसी कहावत को भी उद्धृत कर देते थे।

वह निस्सन्देह कला के उपासक थे। लेकिन उनका विश्वास था कि कला कला के लिए नही है, जीवन के लिए है। अत अपने पत्रो मे वह कभी कला की छटा दिखाने का प्रयत्न नही करते थे। कम-से-कम शब्दो मे सीधी-सच्ची बात लिख देते थे। शब्दो का आडम्बर कभी नही रचते थे।

एक और गुणवत्ता थी उनकी और वह यह कि वह कभी किसी को बीच मे लटका कर नही रखते थे। कुछ करना हुआ, कर दिया। नही करना हुआ तो साफ इन्कार कर दिया।

उनके पास सभी प्रकार के पत्र आते थे। उनमे एक नही, अनेक समस्याए होती थी। भागीरथजी के विचार, भाषा और शैली इतनी स्पष्ट थी कि वह जटिल-से-जटिल समस्याओ का भी बडी सरलता से समाधान कर देते थे।

उनका मानसिक सतुलन तो अद्भुत था। कठोर-से-कठोर और कडवी-से-कडवी बात का जवाब किस प्रकार शिष्ट भाषा मे दिया जा सकता है, यह कोई उनसे सीख सकता था। कुछ अवसर ऐसे आये, जब मैने उन्हे बहुत उत्तेजित होकर पत्र लिखे, लेकिन उन्होने अत्यन्त सयत शब्दो मे उत्तर दिया।

'सस्ता साहित्य मडल' के साथ उनका सम्बन्ध बहुत पुराना था। पहले वह उसके सदस्य थे, बाद मे श्री घनश्यामदास बिडला के सभापति के पद से हट जाने पर वह उस पद पर आसीन हो गये और मृत्यु-पर्यन्त आसीन रहे। 'मडल' की आर्थिक कठिनाई कैसे दूर हो, उसका काम आगे कैसे बढे, उसके लिए कौन-कौन सहायक हो सकते है, इन तथा अन्य अनेक सुझावो से उनके पत्र भरे पडे हैं। इस प्रकार के सुझाव वह 'मडल' को ही नही, उन सब सस्थाओ को देते रहते थे, जिनके साथ उनका किसी तरह का सम्बन्ध होता था।

मजे की बात यह है कि उनके पास जितने पत्र आये, उन्होने किसी को भी सहेजकर नही रखा। उनका सम्पर्क बडे-बडे राजनेताओ, विद्वानो, लेखको, कलाकारो से रहा। उनमे से बहुतो के ऐसे पत्र आते रहते थे, जिन्हे सग्रह मे रखने का लालच किसी को भी हो सकता है, लेकिन भागीरथजी थे कि उन पत्रो का उत्तर देकर उन्हे तभी-के-तभी फाड डालते थे। पिछले अनेक वर्षों से मैं जब-जब कलकत्ता जाता था, उन्ही के साथ ठहरता था। दफ्तर मे उनका सारा समय मुलाकातियो

से बात करने अथवा पत्र-लेखन मे व्यतीत होता था। मैं देखता था कि चिट्ठियो का जवाब लिखा कि उन्हे फाडकर रद्दी की टोकरी में डाल दिया। मैंने कहा कि आप ऐसा क्यो करते है? उनका एक ही उत्तर होता था, पत्रो को संभालकर रखने का मेरा स्वभाव ही नही है। एक बार मैंने किसी विद्यार्थी को ५०) महीने दस महीने तक देने को लिखा। उन्होने स्वीकार कर लिया और पहले महीने रुपये भेज दिये। जब दूसरे महीने रुपये नही गये तो उस छात्र ने मुझे लिखा। मैंने भागीरथजी को पत्र भेजा तो जवाब आया कि उन्होने रुपये भिजवाकर पत्र फाड दिया था। मैं उस छात्र का पता फिर से भेज दूं।

भागीरथजी वैसे बडे भावनाशील व्यक्ति थे। कभी-कभी भावुक भी हो उठते थे। लेकिन अपनी भावुकता को वह कभी पत्रो मे व्यक्त नही होने देते थे। भावुकता मे बहते मैंने उन्हे कभी नही पाया। उनके पत्रो मे भी कभी भावुकता दिखाई नही देती थी। सच यह है कि भावुकता मोह-माया और आसक्ति के कारण उभरती हैं। भागीरथजी काफी हद तक इनसे ऊपर उठ गये थे। हा, अपने आत्मीयजनो का स्मरण करते रहते थे। अपने पत्रो मे वह परिचित व्यक्तियो की कुशलता पूछना नही भूलते थे।

सन्तो और राजस्थानी के साहित्य मे उनकी दिलचस्पी बहुत गहरी थी। हम लोग कलकत्ते मे सवेरे टहलकर जब उनके निवास-स्थान पर आते थे तो अक्सर उस सम्बन्ध मे चर्चा छिड जाती थी। पत्रो मे भी कभी-कभी वे प्रसग आ जाते थे। हम लोगो ने 'मडल' से उनकी लोक कथाओ का एक सग्रह 'बहता पानी निर्मला' निकाला था। उसकी अधिकाश कहानिया उन्होने मेरे आग्रह पर लिखी थी। जब उन कहानियो के पुस्तकाकार प्रकाशित होने की बात आई तो उन्होने मुझसे आग्रह किया कि पुस्तक की भूमिका मैं ही लिख दू। उनके कई पत्रो मे कहानियो का उल्लेख रहा। शब्दो की उनकी पकड विलक्षण थी।

उनके किसी भी पत्र में निराशा की बात नही रहती थी। उनका उत्तर पाकर निराश और दु खी व्यक्ति भी उत्साहित हो उठता था। अपने जीवन मे उन्होंने खूब उतार-चढाव देखे थे। अत. दूसरे की निराशा अथवा व्यथा को वह सहज ही अपनी समझ लेते थे और उसे सात्वना देने का हर तरह से प्रयास करते थे।

किसी विदेशी समीक्षक के पास समीक्षा के लिए बहुत-सी पुस्तकें आया करती थी। उसने बडी चतुराई से इन शब्दो मे उत्तर लिख रखा था—"आई विल लूज नो टाइम इन रीडिंग योर बुक।" इसके दो अर्थ निकलते थे। पहला यह कि मैं तत्काल तुम्हारी पुस्तक को पढूगा। दूसरा यह कि मैं तुम्हारी पुस्तक के पढने मे समय का अपव्यय नही करूगा। भागीरथजी अपने पत्रो मे इस प्रकार की दोहरी भाषा का प्रयोग कभी नही करते थे। जो कहना होता था, साफ-साफ लिख देते थे।

पत्र-लेखन की कला मे भागीरथजी पारगत थे और उनके पत्र सादगी, हार्दिकता, स्पष्टता आदि अनेक गुणो के अनुकरणीय दृष्टान्त है।

—यशपाल जैन

भागीरथजी द्वारा लिखे गये पत्र

[यहां भागीरथजी द्वारा लिखे गये कुछ पत्र दिये जा रहे हैं। उनको लिखा गया एक भी पत्र नहीं मिल पाया क्योंकि वह पत्र का जवाब देने के बाद उसे तुरत फाड़ देते थे। सं०]

श्री वनारसीदास चतुर्वेदी के नाम

(१)

१९-५-१९७७

प्रिय श्री वनारसीदासजी,

आपका पत्र तथा साथ मे गौतम बुद्ध पर आपका लेख व श्री अवतार सिंह पवार के वारे मे एक छोटी-सी पुस्तिका मिली। धन्यवाद।

आपने जिस पेन्शन का जिक्र किया वह मेरी समझ मे स्थायी नही रह पायेगी क्योकि जनता पार्टी की सरकार के अधिकतर लोग इस तरह की पेन्शन के पक्ष मे नही हैं। जो हो, दरअसल आपके लिये तो पेन्शन और वह भी अच्छी रकम (अमाउन्ट) की पेन्शन, प्रवासी भारतीयो के काम की मिलनी चाहिये थी या तो आपकी साहित्यिक सेवाओ की। क्रातिकारियो के लिये भी आपकी सेवायें कम नही है किन्तु मालूम नही इस तरह की सेवाओ की कदर सरकार कब करेगी तथा कब उन्हे सम्मानित करेगी।

मुझे जिन शब्दो मे याद किया वह तो आपकी कृपा और स्नेह के कारण है। मैं तो जहा हू और जैसा हू उस अवस्था मे मुझे पूरा सन्तोष है। मेरा नाम कही भी प्रकाश मे आये तो मुझे शरम आती है। भगवान से यही चाहता हू कि आप जैसे सुहृद बन्धुओ की कृपा और स्नेह वना रहे। जीवन मे ऐसी कोई भूल न हो कि जिसके कारण इससे वचित होना पडे।

आपने गढवाल जाने की वात लिखी सो अभी तो जाने वाला नही हू किन्तु सितम्बर के आसपास शायद वद्रिकाश्रम की एक वार फिर यात्रा करू। देखें कैसा सयोग वनता है।

आपका
भागीरथ कानोड़िया

(२)

२६-५-१९७७

प्रिय श्री बनारसीदासजी,

आपका २५ तारीख का पत्र मिला ।

दरअसल मुझे कभी ऐसा भान नहीं हुआ और न आज ही है कि मैंने अपने जीवन मे कुछ किया है । यह तो आप लोगो का स्नेह और कृपा है कि आप इन शब्दो मे मुझे याद करते है । मेरे सन्तोष के लिये इतना काफी है । इससे अधिक न मैंने कभी चाहा है, न आज चाहता हू और न कल चाहूंगा । बस, आप कृपा बनाये रखें ।

सीतारामजी से आप ८ महीने छोटे हैं, इसका मतलब यह हुआ कि मुझसे २ वर्ष बडे हैं ।

आपका,
भागीरथ कानोड़िया

श्री गोविन्दप्रसाद केजड़ीवाल के नाम

आदित्य मिल्स लिमिटेड
मदनगंज
किशनगढ (राजस्थान)
२-८-१९७७

प्रिय गोबिन्द,

तुम्हारा पत्र मिला ।

तुमने सम्मान की बात लिखी सो ठीक किन्तु मैंने तो सम्मान होता बसन्तलाल जी का देखा था जो कि दो पाच दिन के बाद ही चल बसे । दूसरा अभी रामेश्वरजी टाटिया का देखा था । उनको भी दो-तीन ही लगे और वे चले गये । नागरमलजी मोदी का देखा था, वे भी थोड़े से दिनो ही जिये । इस तरह कई उदाहरण दे सकता हू । मित्रो को मेरे लिए इतनी जल्दी नही होनी चाहिए । कुछ दिन आराम मे बैठा हूं, बुलाहट आयेगी तब चला जाऊंगा । राजस्थानी में एक कहावत है 'पाडोसी न मरतो देख, म्हारो तो मरणै मैं मन इ फटगो", सो सम्मानित हुए लोगों की तुरन्त ही मृत्यु होने की बात देख कर मेरा भी सम्मानित होने मे मन फट गया ।

सम्मानित करने की बात तो उन लोगो के लिए ही सोचनी चाहिए जो इसके इच्छुक हो या जो बड़े लोग हों ।

आशा है तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा होगा । मैं ५-४ दिन में कलकत्ते जा रहा हू ।

तुम्हारा शुभेच्छु
भागीरथ कानोड़िया

श्री सीताराम सेकसरिया के नाम

(१)

१०-१-१९७३

भाई श्री सीतारामजी,

आपका पत्र मिला।

कीमत मे न गदहे की बात है, न गाय की, बात उपयोगिता की है। यो चाहे तो इसे कलियुग की महिमा भी कह सकते है। लेकिन आज तो अर्थशास्त्र ही मुख्य है।

काग्रेस के अधिवेशन के बारे मे आपने लिखा सो ठीक। अगर धूम-धाम को सफलता माना जाय, टीप-टाप को सफलता माना जाय, भडकीले दिखावे को सफलता माना जाय तो मानने वाला भले ही सफलता मान ले, लेकिन जहा तक बडे-बडे उद्देश्यो का सवाल है उसके हिसाब तो राई-रत्ती भी सफलता की बात है नही। करने वाले जो कुछ करते है, अपनी मान्यताओ और रुचि के हिसाब से करते है, इसलिए अपनी आलोचना भी व्यर्थ ही है।

मारवाडी रिलीफ सोसायटी के भोजन कराने की बात लिखी सो ठीक। काग्रेस सेशन मे डेलीगेटो को भोजन कराने की व्यवस्था करना तो ग्रहण के अवसर पर गगाजी पर स्वयसेवक का काम करने जैसी बात है। रामकृष्ण सरावगी काम ठीक कर रहा है तथा उसका स्थान बनता जा रहा है, यह मुझे भी बहुत अच्छा लगता है। सम्बन्ध का आदमी है, नौजवान है, उसका स्थान बन जाय और वह कुछ कर सके तो बहुत ही अच्छी बात है।

आपने २५ बरस के स्वराज की बात लिखी सो स्वराज का हाल तो यह है कि स्वर्ग से गंगा गिरी तो शकर की जटा मे समा गई। धरती के लोगो को उसका लाभ तब मिला जब कि भगीरथ ने एक बार शकर के सामने अपना रोना रोया और प्रार्थना की, नही तो वह अनत काल तक शकर की जटा मे ही पडी रहती। शकर की जटा से निकली तो उसे फिर एक बार एक ऋषि ने अपने जांघ मे रोक कर रख लिया। वहा से छूटने पर उसका नाम जान्हवी हो गया। भगीरथ को, बेचारे को फिर उसकी खुशामद करनी पडी तब जाकर गगा का उपभोग जनता को मिल सका। यह स्वराज की गंगा भी आज कुछ बडे लोगो की जटा मे समाई हुई है। जनता का दुख-दर्द देखने को किसी को पडी नही है। स्वर्ग से गगा याने अग्रेजो से स्वराज गाधीजी ने लिया। गाधीजी के चले जाने पर तो अब शकर की खुशामद करने वाला या शकर को डराने वाला भी कोई रहा नही। भगवान को जो मजूर होगा सो होगा। फिर अप्पन भी तो केवल बात ही बात करते है, कुछ करते कहा है? आज सुबह घूम कर आ रहा था तो रास्ते मे एक नौजवान लडकी को उसका पिता बुरी तरह पीट रहा था। लडकी की मा उसको छुडाने का प्रयत्न कर रही थी लेकिन मा-बेटी दोनो ही असहाय थी। "विधि कत सृजी नारि जग माहि, पराधीन सपनेहु सुख नाही"—

स्त्री की स्थिति कितनी नाजुक है। मामला यह था कि पिता लडकी को ससुराल भेजना चाहता था और वह जाना नही चाहती थी। दोनो से सही स्थिति समझने की और उन्हे समझाने-बुझाने की थोडी कोशिश की, लेकिन खास कुछ सफलता मिली नही। सफलता मिली तो इतनी ही कि लडकी का तात्कालिक पीटा जाना बद हो गया। कितने दुखदायी दृश्य आखो के, कानो के और हृदय के सामने नित्य ही आते रहते है लेकिन ये सब दृश्य देखते-देखते, सुनते-सुनते मन इतना आदी हो गया है कि चद मिनटो उसका असर मन पर भले ही रह जाय उसके बाद तो फिर वैसा का वैसा। घी-दूध खाना, रेशम-ऊन पहनना, मोटरो पर चढे फिरना और अपनी झूठी बडाई सुनकर राजी होना, जाने-अनजाने शेखी बघारना यह दैनिक चर्या रहती है।

राजस्थान मे अकाल का असर स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है लेकिन फिर भी कुछ करने की तैयारी कहा है? आये हुए आदमी को हाथ का उत्तर दे दिया और सतोष मान लिया। समस्या की तह मे कोई जाय और स्थायी इलाज का प्रयत्न करे तब तो एक बात है, नही तो केवल लिखना और बोलना तो वाक्-विलास जैसा है।

गो-सेवा सघ की मीटिंग कल जयपुर मे है। मुझे भी बुलाया है। वे चाहते है कि सीकर, झुझनू और चूरू जिले का काम मैं अपने जिम्मे लू। इसके लिये ५-४ लाख रुपये कलकत्ते से इकट्ठे करके लाऊ तो गवर्नमेन्ट से अच्छी सी सहायता मिल सकती है और चारा-दाना सस्ते भाव मे बडे पैमाने पर बेचा जा सकता है। कल जाने के बाद जो बात होगी, आपको लिखूगा। कुछ-कुछ मन तो चलता है काम करने का, लेकिन एक तो पैसा मागने मे झझट लगता है, इसके अलावा दौड-धूप भी करनी पडे। देखिये क्या होता है। अगर अकाल का काम हाथ मे लेना तय करूगा तब तो कलकत्ते जल्दी ही आ जाऊगा नही तो कुछ देरी से। फिर भी यह महीना शेष होने से पहले-पहले तो अवश्य आना है ही। मिलेंगे तब ही अधिक बातें हो सकेंगी, पत्र मे तो कहा तक क्या लिखा जाय।

आज सुबह सावित्री से बात हुई थी वह कहती थी कि कलकत्ते मे कल पखे चलते थे। यहा तो कल न्यूनतम तापमान ४० के करीब था। आज सुबह से ऐसी हाडफोड तीखी हवा चल रही है कि कुछ कहने की बात नही।

स्नेही
भागीरथ

(२)

११-५-१९७३

भाई श्री सीतारामजी,

आपका ७ तारीख का पत्र कल मिला। एक पत्र तीन दिन पहले भी मिला था। अकाल के बारे मे आपने लिखा सो जब से अधिक गर्मी पडने लगी है तथा लू चलने लगी है मैंने घूमना-फिरना बन्द ही कर रखा है। काम तो करता हू लेकिन करता हू किशनगढ बैठा-बैठा ही और इतने मे ही सन्तोष मान रखा है। मेहनत जिसे कहते हैं वह तो बदरीनारायणजी करते है। दो मुट्ठी हड्डियो का शरीर और इतनी

मेहनत ! मैं तो देखकर दग रह जाता हूं। न धूप गिनते है न लू। अकाल के काम मे सरकार का पैसा कम खर्च हो चाहे ज्यादा, और उसका उपयोग भी कम हो चाहे ज्यादा, लेकिन मुख्य बात जो है वह यह है कि अफसरशाही और नौकरशाही सभी यत्रवत् काम करते हैं। न दया है, न करुणा, न सहानुभूति, न समवेदना। जडवत् काम होता है। फिर भी मिकदार के हिसाब से गिने तो सरकार के कामो से ही राहत अधिक लोगो को पहुचती है। प्राइवेट एजेन्सी करके भी आखिर कितना कर ले।

आपने कलकत्ते के हालचाल लिखे सो बात यह है कि 'जाके पाव न फटी बिवाई वो क्या जाने पीर पराई'। आपको कई विवाहो मे जाना पडा होगा। आपने लिखा कि आडम्बर और ठाट-बाट के विषय मे किसी को कुछ कहने को मन ही नही होता सो यह बात ठीक है। कहने का कुछ परिणाम थोडा ही आता है। आज तो ऐसा करना केवल अरण्य-रोदन मात्र है।

आपने बिजली की कमी के समाचार लिखे सो बिजली के हालात तो राजस्थान के आप देखे तो कलकत्ते मे बिजली की कमी कुछ भी नही है। यहा पर ५० प्रतिशत तो सारे कारखानो मे ही बिजली कटी हुई है ही, इसके अलावा ३-४ दिन से जयपुर मे सारे कारखाने पूर्णतया बन्द है। सुना है कल से भीलवाडा की मिल भी बन्द है। अपनी मिल वाले भी डरे बैठे है कि मालूम नही किस घडी मिल बन्द हो जाय।

पानी की किल्लत का कोई हिसाब नही है। जयपुर जैसे शहर मे पीने के पानी की कमी है। हर दिन जयपुर के अखबारो मे एक विज्ञापन रहता है कि 'एक-एक बूद पानी बचाइये। बूद-बूद से ही घट भरता है'।

अपनी आपसी वार्ता के बारे मे आपने समुद्र की स्याही और पृथ्वी को कागज बनाने की बात लिखी सो वह तो महिमन का श्लोक है जिसकी अन्तिम लाइन यह है :

'लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालम् तदपि तव गुणानामीश पार न याति'

लेकिन यह तो बडे लोगो की दी हुई उक्ति है। पुष्पदन्त जैसे कवियो की। राजस्थानी मे एक छोटी सी कहावत है 'धरती पर बाता कित्तीक—आकास मे तारा जित्ताक'।

आपने मानव के मन की अशान्ति की बात लिखी सो आदमी के मन की भूख और चाह ज्यो-ज्यो बढेगी त्यो-त्यो मानव का मन अधिक से अधिक क्षुब्ध और अशान्त तो होगा ही। आदमी के पास भोग के साधन ज्यो-ज्यो बढेगे त्यो-त्यो उसकी तृष्णा भी अधिक-अधिक बढेगी। न भोग्य वस्तुओ की कोई सीमा है और न तृष्णा की। यह एक ऐसा गोरखधन्धा या जजाल है कि फसते ही जाओ। भर्तृहरि का वह श्लोक आपको शायद याद होगा जिसमे कहा है —'भोगा न भुक्ता, वयमेव भुक्ता, तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा, तपो न तप्ता वयमेव तप्ता।' पूरा श्लोक मुझे याद नही है। आपको याद हो तो ठीक है नही तो जितना सा लिखा है उससे काम निकाल लेना।

अमेरिका ससार का सबसे बडा धनी देश और निक्सन वहा का प्रेसीडेंट। जरा देखिये क्या हाल हो रहा है उस आदमी का।

आपने अपनी शारीरिक थकान की बात लिखी सो भाई साहव, वात यह है कि आपके और मेरे मन को यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि शरीर और उम्र का एक दूसरे के साथ ऐसा सम्बन्ध है कि उमर का असर आये ही आये। अप्पन लोगो को तो भगवान का आभार मानना चाहिए कि इतना सा हाथ-पांव तो पटक लेते हैं। इसके अलावा दिल और दिमाग से भी सजग हैं। इतना क्या कम है। इतणा दे करतार फेर नही बोलणा।

स्नेही
भागीरथ

श्री नथमल भुवालका के नाम

मदनगज - किशनगढ़
२०-४-७३

प्रिय श्री नथमलजी,

मैं उदयपुर से कल शाम को आया हू। आपका पत्र कुछ दिनों से नही आया, पता नही क्या कारण है। आशा करता हूं एक दो दिन मे आयेगा।

उदयपुर के हालात वहुत खराव है। अन्न का सकट है सो तो है ही, पानी का भी सकट है। उदयपुर शहर मे जो पीने का पानी मिलता है वह बहुत खराव है। मैं किशनगढ मे जितना पानी पिया करता था उससे आधा भी उदयपुर मे नही पी सका। पानी के दोप से उदयपुर मे पीलिया रोग का वहुत उठाव है। अस्पताल के डाक्टरो से तथा कलेक्टर से वात होने पर ऐसा मालूम हुआ कि करीब एक हजार व्यक्ति या इससे भी अधिक उदयपुर मे पीलिया रोग मे पीडित हैं। मैं महावीरजी वागडोदिया के लडके के पास ठहरा था। वह भी पीलिया रोग से ग्रस्त है। वाहर गाव में पीने के पानी का वहुत सकट है। कुएं गहरे कराने की जरूरत है क्योकि कुओ में पानी बहुत कम हो गया है। कलेक्टर के पास पैसे तो हैं लेकिन कम्प्रेसर मशीनें नही मिल रही है। उसका कारण यह है कि 'इन्डियन एक्सप्लोजिव्स' नाम की जो कम्पनी है उसमे स्ट्राइक होने के कारण एक्सप्लोसिव की तगी आ गई। एक पेटी के ४५० रुपये दाम थे, वे अब ८०० रुपये हो गये। मैं इस बारे मे कुछ खटपट कर तो रहा हूं। यदि मामला पट गया तो कुओ का काम अच्छी सख्या मे हो जायेगा। यो जो कुए विना एक्सप्लोजिव के गहरे कराये जा सकते हैं वैसे कुओ मे करीब एक सौ की मजूरी सरकार से दिलाकर आया हू। मैं और कलेक्टर दोनो साथ-साथ कुछ गांवो मे गये थे। एक मीटिंग भी कानोड मे की थी। उसी मे उपरोक्त करीब १०० कुओ की मजूरी वहा की वहा दे दी है। इसमे अपना खर्चा कुछ नही आयेगा, मामूली देखभाल मे हजार पाच सौ रुपये लगेंगे सो लग जायेंगे।

५००० रुपया मेरे गाव के एक आदमी ने बम्बई से पीपुल्स वेलफेयर सोसायटी के लिए मुझे भेजे है। ड्राफ्ट आ गया है। १७०० रुपये मै उदयपुर से लाया हू। उदयपुर मे कुछ लोगो से और बात की है तथा कुछ होने की उम्मीद भी है। कितना क्या होगा, कहना मुश्किल है। बम्बई मे पाच-सात मित्रो को पत्र लिखे हैं, कुछ रुपये अवश्य आने चाहिए। दो-चार दिन मे आपको पत्र लिखूंगा कि कहा से क्या आया है।

सीताराम शर्मा कलकत्ते आ गया होगा। उसको कहकर अपनी सोसायटी के लिए लिखे हुए रुपये अदाई करने का प्रयत्न करना। अपनी सोसायटी की तरफ से जो-जो काम चल रहे है उसका पूरा ब्यौरा नीचे लिख रहा हू :—

(१) २८ नये कुए सीकर जिले मे अपनी समिति की ओर से बन रहे हैं जिनमे ५००० रुपया करके प्रति कुआ खर्चा आयेगा। इनमे २५ कुओ के पैसे तो एक विदेशी एजेन्सी से मिले हुए है तथा तीन कुओ के बजाज परिवार से। आदिवासी एरिया मे १५ कुए गहरे कराने का काम आरम्भ किया हुआ है कुल खर्चा २१०००) होगा।

(२) झुनझुनू जिले के पाच गावो मे तथा उदयपुर जिले के तीन गावो मे प्राइमरी स्कूलो मे एक-एक कमरा अपनी सोसायटी की ओर से बन रहे है। उन पर अपनी सोसायटी का खर्चा २०००) प्रति स्कूल आयेगा। सरकार २०००) प्रति स्कूल देगी तथा २०००) गाव के लोग श्रम के रूप मे या सामान के रूप मे लगायेंगे। इस तरह ६०००) एक कमरे की लागत बरामदे समेत आयेगी।

(३) झुनझुनू जिले के १५ गावो मे १००-१०० के हिसाब से कुल १५०० छात्रो को पोषक आहार दे रहे है। प्रति बच्चा ३३ पैसा प्रतिदिन खर्चा आता है। उसमे १८ पैसा सरकार देती है, १५ पैसा अपनी सोसायटी का लगता है। आदिवासी गावो मे जो छात्रावास आदिम जाति सेवक सघ वाले चला रहे है उनमे कुल ५७५ छात्र रह रहे है। उन बच्चो के लिए दो महीने तक अतिरिक्त भोजन की व्यवस्था की है। इसमे ढाई से तीन हजार रुपये प्रति माह लगेंगे।

(४) चूरू और सीकर जिले के १६०० साडो को २ किलो प्रतिदिन प्रतिसाड के हिसाब से गुवार दे रहे है। झुनझुनू मे ४०० साडो को गुवार दे रहे थे, वह काम १६ अप्रैल से गोयनको ने करना मजूर कर लिया इसलिए अपनी तरफ से वह काम बन्द है। बदले मे नागौर के गावो मे साडो को गुवार देने की योजना बनाई थी किन्तु सरकार ने कहा कि आप सीकर और चूरू दो जिलो मे ही गुवार देने का काम सीमित रखिये इसलिए नागौर जिले का काम हाथ मे नही ले रहे हैं।

(५) ५०० बच्चो को सीकर जिले मे पोषक आहार दे रहे है जिसका सामान सीकर की जनता की ओर से मिल जाता है। ऊपर-ऊपर का मामूली-सा खर्चा अपना है।

(६) सडको पर काम करने वाले मजदूरो के लिए ठडे पानी की व्यवस्था हो सके इसके लिए करीव हजारेक मटके तो दे चुके हैं। यह काम अभी भी चालू है।

(७) सडको पर काम करने वाले मजदूरो के लिए चप्पलो को बाटने का काम भी कर रहे है लेकिन इसमे कोई विशेष खर्चा नही है। आठ आने प्रति जोडी लगता है। रवड की चप्पलें बनवाई हैं। दो-ढाई महीने चल जायेंगी।

(८) उदयपुर मे रोटरी क्लब की मार्फत चार गावो मे बीमारो के लिए इलाज की व्यवस्था की है। डाक्टर, कम्पाउन्डर, वोलेन्टियर तथा सवारी रोटरी क्लब की। रुपये एक बार उन लोगो को दिये है। दो-तीन हजार रुपये और लग सकते हैं। कम रुपये मे अच्छा काम हो जायगा।

(९) सडक पर काम करने वाले मजदूरो के लिए छाया का कोई इन्तजाम नही है। इसके लिए उदयपुर जिले मे ही कुछ जगहों पर सरकी के टाटे बनवाये है। २०० रु० की लागत से बनाये हुए टाटे मे करीव ४० से ५० आदमी एक साथ विश्राम के लिए बैठ सकते है। दसेक टाटो के लिए कहकर आया हू।

रामेश्वरजी टाटिया अभी कलकत्ते ही हैं या बम्बई गये ? अगर बम्बई नही गये हो तो यह पत्र उन्हे भी पढा देना। भाई सीतारामजी को तो पढा ही देंगे।

आपके जचे तो पीपुल्स वेलफेयर सोसायटी की एक मीटिंग बुला लेना जिससे कि मेम्बरो को इस बात की जानकारी हो सके कि सोसायटी क्या काम कर रही है।

इन्कमटैक्स एक्जेम्प्शन सर्टीफिकेट आया तो नही है लेकिन उनलोगो से बात हो गई है जल्दी ही आ जायेगा तथा पुरानी तारीख मे मिल जायेगा। इसलिए कोई आदमी अपने अकाउन्टिग ईयर के हिसाब से मार्च महीने का चेक देना चाहे तो भी दे सकता है। उसे इन्कम टैक्स बाद मिल जायगा।

पाट के व्यापारियो के रुपये लिखे जाने तथा अदाई होने मे क्या प्रगति हुई लिखना। कुछ रुपये आप कलकत्ते मे और कर सकें तो पोषक आहार देने वाला काम बहुत आवश्यक है।

आपका
भागीरथ कानोड़िया

श्री भवरमल सिंघी के नाम

(१)

८, रायल एक्सचेंज प्लेस, कलकत्ता
४-१२-४३

भाई श्री भंवरमलजी,

आपका और भाई सीताराम जी का पत्र २९ तारीख का आज (जेल से लिखा गया) मिला। यह बात सही है कि मनुष्य को काम देना ही सबसे अच्छा है। काम बिना खुराक देना मनुष्य के पतन मे मददगार होना है, लेकिन जैसी अवस्था सामने आ पड़ी थी

(१९४३ का बंगाल का अकाल) उसमे काम की बात सोचना सम्भव नही था । ज्यो-ज्यो फुरसत मिलती है उस-उस तरह थोडा-थोडा ध्यान मैं इस पर देता रहा हूं, लेकिन आदमी नही मिल रहे हैं । काम करने वाले आदमियो का कितना अभाव है यह मुझे ठीक-ठीक नही तो भी बहुत कुछ अनुभव इस बार हुआ । अनाज के अलावा कपडा बाटने, दवा देने, बीज बाटने, सस्ते दाम मे बीज बाटने, सस्ते दाम मे बीज बेचने, लड़को के लिए घर बनाकर (उन्हे) वहा रखने, दूध का प्रबन्ध करने आदि सभी तरफ ध्यान देने की कोशिश तो की है। मुफ्त मे अनाज देने के अलावा सस्ते दाम मे अनाज देने की तरफ मेरा ज्यादा ध्यान रहा है । जो लोग रिलीफ थ्रू वर्क कर रहे है उनको बराबर मदद दी है लेकिन जो भी हो जो कुछ मैंने किया है या कर सका हू उससे मुझे कोई सतोष थोडे ही है, लेकिन सतोष इतना तो है कि मैं जितना कर सकता था उतना कस कर करने की कोशिश की।

आप जो करने को लिखते हैं उसे मैं भी पसन्द करता हू और वही एक मात्र कारगर राहत हो सकती है लेकिन उसके लिए तो कोई स्थायी सगठन चाहिए। आज सगठन खड़ा किया, कल काम शुरू किया और परसो उसे उठ जाना है, उसके लिए ऐसा सम्भव नही है । ...मैं खुद भी तो बराबर के लिए सार्वजनिक कार्य मे लग जाने वाला नही इसलिए किस बूते पर कोई सगठन खडा करू । कोई अच्छा ऐसा मित्र भी सामने नही जिसके बल पर मेरे मे हिम्मत ज्यादा बढे । अब तो क्या है उठता मेला सा है। रुपया शायद कुछ न कुछ तो बचेगा ही चारेक लाख तक बच जाये । इनसे कुछ हो सकेगा तो करने के लिए कोशिश करूगा ।

आप सब मित्र खूब याद आते हैं। खासकर ऐसे मौके पर लेकिन बेबसी तो बेबसी है। हम कितने बेबस हैं! आप सब मित्र अच्छे रहे। आप का पत्र आया इससे खुशी हुई और मेरा ध्यान इसकी तरफ ज्यादा रहेगा, इसका मैं आपको विश्वास दिलाता हू

आपका
भागीरथ कानोडिया

[इसी पत्र मे जेल में बंदी स्व० बसन्तलालजी मुरारका के नाम]

भाई बसतलाल,

तुम्हारा पत्र नही मिला। ऑपरेशन होने वाला था, उसका क्या हुआ ? साधारण स्वास्थ्य कैसा है ? नोट्रम्प और नोलॉज (ताश के खेल) का क्या हाल है ? मजे में मौज से होवोगें ।

तुम्हारा भाई
भागीरथ कानोड़िया

(२)

मेडिकल हास्पीटल, कटक
कनिका वार्ड कॉटेज
७-५-४४

भाई श्री भंवरमलजी,

आपका जेल से भेजा हुआ पत्र मुझे आज यहा मिला हैं। इस तरह जेल से ही लिखते रहेंगे क्या ? मुझे तो भाई साहब यह कुछ अच्छा नही लग रहा है। लेकिन करना तो क्या करना, यह समझ मे नही आता। फिर यह भी बात है कि सब कुछ अपने को अच्छा लगे, वही थोड़ा ही होता है। अपनी रुचि कोई आखिरी रुचि थोडी ही है। घटना चक्र चलता रहता है और इसके क्रम मे जैसा आ जाता है वैसा हो जाता है। अपना काम तो यही है कि जिसे श्रेय समझे उसे ईमानदारी और परिश्रमपूर्वक करते जायें, उसका परिणाम जो आवे उसे सन्तोषपूर्वक झेलते जाये।

तुलसी की तबीयत के लिए तथा उसके परिणामस्वरूप मेरी चिन्ता के लिए आपने जो भावना प्रकट की वह ठीक ही है, लेकिन यह सब झमट तो गृहस्थ जीवन मे खासकर बडी गृहस्थी मे लगे ही रहते हैं, इनसे घबडाने से काम कैसे चले। तुलसी की तबीयत तो अब मजे मे है लेकिन एक घटना और हो गई। तुलसी कुछ दिनों से पुरी था। मैं भी ५-७ दिन के लिए उससे मिलने चला गया था। ३ तारीख को मैं तुलसी और मेरा एक छोटा लडका ज्योति जिसकी उमर साढे छ: साल की है पुरी से चल कर कलकत्ता आ रहे थे। रात को साढे तीन बजे के करीब चमक कर वह लडका खिडकी से गिर पडा। गाडी पूरे जोर से आ रही थी इसलिए लडके को बड़ी सख्त चोट लगी। गाडी मे पूरा अन्धेरा था। गाडी को ठहराने तक करीब सवा माईल गाडी आगे आ चुकी थी। इसलिए फिरती जाकर लडके को पिक-अप किया। वह जिन्दा किन्तु पूरा बेहोश था। उसे लेकर कटक आया क्योंकि कटक ही सबसे नजदीक ऐसा स्थान था जहां इलाज की व्यवस्था हो सके। जिस वक्त मैं यह पत्र लिख रहा हू, लड़के को चोट लगे ८४ घण्टे हो चुके हैं। डाक्टर का कहना है जान को खतरा तो अब ज्यादा करके नही है, ऐसा ही मानना चाहिए, लेकिन आफ्टर-इफेक्ट्स क्या होंगे यह कहना मुश्किल है। स्कल की एक हड्डी जो सबसे मजबूत हड्डी बतायी जाती है उसके चार टुकडे हो गये लेकिन वह है अपने स्थान पर। उससे हेमरेज तो खूब हुआ लेकिन अब आशा यही होती है कि वह टुकडे सेट कर जायेंगे। सिर पर कई गहरे घाव हुए हैं। सारा शरीर बुरी तरह छिल गया है। लेकिन सबसे साघातिक चोट स्कल ब्रेन फ्रैक्चर वाली है। जिन्दा बच जायगा यह आशा तो हो चली है। आफ्टर इफेक्ट्स क्या रह जाये यही चिन्ता है। डाक्टर के दो मत हैं—कहते है बिलकुल नारमल स्थिति हो सकती है और ब्रेन डिफीशियेन्सी भी रह सकती है, लेकिन कहते है वह डिफीशियेन्सी धीरे-धीरे लेबल पर आ जायेगी। देखें क्या होता है। ईश्वर मगल करेगा। अपना जो करने का है वह कर रहे हैं। उसके बाद परिणाम जो आवेगा उससे सन्तोष मानेंगे। यह भी तो अपने करने का ही है न।

...जिन्दगी मे नया अनुभव ले रहा हूं। अस्पताल मे एक कोने मे छोटा सा काटेज किराया लेकर कई आदमी रह रहे हैं और बच्चे की सुश्रुषा कर रहे है। यह भी एक मजेदार जिन्दगी है।

स्वास्थ्य की सम्हाल रखना। कुछ चीज चाहिए तो लिख देना। मैं अभी ५-७ दिन तो यही हू फिर कलकत्ते आऊगा।

आपका
भागीरथ कानोडिया

(३)

८, रायल एक्सचेंज, कलकत्ता
दिनाक ७-६-४४

भाई श्री भवरमलजी,

आपका पत्र २५-८ का समय पर मिल गया था। उत्तर देने में विलम्ब हो गया क्योकि २-३ दिन के लिए तो मैं एक बार कोटाई (मेदिनीपुर) की तरफ चला गया था, फिर दो-तीन दिन व्यस्त ज्यादे रहा इसलिए यह विलम्ब हुआ मानना चाहिए।

जेल में समय उपयोगी तरीके से काटने के लिए दो ही साधन है। पढना और कातना। बाकी खेलना और गप्प। वर्षों का एकागी और एकाकी जीवन कितना नीरस शुष्क और साथ ही बिना उपयोग के कटता हुआ कितना खटकता है—लेकिन मनुष्य अपने ध्येय के प्रति वफादार बना हुआ है इससे जीवन में भी सतोष और सुख मानता है। देव और दानवो के युद्ध का वर्णन जो पुराणो में पढते हैं वह अलकारिक भाषा मे है लेकिन अलकार उतार कर उसका शुद्ध रूप देखे तो आज सारे ससार मे वह युद्ध चलता हुआ स्पष्ट ही दृष्टिगोचर हो रहा है। कंस ने वासुदेवजी को जेल मे बन्द कर दिया था क्योकि उनका पुत्र उसे मारने वाला है और इसीलिये वासुदेवजी के जितने लडके होते थे उन्हे कस मरवा देता था। वासुदेव जी के पुत्र के याने—वासुदेवजी के (द्वारा) अन्याय के प्रति प्रकट किये हुए विचार और उनका प्रचार। कस की मान्यता थी कि अगर वासुदेवजी को अपने विचारो का प्रचार करने का मौका मिला तो तुम्हारी मृत्यु—याने तुम्हारे अन्यायपूर्ण साम्राज्य की मृत्यु निश्चित है। उठाकर जेल मे रख दिया और प्रचार को रोक दिया लेकिन कृष्ण याने उनके सद्विचार जेल की चहारदीवारी और सात ताले तोडकर भी जनता मे पहुचे और कस की मृत्यु हुई। आज भी ठीक वही हाल है, दूसरे जमाने मे भी रहा है। सम्भव है आगे भी रहे। न्याय, सत्य, अहिंसा आदि मानवोचित विचारो की जीत तो है ही, यह ध्रुव सत्य है, लेकिन इसमे जो धीरज-अटूट धीरज की दरकार है, वह भी साथ ही है। हम लोग अल्पकालीन हार-जीत देखकर व्याकुल हो जाते हैं, घबडा उठते है, धीरज खो देते हैं, लेकिन इस विशाल काल अनन्त समय मे यह छोटा सा काल २-५ वर्ष या १०-२० वर्ष का काल या सौ-पचास वर्ष का काल भी क्या महत्व रखता है? जिनकी इस चीज मे श्रद्धा है उनके लिए तो यह होना चाहिए कि आज की दानवी-दोष और अन्यायपूर्ण दुख का सृजन करने वाली यह प्रणाली अगर वे और उनकी आने वाली पीढी सतत प्रयत्न करके पचास या सौ वर्षों मे बदल सके तो उन्होने बहुत जल्दी ही एक बहुत बडा महान भले का काम कर दिया।

बाहर मे आज इतना काम उन लोगो के लिए करने का पडा है जो लोग कि कुछ करने की हविस रखते हैं, इच्छा और ताकत रखते हैं कि कुछ हिसाब नही। लेकिन वे करें तो किस तरह करे ? हाथ-पाव बांधकर उन्हें बद जो कर दिया गया है लेकिन बैठे-बैठे भी अपने श्वासो द्वारा ही हवा मे वे अपना काम तो कर ही रहे हैं।

आपके विचार पढे। मैं उनसे पूरी तरह सहमत हू कुछ थोडे से लोगो का जैसे एक गुट हो गया है और वह यही सोचता और कल्पना करता है तथा केवल इसी तरह की योजनाए बनाता रहता है कि किस तरह अनन्त काल तक लोग —जनता उनके इस गुट की गुलाम बनी रहे।

घर मे माता-पिता बीमार हो, दूसरा कोई गृहस्थी को सम्भालने वाला मेम्बर घर मे न हो और फिर बीस-बीस दिन खत न मिले, यह सब आदमी को विकल करने वाली बातें तो हैं ही, इस स्थिति मे आप जितने बैलेंस्ड और सुखी रहते हैं, वह स्पर्धा करने की चीज है।

हमलोग सब मजे मे हैं।

स्नेही
भागीरथ

(४)

८ रायल एक्सचेज प्लेस
कलकत्ता
२९-९-१९४४

भाई श्री भवरमलजी,

एक-एक करके दिन सप्ताह और महीने बीते जा रहे है। सूरज उगता है और छिप जाता है। वर्षा चली गई, शरत् आ गई, यह भी चली जायगी। दिन .. बीते जा रहे हैं, समय का चक्र अवाधगति से चल रहा है और चलता रहेगा। ममत्व के कारण स्वभावत. ही उन लोगो का विछोह खटकता है, जिन्हे मोह-स्वार्थ या दुनियावी दूसरे कारणो से हम एक दूसरे के साथ निजत्व-निकटत्व कायम हो जाने के कारण अपना मान लेते है। नही तो आप और आप जैसे अन्य मित्रो के समय का यो दृश्यमान उपयोग चाहे न होता हो लेकिन बहुत बडा उपयोग हो रहा है। सिवा पैसा कमाने, पेट भरने और एक दूसरे के ऊपर कीचड उछालने के, हम लोगो के समय का भी जो कि बाहर है कौन सा सदुपयोग हो जाता है। मोहवश कुटुम्बीजनो और मित्रो की तपस्या से हमलोग सदा से ही घबराते आये हैं और जब-जब किसी ने इस मार्ग पर पाव बढाया है तब-तब बराबर ही तथाकथित इष्ट मित्रो ने उसे विरत करने की कोशिश की है। विरत न होने पर क्रुद्ध भी हुए हैं, उलाहना दिया है, रोये हैं, लिपटे है लेकिन आखिर वह नही माना है तो उस पर अभिमान किया है। उसके नाम पर बल मिला है। पुराने आख्यान पढने को मिलते है उनकी भाषा आलकारिक चाहे हो—घटना सत्य है, क्या यह सोचने की जरूरत नही—लेखक और कवि तो अपनी कल्पनाओ को मूर्त रूप दिया करता है। उन्ही पुराने आख्यानो के साथ आप लोगो का जीवन भी मिलाया जा सकता है।

देव-दानव युद्ध हजार वर्ष से चलता आ रहा है सही, लेकिन इसी तरह चलता रहेगा, यह मानने को जी नही करता। मानव दानव ही बना रहेगा यह क्यो मान लेना

चाहिए। यह मान लेना तो मानवता की हार है। हो चाहे कुछ भी लेकिन मैं स्वप्न तो उस दिन का जरूर देख रहा हू—चाहे उसके आने मे कितने ही सौ वर्ष लग जाय, जिस दिन ससार सुखी होगा एक दूसरे के मित्र होकर लोग रहेगे। दुश्मनी नाम की वस्तु कोश में ही रह जायगी। तुलसीदासजी ने कल्पना की है राम-राज्य की रामायण मे, उसमे दण्ड यतियो के हाथ मे गिनाया है। याने दण्ड नाम की कोई वस्तु नही रह गई थी। क्या यह कभी भी सत्य नही होने वाला है? होगा किसी दिन तो होगा ही।

आपका पवित्र सूत आज मैंने वर्धा भेज दिया है। सोहनलालजी द्विवेदी कवि के हाथ भेजा है। साथ का परचा भी। उन्हे सारी बाते समझा दी है। सूत गाधीजी को मिल जायगा याने वे दे देगे और सभी बाते बता भी देंगे।

आपका,

भागीरथ कानोडिया

(५)

८ रायल एक्सचेंज प्लेस, कलकत्ता

१२-१२-४४

भाई श्री भंवरमलजी,

कुछ दिनो से आपको कोई पत्र नही लिखा है। आपके तीन पत्र मेरे सामने बिना जवाब दिये हुये हैं। ९-११, २३-११ और ७-१२ के। मुझे बाहर आये डेढ वर्ष हो गया। आपके लिए कुछ भी तो नही कर सका। अपने काम मे मशगूल हो गया और घर खुशी-आनन्द से बैठा हू।

आप पहिले से अच्छे है यह तो अच्छी बात है लेकिन केवल पहिले से अच्छे होने से ही तो पूरा सन्तोष नही हो सकता। पूरा अच्छा होना चाहिए। बीमारी नाम की कोई चीज न रह जाय, पूर्ण स्वास्थ्यलाभ कर ले, कुछ भी शिकायत न रह जाय, तब सन्तोष हो। जेल मे मैं भी आपके साथ वहा का वातावरण, लोगो की याने अपने ही साथियो की मनोवृत्ति बहुत से लोगो की देख चुका हू—बाहर भी काम पड़ता ही रहता है। यह सच है कि प्रेरणा नही मिलती। न केवल इतना ही, झूठ, कमीनापन आदि की सृष्टि ही ज्यादा देखने मे आती है। ग्रेस जिसे कहते है उसका और एक दूसरे के प्रति सहिष्णुता का नितान्त अभाव देखने मे आता है, इससे तो वे प्राइवेट व्यक्ति या नरम दल वाले अच्छे, जो न बहुत बडी बाते करते है और अपनी कमजोरी को जैसा अनुभव करते हैं वैसा प्रकट भी करते है। घर मे एक कोने मे बैठे रहते हैं। किसी की बुराई मे जाते नही और अपने बच्चो आदि को अच्छी नागरिकता की शिक्षा देते हैं। मनुष्य के लिए सबसे जरूरी चीज यह है कि वह मनुष्य बनने का प्रयत्न करे। योग्य और चतुर हो—सुलझे हुये दिमाग का हो, सहिष्णु हो, सहानुभूतिवाला हो, पडोसी धर्म को मानने वाला हो, एक सुनागरिक हो, व्यवहार मे सच्चा और नेक हो। हमारे यहा याने हमारे देश मे इसका बहुत दीवाला है। अच्छे और काबिल आदमी बहुत कम पाये जाते है। मनुष्य खुद मनुष्य बनने का प्रयत्न करे और दूसरो को मनुष्य बनाने के लिए अपनी शक्ति का उपयोग करे, यह बहुत जरूरी है। मैं और दूसरे सारे मित्र खूब मजे मे हैं। आप अपने स्वास्थ्य की पूरी सम्हाल ले। तुलसी का विवाह सानन्द समाप्त हो गया है। लडकी आई० ए० पास है और चतुर है।

आपका

भागीरथ कानोड़िया

श्री रामसिंह तोमर के नाम

(१)

कलकत्ता
२८-९-७०

प्रिय श्री तोमरजी,

आपका पत्र मिला। एक तारीख को ट्रस्ट की मीटिंग है उसमे आलमारियो तथा पुस्तको के बारे मे बात कर लूगा, उसके बाद आप कलकत्ते आ ही रहे हैं। बात कर लेंगे।

लोक-कथाओ के अनुसार तो भानुमती राजा भोज की रानी थी—विक्रमादित्य की नही। सिंहासन बत्तीसी मे अगर विक्रमादित्य की रानी बताई हो तो मुझे पता नही। सिंहासन बत्तीसी मेरी पढी हुई है तो सही लेकिन बहुत वर्ष हो गये इसलिए याद नही आ रही है। भानुमती इन्द्रजाल या जादू जानती थी। उसके पास एक पिटारी थी उसमे बहुत सी वस्तुए वह रखती थी। अत "भानुमती की पिटारी" कहावत चल पडी, लेकिन "कहा की ईट कहा का रोडा-भानुमती ने कुनवा जोडा" इसके पीछे क्या कहानी है, यह मुझे अभी तक पता नही लगा है, इसकी खोज मे हू।

आपका,
भागीरथ कानोडिया

(२)

कलकत्ता
१५-५-७२

प्रिय श्री रामसिंह जी,

आपका १० तारीख का पत्र कल मिला। पाणिणि के प्रसग मे जो वाक्य मैंने आपके सामने कहा था वह था, "व्याजिघ्रति से व्याघ्र"।

कथा इस तरह है कि पाणिणि महाराज अपने एक शिष्य के साथ जा रहे थे। सामने एक व्याघ्र धरती सूघता हुआ आ रहा था। पाणिणि अपने शिष्य को व्याघ्र की व्युत्पत्ति बताने लगे। व्याघ्र अधिक नजदीक आया तो शिष्य तो भाग गया लेकिन पाणिणि अपनी विद्या की लगन मे इतने बेसुध थे कि सिंह उन्हे खा गया।

आपने जो श्लोक लिखकर भेजा है, उसमे तो विद्या की साधना मे तीन-तीन दिग्गज विद्वानो की मृत्यु करा दी है। श्लोक दरअसल ही बहुत प्रेरणादायक है। याद रखने लायक है।

तुलसी पुस्तकालय मेरा अपना ही था। कुछेक वर्षों तक वह अच्छी तरह चला था, लेकिन एक बार हिन्दू-मुस्लिम दगे मे वह स्वाहा हो गया।

मैं यहा से २४ को सुबह दिल्ली जा रहा हू। वहा से उत्तराखंड की यात्रा पर जाने का मन कर रहा है। इसके पहले अगर आपका आना हुआ तो मिलना हो सकेगा। नही तो १० जून के बाद कलकत्ते आऊंगा तब होगा। जून शेष तक तो मैं फिर राजस्थान चला जाना चाहता हू। शायद दो महीने नही लौटू।

ट्रस्ट वालो ने एक वर्ष के बदले तीन वर्ष की ग्राट देनी स्वीकार कर ली है, इसलिए अलवार रामानुजाचार्य वाला काम अब आप आगे बढा सकते है।

आपका,
भागीरथ कानोड़िया

श्री गोविन्द अग्रवाल के नाम

(१)

कलकत्ता
दिनाक १६-११-७२

प्रिय श्री गोविन्द जी,

शकराचार्य जी महाराज के जुलूस के समाचार (चूरू मे हिन्दू-जैन विद्वेष के दिनो मे निकला जुलूस) लिखी सो पढे। यज्ञ, होम, साधु आदि के प्रति अभी खूब आस्था है। इसका परिणाम अच्छा-बुरा निश्चित है। जहा आस्था और श्रद्धा बिना विवेक के बिलकुल अंधी है, वहा तो भोले-भाले लोग बहुत ठगाते हैं। लेकिन श्रद्धा यदि विवेक को लिए हुए हो तो बहुत अच्छी भी है।

यज्ञ मे किसी तरह की गडबडी नही हुई, सारा काम शात वातावरण मे हुआ, यह जानकर प्रसन्नता हुई। जैन सम्प्रदाय के कुछ लोग यज्ञ मे शरीक होने को आये भी थे क्या? वैष्णव सम्प्रदाय के लोग आचार्य श्री (तुलसी) के प्रवचन मे अथवा उन लोगो के और किसी कार्यक्रम मे शरीक हुए या नही? जैन साधु-साध्वी भिक्षाटन के लिए अप्पन लोगो के घर मे आते हैं या नही?

अग्नि परीक्षा (आचार्य तुलसी की विवादास्पद पुस्तक) के आदोलन से पहले जैसा स्नेहिल वातावरण था वैसा हुआ पार पडा या नही, लिखना।

आपका,
भागीरथ कानोड़िया

(२)

कलकत्ता
१६-१२-७२

प्रिय श्री गोविन्द जी,

आपका पत्र मिला। जिस कानोड से मेरे पुरखे उठकर आये थे वह कानोड पजाब मे था, अब हरियाणा मे है। राजस्थान मे भी दो कानोड हैं तो सही—एक

जैसलमेर जिले में और एक उदयपुर जिले में, लेकिन हमलोग वहा से उठकर आये हुए नही है।

आपने जो यात्रा-विवरण भेजा वह भूगोल से मेल खाता है क्या ?

आचार्य तुलसीजी वाले मामले (आचार्य तुलसी की अग्नि-परीक्षा सम्बन्धी पुस्तक पर उठे विवाद का मामला) को अब भुला देना चाहिए। भला-बुरा जो होना था हो गया। किसी को दोष देना व्यर्थ है। दोष तो आदमी देखे तो अपने मे ही भरे पडे है। बाहर ढूढने की क्या जरूरत है ?

बुरा जो ढूढन मैं चला,
तो बुरा न मिलिया कोय,
जो दिल ढूढू आपणा
तो मुझसा बुरा न कोय।

आपका,
भागीरथ कानोडिया

(३)

कलकत्ता
१८-१२-७२

प्रिय गोविन्द जी,

वियोगी हरिजी यहा आये हुए है। उनका कहना है कि मैंने अपने कहानी-सग्रह मे राजा टोडरमल और तुलसीदासजी का जो सम्बन्ध जोडा है, वह गलत है। तुलसीदासजी के साथ जिन टोडरमल का सम्बन्ध था वे दूसरे टोडरमल थे। बनारस के पास के ही रहने वाले थे। उनके कुटुम्ब मे हिस्से-पाती को लेकर कुछ झगडा हो गया था, उसकी पचायती तुलसीदासजी ने की थी। उस पचनामे की नकल उपलब्ध है। अगर ऐसा है तो मुझे वह कहानी फिर से शुद्ध करके लिखनी होगी। आप इस विषय मे कुछ प्रकाश डाल सकते है क्या ? कोई खास जल्दी नही है। आवश्यकतानुसार पुराने ग्रथ देख कर लिख दें। मैं २-३ दिन मे किशनगढ जा रहा हू। पत्रोत्तर वही दे।

मैं भी आइने-अकबरी मे देखूगा। देखे, उससे कुछ पता लग सकता है क्या ?

आपका,
भागीरथ कानोड़िया

(४)

कलकत्ता
३-४-१९७३

प्रिय श्री गोविन्द जी,

आपका १ ता० का पत्र मिला। कथा-लोक का अक मेरे पास नही पहुचा है। पहुंचने से लिखूगा।

(६)

कलकत्ता
२६-६-७४

प्रिय श्री गोविन्दजी,

आपका १७ तारीख का पत्र समय पर मिल गया था। धन्यवाद।

इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका के अनुसार शतरज की शुरुआत छठी शताब्दी ही है और यहा से यह खेल फारस गया था, यह जिक्र भी उसमे है। लेकिन मालूम होता है कि इसमे बदलाव होता रहा है। मुझे खेतडी मे रामकृष्ण मिशन के प्रधान सुखदानन्दजी महराज ने बतलाया था कि इसका आविष्कार भाष्कराचार्य ने अपनी बेटी लीलावती के मन-बहलाव के लिए किया था। मैंने भाष्कराचार्यजी के बारे मे एक पुस्तक मगा कर भी पढी लेकिन उसमे मुझे शतरज का कोई जिक्र नही मिला। भाष्कराचार्यजी द्वारा लिखित जिन ग्रन्थो का जिक्र आप करते है उनका उस पुस्तक मे भी जिक्र है। हो सकता है भाष्कराचार्यजी ने इसको आजका रूप दिया हो। अकबर-बीरबल के नाम पर अनेक कल्पित किस्से चलते है इसलिए किसी मनचले ने इस किस्से को भी जोड दिया और मैंने जैसा सुना था वैसा ही कहानी का रूप देकर लिख दिया।

पहिले इसमे चार आदमी एक साथ खेलते थे, गोटिया भी चार रग की होती थी। इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका मे भी इसका पुराना नाम चतुरग ही लिखा है।

टोडरमल के गीत की एक कडी कहते है यो है—जीत्यो म्हारी केसरियो बनडो टोडरमलजी कै पाण।

प्रेम और राजू के बारे मे अभी कुछ भी नही हुआ? दोनो को कितना-कितना वेतन मिलता है? प्राविडेट फड तथा बोनस-छुट्टी आदि की क्या व्यवस्था है, लिखना। खाना खरचा तथा दूसरा खरचा उन लोगो का वहा पर क्या आ जाता है, यह भी लिखना।

अगस्त मे मैं सम्भवत राजस्थान जाऊंगा। उस वक्त १-२ दिन आपको समय हो तो आपके साथ मुकुन्दगढ मे रहना चाहूगा।

आशा है आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा।

आपका,
भागीरथ कानोड़िया

(७)

११-२-१९७८

प्रिय श्री गोविन्दजी,

आपका ९ तारीख का पत्र मिला। कल एक पत्र आपको लिखा था वह मिला होगा।

आप १५ तारीख को मौका पर आ जावें। मैं आपसे वहा मिल जाऊगा। दो-तीन घण्टा अपन साथ रह लेंगे, काफी है। मैं कल्याण आरोग्य सदन के सामने वाले बाग मे स्थित अतिथि-गृह मे मिलूगा।

आपने 'इकलहट्टी वाणिये ..' वाली कहावत का [illegible] पूछा सो मेरी तो यह कहावत सुनी हुई भी नही है।

आपने १८८० के कागजो मे ब्याज की दर पौने आठ आना लिखी [illegible] वर्षों तक बम्बई मे दर पौने आठ आना ही थी और कलकत्ता मे नौ आना। ब्याज पौने आठ आना ही क्यो था और पूरे आठ आना क्यो नही, इसका कोई कारण मेरी जानकारी मे नही है।

एक-दो कहावतें आपको नीचे लिखता हू। ये कहावतो मे आती हो और पहले लिखी हुई नही हो तो आप जोड सकते है

१—आयो ब्याज कमाण नै, चाल्यो मूल गवाय।

२—बो' रो ब्याज भी ले, बेगार भी ले, गरज बखाऊ मे रखावै।

३—स्वामीजी हरजस कोनी गावो, कै गेणे मे फुरसत मिलै जद ना।

नीचे लिखी कहावत हालाकि राजस्थानी बोली मे तो नही है, लेकिन इधर की तरफ प्रचलित जरूर है। आपको शामिल करने लायक लगे तो देख लीजियेगा।

हिम्मते मर्दा मददे खुदा, बादशाह की बेटी, फकीर से निकाह।

नीचे लिखा दोहा कहावती दोहो मे आता है क्या ?

सिह केलि, सायर वचन, केल फलै इक बार।
तिरिया तेल हमीर हठ, चढै न दूजी बार॥

कुछ कहावतें और हैं —

(१) ब्याऊ दिन आवै जद एक कानी मे [illegible] आवै।
(२) ब्याऊ दिन आवै जिका कोई नै [illegible]।
(३) गोबर को घोटो लाठ की तलवार।
(४) धरती पर जाजम कोनी बिछ [illegible]।

भवदीय
भागीरथ कानोडिया

डाक-तार सभी गडबडा गये। फसल मे भी काफी नुकसान हुआ, लेकिन दैव गति के आगे कोई क्या करे ?

आपने जो कहावत लिखी वह हमारी तरफ "गुड सा गोविन्द होगा" (के रूप मे) प्रचलित है। गुड अपने यहा सर्वोपरि माना गया है। इसका मतलब यह हुआ कि आज तो गोविन्द यानी भगवान की इतनी कृपा हो गयी कि वह गुड जितना मीठा हो गया और हमे निहाल कर दिया। गुड के बारे मे एक कहावत भी है "राजा को के गुडका ई करा ले।" इसके पीछे एक कहानी है जो शायद आपकी सुनी हुई हो। कहानी यो है, एक राजा घोडे पर चढ कर जा रहा था। घोडे के पागडे (रकाब) सोने के थे। दो औरते जा रही थी। एक ने कहा ' देख, देख राजा के सोनै का पागडा। दूसरी तत्काल बोली "राजा को के गुडका ई करा ले" (अर्थात् इनके तो गुड के पागडे हो तो भी थोडे है। उसकी दृष्टि मे गुड जैसी दुर्लभ वस्तु कोई नही थी : राजस्थानी कहावत कोश: पृष्ठ ३८३)। आपकी लिखी हुई कहावत ही माने तो यह अर्थ बैठेगा कि गुणो का विकास होते-होते मनुष्य नर से नारायण हो गया।

आशा है यह आपके लिए सन्तोषकारी होगा।

आपका,

भागीरथ कानोड़िया

(९)

३-८-७८

प्रिय श्री गोविन्दजी,

आपका पत्र ३१ तारीख का मिला। "घी बेच कर......" का अर्थ है .

एक स्त्री थी। वह मिठाई बनाना चाहती थी। घी तो उसके पास जरूरत से अधिक था और चीनी थी ही नही। इसलिए वह थोडा सा घी अपनी हाडी मे से निकाल कर दुकानदार के पास गई और दुकानदार को वह घी देकर बदले मे चीनी चाही। दुकानदार ने घी के दाम बाजार भाव से कम पकडे और चीनी के बाजार भाव से अधिक। एक दूसरा आदमी वहा बैठा था और यह सब देख रहा था। वह स्त्री खाड लेकर जाने लगी तब उस आदमी ने ऐसा कहा।

वर्षा के लिए सीकर और मुकुन्दगढ से भी ऐसे ही समाचार आ रहे हैं। प्रकृति की प्रतिकूलता के सामने किसी का वश नही। प्रकृति तो भगवान का ही दूसरा नाम है उसके सामने तो वश ही किसका ? अगर राजा ही किसी को दण्डित करे तो वश नही चलता।

राजा डडै की तनै रोवै किण ढिग जाय
बाड लगाई खेत नै बाड़ खेत न खाय।

आपका

भागीरथ कानोड़िया

(१०)

१९-११-७८

प्रिय श्री गोविन्द जी,

आपका पत्र १४ तारीख का मिला। कलकत्ता आने के बाद मुझे एक दफे दिल्ली भी जाना पड गया था। कुछ दूसरा भी झंझट भी रहा इसलिए आपको पत्र नही लिख सका। आपका दीवाली का पत्र तथा एक पत्र और मिल गया था।

कहावत कोश के बारे मे समाचार लिखे सो ठीक। आपकी समझ मे अगले दो महीनो मे यह काम पूरा हो जायेगा क्या ?

मथुरा प्रिंटिंग वालो के बारे मे लिखा सो ठीक लेकिन झूठ का ठेका प्रेस वालो ने ही ले रखा है ऐसी बात नही है। तुलसीदासजी ने कलियुग के वर्णन मे लिखा है—

झूठ ही लेना-झूठ ही देना
झूठ ही भोजन-झूठ चबेना।

"जुग टूट्याँ स्यार मरै" का अर्थ है कि चोपड मे एक ढाणे मे दो स्यार रहती है तो चोपड के खेल के बारे मे उन्हे कोई नही मार सकता।

दो स्यार को जुग कहते है। ज्यो ही खिलाडी को उन दो स्यारो मे (से) एक को चलने की जरूरत पडती है और वह अपनी आवश्यकतानुसार एक स्यार की चाल आगे बढा देता है त्यों ही वे स्यार मरणशील हो जाती है, (अर्थात् सगठन टूटने से ही नाश होता है राजस्थानी कहावत कोश, पृष्ठ २२४)।

आपका,
भागीरथ कानोडिया

श्री तुलसीदास कानोडिया के नाम

मुकुन्दगढ
२३-९-७८

चि० तुलसीदास, (द्वितीय पुत्र)

चिट्ठी तुम्हारी आज मिली। एक पत्र मैंने तुम्हे कल दिया था पहुचा होगा।

मैं कलकत्ते की अपेक्षा यहा काफी अधिक व्यस्त रहता हू। मन लगा हुआ है। स्वास्थ्य भी ठीक रहता है।

कुमुदनी खिचडी देने वाली है, वह केवल चावल मू ग की सीधी-सादी खिचडी तो नही देगी न ? मेवे की खिचडी और उस पर हीरे-मोती का चूरा बुरकाई हुई खिचडी हो तो हमलोग आने का मन कर सकते है। सो उससे यह कन्फर्म करवा देना।

मैं २९ ता० तक तो यहा हू उसके बाद किशनगढ जाने की बात सोच रहा हू। तुम्हारा टेलीफोन आज आया लेकिन स्पष्ट बात नही हो पाई। फिर भी जितनी भी हुई उससे सतोष मान लेता हू।

कल भवरमलजी सिंघी का एक पत्र भटनागरजी के पास आया था। कॉलेज भवन पर ७ लाख रुपया खरच करने की बात लिखी थी। २२००० फुट का काम है। ४० रु० खरचा आयेगा। इसमे कम मे मेरी समझ मे पार नही पडेगा। करीब इतना सा लग जायेगा इसलिए सात लाख रुपये मे काम पार नही पडेगा। इसके अलावा चहारदीवारी के रुपये अलग लगेंगे। फर्नीचर सारा नया बनवाना पडेगा क्योकि मौजूदा फर्नीचर काफी पुराना हो गया है। यह हाई स्कूल के काम आ जायगा। कुल ११ लाख का खरचा मान कर चलना चाहिए। इसके अलावा ३ लाख रुपये छात्रावास तथा क्वार्टर्स के अलग जिसमे २ लाख सरकार से मिल जायेंगे।

इस साल करीब २००-२५० लडको को ऐडमिशन के लिए इनकार करना पडा है। नवलगढ मे भी ऐडमिशन के लिए बहुत मारा-मारी चल रही है। मेरी समझ मे कॉलेज की नई बिल्डिंग बनने पर छात्रो की संख्या १००० की पहिली साल ही हो जायगी। निर्णय जल्दी ले लो तथा काम जल्दी शुरू कर दो तो काम आगे बढाने मे मेरे से बने जितनी मदद मैं भी कर सकता हू।

कल ब्राच स्कूल के सारे टीचर इकट्ठे होकर आये थे। उनका कहना है कि आपको सरकार से ग्राट के रुपये कम मिले या नही मिले तो उसका हम क्या करें। हमे हमारी पे मिलनी चाहिए। उनकी माग वाजिब है इसलिए रुपये यहा जल्दी भिजवा देना। इस पत्र के समाचार तुम्हे आवश्यकता लगे तो बासु को भी बता देना।

स्नेही
काकोजी

श्री आत्माराम व विमला कानोडिया के नाम

Grosvenor House
Park Lane, London W.
२१-८-५६

चि० आत्माराम, विमला, गुड्डी, पुचकी (तृतीय पुत्र, पुत्रवधू और पौत्रिया)

तुम लोगो को पत्र दिया उसी दिन कलकत्ते भी पत्र दिया था उनका तो उत्तर आ भी चुका है। शायद एक दो दिन मे तुम्हारा भी उत्तर आवे।

लदन मे हम लोगो का मन लगा हुआ है। खाने-पीने की किसी तरह की दिक्कत नही है। मौसम बहुत अच्छा है, सरदी ज्यादा नही है। यहां पर देखने-भालने के लिए बहुत जगहे हैं। दुकानें बहुत बडी-बडी हैं। ज्यो-ज्यो खिलौने तथा दूसरी छोटी चीजें दुकानो मे देखने मे आती है त्यो-त्यो चाची (भागीरथजी की पत्नी गगा देवी, जिन्हे पुत्र-पुत्रिया चाची ही कहते हैं) तो गुड्डी, पुचकी का नाम याद करती रहती है, खासकर पुचकी का तथा तुलसीदास वाले छोटे गीगे (बच्चे) का। बुरा मत मानना यो तुम्हे भी कभी-कभी तो याद करती है लेकिन बच्चो जितना नही।

यहा पर हमलोगो ने विंडसर कैसल देखा, मैडम टुसाड देखा, चिडियाखाना देखा। मैडम टुसाड के वहा मोम के बनाये हुए पुतले हैं जितने बादशाह, प्रधानमत्री, बड़े लेखक, बड़े कवि या राजनीतिज्ञ हुए हैं उन सब के मोम के पुतले बने हुए हैं केवल इगलैंड के ही नही लेकिन दूसरे देशो के भी। ऐसे पुतले बने है कि देखने से ऐसा लगता है कि सचमुच मे ही वही आदमी जीता-जागता खडा है। गाधीजी और जवाहरलाल को भी स्थान मिला हुआ है। विंडसर कैसल एक बहुत पुराना और बडा किला है। वहां गिरजाघर भी बहुत सुन्दर है। रानी के रहने का स्थान है जहा रानी बीच-बीच मे जाकर रहती है। किला बहुत बडा है। ऐयाशी का सामान भी वहा बहुत है। लन्दन में पार्क और बगीचे और Squares शहर भर मे बहुत है जिनमे कई तो बहुत बडे है और कई छोटे। इतनी बडी-बडी इमारतें और संग्रह तथा ऐशोआराम का सामान उस जमाने का बना हुआ है जबकि ब्रिटिश साम्राज्य मे सूरज अस्त नही होता था। लेकिन अब वह जमाना नही रहा। सारे ही देश अपने-अपने घर के मालिक बन गये हैं। एक पर दूसरा राज्य करने का जमाना खत्म होता जा रहा है। नीचे के तबके के लोग ऊपर उठ रहे हैं ऊपर के नीचे आ रहे है। गरीब और अमीर का भेद कम होता जा रहा है। उस जमाने मे चारो ओर का धन सिमट-सिमट कर विलायत चला आ रहा था और उसके फलस्वरूप यहा का यह वैभव बना था। अब तो पुरानी चीजो का (रख-रखाव) भी मुश्किल होता जा रहा है। ब्रिटिश साम्राज्य का सूरज तेजी से अस्ताचल की ओर जा रहा है।

मकान यहा पर बहुत ऊचे नही है। सफाई अच्छी है। लोग बहुत सभ्य, मिलनसार और नम्र हैं। थैंक यू, सारी, एक्सेलेंट, फाइन आदि शब्द ऐसे है, जो हर आदमी की जबान पर रहते हैं। टेट गैलरी तथा नेशनल आर्ट गैलरी आज देखने जाऊगा। कहते हैं वहा एक-एक तस्वीर ५।५ ७।७ लाख रुपये तक की है। अमेरिका मे जो धन-दौलत कल-कारखाने और ऊची-बडी इमारतें है उनके मुकाबले मे तो यहा कुछ भी नही है लेकिन फिर भी बहुत है।

सारे इगलैण्ड में नार्थ आयरलैंड तथा स्काटलैण्ड मिलाकर कुल पाचेक करोड की आबादी है। उसमे से १ करोड़ आदमी अकेले लन्दन शहर मे रहते हैं याने कुल मुल्क की पञ्चमांश आबादी। सारे इगलैण्ड मे आज मुश्किल से ५०० आदमी ऐसे बचे हैं जिनकी आय सालाना ५००० (पौं०) या इससे अधिक है। धीरे धीरे भागवानी-नवाबी खत्म होती जा रही है। गरीबो की गरीबी भी खतम हो रही है। नौकर मुश्किल से मिलते हैं। दुकानों मे साग, फल तथा और कुछ भी चीजें खरीदते हैं तो बोझा खुद ही ढोना पडता है। कुली नाम की कोई चीज यहा देखने मे नही आई। यहा सब लोग अपना काम आप ही करते हैं नवाबी नही करते। गाडी ज्यादातर लोग अपनी आप ही चलाते हैं। खाने पीने के लिये यहा पर छोटे-छोटे होटल और रेस्तरा बहुत हैं। हिन्दुस्तानी रेस्तरां भी बहुत है जहा फल्के, पूडी, पापड अचार, हर तरह के साग, पोदीने की चटनी आदि सब चीज जो भी तुम चाहो मिलता है। विद्यार्थीगण ज्यादातर गृहस्थो के यहां रहते हैं। गृहस्थी ऐसे कई है जो पेयिंग गेस्ट रखते हैं। करीब चार सौ रुपये महीने मे एक विद्यार्थी रह सकता है।

दूध यहां बहुत सस्ता है। अच्छा शुद्ध दूध ताजा ७ पेनी per pint यानी दस छटांक के छ. आने से कुछ कम ही लगते हैं जिसमे घर बैठे बोतल पहुचा जाता है।

पत्र लिखते-लिखते हाथ दुखने लग गया है और अब बाहर भी जाना है इसलिए यह पत्र यही खत्म करता हू। फुरसत मिलने से फिर लिखूगा। तुम्हे पत्र दिलचस्प लगे तो मुझे लिखना। अश्विनी को भी यही पत्र लिखना चाहता था लेकिन तुम इतना काम तो करना कि मेरी यह मेहनत बचा देना। पत्र पढकर गुड्डी वगैरह को पढाकर अश्विनी को खास देना। वह भी इसे ही पढ लेगा। सत्यनारायण और निर्मल (सत्यनारायण झुनझुनवाला तथा निर्मल जैन बुरहानपुर ताप्ती मिल मे तब काम करते थे) को भी यह पत्र भले ही पढा देना जिससे कि उन लोगो को यहां का थोडा-बहुत अदाज हो जायेगा। तुमलोगो मे कोई आदमी अथवा अश्विनी, दीनानाथ, सावित्री को भी किसी को भी यह पत्र पसन्द आवे तो मुझे लिखना, दूसरा पत्र यहा के हालचालो का और लिखूगा।

— काकोजी

श्रीमती सावित्री खेमका के नाम

१०-७-७१

सावित्री बाई (ज्येष्ठ पुत्री),

कलकत्ते सेती चाल्या आज पूरा पन्द्रह दिन होगा। उडीकता-उडीकता आखता होगा पण तेरी चिट्ठी आई नही। चाची कव ह या ई बात सावित्री भी कह न सक है। मैं कहो के या बात तो साची है। दोनो तरफ लेखो बराबर होयो कोई एक दूसर न ओलमू नही दे न सक। मीनू की सगाई की ओर कोई बात चाली के? दिल्ली वाला को तो कुछ जवाब नही आयो होवगो—सगाई तो करनी ई है और कोई निगह करये। तेरो आन को मन होव तथा आसानी से आ सक तो भलाई दसेक दिन क ताई आ ज्याये। ५५० माइल को चक्कर है। अठे सेती चित्तौड, उदयपुर, काकरोली, चार भुजा, नाथद्वारा, रनकपुर, केसरिया तथा १-२ जगह और जाकर आने मे एक हफ्ते का चक्कर समझो। इसके रास्ते मे अजमेर के कुछ दर्शनीय स्थान तथा पुष्कर तीर्थ का भ्रमण हो जायगा लेकिन बिलकुल सुभीता हो तथा मन चलता हो तो ही आना। उर्मिला आने का कुछ-कुछ मन कर रही थी उसको भी मेरे और चाची के नाम से याद दिला देना। मैना को भी मैंने कहा था। उसे कह देना उसका राजस्थान घूमना मेरे बिना नही होगा। उसके लिये मेरा खास मन है कि वह कुछ दिन मेरे साथ रहे और अभी मौका भी है। तुम उसे इन्ड्यूस कर सको तो देखना।

तुम्हे एक कहानी लिखता हू। मेरा खयाल है कि तुम्हे अच्छी तो लगेगी लेकिन डर यह लगता है कि तुम्हारे स्नेह के आसू न चल जायें। एक बनिया था, साहूकारी

का काम था। धीरे-धीरे अच्छा धनी हो गया। उसके एक लडका था और एक लडकी। लडकी भी अच्छे भागवान घर व्याही थी। समय पाकर लडके के मां-बाप की मृत्यु हो गई। लडकी के घर मे व्यापार मे नुकसान लग गया। फीकाई आ गई। लडकी अपने पति के साथ, भाई-भौजाई के पास गई अपने दुख के दिन काटने के लिये तथा सहायता मागने के लिए जिससे कि वे फिर अपने पैर पर खड़े हो सकें। व्यापार-वट्टा कर सकें। भाई-भौजाई ने विशेष आवभगत नही की, रुखाई से ही पेश आये। बहिन ५-७ दिन रह कर फिरती चली गई। समय की बात बहिन का घर फिर से सजल हो गया। उनका व्यापार चल निकला। इधर भाई के घर मे फीकाई आ गई। भाई अपनी पत्नी के साथ शरमाता-सकुचाता सा बहिन के घर गया। बहिन ने भाई को बहुत आदर से रखा, अपने पास से रुपये देकर भाई को कारबार कराके दिया, भाई भी अपने पावो पर खडा हो गया। बहिन से विदा मागने और आभार प्रकट करने गया तो बहिन गले लगा कर मिली। बहुत लाड-चाव किया भौजाई का, लेकिन एक व्यग कस दिया भाई को सावधान करने के लिये जिससे कि वह भविष्य मे दुख मे पड़े हुये आदमी का आदर-सत्कार किया करे। बहिन ने कहा :

> तिथि टूटे रे बीर, बार कदे नही टूटसी,
> भाण बिराणी होय, बीरो बीरो ही रहे...,

भाई शर्मिन्दा हो गया। भाई बहिन को पराई मान सकता है लेकिन बहिन के लिये यह सम्भव नही कि वह भाई को पराया माने (यह कहानी 'बहता पानी निर्मला, तृतीय सस्करण मे 'बहन के ममत्व' शीर्षक से है. पृष्ठ १८६-१८९)।

— काकोजी

पौत्री अमिषा के नाम

कलकत्ता
२३-२-७७

प्यारी बेटी अमिषाजी,

तुम्हारा बहुत सुन्दर कार्ड पर सुन्दर अक्षरो मे लिखा हुआ प्यारा पत्र मिला। बहुत ही अच्छा लगा। मन बहुत ही प्रसन्न हुआ। बीच-बीच में लिखती रहा करो।

अब तुम किशनगढ कब जावोगी? तुम जावोगी तभी मैं भी जाऊंगा। तुम्हारा स्वास्थ्य एकदम ठीक रहता होगा। लिखाई-पढाई मे मन खूब लगता होगा तथा खेल कूद मे भी। पार्क मे घूमने के लिये रोज जाती हो न?

खुश रहना, बहुत-बहुत खुश, खूब खाना, खेलना और पढना।

— काकोजी

पौत्री दिविता के नाम

किशनगढ

२३-११-१९७७

बेटी दिविता,

तुम्हारा प्यारा-प्यारा पत्र २० तारीख का मिला। तुम बडी मयानी लड़की हो। तुम खूब मन लगा कर पढ रही हो यह बहुत अच्छी बात है। ऐसा ही करना चाहिए। अशु (बडे भाई) तो मास्टर को फाकी देता है।

तुम थोडे दिन यहा क्यो नही आ जाती ? तुम्हारे आने से हमारा मन बहुत लगेगा। अपनी मा से कह दो मैं तो राजस्थान जाऊंगी, काकोजी ने मुझे बुलाया है। यहा आने पर तुम्हे बहुत अच्छी-अच्छी जगहे दिखला कर लाऊ गा, बहुत अच्छे-अच्छे खिलौने भी खेलने को दूंगा। पढने के लिए तस्वीरोवाली अच्छी-अच्छी किताबें भी मिलती हैं। किशनगढ कलकत्ते से बहुत बडा शहर है। कलकत्ता तो छोटा-सा है। जरूर चली आना। तुम्हारी याद रोजाना आती रहती है।

ढेर सारे प्यार के साथ,

तुम्हारा शुभेच्छु

काकोजी

—: ० :—

भागीरथजी का लेखन

भागीरथजी उस अर्थ मे लेखक नही थे जिसमे हम किसी को लेखक मानते हैं। उन्होने जो-कुछ लिखा, वह लेखक की हैसियत मे नही लिखा। वह यह सोच भी नही सकते थे कि कोई उन्हे लेखक भी मान सकता है। अपने बारे मे ज्यादा से ज्यादा उदार हो कर सोचने पर वह शायद इतना ही सोच पाते कि वह साहित्य, खासकर भक्ति-साहित्य व लोक-साहित्य के प्रेमी और साहित्यकारो के गुण-ग्राहक हैं।

जो व्यक्ति लेखक होता है वह कही यह मानता होता है कि वह स्रष्टा और रचयिता है, उसके पास कोई विशेष या अनूठी प्रतिभा है, और कोई ऐसा सत्य भी है जिसे दूसरो और दुनिया तक उसे पहुंचाना चाहिए। इस प्रकार लेखक होने के पीछे किसी न किसी रूप मे अह रहता ही है। भागीरथजी मे यह लेखकीय अह नही था। लेकिन उन्होंने जो लिखा वह 'स्वान्त सुखाय' भी नही था क्योकि उनके लिखने के पीछे दूसरो और दुनिया तक पहुचने का निश्चय ही आग्रह था। यह आग्रह ही उन्हे लेखक के दरजे तक पहुचा देता है। यदि किसी लेखक मे स्रष्टा और रचयिता होने का अह भाव तो हो लेकिन अपने सत्य और अपनी सम्वेदना को दूसरो और दुनिया तक पहुचाने (कम्युनिकेट करने) का आग्रह न हो तो वह फिर लेखक तो नही ही हो सकता और तब उसके स्रष्टा और रचयिता होने का भी कोई अर्थ नही होगा। लेखक यदि अरण्य मे रोता है तो वह अरण्य को सुनाने के लिए ही रोता है।

भागीरथजी को हम लेखक मानते हैं तो इसीलिए कि वह अपना सुख-दुख, अपनी सम्वेदना और अनुभूति व अनुभव से अर्जित ज्ञान हमारे साथ बाटने के लिए आग्रही हैं। शबरी भागीरथजी की एक परम प्रिय 'नायिका' है और उसी की तरह वह हमे बेर खिलाना चाहते हैं। 'बहता पानी निर्मला' की कई कहानियो मे यह आग्रह इतना तीव्र है कि वह पाठक से रूबरू बतियाने लगते हैं। इस प्रकार की बातचीत हमे हिन्दी गद्य के विकास के उन दिनो की भी याद दिलाती है जब लिखने और बोलने की भाषाओ के बीच आज जितना व्यवधान नही था और लेखक महोदय को लिखते-लिखते पाठक महोदय मे 'दो-चार हाथ' बातचीत करते रहने की तलब होती रहती थी।

'बहता पानी निर्मला' की कई कहानियो मे भागीरथजी सीधे पाठको से बातचीत करने लगते हैं और उन्हें 'बैठाकर' किसी पुरानी कथा मे मिलती-जुलती या उसी प्रकार की कोई सम-सामयिक कथा सुनाने लगते हैं। कभी-कभी तो वह बरसो पुरानी किसी कहावत के साथ हाल के बर्षों की कोई

बात घुला-मिलाकर अद्‌भुत रस की सृष्टि करते हैं। 'बहता पानी निर्मला' की एक विशेषता यह भी है कि उसमे मानव जीवन के एक महत्वपूर्ण अग भोजन की काफी चर्चा है। एक कहानी मे खीर की 'महिमा का वर्णन करते-करते भागीरथजी रसगुल्ले और जलेबी के गुणो और उनके प्रेमियो का वर्णन करने लगते है। जलेबी के प्रेमियो मे वह राजस्थान के एक भारत-विख्यात नशाबदी-विरोधी नेता को गिनाते है, जो जलेबी को महारानी मानते-कहते है। इस नेता का वह उदाहरण इस तरह देते हैं कि जो लोग नेता को व्यक्तिगत रूप से जानते हैं वे तुरत समझ जाते है और आनन्दित होते है, और जो नही जानते वे अटकल लगाये बिना नही रह पाते। इस कहानी मे खीर, रसगुल्ले और जलेबी को एक साथ मिलाकर तथा कहावत और सम-सामयिक उदाहरणो को फेंटकर भागीरथजी ने सचमुच ही एक अद्‌भुत रस की सृष्टि की है।

एक दूसरी कहानी मे एक स्त्री के चटोरपन की चर्चा करते हुए भागीरथजी ने लिखा है कि उसे सुस्वादु व्यजनो के 'गटके' आया करते थे। 'गटके' राजस्थानी बोली का शब्द है और इसका अर्थ होगा—स्वाद की याद मे उठने वाली हूक। अब खडी बोली मे 'गटके' की टक्कर का शब्द नही है। ऐसे राजस्थानी बोली के शब्दो के बहुत सुन्दर प्रयोग से भागीरथजी कही हमारी हिन्दी की अमित सभावनाओ को प्रकट करते है—बोलियो के कुबेर-खजाने से, वह अपने को किसी तरह के ह्रास की आशका के बिना कैसे निरन्तर समृद्ध करती रह सकती है।

भागीरथजी का गद्य हमारे जन-जीवन के सभी क्षेत्रो से खुराक हासिल करता चलता है। कहावतें, मुहावरे, दोहे-सोरठे, श्लोक-भजन आदि सब उसमे अपना रस उडेलते रहते हैं। जब हम 'बहता पानी निर्मला' की कहानिया पढते हैं तो उनके माध्यम से अपने लोक-जीवन, सस्कृति, नेगचारो और धार्मिक सस्कारो की दुनिया मे स्वत प्रवेश पा जाते है। औपनिवेशिक मानसिकता के चलते हिन्दी का तथाकथित आधुनिक लेखक जब इस दुनिया को त्याज्य मानकर एक स्रोतहीन नकली और अनुवाद की भाषा मे लिखे जा रहा है तब भागीरथजी का गद्य पढना ऐसा मालूम होता है कि बरसो होटल का खाना खाने के बाद हम घर का सुस्वादु भोजन कर रहे हैं।

यह स्वाभाविक ही है कि 'बहता पानी निर्मला' की ज्यादातर कहानियो मे भागीरथजी की वही प्रेरणाएं दिखायी दे जो उनके जीवन की रही है। जब सतोष को 'परम सुख' बताती हुई उनकी कहानिया हम पढते हैं तो यह याद आये बिना नही रहता कि मृत्यु शय्या पर लेटे हुए भागीरथजी ने ज्योतिपीठ के शकराचार्य स्वामी श्रीस्वरूपानन्दजी के यह पूछने पर कि आपके मन मे कोई इच्छा है क्या, तो क्षीण स्वर मे कहा था "मुझे अपने जीवन से पूरा सतोष है। मैंने सदा सतोष को ही सुख माना है।"

'वहता पानी निर्मला' की वहुतेरी कहानियां सेठो के वारे मे और वनिया-बुद्धि के वारे मे है। इन कहानियो मे जव भागीरथजी किसी सेठ के दानी और उदार स्वभाव की चर्चा करते हैं तो लगता है कि प्रकारातर से वह अपनी ही चर्चा कर रहे हैं, और जव वह किसी सेठ की वनिया-बुद्धि, कृपणता और ओछेपन की चर्चा करते है तो लगता है कि परिग्रह, लोभ और क्षुद्रता के प्रति उनकी वितृष्णा फूट कर निकल रही है।

भागीरथजी को भाई-वहन का प्रेम, वेटी की विदाई का प्रसग और स्त्री का अपने पितृ गृह के प्रति मोह वहुत ज्यादा मोहता है। वातचीत और पत्रो मे इन प्रसगो की वह अक्सर चर्चा किया करते थे और तव रामायण की कोई न कोई चौथाई या कोई कहावत उद्धृत करते थे। एक वार १९७१ मे वह अपनी एक पुत्र-वधू को वहुत आग्रह कर अपने दादा की १०० वर्ष पुरानी हवेली दिखाने ले गये। दिखाने के वाद उसे अन्त मे छत पर ले गये और उसे कहा देखो, वह चूडी (पास का गाव) है। "नन्दू की मा (भागीरथजी की पहली पत्नी जो चूडी गाव की थी) रोज छत पर आकर अठ सू चूडी न देख्या करती।" यह कहते हुए उनकी आखें नम हो गयी। प्यारी वेटी 'सावित्री वाई' को लिखे गये उनके दो पत्र इस ग्रन्थ मे छपे हैं। दोनो मे ही भाई-वहन के प्रेम की मर्मिक चर्चा है। 'वहता पानी निर्मला' की कहानियो मे भाई-वहन के प्रेम और स्त्री के अपने पितृ गृह के प्रति मोह के प्रसगो को उन्होने अपनी करुणा से सिंचित कर लिखा है। इन कारुणिक प्रसगो को पढते हुए पाठक का मन एक ऐसी निश्छल करुणा से लवालव हो जाता है, जो कही उसका परिष्कार करती है, उसमे दूसरो का दुख दर्द समझने की क्षमता भी वढाती है।

"वहता पानी निर्मला" को कहानियो मे भागीरथजी का भक्ति-साहित्य के प्रति लगाव वार-वार प्रकट होता है और वह उससे निरन्तर-उद्धरण देते रहते हैं। भक्त और भक्ति की महिमा का वखान करते वह कभी अघाते नही।

भागीरथजी ने 'वहता पानी निर्मला' की कहानिया अपने जीवन के अन्तिम वर्षो मे ७० की उम्र पार करने के वाद लिखी। इसके पहले उन्होने छिटपुट ही लेख लिखे। इन छिटपुट लेखो की कोई कतरन उन्होने अपने पास नही रखी। सामयिक समस्याओ पर लिखे गये उनके लेख विस्मृति के गर्भ मे विलीन हो गये हैं। उनके चार लेखो का याददाश्त के सहारे उद्धार किया जा सका है, चारो ही इस ग्रन्थ मे दिये जा रहे है। इनमे दो तो राजस्थान के अकाल के वारे मे है। इन लेखो मे अकाल पीडितो के कष्ट की मार्मिक स्थिति का वर्णन है और उनसे अपने को जोडने का प्रवल आग्रह है। आज से ३२ साल पहले भागीरथजी एक वार नैनीताल गये थे तो उन्होने 'नया समाज' के सम्पादक स्व० श्री मोहन

सिंह सेंगर के अनुरोध पर नैनीताल के बारे मे एक लेख लिखा था। उस लेख मे अपने को परोपजीवी लोगो मे शुमार करते हुए उन्होने लिखा. "थोडे से परोपजीवी लोग, जिन्होने अपना एक गुट बनाकर सारी पृथ्वी पर अपना माया जाल बिछा लिया है, सारे पदार्थो का उपभोग कर रहे हैं। हमलोग इसी श्रेणी के हैं जिन्हे शारीरिक परिश्रम बिलकुल नही करना पडता और फिर भी सारी सुख-सुविधाओ का उपभोग करते हैं।" आत्म-निरीक्षण, सम्वेदना और विनम्रता उनके जीवन मे इस तरह घुली मिली थी कि उनके पग-पग पर दर्शन होते है। यह लिखते-लिखते कोई बता गया कि १९७६ मे कल्याण आरोग्य सदन की ओर से मेडिकल कैम्प लगाया गया था तो बम्बई के प्रसिद्ध डाक्टर पुरेन्दरे तथा अन्य बहुत से डाक्टर सीकर आये हुए थे। आरोग्य सदन के सभी अतिथि-गृह भर गये थे। ८० वर्ष की उम्र मे भागीरथजी सारे वक्त काम कैम्प का करते रहते थे। दोपहर को धूप मे किसी पेड के नीचे बैठे रहते क्योकि यदि विश्राम करने अतिथि-गृह मे जाते तो अतिथि-डाक्टरो के आराम मे बाधा पडती। इस प्रकार का अपने को समेट कर दूसरो को खयाल रखना, हमारे समाज मे अब एकदम दुर्लभ होता जा रहा है।

कल्याण आरोग्य सदन के उनके कार्य की चर्चा इस ग्रन्थ के बहुत सारे सस्मरणो मे आयी है। भागीरथजी ने १९७१ मे जब सदन का कार्य-भार सम्भाला तो उन्होने सीकरवासियो को बुलाया और कहा "आपने यहा पीडितो की सेवा करने का अवसर देकर मुझे उपकृत किया है, इसके लिए मैं आप सब का आभारी हू।' भागीरथजी का अकिंचन होने का यह भाव उनके लेखन मे भी प्रकट होता है। उनके लेखन मे कही भी बनावट नही (कहानियो को दिलचस्प बनाने के लिए उन्होने उनमे बहुत सी चीजें उडेली जरूर है पर वह कही भी ज्ञान-प्रदर्शन या आरोपण नही) है। लिखने की प्रक्रिया ही कुछ ऐसी है कि आदमी कही थोडा वक्र और नाटकीय हुए बिना नही रह पाता। भागीरथजी अपने विनम्र और अकिंचन भाव के कारण इससे भी मुक्त हैं।

उनका लेखन उनकी निश्छलता और सम्वेदना के कारण ही हमे मोहता है और जब उसमे (जैसा कि कहानियो मे) उनकी भक्ति और लोक-सस्कृति के प्रति आसक्ति मिल जाती है तो एकदम सोने मे सुहागे वाली बात हो जाती है।

अकाल-पीड़ित राजस्थान

भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है। लेकिन आज तो सच्ची स्थिति यह है कि यहां पर बसनेवाले लोगो मे काफी तादाद ऐसे लोगो की है, जिन्हे सदा भर पेट भोजन नही मिलता। सम्पूर्ण पोषण देनेवाला और सुरुचिपूर्ण भोजन तो यहां पर बहुत कम लोगो को ही नसीब होता है। इस तरह की हालत जिस देश में हो, उसके किसी भी हिस्से मे जिस साल प्राकृतिक कोप के कारण विशेष रूप से अकाल पड जाय, उस साल वहा के निवासियो की दशा का सहसा दयनीय हो उठना स्वाभाविक है। इस साल (१९४८-४९) राजस्थान मे ऐसा ही हुआ। एक तो यो ही गत तीन-चार साल से वहा लगातार पैदावार कम होती आ रही थी, फिर इस वर्ष तो वर्षा के नितान्त अभाव से कम-ज्यादा रूप मे प्राय. सारे राजस्थान मे अकाल पड गया। वहा के सरकारी आकडो के अनुसार २६ जिलो मे केवल ३ जिले—यानी कोटा, भरतपुर, गगानगर ऐसे है, जिनकी हालत अच्छी है। बाकी २३ जिलो मे अकाल की या तंगी की हालत घोषित की गई है। राजस्थान मे भूमि का अभाव नही है, लेकिन उस भूमि मे बहुत बडा भाग ऐसी जमीन का है, जो पथरीली, ककरीली और रेतीली होने के कारण अधिक उपजाऊ नही है। राजस्थान के प्राय. सभी भागो मे साल मे एक ही फसल पैदा होती है और उसका आधार केवल मौसम की अनुकूलता-प्रतिकूलता पर निर्भर करता है। नहरो या कुओ की सिंचाई द्वारा बहुत कम खेती होती है।

इसी के अध्ययन और वहा चल रहे राजस्थान-अकाल-सेवा-समिति के सेवा-कार्य के निरीक्षण के लिए गत नवबर मास मे मैं और मारवाडी रिलीफ-सोसाइटी के प्रधानमत्री राजस्थान गए। हमलोग कोटा, बूदी, बारो होते हुए शाहाबाद-किशनगज के जगलो मे गए, जहा करीब साठ हजार मवेशियो को लेकर तीन हजार आदमी गए हुए हैं। ये लोग ज्यादातर जोधपुर डिवीजन के उस हिस्से से आए हैं, जहा पर घास-चारे के अलावा पानी की खासतौर पर कमी है। इन लोगो को यहा जगलो मे पहुचने के लिए करीब ५०० मील पैदल चलना पडा, जिसके परिणामस्वरूप गायें और मनुष्य दोनों ही बहुत थक गए। साथ ही काफी तादाद मे गायो के खुर सूज भी गए। सारी सडक पर जगह-जगह हमे एक-एक सौ या दो-दो सौ गायो और बैलो के ऐसे झुण्ड मिले, जिन्हे उनके मालिक एक गाडी मे अपनी गृहस्थी का सारा सामान लादे हुए घास-चारे की तलाश मे लिए जा रहे थे। जगलो मे पहुचकर हमने गायो और उनके मालिको को, जो जगह-जगह घास और लकडी की झोपडिया बनाकर रह रहे है, देखा। गायो मे खुर और मुह के रोग अधिक देखने मे आए। रास्तो और जंगलों मे जगह-जगह इक्की-दुक्की मरी हुई गायें भी दीख पड़ी तथा ऐसी गायें भी थी जिन्हे बेकार तथा असमर्थ पाकर उनके मालिक रास्ते मे ही छोड गए थे और जो सिसक-सिसक कर अपनी

अन्तिम घडिया गिनती हुई दम तोड रही थी। जगलो मे गायो के और मनुष्यो के इलाज के लिए सरकारी डाक्टर थे तो सही, लेकिन सवारी आदि के अभाव मे उनके लिए सब जगह पहुचना नामुमकिन था। लोगो ने दवा न मिलने की शिकायत की। सर्दी अधिक और कपडा कम होने से कई लोगो को बुखार और निमोनिया भी हो गया था।

समिति ने एक जीप और छ स्वयसेवको को वहा भेजा है, जिनके साथ पशुओ और मनुष्यो के लिए पर्याप्त मात्रा मे दवाइया है। ये लोग सारे जगलो मे घूम-घूम कर वहा गए हुए लोगो की तथा उनके पशु-धन की चिकित्सा और सेवा का प्रबन्ध करेगे। शीत-निवारण के लिए उनके साथ पाच सौ रजाइया भी भेज दी गई हैं, जो वहा पर ऐसे कुटुम्बो मे एक-एक या दो-दो के हिसाब से दे दी जायेगी, जिनके पास कपडे का अभाव है। जो गाय और बैल वहा गए हैं, उनमे अधिकाश अच्छी नस्ल तथा कम आयु के है, क्योकि गृहस्थ लोग अपने पशु-धन को, जो कि उनका एकमात्र सहारा है, बचाने की दृष्टि से ही वहा ले गए हैं और अपग तथा बूढी गायो को यो ही मरने देने के लिए घर पर ही छोड गए है। मेरा अन्दाज है कि इन गायो मे कम-से-कम दस प्रतिशत तो मरेंगी ही। और दवा-पानी का समुचित प्रबन्ध अगर नही हुआ तो अधिक भी मर सकती है। चार-पाच प्रतिशत गायो की हालत इतनी कमजोर हो जायगी कि उनको उनके भाग्य के भरोसे वही छोड आना पडेगा, क्योकि वे पाच सौ मील किसी तरह भी चल नही सकेंगी। समिति इस बात का भरसक प्रयत्न करेगी कि दवा आदि का प्रबन्ध पूर्णतया हो और दवा के अभाव मे किसी मनुष्य या पशु को मरने न दिया जाय। यदि जरूरत हुई और साधन हुए, तो आगे चलकर कमजोर गायो को गवार और बाटा देने की व्यवस्था करने का भी विचार है।

रोटी और काम की तलाश

यहा से लौट कर हम लोग जयपुर, अजमेर, ब्यावर होते हुए पाली गए। ब्यावर के पास राजस्थान मे भीम नाम का एक इलाका है। उस इलाके की अवस्था ज्यादा शोचनीय है। पाली मे कुछ तालाबो की खुदाई और उनकी मरम्मत कराने तथा सस्ते घास-चारे का डिपो खोलने की माग थी। तालाबो के काम को आरम्भ करने की समिति की ओर से मजूरी दी गई तथा घास-चारे के लिए, जो कि मध्य-भारत और उत्तर-प्रदेश से मगाया गया है, उसके पहुचते ही डिपो खोलने का आश्वासन भी दिया गया। वहा से जोधपुर होते हुए हम लोग नागौर गए। रास्ते मे दो जगहो पर, जहा कि सरकार की ओर से सडक-मरम्मत का काम चल रहा था, करीब पाच-पाच सौ आदमियो के दो कैम्प देखे। उनकी दु खद अवस्था का वर्णन करना मुश्किल है। मजदूरी की रेट सरकार की ओर से पुरुष को १२ आने, स्त्री को १० आने और बच्चे को (जो कि १२ वर्ष से ऊपर की अवस्था हो) ८ आने है। न पेट-भर अन्न उनको मिलता है और न उनके पास शीत-निवारण के लिए पूरे वस्त्र ही हैं। एक स्त्री ने

बताया कि उसके चार बच्चे हैं और चारों ही १२ वर्ष की अवस्था से कम उम्र के हैं। इसलिए उसे केवल १० आने पैसे में ही पांच पेट पालने पड़ते हैं। एक दूसरे लड़के ने बताया कि वह सड़क खोदने या और किसी भी किस्म की सख्त-से-सख्त मेहनत करने को तैयार है, लेकिन उम्र कम होने से उसे नाकाबिल समझा गया। लड़का हम लोगों से चिपट रहा था और चिल्ला-चिल्लाकर काम मांग रहा था। ११-१२ वर्ष का बच्चा सड़क खोदने और मिट्टी ढोने का काम मांगे और उनके बदले में रूखी-सूखी रोटी भी न न मिले, यह कैसी स्थिति है।

२०-२५ कोस तक से गृहस्थ लोग मजदूरी की खोज में आते हैं। किसी को काम मिल जाता है और कोई निराश होकर वापस चला जाता है, क्योंकि मजदूरी की आवश्यकता कम है और मजदूरी चाहनेवालों की संख्या अधिक। उन दोनों स्थानों पर समिति की ओर से डेढ़-डेढ़ सौ रजाइयां देने का प्रबन्ध किया गया, ताकि भूख के साथ शीत तो इन्हें न सतावे। बीच-बीच में इन लोगों को समिति की ओर से अनाज या दाल आदि भी देने की व्यवस्था की गई है। इन दोनों ही स्थानों पर पड़े हुए मजदूरों में एक भी आदमी हमें ऐसा नहीं मिला, जिसने यहां आने के बाद रोटी के साथ दाल या तरकारी खाई हो। कहते थे—"तरकारी तो अमीरों के खाने की चीज है और दाल घर पर रहते हैं, तो कभी-कभी मिल जाती है। यहां तो रोटी के साथ किसी दिन नमक-मिर्च मिल जाता है, तो वह दिन हमलोग भाग्य का दिन मानते हैं। नही तो यों ही भूख और पानी के साथ रोटी निगल लेते हैं। पर वह भी पूरी कहा मिलती है?" स्वतंत्र भारत में यह स्थिति हमलोगों के लिए शर्म की बात है। यह कैसी स्थिति है और इस तरह कब तक चलेगा? आदमी काम करना चाहे और उसे काम न मिले, यह स्थिति सरकार और जनता दोनों के लिये ही अशोभनीय है। केवल अशोभनीय ही नहीं, भयावह भी है। यदि इस स्थिति में सुधार नहीं हुआ और लोग इसी तरह भूखे, नगे, बेकार फिरते रहे, तो उन भूखों-नंगों की जमात को अपनी अपनी ओर आकर्षित कर लेना तथाकथित साम्यवादियों के लिए कठिन न होगा। जो लोग देश को हिंसात्मक प्रवृत्तियों से बचाना चाहते हैं, उनका यह पहला फर्ज होना चाहिए कि वे समाज में ऐसी स्थिति पैदा करने में अपने को प्राण-पण से लगावें कि जिसमे अधिक से अधिक लोगो को धंधा मिल सके तथा लोग भर पेट भोजन पा सकने के साथ-साथ पूरा कपड़ा तथा जिन्दा रहने के लिए अन्य आवश्यक सामग्री भी प्राप्त कर सकें।

नागौर, डीडवाना, लाडनू, जसवन्तगढ़, रतनगढ़, सुजानगढ़, बीदासर, छापर सरदार शहर और चूरू होते हुए हम लोग इनके रास्ते में पड़ने वाले गांवों की स्थिति देखते तथा लोगों से बात करके हालत की जानकारी करते हुए शेखावाटी गए। गांवों मे प्रायः हर जगह कम या ज्यादा एक ही स्थिति है, एक ही समस्या है—यानी धन्धा-रोजगार नही है। बेकारी की खास शिकायत है। लोग-बाग काम की तलाश में काफी सख्या में बाहर चले गए हैं। लेकिन फिर भी बहुत लोग ऐसे हैं, जो किसी भी

तरह की मजदूरी चाहते हैं। सभी जगह हरिजनो की अवस्था अधिक शोचनीय है। जगह-जगह कुओ की मरम्मत करवाने तथा तालाव खुदवाने की आवश्यकता है, क्योकि वहुत से ऐसे गाव है, जहा तालाव या कुआ एक ही है और उसके भी बेमरम्मत पड़े रहने के कारण वहा के लोगो को काफी कष्ट है। अगर इन कुओ-तालावो की मरम्मत का काम वडे पैमाने पर किया जाय, तो एक तरफ लोगो को मजदूरी का जरिया हो जाय और दूसरी ओर कई वर्षो के लिए वहा पर मनुष्य और पशुओ के लिए पानी का भी सुभीता हो जाय। जगह-जगह छुटपुट चोरी तथा डाको के मारे लोग परेशान थे। रास्ते मे हमे कई गाव ऐसे मिले, जहा एक भी आदमी साक्षर नही है। ऐसे भी कई गाव मिले, जिनमे एक या दो आदमी साक्षर-मात्र है। गावो के बच्चो से बात करने पर हमे पता चला कि कस्वो से दूर वसनेवाले गावो के बच्चो ने बादाम, किशमिश, काजू आदि का न तो कभी नाम सुना है और न उनका स्वाद ही जानते हैं। जब उन्हें ये चीजें दिखाकर पूछा गया, तो वे नही बता सके कि ये क्या चीजें हैं और किस काम आती हैं। जिन कस्वो मे हम गए, उनमे कई ऐसे हैं, जहा कई पैसे वाले लोग वसते हैं। वडी-वडी हवेलिया, मोहरे और कोठिया हैं लेकिन सफाई की हालत यह हैं गलियो मे चलते वक्त गन्दगी से बचने के लिए सावधान रहकर चलना पडता है।

गोधन की रक्षा की व्यवस्था

गावो मे साड है, उन्हे वचाने की खासतौर पर जरूरत है क्योकि अधिकाश गावो मे एक ही साड है और यदि वह मर गया, तो गांववालो के लिए मुसीवत हो जायेगी। वे दूसरा साड खरीदने मे कठिनाई अनुभव करेंगे। साडो की चराई गांव मे आम तौर पर प्रत्येक घर से कुछ घास और कुछ गवार लेकर वस्ती की ओर से की जाती है। लेकिन इस साल गावो की ऐसी हालत नही है कि वे साड़ो के लिए पूरी खुराक दे सकें। समिति की ओर से करीव ३० गांवो मे प्रति साड १५०/- रुपए की गवार दिये जाने की मजूरी अभी तक दी गई है। तालाव खुदवाई और कुओ की मरम्मत के लिए अब तक करीव साठ हजार रुपयो की मजूरी दी गई है। लेकिन माग वहुत ज्यादा है। एक सुजानगढ-तहसील से ही करीव एक लाख की मांग है। पर समिति के पास जब तक चन्दे के और रुपए नही आते, तब तक और खर्च की मजूरी देना सम्भव नही है। समिति ने अच्छी नस्ल की गायो और साडो को खास तौर पर बचाने के लिए यह तजवीज भी सोची है कि जगह-जगह एक सौ से दो सौ अच्छी गायो के अलग डिपो खोले जायें। वहा साधारण कीमत पर गायें व कम उम्र के बछडे और वाछिया खरीद कर रखी जाय और उन्हे अच्छी तरह घास-चारा आदि दिया जाय। अगले साल उन्हे कीमत लेकर किसानो मे बाट दिया जाय। दो हजार से तीन हजार तक इस तरह की गायें रखने का विचार है। खर्च के लिए डेढ लाख रुपए की मजूरी समिति ने दी है। डेढ लाख रुपया सरकार की ओर से मिलने की वात है। जहा-जहा घास-चारे की कमी है, वहा के लिए समिति ने एक लाख मन कडवी मध्य-प्रदेश तथा उत्तर-प्रदेश से खरीदी है। घास-चारे का संकट दो तीन महीने वाद ज्यादा मालूम

पड़ेगा, क्योकि अभी तो स्थानीय पैदावार का थोडा-वहुत माल है, जिसके सहारे लोगो का काम चल रहा है। किशनगढ मे, जहा घास-चारे की अधिक महगाई है, समिति ने घास पहुचाकर सस्ता घास-डिपो खोल दिया है।

यह प्रसन्नता की वात है कि राजस्थान-सरकार की ओर से जो सहायता-कार्य चल रहा है, वह तत्परता से हो रहा है। अब तक सरकार की ओर से कुल ९७०००००/- रुपयो की मजूरी है जिसमे वाईस लाख तो तकावी के रूप मे दिए जायेंगे और वाकी पचहत्तर लाख विभिन्न सहायता तथा सडक आदि वनवाने मे। सरकार की ओर से कुओ की मरम्मत तथा तालाबो की खुदाई पर जो रुपये खर्च किए जायेंगे तथा जो तकावी दी जायेगी, उसका भी शीघ्र और उचित प्रवन्ध हो, इसके लिए समिति का प्रतिनिधि कलेक्टरो और तहसीलदारो के साथ बरावर सम्पर्क रखेगा।

शेखावाटी के गावो से भी रोजगार की तलाश मे काफी सख्या मे लोग वाहर गए हैं। सभी जगहो पर लोगो की क्रय-शक्ति बहुत कम रह गई है। इसके परिणाम-स्वरूप सरकारी या सहकारी भडार की दुकानो पर पौने तीन सेर के भाव से विकता हुआ वाजरा न खरीदकर लोग दो सेर के भाव से दुकानदार से खरीदते हैं क्योकि नकद पैसा पास नहीं है और सरकारी या सहकारी भडार की दुकानो पर नकद मूल्य देना पड़ता है, जवकि महाजन की दुकान पर उधार मिल जाता है। बहुत इच्छा होने पर भी हमलोग समयाभाव के कारण डूगरपुर, वासवाडा और जैसलमेर नही जा सके। लेकिन समिति की ओर से विशेष प्रतिनिधि भेज कर इन सब जगहो की जाच कराई गई, तो मालूम हुआ कि इन इलाको मे पानी की दिक्कत खास तौर पर है। वेरोजगारी और गरीबी तो है ही। सुना है, केन्द्रीय सरकार की ओर से भील-क्षेत्र मे कुओ की खुदाई के लिए पाच लाख रुपए की मजूरी हुई है। समिति इस बात का प्रयत्न करेगी कि इन रुपयो का उचित और शीघ्र उपयोग हो सके। समिति ने अपनी ओर से भील-क्षेत्र मे कुछ कपडे, कुछ अन्न तथा कुओ की मरम्मत करने की व्यवस्था की है। जैसलमेर के शहरी हिस्से को छोडकर वाकी जगह सरकारी अफसर कदाचित ही जाते हैं। इसलिए वहा के लोगो के दु ख-दर्द को सुननेवाला कोई नही है। लाल जवार को छोड कर दूसरा अन्न नही मिलता और वह भी दूसरी जगहो की अपेक्षा महगा मिलता है। चारे की हालत वहा ठीक है, लेकिन पानी का यह हाल है कि बहुत जगहो पर दो या तीन दिन वाद गायो को पानी मिलता है। कही-कही तो गायो को पानी पीने के लिए १०-१२ मील तक जाना पडता है। समिति ने अपनी ओर से दो कुए और तालाब की मरम्मत की मजूरी दी है। समिति का विचार है कि वहा पर सस्ते अनाज की दुकानें खोली जाय। सरकार के साथ मिलकर समिति इस वात का पूरा प्रयत्न कर रही है कि राजस्थान मे सव जगह सरकारी अन्न की दुकानें खुल जाय।

पर समिति अपना सेवा-क्षेत्र और सेवा-कार्य अधिकाधिक वढाने मे तभी समर्थ हो सकेगी और समिति के कार्यकर्त्ताओ का उत्साह वढता रहेगा तथा लोगो के पास

सहायता पहुचती रहेगी, जबकि उसे जनता की ओर से पर्याप्त धन तथा अन्न-वस्त्र की सहायता मिले। धनी और समर्थ लोगो के लिए धन के सदुपयोग अथवा सात्विक दान का यह बडा सुन्दर अवसर है। समिति के कार्यकर्त्ताओ का यह सतत प्रयत्न रहेगा कि इस निधि के एक-एक पैसे का उपयोग अच्छे-से-अच्छे रूप मे हो।

इस सारी यात्रा मे कई शिक्षण-सस्थाए देखने का भी लाभ मिला। बहुत तरह के लोगो के सम्पर्क मे भी आना पडा और कुल मिला कर हमे बहुत सन्तोष रहा। सन्तोष का मानी यह नही कि मैं मानता होऊ कि राजस्थान-अकाल-सेवा समिति या मारवाडी रिलीफ सोसाइटी या और कोई भी सस्था या व्यक्ति इस तरह के अकाल मे कोई बहुत बडी राहत पहुचा सकेगा, क्योकि यह सम्भव ही नही है। राहत-कार्य करने वाला केवल अपना मन सन्तोष कर लेता है, वरना आजकी स्थिति मे जब तक कोई आमूल परिवर्तन नही होता, तब तक इस तरह के छुट-पुट सेवा-कार्यों से बहुत बडी सहायता क्या मिल सकती है? दरअसल प्रयत्न तो यह होना चाहिए कि न अकाल पडे, न महामारी फैले। सारे लोगो को धन्धा-रोजगार मिल सके और परिश्रमपूर्वक हर व्यक्ति अपनी रोजी अच्छी तरह उपार्जन कर सके। न किसी को मागने की जरूरत रहे, न देने की—'सर्वे भवन्तु सुखिन सर्वे सन्तु निरामया।'

('नया समाज', फरवरी, १९४९)

राजस्थान : संवत् २०२६ का अकाल

यो तो राजस्थान मे अकाल की शिकायत आये दिन ही रहती है लेकिन किसी-किसी वर्ष का अकाल इतना भयकर होता है कि उसकी कथा अनेक वर्षों तक चलती रहती है। इस तरह का अकाल एक तो विक्रम सवत् १९०० मे पडा था और दूसरा विक्रम सवत् १९५६ मे। पहले वाला सैये के अकाल और दूसरा छपनिया अकाल के नाम से प्रसिद्ध हुए और उनकी कथा आज भी कही-सुनी जाती है। मुझे इनके बारे मे दो पद याद आ रहे है। १९०१ का सवत् १९०० से पूछता है—

सैया रे सैया
चाकी चालै रै भैया
मानुप बोले रै भैया

अर्थात् १९०० के साल तू ने क्या किसी को जीवित छोडा है? दूसरी तुकबन्दी छपनिया के अकाल के बारे मे है —

छपन्या रै छपन्या वैरी!
ओजू मत आज्ये म्हारे देस वैरी।

छपनिये अकाल को देखने वाले अनेक लोग आज भी मौजूद है जो आखो-देखी घटनाओ का हृदयविदारक वर्णन करते है। सन् १९४३ मे बगाल मे जो अकाल की स्थिति लोगो ने देखी है करीब-करीब वैसी ही स्थिति सवत् १९५६ मे राजस्थान की थी। लोगो की जानकारी के लिये मैं यह लिखना चाहता हू कि राजस्थान की सवत् १९५६ की दयनीय स्थिति से द्रवित होकर स्वामी विवेकानन्दजी ने किशनगढ (अजमेर जिला) मे रह कर राहत कार्य किया था। एक बार उनके पास राहत-कार्य के लिए धन की कमी हुई तो उन्होने बेलूर स्थित अपने मठ की जमीन भी बेचनी चाही। उनके शिष्यो ने इस बात का जब हल्का-मीठा विरोध किया तो स्वामीजी ने यह कहा था कि मठ से मनुष्य बडा होता है। जमीन को बचाने से मनुष्य को बचाना अधिक आवश्यक है। जमीन का बैनामा सही करने को जब स्वामीजी कलकत्ता आये तो मैसूर महाराजा को, जो उन दिनो कलकत्ता आये थे, इस बात का पता लगा और उन्होंने स्वामीजी को ४० हजार रु० दिये तथा जमीन बेचने से रोक दिया।

हाल के वर्षो मे सवत् १९९६ मे राजस्थान मे छपनिये जैसा व्यापक और भयकर अकाल पडा था। उस अकाल मे राहत के कार्य के सिलसिले मे सारे राजस्थान मे घूमने का मेरा काम पडा था। जो दुर्दशा उस वक्त लोगो को मैंने देखी थी वह आज भी मेरे हृदय पटल पर ज्यो की त्यो अकित है। इस साल विक्रम सवत् २०२९ मे जो अकाल पडा है वह पिछले किसी अकाल से कम नहीं है। कई लोगों का तो कहना है कि राजस्थान के अमुक-अमुक स्थानो पर छपनिये से भी ज्यादा भयावह स्थिति है। २४ जिलो मे १८ जिले अभावग्रस्त घोपित हो चुके हैं। जोधपुर और बीकानेर के कुछ हिस्सो मे पानी का भी भयानक संकट है।

राजस्थान प्रदेश का प्राय' भाग इकसाखिया (एक फसलिया) है। बरसात अच्छी हो गई तो लोगो के पास खाने भर को हो गया नही तो विपत्ति मुह बाए सामने खडी रहती है। सिंचाई का प्रबन्ध बहुत कम भूमि मे है। जिस किसान के पास यथेष्ट भूमि है तथा सिंचाई का समुचित प्रबन्ध है, वह सुखी है। शेखावाटी और शेखावाटी से लगे गावो मे पानी गहरा होने के कारण बैल से की गयी खेती पोसाती नही क्योकि एक तो बैल के दाम अधिक है, दूसरे बैल को चराने मे खरचा भी बहुत आता है। बरसात की खेती भी आजकल तो बैलो की जगह ऊटो से ही होने लगी है। जिन लोगो का राजस्थान जाने का काम नही पडता उन्हे शायद इस बात की जानकारी भी नही होगी कि वहा पर बैल का स्थान धीरे-धीरे ऊट लेता जा रहा है।

जब भी अकाल पडता है सबसे पहले उसकी चपेट मे गाय आती है। ऊंट या बकरी या भैस आज तक अकाल से मरते नही सुने गये है क्योकि इसका कारण यही है कि गो-भक्त जनता ने आज तक गाय को अधिक उपयोगी बनाने की दिशा मे ठोस काम नही किया है। केवल भावुकता से गाय बचनी सम्भव नही। यह भी है कि मनुष्य जाति पर गाय के अनन्त उपकार है और इसलिये वेद मे इसे वदान्या कहा भी गया है, लेकिन आज के अर्थप्रधान युग मे गाय तभी जिन्दा रह सकेगी जबकि इसका आधार केवल भक्ति न होकर अर्थ शास्त्र भी हो। कोशिश यह होनी चाहिये कि गाय का दूध कैसे बढे—आज गाय जितनी बार बियाती है उससे अधिक बार बियाने लगे। जितने दिन गाय ठाल रहती है वह समय किस तरह कम हो आदि बातो पर वैज्ञानिक रूप से काम किया जाय तो गाय अपनी रक्षा स्वय कर लेगी। अभी दूध राजस्थान मे सस्ता है क्योकि गाव का जो आदमी अच्छा दूध अपने बच्चे को देता था और आधा कस्बे मे आकर बेचता था वह पूरा का पूरा कस्बे मे बेचना चाहता है। इस सस्तेपन पर दुख ही हो सकता है, सुख नही। केवल गो माता की जय बोलने और गोपाष्टमी के दिन उसके माथे पर तिलक लगाने से ही इस युग में गो-रक्षा होनी मुश्किल ही लगती है। हर हिन्दू जिनमे मैं अपने को भी शामिल करता हू, यह चाहेगा कि गाय की रक्षा हर हालत मे हो, लेकिन चाह के साथ-साथ वैज्ञानिक रीति से प्रयत्न हो तभी यह हो सकेगा। गाय दूध के लिए रखी जाती थी लेकिन राजस्थान के कई हिस्सो मे आज गाय का स्थान भैस और बकरी ले रही है।

अकाल के बारे मे मारवाड़ी समाज की यह प्रथा रही है कि जब-जब अकाल पडा है तब धनी लोगो ने अपने गाव में तथा अपने गाव के आसपास राहत-कार्य किया है। इस बार ऐसा देखने मे नही आ रहा है। न मालूम क्यो, बहुत ही कम लोगो के मन मे स्थिति के प्रति दर्द है। गाव के आदमी के पास किसी तरह का धन्धा नही है। पजाब, हरियाना आदि जगहो मे जाकर लोग जीविकोपार्जन करते थे लेकिन इस बार बिजली की कमी होने के कारण वहा के कई कारखाने बन्द हो गये हैं या कम चल रहे हैं सो जो लोग वहा गये थे उन्हे निराश होकर वापस लौटना पडा है। कस्बो मे या शहरो मे चेजे-भाटे (सडक बनाना, मकान बनाना) का काम नगण्य सा ही है सो लोग हाथ पर हाथ धरे बैठे है। जो लोग समर्थ है उन्हे चाहिए कि वे सही स्थिति की जानकारी करके अपनी सामर्थ्य के अनुसार राहत-कार्य आरभ करें। राहत-कार्य

करने वाले को राजस्थान सरकार से काफी सहयोग मिल सकता है। सरकार अपनी तरफ से करेगी तो सही पर कोई प्रामाणिक सस्था इस काम को जितना भी हाथ मे ले सके उतना ही उपयोग सरकार के रुपयो का भी सही-सही हो सकेगा क्योंकि सरकारी रुपये बीच मे बहुत नष्ट हो जाते है , जरूरतमन्द या पात्र के पास वे पहुच नही पाते। इस बात की आवश्यकता है कि छोटे-बडे सगठन वहा जाय, स्थानीय लोगो की मदद से राहत-कार्य करें।

अभी अकाल अपनी चरम विभीषिका पर पहुच रहा है, अगले तीन-चार महीने तो बहुत ही भयकर होगे। अभी तो थोडा अनाज कही-कही मिल रहा है पर यह भी खतम होने को आ रहा है। राहत-कार्य अकाल का स्थायी उपचार नही है। नारद ने युधिष्ठिर से पूछा था 'हे युधिष्ठिर, तुम्हारे राज्य मे खेती वर्षा पर तो निर्भर नही ?' युधिष्ठिर ने जवाब दिया था, 'मेरे राज्य मे खेती वर्षा पर निर्भर नही।' हमारे देश मे युधिष्ठिर के राज्य जैसी स्थिति आये तब अकाल नही पडेंगे लेकिन .....। राजस्थान मे आज राहत की तात्कालिक आवश्यकता के साथ-साथ इस बात की भी जरूरत है कि अधिक से अधिक सिंचाई के कुए बनाये जाय। बिना विद्युत सिंचाई के बैलो या ऊटो से यह काम पार पडने वाला नही है।

(चौरंगी वार्ता, ५ फरवरी १९७३)

नैनीताल

ये पक्तिया मैं अपने बिछौने मे पडा-पडा उस वक्त लिख रहा हूं, जबकि 'अरुण-शिखा-ध्वनि कान सुन, जागे राम सुजान' और 'चन्द्र-किरण शीतल भई, चकई पिय-मिलन गई' वाला उष. काल है। ऊपर आकाश मे चन्द्रमा की ज्योति फीकी पड चुकी है। तारा कोई-कोई ही टिमटिमा रहा है। सामने अनन्त पर्वत-राशि और वृक्षो की—जो शीत के कारण कुछ-कुछ मुरझाने लगे हैं—अटूट सुन्दर हरी कतार अपना सिर ऊचा किये खडी है। मन्द-मन्द पवन —जो हिमालय से आ रहा है और चल-अचल प्राणियो तथा वनस्पतियो मे प्राण-पुलक भर रहा है—के स्पर्श से ये झूम-झूमकर सगीतमय शब्द कर रहे है। दूसरा सगीत पक्षीगण अपने कलरव से पैदा कर रहे हैं।

कोठी का माली मेरे कमरे के ठीक नीचे गाय दुह रहा है, जिसका शब्द इतना कर्णप्रिय और मधुर है कि वह किसी भी सगीत से कम नही जान पडता। कोठी के नीचे बगीचे मे काले-काले मु ह वाले बीसियो बन्दर आ गए हैं और स्वच्छन्दता से वृक्षो के ऊपर कूद-कूद कर उधम मचा रहे हैं। ये अखरोट और दूसरी तरकारिया भी तोड-तोडकर खा रहे हैं। ये एक वृक्ष से दूसरे पर कितनी निर्भयता से कूद रहे हैं। ये कितने पुष्ट है, कितने निश्छल, सुखी, स्वतंत्र और निश्चिन्त! इन्हे न पाट बेचना है, न मोडल, और न इस बात की चिन्ता है कि कल क्या होगा? यह भी एक सगीत है और हमलोगो के लिये उपदेश भी कि—क्यो चिन्ता करते हो कि कल क्या होगा? नही, कल की ही नही, हम तो वर्षों बाद की भी—बल्कि पीढियो बाद की भी—चिन्ता करते हैं और फिर यह भी दावा करते हैं कि हम सब प्राणियो मे श्रेष्ठ हैं, क्योकि ईश्वर ने हमे ज्ञान दिया है। क्या हमे यही ज्ञान मिला है कि चिन्ता मे घुलें और पदार्थ-अपदार्थ सग्रह किए जाय? सुरसा के वदन की तरह मनुष्य के लोभ का तो कही अन्त ही नही।

नीचे पीलीभीत वालो की कोठी है। उसमे से ग्रामोफोन की आवाज आ रही है। वह भी एक सगीत है, लेकिन इस प्राकृतिक सगीत-सा उसमे माधुर्य और सौन्दर्य नही। हा, है वह भी एक संगीत और जो इन सगीतो से आनन्द न उठा सके, उसके लिए वह भी एक अच्छा सगीत है। जीवन मिलता है सगीत और काव्य से।

आजकल मौसम बहुत सुहावना है। दिन बहुत ही साफ, धूप तेज, हवा बहुत ठडी और सुखद है। खाने-पीने और रहने का सारा इन्तजाम अच्छा है। दूसरे पहाडी स्थानो से नैनीताल मे रहना सस्ता है। दो हजार रुपये मे साल भर के लिए अच्छी से अच्छी कोठी मिल जाती है। एक रुपये घटे मे नौका मिलती है जिस पर पाच-छ. आदमी खूब मजे से सैर कर सकते हैं। घोडो की दर भी दूसरी जगहो से सस्ती है और घोडे काफी अच्छे हैं। दूध चाहे जितना मिल जाता है। साग-सब्जी और फल हर तरह के मिलते हैं—और कलकत्ते से सस्ते। कपडा सब तरह का मिलता है। वह भी कलकत्ते से सस्ता है। सिलाई की दर भी बहुत कम है। असल मे जहा जितनी गरीबी है, मजदूरी की दर वहा उतनी ही कम है। यहा सफाई

बहुत है। म्युनिसिपैलिटी का इन्तजाम बहुत अच्छा है। बिना मिलावट का पहाडी घी चार-साढे-चार रुपये सेर मिल जाता है। खुरजे की तरफ का सरकारी छाप का घी सवा छह रु० सेर है। स्वास्थ्य के लिहाज से यह जगह मुझे बहुत पसन्द आई। फिर नैनीताल मे देखने की जगहे बहुत सी हैं और आसपास दूसरे शहर-कस्बे आदि भी बहुत हैं।

रेल से नैनीताल आने वाले को रायबरेली या काठगोदाम उतरना पडता है। यही अन्तिम स्टेशन है। कलकत्ते से आने वाला काठगोदाम उतरता है। उसे लखनऊ मे गाडी बदलनी पडती है। इस बीच उसे इतना समय मिल जाता है कि लखनऊ शहर मे देखने लायक प्राय सभी स्थान देख आवे। काठगोदाम से नैनीताल २२ मील है। सारा रास्ता साफ-सुथरा है। अलकतरे की पक्की अच्छी सुन्दर सडक है। कहते हैं पहाडो मे इतनी सुन्दर सडक बहुत कम जगह ही मिलती है। मोटर का किराया पूरी का २२) और बस का ३५) है। प्रति सीट १।।।=) बस वाला लेता है। और १ मन तक वजन प्रति आदमी साथ ला सकता है। इससे ज्यादा वजन हो तो किराया लगता है। पानी के लिए हर कोठी मे नल लगे हुए है, जिनसे चौबीसो घटे पानी मिलता है। बिजली भी है। पूरे शहर मे बिजली १९२२ मे लगी थी। यहा बिजली और पानी का इन्तजाम यहा की म्युनिसिपैलिटी के जिम्मे है। यहा पर म्युनिसिपैलिटी १८५४ से चल रही है और उसका इन्तजाम बहुत अच्छा है।

नैनीताल नैनादेवी या नन्दादेवी के नाम पर बसा हुआ है। यह समुद्र की सतह से करीब ६४०० फुट की ऊचाई पर है। मैं जिस कोठी मे रह रहा हू, वह करीब ५०० फुट और ऊची है। पहला मकान यहा १८४१ मे बना था। मैंने उस मकान को देखा है। वहा पर आजकल एक चतुर्वेदी, जो वन-विभाग के अफसर हैं, रह रहे हैं। ६० वर्ष के लगभग उम्र होगी उनकी। शरीर से लाल और तन्दुरुस्त हैं। पति, पत्नी और एक लडकी तीन ही प्राणी हैं घर मे। पत्नी एम०ए० है। लडकी एम०ए० मे पढ रही है। वे इतने खुशदिल और हसोड हैं कि जितनी देर आप उनके पास या उनके साथ बैठिए, उतनी देर वे ही बोलते हैं, आप तो बस सुने जाइये और हसे जाइये। पक्के शिकारी है। कई शेरो की खालें घर मे टाग रखी है। कहते थे कि इस मकान की जमीन बैरन साहब नामके एक अग्रेज ने दो रुपये मे—फकत दो रुपये मे—१८४१ मे खरीदी थी। बैरन को पैदल यात्रा करने का बडा शौक था। यहा पहुचने तक वह हिमालय के पहाडो मे करीब १५०० मील घूम चुका था। उसने लिखा है कि मेरी १५० मील की पैदल यात्रा मे इतना सुन्दर स्थान मैंने नही देखा—अल्मोडे से पैदल चलता हुआ कोसी नदी के इस पार पहाड के ऊपर जब वह पहुचा और उसे 'त्रिऋपिताल' दिखाई पडा, तो वह मुग्ध हो गया और उस जमीन को अपने तई खरीद लिया तथा इस यात्रा के सम्बन्ध मे 'अज्ञात यात्री' के नाम से एक लेख विलायत के कागजो मे छपवाया। साथ ही 'आगरा-अखबार' नामक पत्र के सम्पादक को इसकी सुन्दरता के बारे में एक लम्बा लेख भेजा। इधर उसने जंगल के बीच, जहा कोई मकान नही था, अपने लिए एक कोठी बनानी शुरू की, उधर लोगो का ध्यान उसके लेख पर गया, और दूसरे लोग भी जमीन खरीदने लगे। १८५७ के गदर मे जब

लोगों को नीचे रहने मे भय लगने लगा और ऊपर पहाडो मे सुरक्षा मालूम दी, तो उस वक्त यहा की जमीनें बहुत बिकी और बहुत से मकान भी बने। यो १८४१ मे शुरू होकर १८५७ तक यह ज्यादा जोरो से बसा। १८४१ के पहले भी हर साल दशहरे के अवसर पर यहा एक मेला लगता था और हजारो की तादाद मे लोग बाजा-गाजा लेकर इकट्ठे हुआ करते थे। यहा नैनादेवी और पाषाण देवी के दो प्रसिद्ध मन्दिर हैं, जिनमे से एक शहर बसने के पहले का है। वह स्थान जहा बैरन साहब ने अपनी कोठी बनाई थी, आज भी मौके के लिहाज से नैनीताल की अच्छी से अच्छी जगहो मे से एक है। उसने अपनी कोठी को 'यात्री का झोपडा' ही नाम दिया।

जिस ताल के किनारे और ऊपर पहाडो मे नैनीताल बसा हुआ है, उसे पौराणिक कथाओ मे 'त्रिऋषिताल' कहा गया है। कहते हैं अत्रि, पुलस्त्य और एक दूसरे ऋषि जब शिव के दर्शन करने को इस तरफ से कैलास जा रहे थे, तो सध्या करने का समय हो गया। पानी था नही, अत. यहा खोदकर उसी वक्त पानी पैदा किया। कैलास आज भी लोग जाते हैं, लेकिन क्या शिव के, मगल के, सौन्दर्य के दर्शन उस भाव से कर पाते हैं? 'अस मानस मानस चख चाही'—मानस वही है, लेकिन उसे समझने के लिए मानस-चक्षु चाहिए। कैलास मे शिव के दर्शन करने को भी वह नेत्र चाहिए, जो अत्रि आदि ऋषियो के थे। इस तरफ से बदरीनारायण भी बहुत लोग जाते है। वे रानीखेत से फट जाते है। कैलास-मानसरोवर जाने वाले कौसानी से इधर सोमेश्वर एक स्थान है, वहा से जाते हैं। पिण्डारी ग्लेशियर और नीलम ग्लेशियर भी बहुत सुन्दर स्थान है। जब कोई आदमी इस तरफ आता है, तो कैलास-मानसरोवर जाने की इच्छा जाग्रत होती है। त्रिऋषिताल की लम्बाई १५०० और चौडाई ५०० गज है। गहराई जहा ज्यादा से ज्यादा है, वहा ९३ फुट है।

स्वर्ग की झांकी

महान हिमालय के, जो हिन्दुस्तान का प्रहरी और रक्षक है तथा हिन्दुस्तान की शान है, बाहरी हिस्से कुमायू-पहाडी के बीचो-बीच नैनीताल शहर बसा हुआ है। उत्तराखण्ड की ये कुमायू-पहाडिया सौन्दर्य मे सानी नही रखती। यहां पहाड की कई चोटिया हैं, जिन पर जाने के लिए अच्छा रास्ता बना हुआ है। सबसे ऊची चोटी 'चीना पीक' है, जो ८६०० फुट ऊची है, यानी नैनीताल से २२०० फुट ऊंची। वहा से हिमालय और नैनीताल की सारी इमारतें दीख पड़ती हैं। जगह-जगह डाक बगले बने हुए है। 'स्नो व्यू' नाम की एक चोटी है। वहा का डाक बगला बहुत सुन्दर बना हुआ है। इन पहाडो मे कुदरत की महानता, मनुष्य के प्रति उसका असीम दान, सौन्दर्य और शान्ति खूब देखने को मिलती हैं। ईश्वर ने जिसे तनिक भी हृदय दिया है, वह इन पहाडो को देखते और इनमे रमते अघाता ही नही। पाण्डव सदेह स्वर्ग गए थे, ऐसी कथा है। उसमे भी कवि ने उनको हिमालय ही भेजा है। हिमालय मे ज्यो-ज्यो आगे बढते जाइए, त्यो-त्यो स्वर्ग ही आता जायगा। यह रूपक बहुत सही और सच्चा है। जब पाण्डवो को ससार से विरक्ति हुई तो वे शान्त, महान्, सुन्दर और असीम हिमालय मे चले गए।

मै घोडे पर सवार होकर 'लैण्ड्स-एण्ड' यानी धरती का नाका और उसके ऊपर टिफिन-टाप देखने गया। वहा से प्रायः सारा नैनीताल दिखता है। जगह सुन्दर है। भुवाली से घोडे के रास्ते ६-७ मील पर रामगढ है और दूसरी तरफ ६-७ मील भीमताल। भीमताल मे देखने की खास कोई चीज नही है। लेकिन भुवाली, रामगढ, रानीखेत, अल्मोडा, कौसानी आदि कई स्थान दर्शनीय है। चारो ओर हरियाली है। झरनो के शब्द अत्यन्त कर्णप्रिय है। शान्ति चारो ओर बिखरी पडी है। प्रकृति की अपनी जो शोभा है, उसकी बराबरी मनुष्य की कृत्रिम रचनाए थोडे ही कर सकती हैं? पुराने जमाने मे इन उत्तराखण्ड की पहाडियो मे सन्त, तपस्वी और भक्त-जन अपनी तपस्या, भक्ति और साधना के लिए आया करते थे। उसके बाद कवि और लेखकगण अपने गीतो के लिए प्रेरणा प्राप्त करने को यहा आने और रहने लगे। कविगण को अपनी रचनाओ के लिए जितना मसाला और प्रेरणा इन सौन्दर्य भरी हरी-भरी पहाडियों मे मिल सकते हैं, उतना अन्यत्र कही नही।

महगी तो सभी जगह है। गरीबी भी सभी जगह है। यहा भी काफी है। लेकिन काश्मीर मे मैंने जो गरीबी देखी थी, उतनी गरीबी यहा नही है। लोगो को खाने-पीने को ठीक से मिल जाता है। लोग जितने परिश्रमी है, उतने ही सच्चे और ईमानदार भी। सब काफी स्वस्थ हैं। फिर भी इन पहाडो मे गरीबी स्थायी चीज सी हो गई है। लेकिन अपनी इस नई सरकार मे तो इस तरह की भयकर गरीबी नही रह सकेगी। लोगो के सामने लिखने-पढने का साधन उपस्थित होगा। लोग लिखेंगे पढेंगे, समझेंगे। उन्हे ज्ञान प्राप्त होगा। फिर दूसरी तरफ उनकी आय भी बढेगी। इस तरह पाच-दस वर्षो मे उनकी माली हालत मे अवश्य फर्क पडेगा (लेख जनवरी, १९४९ मे प्रकाशित है स०)।

नैनीताल की सफाई देखकर तबीयत खुश हो गई, पर नगर को इतना साफ सुथरा और स्वास्थ्यप्रद रखने वालो की स्थिति जानकर खुशी नही हुई। यहा के मेहतरो को म्युनिसिपैलिटी से केवल तीस-एक, इकतीस रुपए महीना मिलता है। इसके अलावा कुछ भी नही। सुबह ६ बजे ड्यूटी पर आना पडता है इस कठिन शीत मे बिना चाय-पानी पिए। शहर को साफ रखनेवाले तथा सारे लोगो को स्वास्थ्य बख्शने वाले इन अभागे बहन-भाइयो की किसे चिन्ता है कि ये इतनी कम आय मे किस तरह गुजर कर पाते है? और फिर इनके रहने का स्थान कितना तग और अन्धकार-पूर्ण है? जिनके परिश्रम से सारे लोग स्वस्थ रहते हैं, उनके स्वास्थ्य और खान-पान की चिन्ता से हम लोग कितने उदासीन हैं? दूसरा दर्जा कुलियो या मजदूरो का है, जो हमारा बोझ ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर पहाडो मे ढोते हैं, सडक बनाते हैं, मकान चिनते है और डाडी (डोली) चलाते हैं। इन्हे 'डोटियाल' कहते है, क्योकि इनमें ज्यादातर लोग डोटी नामक स्थान से आते हैं, जो नेपाल और कुमायू की सरहद पर है। यहा के सारे मकान इन्होने बनाए, सडके इन्होने तैयार की, यही लोग गत एक सौ वर्षो से अपनी पीठ पर लाद कर दूर दूर के स्थानो से अन्न तथा साग-सब्जी हमें खिलाते रहे हैं और आज भी खिलाते है। बीमार या कमजोर कोई हुआ अथवा वृद्ध हुआ, तो उसे डोली मे बैठा कर सिर पर लादकर भी ले जाते है। यहा जितना

सुख और वैभव है, उस सारे की सृष्टि करने वाले यही है। फिर भी पेट मे पूरा अन्न नही, तन पर कपडा नही।

सृजन करने वाला, परिश्रम करनेवाला भूखा और नगा है, अपनी सृजन की हुई सारी वस्तुओ के उपभोग से वचित है। गाय-भैस रखता है पर बच्चो को दूध नही, डोली रखता है, तो सिर पर बोझा ढोने के लिए, मकान चिनता है लेकिन विना आज्ञा उसमे प्रवेश भी नही कर पाता और वह सूत कातता और विनता है लेकिन दूसरो के लिए। बिजली की रोशनी का सारा सरजाम इकट्ठा किया, विजली पैदा की और उसकी जगमगाहट से सारा नैनीताल तथा दूसरे शहर जगमग कर रहे हैं। लेकिन इन लोगो के रहने के स्थानो मे तो आज भी वह किरासन की डिबिया है और उसके लिए भी राशन की मेहरबानी से पूरा किरासन तेल कहा मिल पाता है। दूसरी तरफ थोडे से परोपजीवी लोग, जिन्होने अपना एक गुट बना कर सारी पृथ्वी पर अपना मायाजाल बिछा लिया है, सारे पदार्थो का उपभोग कर रहे है। हमलोग इसी श्रेणी के है, जिन्हें शारीरिक परिश्रम बिल्कुल नही करना पडता और फिर भी सारी सुख-सुविधाओ का उपभोग करते है।

(नया समाज जनवरी १९४९)

गांधीजी के व्यक्तित्व के कुछ पहलू

गांधीजी जितने गम्भीर थे उतने ही विनोदी भी थे। अस्पृश्यता निवारण के सिलसिले मे जब वह उडीसा की पैदल यात्रा कर रहे थे तब दो दिन उनके साथ रहने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ था। सायकाल की प्रार्थना-सभा मे आये हुए दर्शनार्थी और श्रोतागण मे से बहुत लोग अपनी ओर से कुछ-न-कुछ भेट (नगद या वस्तु के रूप मे) गाधीजी को दिया करते थे और उन सब वस्तुओ को प्रार्थना-प्रवचन के बाद गाधीजी नीलाम कर दिया करते थे। कटक मे एक कुम्हार ने बालगोपाल (कृष्ण) की एक छोटी-सी मूर्ति भेट मे दी। सारी वस्तुए नीलाम होने लगी तो उस बेचारे कृष्ण की भी बारी आ गई। गाधीजी ने मूर्ति को उठाया और बोले, "अब तुम्हारी बारी है।" मैंने हसकर कहा, "बापू, आपने तो कृष्ण को भी नीलाम पर चढाने से नही बख्शा।" इस पर गाधीजी खूब हसे और बोले, "अरे, तुम जानते नही। यह तो सदा ही नीलाम होता रहा है। कोई नीलाम करनेवाला और खरीदनेवाला होना चाहिए। तुमने मीरा का वह पद नहीं सुना क्या—"माई, मैंने गोविन्द लीनू मोल, कोई कहे सस्तु कोई कहे महगू, लीनू तराजू तोल।" जहा तक मुझे याद है, उस दिन नीलाम की हुई वस्तुओ मे, जिनमे चादी का कुछ सामान था, सबसे अधिक कीमत उस मूर्ति की ही आई थी।

गाधीजी मे आत्मीयता भी अत्यधिक थी। मेरा बडा लडका कई दिनो से पेट की बीमारी से पीडित था। मैं उसे लेकर गाधीजी के पास गया। कुशल-मगल पूछने के बाद लडके की तरफ देखकर वह बोले, "यह बीमार-जैसा क्यो दीखता है?" मैंने कहा, "इसे अलसर की बीमारी हो रही है। दो-तीन वर्ष हो गये। अच्छे-से-अच्छे एलोपैथिक डाक्टरो का इलाज करा लिया, लेकिन लाभ नही हो रहा है।" गाधीजी ने तुरन्त कहा, "इस छोटी-सी बीमारी को जो लोग दो-तीन वर्ष तक ठीक नही कर पाते वे क्या डाक्टरी करेंगे। इस चक्कर को छोडो और लडके को मेरे हवाले करो। मैं इसका इलाज करूंगा।" उनके इस कथन मे आत्मीयता भरी थी, साथ ही इस बात की झलक भी मिलती है कि उनका प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धति के प्रति कितना गहरा विश्वास था।

गाधीजी ने अपनी उम्र मे स्वाधीनता आन्दोलन, अस्पृश्यता निवारण तथा अन्य प्रवृत्तियो के लिए जितना पैसा लोगो से मागा और एकत्र किया उतना दूसरे किसी नेता ने नही किया है। एक बार की बात है, गाधीजी सोदपुर मे ठहरे हुए थे। मेरे कुटुम्ब की कुछ महिलाए उनके दर्शन करने गई। प्रणाम करके जो कुछ रुपये-पैसे ले गयी थी वे उनके चरणो मे रखे तो गाधीजी ने कहा: "बस इतना ही।" भाई सीतारामजी सेकसरिया वहा बैठे थे। वह बोले, "बापू, देखिये तो सही, इतने रुपये कम है क्या? आपका तो पेट भरता ही नही।" गाधीजी ने गम्भीर होकर कहा, "तुम ठीक कहते हो, मेरा पेट नही भरता। लेकिन तुम्ही बताओ वह भरे भी कैसे? मेरा पेट तो हिन्दुस्तान का पेट है।"

गाधीजी हर व्यक्ति से इस बात की अपेक्षा रखते थे कि वह अपने समय मे से कुछ-न-कुछ समय ईमानदारीपूर्वक सार्वजनिक हित के काम मे लगायेगा। एक बार सोदपुर मे मै उनके पास बैठा हुआ था। एक सम्भ्रान्त घराने की कुछ महिलाए उनके दर्शनो के लिए आई। प्रणाम करके और भेट रखके जब वे अपना परिचय दिये बिना ही लौटने लगी तो प० नेकीरामजी शर्मा ने, जो कि वहा बैठे थे, यह उचित समझा कि उनका परिचय करा दिया जाय, क्योकि जिस कुटुम्ब की वे महिलाए थी, वह गाधीजी के निकट परिचितो मे था। अत प० नेकीरामजी ने कहा, "बापू, आप शायद पहचानते नही, ये महिलाए अमुक घर की है।" गाधीजी ने एक क्षण उनकी ओर देखा, फिर तुरन्त बोले, "अरे, आप क्या जान-पहचान कराते हो। बाहर निकलेगी, भूल जाऊंगा, क्योकि कुछ काम (याने सार्वजनिक सेवा का काम) तो ये करती नही है, कैसे याद रहेगी। जो लोग कुछ करते रहते है, उनको तो, मैं यहा आता हू तब, स्वयं याद करके भी बुला लेता हू।"

गाधीजी के जीवन मे स्वतन्त्रता की लडाई लडते हुए तथा अस्पृश्यता और अन्य सामाजिक बुराइयो के विरुद्ध सघर्ष करते हुए कई उतार-चढाव आये, लेकिन स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद देश की हालत देखकर उन्हे जितनी निराशा हुई और वह जितने व्यथित हुए, उतने उसके पहले शायद ही कभी हुए हो। एक बार तो उन्होंने यहां तक कहा, "स्वराज्य क्या आया, बला आई है।" ऐसा कहते हुए उनके चेहरे पर जो नैराश्य और व्यथा के भाव थे और जैसी उनकी मुख-मुद्रा थी, वह मुझे आज भी ज्यो-की-त्यो याद है। यह बात उन दिनो की है, जब गाधीजी ने कलकत्ता मे साम्प्रदायिकता के विरुद्ध उपवास किया था।

(गांधी : व्यक्तित्व, विचार और प्रभाव ;
सस्ता साहित्य मण्डल, १९६६)

'ताल भंग क्यों खाय'

नट एक जन-जाति का नाम है। ये लोग कही पर भी घर बाधकर नही रहते। घुमक्कड होते है। एक से दूसरे गाव, कस्बा और शहर मे घूमते हुए अपना खेल दिखाकर जीविकोपार्जन किया करते है।

आजकल सर्कस मे जिस तरह के खेल दिखाये जाते है, कुछ-कुछ उसी तरह के खेल नट-जाति के लोग दिखाते है। साधनो का सर्वथा अभाव होने के बावजूद ये लोग बाज-बाज खेल ऐसा दिखा जाते है कि देखनेवाले दातो-तले अगुली दबा लें।

आर्थिक दृष्टि से इस जाति के लोग बहुत कमजोर होते है। इसलिए इनके लिए कहावत है :

"कद नटणी बास चढे, कद भोजन पावै।"

यानी कल के खाने को भी इनके पास कुछ नही होता। नित्य कमाते है, नित्य खाते हैं।

नटो सम्बन्धी एक कहानी सुन लीजिये।

एक था नट, एक थी नटी। उनके एक लडका था। उस लडके से वे लोग 'जमूरे' का काम लेते थे। दोनो नट-नटी अपने काम मे बहुत ही दक्ष थे। यह 'जमूरा' भी उनका अच्छा सहायक था। जहा भी ये लोग जाते, इनके खेल की अच्छी सराहना हुआ करती। खेल समाप्त होने पर नटणी बास पर चढ कर जब पैसा मागती तब वह अक्सर यह मार्मिक दोहा कहा करती :

"बांस चढी नटणी कहै, हुयो न नटज्यो कोय।
मैं नटकर नटणी हुई, नटै सो नटणी होय॥"

एक बार ये लोग एक ऐसे कस्बे मे पहुचे जहा का राजा निहायत कजूस था, इतना कजूस कि दहेज देने के डर से उसने अपनी लडकी का विवाह भी नही किया था। उस राजा के नगर मे जाकर इस नट-दम्पति ने अपना खेल दिखाना शुरू किया। लोगो को इनका खेल इतना पसन्द आया कि वह एक मोहल्ले से दूसरे मोहल्ले मे और दूसरे मोहल्ले से तीसरे मोहल्ले मे, इस तरह कई दिन तक चलता रहा। लोगो ने जाकर राजा के सामने इनके खेल की तारीफ की और कहा, "महाराज, एक दफे इनका खेल आपके यहा भी होना चाहिए।"

चू कि राजा कंजूस था, इसलिए टालता रहा, लेकिन जब लोग बहुत ही पीछे पड गये तो आखिर एक दिन उसने स्वीकृति दे दी।

नट-नटी ने पूरे जोश-खरोश के साथ अपनी आत्मा उडेलकर खेल दिखाना आरम्भ किया। सारे लोग "वाह्-वाह्" कर उठे। राजा को भी खेल पसन्द आया लेकिन वह तो गुमसुम बैठा रहा, एक शब्द भी बोला नही, क्योकि उसके मन मे यह डर

था कि अगर वह खेल की सराहना कर देता है तो उसे नट को कुछ-न-कुछ देना पडेगा।'

इन लोगो को खेल दिखाते काफी देर हो गयी और नटणी थकने लगी तो उसने इशारे से अपने पति को कहा :

"रात घडी भर रह गयी, पिंजर थाक्या आय।
यो राजा रीझै नही, मधरी ताल बजाय॥"

यानी, सारी रात बीत गयी है, मेरा शरीर थककर चूर हो गया है, तुम कितने ही करतब दिखाओ, यह राजा रीझने वाला नही है, व्यर्थ ही इतनी नाच-कूद क्यो करते हो, जरा ताल धीमी करो।

उत्तर मे नट ने कहा .

"बहुत गयी थोडी रही, थोडी भी अब जाय।
नट कहै सुण नट्टणी, ताल भग क्यो खाय॥"

यानी, जीवन का अधिकाश भाग तो बीत चुका है अब थोडा-सा बाकी रहा है। इतने से के लिए ताल भग क्यो पडे ?

नट का इतना कहना था कि राजकुमारी ने अपने गले का हार उतार कर नट की तरफ फेंक दिया। दूसरे ही क्षण वहा बैठे हुए एक साधु ने भी अपना एकमात्र कम्बल नट को दे डाला। फिर राजकुमार ही क्यो पीछे रहनेवाला था। उसने भी अपना दुशाला उतार कर नट को दे दिया।

राजा को बहुत ही विस्मय हुआ, किन्तु खेल चल रहा था, इसलिए किसी से कुछ बोला नही। खेल समाप्त होते ही उसने राजकुमारी से पूछा, "बेटी, ऐसी क्या बात हुई कि तूने अपना बहुमूल्य हार इस नट को दे डाला ?

राजकुमारी ने कहा, "मेरा कुसूर आप माफ करने का वचन दें, तो मैं बताऊ।"

राजा के अभय वचन देने पर राजकुमारी बोली, "आप अपने सूजी स्वभाव के कारण मेरा विवाह नही कर रहे हैं। मैं बहुत दिन तो सयम करके रही, लेकिन आखिर जब यौवन रूपी उलझा हुआ समुद्र डाटे नही डटा, तो बाध्य होकर मैने दीवान के पुत्र के साथ प्रेम-सम्बन्ध कर लिया। और अपनी योजना के अनुसार कल इस घर से सारे जेवरात और जो कुछ धन हाथ लगे, उसे लेकर दीवान-पुत्र के साथ भागना चाह रही थी। इस नट ने जब कहा, "बहुत गयी, थोडी रही, थोडी भी अब जाय, नट्ट कहे सुण नट्टणी, ताल भग क्यो खाय", तो मेरी आखे खुल गई और मैंने सोचा कि जब इतने बरस निकाल दिये है तो अब कुछ वर्ष और सही। थोडे-से वर्षों के लिए ताल भग क्यो खाय, यानी जीवन का क्रम क्यो बिगडे! यह सोचकर मैंने अपनी योजना तो ढहा दी और इस नट को अपना गुरु मान कर गुरु-दक्षिणा के रूप मे अपना हार उसे दे डाला।

राजा ने साधु से पूछा, "महाराज, आपके पास तो यह एक ही कम्बल था। वह भी आपने इस नट को दे डाला। इसका क्या कारण है ?"

साधु ने कहा, "राजन्, साधु का त्यागमय जीवन बिताते-बिताते मेरे मन मे

इस जीवन के प्रति उपरामता आ गयी थी। दूसरो को सुख भोगते देख कर मेरे मन मे भी सुख भोगने की लालसा बलवती हो उठी थी। अत इस नट के वचन ने राजकुमारी के मन पर जो असर डाला, वही मेरे मन पर भी डाला।"

- फिर राजकुमार से पूछने पर उसने कहा, "महाराज, आपके मू जी स्वभाव के कारण मैं न तो किसी को कुछ दे सकता हू, न कही सैर-सपाटे के लिए जा पाता हू और न किसी दूसरे प्रकार का सुख भोग सकता हू। अत मेरे मन मे आपको मारकर राजगद्दी पर बैठने का लालच हो गया था। इस नट के वचन ने मेरी आखें खोल दी। मैंने भी इसे गुरु-दक्षिणा के रूप मे ही अपनी शाल उतारकर दी है।"

इतना सुनते ही राजा को अपने जीवन के प्रति बहुत ग्लानि हुई। दूसरे ही दिन उसने राजकुमारी का विवाह दीवान-पुत्र के साथ बडी धूमधाम से कर दिया और राज्य अपने पुत्र को सौप कर स्वय भजन-स्मरण मे लग गया।

(बहता पानी निर्मला, तृतीय सस्करण ; पृष्ठ २०५-२०८)

सूम और बैतरणी

एक आदमी के पास पैसा तो ठीक-ठाक था, लेकिन वह कंजूस इतना था कि भाड़ा दिये बिना काया चले तो भोजन भी नहीं करे। उसकी पत्नी अपने पति के मूंजी स्वभाव के कारण बहुत दुःखी रहा करती। बार-बार अपने पति को समझाने की चेष्टा भी करती और कहा करती, "कुछ तो लोक-लाज की बात भी सोचो, आंख खोल कर देखो और कान खोलकर सुनो, तो तुम्हें पता चले कि लोग तुम्हारी कितनी निन्दा करते हैं। कभी तो परलोक की बात भी सोचा करो कि भगवान के घर जाकर क्या उत्तर दोगे।"

लेकिन चिकने घड़े पर पानी की बून्द टिके तो उस कंजूस को अपनी पत्नी की बात लगे। पत्नी बेचारी दिन भर घुटी-घुटी रहती। न कभी मन्दिर जाती और न गंगा-स्नान के लिए ही, क्योंकि मन्दिर जाय तो छटांक आधी छटाक अनाज ठाकुरजी के सामने चढ़ाना पड़े, और गंगा-स्नान के लिए जाय तो पैसा-अधेला 'घाटिया' (गंगा स्नानार्थं घाट पर जाने वाले लोगों के चन्दन लगाने वाला ब्राह्मण) को देना पड़े, जबकि डर यह था कि ऐसा करने से पतिदेव रुष्ट हो जायेंगे। अतः वह बेचारी चुपचाप उदास मुंह किये घर में पड़ी रहती। घर का धंधा जैसा कुछ होता—जैसे पानी लाना, भोजन पकाना, बरतन मांजना आदि—मन मारकर करती रहती।

उस बनिये के बारे में, उसकी कंजूसी के कारण, लोग यह कहने लग गये थे कि प्रातःकाल इसके दर्शन हो जाय, तो दिन-भर खाने को नहीं मिले।

दिन बीतते गये और बनिया बूढ़ा हो गया, लेकिन उसकी वृत्ति में रत्ती-भर भी फरक नहीं पड़ा। एक दिन उसकी पत्नी ने फिर हिम्मत बटोरकर कहा, "देखिये, आपको भी बुढ़ापा आ गया है और मुझे भी। जीवन-भर अपन लोगों ने किसी को एक लोटा पानी भी नहीं पिलाया। अब अन्त समय में एक बात मेरी मान लीजिये। मैं आपसे और कुछ भी नहीं चाहती, केवल इतना ही चाहती हूं कि आप अपने हाथ से एक गाय किसी ब्राह्मण को दे दीजिये, जिससे सुखपूर्वक बैतरणी तो पार हो सकें।"

बनिये ने कहा, 'मैं तो 'द' अक्षर से ही डरता हूं। मुंह से यह अक्षर निकल न जाय, इसलिए दिल्ली को हस्तिनापुर और दुकान को हाट कहता हूं।"

तब बनियानी ने अपने पति को एक कहानी सुनाते हुए कहा, "एक बार मनुष्य, देवता और राक्षस तीनों मिलकर ब्रह्माजी के पास गये थे और उनसे कहा था कि आप अपनी रुचि के अनुसार हमें कुछ दीजिये। ब्रह्माजी ने तीनों को ही 'द' अक्षर दिया था।

उस 'द' अक्षर का अर्थ देवों ने यह निकाला कि अपन लोग विलासी बहुत हैं इसलिए ब्रह्माजी ने अपन को 'द' अक्षर के द्वारा दमन, यानी इन्द्रिय-दमन, की शिक्षा दी है। राक्षसों ने यह अर्थ निकाला कि अपन लोग हिंसा बहुत करते हैं, इसलिए 'द' अक्षर द्वारा अपन को दया की शिक्षा दी है और मनुष्य ने 'द' का अर्थ निकाला दान, यानी देना। तीनों का ही अर्थ ठीक था।"

सूम की पत्नी ने आगे फिर कहा, "आपको मालूम होना चाहिए कि जो आदमी केवल सग्रह करता है कभी किसी को कुछ देता नही, उसे हमारे शास्त्रकारो ने दस्यु की सज्ञा दी है।"

मू जी ने कहा, "मैं ये सब बातें नही सुनना चाहता। तुम अपना दान अपने पास रखो।"

बनियानी बेचारी क्या करती। वह तो जार-जार रोने लगी। उसके आसुओ से उस मू जी के पैर भीग गये, लेकिन कलेजा नही पसीजा। आखिर कलेजा पावो मे तो था नही, वह तो अपनी जगह पर था, अत पावों पर पड़े आसुओ से कलेजा पसीजता भी तो कैसे पसीजता ?

रो-धोकर बनियानी तो अपने धन्धे मे लग गई और बनिया चला गया अपनी हाट पर।

कुछ दिन और यो ही गुडक गये। दोनो की ही मृत्यु नजदीक आ गई। बनियानी ने एक तरकीब सोची। उसके पास सोने की दो चूडिया थी। अपने पति से लुक-छिपकर उसने एक सुनार को बुलाया और बोली कि इसकी एक छोटी-सी गाय बनाकर ला दो। सुनार गाय बनाकर लाया तो उसने उसके ऊपर खूब मोटी-मोटी मिट्टी थपेड दी और उसे मिट्टी की गाय का रूप दे दिया। उसके बाद वह पडोस मे ही रहनेवाले एक ब्राह्मण को बुलाकर एकान्त मे बोली, "मेरा पति तुम्हे एक गाय देगा। वह यो तो ऊपर से मिट्टी की है, लेकिन उसके भीतर छोटी-सी एक सोने की गाय निकलेगी, अत तुम उस गाय का दान स्वीकार कर लेना।"

ब्राह्मण को उसकी बात का विश्वास हो गया और वह मान गया।

कुछ दिन बीच देकर बनियानी ने पति से कहा, "मैंने एक युक्ति विचारी है, जिसमे आपका एक अधेला तो खर्च नही होगा और मुझे सन्तोष हो जायगा। मैं अपने हाथ से मिट्टी की एक गाय तैयार कर देती हू, उसे आप किसी ब्राह्मण को दे दीजिये।"

बनिये ने कहा, "भला मिट्टी की गाय कोई दान मे क्यो लेने लगा।"

पत्नी ने कहा, "यह काम मेरे जिम्मे रहा, मैं किसी-न-किसी को राजी कर लूगी।" इस पर बनिये ने अनिच्छापूर्वक स्वीकृति दे दी।

दो-चार दिन बीतने पर बनियानी ने अपनी वह मिट्टी थपेडी हुई सोने की गाय आगन मे लाकर खडी कर दी और उस ब्राह्मण को बुलाकर अपने पति से बोली कि इन्हे आप यह गाय दान कर दीजिये।

बनिये ने कहा, "तुम मेरी उमर-भर की सौगन्ध तुडा रही हो, लेकिन खैर, तुम्हारी बात ही रही सही।" ऐसा कहकर उसने वह गाय ब्राह्मण को दान मे दे दी। फिर भी बनिये के मन मे कुछ संशय रहा कि इसमे कुछ रहस्य तो नही है, अत. उसने ब्राह्मण से पूछा, "महाराज, आपने मिट्टी की गाय लेना स्वीकार क्यो किया। यह आपके क्या काम आयेगी ?"

ब्राह्मण ने कहा, "जजमान, जो मीठा खाता है, वही खट्टा भी खाता है। असली गाय जब हम लोगों को मिलती है तो एक बार मिट्टी की गाय लेने का काम पड़ गया तो इसको लेने दूसरा कौन आयेगा ? दान लेना-देना तो ब्राह्मण का धर्म है।

ब्राह्मण की यह बात सुन कर वनिये को यह विश्वास तो हो गया कि रहस्य कुछ भी नही है, फिर भी उसके मन मे यह कसक वनी रही कि अपनी न देने की सौगन्ध टूट गई।

ब्राह्मण उस गाय को लेकर अपने घर चला गया। वनिये ने अपनी पत्नी से पूछा, "क्यो, अव तो खुश हो न ?"

वनियानी थोडी मुलकी और वनिया मन मे कसक लिये अपनी हाट पर चला गया।

घर जाकर ब्राह्मण ने मिट्टी धोई तो सचमुच ही भीतर से सोने की छोटी-सी गाय निकली, जिसे पाकर वह सन्तुष्ट हो गया।

नियति के नियमानुसार हर व्यक्ति की मृत्यु एक-न-एक दिन होती है। उस वनिये को भी एक दिन मृत्यु ने आ दवोचा। वह मरकर वैतरणी पर पहुचा तो एक मिट्टी की गाय उसके सामने खडी थी। वनिये ने वैतरणी पार करने के लिए गाय की पूछ पकडी। गाय वढी, लेकिन थोडी ही दूर जाने पर मिट्टी तो सारी गल-गलकर उतर गई और उसे सोने की गाय दिखाई पडी। देखते ही वनिये के तो होश उड गये। पागल की तरह अपनी पत्नी को गालिया देने लगा। दोनो हाथ ऊचे करके चिल्लाता हुआ वोला, "हाय, कुलच्छिनी ने दगा करके मुझे डुवो दिया, मेरा सारा घर लुटा दिया !"

ऐसा कह कर वनिये ने जव अपने हाथ नीचे किये, तव तक वह गाय कुछ आगे निकल चुकी थी। अव वनिये का हाथ गाय की पूछ तक नही पहुच सकता था, अत. वह वहां-का-वहा ही खडा रह गया। अव वह सारी वस्तु-स्थिति समझ गया और लगा पछताने। लेकिन अव पछताने से क्या हो सकता था।

उस दिन से आज तक वह वनिया वैतरणी के वीच मे खडा है और खडा-खडा पार जानेवाले दूसरे लोगो को अपनी दु ख-गाथा सुनाता रहता है।

इस कहानी के पाठको मे से अगर किसी को उस वनिये पर दया आ जाय और वह अपने जीवन मे एक की जगह दो गाए ब्राह्मण को दे दे और वैतरणी पार करते समय एक गाय की पूछ उस वनिए को थमा दे, तो वेचारा वह भी पार हो सकता है, नही तो पता नही, कव तक वह खडा-खडा वैतरणी पार करने वाले दूसरे लोगो से अपनी दु ख-गाथा कहता रहेगा और साथ ही 'द' अक्षर की महिमा और माहात्म्य का भी वखान करता रहेगा—जिस 'द' अक्षर से वह जीवन भर इतना कतराता, डरता और वचता रहा था।

(वहता पानी निर्मला, तृतीय संस्करण ; पृष्ठ ११०-११४)

"जीत्या-जीत्या जी म्हारा टोडरमल बीर"

सोलहवी शताब्दी के अन्तिम चरण की बात है। दिल्ली के निकट किसी नगर मे एक सेठ रहता था। वह जितना धनी था, उतना ही उदार भी। उसकी ओर से अनेक स्थानो पर मन्दिर, धर्मशालाए, औषधालय और पाठशालाए तथा अन्य सार्वजनिक सस्थाए बनायी गई थी और सचालित थी। ये सस्थाए लोगो को लाभ पहुचाती हुई सेठ का यशोगान किया करती। आतिथ्यप्रिय वह इतना था कि कोई भी यात्री उसके नगर से गुजरता हुआ वहा विश्राम करना चाहता, तो उसकी हवेली सदा-सर्वदा सबके लिए समान रूप से खुली मिलती। आये हुए मेहमान की खातिरदारी सेठ और उसकी पत्नी दोनो ही बहुत आदर और स्नेह के साथ करते। "अतिथिदेवो भव" का सिद्धान्त उन लोगो ने अपने जीवन मे पूरा-पूरा उतार रखा था।

धन घिरती-फिरती छाया है। लक्ष्मी किसी के घर पीढा डालकर, जमकर आजतक बैठी नही। सात तालो के भीतर बन्द करने पर भी वह तो, अपनी इच्छा होती है तब, चली ही जाती है। आने और जाने मे सुपात्र-कुपात्र का विचार भी वह नही करती। हा सरस्वती के वरद पुत्रो और उपासको के यहा जाना तो वह क्वचित् ही पसन्द करती है। लक्ष्मी और सरस्वती का आमतौर पर ३६ का योग माना जाता है। कहते हैं, लक्ष्मी के इतने चचल और अधीर स्वभाव तथा सरस्वती के साथ द्वेष रखने के कारण ही विष्णु भगवान दुखी होकर क्षीरसागर मे जाकर आखे मूदकर शेष-शय्या पर सोये रहते हैं। लक्ष्मी उन्हे मनाने के लिए उनके पाव दबाया करती है, लेकिन विष्णु भगवान राजी नही होते, क्योकि लक्ष्मी अपना स्वभाव छोडने को तैयार नही। हवा की तरह उन्मुक्त रहकर विचरण करने वाली लक्ष्मी, आज यहा तो कल वहा इस तरह घूमती ही रहती है।

जो हो, होते-करते एक दिन ऐसा आया कि उस सेठ के घर से भी लक्ष्मी अकारण ही रूठकर चली गई। लक्ष्मी के चले जाने से सेठ को बहुत सदमा पहुचा। खासकर इसलिए कि अब वह याचको को सतुष्ट नही कर सकेगा तथा अतिथियो की खातिरदारी भी उतनी अच्छी तरह नही कर सकेगा।

थोडे ही दिनो बाद सेठ का स्वर्गवास हो गया। रह गई उसकी पत्नी, एक कुआरा लडका और सेठ की सुखद स्मृति तथा उसका अमिट यश।

जिन दिनो सेठ पर लक्ष्मी की कृपा थी, उन दिनो उसके लडके की सगाई पडौस के ही एक कस्बे मे अपनी बराबरी की हैसियत वाले दूसरे सेठ की लडकी के साथ हो चुकी थी। अब, जबकि वर-पक्ष का घर धनहीन हो गया तथा घर के मालिक का स्वर्गवास हो गया, तो कन्या के पिता के मन मे यह पाप समाया कि किसी तरह इस सम्बन्ध को तोडकर लडकी दूसरे घर "परणानी"[1] चाहिए। लेकिन उसके सामने समस्या यह आई कि बिना किसी खास कारण के या बिना कोई झूठा-सच्चा बहाना

---

१. विवाह करना।

बनाये, सगाई छोड़ी जाय, तो कैसे छोड़ी जाय। उन दिनों किसी कुटुम्ब का धनहीन होना तो सगाई छोडने के लिए यथेष्ट कारण नही माना जाता था।

अत: उस सेठ ने सगाई छोडने के लिए कोई-न-कोई बहाना ढूंढना, कोई-न-कोई युक्ति विचारना शुरू किया। "जहां चाह, वहां राह" के अनुसार विचारते-विचारते एक युक्ति सूझी और उसके अनुसार सेठ ने एक "बीदडी"[2] बाजरे के दानो से भरकर "कासिद"[3] के साथ अपनी समधिन के यहा भेजी और साथ मे एक पत्र भी।

कासिद ने बीदडी और पत्र ले जाकर हमारी पूर्व-परिचित सेठानी के हाथ में दिये। उसने जब पत्र खोलकर पढा तो वह "सूनी-सी" हो गई। उसे ऐसा ज्ञात पडा मानो जमीन उसके पैरो के नीचे से खिसक रही है।

उस पत्र मे लिखा था, "हमने "सावा" निकलवा लिया है। बसन्त-पंचमी का सावा बहुत श्रेष्ठ बनता है। आप भी अपने पंडित से पूछ लें और वह सहमत हो तो आप लोग उस दिन बारात लेकर आ जाय, लेकिन इस बीदडी में बाजरे के जितने दाने हैं उतने आदमी बारात में आने चाहिए, अगर इससे कम हुए तो अपने दोनो घरो की ही शोभा नही रहेगी। विवाह के सारे काम दोनों पक्षों की प्रतिष्ठा के अनुरूप होने चाहिए।"

पत्र पढ कर सेठानी ने सोच लिया कि यह भी दिनमान की बात है। "दिन करै सो वैरी कोनी करै।"[4] "पतला दिन आवै जद तन का कपडा भी वैरी होज्या[5]। चूंकि मालिक का शरीर रहा नहीं तथा अपने पास पैसा भी रहा नहीं, इसलिए समधी बहाना बनाकर सगाई छोडना चाहता है। खैर, कोई बात नहीं, जो होना होगा सो हो जायगा।

उसने कासिद से कह दिया कि कल सुबह तुम्हें उत्तर लिखकर दे दूंगी, आज तुम यहीं विश्राम कर लो।

सयोग की बात है कि उसी दिन राजा टोडरमल उस नगर मे गुजर रहे थे। वर्षा अधिक होने के कारण उन्हें रात-भर वही ठहरना पडा। चूंकि यह सेठानी धनहीन होने पर अतिथि-सत्कार की परम्परा पहले की भांति ही निभाये जा रही थी अत. टोडरमल भी उसीके अतिथि हुए। यद्यपि सेठानी को इस बात का पता नहीं था कि यह टोडरमल हैं फिर भी उसने अपने सहज स्वभाव जैसी खातिरदारी की, उससे वह बहुत प्रभावित हुए। रात-भर उन्होंने वहीं विश्राम किया।

रात बीती प्रात:काल हुआ, चिडिया चहकी और प्रकृति ने गाया—"उठ जाग मुसाफिर, भोर भई, अब रैन कहा जो सोवत है।" टोडरमल अपने बिस्तर से उठे, हाथ-मुंह धोकर अगली मंजिल पर रवाना होने से पहले सेठानी से विदा मांगने और आभार जताने हवेली के भीतर गये।

---

2. हरकारे हाथ भेजा जाने वाला छोटा पार्सल।
3. हरकारा।
4. बुरे दिन शत्रु से भी अधिक दुखदायी होते हैं।
5. जब बुरे दिन आते हैं तब तन के कपडे भी दुश्मन जैसा काम करते हैं।

सेठानी ने उसी दिन समधी के यहा से आये हुए कासिद को अपना पत्र और राई के दानो की बीदडी देकर फिरती भेज दिया।

दूसरे ही दिन अपने पुरोहित और पुराने मुनीम को बुलाकर बोली कि लडके का विवाह वसत-पचमी का तय हुआ है, आपलोग धन की ओर से निश्चिन्त होकर इस घर के पुराने रुतबे और प्रतिष्ठा के अनुसार विवाह की तैयारी आरम्भ कर दे। पीले चावल लेकर कस्बे के हर घर मे जाकर सारे लोगो को "मेल" की जीमणवार"[7] तथा बारात मे शरीक होने का निमन्त्रण दे आवे। कोई भी घर छूट ना पाये।

मुनीम और पुरोहित ने उत्साहपूर्वक सारी तैयारी आरम्भ कर दी। दरवाजे पर नगाडे और शहनाई बजने लगे गीत गाये जाने लगे और जीमणवार होने लगी। घर मे हलवाइयो, दर्जियो, सुनारो आदि की भीड लग गई और दूसरे आने-जाने वाले लोगो का भी ताता बध गया।

उधर जब कन्या-पक्ष वालो के यहा पत्र पहुचा, तो उन्होने उसे पढकर यही सोचा कि धनहीन हो जाने और पति का स्वर्गवास हो जाने के कारण समधिन बेचारी विक्षिप्त हो गई है। उसका दोष भी क्या है! दुख के समय ऐसा होना स्वाभाविक ही है। इस तरह की झूठी और व्यर्थ की सहानुभूति प्रकट करके उन्होने पत्र को फाड डाला और राई के दाने इधर-उधर बिखेर दिये।

लगन के एक दिन पहले हाथी, घोडे, ऊंट, पैदल सेना और बाजा-गाजा लेकर टोडरमल पहुचे लडके की मा के घर, और अपना परिचय दिया। सेठानी तो राजा टोडरमल का नाम सुनकर विह्वल हो गई, गद्गद् हो गई। उसने अपने भाग्य को सराहा। उसे ऐसा लगा कि उसके पुराने सुख के दिन फिर लौट आये है।

राजा टोडरमल के ठहरने और भोजन आदि की व्यवस्था की गई। शाम को "भात का नेग"[8] सम्पन्न हुआ। दूसरे दिन सबेरे ही राजा टोडरमल इस शहर से जितने बाराती साथ मे जाने वाले थे, उनको लेकर कन्या-पक्ष वालो के यहां पहुचे।

शहर के बाहर ही बारात को रोककर लडकी के पिता के पास खबर भेजी गयी। टोडरमल का नाम और आई हुई बारात के ठाठ-बाट का समाचार सुनकर कन्या का पिता तो सन्न रह गया। उसे ऐसा लगा कि आकाश से उसके हाथ छूट गये है। आखो के आगे अधेरा छा गया, काटो तो खून नही। वह तो इस डर से कि पता नही, टोडरमल क्या दण्ड दे, पीपल के पत्ते की तरह थर-थर कापने लगा, लेकिन आखिर हिम्मत बटोर कर अपने भाई-बन्धुओ को इकट्ठा किया, उनके सामने सारे समाचार कहे और उन्हे साथ लेकर बेहाल दौडा-दौडा टोडरमल के पास पहुचा। अपने अपराधो के लिए बहुत-बहुत क्षमा-याचना की और बोला, "पलक-पावडे बिछे हैं! आइये और विवाह की रस्म सम्पन्न करके मुझे कृतार्थ कीजिये! आपके योग्य खातिरदारी करना तो मेरे बलबूते की बात नही है, फिर भी जैसी बन पडेगी, उसमे कोई कसर नही रखू गा।"

---

7. विवाह के अवसर पर होने वाला भ्रातृ-भोज
8. माहेरा—वर या कन्या के विवाह के अवसर पर उसके ननिहाल वालो की ओर से गहने, कपड़े आदि दिये जाने की रस्म।

इस पर टोडरमल ने कहा, "क्षमा करने वाला मैं कौन ? आपने मेरा तो कोई कुसूर किया नही है। अपराधी है तो आप वर की मां के हैं, इसलिए क्षमा करने की अधिकारिणी तो वह है। फिर भी उनका भाई होने के कारण मैं उनका स्वभाव जानता हू। वह बहुत उदार हैं, इसलिए जब आपके मन मे अपनी करनी के प्रति ग्लानि हो गई है तो मेरी बहिन के मन मे किसी प्रकार का मैल नही रह जायगा। शान्त चित्त से अपने घर जाइये और विवाह की तैयारी करिये।"

टोडरमल ने सेठ को सात्वना तो दी, लेकिन साथ ही भविष्य के लिए सावधानी भी दिलाई।

बारात जनवासे पहुची। रात को फेरे हुए। दूसरे और तीसरे दिन अन्य सारे नेगचार सम्पन्न होकर विदाई हुई। बारात जब वापस लौटी तो सेठानी ने अपने बेटे और चाद-सी सुलक्खिनी बहू को "राई-नोन" करके सुन्दर रथ से नीचे उतारा, 'वारीफेरी" और "निछरावल" की, उनका माथा सू घा और बलैया ली। टोडरमल की आरती उतारी। बेटे-बहू को हवेली के भीतर ले जाकर अपने कुल-देवता के सामने धोक दिलाई तथा विवाह के बाद के सारे नेगचार सम्पन्न किये। सेठानी ने उस समय जो गीत गाया, उसकी पहली कडी यह थी—"जीत्या-जीत्या जी म्हारा टोडरमल बीर। जीत्यो म्हारो केसरियो बनडो, जीत्यो जी टोडरमल के पाण।"

उस समय से आज तक यह गीत राजस्थान के प्रत्येक भाग मे एकाधिक रूप मे विवाह के बाद वर जब वधू को लेकर लौटता है तब गाये जाने की प्रथा चालू है।

यह तो हुई कहानी!

अब पाठक राजा टोडरमल के बारे मे थोडी-सी ऐतिहासिक जानकारी भी कर लें, साथ ही टोडरमल नाम के दूसरे कुछ और प्रसिद्ध व्यक्तियो को भी जान लें।

राजा टोडरमल लाहौर के रहनेवाले खन्नावशी खत्री थे। ये अकबर के राज्य मे राजस्व-मन्त्री के पद पर काम करते थे और थे अकबर के नवरत्नो मे से एक। बादशाह की ओर से इन्हे "राजा' का खिताब मिला हुआ था। ये 'बारहजारी' मनसबदार थे।

"आइने-अकबरी" के अनुसार "बारहजारी मनसबदार" उसे कहा जाता था, जिसके पास विभिन्न जाति के अस्सी हाथी, दो सौ सत्तर घोड़े, पैंसठ ऊट, सत्रह खच्चर और एक सौ तीस बोझा ढोनेवाली गाडिया होती थी। इस सारे "लवाजमे" का खर्चा मनसबदार खुद उठाता था, बदले मे राज्य से उसे बाईस हजार रुपये महीना मिला करते थे। "बीकानेर का इतिहास" के अनुसार आगे चलकर राजा टोडरमल तथा कछवाहा राजा मानसिंह का रुतबा और भी बढ गया था तथा वे सातहजारी मनसबदार हो गये थे।

टोडरमल राज-काज के सचालन और हिसाब-किताब के मामले मे इतने दक्ष थे कि अपने राजस्व-मन्त्रित्व काल मे उन्होने भूमि-पैमाइश की जो विधि चलाई थी वह आज भी प्रचलित है।

लाहौर मे आज भी एक बडी-सी हवेली खडी है, जिसमे टोडरमल के वशज रहा करते थे। यह हवेली भारत-विभाजन के पहले तक 'टोडरमल का किला" नाम से प्रसिद्ध थी।

कहा जाता है कि विना मात्रा की जो मुडिया लिपि लिखी जाती है उसके आविष्कारक भी राजा टोडरमल ही थे। इसकी साक्षी के रूप मे नीचे लिखा दोहा प्रचलित है :—

देवनागरी अति कठिन, स्वर ब्यजन ब्यौहार।
तातें जग के सुगम हित, मुडिया कियौ प्रचार ॥

मुडिया लिपि को "महाजनी" लिपि भी कहा जाता है। शेखावाटी की तरफ इस लिपि को 'वाणिया आक" तथा देवनागरी को "वामणी आक" कहा करते है।

राजस्थान मे सारी ही जगह व्यापारी वर्ग की सारी वहिया, हुण्डी-पुरजे, दस्तावेज और लिखा-पढी आदि वाणिया आको मे ही हुआ करती थी। अक्षरो पर मात्रा न होने पर भी किसी दस्तावेज के अर्थ मे आजतक कभी कोई फर्क नही पडा है। लेकिन अव तो मुडिया लिपि का प्रचलन केवल वडी उमर के कुछ लोगो तक ही सीमित रह गया है। लगता है, कुछ वर्षो मे इसका प्रचलन उठ जायगा, क्योकि आज का विद्यार्थी न तो यह लिपि लिखता ही है और न भली प्रकार पढ ही सकता है।

कहा जाता है कि राजा टोडरमल अपने अन्तिम दिनो मे जव अपने कार्य भार से मुक्त होकर वृन्दावन-वास करने चले गये थे, तो एक वार अकवर को एक विशेष काम के लिए उनकी सलाह की जरूरत पडी थी और आदमी भेजकर उन्हे बुलवाया था।

टोडरमल नाम के एक अन्य व्यक्ति काशी के पास भदैनी ग्राम के रहनेवाले थे। उन्हें गोस्वामी तुलसीदासजी वहुत मानते थे। वे एक साधारण जमीदार थे।

कहा जाता है कि एक वार गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपनी जगत् प्रसिद्ध रामचरितमानस की हस्तलिखित प्रति चोरी के भय से इनके घर पर रखी थी। यह भी कहा जाता है कि इनके घर मे भाइयो मे किसी वात को लेकर आपसी मतभेद हो गया था, तो गोस्वामी तुलसीदास ने ही पचायती की थी। वह पचायतनामा तुलसीदासजी का स्वय का लिखा हुआ है और टोडरमल के वशजो के पास आज भी सुरक्षित है। विक्रम परिषद्, वाराणसी द्वारा प्रकाशित तुलसी-ग्रन्थावली के दूसरे भाग मे उस पचायतनामे की फोटोस्टेट प्रति भी है। जो लोग तुलसीदासजी के अक्षर देखना चाहे, वे विक्रम-परिषद् की उक्त तुलसी ग्रन्थावली की प्रति मगवा कर देख सकते है।

कहते है कि इन टोडरमलजी के वशज आज भी गोस्वामी तुलसीदासजी की पुण्य-तिथि के दिन ब्राह्मणो को "सीधा" देते है।

इनकी मृत्यु पर गोस्वामी तुलसीदासजी ने नीचे लिखा दोहा कहा था, जो आज भी वहुत लोगो के जवान पर है

चार गाव को ठाकुरो, मन को महा महीप।
तुलसी या ससार से, अथयो टोडर दीप ॥

इसके वाद शेखावाटी-स्थित भोमियोवाले उदयपुर मे भी एक टोडरमल नाम के प्रसिद्ध व्यक्ति हुए है। वह जाति के राजपूत थे और थे वहुत ही आतिथ्यप्रिय और उदार। उनकी अतिथि-सेवा के वारे मे जिक्र आता है कि राणा जगतसिह ने जव हरिदासजी

नामक "बारठ"[9] को उनके पास भेजा था, तब उनकी पालकी स्वय टोडरमल ने उठायी थी। उनकी उदारता के बारे मे नीचे लिखा दोहा प्रसिद्ध हैं :

दो उदयापुर ऊजला[10], दा दातार अटल्ल[11]।
इक तो राणा जगतसी[12], दूजो टोडरमल ॥

यह टोडरमल शाहजहा के दरबार मे डेढहजारी मनसबदार थे और शाहजहा के बहुत विश्वासपात्र भी।

टोडरमल नाम के एक प्रसिद्ध व्यक्ति आज से दो सौ वर्ष पहले और भी हुए हैं। वे जयपुर के रहनेवाले दिगम्बर जैन थे तथा थे बाल-ब्रह्मचारी। उन्होने जैन-धर्म सम्बन्धी अनेक प्रसिद्ध आध्यात्मिक ग्रन्थो की रचना की है।

एक बार उनकी मा ने भोजन मे यह सोचकर नमक डालना बन्द कर दिया था कि नमक से प्यास अधिक लगती है, लेकिन टोडरमल को पता भी नही चला कि भोजन "अलूना" है। जिस दिन उनका ग्रन्थ पूरा हुआ और वे भोजन पर बैठे तो उन्हे लगा कि भोजन अलूना है, क्योकि अब वे साधनावस्था से अपनी स्वाभाविक अवस्था मे आ गये थे। उन्होने मा से कहा, "मां, मालूम होता है कि तुम आज नमक डालना भूल गयी हो।" तब मा ने कहा, "मालूम होता है, आज तुम्हारा ग्रन्थ पूरा हो गया है।" और दोनो ने एक-दूसरे की ओर श्रद्धा तथा स्नेह-भरी दृष्टि से देखा।

(बहता पानी निर्मला, तृतीय संस्करण ; पृष्ठ २३७–२४६)

---

9. बारहठ, चारण 10. निर्मल, 11. अटल, 12. जगत सिह।

परिग्रह

एक साधु था। वह जगल मे झोपडी बनाकर रहता था। उसके पास मात्र एक लगोटी थी और एक कमण्डल। प्रात काल गाव मे जाकर वह 'गोचरी' कर लाता और जो कुछ नियमित समय मे मिल जाता, उतना सा खाकर दिन-भर भजन-स्मरण करता रहता। उसकी झोपडी से थोडी ही दूर पर चरागाह था, जहा ग्वाले अपने पशु चराया करते। कभी-कभी कोई-कोई ग्वाला श्रद्धापूर्वक थोडा-बहुत दूध साधु महाराज को भी दे जाता था, जिसे वह स्वीकार कर लेते, लेकिन कभी किसी से वे दूध मागते नही थे।

एक बार साधु महाराज की झोपडी मे चूहो का उत्पात हो गया और वे चूहे आए दिन बास पर लटकाई हुई लगोटी को काटने लगे। अब तो साधु महाराज के लिए मुश्किल हो गई, क्योकि बिना लगोटी के भिक्षाटन के लिए जाया नही जा सकता और भिक्षाटन के लिए नही जाय तो खायें क्या ! अत दो-चार बार तो गृहस्थो से लगोटी का कपडा मागकर लाये, लेकिन जब आए दिन ही चूहे टगी हुई लगोटी को काटने लगे, तो साधु को कुछ सूझ नही पडा कि क्या करना चाहिए। रोज-रोज कपडा मागने के लिए हाथ पसारना उनके मन ने स्वीकार नही किया। अन्त मे उन्हे एक उपाय सूझ पडा। क्यो न एक बिल्ली को पाल लिया जाय, जिससे कोई चूहा आने का साहस ही नही करेगा। साधु महाराज ने ऐसा ही किया।

इससे चूहो की परेशानी तो दूर हो गई, लेकिन अब प्रश्न यह उठा कि बिल्ली को खिलाया क्या जाय। बिल्ली स्वस्थ बनी रहे, इसके लिए उसको थोडा-बहुत दूध देना भी आवश्यक था। अत जो ग्वाले श्रद्धा-भक्ति से दूध देने महाराज को कुटी मे आते, उन्ही के पास स्वय महाराज को दूध मागने के लिए जाना पडता। कुछ दिनो तो उनको अपनी पुरानी साख के कारण कभी किसी ग्वाले से और कभी किसी ग्वाले से दूध मिलता रहा, लेकिन आखिरकार इस प्रकार की नित्यप्रति की माग से सारे ग्वाले तग आ गये। एक दिन सबने मिलकर इस बात पर विचार किया और यह तय किया कि आज से साधु महाराज को कोई दूध न दे।

अब तो साधुजी को और भी मुश्किल हो गई। 'गये थे रोजा छुडाने, नमाज गले पड गई' वाली स्थिति हो गई उनकी। भूखी बिल्ली 'म्याऊ-म्याऊ' करती इधर-उधर फिरे। साधु महाराज को दया आई। उन्होने सोचा, क्यो न एक गाय पाल ली जाय, जिससे अपने को भी दूध मिलता रहेगा और बिल्ली को भी दूध पिला दिया करेंगे। लेकिन सामने प्रश्न यह आया कि गाय खरीदने के लिए पैसे कहा से आये, क्योकि साधुजी की त्याग की जो साख थी, वह धीरे-धीरे कम होती जा रही थी। अत. गृहस्थो से पैसा मिलने की आशा धूमिल हो गई थी।

साधु ने सोचा कि राजा के पास चलना चहिए, शायद वहा याचना सफल हो जाय। ऐसा सोचकर वह राजा के पास गये और उन्हे आशीर्वाद देकर एक अच्छी-सी गाय के लिए याचना की। राजा ने तुरन्त अपनी गोशाला से हाल ही की

ब्याई हुई दुधारु गाय साधु महाराज को दिलवा दी। महाराज तो निहाल हो गये, रोम-रोम से राजाजी को पुन आशीर्वाद दिया और गाय व बाछे को लेकर झोपडी मे चले आये।

अब वह भजन-स्मरण की बात तो भूल गये और लग गये उस गाय की सेवा-टहल मे। सुबह उठकर वे गाय को दुहते, फिर उसे चराने के लिए जगल मे ले जाते। आती दफे गाय के लिए घास काटकर ले आते। भागते-दौडते गाव मे जाकर भिक्षाटन करते और आते ही खा-पीकर फिर गाय की सेवा मे लग जाते। गाय दुहकर स्वय दूध पीते और अपनी बिल्ली को पिलाते। उन्हे भजन-स्मरण करने के लिए अब बहुत ही कम समय मिलता था। भागते-दौडते दो-चार राम के नाम लिये कि भजन की इति-श्री मान लेते थे।

कुछ दिन तो लोग कुछ बोले नही, लेकिन आखिरकार किसान लोग साधुजी को अपने खेत मे गाय चराने से तथा घास काटने से मना करने लगे। साधुजी ने सोचा, क्यो न दो-चार बीघा जमीन राज्य से अपने नाम लिखा लें, जिससे अपने खाने-भर का अन्न भी हो जायगा और गाय के लिए घास भी। न गाव मे भिक्षाटन के लिए जाना पडेगा और न किसी ग्वाले से ही कुछ मागना पडेगा। यह सोचकर उन्होने जमीन का एक छोटा सा टुकडा अपने नाम लिखा लिया और लगे खेती करने।

आदमी भी क्या अनोखा जीव है! अपनी उलझनें बढाकर खुद ही फसता जाता है। मकडी जिस तरह जाला बुनती जाती है और स्वय ही उसमे कैद होती जाती है, उसी तरह मनुष्य भी अपनी समस्याए, जरूरतें बढाता जाता है और उसके ताने-बाने मे फसता जाता है।

यही हाल साधु महाराज का हुआ। अनजान मे ही वे तो पूरे गृहस्थ हो गए। कमी रही तो केवल स्त्री की। वह भी शायद पूरी हो जाती, लेकिन सिर और दाढी के सारे बाल सफेद हो चुकने के कारण तथा साथ ही धन की कमी के कारण उन्हे अपनी लडकी दे तो कौन दे?

इस तरह कुछ वर्ष तो साधुजी के चैन से कट गये, लेकिन मुश्किल तब आई जब आगे चलकर एक साल भयकर अकाल पडा, जिसके कारण खेत मे कुछ भी नही उपजा। ऐसा होने से वे राज्य की जमीन का लगान नही चुका सके। नतीजा यह हुआ कि जिन-जिन लोगो ने लगान नही चुकाया था, उन सब की राज्य मे बुलाहट हुई और उन्हे दण्डस्वरूप धूप मे खडा कर दिया गया। साधुजी भी उनमे से एक थे। बैसाख-जेठ की तपती हुई धूप मे खडे-खडे साधु महाराज तिलमिला उठे और अपने पुराने दिनो की याद करने लगे कि अपन तो सुख से रह रहे थे, भगवान का नाम जपते थे, आखिर यह सब क्या हो गया और कैसे हो गया। सोचते-सोचते उनके ध्यान मे आया कि इस सारे खटराग का कारण बस लगोटी है। अगर लगोटी न होती तो चूहे क्यो आते, चूहे न आते तो बिल्ली को क्यो पालना पडता? बिल्ली न होती तो गाय क्यो लाते, और गाय न होती तो खेती क्यो करते? बस उनके अन्तर्चक्षु खुल गये और उन्होने उपाधि-रूप उस लगोटी को खोलकर फेंक दिया और हर्षोन्मत्त होकर नाचने लगे।

सिपाहियो मे समझा, साधु महाराज कष्ट न सह सकने के कारण पागल हो गये है। अत वे पहुचे उनके पास और लगे तरह-तरह से समझाने-बुझाने। लेकिन साधुजी तो अपने-आप मे मस्त हो गये थे, इसलिए कुछ बोले नही। 'मन मस्त हुआ तब क्यो बोले ?' यह हाल था साधु महाराज का।

सिपाहियो ने आकर राजा को खबर दी। वह वहा आये। राजाजी थे समझदार। सारा हाल देखकर तुरन्त ताड गये कि साधु को ज्ञान की फटकार लगी है। उन्होने शाप से डरकर महाराज से बहुत-बहुत क्षमा-याचना की और उन्हे तुरन्त मुक्त कर दिया।

साधुजी अपनी झोपडी मे आये और गाय तथा बिल्ली आदि को छोडकर पूरे-पूरे अन्तर्मुखी होकर पुनः भजन स्मरण मे लग गये और पूरे-पूरे निर्द्वन्द्व हो गये।

सच है, परिग्रह तो बधनकर्ता होता ही है, छोटा हो या बडा। सग्रह-परिग्रह का ही दूसरा नाम 'नाग-पाश' है।

(बहता पानी निर्मला तृतीय संस्करण; पृष्ठ ७३-७६)

परिशिष्ट

एक भेंट-वार्ता

[शारदा सदन महाविद्यालय द्वारा प्रकाशित "पूर्वा" के सम्पादक-मण्डल ने भागीरथजी से उनके मुकुन्दगढ वास के अवसर पर २३ सितम्बर, १९७६ को भेंट की। उस भेंट का "पूर्वा" मे जो विवरण प्रकाशित हुआ था, उसे यहा छापा जा रहा है—स०]

प्रश्न १ : चूंकि आप स्वातत्र्य-संग्राम मे सक्रिय रहनेवाले बडे-बड़े नेताओं के सम्पर्क में रहे हैं, अत हम आपसे यह जानना चाहते हैं कि क्या आपकी राय में १९४७ के देश के विभाजन को टाला जा सकता था ?

उत्तर : मेरी राय मे विभाजन टल सकता था किन्तु हमारे बडे नेताओ के मन की यह तैयारी नही रह गई थी कि वे और अधिक लम्बे समय तक आन्दोलन जारी रखें। कहना चाहिए कि उनके मन मे एक प्रकार की थकान-सी आ गई थी। लॉर्ड माउण्टवेटन ने प० जवाहरलालजी और सरदार वल्लभभाई पटेल को बुलाया और इस बात का आग्रह किया कि वे ब्रिटिश सरकार का प्रस्ताव मान लें, जिसमे देश को स्वतत्र करने की बात तो थी लेकिन विभाजन की शर्त के साथ। उस प्रस्ताव के हर पहलू पर आपस मे चर्चा हुई। अन्त मे नेहरूजी और सरदार पटेल ने विभाजन की बात मान ली। उसके बाद माउन्टवेटन ने गांधीजी को बुलाया। गाधीजी ने विभाजन की बात मानने से इन्कार किया तब लार्ड माउन्टवेटन ने हसकर कहा, Mr. Gandhi, The Congress to-day is not in your hand, it is in my hand गांधीजी समझ गये कि नेहरूजी और सरदार पटेल ने विभाजन के लिए स्वीकृति दे दी है। अत उन्होने माउन्टवेटन से इतना ही कहा "अब मुझे कुछ नही कहना है" और ऐसा कहकर वे वापस चले आये।

उन दिनो ब्रिटिश सरकार की बागडोर लेबर पार्टी के हाथो मे थी। वे लोग भारत को आजादी देने के पक्ष मे थे अत वहा के तत्कालीन प्रधान मत्री एटली ने कजरवेटिव पार्टी के नेता चर्चिल को बुलाया और उनसे कहा "हमलोग भारत को आजादी देना चाहते है और देंगे। मैं आपसे इसके लिये सहमति चाहता हू क्योकि सर्वसम्मति से हम भारत को स्वतत्र करेंगे तो ब्रिटिश सरकार की शोभा अधिक होगी तथा भारतवासियो के मन मे किसी तरह की कटुता नही रह जायेगी। मैं चाहता हूं कि आप अपनी सहमति देकर मेरे हाथ मजबूत करें।

चर्चिल सिद्धान्तत भारत को आजादी देने के पक्ष मे नही थे। वे पूरे-पूरे साम्राज्यवादी थे किन्तु जब उन्होने देखा कि सत्तारूढ ब्रिटिश सरकार भारत को आजादी देने के लिए कटिबद्ध है तो उन्होने कहा, "यदि आप भारत के दो टुकडे कर देते है तो मैं अपनी सहमति दे सकता हू।" चू कि लेबर-पार्टी यह नही चाहती थी कि भारत की स्वतत्रता को लेकर इगलैण्ड मे फूट पडे अत एटली ने कजरवेटिव पार्टी के नेता चर्चिल की यह बात स्वीकार कर ली।

(चर्चा के दौरान श्री कानोडियाजी ने यह भी बताया कि उपर्युक्त बात आजादी के कुछ ही दिनो बाद डॉ० राधाकृष्णन् ने उनसे कही थी।)

प्रश्न २ : स्वतन्त्रता के पहले के और बाद के नेतृत्व में आपकी राय में क्या अन्तर है ?

उत्तर : इसमे तो मूल अन्तर है। एक प्रकार से पूर्व और पश्चिम का अन्तर है, ऐसा कहना चाहिए। स्वतन्त्रता के पहले जो राजनीति थी वह त्याग-तपस्या की, जेल जाने और मार खाने की थी। आज की राजनीति भोग-प्रधान है। पहले लोगो के मन मे एक ही आकाक्षा थी कि देश को कैसे आजादी मिले, भारत कैसे खुशहाल हो, लेकिन आज की राजनीति मे तो अपना स्वार्थ प्रधान है। कीर्ति और पद की लालसा ही लक्ष्य है। गाधीजी की पीढी के नेताओ मे तो आज कोई भी बचा नही। दूसरी पीढी राजेन्द्र बाबू, जवाहरलालजी, नेताजी सुभाष बोस आदि की है। उस पीढी के लोगो मे भी शायद ही कोई बचा है।

प्रश्न ३ . गांधीजी के व्यक्तित्व मे ऐसा कौन सा जादू था जिसने सारे विश्व के बड़े-से-बड़े व्यक्तियो को उनकी ओर आकर्षित किया ?

उत्तर : गाधीजी जैसा सोचते थे वैसा कहते थे, जैसा कहते थे वैसा करते थे। सत्य उनके जीवन का मुख्य आधार था। स्वभाव उनका अत्यन्त स्नेहिल था। प्रताडित और उपेक्षित मानव को उठाना वे अपना कर्तव्य मानते थे। राजनीति मे सत्य और अहिंसा को दाखिल करने वाले वे ही सर्वप्रथम व्यक्ति थे और उन्होने इसका अपने जीवन मे तथा कार्यों में प्रयोग किया और वे अपने प्रयोग मे सफल भी हुए। इसीलिए वे कर्मवीर से महात्मा कहलाने लगे।

प्रश्न ४ गांधीजी के ट्रस्टीशिप सिद्धान्तों को क्या कभी व्यावहारिक रूप मिला है तथा इसकी क्या उपादेयता है ?

उत्तर : यह कोई नया सिद्धान्त नही है। ईशोपनिषद् के "ईशावास्यम इदम सर्वम्, यत् किं च जगत्या जगत्। तेन त्यक्तेन भुंजीथाः, मा गृध. कस्यस्विद धनम्॥" मत्र से यह स्पष्ट होता है कि यह बहुत पुराना सिद्धान्त है। गाधीजी ने समय-समय पर कहा है कि मै जो कुछ प्रतिपादित कर रहा हू उसमे कोई नई बात नही है। मैं तो अपने पूर्वजो द्वारा कहे हुए सिद्धान्त को नई भाषा और नये रूप मे रख रहा हू। इस सिद्धान्त की उपादेयता सर्वदा थी, है और रहेगी, लेकिन है लोगो के मन मे जब तक स्वार्थ भावना है तब तक यह सिद्धान्त कार्यरूप नही ले सकता। मनुष्य के मन की यह तैयारी होनी चाहिए कि उसमे अपनी चाह कम हो, अपने लिए भोग की इच्छा कम-से-कम हो, देने की अधिक से अधिक। ज्यो-ज्यो यह भावना विकसित होगी त्यो-त्यो लोगो की सुख-शाति बढेगी।

प्रश्न ५ आज की शिक्षा-पद्धति हमारे राष्ट्र के अनुकूल है क्या ?

इसका उत्तर देना मेरे लिए सहज नही है क्योकि मैं कोई शिक्षाविद् नही हू। लेकिन हा, अपने अनुभव से इतना तो कह सकता हू कि यह शिक्षा हमारे नैतिक उत्थान मे सफल नही हुई है। आज के शिक्षक लोग और छात्र दोनो का ही ध्यान नैतिक मान्यताओ और चरित्र-निर्माण की ओर कम है। फिर भी कोई शिक्षा-शास्त्री

आज तक इसका विकल्प नही वता सका है। गाधीजी ने बुनियादी शिक्षा के नाम पर एक शिक्षा-पद्धति का परीक्षण किया था किन्तु वह पूरा सफल नही हुआ, अत जब तक दूसरा विकल्प हमारे सामने नही है तब तक इस शिक्षा को छोडने के लिए तो नही कहा जा सकता।

प्रश्न ६ : परिवार-नियोजन पर आपकी क्या राय है ?

उत्तर : भारत जैसे अविकसित और बहुजनसख्या वाले देश के लिए परिवार-नियोजन परम आवश्यक है। जब तक जनसख्या वृद्धि पर रोक नही लगती तब तक हम न अपने बच्चो को स्नेह दे सकते हैं और न उनकी दूसरी आकाक्षाए ही पूरी कर सकते हैं।

जीवन की पाच मूलभूत आवश्यकताए हैं :—(१) पेट-भरने को ऐसा भोजन हो जो सुस्वादु तथा पर्याप्त पोषण देने वाला हो। (२) शीत-निवारण और लज्जा निवारण के लिए काफी होने के साथ-साथ सुरुचिपूर्ण वस्त्र हो। (३) पर्याप्त हवा और प्रकाशयुक्त आवास, चाहे वह कच्चा ही हो। (४) अच्छी शिक्षा और (५) अच्छी चिकित्सा की व्यवस्था। इन पाच चीजो की पूर्ति तभी सम्भव है जबकि जनसंख्या वृद्धि पर रोक लग जाय, "घण जाया घण ओलमा, घण बरस्या कण हाण"।

लेकिन फिर भी मुझे व्यक्तिगत रूप से ऐसा लगता है कि आज परिवार-नियोजन के कार्यक्रम मे जिस तरह की होड़बाजी तथा प्रलोभन के तरीके बरते जा रहे हैं, वे अनुचित है। यह बात ठीक है कि हमारे देश की जनसख्या और नही बढ पाये, ऐसा होना चाहिए लेकिन गैरवाजिब तरीको से नही।

प्रश्न ७ : अनुसूचित जातियों और जनजातियो को प्रदत्त विशेष सुविधाओ से प्रशासनिक कुशलता पर क्या प्रभाव पडा है ?

उत्तर : मैं हरिजन सेवा का पक्षपाती रहा हू और आज भी हू। यथासाध्य इस क्षेत्र मे काम भी किया है। हरिजन सेवक सघ के साथ मेरा सम्बन्ध इसकी स्थापना काल से रहा है और आज भी है। शेखावाटी की शिक्षण-सस्थाओ मे, जहा तक मेरा खयाल है, हरिजन लडके ने सबसे पहले प्रवेश मुकुन्दगढ के शारदा सदन स्कूल मे पाया था। प्रवेश पाने से मेरा मतलब एक साथ बैठकर पढना और एक ही जगह से पानी पीना आदि। उसके कारण मुझे गाववालो की नाराजगी भी मोल लेनी पड़ी थी। मैंने सदा यह माना है और आज भी यह मानता हू कि महज जाति विशेष में जन्म लेने के कारण कोई छोटा या बडा नही माना जाना चाहिए। हर व्यक्ति को पूजा-अर्चना मे, ठहरने आदि मे, खाने-पीने मे, पढने मे, धधे मे सब प्रकार का समान अधिकार होना चाहिए। मैं जिन दिनो की बात कर रहा हू, यानी आज से ४० वर्ष या इससे भी पहले की, उन दिनो तो हरिजनो को अपने पीने का पानी 'खेतो' से भरकर लाना पडता था, जहा पशु पानी पिया करते थे तथा जिसमे कीडे बिल-बिलाया करते थे। वह सर्वथा अन्यायपूर्ण बात थी। किन्तु आज वे सब मान्यताए बदल गई है, स्थिति भी बदल गई है। अब जो हरिजनो को विशेष अधिकार दिये जाते हैं, यानी राजकीय सेवाओ मे तथा शिक्षण सस्थाओ मे, उनकी मैं विशेष आवश्यकता नही मानता। प्रशासनिक कार्यो मे या शैक्षणिक सस्थाओ मे या अस्पतालो

मे यदि केवल कुछ लोगो को भरती किया जाय, जो मेरिट मे खरे नही उतरते हैं किन्तु वे एक विशेष जाति के है तो प्रशासनिक कुशलता मे बाधा आयेगी ही आयेगी। अवर्णो को सुविधाए देने के नाम पर एक ऐसे हरिजन छात्र को सुविधाए मिले जो सम्पन्न घर का है तथा पढने मे बहुत अच्छा भी नही है, जबकि दूसरा छात्र जो प्रतिभाशाली है और निर्धन भी है लेकिन वह केवल इसलिए उन सुविधाओ से वंचित रहे कि वह सवर्ण है, सर्वथा अनुचित है। अवर्ण लोगो को न्यूनतम योग्यताओ के न होने पर भी प्रशासन मे नियुक्त करना उसी तरह अनुचित है जिस तरह उन्हे किसी दिन उनके मौलिक अधिकारो से वचित करना घातक था।

प्रश्न ८ : अर्थतत्र में सरकार के हस्तक्षेप के बारे में आपकी क्या राय है ?

उत्तर : सरकारका कुछ हस्तक्षेप तो आवश्यक है, जैसे न्यूनतम मजदूरी, काम करने के घटे, वास्तविक छुट्टी, आवास आदि के मामले। किन्तु दिनानुदिन कार्य-संचालन मे सरकारी हस्तक्षेप जितना कम हो उतना ही अच्छा है।

प्रश्न ९ : देश मे चल रहे आर्थिक नियोजन ने जन-सामान्य को कहां तक लाभान्वित किया है ?

उत्तर : भारत जैसे अविकसित देश के लिए जहा औद्योगीकरण बहुत कम हुआ था, इस तरह का आर्थिक नियोजन बहुत आवश्यक है। पिछले २५ वर्षो मे छोटे-मोटे काफी उद्योगो की स्थापना हुई है। कृषि-सुधार के लिए सिचाई का प्रबन्ध भी हुआ है किन्तु देश बहुत बडा है और उसकी जनसख्या बराबर बढ रही है इसलिए लोगो की अपेक्षाए पूरी नही हो पाती। फिर भी यह तो मानना पडेगा कि सरकार अपनी ओर से सजग है और जितना बन पडता है, प्रयत्न कर रही है। मुझे आशा है कि अगले कुछ वर्षों मे लोग सुखी और समृद्ध हो सकेगे। सरकारी प्रयत्नो के साथ-साथ जनसेवको का भी कर्तव्य है कि वे सरकार का ध्यान इस ओर दिलाते रहे तथा यथासाध्य सरकार के सहयोग से तथा स्वतत्र रूप से भी देश का दुख-दारिद्र्य तथा निरक्षरता आदि मिटाने मे सहायक हो।

प्रश्न १० : बंगला, तमिल, गुजराती आदि भाषाओ को हमारे संविधान मे जैसा स्थान मिला है वैसा ही राजस्थानी भाषा को क्यों नहीं मिला ?

उत्तर : राजस्थानी भाषा का कोई भी माना हुआ एक रूप नही है। वह तो भिन्न-भिन्न हिस्सो मे भिन्न-भिन्न रूप से बोली जाती है। हाडोती अलग है, ढूढाडी अलग, मारवाडी अलग है तो मेवाडी अलग। राजस्थानी भाषा का साहित्य भी इतना समृद्ध नही है जितना मराठी, बगला आदि का। मैं स्वय राजस्थानी भाषा का पक्षपाती हू और यथासाध्य इसका प्रचार भी करता हू लेकिन मेरी अपनी राय यह भी है कि हमलोग जो राजस्थानी के पक्षपाती हैं, उनका प्रयत्न इसकी एकरूपता प्रतिष्ठित करने का होना चाहिए। इस भाषा मे सुसाहित्य सृजन का प्रयत्न भी होना चाहिए। आज तो हम इसे अन्य समृद्ध भाषाओ के समकक्ष नही रख सकते। इसके लिए हमारा प्रयत्न यह होना चाहिए कि राजस्थानी भाषा का एकरूप हो, यह समृद्ध हो, फिर सरकारी मान्यता तो यह भाषा स्वय अपने लिए प्राप्त कर लेगी।

परिशिष्ट—२

भागीरथजी और साहित्य

कारे जहा बानी से दुश्वारतर है कारे जहा बीनी
जिगर खू हो तो चश्मे दिल मे होती है नजर पैदा

—इकबाल

साहित्य प्रेमी या पाठक की नजर रचनाकार से कही अधिक गहरी होती है। भागीरथजी ने साहित्य रचना तो उतनी नही की लेकिन साहित्य का गहरा पठन किया, साहित्य को असीम और निश्छल प्यार दिया जिसके कोसो दूर तक वासना का कोई शोर न था।

भागीरथजी ने आम परिभाषा के मुताबिक साहित्य सृजन नही किया लेकिन उन्होने बहुत ही महत्वपूर्ण काम किए हैं। एक तो राजस्थानी लोक-कथाओ को सजा सवार कर खडी बोली हिन्दी मे बहुत ही रोचक और पठनीय ढग से "बहता पानी निर्मला" के शीर्षक से एक किताब के रूप मे प्रकाशित करके।

भारत के विभिन्न भाषा-भाषियो को एक दूसरे के साहित्य से अवगत कराने का काम अभी नगण्य है। लोग अब इसकी जरूरत महसूस कर रहे है। इस काम का परिन्दा अब साहित्य के चमन मे उडान भरने को पर तोल रहा है। इस महत्वपूर्ण कार्य की लम्बी शृ खला की एक खूबसूरत कडी है—भागीरथजी की यह किताब।

इस किताब की कहानियो का चुनाव, इनका कथानक और भाषा की रवानी, स्वय इस बात का प्रमाण है कि भागीरथजी की नजर कितनी पैनी थी और सम्वेदना कितनी गहरी, उनकी भाषा कितनी सरल एव रोचक थी। साहित्य सृजन के यही तीन प्रधान तत्व है और ये सभी उस व्यक्ति मे, उस हस्ती मे मौजूद थे।

वेदो और वेदान्तो मे प्रकृति के गूढ रहस्यो को ऋषियो ने ऋचाओ और श्लोको के माध्यम से बताया है लेकिन वे जनसाधारण की समझ से बाहर है, उसकी बुद्धि की पकड मे नही आते।

पौराणिक ऋषियो ने रोचक कथाओ के माध्यम से उन तथ्यो को जनसाधारण तक पहुचने मे सफलता प्राप्त की और उस आसमानी रहस्य को धरती के बाशिन्दो तक पहुचाया। आहिस्ता-आहिस्ता ये कहानिया लोक-कथाए बनती गई। आज हिन्दुस्तान की सरजमीन के कोने-कोने मे बिखरा हुआ इन कहानियो का इतना बडा खजाना है जो शायद ही किसी और मुल्क के पास हो।

इसी खजाने के चन्द जवाहर श्री भागीरथजी ने राजस्थान की धरती से इकट्ठा करके इस किताब रूपी हार को गू था।

इस किताब मे १०१ कहानिया पाच भागो मे विभक्त करके प्रस्तुत की गई है।

उनका दूसरा महत्वपूर्ण काम है "राजस्थानी कहावत कोश।"

यह सकलन बडे परिश्रम का और बडा ही महत्वपूर्ण काम है। राजस्थान का सही इतिहास, वहा की सही स्थिति और वहा की सस्कृति इन कहावतो मे सुरक्षित है। इनको विभिन्न दृष्टिकोण से देखा जा सकता है। पूरा जीवन-दर्शन सिर्फ कहावतो के सहारे सीखा और सिखाया जा सकता है।

राजस्थान, बाकी हिन्दुस्तान की तरह ही नही बल्कि उससे कही ज्यादा बारिशो पर आश्रित रहा है। बारिश ठीक समय पर आयेगी या नही, फसल अच्छी होगी या नही इन बातो की अग्रिम सूचना, वहा के लोगो ने चीटियो के बर्ताव से लेकर नक्षत्रो और ग्रहो की गति तक से देने की कोशिश की।

एक कहावत है (देखे, राजस्थानी कहावत कोश—कहावत न० ७३६) :

कासैं काई जमै, आभ नीलै रग आवैं।
कीडी काढै ईड, चिडी रेती मे न्हावैं।
माखण गलियो माट, पवन मुख बैठे छाली।
डेडका डहक बाडा चढै, विषधर चढ बैठे बडा।
माघिया पडत कूडा पतड, घण बरसै अेतै गुणा।

यदि कासी पर काई जमे, आकाश का रग नीला हो जाए, चीटिया अपने अण्डो को लेकर चल पडे, चिडिया रेत मे स्नान करे, बिलौने मे मक्खन पिघल जाए, बकरी पवन के सामने मुख करके बैठे, मेढक बाडो पर चढ जाए और साप वट वृक्षो पर जा चढे तो पण्डित माघ कहता है कि वर्षा का योग न बताने वाले सारे पतडे झूठे हो जायेगे और वर्षा खूब होगी।

यहा बर्तनो और जीव जन्तुओ के बर्ताव से बारिश की आमद का पैगाम मिलता है तो दूसरी तरफ किस नक्षत्र की बारिश कैसी होती है, ये सब बातें लोक कहावतो मे मौजूद है—नमूने के तौर पर एक कहावत देखिये (नम्बर : १२४) :

असलेखा बूठा, बैदा घरा बधावणा।

अश्लेषा नक्षत्र मे जब बारिश होती है तो रोग बहुत फैलते है और वैद्य लोगो की आमदनी बढ जाती है।

ऐसी कितनी ही कहावतें इस सकलन मे मौजूद है।

हिन्दुस्तान का इतिहास इस बात का गवाह है कि ब्राह्मणवाद ने कितनी ज्यादतिया की हैं और इसी की प्रक्रिया मे बौद्ध आदि धर्मों का उदय भी हुआ। एक कहावत मे बडी अच्छी चोट की है—(नम्बर : ३९) :

अग्रे अग्रे ब्राह्मणा, नदी नाला बरजन्ते।

मतलब ब्राह्मण सबसे आगे हैं लेकिन खतरे के वक्त नही।

१९५३ नम्बर कहावत है

दुबधा मे दोनूं गया, माया मिली न राम।

इसके नीचे एक दोहा है :

राधो तू समझ्यो नई, घर आया था स्याम।
दुबधा मे दोनूं गया, माया मिली न राम॥

पहली पक्ति दूसरी से तालमेल नही खाती है इसको दूसरी तरह भी सुना है

दिल चाहे दिलदार को, तन चाहे आराम।
दुविधा मे दोनो गए, माया मिली न राम।

बहुत कुछ सम्भव है कि दूसरी पंक्ति हिन्दी से राजस्थानी जगत मे गई हो और पहली पंक्ति की रचना यू ही पास निभाते हुए किसी ने कर डाली हो।

इन कहावतो के विभिन्न पहलुओ पर बात करना लेख की सीमाओ के कारण सम्भव नही है।

सबसे महत्वपूर्ण बात यह कि इन कहावतो से माटी की गन्ध आती है और एक गहरी पाठक मे तो प्राण ही फूक देती है।

लोक-कथाओ, कहावतो और लोक-गीतो का एक महत्वपूर्ण पहलू और भी है, वह यह है कि सही इतिहास इन्ही मे छुपा रहता है।

चगेज खा की औलाद ने जब पूरे यूरोप को गारत कर दिया था और एक दहशत का आलम वहा तारी था, ऐन उस वक्त, अचानक फौजें मगोलिया लौट गईं। अब तक के इतिहासकारो को यह विश्वास था कि फौजो मे किसी भयानक रोग के फैल जाने की वजह से वे लौट जाने पर मजबूर हुईं। मगर हाल ही मे मगोलिया के लोक-गीतो और लोक-कथाओ से हकीकत पता चली है, वह हकीकत यह है कि उनका नेता मर गया था और नये नेता के चुनाव के लिए उन्हे अचानक लौट जाना पडा था।

लोक-कथाओ और कहावतो का सकलन इतिहास की ऐसी शोध को आसान कर देता है। इन्हे गौर से पढना और समझना चाहिए। इनमे कई खजाने पोशीदा होते हैं।

इतिहास की किताबो मे बादशाहो के हुक्म के साथ-साथ, मयख्वार की नीयत की तरह तथ्य बदलते रहते है लेकिन लोक-कथाओ और कहावतो मे जुग-जुगान्तर का यह विरसा पीढी दर पीढी सहेज कर रखा होता है।

भागीरथजी को और भाषाओ के बजाय राजस्थानी और हिन्दी से शदीद लगाव था। उनके यहा साहित्यकारो ने ही नही, साहित्य ने परवरिश पाई है।

खुद भागीरथजी ने अपने आपको परदो मे रखने की कोशिश की। अपने साहित्य-प्रेम और साहित्य-सेवा को रहस्य की चहारदीवारी मे महदूद रखना चाहा। लेकिन राजस्थान से बगाल तक बिखरे हुए स्कूल, कालेज, सस्थाएं, शिक्षक, साहित्य-प्रेमी और साहित्यकार उनके प्यार और प्रेरणा से पैदा हुए इस रहस्य को पोशीदा नही रहने देते।

जब यूरेनस राशिचक्र की परिक्रमा पूरी करके वृश्चिक राशि मे वापिस जा रहा था, जब १९७९ ई० का अक्तूबर का महीना अस्त होने वाला था, हिन्दी साहित्य के प्रेम जगत का यह सूर्य अस्ताचल को चला गया। अनायास मुह से निकला :

वो इक हस्ती जिसके गम मे जमा मका का दिल रोया था
उससे कफन सरका के देखा जैसे कोई युग सोया था।

—रेवतीलाल शाह

दो ऐतिहासिक तार

बगाल के १९४३ के अकाल के वक्त मुस्लिम लीग द्वारा दक्षिण अफ्रीका मे यह प्रचार किया गया कि बगाल रिलीफ कमेटी को दक्षिण अफ्रीका वासी भारतीय मुसलमान चन्दा न भेजें क्योकि वह एक साम्प्रदायिक कमेटी है। स्व० मुहम्मद अली जिन्ना तक ने इस आशय का तार दक्षिण अफ्रीका भेजा। इससे चिंतित होकर दक्षिण अफ्रीका से बगाल के १९४३ के अकाल मे सहायता भेजने का काम करने वाले प्रमुख भारतीय कार्यकर्ता श्री सोराबजी रुस्तमजी ने भागीरथजी को दो तार भेजे। इनमे तत्कालीन बगाल सरकार के मुख्यमत्री व अन्य मत्रियो तथा श्री फजलुल हक और सर अब्दुल हलीम गजनवी जैसे प्रतिष्ठित मुस्लिम नेताओ से कमेटी के विरुद्ध किये जाने वाले प्रचार का खण्डन कराने की माग की गई ताकि मुस्लिम लीग के प्रचार के कारण कमेटी के बारे मे दक्षिण अफ्रीका मे सदेह का जो वातावरण पैदा हो गया था वह दूर हो सके। भागीरथजी ने इन तारो के जवाब मे न केवल श्री फजलुल हक और सर अब्दुल हलीम गजनवी की ओर से वक्तव्य दिलवाया वरन् दक्षिण अफ्रीका के भारतीयो का सदेह दूर करने की पूरी कोशिश की। उन्होने सोराबजी को लिखा कि अकाल मे सहायता का काम करने के पीछे बगाल रिलीफ कमेटी का एकमात्र उद्देश्य पीड़ितो की सहायता करना है, राजनीति करना नही।

दोनो तारो की फोटो-प्रतिलिपिया अगले पृष्ठो पर है, मजमून इसी पृष्ठ पर हैं।

(1)

From Durban—28 11 43

LC B Kanoria 8 Royal Exchange Place Calcutta =Confidential x Jinnah Cables x Calcutta Muslim Chamber Commerce Reliable Agency, Personal Muslim make no Distinction x please send Cables Box 2627 Durban from Fazlul Haq Ghaznavi other leading Muslim and even Hindus immediately so that very large amount already in hand could be remitted to your Committee x remitted only Rupees 26240 in absence of further Cables—Sorabjee Rustomjee Box 1610 Durban

(2)

From PIETERMARITZBURG—4.12 43

NLT B Kanoria 8 Royal Exchange Place, Calcutta-Confidential x Muslim Edited Journal Indian views wilfully propagating recognition of your committee means spitefulness against Muslim League Government of Bengal so that Congress Mahasabha bigots may be gratified x low attack on Dr Shyama Prasad Mukherjee x is it possible Bengal premier and responsible members of present Ministry to send cables Box 2627. immaterial if funds are sent to your Budridasjis Committee which is also doing useful work irrespective class creed = Sorabjee Rustomjee Box 2627 Durban

CENTRAL PEACE COMMITTEE

S. Sudhir Roy Choudhury, Mayor
Chairman

S. Deven Sen, M.L.A.
Secretary

CORPORATION BUILDING
Surendra Banerji Road, Calcutta

Dated ... 194

अर्थ समिति बनाने के लिए मेरी राय साफ है कि यह कमिटि अगर मध्यवर्गीय (अर्थात् सेंट्रल) पीस (शांति) कमेटी के मातहत हो सके तो अच्छा हो। अगर ऐसा न बन सके तो भी अर्थ कमिटी को बनना ही चाहिए और जितनी जल्दी पैसे इकट्ठे हो सके और उसका खरच पुनर्बसती के लिए किया जाय उतना अच्छा। और यह काम जल्दी और अच्छा होने के लिए मैं जरूरी समझता हू कि हर हालत मे यह समिति स्वावलम्बी होनी चाहिए। ६ या ८ दिसम्बर, १९४७ हस्ताक्षर मो० क० गाधी

नोट कलकत्ता के हिन्दू-मुस्लिम दगो मे उजडे लोगो के पुनर्वास के लिए गाधीजी ने ६ या ८ सितम्बर, १९४७ को सेंट्रल पीस कमेटी के तहत एक फिनान्स सब कमेटी गठित करने का निर्देश दिया था। गाधीजी ने इस अवसर पर जो डिक्टेशन दिया वह भागीरथजी ने लिखा। निर्देश-पत्र पर गाधीजी के हस्ताक्षर है।

भागीरथजी कानोड़िया का वंश-वृक्ष

परिशिष्ट—६
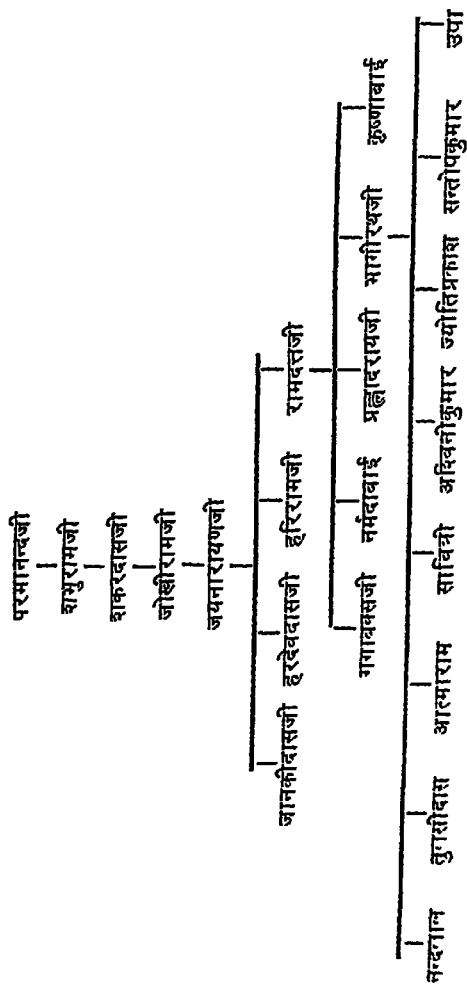
भागीरथजी से सम्बद्ध संस्थाएं

भागीरथजी अपने जीवन-काल मे बहुत सी सस्थाओ से सम्बद्ध रहे। इस ग्रन्थ के बहुत सारे लेखो मे ऐसी सस्थाओ की चर्चा भी आयी है। यहा उन सस्थाओ की एक सूची दी जा रही है जिनके भागीरथजी पदाधिकारी, ट्रस्टी, कोपाध्यक्ष, कार्यकारिणी के सदस्य, सस्थापक रहे और जिनके सचालन मे उनका प्रमुख हिस्सा रहा। कई सस्थाओ के तो वह उनकी स्थापना से अपनी मृत्यु तक अध्यक्ष रहे और कई के तो १५-१५ साल और २०-२५ साल अध्यक्ष या कोई पदाधिकारी। ऐसी सस्थाओ मे श्री शिक्षायतन, वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान हरिजन सेवक सघ, राजस्थान आदिम जाति सेवक सघ प्रमुख हैं। रायबहादुर विश्वेश्वरलाल मोतीलाल हलवासिया ट्रस्ट से तो वह लगभग ४२ वर्ष सम्बद्ध रहे।

अपने ८५ वर्ष के दीर्घजीवन मे उनका देशभर और खासकर राजस्थान की अगिनत सस्थाओ से सम्बन्ध आया। इनमे से बहुतो का पता ही नही चल पाया। जाहिर है कि ऐसी सस्थाओ का नाम इस सूची मे नही आ सका है। भागीरथजी की मृत्यु पर शेखावाटी के छोटे-छोटे कस्बो के पुस्तकालयो, स्कूलो और अन्य सस्थाओ से बहुत से तार आये। हम इनमे से भी अधिकाश के बारे मे यह पता नही लगा पाये कि भागीरथजी का उनसे क्या सम्बन्ध था। ऐसी सस्थाओ को भी सूची मे शामिल नही किया गया है। सूची मे जिन सस्थाओ के नाम दिये जा रहे हैं उनमे कई अब नही है। यह सूची मुख्य तौर पर याददाश्त के सहारे बनायी गयी है, सो यह निश्चय ही काफी अधूरी है। पर हमारा विश्वास है कि इससे भागीरथजी के सेवा के व्यापक-क्षेत्र का पता तो चलेगा ही। सूची अकारादि क्रम से नीचे दी जा रही है:

अभिनव भारती, कलकत्ता
अर्चना, कलकत्ता
अकाल सहायता समिति, राजस्थान (१९४८-४९)
अखिल भारतीय विक्रम परिषद, वाराणसी
अलसीसर सेवा सघ, जिला झुंझुनू
आदिम जाति सेवक सघ, राजस्थान
आई० एन० ए० इन्क्वायरी एण्ड रिलीफ कमेटी (१९४५-४६)
आल इन्डिया सेभ द चिल्ड्रेन कमेटी
कानोडिया महिला कालेज, जयपुर
कन्हैयालाल सहल हिन्दी-राजस्थानी शोध सस्थान
कथालोक (पत्रिका) दिल्ली)
गाधी नैशनल मेमोरियल फड (१९४८-४९)

गो सेवा सघ, बीकानेर
गाधी विद्यालय, सरदार शहर, बीकानेर
जन कल्याण समिति—पीपुल्स वेलफेयर सोसाइटी, सीकर
जवाहिर विद्यापीठ, कानोड, उदयपुर
जसीडीह आरोग्य भवन, जसीडीह
ट्यूनीसिया सहायता समिति, कलकत्ता (१९५३)
तिलक पुस्तकालय, रानीगज
तुलसी पुस्तकालय, कलकत्ता
तरुण सघ, कलकत्ता
नवजीवन (साप्ताहिक पत्र), उदयपुर
नया समाज (मासिक १९४८ से १९५८), कलकत्ता
पारिवारिकी, कलकत्ता
पूर्व भारत राष्ट्र भाषा प्रचार सभा
पश्चिम बगाल प्रदेश रिलीफ कमेटी (१९५३)
पश्चिमी सीमा विकास समिति, राजस्थान
प्रयाग महिला विद्यापीठ, प्रयाग
बगाल रिलीफ कमेटी (बगाल का अकाल, १९४३)
बगाल सेंट्रल रिलीफ कमेटी (१९४६-१९४७)
बगवाणी, नवद्वीप, प० बगाल
बडाबाजार कुमार सभा पुस्तकालय, कलकत्ता
बलरामपुर अभय आश्रम, प० बंगाल
बाल मन्दिर, जयपुर
बाल सेवा सदन, बेलूर, हवडा
भारतीय भाषा परिषद, कलकत्ता
भूपाल नोबल्स कालेज, उदयपुर
भारतीय लोक कला मडल, उदयपुर
भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ
भारत स्काउट्स एण्ड गाइड्स, कलकत्ता
मातृ सेवा सदन, कलकत्ता
मारवाडी बालिका विद्यालय, कलकत्ता
मारवाडी रिलीफ सोसाइटी, कलकत्ता
मारवाडी अग्रवाल महासभा, (१९१८-२६)
महिला मडल, उदयपुर
मरु-श्री (पत्रिका) चूरू, राजस्थान
मरु भारती (पत्रिका), पिलानी
महिला हरिजन सेवा समिति, किशनगढ
राजस्थान जल बोर्ड (१९५६-५७)

राजस्थान बाल सेवा सदन, फतेहपुर
राजस्थान अकाल सेवा समिति (१९५२-५३)
राजस्थान नशाबदी समिति
राजस्थान सेवक सघ
राजस्थान बाल-सेवा सदन, फतेहपुर
राजस्थानी प्रचारिणी सभा, कलकत्ता
राजस्थान छात्र निवास ट्रस्ट, कलकत्ता
राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर
राजस्थान हरिजन सेवक सघ
राजपूताना अकाल सहायता समिति (१९३८-३९), कलकत्ता
रघुमल चैरिटी ट्रस्ट, कलकत्ता
रघुमल आर्य विद्यालय ट्रस्ट, कलकत्ता
रायबहादुर विश्वेश्वरलाल मोतीलाल हलवासिया ट्रस्ट, कलकत्ता
रामकृष्ण मिशन, नीमपीठ, २४ परगना, प० बगाल
रामकृष्ण मिशन इस्टीट्यूट आफ कल्चर, कलकत्ता
रूपायण सस्थान, बोरून्दा, जोधपुर
लेडी अबला बोस स्मारक समिति, कलकत्ता
लोक सस्कृति शोध सस्थान, नगर-श्री चूरू
लोक सेवा समिति, खीरपाई, मेदिनीपुर
वनस्थली विद्यापीठ, वनस्थली
विद्या भवन, उदयपुर
विश्वभारती, शातिनिकेतन
श्री सार्वजनिक पुस्तकालय, मुकुन्दगढ (१९०९ मे स्थापित)
शारदा सदन महाविद्यालय, माध्यमिक स्कूल, प्राइमरी स्कूल, मुकुन्दगढ
श्री शिक्षायतन स्कूल, कालेज, कलकत्ता
श्री महिला जागृति परिषद ट्रस्ट, सादूलगज, बीकानेर
श्री सरस्वती पुस्तकालय, फतेहपुर
शिक्षा सदन ट्रस्ट, कलकत्ता
शुद्ध खादी भण्डार, कलकत्ता
सगीत श्यामला, कलकत्ता-दिल्ली
साहित्यकार ससद, प्रयाग
सेंट्रल पीस कमेटी की फिनान्स सब कमेटी (गाधीजी द्वारा स्थापित सितम्बर, १९४७)
सीकर जिला खादी ग्रामोदय समिति, रीगस
सस्ता साहित्य मडल, दिल्ली
सावित्री गर्ल्स कालेज, अजमेर
हरिजन उत्थान समिति, कलकत्ता (स्थापित १९३४)
हरिजन सेवक सघ, दिल्ली
हिन्द सेवा सघ, कलकत्ता (१९४७-४८)
हिन्दी भवन, शातिनिकेतन
हिन्दी प्रचार पुस्तकालय, कलकत्ता